राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत

हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास

हिन्दी-साहित्य में एकांकी नाटकों के उदय, विकास तथा बहुमुखी प्रगति का ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक अध्ययन

लेखक

डा० रामचरण महेन्द्र,

एम० ए०, पी एच० डी०,

प्रिंसिपल, गवर्नमेंट कॉलेज

सरदारशहर (राजस्थान)

१९५८

साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

प्रदीप साहित्य प्रकाशन

प्रथम आवृत्ति
मूल्य : १२॥)
बारह रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक :
सुरेन्द्र प्रिटर्स प्राइवेट लिमिटेड,
डिप्टीगज,
दिल्ली।

विषय-सूची

खंड-३

द्विवेदी युग मे एकाकी की प्रगति

खंड-४

पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित द्वितीय उत्थान
(१९२५ से १९३८ तक)

खंड—५

द्वितीय महायुद्ध एवं परवर्त्ती हिंदी एकाकी का विकास

खंड–६

हिंदी ध्वनि एकांकी की प्रगति और संभावनाएं

खंड–१०

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल	भारतीय नाट्य परम्परा के मूल तत्व
डा० सत्येन्द्र	हिन्दी एकाकी
प्रो० अमरनाथ गुप्त	एकांकी नाटक
डा० रामकुमार वर्मा	चारुमित्रा, रेशमी ाई, पृथ्वीराज की आखें, रजतरश्मि, ऋतुराज इत्यादि सग्रहो की भूमिकाए
प्रो० सदगुरुशरण अवस्थी	मुद्रिका, दो एकाकी "नाटक और नायक" की भूमिकाए
डा० नगेन्द्र	आधुनिक हिन्दी नाटक
प्रो० गुलावराय एम० ए०	हिन्दी नाट्य विमर्श
सेठ गोविन्ददास	नाट्य-कला मीमासा
कीथ	दी सस्कृत ड्रामा
श्री हेमेन्द्रनाथ गुप्ता	दी इडियन स्टेज
पेंगुइन सिरीज	सेवन फेमस वन एक्ट प्लेज
डा० एस० पी० खत्री	नाटक की परख
श्री जगदीशचन्द्र मायुर	भोर का तारा, भूमिका तथा परिशिष्ट
श्री सत्येन्द्रशरत् एम० ए०	हिन्दी एकाकी नाटक, तार के खम्भे, भूमिका
श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	चरवाहे, प्रतिनिधि एकाकी, भूमिकाएँ
श्री उदयशकर भट्ट	आधुनिक एकाकी नाटक, भूमिका

Percival Wilde —"The Construction of One Act play"
Walter Prichard Eaton·–"Chief Faults in writing One Act plays."
Sydney Box –"The Technique of the Experimental One Act plays."
Michael Blank Fort:–"The Construction of the Social One Act play."
Val Gielgud:–"The One Act play and the Radio."
Isaac Goldberg –"The One Act play and Films"
Virgil L Baker.–"The One Act Play in the College Theatre."
Gilbert Seldes:–"The One Act Play and Television"
Fred Eastman:–"The One Act Play in the Church"
Barrett H. Clark:–Where does the One Act play Belong"?
Glenn Hughess·–"The One Act Play in the United States."
John Bourne:–"The One Act Play in England."

डा० सोमनाथ गुप्त	हिन्दी नाटक का इतिहास
डा० सत्येन्द्र	हिन्दी एकाकी
बाबू ब्रजरत्न दास	हिन्दी नाट्य साहित्य
बाबू गुलाब राय	हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास
डा० राम विलास शर्मा	भारतेन्दु युग
श्री शिवनाथ एम० ए०	हिन्दी नाटक का विकास
प्रो० जयनाथ नलिन एम० ए०	हिन्दी नाटककार
प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त एम० ए०	छः एकाकी भूमिका
श्री शिखरचन्द्र जैन एम० ए०	नाटक-कला एव साहित्य की रूप रेखाए
श्री प्रभाकर माचवे	सन्तुलन
हस मासिक पत्र	एकाकी नाटक अक
वीणा मासिक पत्रिका	एकाकी नाटक विशेषाक

सग्रहो के रूप मे प्रकाशित एकाकी साहित्य :

डा० रामकुमार वर्मा	१ पृथ्वीराज की आखे, २ रेशमी टाई, ३ चारुमित्रा ४ विभूति ५ ऋतुराज ६ रजत रश्मि ७ सप्त किरण ८ रम्यरास ९ कौमुदी महोत्सव १० काम कन्दला ११ ध्रुवतारिका १२ रिमझिम
श्री उदयशकर भट्ट	१ अभिनव एकाकी २ स्त्री का हृदय ३ समस्या का अत ४ आदिम युग ५ कालीदास ६ विश्वामित्र और भाव नाट्य ७ अधकार और प्रकाश ८ जीवन और सघर्ष ९ पर्दे के पीछे १० क्रान्तिकारी ११. एकला चलो रे
सेठ गोविन्ददास	१ सप्त रश्मि २ चतुष्पथ ३ पचभूत ४ एकादशी ५ सेठ गोविन्ददास ग्रन्थावली
श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र	१ अशोकवन २ प्रलय के पंख पर ३ मनु तथा अन्य एकाकी
श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	१ चरवाहे २ देवताओ की छाया में ३ पक्का गाना ४ पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ ५ आदि मार्ग ६ छठा बेटा ७ कैद और उडान ८ अधी गली
रामवृक्ष बेनीपुरी	१ अमर ज्योति २ नया समाज ३ नेत्र-दान ४ सघमित्रा ५ सिंहल विजय ६ सीता की मा

डा० लक्ष्मीनारायण लाल	१. ताजमहल के आंसू २ पर्वत के पीछे
श्री सद्गु शरण अवस्थी :	१. दो एकांकी २. नाटक और नायक : छः भाग :
श्री सिद्धनाथ कुमार	१. कवि २ सृष्टि की साझ और अन्य काव्य नाटक
श्री सत्येन्द्र शरत	१. तार के खभे
श्री सुमित्रानन्दन पन्त	१. ज्योत्सना २. रजत शिखर ३ शिल्पी
श्री विष्णु प्रभाकर	१. स्वाधीनता सग्राम २. सरकारी नौकरी ३ इसान ४. सघर्ष के बाद
श्री विश्वम्भर मानव	१. लहर और चट्टान
अरुण एम० ए०	रेलगाडी का डिब्बा
कुंवर आदेश	दृश्य मन्दिर
गणेश प्रसाद द्विवेदी	सोहाग बिन्दी
चतुरसेन शास्त्री	१ अष्ठ मगल २. गाडीव दाह ३ क्षमा ४ राधाकृष्ण ५ स्त्रियो का ओज ६. सीताराम
जगदीशचन्द्र माथुर	१. भोर का तारा २ ओ मेरे सपने
देवीलाल सामर	१. मृत्यु के उपरान्त २. आत्मा की खोज
धर्मवीर भारती	नदी प्यासी थी
नारायण चक्रवर्ती	जौहर
प्रेमनारायण टडन	१. कर्म पथ २ प्रेरणा ३. सकल्प ४ दिवा स्वप्न
वैकुंठनाथ दुग्गल	रणभेरी
रघुवीरशरण मित्र	परीक्षा
रत्नकुमारी	एकाकिनी
रसिक एम० ए०	फैशन का खपत
राजाराम शास्त्री	१ सतलड़ी का हार २ शिकार ३. उलझन ४. डमरुनाथ ५. देवहूति
विठलदास कोठारी	१ पुष्पाजलि २. दहेज
विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त	अमिट रेखाए
विनोद रस्तोगी	१. पुरुष का पाप २. आजादी के बाद ३. कसम कुरान की ४ गोपा का दान
विमला लूथरा	१. दो एकाकी २. पचपन का फेर
विराज	तिरगा झडा

श्यामलाल	ऐतिहासिक दृश्य
डा० सत्येन्द्र	कुणाल
हरीकृष्ण प्रेमी	१ वादलो के पार २ मन्दिर ३ स्वर्ण विहान
हरिनारायण मैणवाल	१ कृष्ण वियोगिनी २ मानिनी गोपा
हीरादेवी चतुर्वेदी	रंगीन पर्दा
डा० एम० पी० खत्री	सात एकाकी
डा० कृष्णदत्त भारद्वाज	चार अभिनव एकाकी
रामनरेश त्रिपाठी	१ पेशन २ वापू और वा
राजेन्द्र शर्मा	ग्राम पचायत
रमेशचन्द्र वर्मा	रस का सिरका
केदारनाथ मिश्र प्रभात	काल दहन
जयनाथ नलिन	नवाबी सनक
[illegible] प्रसाद	एक घूट
जी० पी० श्रीवास्तव	१ नकदम २ दुमदार आदमी ३ भूल-चूक ४ नोकझोक ५. बौछार
देवदत्त अटल	स्वर्ग मे गाधी
पृथ्वीनाथ शर्मा	१. उर्मिला २ साथ ३. अपराधी
श्री श्रीकृष्ण	१. तरकस के तीर २. बहू बेटी
पांडेय बेचन शर्मा उग्र	चार बेचारे
प्रेमचन्द	प्रेम की वेदी
बदरीनाथ भट्ट बी० ए०	१. लबड धो धो २. चु गी की उम्मेदवारी
भगवतीचरण वर्मा	१ बुझता दीपक २ त्रिपथगा
वृन्दावनलाल वर्मा	१ जहादारशाह २ पीले हाथ ३ सगुन ४ लो भाई पचो लो
[illegible]देवी	लोकेश्वर शनि
[illegible] किशोर श्रीवास्तव	रेखाए
सुदर्शन	आनरेरी मजिस्ट्रेट
डा० सुधीन्द्र	१ राम रहमान २ सगम
[illegible] एम० ए०	सराय के बहार
रवीन्द्रनाथ ठाकुर	हास्य कौतुक
[illegible] श्रीवास्तव [illegible]	१ छ एकाकी नाटक २. सप्त तरग
[illegible]	नए एकाकी
[illegible] शास्त्री	एकाकी निकु ज

कहानी तथा उपन्यासों की ओर जन रुचि अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण हिन्दी एकाकी की धारा कुछ मन्द सी रही, किन्तु वह निरन्तर चलती रही। इस काल के एकांकियों पर हिन्दी-नाट्य आलोचकों ने कोई प्रकाश नही डाला है। कतिपय आलोचको, जिनमें सर्वश्री डा० नगेन्द्र, डा० सत्येंद्र, सद्गुरुशरण अवस्थी, प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० सरनामसिंह शर्मा "अरुण" इत्यादि प्रमुख है, ने अपने विवेचनों मे केवल श्री जयशकर प्रसाद के "एक घूंट" मात्र का ही उल्लेख किया है, जबकि उसी काल मे अन्य नाट्यकार भी एकाकी-साहित्य का निर्माण कर रहे थे। प० राधेश्याम कथावाचक, तुलसी दत्त शैदा, मंगला प्रसाद विश्वकर्मा, जयदेव शर्मा, सियारामशरण गुप्त, आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव, ब्रजलाल शास्त्री एम० ए०, रामसिंह वर्मा, सरयूप्रसाद 'विन्दु' शिवरामदत्त गुप्त, हरिशकर शर्मा, जी० पी० श्रीवास्तव, रूपनारायण पाडे, सुदर्शन, रामनरेश त्रिपाठी, बदरीनाथ भट्ट बी० ए०, इत्यादि लेखको ने रगमचीय एकाकी के विकास में कितना अधिक सहयोग प्रदान किया है, इसका किसी आलोचक ने उल्लेख नही किया है। प्रस्तुत निवन्ध मे प्रथम बार द्विवेदी-कालीन एकांकीकारो की कृतियों की खोज, वर्गीकरण और विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस युग का एकाकी साहित्य प्राय: पुरानी पत्र-पत्रिकाओं, जैसे सुधा, सरस्वती, मर्यादा, इन्दु, प्रभा, कहानी-माला इत्यादि मे बिखरा हुआ मिला है। उसको सामाजिक, ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, पौराणिक आदि वर्गों मे विभाजित कर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। उपलब्ध अनुवादो का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है। यह भाग हिन्दी एकाकी विकासक्रम की शृङ्खला की दृष्टि से महत्व-पूर्ण है।

आधुनिक युग मे अंग्रेजी भाषा के अध्ययन तथा अंग्रेजी एकाकीकारों के अनुकरण पर नई शैली के हिन्दी एकाकी का विकास प्रारभ हुआ है। इस टैकनीक का प्रयोग हिन्दी एकाकी जगत् मे एक नवीन दिशा का सूचक बना है। पुराने सस्कृत या द्विवेदी-कालीन पारसी रंगमचीय आदर्शों का परित्याग कर युगान्तरकारी नए एकाकी के प्रयोग प्रारम्भ हुए। पर्याप्त अध्ययन एव अनुभव के पश्चात् हिन्दी एकाकीकारो ने इस माध्यम को अपनाया तथा विकास की ओर अग्रसर हुए। इस निवन्ध मे नवीन शैली के एकाकी लेखको, उनकी विषयगत एव कला सम्बन्धी विशेषताओ तथा एकाकी का क्रमिक विकास प्रस्तुत किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन को प्रामाणिक बनाने के लिए एकाकियो के प्रकाशन की तिथियों का विशेष ध्यान रखा गया है। प्रत्येक प्रयोग-कालीन एकाकीकार की विषय-गत तथा टैकनीक सम्बन्धी विशेषताओ पर आलोचनात्मक प्रकाश डाला

गया है। हिन्दी एकाकी के क्रम-विकास मे यह सामग्री नूतन, महत्वपूर्ण और मौलिक है।

'द्वितीय महायुद्ध एव परवर्त्ती हिन्दी एकाकी' नामक अध्याय मे नवीनतम पाश्चात्य शैली पर लिखने वाले एकाकीकारो, उनकी टैकनीक, विचारधाराओ तथा लेखन प्रणालियो पर विस्तृत आलोचनात्मक प्रकाश डाला गया है। किस एकाकीकार का किस-किस दिशा मे विकास हो रहा है, वह अपनी कृतियो मे कौन-कौन विशेषताए प्रदर्शित कर रहा है, प्राप्त एव सकलित एकाकियो के आधार पर इसका अध्ययन किया गया है। यह भाग हिन्दी मे अन्यत्र कही भी उपलब्ध नही है।

हिन्दी मे गीति-नाट्य, भाव-नाट्य तथा पद्य एकाकी साहित्य-क्रम है, किन्तु उसमे जो प्रयोग हो रहे है, उनका मौलिक विवेचन पृथक अध्याय मे विस्तार से किया गया है।

रेडियो ने हिन्दी एकाकी को विकसित करने मे महत्वपूर्ण कार्य किया है और निरन्तर कर रहा है। कितने ही नए हिन्दी एकाकीकारो को जन्म दिया तथा पुरानो को प्रोत्साहन देकर इस दिशा मे आगे बढाया है। रेडियो एकाकी की टैकनीक, रेडियो एकाकीकारो की व्यक्तिगत एव कृतियो की विशेषताओ का अध्ययन एव रेडियो एकाकी के विभिन्न स्वरूपो की प्रगति एक पृथक अध्याय मे स्पष्ट किये गये हैं। बहुत सा रेडियो एकाकी साहित्य प्रकाशित हो चुका है। इस पहलू पर हिन्दी मे लगभग नही के बराबर किया गया है। इस भाग की सम्पूर्ण सामग्री, दिल्ली, नागपुर, लखनऊ, पटना, इलाहाबाद, जालधर इत्यादि रेडियो केन्द्रो मे प्रसारित एकाकियों से सकलित की गई है। यह विवेचन हिन्दी नाटक-साहित्य के इतिहास में सर्वथा नवीन है। प्रथम बार इसका आलोचनात्मक परिचय दिया जा रहा है।

रगमच ने हिन्दी एकाकी को जन्म दिया था। आज भी अनेक नाट्यकार रगमच को दृष्टि मे रखकर अपने एकाकियो की रचना कर रहे हैं। भारतीय रगमच निर्माण का कार्य तेजी से चल रहा है। 'रगमचीय हिन्दी एकाकी की प्रगति' नामक अध्याय मे रगमचीय एकाकी साहित्य पर नूतन प्रकाश डाला गया है।

'नवीन एकाकी साहित्य का अन्तरग दर्शन' नामक अध्याय के अन्तर्गत आधुनिक एकाकी साहित्य का विषयगत वर्गीकरण एव अध्ययन, सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, साहित्यिक, हास्य व्यग्य इत्यादि विभिन्न वर्गो मे किया गया है। समाज तथा देश के इतिहास एव राजनीति मे जो भिन्न-भिन्न नई पुरानी समस्याए हिन्दी एकाकियो मे प्रतिबिम्बित हुई है, उन्हे स्पष्ट करने का नूतन प्रयत्न है। सामाजिक एकाकियों

मे समाज की नाना समस्याए चित्रित की गई हैं। इनका निर्देश यथास्थान कर दिया है। गत वर्षो में जो महत्वपूर्ण घटनाए भारत मे हुई है, उनकी अमिट छाप हमारे एकाकी साहित्य पर भी पड़ी है। इन समस्त घटनाओ को स्पष्ट करते हुए एकाकियो का क्रमवार उल्लेख किया गया है। ऐतिहासिक वर्ग मे जिन शासको के काल या चरित्र के सम्बन्ध मे जो जो एकाकी प्रकाशित हुए है, उनका क्रमिक अध्ययन है। इसी प्रकार सास्कृतिक तथा साहित्यिक गतिविधियो का भी पृथक-पृथक अध्ययन है। समाज सुधार की चेतना प्रमुख होने के कारण आज भी प्रहसन का निर्माण हो रहा है। ऐसे सभी प्रहसनो तथा उनकी समस्याओ का नया विवेचन प्रस्तुत किया गया है। निष्कर्ष यह है कि सब विषयगत विचारधाराओ का पृथक-पृथक विवेचन इस भाग मे है।

'हिन्दी एकाकी का भविष्य' नामक अध्याय मे आधुनिक हिन्दी एकाकियो मे पाई जाने वाली त्रुटियो, और उपेक्षित अंगों के विकास की आवश्यकताओ की ओर निर्देश करते हुए भविष्य की उन्नति, टेलीविज़न द्वारा नये एकाकी का प्रसार, रेडियो तथा रगमंचीय एकाकी की सभावनाओ पर प्रकाश डाला गया है। इस निवध मे यह स्पष्ट किया गया है कि हिन्दी एकाकी का विकास निरतर परिपक्वता एव प्रौढता की ओर चल रहा है। उच्चकोटि के प्रतिभावान नाट्यकारों का ध्यान विविध-विषय-विभूपित एकाकियो के निर्माण की ओर आकृष्ट हुआ है तथा सफल कलात्मक एकाकियो की सृष्टि हो रही है। यदि पाश्चात्य एकाकी-साहित्य का अध्ययन तथा हिन्दी एकांकी-साहित्य मे उसी टैकनीक का प्रयोग इसी गति से चलता रहा तो निश्चय ही हिन्दी एकांकी विश्व-साहित्य मे अपना स्थान वना सकेगा।

इस अध्ययन की अधिकाश सामग्री भारतेन्दु युग से लेकर आज तक की विभिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओ और प्रकाशित एकाकी-सग्रहो से संकलित की गई है। इस निवंध मे दी हुई रेडियो एकाकीकारो तथा उनकी कृतियो सवधी जानकारी अन्यत्र कही भी इस रूप मे उपलब्ध नही है। यह सर्वथा नवीन है। सम्पूर्ण निवन्ध मे विषय के साथ-साथ, सामग्री सकलन, वर्गीकरण, अध्ययन की प्रामाणिकता, ऐतिहासिक खोज की नूतनता और विवेचन की मौलिकता है। हिन्दी नाट्य-साहित्य के इतिहास और आलोचना क्षेत्र मे यह निवन्ध अपने विपय तथा प्रतिपादन की दृष्टियो से प्रथम ऐतिहासिक एव आलोचनात्मक अध्ययन है।

इस ग्रन्थ के निर्माण का कार्य विद्वद्वर प० अयोध्यानाथजी शर्मा और पं० रामकृष्णजी शुक्ल "शिलिमुख" के निर्देशन मे हुआ है। मै इन विद्वानों का

हृदय मे कृतज्ञ हू। सामग्री के सकलन मे मुझे प्रयाग विश्वविद्यालय तथा काशी विश्वविद्यालय के पुस्तकालयो से विशेष सहायता मिली है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय अध्यक्ष ने पुरानी सामग्री देकर इस अध्ययन मे योगदान दिया है। अत मैं इन सब महानुभावो का कृतज्ञ हू। अन्त मे मैं राजस्थान विश्वविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को भी कोटिश धन्यवाद दिये विना नही रह सकता जिन्होने आर्थिक अनुदान देकर इस ग्रथ के प्रकाशन मे सहायता पहुचाई है।

—रामचरण महेन्द्र

गवर्नमेन्ट कालेज,
सरदारशहर (राजस्थान)

श्री हसकुमार तिवारी	पुनरावृत्ति
अर्जुन चौबे काश्यप	१. कवि प्रिया २. नया युग ३. परमाणु बम
मर्यादा	हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, हरिश्चन्द्र मेगजीन
प्रभा	माधुरी, सरस्वती
हस	विशाल भारत, वीणा
सुधा	सगीत, कल्पना
मानवता	प्रवाह

इत्यादि पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित फुटकर एकाकी साहित्य ।

भूमिका

हिंदी एकांकी का क्रम-विकास

एकांकियों ने ही आधुनिक हिन्दी नाट्य-साहित्य के भडार का अधिकाश भाग घेर रखा है। रगमंच के अभाव तथा अवकाश की न्यूनता के कारण बडे नाटको के क्षेत्र मे पर्याप्त प्रगति नही हो सकी है। कुछ पश्चिमी एकाकियो के अनुकरण तथा कुछ अमेचर रगमच, रीडिंग क्लबो, ड्राइग रूम, क्लबों, खुले रगमंच और स्कूल कालेजो की अध्ययन तथा अभिनय की मांग के कारण हिन्दी एकाकी के जीवन मे नव-स्फूर्ति का सचार हुआ है। गत वर्षों मे हिन्दी-एकांकी ने भी महत्वपूर्ण विकास किया है। प्रस्तुत अध्ययन मे इसी विकास-क्रम को चित्रित करने का एक प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी नाट्य-साहित्य पर जो प्रमुख आलोचनात्मक ऐतिहासिक ग्रथ अभी तक प्रकाशित हुए हैं, जैसे, डा० सोमनाथ गुप्त का "हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास", डा० नगेन्द्र का "आधुनिक हिन्दी नाटक", श्री शिखर चन्द जैन का "नाट्य-कला एव साहित्य की रूप रेखाए", प्रो० शिवनाथ एम० ए० का "हिन्दी नाटको का विकास", श्री ब्रजरत्न दास का "हिन्दी नाटक साहित्य"; बाबू गुलाबराय एम० ए० का "हिन्दी नाट्य-विमर्श" आदि मे हिन्दी एकाकी पर कही-कही सक्षिप्त निर्देश तथा प्रासगिक विवेचन मात्र है। डा० नगेन्द्र के "आधुनिक हिन्दी नाटक" मे एक सक्षिप्त अध्याय हिन्दी एकाकी नाटक के विकास पर है, जो स्थूल रूप मे हिन्दी एकांकी पर एक दृष्टि डालता है। डा० सत्येन्द्र ने 'हिन्दी एकाकी' नामक अपनी सक्षिप्त पुस्तक के द्वारा वर्तमान नाट्य साहित्य के इस प्रगतिशील और विकासोन्मुख साहित्यिक माध्यम की ओर हिन्दी भाषा-भाषी जनता तथा कलाकारो का ध्यान आकृष्ट किया था और यह आवश्यकता प्रकट की थी कि यदि हिन्दी नाट्य-साहित्य के इस शक्तिशाली माध्यम का ऐतिहासिक आलोचनात्मक विकास प्रस्तुत किया जाय, तो हिन्दी नाट्य-साहित्य सम्बन्धी आलोचना की एक बड़ी कमी की पूर्ति हो तथा वह शृङ्खला-बद्ध हो जाय। डा० सत्येन्द्र ने अपनी पुस्तक की भूमिका मे लिखा है:

"हिन्दी एकाकी पर पृथक रूप से अभी तक कुछ भी नही लिखा गया है। आज एक ऐसी पुस्तक का अभाव प्रतीत हो रहा है, जिसमे एकाकी के इतिहास और आलोचना के सम्बन्ध मे कुछ विशद रूप से लिखा गया

हो। एकाकी जन-रुचि को भी आकर्षित कर रहे हैं और विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयो के पाठ्य ग्रन्थ भी हैं। अभी तक एकाकियो के सम्बन्ध मे जो कुछ विवेचनाए मिलती हैं, वे विविध सग्रहो की भूमिकाओ के रूप मे हैं ·· इस बात की अपेक्षा है कि इस ओर विशेष श्रम किया जाय।"

उपर्युक्त आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त हिन्दी एकाकियो का यह अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमे प्रथम बार हिन्दी एकाकी का क्रमिक विकास, प्रगति, एव आलोचनात्मक अध्ययन देने का प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रन्थ की मौलिकता एव विशेषताएं

प्रस्तुत ऐतिहासिक आलोचनात्मक अध्ययन द्वारा हिन्दी साहित्य मे नाटक साहित्य के एक महत्वपूर्ण अग, एकाकी, की एक शृङ्खला उपलब्ध होती है तथा एकाकी नाटको का सर्वांगीण विकास-क्रम निश्चित होता है। हिन्दी एकाकी का उदय सस्कृत आदर्शों पर भारतेन्दु युग मे ही हो चुका था। इस युग मे अनेक नाट्यकारो ने एकाकी के ढग की फुटकर नाट्य-रचनाए लिखी थी, पर इनमे किसी सुनिश्चित शैली का पालन नही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सस्कृत आदर्शों पर अनेक एकाकियो के प्रयोग किए थे। उन्ही के अनुकरण पर उनकी मडली के अन्य नाट्यकारो ने कुछ एकाकी लिखे थे, जिनमे हिन्दी एकाकी का प्रारम्भिक अविकसित रूप उपलब्ध है। इनमे अक के सम्बन्ध मे कोई निश्चित धारणा नही मिलती, किन्तु एकाकी कला के कुछ महत्वपूर्ण तत्व अवश्य मिल जाते हैं। हिन्दी एकाकी क्रम विकास का यह प्रथम सोपान है। इस काल का एकाकी साहित्य, "हरिश्चन्द्र मेगजीन", "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका", "हिन्दी प्रदीप", "भारत मित्र", "सार सुधानिधि" इत्यादि पत्र-पत्रिकाओ तथा तत्कालीन हस्त-लिखित ग्रन्थो मे बिखरा पडा है। भारतेन्दु युग के पत्र साहित्य से सकलित आधारो पर, तत्कालीन एकाकीकारो की कृतियो, उनकी विशेषताओ और विचारधाराओ को स्पष्ट करती हुई यह पुस्तक हिन्दी साहित्य मे एकाकी की एक लम्बी परम्परा की रूप-रेखा प्रस्तुत करती है। यह भाग ऐतिहासिक तथा आलोचनात्मक दोनो ही दृष्टियो से हिन्दी-नाटक सम्बन्धी आलोचनात्मक साहित्य मे सर्वथा मौलिक और नूतन है। एकाकियो के विषयगत वर्गीकरण, विशेषताओं तथा नवीन निष्कर्षों को प्रामाणिक रखने का प्रयत्न किया गया है। भारतेन्दु युग मे प्रहसन विशेष रूप से लोकप्रिय माध्यम था। अत. उसका विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

द्विवेदी युग मे हिन्दी-एकाकी की प्रगति कुछ धीमी सी पड गई थी।

: १ :

हिन्दी एकांकी का विकास

१. एकांकी नाटकों की सांस्कृतिक परम्परा

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य आत्माभिव्यजन करनेवाला एक भावुक प्राणी है। उसके अन्तस्थल में जलनिधि की उत्ताल तरगो की भांति जिस रागात्मक चेतना का आवर्तन चलता रहता है, उसकी अभिव्यक्ति वह सगीत, नृत्य, अंग प्रत्यगो की तोड-मरोड तथा आन्तरिक भाव-विन्यास के अनुसार गतिशील अभिनय द्वारा करता है। जब हम किसी मर्मस्पर्शी अनुभूति अथवा घटना का वर्णन करते हुए भाषा के माध्यम को भावाभिव्यक्ति के लिए अपूर्ण पाते हैं, तो स्वभावत मुख की विभिन्न मुद्राओ तथा शारीरिक अंग-सचालन द्वारा स्थिति को प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं।[1] ऐसे मार्मिक अवसरो पर आदि निवासी प्राय. नाच उठते हैं, भावुक तथा कलात्मक अभिरुचि के व्यक्ति हाव-भाव, मुखमुद्रा, सगीत तथा अभिनय द्वारा निज भावाभिव्यजन करते हैं। ग्रामीणो के नृत्यो में अभिनय ही भाषा का रूप धारण कर लेता है। मानव की यह सहज स्वाभाविक अदम्य आत्माभिव्यजन की प्रवृत्ति ही अभिनयो का आदि-स्रोत है।

आदिम जातियो में प्रकृति का साहचर्य, प्रेरक ऋतुओ का उन्मादकारी वातावरणतथा उनके द्वारा मानव हृदय में उद्भूत नाना भाव (जैसे काम, क्षुधा, आनन्दोल्लास, भक्ति, शाति आदि) आरम्भिक अभिनयो के केन्द्र बने। ऋतुओ के परिवर्त्तन से प्रकृति के प्रागण में खेलने वाली सरिताए, लहलहाते खेत, शीतल उन्मुक्त समीर, सौरभमय पुष्प, हरित लतिकाए, सर, निर्झर आदि आकर्षण से परिपूर्ण हो मानव-हृदय में अदम्य मादकता का सचार कर देते है। प्रकृति की मादकता से उद्भूत भाव-लहरी नृत्य, सगीत और अभिनयो का कारण रही हैं।[2] मातृभूमि की वन्दना करते हुए अथर्ववेद में पृथ्वी-सूक्त के कवि ने पृथ्वी पर होने वाले नृत्य-गीत के उत्सव का उल्लेख किया है।[3] प्रकृति परिवर्तन के अवसरो पर वसन्तागन, वर्षागमन तथा अन्य प्राकृतिक उत्सवो पर हमारे यहा विशेष उत्सवो की योजना रही है। इन उत्सवो में नृत्य, सगीत, तथा अभिनय आदि की परम्परा रही है।

---

१ जे० डब्ल्यू० मेरियेट: "वन एक्ट प्लेज आफ टु डे" पृष्ठ १६१।

२ डा० एस० पी० खत्री · "नाट्य कला का मूल स्रोत," हिमालय, अंक १०, पृष्ठ ४२।

३. यस्या गायन्ति नृत्यन्ति भूम्या मर्त्या व्यैलवाः . अथर्व १२-१-४१।

ससार के साहित्य का इतिहास यही सिद्ध करता है कि प्राय हर सभ्य देश में मानव की साहित्यिक, कलात्मक और रागात्मक चेतना पहले पहल सगीत, इसके उपरात काव्य और फिर नाटक के माध्यम से ही अभिव्यक्त हुई। अपने अपने वातावरण और जातीय विकास क्रम के अनुसार विभिन्न देशो में सगीत, नाटक और काव्य भी विकसित होते रहे।[1]

नाट्यशास्त्र में सुरक्षित प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार नाटक की उत्पत्ति मूलत धार्मिक है। वेदो में वे नाटकीय तत्व जैसे सवाद, गीत, अभिनय और रस आदि उपलब्ध है, जिनसे नाटक की उत्पत्ति है। भारत मे नाटक सम्बन्धी प्राचीन कथा इस मत की पुष्टि तथा व्याख्या करती है। शूद्रो के लिए वेदाध्ययन तथा श्रवण वर्जित रहा है। देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर निवेदन किया कि श्रवण एव नेत्र सुखद एक ऐसे नवीन वेद का निर्माण किया जाय, जो केवल द्विजो मात्र की सम्पति न हो, प्रत्युत जिससे शूद्र भी लाभान्वित हो सकें। ब्रह्मा जी ने प्रार्थना पर ध्यान दे एक ऐसे पचम वेद का निर्माण किया, जिसमें शिक्षण और मनोरजन का समन्वय था। यह पचमवेद नाटक था।[2] इस पचमवेद की उत्पत्ति वेदो के चारो अगो से हुई थी। ऋग्वेद से पाठ या सवाद (Recitation), सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय, और अथर्ववेद से रस लिया गया था।[3] शिवजी ने नृत्य और पार्वती जी ने लास्य प्रदान किया था। इन सब के योग से नाटक की उत्पत्ति हुई। भरत मुनि प्रणीत इस कथा के अनुसार हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि वैदिक काल में धर्म के रूपो में अन्तर हो गया था। पौरोहित्य धर्म के आधार द्विजो के लिए थे तथा शूद्रो व द्विजो में वैभिन्य रोकने की दृष्टि से नाटको का निर्माण हुआ था। दूसरी बात यह है कि नाटक के सब मूलतत्व वेदो में विद्यमान थे।

नाटक की उत्पत्ति एव उनमें भारतीय परम्परा के इस योगदान के सम्बन्ध में भारतीय और पाश्चात्य विचारको ने पर्याप्त विचार किया है। इन मतो को दो पक्षो में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम पक्ष उन विद्वानो का है, जिनमें प्रो० मैक्समूलर, [illegible], श्रदर्भ स्प्रेडर और डा० हर्टल आदि है, जो नाटक को वेदो में प्राप्य विविध तत्वो से विकसित तथा मूलत धार्मिक मानते है। दूसरे वर्ग में डा० रिजवे, प्रो० कोनो, प्रो० पिशल आदि विद्वान है, जो नाटक की उत्पत्ति समाज की लौकिक प्रवृत्तियो में मानते है।

प्रथम वर्ग के प्रमुख विचारक प्रो० मैक्समूलर ने सन् १८६९ में ऋग्वेद के

---

[1] [illegible] "ना० ना० परम्परा," मा० हिन्दु०, १२ जु० ५४, पृष्ठ ११।

[2] [illegible] शूद्र जातिषु
[illegible] पचम सार्ववर्णिकम्

[3] [illegible] सामभ्यो गीत मेव च
[illegible] १७।

संवादो को देखकर यह अनुमान लगाया कि यज्ञ के अवसर पर यह संवाद दो दलो में होता था[1]। यह धारणा विशेषत इन्द्र और मरुतो के सवाद (ऋग्वेद १,१६५) को देखकर बनी थी। यज्ञ के अवसर पर श्रोताओ के दो दल बन जाते होगे एक इन्द्र तथा दूसरा मरुतो का। प्रो० लिवी ने सामवेद का प्रमाण देते हुए यह मत स्थिर किया है कि वैदिक काल में सगीत का विकास हो चुका था। ऋग्वेद से यह भी पता चलता है कि स्त्रिया सज कर नृत्य करती थी। अथर्ववेद में सगीत और नृत्य के प्रमोदो मे प्रवृत्त होने का भी उल्लेख है। अत. वैदिक काल मे सवाद प्रधान धार्मिक अभिनयो का होना स्पष्ट है। प्रो० स्क्रूदर तथा डा० हर्टल के अनुसार वैदिक काल मे नाटक होते थे और वैदिक युग मे मिलने वाला "सुपर्णाध्याय" ऐसे नाटक का असदिग्ध प्रमाण है।[2]

भारतीय एकांकी अर्थात् लघु नाटकों का आदि रूप हमारे प्राचीन वैदिक साहित्य में पाये जाने वाले ये सवाद है। सवादो के रूप में भारतीय नाटक की परम्परा अति प्राचीन है। वेदो मे ऐसी अनेक ऋचाए मिलती है, जो नाटकीय शैली मे विरचित हैं और जिनमें पात्र परस्पर कथोपकथन करते हैं। अकेले ऋग्वेद मे ऐसे नाटकीय सवादो के पन्द्रह स्थल तो निर्विवाद माने जा सकते है। कुछ और भी सजीव कथोपकथन प्रधान स्थल है, जहा ऐसे सवादो का अनुमान लगाया जा सकता है। ये सवाद तीन प्रकार के है[2]: १. वे सवाद जिनमे दो पात्र कथोपकथन करते है, २. वे सवाद जिनमे तीन वर्ग हैं, ३. वे सवाद जहाँ एक पात्र किसी जनसमूह से वातचीत करता है।

प्रथमवर्ग के सवादो में परम्परा के अनुसार आदि मानव जाति के जन्मदाता यमयमी का संवाद (ऋग्वेद १०,१०) है। इस संवाद में कवि की भावनाए परम्परागत कथा की अपेक्षा परिष्कृत है तथा वह प्राचीन काल के नैतिक शैथिल्य से असतुष्ट है। यमी अपने अनैतिक प्रेम को यम द्वारा मान्य कराने का प्रयत्न करती है, पर इस ऋचा के अनुसार वह सफल नही होती। इसी प्रकार का एक रोचक और आकर्षक वह सवाद (ऋग्वेद १०,९५) है, जिसमें पुरुरवा तथा उर्वशी नामक अप्सरा परस्पर वातचीत करते है। पुरुरवा उर्वशी को उसके प्रेम की अस्थिरता के कारण धिक्कारता है पर वह उसके मादक आकर्षण से विमुख नही हो पाती। एक सूक्त मे नेम भार्गव इन्द्र से प्रार्थना करता है, तथा उनसे उत्तर पाता है।

द्वितीय वर्ग में ऐसे स्थल आते है जिनमें तीन पात्र परस्पर सभाषण करते हैं; जैसे, अगस्त्य ऋषि अपनी पत्नी लोपामुद्रा और पुत्र से एक रहस्यमय वार्तालाप (१ से १७९) करते हैं। इसी प्रकार इन्द्र तथा वसुकरा का वह सवाद (१०,२८) है, जिसमें वसुकरा की पत्नी कम भाग लेती है। ऋग्वेद की ४,१८ पक्तियो में हमें इन्द्र, अदिति

१. देखिये कीथ कृत "दी संस्कृत ड्रामा" पृष्ठ १५।

२. वही, पृ० १६।

तथा वामदेव का एक अस्पष्ट पर उल्लेखनीय सवाद मिलता है। एक स्थान पर इन्द्र उनकी पत्नी इन्द्राणी तथा वृषकपि का अस्पष्ट सवाद (१०,८६) है, जिसमें प्रत्येक पात्र अपने पूर्ववक्ता की निर्बलता और मूर्खता प्रदर्शित करता है, किन्तु स्वय अपने चरित्र की त्रुटिया नही देख पाता।

तृतीय वर्ग मे ऐसे सवाद हैं, जिनमें बातचीत करने वाला एक व्यक्ति न होकर एक जनसमूह है। उदाहरणार्थ इन्द्र की दूती सरमा लुप्त गायो की खोज करती-करती पणिगण राक्षसो के पास जाकर उनसे एक अत्यत सजीव वादसवाद (ऋग्वेद १० से १०८) करती है। एक सवाद (१०,५१ से ५३) मे देवता अग्नि को मनुष्यो द्वारा अर्पित नैवेद्य उन तक निरन्तर पहुचाते रहने को प्रोत्साहित करते हैं। इस सवाद की विशेषता यह है कि एक पद्य को दो वक्ताओ में आवश्यकतानुसार विभाजित कर दिया गया है।

दो सवाद अपने ऐतिहासिक सकेतो की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रथम विश्वामित्र का उन सरिताओ से सवाद जिन्हें वे पार करने का प्रयत्न करते हैं। दूसरे में वशिष्ठ जी अपने पुत्रो से (यदि इन मत्रो का यही सही अर्थ समझा जाय) सजीव वार्तालाप करते हैं। एक उल्लेखनीय सवाद (१६५ से १७०) में इन्द्र मरुतो से वाद-विवाद करते है, क्योंकि उन्होने इन्द्र को राक्षस वृत्र से युद्ध करते हुए बीच में धोखा देकर त्याग दिया था। अन्तत मरुत इन्द्र की कोपाग्नि शान्त करने में समर्थ होते हैं। पहले सवाद में ऋषि अगस्त्य भी अन्त में परिणाम बतलाते हुए बातचीत में सम्मिलित हो जाते हैं। इसी प्रकार विश्वामित्र का सवाद यह कह कर समाप्त होता है कि लूट के माल के साथ सरिताओ को पार किया। एक रोचक किन्तु अस्पष्ट सवाद (ऋग्वेद ४ से ४२) इन्द्र तथा वरुण में होता है, जिसमें ये दोनो परस्पर एक दूसरे के तुलनात्मक महत्व को प्रकट करते हुए झगडते प्रतीत होते हैं। स्वय कवि भी इसमें टीका-टिप्पणी करता है। ये हस्तक्षेप ऐसे स्थानो पर भी हैं, जहा हस्तक्षेप करना आवश्यक प्रतीत नही होता। ऋग्वेद के इन कथोपकथनो का कर्मकाड-सम्बन्धी साहित्य की परम्परा के लिए कोई उपयोग ज्ञात नहीं होता।

परवर्ती वैदिक युग में नाटकीय सवादो की यह परम्परा क्षीण हो गई। अथर्ववेद में केवल एक सवाद मिलता है। इसमें (अथर्व० ४ से ११) पुजारी अर्थवान् देवता से गौ का दान वसूल करता है। प्रारम्भ मे देवता उनकी प्रार्थना पर कम ध्यान देता है, किन्तु अन्त में करुणा से अभिभूत होकर न केवल इच्छित वस्तु प्रदान करता है, अपितु इसकी शिक्षा भी देता है। एक अन्य सवाद को कुछ विद्वान् गाथामात्र मानते है पर वह कथोपकथन है। एक अन्य सवाद (अथर्व० १०,८६) है जो नाटकीय पद्धति का नहीं है। दोनो पात्र पृथक्-पृथक् पहेली सी बुझते हैं, परस्पर एक विषय पर बात नहीं करते।

कुछ विद्वानो का विचार है कि ऋग्वेद के सवादो से नाटक के उदय की कल्पना

के लिए कोई विशेष प्रमाण उपलब्ध नहीं है। वैदिक कर्मकांड में नाटक के तत्वों का आभास है। पूजन में केवल गाना या पाठ ही नहीं प्रत्युत पूजन के ऐसे जटिल स्वरूप विद्यमान् थे, जिनमें नाटकीय तत्व थे। पूजा करने वाले पूजन के समय अपने व्यक्तित्व को भूलकर किसी अन्य व्यक्ति का अभिनय करते थे। उदाहरण के लिए सोम-यज्ञ के लिए सोमक्रम का अनुष्ठान् जिसके अन्त में सोम विक्रेता को पीटा तक जाता है। इसमें सोम विक्रेता का अभिनय किया जाता है और अभिनेता अन्त में पिटता है। महा-व्रता में हमें कुछ ऐसे और तत्व मिलते हैं जिनसे नाटक का विकास सभव है। श्वेतवर्ण का एक वैश्य और काले रंग का शूद्र एक गोल चमड़े के टुकड़े के लिए लड़ते हैं। वैश्य विजयी होकर उस टुकड़े को प्राप्त करता है। इस प्रकार के अन्य अनुष्ठानों में अभिनय तत्व मिलते हैं, पूरा नाटक नहीं। यजुर्वेद में प्रत्येक वर्ग और पेशे के व्यक्तियों की सूची है, पर 'नट' शब्द का कहीं प्रयोग नहीं है। प्रो० हिलेब्रा इन कर्मकांडीय अनुष्ठानों को वास्तविक कर्मकांडीय नाटक मानते हैं। प्रो० कोनो भी इसी मत से सह-मत हैं, पर इन रूपकों में नाटकों जैसा स्वतन्त्र अभिनय नहीं है। इन रूपों को भरने और अभिनय करने वाले केवल धार्मिक भाव से देवताओं को प्रसन्न करने अथवा किसी फल की प्राप्ति के लिए ही वैसा करते थे। किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि जननाट्य धर्मनाट्यों से पुराना है। अत कोनो का मत मान्य नहीं है।

सामवेद में हमें नाटक के अन्य तत्व गीत और नृत्य आदि मिलते हैं। महाव्रता में कुमारियां अग्नि के चारों ओर नृत्य करती हैं, जिससे फसलों के लिए वर्षा हो। विवाह से पूर्व विवाहिता स्त्रियों के नृत्य की व्यवस्था भी मिलती है, जिससे नव-विवाहिता का विवाह फलदायक सिद्ध हो सके। किसी व्यक्ति की मृत्यु पर मरे हुए व्यक्ति की हड्डियां फूल इत्यादि एक बर्तन में रखे जाते हैं, और विलाप करने वाले उसके चारों ओर नृत्य करते हैं। इसमें बांसुरी और वीन इत्यादि वाद्यों की भी व्यवस्था है। भारतीय रंगमंच के साथ नृत्य अविभाज्य रूप से संबंधित रहा है। शिव का ताण्डव नृत्य प्रसिद्ध है। अत प्रो० ओल्डनबर्ग ने यह मत स्थिर किया कि नाटक की उत्पत्ति धार्मिक नृत्य, जिसमें गायन और मूक अभिनय सम्मिलित हैं, ही नाटकों के पूर्वज हैं। बाद में इन्हीं में कथोपकथन जोड़ दिये गये। ये गद्य के कथोपकथन भी वेदों में अश्वमेध के कर्मकांड अथवा महाव्रत के अंतिम कर्मकाड के अश्लील प्रकरणों में मिलते हैं। यदि ये तर्क सत्य मान लिए जायें तो वेदों में नाटकों के विकास के समस्त सूत्र मिल जाते हैं[1]।

वैदिककालीन साहित्य में पाये जाने वाले ये तत्व एकांकी के बीज रूप में विद्यमान होने के द्योतक हैं चाहे इनसे पूरे आधुनिक नाटक का बोध न होता हो। महाकाव्यों के पाठ और मूक अभिनयों द्वारा नाटक की उत्पत्ति मानी जा सकती है। प्रो० ओल्डनबर्ग ने महाकाव्यों का सहयोग सूचित कर एक नई विचार-धारा प्रदान

१. कीथ, "दी संस्कृत ड्रामा," पृष्ठ २६।

की है। उपर्युक्त तत्वो के साथ कथानक का नियोजन होने से नाटक का प्रारम्भ हो गया। एकाकी में कथानक क्षीण होता है और किसी घटना या विषय पर विवेचन कर जीवन की एक झाकी उपस्थित की जाती है। अत हम इन वैदिक अभिनयो को हिन्दी एकाकी का पूर्वज मान सकते हैं।

२. एकांकी नाटको के पूर्वज जन-नाट्य

डा० रिजवे का मत है कि नाटक का प्रारम्भ मृतक वीरो की पूजा से हुआ है। वीरो की मृत्यु पर नृत्य, गीत तथा वाद्य से शोकाकुल प्राणी वीरो की आत्मा को प्रसन्न करने का उद्योग करते थे। वीर चरित्रो को मूल केन्द्र लेकर नाटको का उदय हुआ है। हमारे लोक गीतो में भी वीर चरित्रो की प्रधानता है। जहा ये एक ओर वीरो के चरित्र गौरव को प्रकट करते हैं, वहा दूसरी ओर जनता के मनोरजन के भी साधन है। लोक गीत जिस समय पूर्ण भावावेश के साथ सामूहिक बनकर अभिनय किया जाता है, उस समय उसके स्वर ताल की तीव्रता से गाने वाले समूह और दर्शको में प्रत्येक व्यक्ति का रोम रोम स्पन्दित हो उठता है, और गायक मडली बिना नृत्य किये नही रह सकती। इन लोक गीतो में प्रबन्ध गीत भी होते हैं। इनके सवाद भी गीतमय होते हैं। इन गीतो में नाट्य सामग्री सहज ही में उपलब्ध हो जाती है। ये गीत नाट्य गीत हो जाते हैं। इन लोक नाट्यो को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है : (१) धार्मिक लोक नाट्य तथा (२) लौकिक ऐतिहासिक अभिनय। प्रथम वर्ग में हम यू० पी० की रामलीला, ब्रज की रासलीला, बगाल की यात्रा, महाराष्ट्र का ललित और गुजरात का भवाई नामक लोक नाट्य तथा दूसरे वर्ग में नौटकी, साग, कठपुतली अभिनय और छायानाटक आदि लौकिक अभिनय रख सकते हैं। इन सभी लोक नाट्यो मे किसी न किसी धार्मिक या जातीय वीर के चरित्र का चित्रण होता है।

लोक गीतो का भी प्रारम्भ केवल मनोरजन के लिए नही माना जा सकता।[1] किसी देवता को प्रसन्न करने के लिए विशेष धार्मिक अनुष्ठानो के फलस्वरूप स्वभावत लोकगीतो का स्फुरण हुआ। जब मनुष्य ने कुछ बौद्धिक होकर धर्म और व्यक्ति का भेद किया, तो उसमें शुद्ध मनोरजन का भाव आया होगा। इन गीतो की आदि धार्मिकता का अवशेष अभी तक इन गीत नाट्यो के आरम्भ में मिलता है।

उत्तर भारत की रामलीला जन नाटक की एक प्रचलित लोकप्रिय शैली है।[2] रामलीला एक प्रचलित नाटकीय प्रबन्ध है, जिसका अभिनय जनता के मनोरजन का केन्द्र रहा है।[3] इसमें नृत्य, वाद्य, सवाद, अभिनय और गीतो के माध्यम से मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम के चरित्र की गौरव गाथा का चित्रण होता है। प्रारम्भिक रूप में दो खुले स्थान निश्चित किए जाते थे, जिनमें एक पर राम लक्ष्मण वर्ग तथा दूसरे पर राक्षस वर्ग के पात्र बैठते थे, परिधान चटकीला और पद्यमय सवाद की व्यवस्था थी। अभिनय साधारण [illegible] पृष्ठ-भूमि सगीत की व्यवस्था थी। भारत की पौराणिक

धार्मिक परम्पराओ की सुरक्षा इसी जननाट्य शैली द्वारा होती रही। इसके प्रभाव से भारत में जिस नाट्यशैली का विकास हुआ है, उसमें संवादमात्र हुआ करते थे।[1]

बंगाल की यात्रा, कवि कीर्तनिया आदि अभिनय जन-नाटक की एक और लोकप्रिय शैली रही है। कृष्ण के उपासक विशेष अवसरो पर कृष्णचरित का अभिनय किया करते थे तथा कृष्ण की संगीत नृत्य प्रधान लीलाओ का अभिनय करते हुए आत्मविभोर हो गलियो मे गाते हुए मन्दिर के आंगन में पहुंचा करते थे। कालान्तर मे इन अभिनयों से धार्मिक तत्वो की कमी होकर शृंगार प्रधान तत्वों की प्रधानता हो गई। १९ वी शताब्दि के उत्तरार्द्ध मे कृष्णकमल गोस्वामी ने ह्रासोन्मुख यात्रा मे पुनः परिष्कार किया। यात्रा नाट्यशैली मे गीति और संगीत तत्वो का बाहुल्य और संक्षिप्त कथोपकथन का विधान था। रंगमंच, वेशभूषा आदि प्रसाधन गौण समझे गए। यात्रा निर्देशक विवरणात्मक गद्यांशो द्वारा कथा सूत्रो को परस्पर सम्बद्ध किया करते थे। यात्रा नाटको की परम्परा पुरानी है। वैदिक काल से यह पद्धति जन नाटको की पद्धति रही है। महाप्रभु के कारण यात्रा नाटको का पर्याप्त प्रचार हुआ और सैकडो नाटको की रचना हुई।[2]

व्रजभूमि में प्रचलित रासलीलाए जननाट्य की तीसरी लोकप्रिय शैली है। इसमे विशेषत व्रज संस्कृति, साहित्य, काव्य, संगीत और नृत्य का समन्वय होता है। मथुरा में रास का प्रथम अभिनय संवत् १५५० से १६०० विक्रमी में हुआ था। श्री वल्लभाचार्य संवत् १५४८ मे भागवत प्रचार करने के लिए व्रज में पधारे थे। इस किंवदन्ती के अनुसार रास का यह स्वरूप ४०० वर्षो से अधिक प्राचीन ठहरता है।[3] व्रज मे जो सर्वसाधारण की भाषा थी, वही रास अभिनयो की भाषा बन गई। भागवत से मूल प्रेरणा, अष्टछाप से गान, नृत्यकारो से नृत्य, कलाकारो से अभिनय और नट नागर श्रीकृष्ण के जीवन से कथानक और रस लेकर इन जननाटको का निर्माण किया गया। रास नाटक तीन पद्धतियो में प्रचलित हुआ · कृष्णरास, जैनरास तथा लौकिक प्रेम सम्बन्धी रास। इसमें दानलीला प्रसंग रासनाटको का लोकप्रिय रूप रही है और इस पद्धति के अनेक हस्तलिखित नाटक मिलते है।[4] रास नाटक एक प्रकार के छोटे एकांकी (ऑपेरा) ही हैं, जिनमें संगीत और वाद्य का भी महत्व रहता है, कथोपकथन काव्यमय

---

१. श्री गोपाल प्रसाद का "जिरादन्त नाटक" और शुकदेव मुनि का "रनाशुक संवाद" इसी काव्यमय शैली में हैं।

२ देखिए डा० दशरथ ओझा का "जन नाट्य के संस्कार", प्रसारिका १ से ३, पृष्ठ ७०।

३. देखिए श्रीराम नारायण अग्रवाल कृत "रासलीलाए" हिमालय, वर्ष ७, अङ्क १, पृष्ठ ६७।

४ डा० दशरथ ओझा, "इन तीनों पद्धतियों पर लिखे गए रास ग्रन्थों की संख्या न्यूनाधिक एक सहस्र है। इतना विशाल नाट्य साहित्य अभी पठित समाज के सम्मुख नहीं आया है, "जन नाट्य के संस्कार", प्रसारिका १ से ३, पृष्ठ ७०।

होते हैं। गद्य का प्रयोग केवल कविता के अर्थों के रूप में रहता है। कभी कभी संस्कृत श्लोकों में जयदेव की कोमल कांत-पदावली भी सुनने को मिल जाती है।

रास नाटकों के महत्व को मानते हुएभी इस वाद में यह त्रुटि है कि इसके अनुसार भारतीय रूपक का उद्भव कृष्णोपासना से अपेक्षाकृत अधिक संयुक्त किया जाता है तथा राम शिव आदि अन्य देवताओं की उपासनाओं ने भारतीय नाटक के विकास में जो बड़ा भाग लिया है, उसकी उपेक्षा की गई है। उल्लेखनीय बात यह है कि रास के आरम्भ कर्त्ताओं ने इसे प्रारंभ से ही एक एकाकी का सा रूप दिया है, जिससे दर्शकों को स्वल्प समय में ही अधिकाधिक रस प्राप्त हो सके।[1]

ललित महाराष्ट्र का सर्वाधिक प्रचलित मध्ययुगीन रंगमंच है, जिसमें दशावतार को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह केवल दो यवनिकाओं की सहायता से विशेषत: मंदिरों के कक्षों या सरायों में ही अभिनय किया जाता है। इन जन नाट्यों में एक सूत्रधार रहता है तथा एक विदूषक भी इच्छानुसार आता जाता रहता है। अभिनय का प्रारम्भ नान्दी से होता है। तदुपरान्त गणपति का प्रवेश होता है। सूत्रधार प्रशस्ति में गीता के गीत गाता है तथा आशीर्वाद प्राप्त करता है। कथोपकथन गौण रहता है तथा कथानक की अभिव्यक्ति कायिक वाचिक हावभाव से की जाती है। युग की प्रगति ने ललित में धार्मिक प्रेरणाओं का ह्रास होता गया है और उसके स्थान पर यथार्थ जीवन तथा व्यंग्य आ गया है।

गुजरात में जन नाट्य का भवाई रूप प्रचलित है। इसमें यद्यपि प्रारम्भ में गणपति का आगमन अनिवार्य है, तथापि अभिनय अन्त तक धर्मसापेक्ष होता है। इन नाटकों में न कोई विशेष प्रकार का रंगमंच आवश्यक समझा जाता है, न कोई विशेष व्यवधान ही रहता है, न घटनाओं का क्रमिक नियोजन।

इन सभी धार्मिक जन नाटकों ने एकाकी के विकास तथा उनकी लोकप्रियता में महत्वपूर्ण भाग लिया है। इनमें सामान्य रूप से धार्मिक कथानकों, वीर चरित, गौरव गाथा और संगीत की प्रधानता रही। रंगमंच का कोई विशेष महत्व नहीं था और वेशभूषा तथा अन्य नाटकीय प्रसाधन गौण समझे गये। फिर भी एकाकी के अनेक तत्वों का विकास होता रहा।

दूसरा सिद्धान्त प्रो० कोनो, पिशल, प्रो० लूडर्स आदि विद्वानों का है। ये हिन्दू नाटकों का उद्भव लौकिक नृत्यों में मानते हैं। उनके अनुसार नाटक एक सामाजिक कला है।[2] इसका जन्म समाज के लौकिक अभिनयों जैसे स्वांग 'नौटंकी, भांड, छायानाटक, कठपुतली नृत्य आदि से हुआ है। समाज में लोक अभिनय, नाट्यगीत, संवाद, अश्लील [illegible], [illegible] वैदिक काल में भी प्रचलित थे। "कौषीतकी ब्राह्मण" [illegible] लाया गया है। उनके साथ नृत्य, गीत तथा वादन की प्रमुखता

---

1 श्री [illegible] "हिन्दी का रंगमंच", हिमालय, वर्ष २, पृष्ठ ६४।
2 [illegible] "[illegible]," पृष्ठ २५-२६।

रहती है। प्रो० कोनो महोदय तो यहा तक कहते है कि इन लोकरजनकारी विधानो का आरम्भ तो लोकरंजन के लिए धर्म से पृथक हुआ पर वैदिक काल मे कर्मकाडीय अनुष्ठानो में नाटकीय प्रसगो के लिए ये लौकिक साधन ले लिए गये। इस प्रकार नाटको का उदय भारत मे लौकिक है, धार्मिक नही। इसके लिए एक प्रमाण और दिया जाता है। आरम्भ से ही भारतीय नाटको में प्रचलित साधारण जन भाषा का उपयोग होता रहा है। इन लौकिक भाषाओ का प्रयोग नाटको की लौकिक उत्पत्ति सिद्ध करता है। डा० सत्येन्द्र इस मत से सहमत नहीं है। उनके अनुसार आदिम मानव के कृत्य धर्म से अभिभूत रहते हैं और भारत में तो धर्म सर्व आचारो में व्याप्त रहा है। प्राकृत का प्रयोग संस्कृत के साथ हुआ है। वह नाटको में स्वाभाविकता लाने की दृष्टि से है। यह मत भी समीचीन नहीं है।

प्रो० हिलब्रैंड का विचार है कि भारतीय रूपक प्रादुर्भाव से भी पूर्व, भारत में लोकप्रिय स्वागो का प्रचार था। बाद में रामायण और महाभारत की कथाओ ने स्वागो के साथ मिलकर रूपक को जन्म दे दिया, क्योंकि स्वागो में सस्कृत के साथ प्राकृत का प्रयोग है, भाषा में गद्यपद्य का सम्मिश्रण है, रगशालाओ में सादगी है तथा विदूषक का समावेश है। डा० कीथ इस मत से सहमत नही है, क्योंकि उक्त मत कल्पना जनित प्रतीत होता है। मेरा विचार है कि स्वाग तथा नौटकी की आज तक चली आती हुई लोकप्रियता यह सिद्ध करती है कि स्वाग एकाकी का पूर्वज है। उत्तरी भारत मे स्वाग, नौटकी, भाड इत्यादि खड़ी बोली में पर्याप्त लोकप्रिय रहे हैं। इनका कथानक जनता में प्रचलित मध्य युगीन रोमांचकारी कहानियो पर आधारित रहता है। भक्त पूरन, वीर हकीकतराय, राजा गोपीचंद भरथरी इत्यादि के स्वाग जनता मे लोकप्रियता प्राप्त करते रहे हैं। मध्य युग की हास परिहासमय अभिनय कला के अवशिष्ट चिन्ह नौटकी, भाड आदि में मिलते हैं। इनमें चारो ओर से खुला रगमच होता है, जिसके चारो ओर दर्शक बैठे रहते हैं और जिन पर वाद्य यत्र भी रहते हैं, भडकीले वस्त्र धारण किए तथा खरिया, पाउडर, लाली मुह पर पोते मुकुट कुडल धारण किए हुए अभिनेता पद्यात्मक सवाद के साथ नृत्य संगीत और काव्यमय कथोपकथन मिश्रित अभिनय होता है। इनको अभिनय में हाथ और पैर चलाने, मटकने, रोने, हसने बरबस हंसाने, धडाम से गिर पड़ने आदि कार्य व्यापारो की इतनी अतिरजना होती है कि इनका उपहास निम्न कोटि का हो जाता है। फिर भी ये शैलिया छोटे नाटको की पूर्वज कही जा सकती हैं।

डा० पिशल नाटको का उदय कठपुतलियो के अभिनय से मानते है। कठपुतली के अभिनय नाटकीय प्रेरणाओं की सबसे बाल सुलभ सरल स्थूल शैली रही है। आदि युग के मानव के लिए पुतलिया और मूर्त्तिया देवताओ अथवा अज्ञात शक्तियों की प्रतीक थी। कठपुतलियों का उल्लेख महाभारत में हुआ है। उत्तरा ने अर्जुन से एक पुत्तलिका लाने का आग्रह किया। गुणाढ्य की बृहत्कथा के आधार पर "कथा सरित्सागर" में

लिखा है कि मायासुर की कन्या के पास ऐसी पुतलियां थी जो बोलती, नाचती, उड़ती तथा अन्य विविध कार्य कर सकती थी। इन कठपुतलियों के खेल के अनुकरण पर नाटकों का उदय हुआ। सूत्रधार और स्थापक शब्दों का प्रयोग भी यह सिद्ध करता है कि नाटकों का विकास कठपुतलियों से हुआ है। कठपुतलियां निर्देशक के हाथ में बंधे ताना सूत्रों के इंगित पर अभिनय करती हैं। उन्हें सचालन करने वाला ही सूत्रधार है। इसी परम्परा के अनुसार जब पुतलियों के स्थान पर जीवित पुरुषों को नाटक में अभिनय करना पड़ा, तो प्रबन्धक का नाम सूत्रधार चला आया।

डा० पिशल के मत की आलोचना करते हुए डा० सत्येन्द्र लिखते हैं, "कठपुतलियों का नाच नाटक की नकल है, पर उससे नाटक का उदय नहीं हो सकता। 'सूत्रधार' शब्द भी पिशल महोदय की विशेष सहायता नहीं कर सकता। सूत्र शब्द के संस्कृत में कई अर्थ हैं। पाणिनि के सूत्र प्रसिद्ध ही हैं। सूत्रधार वह व्यक्ति है जो नाटक का सूत्र धारण करे, नाटक का प्रारम्भ जिसके सहारे हो, और जिसके हाथ में नाटक के समस्त सूत्र अथवा प्रबन्ध हो। इस शब्द से कठपुतलियों तक पहुंचने की आवश्यकता सिद्ध नहीं होती।'[1] यह मत सम्भव है बड़े नाटकों के विषय में ठीक हो, पर एकांकी की दृष्टि से अनुचित है। आधुनिक एकांकी के सभी मूल-तत्व सूक्ष्मरूप में कठपुतलियों के अभिनयों में मिल जाते हैं। यह एक छोटा सा नाटक (एकांकी) ही है। आरम्भ में सूत्रधार के रूप में ढोलक बजाने वाला अभिनय की सूचना देता है और मेहतर आकर रंगमंच की सफाई करता है। भिश्ती पानी छिड़कता है, चोबदार आने वाले अभिनेताओं को उनके निर्दिष्ट स्थान पर बैठाने का क्रम निश्चित करता है। तदनुसार तीसमारखां, आगरे के नवाब, लखनऊ के नवाब आसिफुद्दौला, वजीर वीरबल, राजा मानसिंह, बीकानेर नरेश, रामसिंह, अमरसिंह, बादशाह अकबर, मरोड़खां, आगरे की मुन्नाजान, चक्करवाले पठान, घोड़ा हाथी ऊंट लक्कड़नाथ और सांप, धोबी और मदारी का अभिनय करने वाली कठपुतलियां आकर विभिन्न अभिनय करती हैं। अमरसिंह का नवाबों से युद्ध होना है। सब नवाब मारे जाते हैं और शाहंशाह अकबर भाग जाते हैं। इन अभिनयों में राजपूतों के शौर्य तथा छोटे-छोटे मतभेदों पर युद्ध करने की दुष्प्रवृत्ति का चित्रण होता है। प्रसंगानुसार पात्र परिचय तथा कथासूत्र का निर्देश भी होता है जैसे —

"पुर नरेश राजा मानसिंह मौज तुम्हारी मानसिंह, दर्याव दहले सेक टरे नगर ... और ... नरनाह, पोता भगवान दास का, तेरी बड़खड़े भाले। इसका संवाद भी विशुद्ध एकांकी नाटकों जैसा है, जैसे —

अमरसिंह—"अमर की कमर में काहे की कटारी ?
जोधपुर गढ़नाई बीकानेर सरवाई,

---

१. डा० सत्येन्द्र, "भारत में नाटकों का विकास," सा० सन्देश, भाग ६, अंक १०, पृष्ठ ७४४।

कतरा अमराव दुख दे गई,
अमरसिंह कटारी रंग ले गई।"
बीरवल—"अटक चटक से लगी लिए हटकनहार।
रंगराव हंस खेलिया, गिया बीरवल साथ।
गोकुल से गंगा वही, पीछे खड़या वजीर।
सोण्या सब दरबार की लेग्या बीरवल वजीर ॥"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि एकांकी के विकास मे कठपुतलियो के अभिनयो ने भी योग दिया है। इनके अभिनय में एक साधारण से रंगमच की व्यवस्था रही तथा इनका प्रचार लोक-जीवन मे व्यापकता से हुआ। लोक गाथाए तथा जनप्रिय वीरो की शौर्य गाथाए इनका कथानक वनी। हास्य की पुट के लिए व्यग्य विनोद पूर्ण कार्यो,कथोपकथनो और विद्रूपो की झाकिया दी गई। इनके सहयोग से नाटक में पार्श्व सगीत की व्यवस्था विकसित हुई और कलात्मक शैली के सवाद तैयार किए गए। साकेतिकता का समावेश हुआ। पर्दे, रुपसज्जा, मुखमुद्रा एव इगित आदि नाटकीय तत्व ऊचे उठे तथा यह अभिनय लोकजीवन की हृदयतन्त्री के तारो को झकृत करने लगा।

प्रो० लूडर्स का सिद्धान्त है कि सस्कृत नाटको के उदय मे छाया नाटको का विशेष स्थान है। महाभाष्य मे शौभिको का उल्लेख है। वहुत वाद मे कैयर ने शौभिको का अर्थ यह किया कि शौभिक वे व्यक्ति थे, जो दर्शको को या तो मूक अभिनयो का या छायाचित्रो को स्पष्ट करने का कार्य करते थे। छाया नाटको का प्रयोग आरम्भ में रामायण महाभारत आदि महाकाव्यो के पाठको को सचित्र दर्शनो के लिए हुआ और जव नटों की कला के साथ इनका सयोग हुआ, तो नाटको का जन्म हो गया।

उपर्युक्त भारतीय लोक नाट्य शैलियो में हमे हिन्दी एकाकी के पूर्वज उपलब्ध हो सकते हैं। सामान्यरूप से इन सभी में एक सक्षिप्त कथानक या घटना का विधान, कथोपकथन, रगमच, अभिनय, रगमंच निर्देशन आदि एकांकी नाटक के तत्व अविकसित रूप में मिल जाते है, यद्यपि इनमें संकलन त्रय, चरित्र चित्रण की सूक्ष्मता और उद्देश्य के प्रति सजगता नही है।

३. प्राचीन साहित्य में एकांकी

हिन्दी एकाकी के जन्म के विषय में अनेक भ्रान्तियां फैली हुई है। आलोचकों के भिन्न भिन्न मत हैं। अध्ययन की दृष्टि से हम इन्हें दो स्कूलो में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम स्कूल में हम सर्वश्री प्रो० अमरनाथ गुप्त, प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त तथा डा० एस० पी० खत्री आदि आलोचको को रख सकते हैं, जो एकांकी नाटक को पश्चिम से आई हुई नवीनतम वस्तु मानते है। प्रो० अमरनाथ गुप्त के अनुसार "एकाकी नाटक हिन्दी में सर्वथा नवीनतम कृति है। इसका जन्म हिन्दी साहित्य में अग्रेजी के

प्रभाव से कुछ ही वर्ष पूर्व हुआ है।"[१] डा० एस० पी खत्री लिखते हैं, "कुछ आलोचक एकाकी का उद्‌गम सस्कृत साहित्य मानते हैं, परन्तु एकाकी लेखन जब बीसवी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ तो स्पष्ट है कि उस पर अग्रेजी का प्रभाव है, न कि सस्कृत का।"[२] प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त का मत है "महासमर से कुछ वर्ष पूर्व जब अग्रेजी रगमच लगभग एक शताब्दी की गहरी निद्रा से आखें मल कर उठ रहा था तो एक नए ढग के छोटे नाटक का जन्म हुआ और शीघ्र ही वह लोकप्रिय हो गया।"[३]

दूसरे स्कूल के अतर्गत हम उन आलोचको को ले सकते हैं, जो डा० सरनाम सिंह शर्मा, प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल और प्रो० सदगुरुशरण अवस्थी के समान एकाकी नाटक का उद्‌गम सस्कृत नाट्य साहित्य मानते हैं।[४] यह मत सत्य है कि सस्कृत साहित्य में रगमच अभिनय तथा रूपक के भेदो उपभेदो की प्रशस्त परम्पराए मिलती हैं। हमारे यहा मानव जीवन का व्यापक अध्ययन कलात्मक अभिव्यजन और नाट्य विधान के अनेक रूप मिलते हैं। जहा एक ओर ग्यारह अको के वृहत्काय नाटक लिखे गये, वही विविध रूप और प्रकार (Types) के एकाकी और कही कही तो केवल तीन दृश्यो तक के लघु रूपक लिखने की परम्परा मिलती है।[५] यह भी सत्य है कि परिभाषा और उपभेद के रूप में अनेक प्रकार (Type) एकाकी नाटको जैसे हैं, परन्तु आधुनिक युग में जैसे एकाकी नाटक का निर्माण हो रहा है, ठीक वैसा ही पहले युग में भी होता था, यह नही कहा जा सकता। आधुनिक एकाकी के कुछ तत्त्व, जैसे बाह्य शिल्प (Form), परिभाषा या वैसा रूप आदि भले ही मिल जाय, पर पूर्व युगों की नाटक कला कुछ दूसरी ही थी। आधुनिक एकाकी नाटक की कला सर्वथा भिन्न है। अतः प्रो० शिवनाथ का यह मत सत्य है कि "वर्तमान युग के एकाकी नाटको का मूल भारत में प्राचीनकाल में ढूढना ठीक नही है।"[६]

---

१ प्रो० अमरनाथ गुप्त, "एकाकी नाटक" पृष्ठ १।

२ डा० एस० पी खत्री, "नाटक की परख", पृष्ठ २७७।

३ प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त "द एकाकी" भूमिका, पृष्ठ १।

४ (क) डा० सरनाम सिंह शर्मा "यह मानना नितान्त भ्रामक होगा कि हिन्दी एकाकी के सामने कोई भारतीय आदर्श ही न था।" "तपस्विनी", पृष्ठ १।

(ख) प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल, "नाटक, रूपक और उपरूपकों के जितने भेद प्रभेद हमारे यहा शास्त्रकारों से किए गए हैं उतने शायद ही किसी अन्य देश में प्राप्त हो सकें।"

(ग) [illegible] "यह न समझना चाहिये कि भारतवर्ष में एकाकी थे ही [illegible]।" "नाटक और नाट्य" पृष्ठ ४।

५ प्रो० ललिताप्रसाद [illegible] "भारतीय नाट्य परम्परा के मूल तत्व", हिन्दु० १८ [illegible]।

६ प्रो० शिवनाथ एम० ए० "वर्तमान युग और एकाकी नाटक," "हिन्दी नाटकों का विकास" पृ० ८३।

भारत के संस्कृत साहित्य में रंगमंच, अभिनय तथा रूपक उपरूपकों का प्रचुर प्रयोग रहा है। भारतीय नाट्यशास्त्र में उपरूपक के भेदों में से अनेक ऐसे हैं, जो एकांकी हैं। "दशरूपक" और "साहित्य दर्पण" में प्राचीन एकांकियों के अनेक लक्षण मिलते हैं, तथा संस्कृत नाटकों में इन प्रकारों (Types) के उदाहरण भी मिल जाते हैं।

विवाद तथा भ्रांति का एक कारण "अंक" शब्द का प्रयोग है। "अंक" का प्रयोग मनमाने ढंग से हुआ है। इसकी कोई निर्दिष्ट सीमा नहीं मिलती। अंक नाटक विभाजन का एक स्थान है। नाटककार कथानक के किसी भाग पर आकर अंक समाप्त कर सकता है। भरत के अनुसार "अंक" रूढ़ि शब्द है, अर्थात् उसकी उत्पत्ति उसे ज्ञात नहीं थी। "दशरूप" ग्रंथ के टीकाकार ने कहा है कि "अंक" शब्द का मूल अर्थ गर्भाशय है, जिसमें पात्रों के मानसिक भाव और अवस्थाएं व्यक्त होकर अलग अलग रूपों में आविष्करण होती हैं और संविधान का विकास होता है। उस विकास को "अंक" कहते हैं।[1] इस दृष्टि से एक अंक वाले संस्कृत नाट्य प्रकार (Types) इस प्रकार हैं :—व्यायोग, प्रहसन, भाण, वीथी, नाटिका, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रकाशिका, उल्लाप्य काव्य, प्रेंखण, श्रीगादित, विलासिका, प्रकरणिका और हल्लीश। "साहित्यदर्पण" के अनुसार इनके विस्तृत लक्षण इस प्रकार है।

१. व्यायोग : व्यायोग पूर्ण एकाकी का रूप है। इसमें एक ही अंक तथा एक दिन का घटना क्रम रहने से काल-संकलन का पूर्ण निर्वाह रहता है। अन्य लक्षण इस प्रकार हैं—

ख्यातेति वृत्तो व्यायोग. स्वल्पस्त्रीजन संयुत
हीनो गर्भविमर्शाभ्या नरैर्बहुभिराश्रित ("साहित्यदर्पण", पृष्ठ २९२)

व्यायोग का कथानक ऐतिहासिक या पौराणिक होता है। नायक धीरोद्धात राजर्षि अथवा कोई दिव्य पुरुष होता है। स्त्री पात्रों की न्यूनता रहती है, पुरुष पात्रों का बाहुल्य होता है। हास्य या शृंगार रस प्रधान नहीं होते। इसमें पात्र एक दूसरे को परास्त करते हैं। युद्ध या संघर्ष का कारण स्त्री के अतिरिक्त अन्य कोई होता है, जैसे व्यक्तिगत ईर्ष्या, दर्प, अभिमान या जातिगत उच्चता आदि। कौशिकी-वृत्ति, गर्भ और विमर्श दो संधियाँ वर्जित हैं। मुख्य पात्र के विषय में दो मत है। भरत-मुनि और विश्वनाथ के अनुसार नायक राजर्षि अथवा देव होता है, किन्तु दशरूपक-कार के अनुसार यह साधारण मनुष्य हो सकता है। नान्दी नेपथ्य के पीछे से पढ़ी जाती है। महाकवि भास के नाटकों में व्यायोग के कई रूप मिलते हैं। उनका "उरुभंग" इसका उदाहरण है। प्रह्लादावनदेव कृत "पार्थ पराक्रम" ११६३ ई० के आसपास रचित व्यायोग है, जिसमें अर्जुन कौरवों द्वारा अपहृत गायों को उन्हें पराजित कर प्राप्त करते हैं।[2] विश्वनाथ कृत "सौगन्धिकाहरण" वत्सराजकृत "किरातार्जुनीय" कंचन

१. श्री प्रभाकर माचवे "संस्कृत एकांकी के प्रकार" "संतुलन" पृष्ठ १४१।
२ कीथ "दी संस्कृत ड्रामा" पृष्ठ २६४।

पडित कृत "धनजय विजय" योशादित्य का "भीमविक्रमव्यायोग" तथा रामचन्द्र का "निर्भयभीम" आदि सस्कृत के सफल व्यायोग है। हिन्दी में भारतेन्दुजी के "धनजय विजय" व्यायोग का निर्माण उपरोक्त लक्षणो के अनुसार हुआ था।

२ भाण भाण लौकिक उत्पत्ति वाले एकाकी का प्रचलित रूप है। हिन्दी तथा अग्रेजी में आज भी इस प्रकार (Type) का प्रयोग हो रहा है, किन्तु सस्कृत में इनकी पुरानी परम्परा मिलती है। इसमें एक अक तथा एक पात्र होता है। यह पात्र कोई बुद्धिमान् विट होता है, जो अपने तथा दूसरे के धूर्ततापूर्ण कृत्यो को स्वय ही वार्तालाप के रूप मे रगमच पर अपने ही अभिनय से प्रकट करता है। वार्तालाप किसी कल्पित व्यक्ति के साथ होता है। रगमच पर आ कर नायक आकाश की ओर देखता हुआ सुनने का अभिनय करके कल्पित पुरुषो की उक्तियो को स्वय दुहराता है। भारती वृत्ति का आश्रय लिया जाता है, कही कही कौशिकी वृत्ति का भी प्रयोग होता है। लास्य के दस अग इनमें व्यवहृत हो सकते है। १५०० ई० के लगभग वामनभट्ट बाण कृत "श्रृगार भूषण" एक उल्लेखनीय भाण है। इसका मुख्य पात्र विलास शेखर बसन्त के मेले पर मदनमजरी से मिलने निकलता है तथा काल्पनिक प्रश्नोत्तर में सलग्न हो जाता है। मेले के नाना दृश्यो का वर्णन करता है।[1] रामभद्र दीक्षितकृत "श्रृगार तिलक", वररुचि कृत "शृद्गातिलक", केरल प्रदेश में कोटिलगा के एक युवराज कृत "रसासदा", वरदाचार्य कृत "कार्पूर चरित" और "लीलामधुकर" उल्लेखनीय भाण है।

३ प्रहसन प्रहसन हास्य व्यग प्रधान एकाकी है। इसमें आरभटी वृत्ति प्रधान रहती है। विष्कभक का प्रयोग नही होता। वीथी के तेरह अगो में से सभी इसमें आ सकते है। शुद्ध प्रहसन मे पाखडी, सन्यासी अथवा पुरोहित नायक की योजना होती है। इसमें चेट चेटी, विट आदि नीच पात्र भी आते हैं। मुख्य पात्र हसाने वाले वस्त्र पहनकर या अजीब प्रकार से बोलकर हास्य की सृष्टि करता है। अत इसमें हास्यपूर्ण उक्तियो का बाहुल्य होता है। विकृत प्रहसन में नपुसक, कचुकी और तपस्वी लोग कामुको के वेश में तथा उन्ही की सी बातें करते दिखाये जाते है। सकीर्ण प्रहसन में हसी दिल्लगी की बहुत अधिकता रहती है, नायक धूर्त होता है। प्रपच, छल, स्पर्धायुक्त बातें, परिहास कथा, बे सिर-पैर की बातें, हसी का व्यवहार, गुण को अवगुण और अवगुण को गुण बताना आदि का व्यवहार अधिकता से किया जाता है।[2] प्रहसन अपने लम्बे रूपो में भी मिलते है, किन्तु प्राय लघु एकाकी के रूप में ही इस प्रकार को लोकप्रियता मिली है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार प्रहसन में सिर्फ एक अक होना चाहिए और विष्कभक और प्रवेशक नही होने चाहिये। सस्कृत नाट्य साहित्य में प्रहसन पर्याप्त

१ कीथ "दी संस्कृत ड्रामा", पृष्ठ २६३।
२ डा० श्यामसुन्दर दास "रूपक रहस्य", पृष्ठ १७१।

लोकप्रिय रहा है। "कन्दर्पकेलि" शुद्ध प्रहसन तथा "धूर्त्त चरित्र" और "लटकमेलक" संकीर्ण प्रहसन के उदाहरण हैं।[1] बारहवीं शताब्दि के आरम्भ मे शकवारा कविराज-कृत "लताकामलेखा" प्रहसन के प्रारम्भिक रूप का उदाहरण है। इस प्रहसन का कार्य-कलाप विशेष उल्लेखनीय है। घन्तूरा नामक मध्यस्थ के घर पर प्रेमी प्रेमिका मिलते हैं। एक डाक्टर के कार्यो से हास्य की उत्पत्ति की गई है, जो प्रेमिका के गले में अटकी हुई एक मछली की हड्डी निकालने आता है। वह चिकित्सा नहीं जानता, किन्तु उसके हास्यपूर्ण कार्यो से नायिका को इतनी हसी आती है कि हसने से हड्डी स्वय निकल जाती है। तत्पश्चात् हम ज्योतिरिचन्द्र कृत "धूर्त समागम" को ले सकते हैं। इसी प्रकार सस्कृत में जगदीश्वरकृत "हास्योर्नावा", बगाल मे दुर्गापूजा के अवसर पर गोपीनाथ चक्रवर्तीकृत "कौटूयू का सर्वस्व" आदि उल्लेखनीय है। अतिम प्रहसन का हास्य शिष्ट है। १७ वी शताब्दि में साम्राज् दीक्षित कृत "धूर्त्तनाटिका," लक्ष्मण मानिवयदेवकृत "कौटूयूकारनाटनाकारा" और वत्सराजकृत "हास्यचूड़ामणि" उल्लेख-नीय प्रहसन हैं।[2]

४. वीथी : भाण की तरह का एक अकीय नाटक है। कोई उत्तम या मध्यम पुरुष उसका नायक होता है। पात्र एक या दो ही होते हैं। आकाश भाषित द्वारा उक्ति प्रत्युक्ति होती है। शृगार रस का बाहुल्य होता है और इसी कारण सभवत कौशिकी वृत्ति की प्रधानता रहती है। इसमे मुख और निर्वहण सधिया तथा पाचो अर्थ प्रकृतिया होती है और वीथ्यागो का भी समावेश होता है। "मालविका" इस प्रकार का एक उदाहरण है।

५. नाटिका : इनका कथानक कवि कल्पित और वृत्ति कौशिकी है। सधियो में से विमर्श का उपयोग इसमे नही होता है। मुख्य रस शृगार है। नायक पौराणिक राजा और नायिका अत पुर वासिनी, नृत्यगीत प्रिय राजकन्या होती है। इसमे एक से अधिक अक भी हो सकते है। नाम मुख्यत नायिका के नाम पर होता है। जैसे "रत्नावली"[3]।

६. गोष्ठी : इसमें साधारण स्थिति या मध्यम वर्ग के नौ दस पात्र और पाच छ स्त्रिया होती हैं। कौशिकी वृत्ति की प्रधानता होती है और सधियो मे से गर्भ और विमर्श त्याज्य होते हैं। "रैवत मदनिका" इसका उदाहरण है।

७. सट्टक : इसकी सम्पूर्ण रचना प्राकृत में होती है। इसमें प्रवेशक और विष्कम्भक नही होते और अद्भुत रस की प्रचुरता रहती है। इसमें एक विशेषता यह है कि "अक" को अक न कह कर जवनिकान्तर कहते है। राजशेखर कृत "कर्पूर-मंजरी" सफल सट्टक है।

---

१. श्री प्रभाकर माचवे "सस्कृत एकांकी के प्रकार", पृष्ठ १४२।
२. कीथ, "प्रहसन और भाण" संस्कृत ड्रामा, पृष्ठ २६३।
३. श्री प्रभाकर माचवे "सस्कृत एकांकी के प्रकार" पृष्ठ १४३।

८ नाट्य रासक : इसमें नायक उदात्त और उपनायक पीठमर्द होता है। यह हास्य रस प्रधान एकाकी है, पर गौण रूप से शृंगार का भी प्रवेश रहता है। नायिका वासकसज्जा, मुख तथा निर्वहण सधिया तथा लास्य के दसो अगो की योजना होती है। कोई कोई इसमें प्रतिमुख सधि को छोडकर शेष चारो सधियो का होना मानते हैं, परन्तु यह दो सधियो का भी मिलता है। जैसे "विलासवती" चार सधियो और "नर्मवती" दो सधियो के नाट्य रासक हैं।

९ उल्लाप्य . इसमें एक अक, दिव्य कथा, धीरोदात्त नायक, चार नायिकाएं तथा शृंगार, हास्य और करुण रस होते हैं। इसमें युद्ध और अग्रगीतो का प्रचुर उपयोग होता है। कथानक सम्बन्धी सवाद पर्दे के पीछे होते हैं, जैसे, "देवी महादेव।"

१० काव्य : यह हास्य-रस प्रधान एकाकी है, जिसमें आरभटी वृत्ति नही होती, पर गीतो का बाहुल्य होता है, नायक और नायिका दोनो उदात्त रहते है और मुख, प्रतिमुख तथा निर्वहण सधिया होती हैं। अवलोक टीका के अनुसार यह पहले मूल नृत्य था। काव्य उसी का विकसित रूप है, जैसे "यादवोदय।"

११ प्रेक्षण इसमें गर्भ और विमर्श सधिया नही होती, नायक ही पुरुष होता है। इसमें सूत्रधार नही होता और विष्कभक तथा प्रवेशक भी नही होते। नादी और प्ररोचना नेपथ्य से पढी जाती है। युद्ध और सफेट तथा सब वृत्तिया होती है। जैसे, "वालिवध।"

१२ श्रीगदित : इसमे एक अक, प्रसिद्ध कथा तथा धीरोदात्त नायक होता है। गर्भ और विमर्श सधिया इसमें नही होती, पर भारतीवृत्ति का आधिक्य होता है। एक पाश्चात्य विद्वान् का मत है कि इसमें नायिका लक्ष्मी का रूप धारण करके आती है और कुछ गाना गाती और बोलती है। इसी से इसका नाम श्रीगदित पड़ा। श्री प्रभाकर माचवे का विचार है कि इसमें "श्री" शब्द बार बार आता है। इसी लिए इसे श्रीगदित कहते हैं। "क्रीडा रसातल" और "सुभद्राहरण" इस प्रकार के एकाकियो के उदाहरण हैं।

१३ विलासिका : इसमें एक अक होता है, जिसमें दस लास्यागो का विनियोग तथा विदूषक, विट, पीठमर्द आदि का व्यापार होता है, गर्भ और विमर्श सधिया इसमें नहीं होती। इसका नायक हीन गुण वाला होता है, पर वेशभूषा मे अच्छी तरह सज्जित रहता है। इसका कथानक सक्षिप्त किन्तु दिखावा या ठाठ बहुत होता है। कुछ लोग इस प्रकार के एकाकी को "लासिका" कहते हैं और कोई "दुर्मल्लिका"। इस प्रकार का कोई उदाहरण उपलब्ध नही है।

१४ प्रकरणिका : इसमें नायक व्यापारी होता है। नायिका उसकी अपनी सजातीया होती है। शेष बातें "प्रकरण" के समान होती है। यह नाटिका का ही एक [illegible] है।

१५ हल्लीश : इस एकाकी में ७, ८ या १० तक नारी पात्र रहते है और

उदात्त वचन वोलने वाला एक पु प रहता है। इसमें कौशिकी वृत्ति तथा मुख और निर्वहण सधिया होती है एवं गान, ताल, लय की अधिकता होती है। इसका एक उदाहरण 'केलिरैवतक'' है।

१६. भाणिका यह भाण की जोड का उपरूपक है, जिसने एक ही अक का विधान है, इसका नायक मदमति नायिका उदात्त और प्रगल्भा होती है। इनमे मुख और निर्वहण सधिया एव भारती और कौशिकी वृत्तिया होती है। भाण के समान इस मे प्रसग-प्रसग पर कार्य का कीर्तन करना, निर्वेद सूचक वाक्य समझाना, मिथ्या कथन, उपालभ, दृष्टान्त का कीर्तन करना तथा कार्य की समाप्ति आदि होते हैं। उदाहरणार्थ "कामदत्ता"।[1]

१७. अंक यह करुण-रस प्रधान एकाकी होता है, जिसमे स्त्रियो के विलाप से वातावरण एव रस सृष्टि की जाती है। इसमें साधारण पुरुष प्रमुख पात्र का कार्य करता है। कथानक लोक प्रसिद्ध होता है, किन्तु नाट्यकार अपनी निपुणता द्वारा कथानक का विस्तार कर लेता है। कथानक का मूल तात्पर्य हार अथवा जीत का चित्रण होता है। दो परस्पर विरोधी शक्तियो मे युद्ध घात प्रतिघात या प्रहारमय नही, प्रत्युत वाणी का होता है। इसमे जिस भाषा का प्रयोग होता है, उससे वैराग्य की भावना प्रकट होती है। वृत्ति भारतीय सधिमुख निर्वहण तथा दसो लास्यागो का अग नृत्य रहता है। प्राय वडे नाटक के अन्दर छोटे रूप मे अक के उदाहरण मिलते है।[2] "शर्मिष्ठायति'' उदाहरण है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे साहित्य में एकाकी नाटको की प्राचीन परम्परा है। संस्कृत एकाकियो की शिल्पविधि पर्याप्त जटिल थी और नाट्यकारो ने उपभेदो का अन्तर स्पष्ट किया था। आधुनिक हिन्दी एकाकी की सभी प्रचलित शैलिया थोडे से परिवर्तन के साथ इन्ही मे समा सकती है। पात्रो के चरित्र अभिनय प्रणाली, रस, कथानक, वृत्त, सधि और नृत्य आदि के आधार पर इनकी पृथक-पृथक मर्यादाए निर्धारित हो चुकी थीं। उदाहरण भी मिलते हैं। यद्यपि एकाकी की स्वतत्र सत्ता न थी, पर प्रयोगो की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है।

कुछ आलोचको का विचार है कि इसका कारण प्राचीन भारतीयो के पास समय की बहुलता थी। जब उनके पास वडे नाटक लिखने तथा जनता के पास अनेकाको देखने के लिए पर्याप्त अवकाश था, तो वे क्यों छोटे-छोटे एकाकी लिखते ?''[3]

यह दृष्टिकोण सही नहीं प्रतीत होता, क्योंकि हम देखते है कि साहित्य के वडे माध्यमो, जैसे महाकाव्य, उपन्यास, नाटक आदि के साथ-साथ छोटे-छोटे माध्यम भी

१ देखिये डा० श्यामसुन्दर दास कृत "रूपक और उपरूपक", "रूपक रहस्य", पृष्ठ १७४-१७६।

२. कीथ : "दी संस्कृत ड्रामा" पृ० २६७।

३. डा० सत्येन्द्र(?) शर्मा "तपस्विनी" भूमिका।

निरन्तर विकसित होते चलते है। सभी साहित्यकार बडे माध्यमो को ग्रहण नही करते। सभवत इसका कारण यह है कि तत्कालीन जनता एकाकियो से विशेष प्रभावित न हो सकी। उनकी समस्याओ का निदान एकाकी में न मिला। एकाकी प्रयोगो के रूप में ही रह गया कदाचित सस्कृत भाषा की क्लिष्टता इसके मार्ग में बाधक हो रही हो, या एकाकी का जीवन से सम्बन्ध विच्छेद हो गया हो। वह युग एकाकियो की स्वतत्र उपयोगिता को न समझ पाया और एकाकी बडे नाटक के अन्तर्गत अक के आकार प्रकार और सगठन मे तद्रूप होने के कारण स्वतत्र अस्तित्व स्थापित न कर सका। नाटक पनपते रहे, एकाकियो की ओर नाट्यकारो की दृष्टि कम रही। साधारण रूप में नाट्यकारो ने पुरानी परिपाटी पर ही नाटक लिखे। नवीन भेदो में एकाकी को प्रोत्साहित करने के लिए ही कदाचित इनका प्रचलन हुआ।

सस्कृत नाटकीय परम्परा का हिन्दी एकाकी पर यथेष्ट प्रभाव पडा है। सस्कृत मे प्रयुक्त वाग्विदग्ध सवादो की परम्परा भारतेन्दु युग तक चली आई। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने प्राचीन सस्कृत और प्राकृत नाटको के हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किये, साथ ही सस्कृत प्रणाली के रूपक उपरूपको के अनेक भेद प्रस्तुत किये। इनमे कई एक एकाकी भी थे। आधुनिक एकाकी का रूप आज कुछ परिवर्तित अवश्य हो गया है, किन्तु यह कहना भ्रामक है कि भारत मे एकाकी नाटक थे ही नही।[1] प्राचीन नाट्य साहित्य में उनके नाम रूप और उदाहरण बराबर मिलते है। कुछ आलोचको की तो यहा तक धारणा है कि उपरूपको की सख्या सर्वांगपूर्ण नाटको की अपेक्षा अधिक रही है।[2]

४ हिन्दी साहित्य मे एकाकी के तत्वो का विकास

एकाकी की शैली के महत्वपूर्ण अग कथोपकथन का विकास विलम्ब मे हुआ है। बडे नाटको के लिए जहा काव्य की उच्च भाव-भूमि की आवश्यकता होती है, वहा एकाकी के लिए सशक्त गद्य की आवश्यकता भी पडती है। हिन्दी मे गद्य का विकास देर से हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पूर्व हिन्दी भाषा अपने नौ सौ वर्ष समाप्त कर चुकी थी किन्तु उसमे सामर्थ्यवान गद्य का अभाव था। सभ्यताओ की प्रतियोगिता, भारतीय सस्कृति की रक्षा, राजनीति के दावपेच तथा आन्तरिक सघर्षो के कारण हिन्दी में

---

[1] डा० एस० पी० खत्री लिखते है, "एकाकी अग्रेजी साहित्य की देन है" एकाकी 'नाटक की परख' पृ० १७७।

[2] प्रो० सत्येन्द्र गुप्त एम० ए० का यह कथन, "एकाकी नाटक का पश्चिम के [illegible] हुआ।" "द एकाकी" भूमिका, पृ० ८।

[illegible] गुप्त के ये शब्द माननीय है, "यह कहना गलत है कि प्राचीन- [illegible] अधिक लिखे जाते थे। [illegible] सिद्ध कर देगा कि सर्वांगपूर्ण नाटक उप- [illegible]।" "भारतीय नाट्य परम्परा" "हिन्दुस्तान" १८ जु० ५८।

और काव्य का प्राचुर्य रहा। अत रामलीला, रासलीला, भगत, स्वाग आदि लघु नाटको मे भी कथोपकथन प्राय. काव्यमय ही रहा है।

किसी गम्भीर विषय को जब कभी किसी सुन्दर एव सरस रीति से अभिव्यक्त किया जाता है, तो वह कथोपकथन की शैली मे ही होता है। भारत के प्राचीन साहित्य मे इस शैली का प्रचुर उपयोग हुआ है। उपनिषदो की तो एक मात्र शैली ही यही है। पुराणो मे सवादो की शैली को ही अपनाया गया है। गीता भी भगवान् श्री कृष्ण एव अर्जुन की कथोपकथन शैली मे ही विरचित है। अफलातून और सुकरात ने परस्पर बात-चीत के रूप मे जीवन और समाज की नाना समस्याओ पर विचार किया है। एकाकी की आत्मा, यह कथोपकथन शैली, ही एक शैली है, जिसमे गूढ़ गभीर विचार और दर्शन भी सरल, सरस एव सुरुचिपूर्ण रूप मे अभिव्यक्त किया जा सकता है। वाद-विवाद, वार्तालाप, या कथोपकथन मानवीय जीवन का एक सामाजिक अग है। इस शैली में मूल समस्या पर विभिन्न दृष्टियो से पूरी स्वाभाविकता से विचार हो जाता है। पात्र जो बातचीत करते है, उनसे उनके चरित्र पर प्रकाश पडता है। नाटयकार को स्वय अपनी ओर से टीका टिप्पणी करने का अवसर प्राप्त न होने से कृत्रिमता नहीं आती है।

प्रारम्भिक हिन्दी नाटको के कथोपकथनो की भाषा काव्यमय रही है। सामर्थ्य-वान गद्य के अभाव में काव्यमय बातचीत का ही मुख्यत प्रयोग किया गया है। अनेक कवियो ने कथोपकथन की शैली को अपने महाकाव्यों मे प्रयुक्त किया है। तुलसी के "रामचरितमानस" में भी नाटकीय पद्धति के सवादो का प्रयोग है। मानस का वस्तु विन्यास परम्परागत न होकर सवादो की विलक्षणता में भी अभूतपूर्व था। याज्ञवल्क्य तथा भारद्वाज, शकर तथा पार्वती, कागभुशुडि तथा गरुड के सवादो के विभिन्न सूत्रो का एक ही स्थान पर सामंजस्य और कलात्मक समन्वय केवल तुलसी ही कर सके[1]। निज प्रतिभा के स्पर्श से उन्होने नवीनता तथा सजीवता का समावेश किया है। गोस्वामी जी भक्ति का प्रतिपादन कथोपकथन के रूप में इसलिए करना चाहते थे जिसमे विरोधी पक्ष का भी निरूपण रहे। विरोधी व्यक्ति के समस्त तर्को को प्रकट कर उनका उत्तर-पक्ष प्रस्तुत कर वे भक्ति का व्यापक प्रसार कर सकते थे। दोनो पक्षो के तर्को का निरू-पण संवादों में अच्छा हो सकता है। तुलसी ने सवादो को अधिक महत्व इसलिए प्रदान किया है कि हम पूर्व पक्ष की निर्बलता से अवगत हो जाय। निर्गुण संतो के तर्कों की उपेक्षा कर उन्होने रामभक्ति के राजमार्ग के प्रतिपादन के लिए मानस में संवादों का विधान किया है। प्रत्येक संवाद में ज्ञान अथवा कर्मकांड का विवेचन न होकर भक्ति का निदर्शन हुआ है।

---

१. अयोध्याकांड में उस स्थान पर जहां चित्रकूट में अयोध्या लौटने के लिए राम और भरत का सवाद चल रहा था, जब राम के अन्तिम उत्तर का अवसर आया तुलसी कितनी सुन्दरता से लिखते है, "जनक दूत तेहि अवसर आया" पाठकों के मुख से इस प्रयोग के लिए 'नाटकीय' शब्द निकले बिना नहीं रह सकता। सेठ गोविन्ददास "नाट्यकला मीमांसा" पृ० ३५।

केशवदास की "रामचन्द्रिका" सवाद के विकास को स्पष्ट करती है। दरबारी कवि होने के कारण केशव को कूटनीति, व्यग्य, राजनीतिपूर्ण, वाकपटुता दरबार मे वार्तालाप के ढग आदि का वैयक्तिक अनुभव था। अपने काव्य में उन्होने कथोपकथन की नाटकीय पद्धति का उपयोग किया है और इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त भी हुई है। ये सवाद उनकी "रामचन्द्रिका" के विशेष आकर्षण हैं। बोलने वालो के नाम भी दे दिये गये है। इनका उपयोग प्रबध-काव्य के भावपूर्ण स्थलो पर इस प्रकार किया गया है, मानो किसी नाटक का एक दृश्य हो, जिसमें अनेक पात्र बैठे हो और अभिनय के साथ कथोपकथन चल रहा हो। इनमें सजीवता, वाक्पटुता, दरबारी भद्रता, चरित्र-चित्रण की बारीकी और पात्रो की स्वभावगत विशेषताए प्रकट होती है।

"रामचन्द्रिका" मे निम्नलिखित सवादो का समावेश किया गया है — १ दशरथ विश्वामित्र २ वशिष्ठ दशरथ ३ रावण बाणासुर ४ जनक विश्वामित्र और राम सवाद ५ राम परशुराम ६ परशुराम वामदेव ७ राम कौशल्या ८ सूर्पणखा राम लक्ष्मण सवाद ९ राम हनुमान १० रावण अगद ११ सीता रावण १२ लवकुश शत्रुघ्न १३ विभीषण और अगदादि के सवाद। प्राय उन्ही प्रसगो में इनका उपयोग हुआ है, जहा व्यग्य अथवा कूटनीति की आवश्यकता पडी है। पात्रो की चरित्रगत विशेषताओ तथा नाना परिस्थितियो को चित्रित करने का पूर्णत ध्यान रखा गया है। युद्धस्थल पर भी प्रसगानुकूल शाब्दिक सघर्ष की योजना से सम्पूर्ण काव्य नाटकीय तत्वो से युक्त हो गया है। सजीव फडकती भाषा, पात्रों के मनोभावो तथा वय के अनुकूल क्रोध, उत्साह, श्रद्धा, सकोच, मर्यादा, दरबारी शिष्टाचार को व्यक्त किया गया है। प्रसिद्ध सवादो में अगद-रावण सवाद है, जिसमें राजसभा के सम्पूर्ण नियमो, राजनीतिज्ञता और वाग्वैदग्ध्य का ध्यान रखा गया है। केशव का अगद यह विस्मृत नही करता कि वह दूत कर्म कर रहा है।

केशव के सवादो में तुलसी की अपेक्षा नाटकीयता अधिक है। पात्रो के नाम भी दे दिये गये हैं, जिनके हास्य, व्यग्य और आवेग प्रत्येक शब्द से प्रकट होते है। यह अशत ऐसे प्रतीत होते है, मानो लघु रूपक हो, जिनमें दो पात्र एक दूसरे के सन्मुख खडे हुए परस्पर वार्तालाप कर रहे हो। राम परशुराम वाले सवाद में राम के चरित्र की गभीरता, वृद्धजनो के प्रति श्रद्धा, सकोच तथा सयत भाषा का प्रयोग है। क्रोध का दोनो ओर से सफल विकास दिखाया गया है पर राम को मर्यादा का ध्यान है। परशुराम वामदेव सवाद व्यग्यपूर्ण तथा चमत्कार से पूर्ण है। अगद रावण का सवाद चरित्र चित्रण की सच्चाई और शिष्टाचार की दृष्टियो से सफल है। अगद रावण जैसे प्रतापी राजा के दरबार में मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखता है, दूसरी ओर रावण कूटनीति और तर्क से उस को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न करता है। "रामचन्द्रिका" में सवाद नाटकीय [illegible] दिखाई पड़ता है। केशव की "विज्ञान गीता" पर भी नाटकीयता का प्रभाव है। [illegible] में 'मानस" के सवादो का तर्क, "रामचन्द्रिका" की वाक्

पटुता, "रामायण महानाटक" एव "हनुमन्नाटक" की भाषा की सरसता आदि ने हिन्दी साहित्य में सवाद-कला पर प्रचुर प्रभाव डाला है।[1]

हिन्दी मे एकाकी के विभिन्न तत्वो, जैसे कथोपकथन रगमच, अभिनय आदि का क्रमिक विकास धीरे-धीरे होता गया है। सस्कृत से नाटकीय शिल्प, हिन्दी कवियों से कथोपकथन और समाज में प्रचलित लोक नाटको से अभिनय और रगमंच लेकर हिन्दी एकाकी ने विकास किया है। हमारे प्रारम्भिक एकाकी गीतिनाट्यो के रूप में अधिक रहे हैं। इस शैली का एक उल्लेखनीय उदाहरण सन् १८५० से ६० के समीप मिलता है। यह मुन्शी अमानतखा का फ्रांसीसी ओपेरा शैली पर लिखित "इन्द्रसभा" नाटक है, जिसमें दो-तिहाई से अधिक भाग गीतो से परिपूर्ण है, केवल एक तिहाई भाग मे कथोपकथन है। वह भी दोहे और गजलो में है। इस शैली पर और भी गीतिनाट्य लिखे गये, जैसे, "बन्दर सभा", "मुछन्दर सभा" इत्यादि, । प्रारभ से ही गीति एकाकियो की यह परम्परा भावुकताप्रधान (Sentimental) रही और इस शैली ने जो परम्परा छोडी वह अस्वाभाविक, अतिरजित और क्षीण रही। भारतीय रगमच पारसी व्यापारिक नाट्य कम्पनियो के हाथो मे चला गया। उन्होने सामाजिक सगीतमय हिन्दी उर्दू मिश्रित भाषा के रगमच नाटक और अनुवादो के अभिनय किये। पारसी कम्पनिया प्राय घूम-घूम कर इन नाटको का प्रचार करती थी। अतः वे ही लोकप्रिय हो गये।[2]

२. आधुनिक एकांकी का रचना-शिल्प (Technique)

आधुनिक हिन्दी एकाकी नाटको की टेकनीक पर्याप्त समुन्नत हो चुकी है। उसके सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित है। आलोचको एव कलाकारो ने अपनी-अपनी रुचियो के अनुसार परिभाषायें निर्धारित करने तथा तत्व-विवेचन के प्रयत्न किए हैं। अनेक मूल तत्वो के सम्बन्ध मे मत स्थिर हो चुके है, कुछ पर मत वैभिन्य है और नवीन प्रयोग चल रहे हैं। कुछ के विषय में विवाद हुए है तथा उनका समाधान भी किया गया है। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी एकाकी के तत्वो के विकास की ओर एकाकीकारो का ध्यान है।

इन मतो को हम दो भागो में विभाजित कर सकते है। १ एकाकी नाटककारो द्वारा प्रयुक्त और अनुभूत मत २ आलोचको द्वारा स्थापित मत। प्रथम वर्ग में हम सर्वश्री सद्गुरुशरण अवस्थी, सेठगोविन्द दास, उपेन्द्रनाथ अश्क, और डा० रामकुमार वर्मा को तथा द्वितीय वर्ग में डा० सत्येन्द्र, प्रो० अमरनाथ गुप्त, डा० एस० पी० खत्री और डा० नगेन्द्र आदि को रख सकते है।

---

१ डा० सोमनाथ गुप्त, "हिन्दी नाटक सा० का इति०" पृ० ११।

२. डा० मुल्कराज आनन्द, "बिहार थियेटर" सख्या ३ पृ० १०।

केशवदास की "रामचन्द्रिका" सवाद के विकास को स्पष्ट करती है। दरबारी कवि होने के कारण केशव को कूटनीति, व्यग्य, राजनीतिपूर्ण, वाक्पटुता दरबार में बातचीत के ढग आदि का वैयक्तिक अनुभव था। अपने काव्य में उन्होंने कथोपकथन की नाटकीय पद्धति का उपयोग किया है और इसमे उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त भी हुई है। ये सवाद उनकी "रामचन्द्रिका" के विशेष आकर्षण है। बोलने वालों के नाम भी दे दिये गये है। इनका उपयोग प्रबध-काव्य के भावपूर्ण स्थलो पर इस प्रकार किया गया है, मानो किसी नाटक का एक दृश्य हो, जिसमे अनेक पात्र बैठे हो और अभिनय के साथ कथोपकथन चल रहा हो। इनमें सजीवता, वाक्पटुता, दरबारी भद्रता, चरित्र-चित्रण की बारीकी और पात्रों की स्वभावगत विशेषताए प्रकट होती हैं।

"रामचन्द्रिका" मे निम्नलिखित सवादो का समावेश किया गया है — १ दशरथ विश्वामित्र २ वशिष्ठ दशरथ ३ रावण बाणासुर ४ जनक विश्वामित्र और राम सवाद ५ राम परशुराम ६ परशुराम वामदेव ७ राम कौशल्या ८ सूर्पणखा रामलक्ष्मण सवाद ९ राम हनुमान १० रावण अगद ११ सीता रावण १२ लवकुश शत्रुघ्न १३ विभीषण और अगदादि के सवाद। प्राय उन्ही प्रसगो में इनका उपयोग हुआ है, जहा व्यग्य अथवा कूटनीति की आवश्यकता पडी है। पात्रो की चरित्रगत विशेषताओं तथा नाना परिस्थितियों को चित्रित करने का पूर्णत ध्यान रखा गया है। युद्धस्थल पर भी प्रसगानुकूल शाब्दिक सघर्ष की योजना से सम्पूर्ण काव्य नाटकीय तत्वों से युक्त हो गया है। सजीव फडकती भाषा, पात्रो के मनोभावो तथा वय के अनुकूल क्रोध, उत्साह, श्रद्धा, सकोच, मर्यादा, दरबारी शिष्टाचार को व्यक्त किया गया है। प्रसिद्ध सवादो में अगद-रावण सवाद है, जिसमें राजसभा के सम्पूर्ण नियमो, राजनीतिज्ञता और वाग्वैदग्ध्य का ध्यान रखा गया है। केशव का अगद यह विस्मृत नही करता कि वह दूत कर्म कर रहा है।

केशव के सवादो में तुलसी की अपेक्षा नाटकीयता अधिक है। पात्रो के नाम भी दे दिये गये है, जिनके हास्य, व्यग्य और आवेग प्रत्येक शब्द से प्रकट होते है। यह आरोपण ऐसे प्रतीत होते है, मानो लघु रूपक हो, जिनमें दो पात्र एक दूसरे के सन्मुख खड़े हुए परस्पर वार्तालाप कर रहे हों। राम परशुराम वाले सवाद में राम के चरित्र की गरिमा, वृद्धजनो के प्रति श्रद्धा, सकोच तथा सयत भाषा का प्रयोग है। क्रोध का दोनों ओर से क्रमिक विकास दिखाया गया है पर राम को मर्यादा का ध्यान है। परशुराम वामदेव सवाद व्यग्यपूर्ण तथा चमत्कार से पूर्ण है। अगद रावण का सवाद चरित्र [illegible] की गहराई और शिष्टाचार की दृष्टियों से सफल है। अगद रावण जैसे प्रतापी राजा के दरबार में मर्यादा का पूरा ध्यान रखता है, दूसरी ओर रावण कूटनीति और तर्क से [illegible] अपने पक्ष मे लाने का प्रयत्न करता है। "रामचन्द्रिका" में सवाद नाटकीय [illegible] दिखाई पड़ता है। केशव की "विज्ञान गीता" पर भी नाटकीयता का प्रभाव है। [illegible] में 'मानस' के सवादो का तर्क, "रामचन्द्रिका" की वाक्

'टुता, "रामायण महानाटक" एव "हनुमन्नाटक" की भाषा की सरसता आदि ने हिन्दी साहित्य में सवाद-कला पर प्रचुर प्रभाव डाला है।[1]

हिन्दी में एकाकी के विभिन्न तत्वो, जैसे कथोपकथन रगमंच, अभिनय आदि का क्रमिक विकास धीरे-धीरे होता गया है। सस्कृत से नाटकीय शिल्प, हिन्दी कवियो से कथोपकथन और समाज में प्रचलित लोक नाटको से अभिनय और रगमच लेकर हिन्दी एकाकी ने विकास किया है। हमारे प्रारम्भिक एकाकी गीतिनाट्यो के रूप में अधिक रहे हैं। इस शैली का एक उल्लेखनीय उदाहरण सन् १८५० से ६० के समीप मिलता है। यह मुन्शी अमानतखा का फ्रांसीसी ओपेरा शैली पर लिखित "इन्द्रसभा" नाटक है, जिसमे दो-तिहाई से अधिक भाग गीतो से परिपूर्ण है, केवल एक तिहाई भाग मे कथोपकथन है। वह भी दोहे और गजलो में है। इस शैली पर और भी गीतिनाट्य लिखे गये, जैसे, "बन्दर सभा", "मुछन्दर सभा" इत्यादि, । प्रारभ से ही गीति एकाकियो की यह परम्परा भावुकताप्रधान (Sentimental) रही और इस शैली ने जो परम्परा छोडी वह अस्वाभाविक, अतिरजित और क्षीण रही। भारतीय रगमच पारसी व्यापारिक नाट्य कम्पनियो के हाथो में चला गया। उन्होंने सामाजिक सगीतमय हिन्दी उर्दू मिश्रित भाषा के रगमच नाटक और अनुवादो के अभिनय किये। पारसी कम्पनिया प्राय घूम-घूम कर इन नाटको का प्रचार करती थी। अतः ये ही लोकप्रिय हो गये।[2]

५. आधुनिक एकांकी का रचना-शिल्प (Technique)

आधुनिक हिन्दी एकांकी नाटको की टेकनीक पर्याप्त समुन्नत हो चुकी है। उसके सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। आलोचकों एव कलाकारो ने अपनी-अपनी रुचियो के अनुसार परिभाषायें निर्धारित करने तथा तत्व-विवेचन के प्रयत्न किए हैं। अनेक मूल तत्वो के सम्बन्ध में मत स्थिर हो चुके है, कुछ पर मत वैभिन्य है और नवीन प्रयोग चल रहे हैं। कुछ के विषय में विवाद हुए है तथा उनका समाधान भी किया गया है। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी एकाकी के तत्वो के विकास की ओर एकाकीकारो का ध्यान है।

इन मतो को हम दो भागो में विभाजित कर सकते है। १. एकाकी नाटककारो द्वारा प्रयुक्त और अनुभूत मत २ आलोचको द्वारा स्थापित मत। प्रथम वर्ग में हम सर्वश्री सद्गुरुशरण अवस्थी, सेठगोविन्द दास, उपेन्द्रनाथ अश्क, और डा० रामकुमार वर्मा को तथा द्वितीय वर्ग में डा० सत्येन्द्र, प्रो० अमरनाथ गुप्त, डा० एस० पी० खत्री और डा० नगेन्द्र आदि को रख सकते हैं।

---

१ डा० सोमनाथ गुप्त, "हिन्दी नाटक सा० का इति०" पृ० ११।

२. डा० मुल्कराज आनन्द, "बिहार थियेटर" सख्या २ पृ० १०।

प्रथम वर्ग के कलाकारों ने नाना दृष्टिकोणों से अपनी परिभाषाएं स्थिर की हैं। जैसे प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी की परिभाषा आकार प्रकार सेठ गोविन्ददास की नविधान, डा० रामकुमार वर्मा की तन्त्र या टेक्नीक, श्री उपेन्द्रनाथ अश्क की रंगमञ्च को दृष्टि में रखकर लिखी गई हैं। सामान्य रूप से उनके मतों में अनेक तत्त्वों के विषय में साम्य है। किसी ने किसी तत्व पर जोर दिया है, तो दूसरे ने किसी दूसरे तत्व की प्रधानता मानी है।

प्रथम वर्ग का पहला मत प्रो० सदगुरुशरण अवस्थी का है। उन्होंने आकार प्रकार पर दृष्टि रख कर एकाकी में एक सुनिश्चित सुकल्पित लक्ष्य, एक ही घटना, परिस्थिति अथवा समस्या, वेग सम्पन्न प्रवाह और सब के निदर्शन में चातुरी को आवश्यक माना है।[1] वे एकांकियों में लम्बे-लम्बे कथोपकथन, दृश्यों की अतिशयता, विषयान्तरता, वर्णन बाहुल्य, तथा और चरित्रविकास के लम्बे प्रयोग या उलझी कल्पनाएं पसंद नहीं करते।[2] आकार के केन्द्रीगत प्रभाव और वैयक्तिक और स्थानिक विशेषताओं की ... एकांकी नाटकों को बड़े नाटकों की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर बना देती है। पुराने नाटकों के कथानकों की मुहावरेबाजी और गति, वाक्-चातुरी, दरबारी रसबुद्धि को स्थान पर तार्किक मौलिकता, निष्पक्ष समीक्षा और विषय प्रतिपादन की निष्ठा एकांकी में आवश्यक है।[3] अभिव्यंजना में भावुकता के स्थान पर मानसिकता पर अधिक बोझ पड़ना चाहिए। इस प्रकार से वास्तविकता की गाढ़ी धारा में कला की गति यदि आगे बढ़ेगी, तो एकाकी नाटक अच्छा होगा।[4] एकांकी का विषय कोई भी हो सकता है।[5] जीवन की वास्तविकता के एक स्फुलिंग को पकड़ कर एकांकीकार उसे ऐसा प्रभावपूर्ण बना देता है कि मानवता के समूचे भाव-जगत् को झनझना देने की शक्ति उसमें आ जाती है।[6] अवस्थी जी एकाकी को निजी सत्ता रखने वाला साहित्य का एक अंग, उसकी अपनी निजी आत्मा, और स्पष्टीकरण की निजी

---

१ देखिए प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी की परिभाषा, "नाटक और नायक" पृ० ६।

२ "एकांकी की परम्परा वाली मन को उबा देने वाली परिपाटी कभी भी अधिक काल तक ... नहीं कर सकी। ... नाटकों के लम्बे कथोपकथन, उनकी भारी अभिव्यंजना, दृश्यों की ... विषयान्तरता तथा वर्णन बाहुल्य कथा विकास तथा चरित्र विकास की लपेट में ... प्रयोग, कौतूहल ... के लिए उनकी कल्पनाएं, ये बातें युगों से सब को परेशान किए हैं। एकांकी में हम इनकी छांह भी देखना पसन्द नहीं करते।" वही, पृ० ६।

३ वही, "नाटक और नायक" पृ० ६।

४ वही, पृ० १०।

५ "... रानी की कहानी से लेकर जातक कथाएं, हितोपदेश, तथा "पंचतन्त्र की कहानियां", ... सभी कथाएं समझदारी से एकांकी में गूंथी जा सकती हैं।" वही, पृ० १०।

६ "... इने गिने पृष्ठों में वह जीवन का ज्वलन्त खंड उपस्थित कर देता है।" वही, पृ० १०।

शैली मानते हैं।[1] उसकी सार्थकता साहित्य के स्थायित्व पर अधिक और अभिनय अनुकूलता पर उतनी नहीं है।[2] उनकी दृष्टि में एकांकी-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता ऊंचो चिंतना का प्रवेश है।[3]

अवस्थी जी की परिभाषा तथा तत्वों में लक्ष्य की एकता को अनिवार्य माना गया है। आरम्भ से अन्त तक एकांकी एक लक्ष्य की सिद्धि में चलता रहना चाहिए। उसमें जो घटना चुनी जाय या जिस परिस्थिति अथवा समस्या का विश्लेषण हो एकांकी पूर्णरूप से उसी लक्ष्य की ओर वेग सम्पन्न प्रवाहित रहे। उसकी अभिव्यंजना में मितव्ययता रहे। उन्होंने अभिनयशीलता को गौण स्थान प्रदान कर ऊंची चिंतना और साहित्यिकता पर विशेष बल दिया है। स्वयं अवस्थी जी ने अपने एकांकियों में ऊंची चिंतना, दार्शनिकता और गंभीर तर्क वितर्क को प्रधानता दी है। प्राचीन वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक साहित्यिक कथानकों और नायकों को नई दृष्टि और नये युग की बुद्धि कसौटी पर परखा और प्राचीन रूढ़िवादी तथा परम्परावादी विचारधारा का खंडन किया है, किन्तु बुद्धिवादी दृष्टिकोण और ऊंची चिन्तना ने इनके एकांकियों को नीरस, तर्कपूर्ण, संवाद-बोझिल, लम्बे मानसिक ऊहापोह से परिपूर्ण, जटिल और शुष्क बना दिया है। आकार प्रकार की बाह्य-दृष्टि से एकांकी होते हुए भी इनके एकांकी दार्शनिक चिन्तना के भार से दबे हैं, प्रसादगुण शून्य, पढ़ने और उच्च कक्षाओं के विचार तथा अध्ययन मात्र की वस्तु रह गए हैं। रंगमंच पर इनका कोई जीवन नहीं है। अवस्थी जी ने अपनी परिभाषा में पात्रों के आन्तरिक संघर्ष, कथानक की कुतूहलता और एक प्रभावशीलता, और मनोरंजकता आदि तत्वों का उल्लेख नहीं किया है। वस्तुतः उनकी परिभाषा एकांगी और अपूर्ण है। यह पठनीय एकांकियों के विषय में आंशिक रूप से सत्य हो सकती है, पर रंगमंचीय एकांकियों, विशेषतः मनोरंजन प्रधान हल्के एकांकियों या प्रहसनों अथवा प्रचारात्मक दृष्टिकोण से विरचित एकांकियों के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है।

दूसरा मत सेठ गोविन्ददास का है। विषय की दृष्टि से सेठजी का मत अवस्थी जी से मिलता-जुलता है। सेठजी एकांकी में सर्वप्रथम किसी एक मूल विचार

---

१. "वह बलि को छलने वाला वामन अशुर का मनुष्य नहीं और न चक्र सुदर्शन सहित विष्णु का हाथ है। वह न किसी का लघु संस्करण है और न किसी का कटा कलेवर। वह अपनी निजी सत्ता रखने वाला साहित्य का एक अंग है।" "नाटक और नाटक", पृष्ठ १०।

२ "यदि किसी एकांकी में जीवन की ऊंची गतिविधि के साथ साथ कला का पूर्ण स्वरूप और सच्चे साहित्य की सारी आकांक्षाएं विद्यमान हैं, तो कोई सहृदय समालोचक इसलिए उनका अनादर न करेगा कि वह अनभिनेय है और नाटककार रंगमंच की सर्वांगी विशेषताओं से अनभिज्ञ है। हम उसको पढ़कर आनन्द ले सकते हैं।" वही, पृष्ठ ११।

३ "आज का युग तो चिन्तनाओं के स्पर्श से ही प्राण ग्रहण करता है। उसके बिना नाटकों का सारा काव्य केवल हंसने और रोने वाली वस्तु रह जायेगा।" वही, पृष्ठ ११।

(central idea) की आवश्यकता मानते हैं। विचार से उनका तात्पर्य साधारण विचार न होकर जीवन की कोई समस्या है। विचार के पश्चात् उसके विकास के लिए सघर्ष अनिवार्य है, जो बाह्य तथा आन्तरिक हो सकता है। एकाकी में आन्तरिक सघर्ष का अधिक महत्त्व है, क्योंकि यही मनोविज्ञान अपना कार्य करता है। विचार और सघर्ष की सबद्धता और मनोरजकता के लिए कथानक की सृष्टि होती है। कथा बिना पात्रों के नहीं हो सकती। अत पात्रो का प्रादुर्भाव तथा उनका चरित्र चित्रण होता है। पात्रों का कार्य और कथोपकथन ही कथन के साधन हैं। सेठजी की दृष्टि में वही नाटक श्रेष्ठ है जिसमें जितना महान् विचार होगा, जितना तीव्र सघर्ष होगा, जितना सगठित एव मनोरजक कथा होगी, जितना विशद चरित्र चित्रण होगा और जितनी स्वाभाविक कृति एव कथोपकथन होंगे। सारे नाटक पर एकता का वातावरण होना चाहिए।[1]

उपर्युक्त विवेचन में हम देखते हैं कि जिस तत्व को अवस्थी जी ने "ऊची शिक्षा" माना है, सेठजी ने उसी को "विचार" माना है। उनकी दृष्टि में जितना महान् विचार (उद्देश्य या समस्या) होगा, उतना ही नाटक में स्थायित्व होगा। सेठजी ने आन्तरिक सघर्ष पर जोर दिया है और कथानक के सगठन के अतिरिक्त मनोरजकता और चरित्र चित्रण की विशदता का भी समावेश किया है। जहा अवस्थी जी ने कथोपकथन में गभीरता और दार्शनिक तर्क को प्रधानता दी है, सेठ जी स्वाभाविकता पर [illegible] हैं। अवस्थी जी ने एकाकी के तन्त्र या टेकनीक पर कोई स्पष्ट विचार [illegible] नहीं किए हैं, पर सेठजी एकाकी की लेखन-पद्धति में सकलनत्रय अनिवार्य समझते हैं।[2] [illegible] भी समय तथा दृश्य की एकता पर विशेष जोर दिया है। उनकी दृष्टि में एकाकी बड़े और छोटे दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं।[3] अनेक दृश्यो के भी हो सकते हैं। स्थल सकलन [illegible] नहीं, पर काल सकलन होना चाहिए। किसी किसी एकाकी में [illegible] का भी अवरोध हो सकता है। ऐसी अवस्था में उपक्रम या उपसहार [illegible] माना है।[4]

---

1 सेठ गोविन्ददास, "नाट्यकला मीमांसा", पृष्ठ २५।

2 'पूरे नाटक के लिए सकलन त्रय जो नाट्यकला के विकास की दृष्टि से बड़ा भारी [illegible] फेरफार के साथ एकाकी नाटक के लिए जरूरी चीज है। स्थल सकलन [illegible] सकलन [illegible] नाटक एक ही समय की घटना तक परिमित रहना तथा एक ही [illegible] दोनो ही [illegible] के लिए अनिवार्य हैं।" वही।

३ '[illegible] कि पूरे नाटक और एकाकी नाटक का भेद केवल बड़ाई छुटाई [illegible], एकाकी छोटे ही हों, यह जरूरी नहीं है।" वही।

4 '[illegible] से अधिक दृश्य भी हो सकते हैं, पर यह नहीं हो सकता कि एक [illegible] और दूसरा पच्चीस दिन के बाद की घटना का, तीसरा कुछ महीनों के [illegible] अन्तर।" वही।

अपनी परिभाषा में सेठजी ने संविधान पर विशेष बल दिया है, जो प्रथम परिभाषा में लुप्त है। सकलन त्रय के महत्व तथा उनमें भी एक ही समय की घटना तथा एक ही कृत्य की अनिवार्यता, वे मानते हैं। काल सकलन की उपेक्षा के लिए उन्होंने उपक्रम और उपसंहार को जन्म दिया है। अर्थात् वे काल सकलन को भी नहीं मानते। उन्होंने अपनी परिभाषा में एकाकी के केवल मुख्य अगो, एक ही समय की घटना, एक पहलू का चित्रण तथा पात्रों की परिमित सख्या पर ही जोर दिया है। इस परिभाषा मे त्रुटि यह है कि सेठ जी ने नाटको में आने वाले सघर्षों का रूप स्पष्ट नही किया है।[1] रग सकेत अथवा अभिनयशीलता की ओर न अवस्थी जी का ध्यान है, न सेठ जी का। अत उपर्युक्त दोनो परिभाषायें अपूर्ण हैं।

श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क" ने एकाकी का पहला तत्व उसका छोटा कैनवस (canvas) माना है।[2] वे दृश्यो की अनेकता मानते हुए भी उन एकाकियो को महत्व देते हैं, जिनमे एक अक और एक ही दृश्य होता है।[3] लेकिन एक दृश्य अथवा एक अंक के विस्तृत एकाकी को वे बड़े नाटक की कोटि में रखते हैं।[4] उनकी परिभाषा में महत्व की बात अवधि है। आधुनिक एकाकी आधे घटे से लेकर पैंतालीस मिनट तक में समाप्त हो जाना चाहिए, चाहे उसमें दृश्य एक हो अथवा तीन।[5] अश्क जी ने रग-सकेत, कार्यगति, अभिनय, सम्वाद, वातावरण चरित्र-चित्रण, प्रकाश अथवा छाया का उचित प्रयोग आवश्यक तत्व माने हैं। उनकी दृष्टि मे एकाकी का सबसे बड़ा गुण सकलन त्रय का गुम्फन है।[6] सफल एकाकी रगमच पर उतने ही समय में अभिनय होना चाहिए, जिसमे कि वह वास्तविक जीवन में घट सकता है।[7]

अपनी परिभाषा में अश्क जी ने अन्य तत्वो के साथ तीन तत्वो को विशेष महत्व दिया है : (१) आकार तथा समय की लघुता (३५ मिनट से ४५ मिनट तक की अवधि), (२) अभिनयशीलता, (३) रंगसकेतो की स्पष्टता। निसंदेह इन तत्वो का एकाकी में बहुत महत्व है, किन्तु एकाकी मे मूल विचार, प्रभाव, समस्या, सदेश या चिन्तन आदि का महत्व इनकी अपेक्षा और भी अधिक है। अश्क जी ने कलापक्ष को भावपक्ष की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया है। सकलन त्रय की दृष्टि से

---

१. देखिए, डा० सत्येन्द्र कृत "हिन्दी एकांकी", पृष्ठ १२३।
२. देखिए, "प्रतिनिधि एकांकी", पृष्ठ १६।
३. वही, पृष्ठ १७।
४. वही, पृ० १७।
५ वही पृ० १८ "मेरा नाटक "सूखी डाली" तीन दृश्यों का होकर भी एकांकी है, परन्तु "आदिमार्ग" का "अन्दर" तीन दृश्यों का होकर भी पूरा नाटक है।"
६. उपेन्द्रनाथ अश्क "प्रतिनिधि एकांकी" पृष्ठ २१।
७. वही, पृष्ठ २३।

उनका मत सेठ गोविन्ददास की अपेक्षा अधिक परिपक्व और वास्तविक है। वे एकांकी में जीवन की वास्तविकता के पक्षपाती हैं। संकलन-त्रय का कठोरता से पालन एकांकी को वास्तविकता को पुट दे देता है। इस परिभाषा में अभिनयशीलता को भी आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है। कुछ एकांकी अध्ययन और चिन्तन की दृष्टि से केवल अध्ययन मात्र के लिए भी लिखे गए हैं, और साहित्य की सम्पत्ति हैं।

डा० रामकुमार वर्मा ने एकांकी के रचना-शिल्प पर प्रथम बार गम्भीरता पूर्वक विचार एवं नए प्रयोग किए हैं। इनकी परिभाषा की विशेषता यह है कि इसमें भाव अथवा विचार पक्ष तथा कला पक्ष दोनों ही पर सविस्तार विचार किया गया है और उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। डा० वर्मा ने कथावस्तु के तत्वों के क्रमिक विकास तथा रंगमंच पर व्यवस्था के रेखाचित्र भी उपस्थित किए हैं। एकांकी रचनाशिल्प सम्बन्धी उनके विचार यत्र तत्र विस्तार से प्रकट हुए हैं तथा काव्य-सौष्ठव से भीगे हैं। वर्मा जी का मत निम्न उद्धरणों से स्पष्ट होता है—

'एकांकी में एक घटना होती है और वह नाटकीय कौशल से ही कौतूहल का संचय करते हुए चरम सीमा (climax) तक पहुँचती है। उसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता . विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भांति खिलकर पुष्प की भांति विकसित होती है। इसमें लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं।''[1]

'जीवन की प्रमुख संवेदना को लिए हुए एक ही पात्र या एक ही परिस्थिति बादलों की भांति नीचे से उठकर घटनाओं के झोंकों में ऊपर जाकर चन्द्रमा और सूर्य को ढक ले और चरम सीमा की विद्युत् से आलोकित होकर जीवन के सत्य की बूंदों में बरस पड़े।''[2]

"हमारे जीवन के चारों ओर घटनाओं का अविराम प्रवाह बहता रहता है, जिसमें प्राणों के तत्व का अत्यन्त रहस्यमय संकेत रहता है। उन घटनाओं को सजीव दृष्टि से देखकर उनकी व्यंजना में कथावस्तु का निर्माण कर लिया जावे। कला-चातुर्य इसमें है कि घटनाओं को अधिक से अधिक घनीभूत कर उन्हें कार्यकरण की मनोरंजक शृंखला में बन लिया जावे।''[3]

"नाटक का प्राण उसके संघर्ष में पोषित होता है। यह संघर्ष जितना अधिक नाटककार की विवेचना शक्ति में होगा, उतना ही जिज्ञासा-मय उसका नाटक होगा।'[4]

एकांकी के कथानक का रूप हमारे सामने तब आता है, जब आधी से अधिक घटना तीन पूरी होती है उसके प्रारम्भिक वाक्य में ही कौतूहल और जिज्ञासा की

१ डा० रामकुमार वर्मा कृत "पृथ्वीराज की आँखें" भूमिका।
२ डा० रामकुमार वर्मा कृत "रेशमी टाई" पृष्ठ १० ।
३ डा० रामकुमार वर्मा कृत "रेशमी टाई" भूमिका, पृष्ठ ७ ।

अपरिमित शक्ति भरी रहती है. . . कथानक क्षिप्रगति से आगे बढ़ता है और एक-एक भावना घटना को घनीभूत करते हुए गूढ़ कौतूहल के साथ चरम सीमा में चमक उठती है। इसी घनीभूत घटनावरोह में चरमसीमा विद्युत् की भांति गतिशील होकर आलोक उत्पन्न करती है और नाटककार समस्त वेग से बादल की भांति गर्जन करता हुआ नीचे आता है। प्रवेश कुतूहल की वक्रगति से होता है। घटनाओं की व्यंजना उत्सुकता से लम्बी हो जाती है। फिर घटना में गति की घनीभूत तरंगें आती हैं, जो कुतूहलता से खिंच कर चरमसीमा में परिणति होती है। यहीं एकांकी की समाप्ति हो जानी चाहिए।

"मेरे सामने एकांकी नाटक की भावना वैसी ही है जैसे एक तितली फूल पर बैठकर उड़ जाय। उसकी घटनावस्तु से जीवन मनोरंजन के साथ निखरे रूप में आ जाय. . समझने में न तो प्रयास की ही आवश्यकता हो, न थकावट ही। जीवन का एक पृष्ठ उलट जाय और उसके उलटाते हुए आपके मुख पर संतोष और सुख हो।

एकांकी का यही कौशल है कि बिना समय का विस्तार बढ़ाये और बिना स्थानों के बदले, वह कौतूहल का संचय कर मनोविज्ञान में क्रांति उपस्थित कर दे। यह क्रांति चाहे यथार्थ में हो या आदर्श व्यक्ति में हो, चाहे घटना में।

यदि एकांकी अनेक दृश्यों में बँट जावे और दिनों या महीनों की अवधि पाले, तो फिर उसमें प्राचीन संस्कृति के अंक रूपक में अन्तर ही क्या रहा। चरित्र और घटना का दिग्दर्शन एक ही दृष्टि से करा सकने की क्षमता आधुनिक एकांकी में है।"

उपर्युक्त उद्धरणों में डा० रामकुमार वर्मा ने एकांकी के सब तत्वों को पूर्णरूप से स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने एक आदर्श एकांकी की रूपरेखा उदाहरण सहित स्पष्ट कर दी है।[1] उपर्युक्त उद्धरणों से हम इन निष्कर्षों पर पहुंचते हैं

१ एकांकी में आधार रूप से एक ही मुख्य घटना या जीवन की एक प्रमुख संवेदना होनी चाहिए जिसका विकास कौतूहल और जिज्ञासापूर्ण नाटकीय शैली में होना चाहिए। चरम सीमा पर पहुंचकर एकांकी का अन्त होना चाहिए।

२ एकांकी में अभिव्यंजित घटनाओं का चुनाव दैनिक जीवन से हो तथा उसमें यथार्थवाद एवं मनोरंजन के तत्वों का उचित समावेश होना चाहिए।

३ दो विरोधी पात्रों के वर्गों या मनुष्यों के दो प्रकार के भावों में संघर्ष होने से नाटक का ताना बाना बनता है। संघर्ष (conflict) एकांकी का प्राण है। इसकी अभिव्यंजना का आधार मनोविज्ञान होना चाहिए।

४ एकांकी के कथानक में कौतूहल (suspense) तथा जिज्ञासा (curiosity) क्षिप्रगति और चरम सीमा (climax) में परिणति होनी चाहिए।

५ यथार्थवाद की रक्षा के लिए सहज स्वाभाविक चित्रण रहे, किन्तु आदर्शवाद की ओर संकेत हो सकता है।

---

१. "रेशमी टाई" भूमिका पृष्ठ १८ - रेखाचित्र दर्शनीय है।

६ कथापक्ष में एकाकी की स्वाभाविकता और जीवन से निकटता बनाये रखने के लिए सकलन-त्रय (Three unities) का कठोरता से पालन होना चाहिए। आकार छोटा रहे और अवधि कम लगे। उसमे पात्रो के चरित्र अथवा घटना को सक्षेप मे प्रकट कर देने की क्षमता होनी चाहिए।

डा० रामकुमार वर्मा के विश्लेषण से एकाकी के सभी मूल तत्वो पर प्रचुर प्रकाश पड जाता है। अन्य एकाकीकारो की परिभाषाओ की अपेक्षा डा० वर्मा का विश्लेषण व्यापक है। आपके एकाकियो के उदाहरण द्वारा ये तत्व और भी स्पष्ट हो गये है। डा० वर्मा ने प्रभाव-साम्य (unity of effect) और सकलन-त्रय पर विशेष जोर दिया है।

यह सत्य है कि एक लम्बे दृश्य में ही समाप्त हो जाने वाले एकाकी दर्शको पर अपना एक निश्चित अन्तिम प्रभाव (Final impression) छोड जाते हैं, पर ऐसे भी सफल एकाकी मिलते है जिनमें काल भेद और वर्षों का अन्तर है, पर प्रभाव की एकता और संवेदना का बडा मार्मिक चित्रण बन पडा है।[1] रेडियो एकाकी की तरह एक से अधिक दृश्यो और काल की अनेकता होने पर भी कोई भावना सुन्दरता से अभिव्यक्त की जा सकती है। डा० वर्मा ने चरमोत्कर्ष पर विशेष बल दिया है। चरमोत्कर्ष का महत्व मानते हुए भी हमें ऐसे एकाकी मिलते है, जिनके सभी भागो में एक सी उत्सुकता और उत्साह बना रहता है। प्रो० नगेन्द्र का यह मत सही है कि बिना चरमसीमा वाले एकाकी भी सफल एकाकी हो सकते है, जैसे सेठ गोविन्द दास का "स्पर्द्धा"। फिर भी डा० वर्मा के विचार अपना विशेष महत्व रखते है और सभी आधार तत्वो को प्रकाश में ला देते है।

दूसरे वर्ग में हम आलोचको द्वारा निर्देशित एकाकी-तत्व और परिभाषाए ले सकते हैं। पहला मत डा० नगेन्द्र का है, जो सेठ गोविन्ददास के मत से मिलता जुलता है। डा० नगेन्द्र की दृष्टि में एकाकी में एक अक, विस्तार की सीमा कहानी जैसी, जीवन का एक पहलू, एक महत्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा उद्दीप्त क्षण, एकता, एकाग्रता और आकस्मिकता की अनिवार्यता, सकलन-त्रय का साधारणत पालन, प्रभाव और वस्तु का ऐक्य होना चाहिए। स्थान और काल की अनिवार्यता वे नहीं मानते।[2]

प्रो० अमरनाथ गुप्त ने एकाकी की समाप्ति एक ही बैठक में अनिवार्य मानी है। एकाकी एक ही बार और समय में समाप्त होनेवाली लघु कृति है। उन्होंने बिजली की तरह की उसकी गति, एक ही विषय या घटना, सकुचित क्षेत्र, पर प्रभाव साम्य, [illegible], विस्तार और समय की मितव्ययता आदि तत्व आवश्यक माने है।

१ [illegible] का सफल एकाकी "सोहागबिन्दी"।
[illegible], पृष्ठ १३५।
२ '[illegible]' पृष्ठ १०।

साधारण घटनायें भी आ सकती है, किन्तु वे मुख्य घटनाओ से पृथक न पड़े। गुप्त जी ने आगे चलकर अपनी गलती का अनुभव किया और भूल सुधार करते हुए लिखा कि एकाकी में सहायक घटनाएं नही होनी चाहिए ।[1]

डा० एस० पी० खत्री ने गम्भीरता से एकाकी के तत्वो का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। आपका दृष्टिकोण पाश्चात्य विशेषत अग्रेजी एकाकियो को दृष्टि मे रखकर बना है।[2] कोई निश्चित परिभाषा न दे डा० खत्री ने एकाकी मे सक्षिप्तता, समय की कमी और परिधि सकोच की ओर ध्यान आकृष्ट किया है ।[3] तत्वो में मुख्यत कथा वस्तु, अभिनयशीलता, एक ही प्रकार के प्रभाव के लिए एक ही भावना का चित्रण को विशेष महत्व दिया है। डा० खत्री कथानक और वस्तु में अन्तर मानते हैं। एकाकीकार लोकगाथा मानवी भाव, सामाजिक समस्याए, जीवन चित्र और प्रचारात्मक विषय लेकर अपने कथानक का निर्माण कर सकता है, लेकिन उस कथानक को एक ऐसे ढाचे में ढालना चाहिए जिससे नाटकीय उद्देश्य की पूर्ति हो। कथानक को संवार कर काट-छाटने पश्चात् वस्तु का निर्माण होता है।[4] अभी तक अन्य किसी आलोचक ने इस अन्तर को स्पष्ट नही किया था। कथानक से डा० खत्री का अभिप्राय उस कहानी से है, जिससे एकाकीकार काट छाट कर कथावस्तु निर्माण कर सकता है। कथावस्तु एकाकी का जन्मदाता है, वह उसकी भित्ति है।[5] वस्तु में कुतूहल एव जिज्ञासा सामजस्य और समन्वय, विस्मयपूर्ण शैली सशयपूर्ण अन्त, चरित्र चित्रण में स्वाभाविकता, निष्पक्षता और सहानुभूति, सवादो की पात्रो के अनुकूल विभिन्नता आदि अन्य तत्वो का निर्देश किया है। डा० खत्री ने जिन तत्वो पर विशेष जोर डाला है, वह डा० रामकुमार वर्मा के मत से मिलते जुलते है। वह तत्व है, सकलन त्रय का निर्वाह और एक भावना या प्रभाव का चित्रण। वे लिखते है :

"यदि किसी एकाकी में अनेक स्थलो, अनेक भावो, अनेक चित्तवृत्तियो का सम्मिश्रण है, तो वह एकाकी कला के प्रमुख तत्वों की रक्षा नहीं करता और उसमें एकाकी लेखन-कला पूर्णरूप से प्रस्फुटित न हो पायेगी। एकाकी की महत्ता इसी में है कि वह केवल एक ही भावना अथवा चित्तवृत्ति का उत्तेजनापूर्ण विस्मयपूर्ण तथा रोचक प्रदर्शन करे। यदि वह इस आदर्श से गिरता है, तो वह किसी भी दृष्टि से सफल नहीं हो सकता।

---

१ "हिन्दी एकाकी", पृष्ठ १३६।

२. "एकाकी अग्रेजी साहित्य की देन है ''कुछ आलोचक एकाकी का उद्गम सस्कृत साहित्य मे मानते हैं। परन्तु एकांकी जब २०वी शताब्दी में शुरु हुआ तो स्पष्ट है कि इस पर अंग्रेजी का प्रभाव है, न कि सस्कृत का"—डा० खत्री, "नाटक की परख" पृष्ठ १७७

३ "एकाकी के तत्व", पृष्ठ १९५-२९५ तक।

४. "एकाकी के तत्व," पृष्ठ १९९।

५ 'गसले रूपी कथानक का वस्तु प्रस्फुटित पुष्प है।" 'नाटक की परख' पृष्ठ २००।

कलाकार को एकांकी में एक भावना के फलस्वरूप एक ही प्रभाव प्रकट करने में सलग्न रहना चाहिये। एक भावना के फलस्वरूप जो प्रभाव प्रकट किया जायगा, उसमें दर्शक के हृदय पर गहरा प्रभाव पडेगा और यदि प्रभाव में अनेकरूपता हुई, तो एकांकी अपने आदर्श से गिर जावेगा।[1]

आलोचक डा० सत्येन्द्र ने तत्व विश्लेषण को और आगे बढाया है। उनके अनुसार एकांकी स्वतन्त्र टेकनीक वाला साहित्य का एक भेद है। उसमें सकलन-त्रय का पूर्ण निर्वाह होना चाहिए। यह एकांकी की सीमाओं की स्थापना है। आरम्भ बहुत छोटा होना चाहिए और पात्रों का परिचय हो तो शीघ्र ही वस्तु दृष्टिगोचर हो जानी चाहिए। वस्तु गतिशील होनी चाहिए।[2] इस गति में सचारी भाव की तरह पुरानी स्मृति या [illegible] भाव जग उठ सकता है।[3] पात्रों में डा० सत्येन्द्र ने नायक के साथ एक [illegible] नायक की भी कल्पना की है।[4] पर यह अनिवार्य नहीं है, क्योंकि एकांकी में बहुत कम पात्र होते हैं तथा क्षेत्र भी सकुचित होने के कारण अधिक पात्रों का चरित्र चित्रण नहीं हो पाता। डा० सत्येन्द्र ने गौण पात्रों के विषय में नये विचार दिये हैं।[5] कोई कोई पदार्थ अथवा प्राकृतिक व्यापार भी एक पात्र बन कर आ सकता है।[6] एकांकी में गति होनी चाहिए। आरम्भ के पश्चात् गति तीव्र हो जानी चाहिए। इस गति के दो साधन हैं, सघर्ष तथा विकास। विकास, सघर्ष तथा विविध उपादानों से गति ग्रहण करता हुआ एकांकी चरमोत्कर्ष तक बढता है और वहा एक दम समाप्त हो जाता है। समाप्ति पर या तो किसी रहस्य का उद्घाटन होकर समस्त कथा [illegible] हो जाता है, कहीं यह अन्त किसी घटना के फल की द्योतक की [illegible] जाता है।[7] डा० सत्येन्द्र कला की दृष्टि से चरमोत्कर्ष को आवश्यक नहीं मानते।[8]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि एकांकी न तो बडे नाटक का

---

१. "एकांकी के तत्व", पृष्ठ २०३।

२. [illegible] डा० सत्येन्द्र कृत "हिन्दी एकांकी", पृष्ठ १२८।

३. वही, पृष्ठ १२८।

४. वही, पृष्ठ १२८।

५. "[illegible] की कल्पना से रचित एकांकियों में विविध गौण पात्रों के गमनागमन, [illegible] होने से एकांकी में गति आ जाती है। ये गौण पात्र उत्तेजक, माध्यम [illegible] का कार्य कर सकते हैं।" वही, पृष्ठ १२६।

६. "[illegible] के लिए कोई भी स्थूल सामग्री हो सकती है, कोई पदार्थ भी हो सकता है [illegible]।"—डा० सत्येन्द्र, "हिन्दी एकांकी", पृष्ठ १३१।

७. [illegible] डा० सत्येन्द्र, "हिन्दी एकांकी", पृष्ठ १३०।

८. "कला की दृष्टि से एकांकी की टेकनीक के लिये चरमोत्कर्ष कोई अनिवार्य तत्व नहीं।" [illegible]।

संक्षिप्त रूप है, न कहानी या सभाषण ही। उसकी स्वतन्त्र कला है। निष्कर्ष के रूप में हम एकांकी के आधारभूत मूल-तत्व इस प्रकार रख सकते हैं :—

१. मूल विचार, प्रभाव, समस्या या सन्देश

एकांकी मानव जीवन या समाज के एक पहलू या उद्दीप्त क्षण का चित्र है। इसका निर्माण एक आधारभूत मुख्य विचार, विशेष समस्या, एक सुनिश्चित सुकलित लक्ष्य एक ही महत्वपूर्ण घटना या विशेष परिस्थिति पर ही हो सकता है। वह उसी घटना, विषय या परिस्थिति से प्रारम्भ हो उसी में फैलकर एक प्रभाव डालता हुआ अपना पूरा विकास पाता है।[1] इसमें एक ही घटना फैलकर दर्शकों के मन पर एक विशेष प्रभाव-साम्य प्राप्त करती है।[2] यदि एकांकी पात्र या चरित्र प्रधान है, तो एकांकीकार को चाहिए वह मुख्य पात्र या पात्र-वर्ग को उभार कर उसके चरित्र की विशेषताएं भलीभांति चित्रित कर दे। एक से अधिक पात्र, घटना, या जीवन के अनेक पहलुओं पर वह एकांकी में प्रकाश नहीं डाल सकता। एकांकी अप्रधान प्रसंग गौण घटना, या व्यर्थ के पात्रों का जमघट को यथोचित स्थान नहीं देना चाहिए।[3] एकांकीकार का उद्देश्य गंभीर, हास्यप्रधान, कारुणिक या प्रचारात्मक हो सकता है, पर उसके एकांकी में कोई न कोई उद्देश्य या आधारभूत विचार होना आवश्यक है। इसी विचार के विकास से एकांकी में प्रभाव की एकता स्थापित होती है। एकांकीकार अपना विषय कहीं से भी चुन सकता है। समाज, इतिहास, राजनीति, मनोभाव, पुराण, धर्म, सामाजिक जीवन, साहित्य या जीवन-चरित्र आदि किसी भी क्षेत्र से मुख्य विचार (central idea) लेकर वह अपनी कथावस्तु (Plot) का निर्माण कर सकता है। उसे एकता तथा संक्षिप्तता का ध्यान रखना चाहिए।

---

1. "The One Act Play, by its nature and the rigid restrictions of medium, has to confine itself to a single episode or situation and this situation, in turn, has to grow and develop out of itself."
Water Prichard Eaton

2 "It should aim at making a single impression, should possess singleness of situation, and should concentrate its interest on a single character or group of characters" Sydney Box *The Technique of One Act Play*.

3 "Nor is he at liberty to display the manysidedness of character by evolving various situations which will test the relations of his characters The One Act Play form is not one which lends itself easily to much subtlety of characterization It is essentially concentrated and single of purpose, and for this reason imposes the strictest discipline upon the playwright who makes use of it." *Ibid*

एकता से तात्पर्य यह है कि एकाकीकार जीवन का जो पक्ष चित्रित करे, उसी ओर कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण अभिनयशीलता और पात्र प्रकाश डाले। एकाकी को किसी प्रकार का वस्तु-भेद सह्य नहीं है। उसके समस्त सूत्र इसी मूल घटना, विचार या उद्दीप्तक्षण पर एकाग्र हो जाय। दूसरा तत्व परिधि की सकुचितता या संक्षिप्तता है। कम से कम समय में पूर्ण प्रभाव डाल देना, घटना को स्पष्ट कर देना अथवा चरित्र चित्रण कर देना एकाकी की विशेषता है। एकाकीकार को समय की कमी का ध्यान रखना चाहिए।[1] नाटक की गति तीव्र अथवा धीमी रह सकती है, पर वह जीवन से इतनी हटी हुई न हो कि लोग उसे मिथ्या समझें। यह जीवन का सच्चा चित्र होना चाहिए। एकाकीकार की कला का कौशल इसी में है कि वह कम से कम समय में मानव जीवन की एक सजीव झाकी विशेष परिस्थिति अथवा एक उद्दीप्त घडी का चित्र उपस्थित करदे।

१ कथावस्तु कथानक में एकाकीकार अपनी कथावस्तु को प्रस्तुत करता है। कथानक इतिहास, पुराण, धर्म, लोक गाथा, समाज, राजनीति, मानवी भाव, जीवन चरित्र या कोई प्रचारात्मक विषय कहीं से भी लिया जा सकता है, पर वह वास्तविक जीवन से सम्बन्धित हो। कल्पना का प्रयोग केवल इस हद तक किया जाय कि यथार्थ की स्थिति नष्ट न हो। वह चाहे सुखान्त हो अथवा दुखान्त, पर उसमें उत्तेजना, रोचकता और विस्मय के गुण अवश्य होने चाहिए। कथानक के चुनाव के पश्चात् वस्तु का निर्माण होता है। वस्तु का निर्माण कथानक को काट-छाट कर ऐसे आकर्षक रूप में किया जाय कि प्रारम्भ होते ही उसमें नाटकीयता का समावेश हो जाय और उसमें जनता की दिलचस्पी आने लगे और पात्रों के साथ तादत्म्य स्थापित कर उनमें [illegible] लेने लगें।[2] वस्तु का विकास पाच भागो में होता है १ प्रारम्भ, २ नाटकीय स्थल, ३ द्वन्द्व, ४ चरमसीमा, ५ परिणति। प्रारम्भ प्राय रंगमचीय सूचना में स्पष्ट हो जाता है [illegible] वस्तु का रूप तब हमारे सम्मुख आता है जब आधी से अधिक घटना [illegible] चुकी होती है। नफल एकाकी के प्रारभिक वाक्य में ही कौतूहल और जिज्ञासा की [illegible] भरी रहती है। बीती हुई घटनाओ की व्यजना तुरन्त होकर वस्तु [illegible] से नाटकीय स्थिति की ओर अग्रसर होती है। दो विरोधी पात्रो, भावो या स्थितियों से द्वन्द्व होता है। एक-एक भावना घटना को घनीभूत करते हुए गूढ

1 "The time factor is important, while the speed of action [illegible] be accelerated or retarded, it must not be so far from that of [illegible] life that it is wholly rejected"—Percival Wilde *Construction of [illegible] One Act Play*

2 "The chief perhaps the only quality of short play's opening [illegible] that it must capture the audience's interest"—Sydney Box *The Technique of One Act Play*, p 10

कौतूहल के साथ चरम सीमा में चमक उठती है। समस्त जीवन एक घटे के सघर्ष में और वर्षों की घटनाए एक मुस्कान या एक-एक आसू में उभर आती है, वे चाहे सुखान्त रूप में हो या दुखान्त रूप मे। इसी घनीभूत घटनावरोह में चरमसीमा विद्युत् की भाति गतिशील होकर आलोक उत्पन्न करती है और नाटककार समस्त वेग से बादल की भाति गर्जन करते हुए नीचे आता है।[1] वस्तु में सर्वत्र आश्चर्य, कौतूहल और जिज्ञासा (Thrill and Suspense) के तत्व होने अनिवार्य है। सफल एकाकी को अपने आप में पूर्ण होना चाहिए। समाप्ति पर नाटककार के लिए कुछ कहना शेष न रह जाना चाहिए।[2]

२. संघर्ष या द्वन्द्व (Conflict or Struggle) दो विरोधी पक्षो, नायक अथवा खल नायक, में द्वन्द्व होकर एकाकी की सृष्टि होती है। कभी-कभी एक ही व्यक्ति के मन में दो विरोधी भावो में अन्त. सघर्ष होता है। पात्र इस दुविधा मे फस जाता है कि कौनसा मार्ग ग्रहण करे ? यह करे अथवा वह ? वह मन-ही-मन एक समस्या के विभिन्न पहलुओ पर वाद-विवाद करता है, उसके हानि-लाभ पर विचार करता है। अन्त सघर्ष प्रधान एकाकी जिनमें किसी पात्र का चारित्रिक द्वन्द्व या मानसिक तूफान प्रस्तुत किया जाता है, विशेष प्रभावशाली होते हैं। संघर्ष एकाकी का प्राण है। उससे एकाकी आदि से अन्त तक गति (Action) से युक्त हो जाता है।[3] मानसिक उथल-पुथल और अन्तर्द्वन्द्वो को स्पष्ट करने के लिए कुशल एकाकीकार मनोविज्ञान का सहारा लेते है। कुछ ऐसे सफल एकाकी लिखे गये है, जिनमें पात्रो के मानवीय भावो मात्र का मार्मिक अन्तर्द्वन्द्व प्रस्तुत किया गया है। डा० रामकुमार के कुछ एकाकी इसी वर्ग में आते है।

३. संकलन त्रय (Three Unities) कार्य सकलन, काल-सकलन और स्थल-सकलन की मर्यादा मे एकाकी में एक सम्पूर्ण कार्य एक ही अवधि मे एक ही स्थान पर होना आवश्यक है। उनमें एक ही पात्र के जीवन की एक ही परिस्थिति का चित्रण होना चाहिए। इससे एकाकी में स्वाभाविकता आती है। यदि एक से अधिक दृश्य हो तो उसी समय की लगातार होने वाली घटनाओ के सम्बन्ध में हो सकते है। समय उतना ही लगे जितना उस घटना के दैनिक जीवन में होने से लग सकता है। नाटक के अन्तिम

---

१ देखिए डा० रामकुमार कृत "रेशमी टाई", पृ० १७।

२ श्री सत्येन्द्रशरत् इस मत से सहमत नहीं है। उनका विचार है कि "यदि एकाकी नाटक के अपने आप में पूर्ण होते हुए भी समाप्त होने पर पाठक या दर्शक के मन में नाटकीय पात्रों की आगामी परिस्थितियों के प्रति उत्सुकता पैदा हो जाती है और मन में यह विचार उठता है कि कितना अच्छा होता यदि नाटक और आगे चलता तथा सब चीजें पूरी तरह समाप्त हो जाते, तो उस एकाकी की सफलता में सन्देह नहीं किया जा सकता। वह अपना कार्य पूरी तरह कर चुका है।" सत्येन्द्रशरत् "तार के खम्भे" पृ० १२६।

३. देखिए डा० नगेन्द्र, "हिन्दी एकाकी," पृ० १३३।

प्रभाव में एकता और एकाग्रता होनी चाहिए। ऐसी घटना या सहायक विषय न जोड़ दिया जाय कि प्रभाव और वस्तु का ऐक्य नष्ट हो जाय।[1]

४ पात्र और चरित्र-चित्रण : इस कार्य की महत्ता प्रारम्भ से ही समझ कर एकांकीकार उपयुक्त नारी या पुरुष-पात्र चुनते हैं। ये एकांकीकार के जीवन में आये हुए अथवा उनकी कल्पना के आधार पर बनाये जाते हैं, पर ये हमारे जैसे रक्त मांस के स्त्री-पुरुष होने चाहिएँ, जिनकी भावनाएं, विचार, गुण-दोष, समस्याएं हमारी जैसी ही हों। वे इसी लोक के यथार्थवादी व्यक्ति हों। प्रधानपात्र के अतिरिक्त अन्य सभी पात्र गौण हो सकते हैं, जो उसके चरित्र, परिस्थिति अथवा वातावरण को स्पष्ट करने में उत्तेजक, माध्यम, सूचक अथवा प्रभाव व्यंजना का कार्य कर सकते हैं। गौण पात्र का स्थान कोई वस्तु भी ग्रहण कर सकती है। पात्रों की संख्या यथाशक्ति कम होनी चाहिए। व्यर्थ का कोई पात्र एकांकी में न आये। कथोपकथन द्वारा एकांकीकार चरित्र चित्रण करता है एवं पात्रों के अपने विषय में उद्गार, गौण पात्रों के उनके विषय में संकेत या इंगित, रंग सूचनाओं में वर्णित गुण दोष या व्यक्तिगत विशेषताएँ पात्रों के अभिनय द्वारा एकांकीकार अपने पात्रों के चरित्रों को स्पष्ट करता है। सफलता की कसौटी यह है कि पात्र नाटककार के हाथ की कठपुतलियाँ न बनकर सच्चे जीवन और मानवोचित संवेदनाओं से पूर्ण बन जाँय।

५ कथोपकथन. एकांकी का प्राण कथोपकथन अथवा संवाद है, जिनके द्वारा कथासूत्र आगे बढ़ता है। पात्रों के चरित्र सम्बन्धी गुण-दोष, आचार-व्यवहार, मनोभाव, आदर्श, सामाजिक स्थिति, नाटकीय परिस्थिति, नाटक का वातावरण और पृष्ठ-भूमि आदि व्यक्त होती है। वस्तु में तनाव और विरोधी पात्रों में द्वन्द्व प्रकट होता है। संवादों में स्वाभाविकता के साथ सजीवता बड़ा आवश्यक गुण है। वह संक्षिप्त, मर्मस्पर्शी वाग्वैदग्ध्ययुक्त, पात्रों की चारित्रिकता को स्पष्ट करने वाला तथा कथासूत्र को आगे बढ़ाने वाला होना चाहिए। बहुधा एकांकी कथोपकथनों में होकर समस्त गति और शक्ति को संचित करता हुआ चरमसीमा पर पहुंचता है, अथवा प्रारम्भ में ही परिसमाप्ति पा लेता है।[2] संक्षिप्त परिधि होने के कारण एकांकीकार प्रत्येक शब्द को नाप-तोलकर शिल्पी की तरह सावधानी से रखता है। वह पूर्व-घटनाओं, अतीत स्मृतियों को रंगमंच पर प्रकट करता है और आगामी संकेत भाषा द्वारा भविष्य की ओर इंगित करता है। अतः प्रत्येक शब्द का

---

[1] "The total effect of the play should give an impression of a unified whole. Nothing should be said or done anywhere in the play which might appear fissiparous in its effect."

Prof G P Vyas, *Ten Selected Plays*, p 21.

[2] Dr Satyendra, "Hindi One Act Play" p 137

निजी महत्त्व है[1]। कम-से-कम शब्दों में एकांकीकार को अधिक-से-अधिक भाव व्यक्त करने, वातावरण का निर्माण करने, स्थानीयता (Local colour) की सूचना देने, नाटकीय परिस्थिति और मूल भावना को चित्रित करना चाहिए। पात्र ऐसी भाषा का प्रयोग करें, जो प्रति दिन के प्रयोग में लायी जाती हो तथा जिनसे नाटक वास्तविक व बिल्कुल सच्चे मालूम पड़ें, जो पात्र की स्थिति, वय, शिक्षा और चरित्र के अनुरूप हो, मार्मिकता, गतिशीलता और यदि संभव हो तो साहित्यिक सौंदर्य से परिपूर्ण हो। स्वाभाविकता की रक्षा के लिए यथासंभव स्वगत-कथन का प्रयोग न हो। यदि आवश्यकता ही हो, तो टेलीफोन या जड़ पदार्थ अथवा पशु-पक्षियों को माध्यम बनाकर मन्तव्य प्रकट करने चाहिएँ।

अभिनयशीलता

नाटक की भाँति एकांकी भी दृश्य-काव्य है। अतः रंगमंच पर अभिनय की दृष्टि से उसे सफल होना चाहिए। कुछ ऐसे कार्य हैं, जो केवल रंगमंच पर ही प्रभावशाली रूप से चित्रित किये जा सकते हैं। सफल एकांकीकार को मंच की सुविधाओं का पूर्ण उपयोग करना चाहिए। अभिनय द्वारा मनोभावों, हावभाव, मुखमुद्रा, विविध कार्यों का विस्तृत, शक्तिशाली और सीधा प्रदर्शन अभिनेता कर सकें, ऐसा प्रयत्न रहे। ऐसी नाटकीय स्थिति चुननी चाहिए, ऐसे मार्मिक कथोपकथन लिखने चाहिएँ और ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए, जिसकी पृष्ठभूमि पर एकांकी प्रभावशाली ढंग से आधारित किया जा सके और रंगमंचीय साधनों द्वारा अपने पूर्ण आकर्षक रूप में प्रस्तुत किये जा सकें।[2] कुछ एकांकीकार इस तथ्य से परिचित न होने के कारण अपने एकांकियों में केवल संवाद मात्र भर देते हैं, जबकि उसमें कार्यशीलता एवं गति का लोप होता है। दूसरी ओर कुछ ऐसे एकांकीकार हैं, जिनके एकांकियों में गति-ही-गति होती है और संवाद बहुत कम होते हैं। ये दोनों ही एकांकी नहीं

---

१ "You have a painfully small number of words with which to accomplish a large effect, for events must in general be large on the stage. Therefore every word must count."

—Walter Prichard Eaton, *Technique*, p. 54

२. "Since the stage does certain things superbly well, it is the duty of the craftsman to make use of its capabilities from one end of the key board to the other, to appeal to emotions, since that is its natural gesture; to be vivid powerful and direct He has to chose the play form because it can cope with his material It is for him to exploit it"

—Percival Wilde, *The Construction of One-act Play*, p 20.

है। सवादप्रधान कहानियाँ मात्र कही जा सकती है।[1] वास्तव में सफल एकाकी में अभिनयशील सवादो के साथ उपयुक्त गति और नाटकीयता भी होनी चाहिए। नाटकीयता से तात्पर्य है अभिनयशीलता, उपयुक्त नाटकीय स्थिति का चुनाव चरम-सीमा की ओर को गति। कौतूहल का समावेश, पात्रो का कार्य-व्यापार और कथावस्तु में प्रवाह, हिन्दी में अभिनयशील एकाकियो की कमी है। प्राय लेखको को मच के अनुसार दृश्यविधान, कौतूहल जनक घटना, कार्य-व्यापार, पात्रो की सक्रियता, छोटे सवाद, चलती और चुस्त भाषा का प्रयोग नही आता।[2] वे एकाकी को लम्बे निष्क्रिय सवादो, सस्कृत गर्भित कठिन साहित्यिक भाषा, पद्यो अथवा सवादो मात्र से भर देते है। पात्रो मे स्फूर्ति नही रहती और बहुत से दृश्य या पात्रो की भीड-भाड के कारण अभिनय में बाधा आती है। "नाटकीयता, आकस्मिकता, अनाशितता भी अभिनय में बडी सहायक होती है। इसमें अचानक दर्शक उल्लास से उछल पडता है। रोमाच से फूल जाता है, कौतूहल से चकित हो जाता है और आशातीत प्रसन्नता मे डूब जाता है।"[3] एकाकीकार को प्रारम्भ पर विशेष ध्यान देना चाहिए। एकाकी ऐसे आकर्षक और रहस्यपूर्ण ढग से प्रारम्भ हो कि दर्शक का कौतूहल अनायास ही जाग उठे और वह उनमें दिलचस्पी लेने लगे।[4] सक्षिप्त परिधि होने के कारण एकाकीकार प्रत्येक शब्द को नाप तोल कर रखता है।[5] कम-से-कम शब्दो में एकाकीकार को अधिक-से-अधिक भाव व्यक्त करने, वातावरण का निर्माण करने तथा नाटकीय परिस्थिति को चित्रित करने की कला चाहिए। स्वाभाविकता की रक्षा के लिए स्वगत-कथन का प्रयोग नही होना चाहिए। इस अस्वाभाविकता से बचने के लिए एकाकीकार टेलीफोन पर बात-चीत या कभी-कभी जड पदार्थो या पशु पक्षियो को माध्यम बनाकर निज मन्तव्य प्रकट करता है।

---

१ "यह जो हिन्दी ससार में भ्रम फैल गया है कि कथोपकथन के रूप में जो कुछ भी हो वह नाटक या एकाकी है, दूर होना चाहिए। इसमें एकाकी एव सवाद मात्र सवादप्रधान कहानी में अन्तर मान कर एकाकियो पर विचार करना चाहिए।—प्रो० गोपीनाथ तिवारी, "साहित्य सन्देश," भा० १६, अक ११, पृष्ठ ४१६।

२ G D Sondhi "The Stage in India" Bihar Theatre, Vol 6, p 21

३ प्रो० जगन्नाथ नलिन "हिंदी के नाटककार" पृष्ठ १६७।

४ "The opening must capture the audience's interest"

—Sydney Box

५ "You have a painfully small number of words with which to accomplish a large effect for events must in general be large on the [illegible] Therefore every word must count" Walter Prichard Eaton, *The Technique of One-act Play*, p 76

७ रंगमंच निर्देश (Stage Directions) : इनकी सहायता से नाटकत्व का रूप प्रतिष्ठित, प्रभाव उद्दीप्त, पात्रो की रूप कल्पना स्थिर, और रगमच की सम्पूर्ण व्यवस्था पाठको या निर्देशको को समझा दी जाती है। आधुनिक एकाकीकार प्रारम्भिक रंग सूचनाओ से समस्या, स्थिति, पूर्वकथा, या पात्रो की मुद्राए अभिव्यक्त कर एकाकी के उद्घाटन या प्रारम्भ का कार्य लेता है। रगमच की व्यवस्था स्पष्ट करने के लिए कही-कही अत्यन्त विस्तृत योजनाए एकाकी के प्रारम्भ मे दी जाती है। घटना प्रारम्भ होने से पूर्व का आवश्यक इतिहास भी इसी में दे दिया जाता है। पाश्चात्य एकाकीकारो ने इस दिशा में यहाँ तक उन्नति की है कि वे रगमच की व्यवस्था का एक मानचित्र तक दे देते हैं। कुछ एकाकीकार पाठको की कल्पना उद्दीप्त करने के लिए केवल प्रभाव-व्यजक और तीखे सकेतो का उपयोग ही करते हैं। इनमे एकाकी सुपाठ्य बन जाता है और अभिनय में भी सहायता प्राप्त होती है।

८. प्रभाव ऐक्य : वातावरण तथा भाव-व्यंजना द्वारा एकाकीकार एक विशेष प्रभाव अपने दर्शको पर छोडना चाहता है। सम्पूर्ण एकाकी इसी की ओर चलता है। यदि कोई एकाकीकार निर्दिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त कर लेता है, या जिस समस्या के विवेचन से वह चला था, उसका हल सुझा देने में सफलता प्राप्त करता है, तो उसके कलात्मक सौंदर्य में किसे सन्देह हो सकता है ? इस प्रकार उपर्युक्त तत्वो के द्वारा हम एकाकी की सफलता या असफलता ज्ञात कर सकते हैं।

६. एकांकी का नाटक से सम्बन्ध

एकाकी का नाटक से वही सम्बन्ध है, जो कहानी का उपन्यास से अथवा खण्ड काव्य का महाकाव्य से। नाटक में जीवन का विस्तार, लम्बाई और परिधि का विस्तार है, क्षेत्र जीवन की भाति सुविस्तृत है। एकाकी का क्षेत्र सीमित है, परिधि सकुचित है और जीवन का एक पहलू ही चित्रित करने का अल्प काल है। एक समुद्र की भाँति दीर्घ है तो दूसरा बिन्दु की भाँति सक्षिप्त। नाटककार अवकाश के क्षण चाहता है, जिनमे वह मानव-जीवन की अनेक जटिल समस्याएं प्रस्तुत कर सके। एकाकी थोडे से समय में मानव-जीवन की एक झांकी मात्र दे देता है। वह किसी विशेष पहलू पर प्रकाश डालता है। नाटक में जीवन की बहुलता, अनेक-रूपता और घटना-बाहुल्य है, एकाकी में एकरूपता, एक समस्या, एक पहलू या जीवन का एक उद्दीप्त क्षण है। एकाकी में मितव्ययता और सक्षिप्तता का महत्व है। एकाकी के कथानक सरल होते है, उनमें एक नूतनता, एकता, एकाग्रता, अनिवार्य है। नाटक में कथानक जटिल होता है और छोटी सहायक घटनाओ को स्थान प्राप्त हो जाता है। एकाकी में केवल एक ही घटना, एक ही महत्वपूर्ण पहलू या परिस्थिति रह सकती है। नाटक मे कथानक के चारो भाग स्पष्ट रहते हैं, एकाकी

प्राय सघर्ष-स्थल से प्रारम्भ होता है और शीघ्र ही गति पकड कर चरम सीमा की ओर अग्रसर होता है। नाटक की गति धीमी होती है एकाकी में। वेग-सम्पन्न प्रवाह का महत्व है।

एकाकी का प्राण कथोपकथन है। नाटक में घटनाओ की व्यजना, विस्तृत चरित्र-चित्रण, विस्तृत कार्य-व्यापार, अधिक समय और लम्बे चौडे स्टेज की आवश्यकता है, किन्तु एकाकी में मितव्यय द्वारा ये कार्य करने पडते हैं। नाटक में कथोपकथन लम्बे, विवेचन-प्रधान और स्वगत से परिपूर्ण हो सकते हैं किन्तु एकाकी का कथोपकथन सक्षिप्त मर्मस्पर्शी तथा चरित्र की विशेषताए प्रकट करने वाला होता है। इन्ही की सहायता से कथानक का विकास तथा परिस्थिति और वातावरण का निर्माण होता है। एकाकी में स्वगत का स्थान नगण्य है। बडे नाटक में पात्रो की सख्या यथेष्ट रहती हैं। मुख्य पात्रो के साथ गौण पात्र भी अपना महत्व रखते हैं। एकाकी में पात्रो की सख्या कम-से-कम रखी जाती है। बडे नाटक और एकाकियो का शिल्प भिन्न है।

एकाकी मे सकलन-त्रय का होना महत्वपूर्ण है। यही उसे जीवन का यथार्थवादी चित्र बनाता है। एक समय में उतने ही वक्त में होने वाली घटना तक परिमित रहने से वह जीवन का स्वाभाविक टुकडा बनता है। बडे नाटक में सकलन त्रय का निर्वाह आवश्यक नही है।

७. एकाकियो के भिन्न-भिन्न प्रकार

४ एकाकियो को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। १ सुखान्त एकाकी, २. दुखान्त एकाकी, ३. प्रहसन ४ फेंटेसी, ५ गीतिनाट्य या ओपेरा ६ झाकी, ७ सवाद या सम्भाषण, ८ स्वोक्ति रूपक या मोनोड्रामा ९ रेडियो-प्ले इत्यादि।

सुखान्त एकाकी का उद्देश्य लगभग वही है जो बडे सुखान्त नाटक का होता है। केवल उसकी परिधि सक्षिप्त है। अल्पकाल में ही वह कोई आनन्ददायक क्षण या घटना प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार दुखान्त एकाकी किसी दुखपूर्ण क्षण को उद्दीप्त करता है। इन दोनो का निर्माण प्राय किसी विशेष समस्या को लेकर किया जाता है। अत इन्हे समस्या-एकाकी (प्रोब्लम प्ले) भी कहते है। हिन्दी के अधिकाश एकाकी इसी वर्ग में है।

प्रहसन या फार्स का उद्देश्य समाज की किसी त्रुटि, रूढि, कमजोरिया, पात्र के चरित्र के किसी दुर्गुण को प्रकाश में लाकर उपहास की वस्तु बना देना है। इसमें नाटककार का उद्देश्य हसना तथा दूसरो को हसाकर समाज-सुधार करना होता है। फेंटेसी एकाकी का अति-नाटकीय रोमांटिक स्वरूप है, जिसका ताना-बाना स्वप्न से बना हुआ होता है। गीति-नाट्य में माध्यम का अन्तर है। कविता या गीतो के काव्य-मय माध्यम से कल्पना और भाव प्रकाशन द्वारा एकाकीकार किसी भावपूर्ण स्थल या घटना का चित्रण करता है। झाकी में केवल एक सक्षिप्त दृश्य में तीनो स्वाङ्गो

का निर्वाह करते हुए किसी उद्दीप्तक्षण को चित्रित कर दिया जाता है। सम्भाषण एकांकी का प्रारम्भिक स्वरूप है, जिसमे दो पात्रो के कथोपकथन द्वारा किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है। मोनो ड्रामा में केवल एक पात्र स्वगत के रूप में किसी पूर्व घटना या आप-बीती को व्यक्त करता है। स्वय ही अभिनय करता जाता है। रेडियो-प्ले ध्वनि के उतार-चढाव से अभिव्यक्ति करते हैं। इनमे इकाइयो के पालन की प्राय. आवश्यकता नही होती।

विषयो के अनुसार भी हम एकांकियो के वर्ग बना सकते है। जैसे १ सामाजिक, २ पौराणिक, ३ ऐतिहासिक, ४. राजनीतिक, ५ साहित्यिक, इत्यादि। छाया नाटक भी एक प्रकार के एकांकी ही है। अंग्रेजी मे एक और भी प्रकार मिलता है, जिसे कौकनी कहते है। इनमें मजदूरो की विकृत भाषा का प्रयोग किया जाता है। मूल वृत्ति के आधार पर डा० सत्येन्द्र ने यह भेद किये है : १ आलोचक-एकांकी, जो कमजोरियों को उभारते हैं, २. विवेकवान-एकांकी, जिनमें आलोचना-प्रत्यालोचना की जाती है, ३. भावुक एकांकी, जिनमें भावुकता अधिक रहती है, ४. समस्या-एकांकी, ५. अनुभूतिमय एकांकी, ६. व्यास्यमूलक एकांकी, ७. आदर्श मूलक एकांकी, ८ प्रगतिवादी एकांकी।

: २ :

भारतेन्दु-युग में एकांकी

१. जीवन और समाज की पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतीय इतिहास में ही नहीं, प्रत्युत विश्व के इतिहास में क्रान्तिकारी परिवर्तनों तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के कारण प्रसिद्ध है। यह नवचेतना और जागृति का युग है, जिसमें नवप्रेरणा देने का श्रेय यूरोप में डार्विन, कार्लमार्क्स, टाल्सटाय तथा भारत में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, महर्षि दयानन्द तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। "ऐसा सजीव और चेतन-युग हिन्दी में एक बार ही आया है। उस युग के तपस्वियों को जो सफलता मिली वह तो बड़ी है ही, उससे भी बड़ी उनकी साधना है, जो अगली पीढ़ियों को बराबर उत्साहित करती रहेगी।"[1] रूढ़िवादी जीर्ण परम्पराओं से आबद्ध समाज के हाथों उपरोक्त विचारकों को विरोध सहन करना पड़ा। पर उनकी नवीन क्रांतिकारी विचारधारा ने राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विकास पर आवश्यकता से अधिक प्रभाव डाला। ये नये आन्दोलन धार्मिक भी थे और साहित्यिक भी।[2] साहित्यिक जगत् में नवचेतना की जो रश्मि उदित हुई, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उसके केन्द्र-बिन्दु बने।

औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त मध्यकालीन सामन्तवादिता का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया था और पचास वर्ष तक अराजकता, अव्यवस्था तथा अस्थिरता का युग रहा। १७५७ में प्लासी के युद्ध के फलस्वरूप बंग-प्रदेश पर अंग्रेजों का एकाधिपत्य हो गया। अंग्रेजों के संसर्ग से पाश्चात्य सभ्यता, यूरोपीय विचारधारा और अंग्रेजी भाषा द्वारा कलकत्ते के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक जीवन में सूत्रपात हुआ। भारतीय पाश्चात्य साहित्य, विचारधारा और शैलियों की अभिव्यक्ति के लिए नवीन आदर्श प्राप्त हुए। सन् १७६४ के बक्सर के युद्ध में विजय प्राप्त करने से १७६५ में अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी वसूल करने का अधिकार प्राप्त हो गया। फलतः हिन्दी भाषी पूर्वी बिहार अंग्रेजों से प्रभावित हो गया और हिन्दी-भाषा और साहित्य पर नवीन परिस्थिति का सीधा प्रभाव पड़ने लगा। सन् १७८४ में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना द्वारा भारतीय तथा पाश्चात्य ज्ञान के आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त हुआ। सन् १८०० में वेलेजली द्वारा स्थापित फोर्ट

---

१ डा० रामविलास शर्मा, "भारतेन्दु युग और जन साहित्य," भारतेन्दु युग, पृष्ठ १
२ [illegible] हिन्दी नाटक सा० का इति०" पृष्ठ ३७

विलियम कालेज की स्थापना से इन दो संस्कृतियो का आदान प्रदान और भी व्यापक रूप से होने लगा। सन् १८०३ में लासवाड़ी तथा बनारस के युद्धो से हिन्दी प्रदेश के मध्य भाग को भी अग्रेजी के लिए अनावृत कर दिया। सन् १८१८ तक राजपूताने की रियासतो और मराठा युद्धों ने मराठों की शक्ति को भी क्षीण कर दिया। सन् १८२६ मे अग्रेजों की भरतपुर विजय ने समस्त हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्त को उनके आधिपत्य में अचल कर दिया। अत. १९ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही हिन्दी पर अग्रेजी, यूरोपीय विचारधारा एव साहित्य का सीधा प्रभाव पडने लगा और हिन्दी गद्य का विकास होने से जन-सामान्य भाषा का भी एक रूप निश्चित करने का प्रयत्न बढने लगा।

डलहौजी की राज्य हडपने की नीति के कारण व्यापक असतोष, अग्रेज अफसरो का धृष्ट व्यवहार, साम्राज्यवाद की नीति, गरीबी, सामाजिक व्यवस्थाओ के छिन्न भिन्न हो जाने की आशका, और नव शिक्षितो के पाश्चात्य चिन्तन से प्रभावित विचारो ने १८५७ की क्रान्ति के निमित्त एक क्रान्तिकारी मानसिक पृष्ठ-भूमि निर्मित कर दी। वर्ण व्यवस्था नाशक फौजी नियमो, धार्मिक आस्था को आघात पहुचाने वाली धार्मिक घटनाओ तथा कुछ क्रान्तिकारी वर्गो के प्रभाव से एक भीषण विस्फोट उत्पन्न हुआ, जिसने भारतीय इतिहास की गति ही परिवर्तित कर दी। एक नवीन शासन नीति का जन्म हुआ, जिसने राजा-महाराजाओ तथा जमीदारो द्वारा जनता को वश में रखने का उपाय किया। कुछ स्वार्थी वर्ग भी बने, जिनसे ब्रिटिश राज्य का ही हित होता था। इन नाना वर्गों को परस्पर सघर्ष में लिप्त कर भेदनीति के कारण अग्रेजी शासन की नीव दृढ हो गई। भारतीय साम्राज्य कम्पनी के हाथ से निकलकर ब्रिटिश मन्त्रिमडल के अधीन हुआ पर कम्पनी तथा मन्त्रिमडल के मध्य होने वाले आर्थिक समझौते के भार को भारत पर डाला गया। इससे भारत ऋणग्रस्त हुआ, गरीबी और अशान्ति बढी। साम्राज्ञी विक्टोरिया ने भारत का जो घोषणा-पत्र सुनाया, उसने आशा का सचार हुआ, किन्तु प्रोत्साहन रूढिवादियो को ही मिला। १८६० ई० मे इटली स्वतन्त्र हुआ, अमेरिका में सयुक्त राज्य की स्थापना हो चुकी थी। इग्लैंड मे डिजरायली और ग्लैडस्टन की शान्तिपूर्ण सुधारवादी नीति चल रही थी। १८६१ में इडियन कौंसिल एक्ट के अनुसार हाई कोर्ट, जाब्ता दीवानी, जाब्ता फौजदारी और ताजीरात हिन्द स्थापित किये गये। इसमे भारत में सामाजिक और राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई। पाश्चात्य विचारधाराओ, भाषा साहित्य की शैलियो तथा रगमच का प्रभाव प्रबल वेग से भारतीय साहित्य और जीवन पर पडने लगा। अंग्रेजी के माध्यम से अग्रेजो ने भारत की राजनीतिक एकता स्थापित की तथा पाश्चात्य सभ्यता, साहित्य, नवीन वैज्ञानिक आविष्कार, नवीन विचारधारा ने भारतवासियों के हृदय में अखड भारत और उसकी स्वतन्त्रता का विचार उत्पन्न किया। उन्हे अपने समाज में अनेक रूढिया और संकुचितता दृष्टिगोचर हुई। धार्मिक क्षेत्रो में अराजकता उत्पन्न हो गई। एक ओर जहा राजा राममोहन राय ने कट्टर सनातनियो

के विरुद्ध ब्रह्म समाज की स्थापना की, दूसरी ओर स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म द्वारा एक उदार मार्ग दिखाया। ऐनी बीसेन्ट की थियोसोफिकल सोसाइटी, स्वामी विवेकानन्द स्वामी रामतीर्थ तथा रामकृष्ण परमहस ने राष्ट्रीयता का पोषण किया और सकीर्णता दूर की। भारतीयता और स्वदेश भक्ति के भावो को प्रगति मिली। समाज-सुधार के लिए आन्दोलन चला। हिन्दी नाट्यकारो ने जहा एक ओर समाज की त्रुटियो को दूर करने का प्रयत्न किया, वहा दूसरी ओर विदेशी सभ्यता, विचार, भाषा पर विमुग्ध शिक्षितो पर व्यग्य किये है। इन सभी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनो की छाप भारतेन्दु-कालीन साहित्य पर है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाकृष्ण दास, श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, प्रेमघन, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन त्रिपाठी आदि लेखको पर समाज सुधार और राष्ट्रीयता का प्रभाव है। अपने साहित्य में इन्होने समाज की पतितावस्था पर क्षोभ, कुरीतियो पर व्यग्य, और नव-निर्माण की ओर सकेत किया है। संक्षेप में राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एव साहित्यिक दृष्टिकोणो से यह युग सक्रान्ति युग था। हिन्दी साहित्य पर पश्चिमी भावो, साहित्य एव विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा था।

मूलत तीन प्रकार के प्रभावो की छाया इस काल के एकाकियो पर मिलती है, सस्कृत, बगला तथा अग्रेजी साहित्य। ज्ञान पिपासा के साथ इन तीन बडे साहित्यो का सम्पर्क बनता और हिन्दी नाट्यकारो के लिये प्रेरक बना। इन तीनों साहित्यो में एक साथ ही इतनी सुन्दर, प्रभावशाली और नवीन शैली की रचनाए उपलब्ध हुई कि हिन्दी साहित्यकार उनके पठन-पाठन, प्रकाशन और अनुवाद में व्यस्त हो गये। उनकी प्रौढता ने हमारे साहित्यकारो के धैर्य को छीन लिया और उनका एक कार्य इन साहित्यो की चुनी हुई रचनाओ का हिन्दी भाषा में अनुवाद करना हो गया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बगला साहित्य के बकिमचन्द्र चटर्जी, राखालदास, द्विजेन्द्रलाल राय, गिरीश घोष और गोस्वामी की रचनाओ ने हिन्दी की मौलिक रचनाओं को जागृत कर लिया था। ईस्वी १९ वी सदी में जो भारत-व्यापी सास्कृतिक जागृति प्रकट हुई, उसके आविर्भाव और परिवर्द्धन में बगला साहित्य और तत्पश्चात बगला भारतीय शैली की चित्रकला विकसित हुई। इन दोनो ने सबसे बडा कार्य किया। १९वीं तथा २०वी शताब्दियो में बगला साहित्य का प्रभाव बग-वासियो के जीवन तक ही सीमित न रहा, प्रत्युत इसका प्रभाव अनुवादों द्वारा हिन्दी साहित्य, विशेषत हिन्दी नाटक पर पडा।

बगला साहित्य पर अग्रेजी भाषा, साहित्य तथा पाश्चात्य विचारों का प्रभाव अन्य प्रान्तो की अपेक्षा सबसे पहले पडा था। बगाल मे अग्रेजी राज्य की स्थापना १७६५ में हुई थी, जब दिल्ली के मुगल सम्राट् शाह आलम से अग्रेजो को बगाल, बिहार और उडीसा आदि सूबों की दीवानी मिली थी। अग्रेज धीरे-धीरे पूर्व भारत के भाग्य विधाता बन बैठे थे। बगाल के शिक्षित समाज का झुकाव अग्रेजी भाषा,

साहित्य और रहन सहन की ओर विशेष रूप से रहा है। १९वी शताब्दी के प्रथमार्द्ध में बंगाल के हिन्दू उच्च वर्गों में अंग्रेजी का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था, शेष भारतीय जनता भी अंग्रेजी साहित्य में रुचि लेने लगी थी। बंगला साहित्यकारो ने अंग्रेजी साहित्य की अनेक चुनी हुई रचनाओं के अनुवाद किये तथा उनकी शैली का प्रयोग अपनी भाषा में किया। डी० एल० राय के अंग्रेजी से प्रभावित नाटको का यथेष्ट प्रचार हुआ। इन नाटको की प्रौढता ने हिन्दी नाट्यकारों को आकृष्ट किया। अंग्रेजी से प्रभावित बंगला नाटक साहित्य के अनुकरण के कारण हम कोई विशेष उन्नति न कर सके। तत्कालीन हिन्दी नाटक बंगला साहित्य की छाया मात्र बन कर रह गया।

आरम्भ से ही संस्कृत नाट्य-शास्त्र हिन्दी का प्रेरक रहा है। प्रारम्भिक हिन्दी नाटक संस्कृत परम्पराओ और नाट्यशैलियो पर विरचित है। इनमें ब्रजभाषा पद्य में संस्कृत से अनुवाद हैं, या संस्कृत के गद्य अनुवाद हैं, जिनमे केवल संस्कृत पद्य के स्थान में पद्य है। यह परम्परा संस्कृत नाटको की है, जो ग्यारहवी शताब्दी में प्रारम्भ हुई थी जब ज्योतिर्श्वर ठाकुर ने नाटक लिखे। बाद के नाटको में संस्कृत छंदो के स्थान पर मैथिल पद का प्रयोग हुआ। जैसे उमापति के "पारिजात हरण" वीर रस पूर्ण रूपक में हुआ, है जिसकी भाषा संस्कृत प्राकृत है। कुछ नाटक मैथिली भाषा में हैं और बीच बीच में संस्कृत श्लोक हैं।[१] भारतेन्दु तक उक्त नाटको की परम्परा चली आती थी। स्वयं अंग्रेजी से प्रभावित होते हुये भी भारतेन्दु तथा उनके समकालीन एकांकी लेखको में संस्कृत शैली का अनुकरण मिलता है। "प्राचीन संस्कृत और प्राकृत नाटको के हिन्दी अनुवादो के रूप में उन्होंने एक नहीं, अनेक उच्च कोटि के नाटक हिन्दी के कोष में सजोये है। अपनी मौलिक रचनाओं में भी रूपको तथा उपरूपको के अनेक भेद उन्होंने प्रस्तुत किये।[२] इन्ही की संस्कृत नाट्यशास्त्र की पद्धति का अनुकरण इस स्कूल के अन्य एकांकीकारो ने किया है। "एकांकी की प्रथा उन्ही से चली है।"[३]

संस्कृत तथा पाश्चात्य नाटक प्रणालियो के संघर्षमय वातावरण में हिन्दी के मौलिक नाटक का सच्चा विकास भारतेन्दु जी से होता है। हिन्दी साहित्य के रिक्त अंगो की पूर्ति के हेतु उन्होंने साहित्य के नए आदर्श और नमूने प्रस्तुत किये साथ ही समकालीन साहित्यकारो को उनकी रचनाये अपने पत्रो में छाप कर नवीन साहित्य प्रणालियो (Forms) को विकसित किया।[४] "हरिश्चन्द्र मैगजीन," "हरिश्चन्द्र

१ डा० रामरतन भटनागर "भारतेन्दु : एक अध्ययन" पृष्ठ ७७।
२. आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, "भा० ना० परम्परा" हिन्दु० जुलाई ५४।
३. देखिए डा० सोमनाथ गुप्त "हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास" पृष्ठ=१।
४. डा० रामरतन भटनागर "भारतेन्दुकालीन मासिक पत्र, "भारतेन्दु एक अध्ययन" पृ० १०६।

चन्द्रिका," "कवि वचन सुधा" आदि अपनी पत्रिकाओं में प्रकाशित कर मौलिक नव साहित्य सृजन के लिए प्रोत्साहित किया। इन पत्रिकाओं में सर्व विषयक लेख, नाटक, प्रहसन, व्यंग्य, रूपक आदि प्रकाशित होते थे। नाटक प्राय समाज सुधार की समस्या और संस्कृत नाट्यविधान के अनुसार लिखे जाते थे। प्रहसन विशेष लोकप्रिय था। कुछ संभाषण भी प्रकाशित हुए हैं। इनमें दृश्यों का संकेत तो न था, संक्षिप्त रंग सूचनाएं तथा बोलचाल की भाषा का प्रयोग होता था और आकार लगभग दो ढाई पृष्ठों का होता था। उदाहरण के लिए १८७३ ई० की "हरिश्चन्द्र मैगजीन" में "वसन्तपूजा" शीर्षक प्रहसन प्रकाशित हुआ था, जिसमें कोतवाल, थानेदार और नाजिर आदि का मजाक उड़ाया गया। "मैगजीन" की प्रथम संख्या में "यूरोपियनों के प्रति भारतवासियों के प्रश्न" शीर्षक दिलचस्प प्रश्नोत्तरी है।[1] कथोपकथन प्रधान संभाषणों में राधाकृष्णदास कृत "धर्मालाप"[2] तथा किसी अन्य नाट्यकार का 'सर्व जात गोपाल की'[3] उल्लेखनीय है। कभी कभी बड़े रूपकों के संक्षिप्त रूप प्रकाशित किये जाते थे, जिनके बीच में रंग सूचनाओं के द्वारा कथासूत्र जोड़ने का ध्यान रखा जाता था, जैसे कार्तिकप्रसाद खत्री कृत "रेल का विकट खेल," श्रीशरणकृत "बालविवाह," श्रीनिवासदास कृत "तप्तासंवरण"[4] या किसी नाट्यकार का "ग्राम पाठशाला नाटक।" इनमें रूपक का प्रयोग उसी रूप में था जैसे उपन्यास या कहानी का होता है। यह कहना अनुचित न होगा कि ये संभाषण प्रधान शैली में लिखी छोटी कहानियाँ ही थीं। अंक या दृश्यों के संविधान में किसी विशेष नियम का पालन नहीं किया जा रहा था। कहीं सर्वत्र "अंक" ही लिखा है, तो कहीं केवल "दृश्य" ही दिया है।[5] दृश्यों के विस्तार या उसे रंगमंच पर अभिनय हो सकने की चिन्ता न थी। एकांकी की शैली स्थिर न थी। अनिश्चित से मिश्रित प्रयोग चल रहे थे। कुछ नाटककार, जिनमें भारतेन्दु प्रमुख हैं, संस्कृत के अनुसार उपरूपक के भेदों का उल्लेख स्वीकार के साथ कर, उन्हीं लक्षणों के अनुसार उपरूपकों भाण, प्रहसन, अंक, नाट्य रासक की रचना कर रहे थे। इन प्रयोगों में भारतेन्दु ने प्राय सभी उपरूपकों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, किन्तु कुछ शैलियाँ (Forms) को छोड़कर शेष की परम्परा जन्म लेने पर ही समाप्त हो गई। इसका एक कारण यह है कि संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार एकांकी का वर्गीकरण शास्त्रीय होते हुए भी बड़ा संकुचित

---

१ "हरिश्चन्द्र मैगजीन" पृष्ठ १०८।
२. "हरिश्चन्द्र मैगजीन" नवम्बर १८७३, पृष्ठ ३५।
३ "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका," जनवरी १८७८।
४ "हरिश्चन्द्र मैगजीन", फरवरी १८७४, पृष्ठ १२५।
५ "[illegible] भारतेन्दु कालीन नाटक प्राय सभी एकांकी नाटक जैसे हैं।" —डा० सोमनाथ गुप्त, "हिन्दी नाटक का इतिहास", पृ० १०१।

और कठोर है। प्रत्येक में वस्तु, पात्र, रस, एव दृश्य आदि के अनेक बन्धन है। परिणाम स्वरूप सस्कृत में ही बहुत अल्प-सख्यक एकाकी मिलते हैं। हिन्दी मे भी वैसा ही प्रभाव पडा। डा० सोमनाथ गुप्त का यह मत सत्य है कि भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों ने एकाकी की श्रेणी में अधिकतर प्रहसन को ही अपनाया।[1] भारतेन्दु युग में अधिकतर प्रहसन की ही परम्परा प्राप्त होती है।

२. हिन्दी एकांकी की चार धाराएं

विचार और समस्या की दृष्टि से भारतेन्दुकालीन एकाकी चार श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं · (१) राष्ट्रीय ऐतिहासिक, (२) सामाजिक, यथार्थवादी (३) पौराणिक आदर्शवादी, (४) हास्य व्यग्यमय प्रहसन। "पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक उतने नही लिखे गये, जितने यथार्थ से सम्बन्ध रखने वाले। जो ऐतिहासिक नाटक लिखे भी गये हैं, वे भी बहुधा युग को कोई बात सुझाने या सिखाने के लिए लिखे गए हैं।[2]

१. राष्ट्रीय ऐतिहासिक धारा—इस काल में राष्ट्रीयता का उन्मेष हो चुका था। अन्य माध्यमो की भाति हिन्दी एकाकी में भी राष्ट्रीय जागरण का स्वर मुखरित हुआ। भारतीय जनता में राजनीतिक जागृति हो रही थी और वे अपने राष्ट्रीय अधिकारो तथा स्वातन्त्र्य भावना को प्रकट करना चाहते थे। भारत के इतिहास से कथानक लेकर राष्ट्रीय जाग्रति का स्वर ऊचा करने वाले एकाकी लिखे गये। इनका विषय भारत की तत्कालीन दुर्दशा, गुलामी पर क्षोभ, अतीत की स्मृति, सोते हुए राष्ट्र में आत्म गौरव की भावनाए जाग्रत करना, राष्ट्रीय कल्याण, आशा निराशा के द्वन्द्व, उज्ज्वल चरित्र और भविष्य की कल्पना आदि हैं। ऐतिहासिक एकाकियो का स्वर राष्ट्रीय नव निर्माण था। इस वर्ग में हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का "भारत दुर्दशा", "भारत जननी" राधाचरण गोस्वामी का "भारत माता" तथा रामकृष्णवर्मा का "भारतोद्धार", काशीनाथ खत्री के "तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक," राधाचरण गोस्वामी का "अमरसिंह राठौर"; राधाकृष्णदास का "महारानी पद्मनी," रामकृष्ण वर्मा का 'पद्मावती", "वीरनारी," "कृष्णकुमार" आदि रख सकते हैं। एकाकीकारो का उद्देश्य जनता मे देश और राष्ट्र के प्रति जागृति उत्पन्न करना, आदर्श चरित्रो का गुणगान और नव प्रेरणा देना रहा है। मनोरजन की अपेक्षा शिक्षा देना अधिक रहा है। वे मनोरजक सामग्री मे मिश्रित कर ऐसा उपदेश दे जाते थे, जो लोक जीवन में जागृति उत्पन्न करता था। युग व्यापी राजनीतिक चेतना इन एकाकियो द्वारा मुखरित हुई।

---

१. देखिए डा० सोमनाथ गुप्त कृत "हिन्दी नाटक का इतिहास", पृष्ठ ३२६।
२. भारतेन्दु युग, पृष्ठ ६८।

२. सामाजिक यथार्थवादी धारा : राष्ट्रीय जागृति के साथ एकांकीकारों की दृष्टि समाज की पतितावस्था की ओर गई। समाज की सड़ी गली रूढ़ियां, जीर्ण-शीर्ण मान्यताएं, पुरानपंथीपन, मद्यपान, वेश्यागमन, छुआछूत, व्यभिचार, जाति भेद, धर्म की संकीर्णता, विदेशीपन से प्रेम आदि सामाजिक कुरीतियां उनकी आलोचना की शिकार बनी। इस युग में अधिकतर समस्या-एकांकी ही लिखे गए, क्योंकि सामाजिक सुधार लेखकों का प्रिय विषय बन गया था। इनका सम्बन्ध यथार्थ जीवन, समाज और उस युग में नित्य प्रति पाये जाने वाले पात्रों से है। व्यंग्यात्मक शैली द्वारा भद्र जीवन में प्रविष्ट पाखंड को स्पष्ट कर दिया गया है। भारतेन्दु जी का "भारत-दुर्दशा" राधाचरण गोस्वामी का "भारतवर्ष में यवन लोग", श्रीशरण का "बाल विवाह", प्रतापनारायण मिश्र का "कलिकौतुक रूपक", अम्बिकादत्त व्यास का "कलियुग और घी", किशोरीलाल गोस्वामी का "चौपट चपेट", तत्कालीन समाज में व्याप्त नाना कुरीतियों और रूढ़ियों पर व्यंग्य करते हैं।

प्रहसन लिखकर भी एकांकीकारों ने सामाजिक सुधार का प्रयत्न किया है, जैसे राधाचरण गोस्वामी के "तन मन धन श्री गुसाईं जी के अर्पण", "तथा बूढ़े मुंह मुंहासे" में क्रमश धर्म के पाखंड और किसान-जमींदार के संघर्ष को कथावस्तु बनाया गया है। देवकीनन्दन त्रिपाठी के प्रहसन "कलियुगी जनेऊ" (संवत् १९४३), तथा "कलियुगी विवाह", निद्धोलाल मिश्र के "विवाहिता विलाप, (संवत् १८२०), बालकृष्ण भट्ट के "शिक्षादान", राधाकृष्णदास के "दु खनी बाला", काशीनाथ का "बालविधवा" किसी नाटककार के "बालविवाह" तथा "वृद्ध विवाह" हिन्दुओं की वैवाहिक पद्धति पर व्यंग्य है। "ग्राम पाठशाला" और कार्तिक प्रसाद खत्री के "रेल का विकट खेल" में क्रमश अध्यापकों की हीन दशा और रेल विभाग में रिश्वत खोरी पर व्यंग्य करता है। इस वर्ग के एकांकीकारों की सुधारवादी वृत्ति के परिणाम स्वरूप समाज के यथार्थ चित्र जनता के समक्ष आये तथा नये विचारों का प्रचार हुआ। जनता में रूढ़िवादिता के प्रति घृणा एवं सामाजिक उन्नति करने की उत्कृष्ट इच्छा उत्पन्न हुई।

३ धार्मिक पौराणिक धारा : धर्म के प्रति अब भी जनता के हृदय में श्रद्धा और भाव था। पौराणिक एकांकी बड़े उत्साह से पढ़े और अभिनय किए जाते थे। इस युग में एक वर्ग ऐसा भी था, जो धार्मिक कथानकों पर आधारित पौराणिक एकांकियों द्वारा भारतीय संस्कृति की आदर्शवादी विचारधारा प्रस्तुत कर रहा था। नाटककार तथा जनता की धार्मिक वृत्ति की एक झलक हमें पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र द्वारा "मयूरध्वज" एकांकी पर लिखी निम्न आलोचनात्मक पंक्तियों से मिलती है "यद्यपि राज्य में लुप्त हुए नाटकों का प्रचार इस समय कुछ कुछ होने लगा है। महाशयों के मन में नाटक बनाने की उमगें उठने लगी है, जो नये ढग के नाटकों में परिणत हुई हैं। जैसे श्रेष्ठ नदी वही है, जो समुद्र में जा मिले, उसी प्रकार नाटक भी

वही श्रेष्ठ है, जो ईश्वर को भक्ति उत्पन्न करे, जिससे पाठकों का चित्त परमेश्वर में स्नेह करने लगे। सो यह गुण इस नाटक में विद्यमान है····" इस धारा का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ एकांकी इस प्रकार हैं :—

भारतेन्दु जी के "माधुरी" और "धनजय विजय", लाला श्रीनिवास दास का "प्रह्लाद चरित्र"; प० बदरीनारायण प्रेमघन का "प्रयाग रामागमन", (१८०४), राधाचरण गोस्वामी का "श्रीदामा" और "सती चन्द्रावली"; शालिग्राम वैश्य का "मयूरध्वज", बालकृष्ण भट्ट का "दमयन्ती स्वयंवर"; जैनेन्द्रकिशोर का "सोमावती अथवा धर्मवती" (१८३०); कार्तिकप्रसाद रचित "उषाहरण" (१८९२); "गंगोत्तरी", "द्रौपदी चीर हरण"; "नि सहाय हिन्दू"; मोहनलाल विष्णुलाल पाड्याकृत "प्रह्लाद", लाला खगबहादुर मल्ला का "हर तालिका" इत्यादि।

४. हास्य व्यंग्य प्रधान धारा : इस युग के एकांकीकारों की समाज सुधार वृत्ति को हास्य व्यंग्य प्रधान प्रहसन एक उपयुक्त माध्यम प्राप्त हुआ। यूरोप मे भी समाज सुधार आन्दोलन तीव्र था। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु जी ने यह कार्य किया तथा राधाचरण गोस्वामी, देवकीनन्दन त्रिपाठी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, किशोरीलाल गोस्वामी आदि ने समाज सुधारवादी आन्दोलन को आगे बढ़ाया। ये प्रहसन सामाजिक और धार्मिक दोनो विषयों पर लिखे गए। सामाजिक क्षेत्र में बहुविवाह, बालविवाह, वृद्ध और अनमेल विवाह, स्त्रियो की हीन दशा, सामाजिक कुरीतियां, जैसे वेश्यागमन, व्यभिचार, मांसाहार, मद्यपान, फैशन परस्ती, विलासिता, अपव्यय, व्यसन, अविद्या, कंजूसी, अधिक व्याज लेना, किसान और जमीदार का संघर्ष आदि। इन एकांकियो के विषय में मनोरंजन के साथ समाज की त्रुटियां दूर करने का प्रयत्न किया गया। धार्मिक क्षेत्र में पाखंड, पंडागिरी, व्यर्थ का कर्मकांड, ज्योतिषियों की धोखेबाजी, धर्म की आड़ में होने वाले कुकर्मों के प्रति घृणा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। एकांकीकारों ने धार्मिक संकुचितता और व्यर्थ के मिथ्या प्रदर्शन को दूर करने का प्रयत्न किया। ईसाई मिशनरियो तथा मुसलमानो के साम्य-भाव के कारण भारतीय जनता भारतीय संस्कारो के प्रति विमुख होती जा रही थी। हिन्दू मुसलमान बनते जा रहे थे। इसी प्रकार की अन्य धार्मिक समस्याओं को प्रहसन के माध्यम द्वारा सुलझाया गया।

इन प्रहसनो पर पारसी रंगमंच का प्रभाव है। उच्चकोटि का हास्य और व्यंग्य भी नही है। गीतो की बहुलता है। "विषय तो परिहास के लिए उपयुक्त हैं, परन्तु परिस्थिति आचार विचार कम हैं। क्लिष्ट शब्दो अथवा अनहोने नामो द्वारा हास्य-उत्पत्ति का प्रयत्न किया गया है।"[1] भाषा चलती हिन्दी है। रचना विधान में स्वतन्त्रता और विचारो का आधिक्य है। आकार संक्षिप्त और हास्य में अतिरेक है। परिस्थिति

---

१. डा० सोमनाथ गुप्त "हिन्दी ना० सा० का इति०", पृष्ठ १०७।

निजी रंगमंच न होने के कारण साहित्यिक दृष्टि से ये एकांकी श्रेष्ठ न हो सके। पारसी नाटकों तथा सस्ते हास्यरसपूर्ण प्रहसनों के प्रचार से उच्चकोटि के नाटकों का क्रम रुक गया। कुछ युगान्तरकारी नाट्यकारों ने रंगमंच का मोह त्याग कर उच्चकोटि की रचनाएं प्रस्तुत की हैं किन्तु उनमें वर्णनात्मकता अधिक हो गई और संकलन-त्रय का निर्वाह न हो सका। चरित्र और घटना का दिग्दर्शन करा देने की क्षमता इनमें नहीं है।

"अंक" तथा "दृश्य" के प्रयोग के सम्बन्ध में कोई विशेष नियम नहीं मिलता। संस्कृत नाट्यशास्त्र में दशरूपकों के अन्तर्गत अंक नामक एकांकी की कल्पना थी, किन्तु इस अंक में अनेक दृश्यों की व्यवस्था भी थी। अंक किसी बड़े रूपक का किसी विशिष्ट घटना को लिए हुए एक विभक्तांश ही कहा जा सकता है।[1] अनेक नाट्यकार मनमाने रूप में "अंक" शब्द का प्रयोग करते रहे हैं। अनेक एकांकियों में "दृश्यों" के स्थान पर "अंक" शब्द का प्रयोग है, यद्यपि वे आधुनिक दृश्य से भी लघु हैं, कुछ एकांकियों में न "अंक" लिखा गया है, न "दृश्य"। केवल स्थानों के नाम मात्र डालकर छोटा सा नाटक प्रस्तुत कर दिया गया है।[2] कहीं भिन्न दृश्यों को संयुक्त करने के लिए रंगमंच निर्देशों द्वारा कथासूत्रों को परस्पर जोड़ा गया है।[3] कहीं एक लम्बा दृश्य मात्र ही है, अंक या दृश्य का कोई निर्देश नहीं है।[4] कुछ बड़े नाटकों के ही छोटे रूप हैं जो एकांकी जैसे हैं। छोटे २ दृश्यों को अंक लिख दिया गया है। इस वर्ग के एकांकियों में नान्दी, मंगलाचरण, नटी सूत्रधार का प्रारम्भिक वार्तालाप, विदूषक, गायन, भरतवाक्य आदि की व्यवस्था है। ये नाटक ३ पृष्ठों से १० से १२ पृष्ठों तक की सीमा के हैं। अतः इन्हें नाटक न कह कर एकांकी ही कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, दामोदरशास्त्री कृत "ध्रुव चरित्र" कार्तिक प्रसाद लिखित "रेल का विकट खेल" और श्रीशरणकृत "बाल विवाह" विषय विस्तार की दृष्टि से एकांकी के अन्तर्गत आ जाते हैं।[5]

विशुद्ध एकांकियों में "एकांकी" शब्द का प्रयोग न कर 'रूपक" शब्द का

---

१ डा० रामकुमार वर्मा "रजत रश्मि", पृष्ठ ६।

२ जैसे, रूपगोविन्द मालवीयकृत "रामचरित्र" या श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीभिन्याधिदेव कृत "प्रेम मार्ग" एकांकी।

३ जैसे, "प्रम्याटशाला" नाटक।

४ जैसे, "दमनापूना" "हरिश्चन्द्र मैगजीन" १५ मई १८७३, पृष्ठ २१६। "धर्मालाप" और "सर्व ज्ञात गोशास मठ", "हरिश्चन्द्र मैगजीन" नवम्बर १८७३, पृष्ठ ३५।

५ डा० सोमनाथ गुप्त, "कलात्मक दृष्टि से ये प्रायः सभी एकांकी नाटक जैसे हैं, जिनमें समाज के किसी एक ही पहलू पर विचार किया गया है और संवादों में पात्रों द्वारा लेखक के विचारों को व्यक्त किया गया है। इन्हें नाटकीय बनाने का कोई गंभीर प्रयास नहीं है। नाटक को [illegible] ने विषय [illegible] तो स्वीकार कर लिया पर उसके सांगोपांग विकास और कलात्मक उन्नति की ओर ध्यान नहीं दिया।" "हि० ना० सा० का इतिहास" पृष्ठ १०१।

प्रयोग किया है। रूपक प्राय दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। प्रथम छोटे नाटकों के अर्थ में जिनमें समस्या के किसी एक पहलू पर विचार किया गया है, जैसे किशोरीलाल गोस्वामीकृत "नाट्यसभव रूपक", श्रीवचनेश मिश्र कृत "भर्तृहरि निर्वेद", प्रतापनारायण मिश्र कृत "कलिकौतुक रूपक" (१८८६), देवदत्त मिश्र कृत "बालविवाह रूपक", काशीनाथ खत्री के "तीन ऐतिहासिक रूपक" आदि। कुछ एकाकियो ने "नाटिका" शब्द का प्रयोग किया है; जैसे लाला खगबहादुर मल्ल कृत "हरतालिका" नाटिका (१८८७)और अम्बिकादत्त त्रिपाठी का "सीय स्वयवर" नाटिका। प० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने रूपक का प्रयोग अग्रेजी के मोरेलिटो और मिस्ट्री नाटिको के अर्थों में किया है। आपका "श्रीप्रद्युम्न विजय" वीररस का रूपक है, जिसमें आध्यात्मिक गुणो को मूर्त रूप प्रदान किया गया है। इस दिशा में रूपक का प्रयोग अलंकारी रूप मे है। इस शैली से भारतेन्दुजी ने "भारत जननी" की रचना की है।

इस काल में "दृश्य" के लिए किस शब्द का प्रयोग किया जाय, यह भी अनिश्चित था। प्राय "गर्भांक" का प्रयोग दृश्य के लिए होता था। "सती प्रताप में भारतेन्दु जी ने गर्भांक का प्रयोग किया है। कुछ लेखको ने केवल "दृश्य" शब्द का ही प्रयोग किया है; जैसे भारतेन्दु ने "नीलदेवी" मे दृश्य का प्रयोग किया है। अत डा० सत्येन्द्र का यह विचार सही है कि संभवत. सब से पहले "अक" शब्द को ही दृश्य का पर्याय माना गया होगा। संस्कृत नाटको में अक का विधान तो होता है, दृश्य का नही। फलत नयी प्रणाली के नाटकों में अंक को वही स्थान दिया जा सकता है, जो दृश्य को है।[1]

संकलन त्रय मे केवल वस्तु सकलन मात्र पर दृष्टि रही, समय तथा स्थान के सकलनो पर कोई ध्यान नही दिया गया। अतः कृत्रिमता आ गई।

इस काल के एकाकियो का प्रारम पुरानी संस्कृत नाट्यशास्त्र की परिपाटी के अनुसार मगलाचरण या नान्दी से होता है। कुछ एकाकियो में नटी तथा सूत्रधार प्रवेश करते है और प्रारम्भिक कथोपकथन में एकांकी की मूल समस्या की ओर निर्देश करते हैं। प्रायः ये एकाकी जनता को नीति, धर्म, सदाचार अथवा समाजसुधार सम्बन्धी शिक्षा देने के हेतु निर्मित होते थे। अत. मूल समस्या को प्रगट करने वाले वाक्य, दोहे, उद्धरण मुख पृष्ठ पर लिखे होते थे। उदाहरणार्थ राधाकृष्ण कृत "धर्मालाप" के मुख पृष्ठ पर लिखा हुआ एक सिद्धान्त देखिये, इसी का प्रतिपादन एकाकी में हुआ :

"बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सों सब विमुख किए हिन्दू घबराई॥"

श्री प्रतापनारायण मिश्र ने "कलिकौतुक रूपक" के सम्बन्ध में मुख पृष्ठ पर

१. डा० सत्येन्द्र "हिन्दी एकांकी" पृ० २४।

ही निर्देश किया है · "कलि कौतुक रूपक, जिसमें वडे वडे लोगो की वडी वडी लीलाएं विशेषत नगर निवासियो के चरित्र दिखलाये गये हैं ।" इसी प्रकार सिद्धान्त वाक्यो की परिपाटी के अनुसार श्री किशोरीलाल गोस्वामी के "चौपट चपेट" के मुख पृष्ठ पर "नीतिमाला" का यह श्लोक दिया गया है

"सतो जयन्ति भुवनेषु यथा खलाश्च
तद्वेज्ज ये पुरिति मे मनुते मनीषा
तद्दृष्ठित· कविगिरोहि भवन्ति शुद्धा
स्तस्मान्नते खलु भवन्ति कदापि निंदा: ।"

—नीतिमाला

इस युग के अधिकाश एकाकियो का अन्त प्राय भरत वाक्य से होता है। अतिम दोहा समस्या को स्पष्ट कर देता है। जैसे भारतेन्दु का "भारत जननी" का अन्तिम पद्य देखिये

"तजि द्वेष, ईर्ष्या, द्रोह, निन्दा, देश उन्नति सब चहैं।
अभिलाख यह जिय पूर्ववत धन धान्य मोहि सब हौं कहैं ॥"

प्रतापनारायण मिश्र के "कलिकौतुक रूपक" के अत में एक पात्र कहता है :

शिवनाथ—"तजि दुखप्रद दुरव्यसन पुरुष वनिता अरु बालक ।
मन क्रम वचन सी होहि सुखद आज्ञा प्रतिपालक ॥
निज गौरव पहिचान सजग रवि कसाटी जन सौं ।
करहि सबै सब काल देश हित तन मन धन सौं ॥
भारत में चहु दिशि प्रेममय धवल धुजा फहरत रहैं ।
कवि प्रतापहरि मिश्र की सुहृद हृदय आदर लहै ।"

प्रेमनाथ—"एवमस्तु, एवमस्तु । परमेश्वर आपके ऐसे उत्तम मनोरथ पूर्ण करें।"

संगीत, शेर, दोहे और कविताओ का विशेष प्रयोग

हिन्दी का निजी रगमच न होने के कारण इस काल के एकाकियों पर पारसी स्टेज का प्रभाव स्पष्ट है। १८७० ई० के आस-पास जो थियेट्रिकल कम्पनिया खुलीं, उनसे प्रेरित होकर अनेक सस्ते ढग के नाटक लिखे गये। यद्यपि इन नाटकों से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि न हो सकी, परन्तु उन्होंने हमें एक रगमच दे दिया, जो हमारे लिये सर्वथा नवीन वस्तु थी। इस काल के एकाकियो पर पारसी थियेटरो का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई पडता है। इनमें स्थान-स्थान पर गायन की भरमार है। पात्र प्राय: दोहा, कवित्त, सोरठा तथा नाना प्रकार के रागो का प्रयोग करते हैं। कथोपकथन में कहीं एक पात्र कविता की एक पक्ति बोलता है, तो दूसरा उसी के स्वर तथा तुक का ध्यान रखता हुआ, कविता में ही उत्तर देता है। इनमें काव्य का अश अधिक है। हरिश्चन्द्र की 'नीलदेवी" में गायन तथा स्थान-स्थान पर सगीत का प्रयोग है।

"भारत जननी" पर ओपेरा का बहुत अधिक प्रभाव पडा है और इनके प्रहसनो "अंधेर नगरी", "विषस्य विषमौषधम्", "भारत-दुर्दशा", "वैदिकी हिंसा" इत्यादि पर भी पारसी नाट्यशैली का प्रभाव है। मुशी तोताराम का "सीता स्वयवर" (स० १९६०) पारसी शैली पर विरचित गीति नाट्य है। कही-कही कुछ अदभुत और चमत्कारपूर्ण घटनाओ का सकलन एक व्यवस्थित रूप में प्रयुक्त हुआ है।

कृत्रिम नाटकीय साधनो का प्रयोग : इन एकांकियो में बहुत से कृत्रिम नाटकीय साधनो जैसे "स्वगत, प्रकट, आप ही आप, मन में प्रकाश" आदि का प्रयोग मिलता है। नैपथ्य के अन्दर से नाना प्रकार के प्रयोग वातावरण की सृष्टि के लिए किए जाते थे। ये एकाकी पढने के लिये लिखे गये हैं। रगमचीय सूचनाए अपर्याप्त, सक्षिप्त और केवल नाममात्र के लिए ही हैं, जिनमे प्राय स्थूल रूप मे स्थान, पात्रो के नाम, क्रिया और कभी-कभी मनोभावनाओ का भी निर्देश कर दिया गया है। जो कुछ रगमच सम्बन्धी निर्देश हैं, वे या तो बडे बगला नाटकों के अनुकरण पर हैं, अथवा नाटककार ने स्वय अपने मानसिक विकल्प से ही उन्हें प्रस्तुत किया है। कुछ एकांकियो की रग सूचनाओ में कथावस्तु को आगे बढने के लिये भी प्रयत्न मिलता है जैसे, "ग्राम पाठशाला नाटक" (जनवरी १८७५)। इस एकाकी में एक ग्रामीण अध्यापक की दुर्दशा का चित्र है, जिसके जीवन के आकर्षक स्थलो को दृश्यो के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मध्य में रंग सूचनाओ द्वारा कथानक को जोड दिया गया है। जैसे·

> ["मजलूम बहुत झुका कर बन्दगी करके घर जाते है, और प्रात काल उठकर गठरी बांध, डोर लोटा कधे पर डाल, पैजामा चढा, जूता हाथ में ले, मदरसे को रवाना होते हैं···यही सोचते-सोचते गाव के समीप आ जाते हे और एक किसान को खेत काटते हुए देखकर पूछते हैं :]

इस प्रकार की रग सूचनाओ से उस युग के अल्प-विकसित टैकनीक पर प्रकाश पडता है। ये मूलत पाठको के लिए लिखे जाते थे। इनके कथोपकथन सप्राण और प्राय गतिशील हैं। एकाकी का यह प्रारम्भिक रूप है। नाटककारो ने अपनी बातें काफी मार्मिक ढग से कही हैं।

४. हिन्दी के आरम्भ-कालीन एकांकीकार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : एकाकी के क्षेत्र में प्रथम प्रकार के प्रयोग करने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है।[१] उन्होने नाट्यशाला को पुनर्जीवित किया और नयी नयी नाट्य शैलिया साहित्यकारो के समक्ष प्रस्तुत की। उस संधिकाल में यदि

---

१. "एकांकी नाटकों की प्रथा इन्हीं से चली।" डा० सोमनाथ गुप्त, "हिन्दी नाटक सा० का इतिहास," पृष्ठ ८६ ।

भारतेन्दु के ये प्रयोग न होते, तो हिन्दी नाटको की सर्वश्रेष्ठ परम्परा का परिचय प्राप्त न होता। उनके युग में तो यह साहित्यिक जागृति चलती रही, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् फिर नाटकीय प्रगति में अवरोध उपस्थित हो गया। अत उन्हें युगान्तरकारी नाट्यकार के रूप में रखा जा सकता है।

भारतेन्दु ने पारसी स्टेज से प्रभावित सस्ते मानसिक हीनता और पतन करने वाले नाटको से हटाकर जन-रुचि का परिष्कार प्रारम्भ किया। वे सस्कृत के आदर्शवादी आदर्श ले मौलिक प्रतिभा के स्पर्श से साहित्यिक एकाकियो की रचना कर सके, जो उनके सामने खेले भी गये। वे भारत की तत्कालीन दुरावस्था प्रदर्शित कर अतीत भारतीय गौरव की स्मृति सजग करना चाहते थे। उनका कार्य नाट्यकारों के समक्ष नए २ प्रकार (dramatic forms) प्रस्तुत करना था। अत जहाँ उन्होने कई सस्कृत और वगला नाटको के अनुवाद किये, वहाँ एकाकी के क्षेत्र में प्रहसन, ओपेरा, व्यग्य, गीति रूपक, नाट्यरासक या नाट्य-रूपक, भाण इत्यादि मौलिक एकाकी भी विनिर्मित किये। भारतेन्दु के एकाकियो का निर्माण मूलत सस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार हुआ है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नही कि वे अग्रेजी से प्रभावित नही हुए।[१]

भारतेन्दु पर अग्रेजी भाषा और साहित्य का प्रभाव था, तथा उन्हें अग्रेजी के प्रति दिलचस्पी थी। वगला में अग्रेजी का आधार लेकर जिन नाटको का निर्माण हुआ था वे उनसे प्रभावित थे। अपने 'नाटक" नामक निबन्ध में इस बात का सकेत किया है कि बिना अग्रेजी के ज्ञान के उत्तम नाट्य रचना नही हो सकती। सिद्धान्त की दृष्टि से वे अग्रेजी नाट्यकला का अध्ययन आवश्यक समझते थे। स्वय उन्होंने अग्रेजी का अध्ययन स्कूल में रहकर किया था। नाट्य प्रिय अग्रेजी सभ्यता का उत्थान वे देख रहे थे। उन्होने अपने समय के नाट्य साहित्य का अध्ययन किया था, किन्तु उसमें उन्हें किसी प्रकार का नाट्य कौशल नहीं दिखाई दिया। उन्होने नाट्य रचना का अभ्यास सस्कृत के अनुवादों से किया। अग्रेजी नाटकों से उनका कोई विशेष परिचय नहीं था पर शेक्सपीयर की प्रतिभा से वे प्रभावित अवश्य थे। "दुर्लभ वन्धु" उनका प्रारम्भकालीन अनुवाद है। अग्रेजी के इस अनुवाद के साथ उन्होने मौलिक नाटको का भी क्रम जारी रखा। यद्यपि आपने पौराणिक और ऐतिहासिक कथानक अधिक चुने, तथापि उनका नाटकीयकरण सर्वथा मौलिक है। रचना शैली में सस्कृत नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तो से प्रभावित होते हुए भी भारतेन्दु ही हिन्दी के मौलिक एकाकीकार हैं। अपने इस रूप में भी हम उन्हें बहुमुखी और बहुरगी पाते हैं।

---

१ डा० रामरतन भटनागर नाट्य रचना के सम्बन्ध में हम भारतेन्दु का प्राचीन और अर्वाचीन शैली का अच्छा अध्ययन पाते हैं। भारतेन्दु, पृष्ठ ८२।

५. भारतेन्दु के एकांकी सम्बन्धी प्रयोग

इस काल मे एकाकी का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व न था। भारतेन्दु जी ने संस्कृत नाट्यशास्त्र से लक्षण लेकर थोडे से रूपकों के प्रयोग प्रस्तुत किए हैं। इन प्रयोगो में भी कुछ में व असफल रहे है, कुछ के विषय में सन्देह है कि वह किस नाटकीय उपभेद का उदाहरण है। दृश्य और अंक के प्रयोग में स्पष्टता नही है। कुछ में दृश्यो की अधिकता है, तो कुछ मे गायन और स्थान-स्थान पर संगीत का प्रयोग है। स्वयं भारतेन्दु ने कुछ के सम्बन्ध में प्रकार का उल्लेख कर दिया है; जैसे "भारत दुर्दशा" को नाट्यरासक, "धनजय विजय" को व्यायोग, "माधुरी" को रूपक, "अधेर नगरी" को प्रहसन और "विषस्य विषमौषधम" को भाण कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि वे उपभेदो के रूप तत्कालीन नाट्यकारों के समक्ष प्रस्तुत कर उन्हे नाटकीय साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए प्रेरित कर रहे थे।

डा० सत्येन्द्र ने लिखा है कि "भारतेन्दु जी के मौलिक नाटको में 'चन्द्रावली" और "अन्धेर नगरी" तो नाटक है शेष सब एकाकी।[1]" आकार की दृष्टि से यह मत ठीक भी है, क्योकि भारतेन्दु जी ने "अंक" और "दृश्य" शब्दो का मनमाना प्रयोग किया है। जहा वे वास्तव में "दृश्य" लिखना चाहते है वहा "अक" लिख गये हैं। उदाहरणार्थ "वैदिकी हिंसा" में अंक के स्थान पर दृश्य ही अभिप्रेत है। गर्भांक का प्रयोग भी दृश्य के लिए किया गया है। 'सती प्रताप" मे गर्भांक का प्रयोग है। "नीलदेवी" में दृश्य का प्रयोग है। सभवत "अंक" शब्द को ही "दृश्य" का पर्याय माना गया होगा। सस्कृत नाटको में अक का विधान तो होता है, दृश्य का नहीं। फलत. नयी प्रणाली की नाटक योजना में अक को वही स्थान दिया जा सकता था जो दृश्य को है।'[2]

इसी अनिश्चितता के कारण कुछ आलोचको, जैसे डा० सोमनाथ गुप्त, ने "चन्द्रावली" को एकाकी की श्रेणी में रखा है।[3] जैसे पहले कहा गया है आकार की दृष्टि से यह एकाकी जैसा ही लगता है, किन्तु स्वय भारतेन्दु ने इसे छोटे-छोटे चार अको में विभाजित कर दिया है। अत इसे नाटक ही मानना उचित है, एकाकी नहीं। निष्कर्ष यह है कि भारतेन्दु एकाकी लेखन के नए आदर्श प्रस्तुत कर रहे थे, यद्यपि ये प्रयोग पूरी तरह संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुकूल न थे। नई पुरानी मिश्रित प्रणालियो के अनुसार उनका निर्माण हुआ था। उनके समकालीन अन्य नाट्यकारो ने भी अनेक प्रकार के एकाकी इन्ही आदर्शों पर लिखे थे।

---

१. डा० सत्येन्द्र, "हिन्दी एकांकी" पृष्ठ २४।
२. वही।
३. देखिए डा० सोमनाथ गुप्त, "हिन्दी ना० सा० का इतिहास," पृष्ठ ८१।

भारत जननी (१८७७) भारतेन्दु ने इसके द्वारा ओपेरा का उदाहरण प्रस्तुत किया है। बगला के किसी कवि के "भारतमाता" नामक बगला नाटक का अनुवाद एक ही बडे दृश्य में नियोजित है। इसमें भारत सन्तानो की तत्कालीन दुर्दशा और गौण रूप से अतीत गौरव का वर्णन करते हुए राष्ट्रप्रेम उत्पन्न करने की भावना को मुख्यता प्रदान की गई है। गीतो और कविताओ में सुधारवादी तत्व विशेष रूप से मुखरित हो गया है। सूत्रधार का प्रारम्भिक कथन ही देखिये —

सूत्रधार—"जगतपिता जग जीवन जागो, मगल मुद दरसाओ।
तुव सोए मनु सोए, तिनि कह जागि जगाओ।
अब बिनु जागे काज सूरत नहिं आलस दूरि बहाओ।
हे भारत भुवनाथ भूमि निज बूडत आनि बचाओ।"

इस गीति-नाट्य में ठुमरी, परज, कलिगडा, राग बसन्त, होली, रागचेती, सोरठा, मल्हार, दोहे इत्यादि का पर्याप्त प्रयोग हैं। भारत की दुरावस्था, विदेशी शासको का मनमाना अत्याचार देखकर देशभक्त भारतेन्दु के मन में जो प्रतिक्रिया हुई उसकी एक झलक इस गीतिनाट्य में प्रस्तुत की गई है। भारत माता सोये पडे भारतवासियो को देखकर कहती है —

"इन्हें तो अज्ञानान्धकार में पडे रहने के कारण दिग् भ्रम हो गया है और इसी हेतु नेत्र निमीलित होकर ये इस दशा में पडे है देखो बेटा, हमारा धन, आभूषण, वसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गये हैं ?"

यह उपदेश प्रधान रचना है जिसमें भारत की दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत किया गया है। भारत की दुरावस्था के कारणो जैसे फूट, वैर, कलह, कायरता, बहुधर्म, छुआछूत आदि की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करना इसका उद्देश्य है। महारानी विक्टोरिया की प्रशसा कई बार कराई गई है। इसमें स्वदेशभक्तिपूर्ण होली मनोहर है। नाटकत्व कम तथा उपदेशात्मकता अधिक होते हुए भी राष्ट्रप्रेम की भावना ने इसमें विचित्र शक्ति भर दी है। 'भारत जननी" की टैकनीक पर पाश्चात्य ओपेरा का प्रभाव है।

धनंजय विजय (संवत् १९३०) **व्यायोग** यह प्राचीन सस्कृत प्रणाली पर कवि काचन कृत एक संस्कृत व्यायोग के आधार पर निर्मित हुआ है। इसमें पाडवो के अज्ञातवास के अन्तिम दिन अर्जुन द्वारा कौरवो का परास्त होना और पाडवो का प्रकट होना चित्रित किया गया है। गद्य के स्थान पर गद्य और पद्य के स्थान पर पद्य देकर भारतेन्दुजी ने अनुवाद को प्रामाणिक बनाया है। अनुवाद होने पर भी यह स्वतन्त्र एकाकी की भाति रोचक और मौलिक प्रतीत होता है। इसका नायक अर्जुन गम्भीर, दृढव्रती, धीरोदात्त, नायक है। पात्रो की बहुलता है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें स्थान और समय की इकाइयो का सुन्दर निर्वाह हुआ है। इसमें वीर रस की प्रधानता है। पात्रो में स्त्रिया कम और पुरुष पात्र अधिक हैं। कथोपकथन लम्बे

और काव्यमय है ।,गद्य कम, पद्य भाग अधिक है । रगमच तथा पर्दों की न्यूनता को सुन्दर काव्यमय वर्णनो से पूर्ण किया गया है । स्टेज सूचनाए केवल दृश्य की भावनाओ मात्र का सकेत करती है । अनुवादित होने पर भी इस पर भारतेन्दु की मौलिक प्रतिभा की छाप स्पष्ट है ।

पाखंड विडम्बना : (सं० १९२६) : रूपक

संस्कृत से अनूदित श्रीकृष्ण मिश्र कृत "प्रबोधचन्द्रोदय" के तृतीय अक का अनुवाद है । इसमें चित्रित किया गया है कि लोग किस प्रकार सरल सात्विक श्रद्धा को छोड़ कर शान्ति और करुणा रहित तामसी श्रद्धा से अभिभूत रहते है । भारतेन्दु जी ने इस सफलता से अनुवाद किया है कि स्वतंत्र नाटक का आनन्द आता है । कथानक अपने आप में पूर्ण है और अनुवाद जैसा नही प्रतीत होता । गीतो की बहुलता के कारण इस पर प्राचीन परिपाटी का प्रभाव स्पष्ट है और भारतेन्दुजी की काव्याभिरुचि भी स्पष्ट होती है । भाषा में कुछ मारवाडी भाषा के भी प्रयोग हुए हैं । कवित्त, सवैयों में व्रजभाषा का बाहुल्य है । वर्णन की दृष्टि से यह सफल है । किन्तु अभिनय की दृष्टि से इस रूपक का अधिक महत्व नही है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे नाटककार गीतो के प्रवाह में वह गया है ।

प्रेम योगिनी (१८७५) : यह एक अपूर्ण नाटिका है जिसे एकांकी के अन्तर्गत रखा जा सकता है । इसमें काशी की वास्तविक दशा का वर्णन कुछ आप वीती लिए हुए है । चार दृश्य है और कथानक विन्दुमात्र है । इसकी विशेषता यह है कि इसमें काशी के जीवन का चित्रमय प्रदर्शन है । हिन्दी एकाकियो में यथार्थवाद (Realism) का प्रचलन इस नाटिका से होता है । इसमें पात्रो का चरित्रचित्रण उन्ही की भाषा में किया गया है ।[1] "प्रेमयोगिनी" कार्य-व्यापार की तीव्रता, कथोपकथन की सफलता और हिन्दी गद्य की क्षमता का स्वत. प्रमाण है ।[2]

माधुरी : इस एकाकी में श्रीकृष्ण की प्रेमिका माधुरी का वृन्दावन में विरह का चित्र प्रदर्शित किया गया है । चम्पकलता तथा माधुरी के प्रारम्भिक वार्तालाप से पाठकों को माधुरी के विरह व्याकुल आर्त अन्तर का ज्ञान होता है । इसे हम झाकी कह सकते हैं, जिसमें माधुरी की प्रेम-व्याधि चित्रित है । नाटकीय दृष्टि से यह सफल नही है क्योंकि इसमें कार्य-व्यापार की न्यूनता है । समय, कार्य और स्थल की तीनो इकाइयों का पालन किया गया है । आदि से अन्त तक वृन्दावन को एक सुरम्य कुंज की शीतल छाया में यह प्रेम दृश्य समाप्त हो जाता है । एकाकी की चरम

१ डा० रामरतन भटनागर ने "प्रेम योगिनी" को यथार्थवादी स्केच का नाम दिया है । देखिए "भारतेन्दु, एक अध्ययन", पृष्ठ ७४ ।

२. डा० सोमनाथ गुप्त "भारतेन्दु की नाट्य कला" सा०मा० वर्ष २ से ४, पृष्ठ १४८ ।

परिणति के साथ ही इसका अन्त भी हो जाता है। प्रेमाधिक्य के चित्रण में कुछ कृत्रिमता है और कुछ स्थल अतिरंजित (Melodramatic) हो गये है। सखियो के कथोपकथन में कुटिलहास की झांकी है। मनोविश्लेषणात्मक शैली में निर्मित यह एकाकी वियोग शृंगार का सफल उदाहरण है।

भारत दुर्दशा (१८८०) नाट्यरासक या लास्यरूपक :

इसे भारतेन्दुजी ने नाट्यरासक या लास्यरूपक का नाम दिया है। उपरूपक के १८ भेदो में नाट्यरासक भी है। "भारत दुर्दशा" संस्कृत परिपाटी पर विरचित नाट्यरासक है, जिसमें कुल छ दृश्य हैं। राजनीतिक समस्याओ को प्रथम बार एकाकी का विषय बनाया गया है। यह उपदेश-प्रधान और समस्यामूलक रचना है। प्राचीन अग्रेजी के "मौरेलिटी प्लेज" की भाति इसमें मानवीय गुणों को मूर्तरूप प्रदान किया गया है। निर्लज्जता, आशा, भारत दुर्दैव, सत्यानाश, आलस्य, मदिरा अधकार, रोग इत्यादि पात्र लेखक ने उपदेश देने और तत्कालीन सामाजिक दुरावस्था को प्रस्तुत करने के लिए अपनी कल्पना के बल पर प्रस्तुत किये हैं। इसमें नान्दी तो नही मिलता, मगलाचरण अवश्य है, किन्तु यह मगलाचरण मूल नाटक का अभिन्न भाग या प्राक्कथन नही है।

नीलदेवी (१८८१) गीतिरूपक :

"नीलदेवी" को एकाकी माना जाय अथवा नही। इस विषय पर आलोचकों के विभिन्न मत हैं। प्रथम तो प्राचीन नाट्य-शास्त्र में वह उपभेद ही नहीं मिलता, जिसमें इसे रखा जा सके। यह प्रत्यक्ष है कि अको के आधार पर इसका विभाजन नही हुआ है। दस दृश्यो में कथावस्तु नियोजित है। यह नवीनता इसे एकांकी-कोटि में ले आती है। प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल ने आकार-प्रकार की इस नवीनता के कारण ही इसे आधुनिक एकाकी का पूर्वरूप कहा है।[1] डा० सत्येन्द्र ने इसकी कथावस्तु की गतिशीलता के कारण इसे एकाकी माना है।[2] आकार-प्रकार और प्रभाव-एकता की दृष्टियो से इसे एकाकी ही मानना उचित है।

"नीलदेवी" एक वियोगान्त ऐतिहासिक गीतिरूपक है, जिसमें सगीत के माध्यम से कथासूत्र को विकसित किया गया है। सूत्रधार अथवा नान्दी नही है। प्रथम दृश्य में तीन अप्सराओ का गान, जिसमें भारत की क्षत्राणियो की स्तुति है,

---

१ "रूपक का यह भेद (गीतिरूपक) या उपभेद प्राचीन नहीं है। अत प्राचीन शास्त्र में उसके नियम खोजने व्यर्थ हैं। अकों के स्थान पर इसका विभाजन नहीं हुआ है, वरन् केवल दस दृश्यों में इसकी सामग्री पेश की गई है। यह एक विशेष नवीनता है। यदि इसे आधुनिक एकाकी का पूर्वरूप कहा जाय तो अनुचित न होगा।" प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल "नीलदेवी" भूमिका से।

२ "नाटक के कथासूत्र का एक दम इस प्रकार गतिवान हो जाना एकांकी का सबसे प्रमुख लक्षण है, जो इसमें "नीलदेवी" में मिलता है।"—डा० सत्येन्द्र "हिन्दी एकांकी" पृ० २५।

रूपक का मूल संदेश प्रकट करता है। नीलदेवी के शौर्य, चातुर्य, युद्धोत्साह, स्वदेश-भक्ति आदि सद्गुणों का दिग्दर्शन कराना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। भिन्न-भिन्न रागों जैसे झिंझोटी, कलिंगड़ा, लावनी, विहाग, ठुमरी इत्यादि का उपयोग भी किया गया है। गौण रूप से भारतेन्दु जी ने स्वदेशवासियों को उनकी अवनति से सावधान कर नवीन राजनीतिक स्थितियों का परिचय कराया है।

निष्कर्ष यह है कि "नीलदेवी" में आधुनिक एकांकी के प्रायः सभी अंग बीज रूप में मिल जाते हैं। इस पर अंग्रेजी नाट्य-पद्धति की छाया है। केवल दस दृश्यों में कथावस्तु को प्रस्तुत किया गया है। एक संक्षिप्त पूर्वकथन के बाद कथासूत्र गतिवान होकर चरम सीमा पर पहुंचती है। सूत्रधार या नान्दी के स्थान पर हिमशिखर से तीन अप्सराओं का गान, एक नवीनता है। इस पर पारसी स्टेज का भी कुछ प्रभाव दिखाई पड़ता है जैसे आरम्भ में अप्सराओं द्वारा गायन तथा स्थान-स्थान पर संगीत का प्रयोग।[1]

भारतेन्दु के प्रहसन—भारतेन्दु जी जब हिन्दी में प्रहसनों पर प्रयोग कर रहे थे, तब उन्होंने संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रयोग प्रारम्भ किये। उनके प्रहसनों में से कुछ अंक के हैं, शेष एक से अधिक अंकों के हैं। प्रहसन को यदि सम्पूर्ण रूप से एकांकी के अन्तर्गत लिया जाय, तो सभी प्रकार के प्रहसन इसी श्रेणी में आ जाते हैं। कहीं-कहीं उन्होंने "दृश्य" के स्थान पर "अंक" और "गर्भांक" का प्रयोग किया है। हास्य की ओर भारतेन्दु की रुचि के दो कारण थे। सर्वप्रथम तो वह स्वयं ही विनोद-प्रिय थे तथा समाज-सुधार के लिए उन्होंने हास्य और व्यंग्य को ही चुना। द्वितीय यह कुछ पारसी कम्पनियों की मनोरंजनप्रियता का प्रभाव था। उनके आदर्शों के अनुसार कलात्मक मनोरंजन ही प्रहसन का प्राण था।

भारतेन्दु के प्रहसन सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखे गये हैं। मनोरंजन के साथ-साथ समाज की रूढ़ियां, जीर्ण शीर्ण मान्यताओं, तथा समाज की निर्बलताओं पर उन्होंने उंगली रख दी है। इनमें बौद्धिक अपील है तथा परोक्ष रूप से ये किन्हीं विशेष परिणामों पर पहुंचने के लिए निर्मित हुए हैं। हास्यपूर्ण प्रसंगों, कविताओं, और स्थितियों का इनमें बाहुल्य है। कहीं कहीं संस्कृत के उद्धरण भी आ गये हैं, किन्तु उनमें पूर्ण रूप से संस्कृत शैली का अनुकरण नहीं मिलता।[2]

अंधेर नगरी. प्रथम प्रहसन "अंधेर नगरी" (संवत् १९३८) के दृश्यों का प्रहसन है। बनारस में बंगालियों और हिन्दुस्तानियों ने मिल कर एक छोटा सा नाटक

---

१. डा० नगेन्द्र, "हिन्दी एकांकी", पृ० १५।

२ "अपने प्रहसनों में भारतेन्दु ने प्राचीन नाट्यकला के सिद्धान्तों को सर्वदेश नहीं अपनाया। कथावस्तु की दृष्टि से उनकी रचनाओं में कोई प्रख्यात आख्यान नहीं है।"

—डा० सोमनाथ, "हि० एकांकी" पृ० १२।

"समाज" दशाश्वमेध घाट पर किया। उसी में "अंधेर नगरी" का प्रहसन जोड़ा गया। इसे भारतेन्दु ने नाटक के पात्रों के अनुसार एक ही दिन में लिख दिया था। इसकी मूल समस्या यह है —

महन्त : "बच्चा बहुत लोभ मत करना। देखना, हां !
लोभ पाप का मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी ना कीजिए या में नरक निदान।"

फिर भी चेले मोह में फसकर दडित होते है। यह एकाकी उपदेशात्मक है। इसका उद्देश्य निम्न दोहे से प्रकट होता है —

"जहां न धर्म, न बुद्धि, नहिं नीति न, सुजन समाज,
ते ऐसहि आपुहि नसे, जैसे चौपट राज।"

इस प्रहसन की काव्य-चातुरी दर्शनीय है। दृश्यो की सख्या अधिक है और थोडी-थोडी देर पश्चात् दृश्य परिवर्तन होता है। अन्तिम दृश्य में चरम सीमा आती है और राजा को फासी लगाने पर एकाकी समाप्त होता है। संवाद रोचक और काव्यमय है। हास परिहास साधारण कोटि का है।

विषस्य विषमौषधम् (संवत १९३३) यह सस्कृत परिपाटी के भाण या मोनो-ड्रामा का एक उदाहरण है। इसमें मल्हराव के सिंहासन-च्युत होने का इतिहास हास्यमय शैली में चित्रित किया गया है और परस्त्री-गमन की निन्दा की गई है। जैसे—

"पर तिय रत रावन बध्यो, पर धन रत जिमि कंस।
रामकृष्ण जय सूर ससि, करन मोह अघ धंस।।"

इस भाण का नायक मल्हराव धूर्त के रूप में चित्रित है। लक्ष्मीबाई का पति जीवित होने पर भी वह कौशल और धूर्तता से उससे विवाह करता है, किन्तु यह विवाह उसके पतन का कारण बनता है। इसमें पात्र केवल एक भन्डाचार्य है। कथानक का आधार ऐतिहासिक है, किन्तु अनुचित रीति से अंग्रेजी राज्य की प्रशसा की गई है। मध्य में हास्य-रस की पुट है। सस्कृत के उद्धरण भी मूल उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए काम में लाये गये हैं। इस मोनोड्रामा की सृष्टि सस्कृत नाट्य-प्रणाली के अनुसार हुई है। भारतेन्दु ने बड़े कलात्मक ढग से सन् १५९९, जब अंग्रेज व्यापारिक दृष्टिकोण से भारत में आये, से लेकर १८१५ तक के भारतीय इतिहास को चित्रित किया है।

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति[1] (संवत् १९३०) इस प्रहसन में हिंसा अहिंसा की व्याख्या की गई है। नान्दी के प्रथम दोहे में ही प्रहसन का विषय स्पष्ट कर दिया गया है।

नान्दी "बहु बकरा बलिहित करैं, जाके बिना प्रमान।
सो हरि की माया करैं, सब जग को कल्यान।।"

---

१ "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" एकाकी नाटकों का पूर्व रूप है"—डा० सत्येन्द्र।

इस प्रहसन का कथानक बहुत सीधा सादा है। एक नैतिक उद्देश्य (माम भक्षण, व्यभिचार तथा मद्यपान की हानिया) लेकर एक साधारण सा कथानक निर्मित कर लिया गया है। एकाकीकार का चित्त लम्बी लम्बी वक्तृताओं तथा गीतों में और अप्रत्यक्ष रूप से मदिरा की हानिया दिखाने में रमा है। अन्तिम दृश्य अति नाटकीय हो गया है। यमराज के दूत पुरोहित और मन्त्री को सजा देते है, यह हास्यपूर्ण है। सक्षिप्त कथानक, कुछ प्रमुख तर्क, और घटनाओ की एकता इस प्रहसन की विशेषताए है।

इन प्रहसनो का मूल विषय अतीत भारत के गौरव का चित्रण, वर्तमान पतितावस्था पर विक्षोभ तथा भविष्य के कल्याण की आशा है। अपने नाट्य विधान मे भारतेन्दु संस्कृत के पूर्ण पक्षपाती नही है, यद्यपि उन्होने सस्कृत के अनेक उदाहरण हिन्दी नाट्य साहित्य में प्रस्तुत किए। यहा सस्कृत के अध्ययन के साथ निजी मौलिकता भी है। उनकी एकांकी कला में सस्कृत की उप-रूपक शैली और आदर्शो का अनुकरण है। हिन्दी में एकाकी के ढग के लघु नाटक न होने के कारण उन्होने सस्कृत के छोटे नाटक पढ़े। महाकवि भास, काचन, राजशेखर के कुछ एकाकी बड़े सफल है। इन्ही के आदर्शो पर उन्होने हिन्दी मे अनुवादित और मौलिक दोनो प्रकार के एकाकियो के प्रयोग किये। सस्कृत नाटको की भाति आपके एकाकियो मे गद्य और पद्य दोनो रहते है। उनमें काव्यमाधुरी का अधिक आनन्द आता है। आपके एकाकियो मे श्रवण सुखद संवादो की प्रचुरता है। कवितामय होने के कारण उनमें अभिनयशीलता की न्यूनता है। सस्कृत नाटको के नान्दी पाठ, सूत्रधार नटी, स्वगत, भरत वाक्य, गायन, दोहो आदि की भी योजना यत्र तत्र उपलब्ध है।

किन्तु जिस बात से हम विशेष प्रभावित होते है, वह उनकी प्रतिभा है। उन पर नये ढग से बगला नाटको तथा पारसी रगमंच का भी प्रभाव था। पारसी रगमच की दोहा-शेरवाली पद्धति की छाप उनके एकाकियो पर है। अग्रेजी का प्रभाव बग साहित्य के माध्यम से उनकी एकाकी-कला पर पड़ा है। यह प्रभाव प्रथम एकाकियो के बाह्य ढाचे में हुआ तथा अनन्तर क्रमश आदर्शो में प्रस्तावना का लोप, अंग्रेजी नाटको के ढग पर अक-विभाजन और दृश्य विधान, भरतवाक्य का अपेक्षाकृत कम प्रयोग, श्रव्य वस्तु का लोप आदि कुछ ऐसे लक्षण है जो भारतेन्दु धीरे-धीरे अपना रहे थे। भारतेन्दु की कला में ये तत्व धीरे-धीरे हिन्दी में आते हुए प्रतीत हुए। "वे नवीन विचार धारा से प्रभावित अवश्य हुए थे, किन्तु प्राचीनता से हटे नहीं थे।'

६. भारतेन्दु के समकालीन एकांकीकार

१. पं० बालकृष्ण भट्ट (१८४४ से १९१४) इनके छोटे-छोटे रूपक "प्रदीप" में प्रकाशित हुए १ शिक्षादान। २. जैसा काम वैसा परिणाम, ३. कलिराज की सभा, ४ रेल का विकट खेल, ५ बाल विवाह। इनमें अतिम तीन प्रहसन है, जो

"कवि वचन सुधा' में प्रकाशित हुए थे। भट्ट जी सुधारवादी एकांकीकार थे तथा तत्कालीन सामाजिक अनाचार के विरुद्ध आपने आवाज ऊंची की थी। "शिक्षादान" तथा 'जैसा काम वैसा परिणाम" एकांकी पहले पृथक्-पृथक् प्रकाशित हुए, तत्पश्चात् संयुक्त कर एक कर दिये गये थे। "शिक्षादान" (संवत् १९३४) लेखक की प्रारम्भिक अवस्था में विरचित है।

हिन्दी संसार ने "शिक्षादान" का इतना आदर किया और उसकी इतनी माग बढ़ी कि कुछ दिन बाद, उसकी एक भी प्रति कहीं न बची और इसका पुनः संस्करण करना पड़ा। फिर भी वही दशा हुई और प्रहसन हाथों-हाथ बिक गया। "दमयन्ती स्वयंवर" इनका पहला नाटक है जो इनके स्वसम्पादित "हिन्दी प्रदीप" में भी छपा था।

इसका कथानक सुधारवादी पद्धति का है।[1] इसमें यह चित्रित किया गया है कि एक शिक्षित भले गृह का पुत्र, जो बाह्य दृष्टि से अपने आप को सभ्य बनाये हुए है, कुसंगति के कुचक्र में पड़कर किस प्रकार अपने चरित्र को दूषित करता है। दूसरी ओर एक कुलवन्ती स्त्री निज चारित्रिक बल और बुद्धिमानी से अपने दुश्चरित्र पति को कुमार्ग से हटा कर सन्मार्ग पर लाती है।

भट्ट जी प्राचीन संस्कृत-शैली पर सुधारवादी आदर्श-मूलक एकांकियों की सृष्टि करते रहे। इनका प्रारंभ नान्दी सूत्रधार की प्रस्तावना से होता है। शैली सीधी-सादी, कथोपकथन लम्बे, उपदेशप्रद और भावात्मक तथा तन्त्र सरल है। छोटे-छोटे दृश्यों में "अंक" शब्द का प्रयोग है। आप गर्भांक का भी प्रयोग करते हैं तथा एकांकियों की चरम परिणति भरत वाक्य में होती है। उदाहरणार्थ, "शिक्षादान" के अंत में भरत मुनि का यह वाक्य दिया गया है —

"होंहि एक पतिव्रता रत सब भारत नर वर,
तर्जाहि कुपथ, पथ गहंहि धर्मकर दुर्गति तज कर,
तजि वेश्या संग रमन करहिं श्रद्धा निज तिय पर,
जासों सुधरहि दशा हीन भारत की सत्वर।"

भट्टजी के एकांकियों का एक आकर्षण रोचक प्रभावशाली और वाग्वैदग्ध्य-युक्त भाषा है। परिहास वातावरण की सृष्टि पर आपका पूर्ण अधिकार है। जोरदार भाषा के कारण आपके संवादों में विशेष बल आ गया है। कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्द जैसे "फ़ेरा, एप्रेंटिस" तथा पूरे-पूरे अंग्रेजी वाक्यों का प्रयोग मिलता है। जैसे "शिक्षादान" प्रहसन के प्रथम दृश्य, पृष्ठ ४ पर एक अंश देखिये :—

रसिकलाल : "हां रिफ्रेशमेंट के लिए कुछ चाहिए। वेट ए लिटिल,
आई हैव वांट सम वीटल्स फ्राम क्विनरस दिस मौर्निंग।"

---

१. धनंजय भट्ट सरल "दमयन्ती स्वयंवर" भूमिका से।

राधावल्लभदास : "वेरी वेल, प्लीज लुक शार्प थेम।"

भट्ट जी के कथोपकथन पारसी ढग के दोहा-चौपाई वाली पद्धति से युक्त है और अभिनय की दृष्टि से भी सफल कहे जा सकते हैं। रग सूचनाए भी अपेक्षा परिष्कृत है। विधान की दृष्टि से भट्टजी ने एकाकी-कला को कोई नवीन वस्तु प्रदान नही की है। मनोवैज्ञानिक चरित्र विकास की ओर उन्होने ध्यान नही दिया। भारतेन्दु जिस परम्परा को स्थिर कर गये थे, उसी को उन्होने स्थिर रखा। "इनके छोटे छोटे रूपक वास्तव में उस समय के सामाजिक अनाचार पर हृदयस्पर्शी लेख है।"[1] यह मत ठीक नही है, क्योकि भट्टजी ने अपने रूपको में सजीव कथोपकथन का सफल प्रयोग किया है। इनके प्रत्येक रूपक में एक कथानक है या एक ही समस्या, विषय, घटना को उभारा गया है। इनमें विस्तार नही है और सहायक विषय के लिए कोई स्थान नही है। क्षेत्र सकुचित पर प्रभाव साम्य सब रूपको में है।

२. राधाचरण गोस्वामी : वृन्दावन निवासी भारतेन्दु युग के प्रभावशाली नाट्यकार राधाचरण गोस्वामी (१८५८ से १९२५) अपने व्यग्य-मिश्रित हास्य के लिए उल्लेखनीय है। इनके एकाकियो मे जहा एक ओर व्यग्य-मिश्रित हास्य के साथ कथा-वस्तु द्वारा समाज सुधारणा की गई है, वहा दूसरी ओर नाटक परम्परा को आगे बढ़ाया गया है। "इनका सा नपा-तुला व्यंग्य, सधा हुआ शिष्ट हास्य, गठा हुआ कथानक, स्वाभाविक वार्तालाप आदि अन्य नाटको में भी मिलेंगे, परन्तु हिन्दू-मुसलमान, किसानो की एकता और जमीदारो के प्रति उनकी विद्रोह भावना हिन्दी साहित्य में नयी है।[2] उन्होने सामाजिक एव राजनीतिक नवीन चिन्तन को अपने एकाकियो में मुखरित किया है।

राधाचरण गोस्वामी के उल्लेखनीय एकाकी इस प्रकार हैं. १. "सती चन्द्रावली" (१८९०), २ "श्री दामा" (१९०४), ३ अमरसिह राठौड (१८९०), ४. "बूढे मुंह मुहासे" (१८८७), ५. "तन मन धन श्री गुसाई जी के अर्पण" (१८९०), ६. "भग तरग" (१८९२), ७. सरोजिनी (अनुवाद) आदि। कुछ एकाकियो में आपकी आदर्शवादी मनोवृत्ति का परिचय मिलता है। आपकी विशेषता यह है कि अंको या गर्भाकों के स्थान पर आपने केवल दृश्यो में ही कथा-वस्तु को सजोया है।

"सती चन्द्रावली" सात दृश्यो का एकाकी है, जिसमें पातिव्रत्य का आदर्श, धर्म की दृढता तथा समाज की शुभचिन्तना प्रकट की गई है। "श्री दामा" पाच दृश्यो का एकाकी है, जो सुदामा के दारिद्रय मोचन के कथानक पर मित्र भाव का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करता है। "अमरसिह राठौड़' ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वीर पुंगव अमरसिह राठौड़ के चरित्र गौरव को चित्रित करता है।

---

१. डा० जगन्नाथदास।

२. डा० रामविलास शर्मा कृत "भारतेन्दु युग," पृष्ठ ८७।

राधाचरण गोस्वामी के प्रहसन विशेष उल्लेखनीय हैं १ "बूढे मुँह मुहासे", २ "तनमन धन गुसाईं जी के अर्पण", और ३ "भंग तरंग" आदि। इनमें आपने समाज की प्रचलित रूढ़ियो पर कटु व्यग्य किया है। "तन मन धन गोसाँई जी के अर्पण" आठ दृश्यो का लघु प्रहसन है, जिसमें नाट्यकार की सहानुभूति आधुनिक शिक्षा तथा रोशनी के प्रगतिशील विचारो से है। गुसाई लोग भक्तो को हर प्रकार से कैसे लूटते है, जो भोली भाली सुन्दर स्त्रिया पुत्र कामना मे गुसाई जी के पास जाती है, उनकी कैसी दुर्गति हो सकती है, कुटनियां कैसे घृणित कार्य किया करती है, इत्यादि का भण्डा फोड इस एकाकी में किया गया है। मूर्ख सेठ रूपचन्द गुसाँई जी से आशीर्वाद पाने के निमित्त बहू को उनकी सेवा में भेज देते हैं, किन्तु नयी शिक्षा प्राप्त गोकुल द्वारा उसकी लज्जा की रक्षा होती है। भ्रष्टाचारी गुसाई जी को हवालात हो जाती है। इस प्रहसन में कथोपकथन व्रजभाषा की पुट लिए हुए है। नवीन युग की बौद्धिक जागृति का स्वर इसमें मुखरित हुआ।

"बूढे मुह मुहासे" में भगवद्भक्त जमीदार लाला नारायनदास की वासना-लोलुपता, पतन, इन्द्रिय सुख कामना, झूठा दिखावा और धर्म स्पष्ट किये है। भगवद्-भक्त नारायनदास पहले तो अपने मुसलमान आसामी मौला की पत्नी पर डोरे डालते है, फिर मायके आई हुई तेली की पुत्री को देखकर कहते है —

"गई न शिशुता की झलक, झलक्यो जोवन अंग।
दीपत देह दुहन की, मनो ताफता रग ॥"

अन्त में भडा फोड होता है। लाला नारायनदास को समाज के सन्मुख लोकलाज का ढोग बनाये रखने के लिए मौला को दो सौ रुपये की घूस देकर शान्त करना पडता है। इस प्रकार ढोंगी व्यक्तियो की कलई खोल कर उनकी कमजोरियों पर प्रकाश डाला गया है।

आपका व्यग्य इस काल के अन्य नाट्यकारो की अपेक्षा अधिक नूतनता का द्योतक है तथा उसमें हास्य की पर्याप्त मात्रा है किन्तु इसे साधारणत उच्चकोटि का व्यग्य नही कहा जा सकता। हिन्दू, मुसलमान कृषको की एकता एव जमीदारो के प्रति उनकी विद्रोह भावना इनके एकाकियो में प्रकट हुई है। अपने प्रहसनो में राधाचरण गोस्वामी ने समाज की प्रचलित त्रुटियो पर व्यग्य किया है। "विचारो की उग्रता और प्रगतिशीलता में यह अपने युग के अन्य सभी लेखको से सभवत आगे थे।"[१]

एकाकी टैकनीक की दृष्टि से आपकी प्रतिनिधि रचना "श्री दामा" है, जिसमें पाच दृश्य तथा ११ पृष्ठो में समग्र कथावस्तु को सजीवता से प्रकट किया गया है। इसका प्रारम्भ पुरानी सस्कृत नाट्यशैली की परम्परा से होता है। प्रारम्भ नान्दी से होता है, जिसमें एक कवित्त तथा छप्पय में द्वारिकेश भगवान की जयजयकार है। नटी

---

१ देखिए डा० रामविलास शर्मा कृत "भारतेन्दु युग", पृष्ठ ८०।

और सूत्रधार प्राचीन संस्कृत परिपाटी के बड़े नाटकों की भांति "श्री दामा" एकांकी के अभिनय के लिए आग्रह करते हैं। यह प्रारम्भिक प्रस्तावना मूल एकांकी से पृथक है। इस एकांकी के दृश्य संक्षिप्त हैं और वस्तु-संकलन का निर्वाह है। इसी प्रकार आपके "सती चन्द्रावली" मंगलाचरण से तथा "अमरसिंह राठौर" वैतालिकों के गाने से प्रारम्भ होते हैं।

शैली में गोस्वामी जी संस्कृत की नाट्य-परम्परा से मुक्त न हो सके, यद्यपि नवीन चिन्तन और नवीन प्रयोग उन्होंने किए। उनके कथानक गठे हुए, और कथोपकथन स्वाभाविक था। कुछ अंशों में एकांकी कला का नूतन विकास प्रतीत होता है, जैसे इनके कथोपकथन मर्मस्पर्शी, वाक् वैदग्ध्ययुक्त व चरित्र की चारित्रिकता प्रकट करने वाले हैं। यथासम्भव स्वाभाविकता की रक्षा का भी प्रयत्न है। एक ही अंक में अधिक दृश्य देकर समस्त कथावस्तु को नियोजित किया है, यद्यपि ऐसा करने तथा एकांकी के वाह्य स्वरूप की रक्षा में दृश्य अनावश्यक रूप से बढ गये हैं। विषय की एकता, मूल समस्या पर केन्द्रित रहने की सम्भावना, रंगमंच निर्देशों में दृश्य के रूप-रंग तथा पात्रों की वेशभूषा पर प्रकाश इनकी विशेषताएं हैं।

गोस्वामी जी के एकांकियों में कुछ त्रुटियां भी हैं जैसे स्थान की इकाई का पालन आप नहीं कर सके हैं। दृश्यों के विधान में कोई विवेक प्रदर्शित नहीं किया गया है। कुछ दृश्यों को व्यर्थ ही बढ़ा दिया गया है। कुछ के द्वारा कार्य-व्यापार में कोई वृद्धि नहीं होती, न कथानक सूत्र ही आगे बढ़ता है। 'श्री दामा" एकांकी में प्रथम दृश्य में श्री दामा तथा उनकी पत्नी में वार्तालाप है। द्वितीय में टूटी छप्पर वर्षा के कारण टूट-फूट कर धराशायी हो जाता है। ये दोनों दृश्य परस्पर संयुक्त किये जा सकते हैं। तृतीय दृश्य में श्री दामा का द्वारिका प्रस्थान, तथा चतुर्थ में कृष्ण मिलन की योजना है।

कुशल एकांकीकार इस सम्पूर्ण कथानक को दो दृश्यों में ही चित्रित कर सकता था। पात्रों के चित्रण की ओर कोई विशेष आग्रह नहीं है। केवल कथानक मात्र को प्रकट कर देना ही नाट्यकार का इष्ट है। आप पद्य-प्रेम से मुक्त न हो सके। कथोपकथनों में यत्र-तत्र संस्कृत के वाक्यांशों के प्रयोग भी हैं। राग भैरवी, राग विलावल इत्यादि को भी अनावश्यक रूप से ठूंस दिया है। "प्रवेश', "प्रस्थान" "स्वगत" "प्रकट" इत्यादि का भी उपयोग है। अन्त में भरत-वाक्य की भी व्यवस्था है। "श्री दामा" का अन्तिम पद्य इस प्रकार है —

"करुणा करुणानाथ की कछु कहत न आवै। दीन दरिद्री मित्र को हृदय लगावै।
दई विपुल सम्पत्ति जो इन्द्रहु नहिं पावै। शेष महेश सुरेश तो जाके पद गावै।
विप्र सुदामा मित्र को नाटक जो गावै। पाप ताप सब दूर होंय हरिचरण मिलावै।
करुणा करुणा नाथ की कछु कहत न आवै॥"

३. पं० प्रतापनारायण मिश्र : मिश्र जी के १. "प्रेम पुष्पावली", २ "भारत

दुर्दशा" रूपक (१८९०), ३ "मन की लहर", ४ 'शृंगार विलास", ५ "जुआरी खआ ी", ६ "कलिकौतुक" (१८९०) इत्यादि रचनाए एकाकी के क्षेत्र में रखी जा सकती हैं। आपका प्रतिनिधि एकाकी "कलिकौतुक" चार दृश्यो में समाप्त हुआ है, जिसमें बडे-बडे सभ्य पुरुषो की चरित्र निर्बलता, मास-मदिरा सेवन, व्यभिचार, साधुओ, भाडो की दुष्टता चित्रित किए गये है। मिश्रजी की दृष्टि चरित्रचित्रण पर है, जैसा कि उन्होने भूमिका में लिखा है .——

"यह रूपक बहुत शोघ्रता एव अव्यवस्थित चित्तता में लिखा गया है। अतः इसके दोष क्षमा हो, केवल आशय पर ध्यान रखिये ··· क्यो भाई, सब प्रकार के ग्रन्थ बनाओगे, पर आचरण न दिखाओगे इधर भी ध्यान दीजिए।"

"कलिकौतुक रूपक" का प्रारम्भ एक सक्षिप्त नान्दी से होता है। अन्त में एक पद्य में लेखक ने अपना मन्तव्य सार रूप से व्यक्त कर दिया है। एकाकी के दृष्टिकोण से इसमें कई विशेषताए हैं। केवल ४ दृश्यो में सम्पूर्ण कथावस्तु को पूर्ण कर दिया गया है, जिसमें प्रारम्भ, क्रमिक विकास, कौतूहल तथा अन्त विद्यमान है।

डा० सत्येन्द्र ने इनमें गानों का समावेश बताया है। यह मत निराधार है, क्योकि "कलिकौतुक" में केवल शराबखाने के द्वितीय दृश्य में कुछ गानो का निर्देश मात्र है। शराब में धुत् कुछ शराबी गुनगुनातेमात्र है। सब गिर पडते हैं। बेताल बाजे बजते रहते है।

इस रूपक की सबसे बडी विशेषता इसके वार्त्तालाप है। ये सजीव होते हुए भी यथार्थ जीवन से सम्बन्ध रखने वाले स्वाभाविक है। कही छोटे-छोटे तो कही बडे कथोपकथन भी हैं। आप ही आप, प्रकट, स्वत, प्रकाश्य, मन में, आप ही" इत्यादि कृत्रिम नाटकीय प्रसाधनो का उपयोग होते हुए भी कथोपकथन चारित्रिकता प्रकट करने वाले हैं। "स्वगत" का प्रयोग चरित्रो की वास्तविकता समझने में पाठको की सहायता करता है। इन कथोपकथनो के मनोवैज्ञानिक अध्ययन द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि लाला किशोरीदास एक कलिकालिक भला मानुष है, मुशी शकरलाल उर्दू भक्त, पडित चडीदास बिगडैल देहाती, बाबू मायादास अग्रेजी भक्त, गप्पूमल सीधा बनिया, कैचासिंह एक कुमार्गी, भुशडीदास बगुलाभक्त, तथा प्रेमचन्द सच्चा देश भक्त है। मिश्र जी ने प्रत्येक प्रकार के वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रो का सृजन सफलता से किया है। रगसूचनाओ में स्पष्ट क्रियाओ का निर्देश नहीं है, केवल मोटे-मोटे सकेत मात्र कर दिये है। जैसे "शोक नाट्य के उपरान्त", "झिडक", शिवनाथ का घर, "शिवनाथ प्रेमचन्द और गप्पूमल बैठे हैं।" चम्पा का पान खाकर प्रस्थान और श्याम का नेपथ्य तक जाके रसिक बिहारी के गले में हाथ डाले हसते-हसते प्रवेश और दोनों का उपवेशन आदि।

मिश्र जी की भावना सामाजिक सुधारवादी रही है। अपने एकाकियो को उन्होने समाज की आलोचना का माध्यम बनाया। यद्यपि उनके कुछ एकाकियो

(जैसे कलिकौतुक रूपक) का हास्य उच्चकोटि का न हो सका तथापि उन्होंने समाज के सडे गले अंगो पर मार्मिक व्यंग्य किया है। जीवन की यथार्थवादी, किन्तु विनोदपूर्ण झाकी यहाँ हमे मिलती है। यथार्थवाद की दृष्टि से आपके एकांकी विशेष सफल है। संस्कृत तथा पारसी प्रणालियो के प्रभाव मे रहते हुए भी उन्होंने अपनी मौलिकता से हिन्दी एकांकी को आगे बढाया है। कही-कही अंग्रेजी के वाक्यो का अंग्रेजी भाषा ही मे प्रयोग किया गया है। वातावरण सृष्टि के लिए नेपथ्य से कुछ कहने की प्रवृत्ति का भी उपयोग किया है। उर्दू के कुछ शेरो का उपयोग भी है, पर अन्य एकांकीकारो की अपेक्षा कम है।

४. लाला श्रीनिवासदास (१८५१ से १८९७) : आपके चार नाटकों में से "प्रह्लाद चरित" ग्यारह दृश्यो का चरित्र प्रधान धार्मिक एकांकी है। प्रह्लाद की भक्ति प्रदर्शित करने के हेतु जय विजय के शाप से लेकर नृसिंह अवतार होने तक की कथा को एकांकी का कथानक बनाया गया है। इस एकांकी की कथावस्तु बडी शिथिलता और अकुशलता से विकसित हुई है। प्रारम्भ में संस्कृत परिपाटी जैसे प्रारम्भिक कथन के अनुसार सनकादि मुनि प्रवेश करते है और गाते है :—

श्रीपति चरण दरस कब पैहें,
अरुण नील अंभोज सरिसपद लख भव ताप नसे है,
ध्वजाकुंश अंकित महेशप्रिय कब नयनापथ ऐहें;
गंग सेवक सुखदाता कब निज दास बने है।"

"रणधीर और प्रेमी मोहिनी" लाला जी का एक अन्य एकांकी है। इसमें कथानक की नवीनता है, किन्तु तन्त्र की दृष्टि से शिथिलता है। आपने ऐतिहासिक घटनाओं को यथार्थ रीति से विकसित नही किया है, जिसके परिणाम स्वरूप आपके ऐतिहासिक नाटको मे कथानक उपयुक्त रूप से विकसित नही हुआ है। ये अपने एकांकी के प्रारम्भ में एक लघु गीत का विधान रखते थे। यत्र तत्र कविता का भी प्रयोग करते थे। कुछ कथोपकथन ऐसे भी हैं जो कविता से युक्त है। वाक्य छोटे-छोटे, भाव-निर्देश स्पष्ट और भाषा नित्यप्रति के व्यवहार की है। आपकी एक विशेषता चरित्र-चित्रण के प्रति जागरूकता है, किन्तु इसके लिए आपने अनावश्यक रूप मे "स्वगत" का आश्रय ग्रहण किया है। लालाजी ने रंगनिर्देश की दृष्टि से एकांकी को आगे बढाया है। ये केवल पाठकों के लिए ही नही, कुशल अभिनेता को भी सहायता प्रदान कर सकते हैं। उदाहरण के लिए "प्रह्लाद चरित" के ११वें दृश्य का क्लाइमेक्स देखिये कितना सफल रहा है :—

प्रह्लाद : (जोर से) पिताजी, हरि अपने भक्तों को कभी झूठा नहीं होने देते। वह नयनपालक की तरह अपने दासों की रक्षा करते है। हरि के समान दीनदयालु कोई नही है। मेरे नयनो से देखो हरि की कैसी विलक्षण मूर्ति इस समय दिखाई देती है।"

(खम्भ में सहसा नृसिंह मूर्ति की झलक दीखकर अन्तर्धान हो जाती है। हिरण्यकश्यपु एक बार देखते ही झिटककर हटता है, परन्तु फिर अन्तर्धान होने से आगे बढ़ कर)

हिरण्यकश्यपु "प्रह्लाद! मुझको तो इसमें कुछ नही दिखाई देता। अच्छा! अब मैं तुझको इस खम्भे से बाँधकर खग से मारता हू। वह इसके भीतर होगा, तो इस खग के लगने से खम्भ समेत तू और वो दोनों कट जावेंगे।"

(प्रह्लाद को खम्भ से बाँधकर जोर से खम्भ पर प्रहार करता है। खग टूट जाता है। खम्भ स्थिर रह जाता है, परन्तु नृसिह भगवान वेग से बाहर आते हैं और बन्धन मुक्त प्रह्लाद नृसिह भगवान की छाती से लिपटा दिखाई देता है।)

लाला जी की त्रुटि यह है कि उनकी कथावस्तु बडी शिथिल और अकुशलता से विकसित होती है,किन्तु कथोपकथनों की सजीवता और चुस्तीपन दर्शनीय है। रग सूचनाओं की पूर्णता द्वारा आपने एकाकी कला के विकास में यथेष्ट सहयोग प्रदान किया है। आपकी शैली सीधी सादी है, जिसमें कही-कही हास्य के व्यग्य का प्रयोग है। भाषा में पूर्वीपन अधिक है "कलताई, दरसन औसा, ह्याव, तेनो, नेक," शब्दो का बाहुल्य है। दृश्यो के सम्बन्ध मे आप किसी नियम विशेष का पालन न कर सके। ग्यारह तक दृश्य रखकर आपने कथावस्तु का विकास किया है।

५ श्री किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५ से १९३२) गोस्वामीजी के दो एकाकी उपलब्ध हैं—१ "नाट्यसभव रूपक" (१९०४), "चौपट चपेट" प्रहसन (१८९२)। "नाट्य सभव रूपक" में आठ दृश्यो में नाटक की उत्पत्ति को कथानक बनाकर एकाकी का रूप दे दिया गया है। इसके दो भाग हैं। प्रारम्भिक सात दृश्यो में नाटक के अन्दर एक और छोटा सा दृश्य जोड दिया गया है, जिसमें इन्द्र का इन्द्राणी के वियोग में व्याकुल होना तथा नारद द्वारा उनकी प्राप्ति दिखाई गई है। इस नाटक में भी आपकी दृष्टि अन्य रचनाओ की तरह चरित्रचित्रण पर कम, किन्तु सगीत, कविता और अभिनय पर अधिक रही है। डा० सोमनाथ गुप्त ने "नाट्य सभव" में दो भिन्न कथासूत्रो का होना स्वीकार किया है। उनका इसे एकाकी नाटक मानना उपयुक्त ही है, क्योकि इसमें वस्तु की इकाई का पालन किया गया है।[१] गोस्वामीजी ने तत्कालीन नाटक की दुरावस्था को देखा। वे उससे दुखी हुए और अभिनय के लिए पारसी नाटको के विरोध में साहित्यिक सुरुचिपूर्ण एकाकी लिखे। "चौपट चपेट" की भूमिका में तत्कालीन नाटकीय दुरावस्था की ओर आपने निर्देश किया है।

---

१ देखिए डा० सोमनाथ गुप्त कृत "हिन्दी ना० सा० का इति०" पृष्ठ १०५।

"चौपट चपेट" (प्रहसन) लपटों की दुर्दशा का मनोहर चित्र

सन्तो जयन्ति भुवनेषु यथा खलाच
तद्वज्जयेयुरिति यें मनुते मनीषा
तद्दृष्टितः कविगिरोरि भवन्ति शुद्धा
स्तस्मान्निने खलु भवन्ति कदापि निंदा: (नीतिमाला, सन् १८९२ ई०)

"....हिन्दी मे अभाग्यवश जब से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र परलोक सिधारे है तब से साहित्य की बडी दुर्दशा हो रही है"वस्तु और नाटक विद्या को तो बाबू साहेब अपने सग ही ले गए हैं। उनके पीछे दो एक रूपक कि जिसमे घटा भर जो लगे, छोडकर और आज तक ऐसे नही बने जिससे हिन्दी भाषा की पुष्टि होय, यह अभाग्य नही तो क्या है।"

("चौपट चपेट," आरा १०-५-१८९१)

"......यह अलौकिक गुण नाटक ही मे है कि जिसके द्वारा अनेक विभिन्न समाज और विभिन्न प्रकृति के लोगो का मन एक रसमय हो जाता है "और दूसरा, नाटक से बढकर कोई ऐसा दूसरा उपाय नही, जिससे सर्वसाधारण को सामाजिक दशा का वर्तमान चित्र दिखाकर उसका पूरा सुधार किया जाय ।

("नाट्य सम्भव रूपक" पृ० २)।

"नाट्य सभव" का निर्माण अभिनय की दृष्टि से हुआ था, इसमे भावो और विचारो का मानवीकरण किया है। "चौपट चपेट" में त्रियाचरित्र की कहानी को एकाकी का रूप दे दिया गया है। इसमें लम्पटो की दुर्दशा का मनोहर चित्र खीचा गया है। यह भारतेन्दु की परम्परा को जीवित रखने के लिए लिखा गया था। टैकनीक की दृष्टि से ये एकाकी प्राचीन सस्कृत नाट्य-परिपाटी पर विरचित हैं। प्रस्तावना, विष्कम्भक और अक का प्रयोग नही है, किन्तु पारसी स्टेज का प्रभाव कथोपकथन मे स्पष्ट है। कविता के आधिक्य ने सवादो को कृत्रिम बना दिया है जैसे—

इन्द्र—"हृदय यातना अतुल सहे मैटो की आई।"
भरत—-समय पाप के मिटे, आयुहि दुख समुदाई।"
इन्द्र—"बिना सची के कौन इन्द्र को मन हरखावै?"
भरत—-"धीरज ही के धरे, मनुज आगे सुख पावे।"
इन्द्र (सोरठा)—को करि सकै बखान, प्यारी तेरे गुन अतुल,
बेंधत है मम प्रान, ज्यो ज्यो सोचत हों तिन्हें ॥

गोस्वामी जी की मनोवृत्ति सुधारवादी थी और आदर्श की प्रतिष्ठा उन्होंने अपने एकाकियो में की है। प्राय उद्देश्य एकाकी के मुखपृष्ठ पर अकित कर देते थे। गद्य में विभिन्न रागों जैसे झाझौटी, जैजैवंती, झिझौटी, हमीर, बिहागा, कवित्त, दोहा तथा सस्कृत के श्लोकों का भी आपने प्रयोग किया है। वातावरण की सृष्टि के

लिए नैपथ्य तथा आकाश से सकेतात्मक निर्देश देने की प्रणाली आपने अपनाई है। स्वगत की मात्रा इनमें अपेक्षाकृत न्यन है। सवादो में धीरे-धीरे प्रौढता आई है। "मयक मजरी" की अपेक्षा "चौपट चपेट" तथा "नाट्य सम्भव रूपक" के सवाद अधिक सजीव और परिपक्व हैं। इनकी एक विशेषता हल्के हास्य के प्रयोग भी है। उदाहरणार्थ "नाट्य सभव रूपक" में भरत मुनि के चेले का एक वक्तव्य देखिये

"दमनक (चारो ओर आखें फाड-फाडकर देखता हुआ आप ही आप) : अहा! गुरूजी की कृपा से वह तमाशा देखा कि जो भाग गये होते तो यह आनन्द सपने में तो क्या मर कर इस स्वर्ग में आने पर भी कदाचित न मिलता। अहा!

"नाटक! नाटक! नाटक! नाटक।
मुख का हाटक, रस का फाटक—
नाटक में है, कैसा मजा।
जैसे घी का लड्डू मीठा।

(लाठी पर ताल देकर गुनगुनाता है)

धिनता, धिन्नानता, ताधिन, धिन,
और नहीं कुछ नाटक बिना,
धिमक धिनक तक, धिन ताक ताक,
नाटक बिन है, सब रस खाक,
ताधिना धिन ताधिना धिनता,
नाटक का रस पेट भर खा।
मजा कहां है, नाटक बिना।"

भरत-वाक्य के स्थान पर आप अन्त में अपना अभिप्राय किसी न किसी रूप में व्यक्त कर देते हैं, जिससे समस्या का स्पष्टीकरण हो जाता है। "नाट्यसभव" रूपक का अन्त नाटक के वरदान से होता है।

वे कहते हैं "परस्पर विरोध रखने वाली लक्ष्मी और सरस्वती, जिनका एकत्र अवस्थान अत्यन्त दुर्लभ है, नाटक प्रेमियो पर अनुग्रह करके परस्पर का वैमनस्य त्याग, सम्मिलित होकर उनके घरो में निवास करें।"

सक्षेप में गोस्वामी जी के एकाकियो की मूलवृत्ति सुधारवादी और आदर्श-मूलक है। बुद्धिवाद के साथ भाव, रस तथा काव्य-सौष्ठव के गुण यहा विद्यमान हैं। प्रारम्भिक कृतियो, जैसे "मयक मजरी", में गीत, सवैयों तथा घनाक्षरी के आधिक्य से पात्रो का उपयुक्त चरित्रचित्रण नही हो सका है, किन्तु "नाट्यसंभव" के गीत स्पष्ट और परिस्थितिनुकूल है।

इनके एकाकियो के पात्र अपना निजी अस्तित्व रखते हैं। एकाकी के रस-तत्व पर आप विशेष जोर देते है। रग सूचनाए साधारण है और केवल भाव-प्रकाशन के लिये काम में लायी गई हैं। केवल "हसकर," 'दुख से" "प्रकट", "मुसकाय के" "मन में"

इत्यादि का निर्देश मात्र कर दिया गया है। ये नाटक सुपाठ्य है और काव्य का भी आनन्द प्रदान करते है।

गोस्वामी जी ने "नाट्यसंभव रूपक" की भूमिका मे स्वयं लिखा है कि उन्होने इसे सूर्यपुराधिपति राजराजेश्वरी प्रताप सिंह को सुनाया, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए।[1]

अभिनय के लिए लिखने का केवल गौण आशय रहा होगा। कविता ने उनके नाटकीय गुणो को छिपा लिया है। टैकनीक की दृष्टि से ये शिथिल है। विचारो का घटाटोप समस्त नाटकीय वस्तु को आवृत कर लेता है। नाटकीय उतार-चढाव की ओर कोई ध्यान नही दिया गया है। चरित्रचित्रण में मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का अभाव है। अत यह मत ठीक है "गोस्वामी जी के नाटको में कमिया है, परन्तु उन पर हम यह कहकर संतोष कर कहते है कि वे साहित्यिक होते हुए भी ऐसे समय में रह रहे थे, जिसमें समाज का नूतन संगठन आवश्यक समझा जा रहा था। अतएव अपने पुराने सुधारक रूप का विस्मरण वह कर ही नही सकते थे।"[2]

गोस्वामी जी में बौद्धिक और विचार-तत्व के प्रति इतना ममत्व है कि वह नाटकीयता की रक्षा नही कर सके है। इनमें चरम परिणति का कौन सा स्थल है यह स्पष्ट नही हो पाता।

६. श्री राधाकृष्ण दास (१८६५-१९०७): आपका "दु.खनी बाला" (१८८०) ६ दृश्यो का तथा "धर्मालाप" (१८८५) एक दृश्य का एकांकी है। "दु खनी बाला" में सामाजिक कुरीतियो, जैसे अनमेल विवाह, बाल विवाह जन्म पत्री मिलाना, इत्यादि पर व्यग्य किया गया है। एकांकी का कथासूत्र सरल है। जन्मपत्री न मिलने के कारण बडे घर के सुशिक्षित वर के साथ विवाह न होकर छोटे निर्धन परिवार में विवाह होना, उसकी मृत्यु, लडकी के वैधव्य कष्ट तथा अन्त में विषपान द्वारा प्राणघात करने की कारुणिक कथा है। ब्राह्मणो और परम्परा के अंध अनुयायियो के कारण समाज में जो कुरीतिया फैली हुई थी, उन्ही के विरोध में उठने वाली ध्वनि का यह नाटकीय प्रदर्शन है। यद्यपि लेखक ने विधवा विवाह के पक्ष में और अनमेल विवाह तथा बाल-विवाह के विरोध मे पर्याप्त तर्क उपस्थित किए है, परन्तु अपने वार्त्तालाप तथा कथा-वस्तु के विकास में वह जीवन डालने में समर्थ नही हो सका है। उसमें पुरोहित के अवसर पर अपनय का भी दृश्य दिखलाया गया है। इसमें कथावस्तु का विकास ठीक नही हो सका है और संवादो मे भी शैथिल्य आ गया है।

"धर्मालाप (१८८५), "धर्मालाप" मे प्रकाशित हुआ था। इसमें कोई कथानक न होकर विभिन्न धर्मों पर वार्तालाप मात्र है। भिन्न-भिन्न धर्म वाले सनातनी, वेदान्ती, वैरागी, शैव, शाक्त, कौल, वैष्णव, दयानन्दी, थियोसोफिस्ट आदि धर्म पर वाद

१. "नाट्यसंभव रूपक" भूमिका, पृष्ठ ७।
२. डा॰ सोमनाथ गुप्त, "हि॰ ना॰ सा॰ का इति॰," पृष्ठ १६१।

विवाद करते हैं। इस एकाकी का मूल अभिप्राय प्रारम्भिक दो दोहो से स्पष्ट हो जाता है—

"खसम पूजते देवता भूत पूजनी होय ।
एकहि घर में द्वै मता, कुशल कहा से होय ।
बहु देवी देवता भूत प्रेत वि पुजाई ।
ईश्वर सो सब विमुख किए हिन्दु घबराई ।" —भारतेन्दु

नाट्यकार ने सर्वधर्म समन्वय के निष्कर्ष पर आकर एकाकी को समाप्त किया है। इसमें धर्मों के पारस्परिक मत-मतान्तरो, जटिलताओ और बहस से हटकर परस्पर मनोमालिन्य दूर कर आपस में मिलकर रहने का सन्देश दिया गया है। यह एक छोटा समस्या एकाकी है, जिसका निष्कर्ष इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

"नाहिं इन झगरन में कुछ सार,
क्यों लरि लरि के मरो बाबरे बावन फोरि कपार,
कोई पायौ कै तुम हो यही सौभाग्वो निरधार,
हरीचन्द इन सब झगरन सो बाहर है वह यार"

नई पुरानी रोशनी के धर्मावलम्बियो में धर्मालाप होने के पश्चात् आकाश में तीन अप्सराए गान करती हुई दिखाई पडती हैं और सनातन धर्म की विजय और श्रेष्ठता के गीत गाती हैं—

"सबै मिल जै जै कार मचाओ,
जयति सनातन धर्म, जयति जय प्रेम बधाई गाओ,
प्रेम भक्ति -नामृत लेले पीओ और पिलाओ,
दास क्षमा आनन्द रसमाते सब जग को ललचाओ।"

"धर्मालाप" सवादो का सकलन मात्र है। नाटकीय तत्त्व इसमें विकसित नही हो पाया है। राधाकृष्ण दास के नाटको का प्रारभ तो प्रस्तावना से प्रारभ होता है, किन्तु एकाकियो का प्रारभ तुरन्त हो जाता है। एकता, एकाग्रता और विषय का केन्द्र बिन्दु एक रहता है। आप सहायक विषयो का भी प्रवेश करा देते है, किन्तु मूल घटना को विस्तृत नही करते हैं। कथावस्तु जटिल नही होती। विषय और समय की मित-व्ययता का ध्यान रखते हैं। आपके नाटको में कुछ अमूर्त गुणो, जैसे "साहस" "आशा" को भी नाटकीय रूप प्रदान किया गया है। आपने अलौकिक और अदभुत तत्वो (जैसे आकाश की अप्सराए) का भी प्रयोग किया है। भाषा हिन्दी-उर्दू मिश्रित है, कही कही उर्दू शेरो का भी प्रयोग हुआ है। कथोपकथन गद्य-पद्यमय हैं, जैसे—

बाबू साहेब—सिजदे से गर बहिश्त मिले, दूर कीजिए।
दोजख ही सही, सिर का हिलाना नहीं अच्छा।
धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे,
उमरा को हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।

लाला साहेब : "कलमदान कसम, हम तो खुदा का नाम लिए बिना कोई काम नहीं करते। बन्दा तो तहवीह हाथ से छोड़ता ही नहीं।"

राधाकृष्णदास का "धर्मालाप" सही अर्थो में वार्त्तालाप-प्रधान एकांकी कहा जा सकता है। इसमें तीनो इकाइयो का तो पालन हुआ है, किन्तु नाटकत्व का अभाव सा है। फिर भी संवादो की मार्मिकता और तर्क तथा चरित्रचित्रण के सफल निर्वाह की दृष्टि से इन्होने एकाकी कला को आगे बढाया है।

७. श्री देवकीनन्दन त्रिपाठी : आपके १ रुक्मणी हरण, २ रामलीला नाटक, ३ कसवध, ४. लक्ष्मी-सरस्वती मिलन, ५ प्रचड गोरक्षण, ६ बाल विवाह, ७. गोवध निषेध, ८. कलियुगी जनेऊ, ९. कलियुगी विवाह, १०. रक्षाबधन, ११ एक एक के तीन-तीन, १२ स्त्री चरित, १३ वेश्या-विलास, १४ बैल छ. टके का, १५. "सैकडो में दस-दस", तथा ग्रामीण भाषा में एक रूपक, १६ जयनारसिंह की (१८८८) आदि एकाकी मिलते हैं। त्रिपाठी जी सामाजिक सुधारवादी परम्परा के एकाकीकार थे। आपने जिन समस्याओ तथा कुरीतियो की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया, उनमें झाड़-फूक, जादू-टोना, पुरोहितो की अशिक्षा, मूर्खता, रूढिवादिता, धोखेबाजी, यज्ञोपवीत की दुर्दशा, ब्रह्मचर्य की दुर्दशा, छोटे बच्चो के विवाह के दुष्परिणाम इत्यादि प्रमुख हैं। आपका क्षेत्र सामाजिक और वृत्ति सुधारवादी है। प्रहसन लिखने में आप विशेष सफल रहे हैं।

आपके "कलियुगी जनेऊ" मे उन पुरोहितो पर व्यग्य है, जो अशिक्षित मूर्ख हैं। वे नही जानते कि वेदो में क्या है, पर जनता और विशेषत स्त्रियो को धोखा देते और रुपया ठगते हैं। शुद्ध मत्रो के स्थान पर कुछ का कुछ उच्चारण करते है। जब पुरोहित गजवदन मकरुराम को वेद पढाते हैं, तो ऊट-पटाग कुछ-का-कुछ कह जाते हैं। इस प्रहसन का एक अंश देखिये कितना सजीव है —

गजवदन तो चुप रहो, अब वेदारभ हो (हाथ पकडकर) पूरा, वेदा, नाना, फिक्वा, नानहानि, जरामरण पतयो, तन पिया वेद उग्रा !

नौनितराम भई, इनमें तो कोई सिफत की बातें नहीं है। अच्छा ना ऋचा पढाइये। यह तो दयानन्दियो का ना खेल मालूम पडता है।

गजवदन . (लीजिये) दड, पादुका, पियरी, चन्दन, कज्जल, चावल, गुंज, गोफ स्वाहा। पुन स्वाहा।

मकरुमल . लाला एक ऋचा हमहू पढ्वै, देवई कैनन दा।

नौनितराम : अच्छो बात है पढिये।

गजवदन (मकरुमल का हाथ पकड़कर) : अन स्वाहा, धन स्वाहा, गुरु स्वाहा, विदा विनिय ढोल स्वाहा, टमार स्वाहा, पढिन स्वाहा, जिजमान स्वाहा तथा सर्व स्वाहा हरि भजे, देस्या मनोज्ञ उकाडी मेघे गार्गी भगदूँभ स्वाहा।"

भरत वाक्य के स्थान पर त्रिपाठी जी ने निम्न कवित्त लिखकर अपना मन्तव्य प्रकट किया है

"देखो सबै कलि यज्ञोपवीत को कैसी महामति धूलि उड़ावत।
वेद औ शास्त्र पुरान पढ्यो, जिन ओऊ इहै रज शीश चढ़ावत॥
भाड औ रांडन मोद बढ़े, नित विप्रन ढाव उफाली जिवावत।
आप डुबे, कुल देश डुबाई के, एतेहु पै टुक लाज न आवत॥

दूसरे प्रहसन "कलियुगी विवाह" (१८९२) में वर्तमान काल के अशुद्ध रीति से प्रचलित अनमेल विवाहो की दुर्दशा तथा उससे जो बडी भयानक दुर्घटनाए घटा करती हैं, वे चित्रित की गई हैं। अन्त में निम्न कवित्त में सम्पूर्ण मर्म को चित्रित कर दिया गया है––

"गर्ग औ गौतम शाण्डिल नाम ले बेचहु पूत कुलीन कहाओ।
वेद औ शक्ति पुरानहु को तुम, भूरि प्रपच से धूरि मिलाओ॥
तीन औ बारहु पाँच वरिस्स के बालक ब्याहि कुरीति बढ़ाओ।
नारी बड़ी बर छोटहु ता पर भारत के मुख खाक लगाओ॥

इससे हे सज्जनो इस कुरीति को अब भी इस कलियुगी विवाह का खेल देख के छोडो तो तुम्हारा कल्याण हो।"

त्रिपाठी जी के प्रहसन सुधार-वृत्ति से ओत-प्रोत हैं। भाषा पात्रो को सजीव बनाने वाली सरल और व्यवहारोपयोगी है। पात्रों को जीवन के प्रति सच्चा करने के लिए उन्ही की गवार भाषा का प्रयोग भी किया गया है। रगसूचनाए केवल नाम मात्र की हैं। कथोपकथन गद्य-पद्यमय हैं। मध्य में गीतो के प्रयोग भी रस-निष्पत्ति के लिए रक्खे गये हैं––

"जयनारसिंह की (प्रहसन) अग्रेजी से प्रभावित एकाकी है। इसका उद्देश्य है ओझा आदि वचको की मूर्खता और जो लोग उस पर विश्वास करते हैं, वैद्यक शास्त्र की वैज्ञानिकता को स्वीकार नही करते, उनकी अज्ञानता पर प्रकाश डालना है। इस प्रहसन के पात्र अधिकाश गवार हैं। यथार्थवाद की सृष्टि के लिए उनकी भाषा भी गवारू रक्खी गई है। केवल एक पात्र मोतीलाल की भाषा शिष्ट है, क्योंकि वह कुछ काल के लिए शहर में रहकर थोडी सी विद्या पढ़ा है। त्रिपाठी जी की विशेषता यह है कि आपके पात्रो की भाषा और टैकनीक में आधुनिक प्रहसन के अनेक तत्त्व मिल जाते हैं।

त्रिपाठी जी ने "रक्षा बन्धन" (१८७८) में वेश्यागमन के दोषो को मार्मिक चोट के रूप में उपस्थित किया है। "एक-एक के तीन-तीन" (१८७९) में ऋण लेकर हजम कर जाने वालो की बेईमानी का दिग्दर्शन है। "स्त्री-चरित्र" (१८७९) में स्त्रियो के ऐसे छल-छद्मो का उद्घाटन है, जिन्हें भारतीय समाज प्राचीन काल से त्रियाचरित्र के नाम से पुकारता है। 'वेश्या विलास" अत्यन्त रोचकता से वेश्या-

गमन के कुपरिणामो का दिग्दर्शन कराता है। "बैल छ टके का" की शिक्षा यह है कि मनुष्य को विवेक से काम लेना चाहिये, लोभ नही करना चाहिए। सक्षेप मे "साची कहे मीठी खावे' की कहावत को कभी न विस्मृत करे, "सैकडो में दस दस" धनी व्यक्तियो की दुश्चरित्रता प्रदर्शित करता है कि वे किस प्रकार मद्यपान, जुए और वेश्यागमन में लीन रहते है। इस प्रहसन की प्रस्तावना के वार्तालाप से त्रिपाठी जी की प्रहसन रचना-शैली, शब्दो का खेल, तत्कालिक समाज की अज्ञता तथा नाटक-विषयक उदासीनता का परिचय मिलता है। एक उदाहरण लीजिए—

"प्रमोद बिहारी• • •जाने दो भइयन• • • •चलो नाट्यशाला को चलो जहां कुछ उन्नति की बातें होती हैं। यहा नाहक इज्जत गवाना है।

दुलारी चरन (खीच के) अजी साहब क्या बकते हो? पागल हो गये क्या जो नाट्यशाला-नाट्यशाला पुकार रहे हो। भले आदमियो के शाला होने से पेट नही भरा अब नटो का शाला होने से भरेगा• • • •

दुलारी : नाटक किस चिडिया का नाम है?

प्रमोद : ड्रामा, ड्रामा, ड्रामा! समझते हो कि नही!

दुलारी : जी हा ड्रामा को जरा उर्दू में तो बयान कीजिये।

प्रमोद · उर्दू में तो इसका कही भी जिक्र नही है। हम कहाँ से बयान करें। आप ड्रामा के माने नही जानते।

दुलारी . ड्रामा (सोचकर) जी हा, जानता हूं एक तरह की किताब अग्रेजी में होती है, लेकिन उसका यहा पर क्या काम है? क्या आप उस वाहियात किताब को पढकर ऐसे पागल हो गये?

प्रमोद वाह! जी वाह! आप तो कुछ-कुछ अग्रेजी भी जानते हैं, तो भी ऐसी अट्ट-की-नट्ट समझ। जरा अकिल मे तेल पुचाड़ा देकर आओ तो ड्रामा का अर्थ समझ पड़े।

श्री देवकीनन्दन का इस युग के एकाकीकारो और प्रहसनकारो में महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेन्दु के उपरान्त सबसे अधिक तीव्र और कठोर व्यग्य आपके साहित्य में ही उपलब्ध है। त्रिपाठी जी ने समाज की अनेक सामाजिक कुप्रथाओं, कुरीतियो, दोषों, व्यसनो और अनाचारो पर निर्मम व्यंग्य किया है। झाड़-फूक, जादू-टोना, अशिक्षा, बहुविवाह, बाल विवाह, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, बेई-मानी, अन्धविश्वास, पुरोहितगिरी, लोभ, अपव्यय आदि अनेक सामाजिक दोषो पर व्यग्य से आक्रमण किया है और उनके व्यग्य-बाण इतने पैने है कि हृदय में पैठते चले जाते है।

८. श्री बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन" : "प्रेमघन" के एकाकी दो प्रकार की भावनाओं को लेकर चले है—धार्मिक, आदर्शवादी तथा ऐतिहासिक यथार्थ। प्रथम श्रेणी में आपका "प्रयाग रामगमन" तथा दूसरी में "संयोगिता स्वयवर" आते हैं।

भरत वाक्य के स्थान पर त्रिपाठी जी ने निम्न कवित्त लिखकर अपना मन्तव्य प्रकट किया है

"देखो सबै कलि यज्ञोपवीत को कैसी महामति धूलि उडावत ।
वेद औ शास्त्र पुरान पढ़यो, जिन ओक इहै रज शीश चढ़ावत ॥
भांड औ रांडन मोद बढ़े, नित विप्रन ढाव उफाली जिवावत ।
आप डुबे, कुल देश डुबाई के, एतेहु पै टुक लाज न आवत ॥

दूसरे प्रहसन "कलियुगी विवाह" (१८९२) में वर्तमान काल के अशुद्ध रीति से प्रचलित अनमेल विवाहो की दुर्दशा तथा उसमे जो बडी भयानक दुर्घटनाए घटा करती है, वे चित्रित की गई हैं । अन्त में निम्न कवित्त में सम्पूर्ण मर्म को चित्रित कर दिया गया है––

"गर्ग औ गौतम शान्डिल नाम ले बेचहु पूत कुलीन कहाओ ।
वेद औ शक्ति पुरानहु को तुम, भूरि प्रपच से धूरि मिलाओ ॥
तीन औ चारहु पांच बरिस्स के बालक व्याहि कुरीति बढ़ाओ ।
नारी बड़ी वर छोटहु ता पर भारत के मुख खाक लगाओ ॥

इससे हे सज्जनो इस कुरीति को अब भी इस कलियुगी विवाह का खेल देख के छोडो तो तुम्हारा कल्याण हो।"

त्रिपाठी जी के प्रहसन सुधार-वृत्ति से ओत-प्रोत हैं। भाषा पात्रो को सजीव बनाने वाली सरल और व्यवहारोपयोगी है। पात्रों को जीवन के प्रति सच्चा करने के लिए उन्ही की गवार भाषा का प्रयोग भी किया गया है । रगसूचनाए केवल नाम मात्र की है । कथोपकथन गद्य-पद्यमय हैं। मध्य में गीतो के प्रयोग भी रस-निष्पत्ति के लिए रक्खे गये हैं ––

"जयनारसिंह की (प्रहसन) अग्रेजी से प्रभावित एकाकी है। इसका उद्देश्य है ओझा आदि वचको की मूर्खता और जो लोग उस पर विश्वास करते हैं, वैद्यक शास्त्र की वैज्ञानिकता को स्वीकार नही करते, उनकी अज्ञानता पर प्रकाश डालना है। इस प्रहसन के पात्र अधिकाश गवार हैं। यथार्थवाद की सृष्टि के लिए उनकी भाषा भी गवारू रक्खी गई है। केवल एक पात्र मोतीलाल की भाषा शिष्ट है, क्योकि वह कुछ काल के लिए शहर में रहकर थोडी सी विद्या पढा है । त्रिपाठी जी की विशेषता यह है कि आपके पात्रो की भाषा और टैकनीक में आधुनिक प्रहसन के अनेक तत्व मिल जाते हैं।

त्रिपाठी जी ने "रक्षा बन्धन" (१८७८) में वेश्यागमन के दोषो को मार्मिक चोट के रूप में उपस्थित किया है। "एक-एक के तीन-तीन" (१८७९) में ऋण लेकर हजम कर जाने वालो की बेईमानी का दिग्दर्शन है। "स्त्री-चरित्र" (१८७९) में स्त्रियो के ऐसे छल-छद्मो का उद्घाटन है, जिन्हें भारतीय समाज प्राचीन काल से त्रियाचरित्र के नाम से पुकारता है। "वेश्या विलास" अत्यन्त रोचकता से वेश्या-

पन के कुपरिणामो का दिग्दर्शन कराता है। "बैल छ टके का" की शिक्षा यह है मनुष्य को विवेक से काम लेना चाहिये, लोभ नही करना चाहिए । सक्षेप में 'साची कहे मीठी खावे' की कहावत को कभी न विस्मृत करे, "सैकड़ो मे दस दस" नी व्यक्तियो की दुश्चरित्रता प्रदर्शित करता है कि वे किस प्रकार मद्यपान, जुए और वेश्यागमन में लीन रहते हैं । इस प्रहसन की प्रस्तावना के वार्तालाप से त्रिपाठी जी की प्रहसन रचना-शैली, शब्दो का खेल, तत्कालिक समाज की अज्ञता तथा नाटक-विषयक उदासीनता का परिचय मिलता है। एक उदाहरण लीजिए—

"प्रमोद बिहारी · · ·जाने दो भइयन · · · ·चलो नाट्यशाला को चलो जहां कुछ उन्नति की बातें होती हैं। यहा नाहक इज्जत गवाना है।

दुलारी चरन (खीच के) : अजी साहब क्या बकते हो ? पागल हो गये क्या जो नाट्यशाला-नाट्यशाला पुकार रहे हो। भले आदमियों के शाला होने से पेट नही भरा अब नटो का शाला होने से भरेगा · · · ·

दुलारी : नाटक किस चिड़िया का नाम है ?

प्रमोद : ड्रामा, ड्रामा, ड्रामा ! समझते हो कि नही !

दुलारी : जी हा ड्रामा को जरा उर्दू में तो बयान कीजिये ।

प्रमोद . उर्दू में तो इसका कही भी जिक्र नही है। हम कहाँ से बयान करें। आप ड्रामा के माने नहीं जानते।

दुलारी · ड्रामा (सोचकर) जी हा, जानता हू एक तरह की किताब अग्रेजी में होती है, लेकिन उसका यहा पर क्या काम है ? क्या आप उस वाहियात किताब को पढकर ऐसे पागल हो गये ?

प्रमोद वाह ! जी वाह ! आप तो कुछ-कुछ अग्रेजी भी जानते हैं, तो भी ऐसी अट्ट-की-सट्ट समझ। जरा अकिल मे तेल पुचाड़ा देकर आओ तो ड्रामा का अर्थ समझ पडे।

श्री देवकीनन्दन का इस युग के एकांकीकारो और प्रहसनकारो में महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेन्दु के उपरान्त सबसे अधिक तीव्र और कठोर व्यंग्य आपके साहित्य में ही उपलब्ध है । त्रिपाठी जी ने समाज की अनेक सामाजिक कुप्रथाओं, कुरीतियों, दोषों, व्यसनो और अनाचारों पर निर्मम व्यंग्य किया है। झाड़-फूक, जादू-टोना, अशिक्षा, बहुविवाह, बाल विवाह, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, बेई-मानी, अंधविश्वास, पुरोहितगिरी, लोभ, अपव्यय आदि अनेक सामाजिक दोषो पर व्यग्य से आक्रमण किया है और उनके व्यग्य-बाण इतने पैने है कि हृदय में पैठते चले जाते है।

८ श्री बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन" : "प्रेमघन" के एकांकी दो प्रकार की भावनाओं को लेकर चले है—धार्मिक, आदर्शवादी तथा ऐतिहासिक यथार्थ । प्रथम श्रेणी में आपका 'प्रयाग रामगमन" तथा दूसरी में "संयोगिता स्वयंवर" आते है।

आपका "प्रयाग रामगमन" विक्रमी १९६८ में लिखा गया था। भूमिका में "प्रेमघन" ने लिखा है —

"प्रयाग की युक्त प्रान्तीय महाप्रदर्शिनी के सुवृहत् आयोजन पर सदस्यो के मनोरंजन और कौतूहलवर्द्धनार्थ . कुछ ऐतिहासिक दृश्य दिखाना निश्चित हुआ था कुछ चरित्रो के रूपक अंग्रेजी और कुछ हिन्दी भाषा में ही होने स्थिर हुये और दोनों भाषाओं के सुलेखक और सुकवियो से सहायता मागी गई। महाराज रामचन्द्र का वन यात्रा में प्रयाग आना और मुनिराज भारद्वाज का अतिथि होना, जो वहा की सर्वप्रथम घटना थी, उसके रूपक-रचना के लिए अन्त में मुझसे अनुरोध किया गया और वह भी केवल १० दिन के भीतर। अस्तु, यथाशक्ति और यथामति मैंने यह "प्रयाग रामगमन" नामक रूपक लिखकर तैयार किया ...।"

इनके टैकनीक की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह एक बडे दृश्य में ही सब घटनाए केन्द्रित कर देते हैं। प्रारम्भ नैपथ्य गान से होता है। "रामगमन" में पुरुष-पात्र हिन्दी और सीता व्रजभाषा का प्रयोग करती हैं। "इससे यह सिद्ध होता है कि सस्कृत नाट्य-परम्परा से कुछ प्रभावित होकर इन्होने हिन्दी को सस्कृत भाषा का स्थानापन्न माना है। उसे पुरुषो की भाषा बनाया है, व्रजभाषा को प्राकृत का स्थानापन्न। सस्कृत-नाटको में स्त्रिया संस्कृत नही बोलती है।" राम-लक्ष्मण दोहे बोलते हैं, पर सीता दोहो के पश्चात कहती हैं —

"हे पचानन, शकर के जटाजूट वन में विहार करने वारी कामधेनु! हे चारो फल दैन वारी, तीनो तापन के सहित, दोनो लोकन से सोकन कू हरिलैन वारी, सकल मगल की खानि, हे मय्या! एक तू ही हम सबन कू सरन है।"

गद्य-पद्यमय शैली, "स्वगत" के प्रयोग, सक्षिप्त रगसूचनाओ और अल्पसख्यक पात्रो द्वारा आपके एकाकी विनिर्मित हुए है। भाषा हिन्दी और व्रजभाषा है, जिसमें काव्य का सम्मिश्रण यथेष्ट है। इनमें आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की गई है।

९ श्रीशालिग्राम वैश्य इन्होने कई एकाकी जैसे "मोरध्वज" (स० १९७१), "पुरुविक्रम", "अभिमन्यु", "लावण्यवती सुदर्शन" आदि लिखे है, जो धार्मिक आदर्शवाद से प्रभावित है। आपकी रचनाए सस्कृत परिपाटी पर लिखी गई हैं। अकों का ही निर्देश है, जो छो -छोटे दृश्यो जैसे है। यदि इन्हें दृश्य मान लिया जाय तो ये रचनाए एकाकी की श्रेणी में आ जाती है।

आपके "मयूरध्वज" में चरित्रगौरव की प्रतिष्ठा है। इसमें भक्ति और बलिदान के उच्चतम आदर्श की झाकी दी गई है। यह आदर्श मयूरध्वज में उतारा गया है, जो आदर्शमय होकर पूजनीय बन गया है। इसमें शौर्य, वीर और सत्य तथा भक्ति-मार्गी करुण रसो का अच्छा परिपाक हुआ है। काव्य का सहयोग है और अनेक स्थानो पर कवित्त, सोरठे, दोहे इत्यादि का उपयोग किया गया है। "पुरुविक्रम" में राजा पुरु और सिकन्दर के यद्ध का चित्रण है। "अभिमन्यु" में अभिमन्यु का

चक्रव्यूह में लडकर शूरता दिखाना चित्रित है। "लावण्यवती सुदर्शन" मे प्रेम और करुणा का बडा सुन्दर सामजस्य है। अन्त में सुदर्शन, सुलोचन लावण्यवती चिता मे कूदती है, आकाश से विद्याधरो की स्त्रिया पुष्प-वर्षा करती है तथा गाती हैं —

राग सोरठा

देखऊ मन्द प्रेम परिणाम।
जबतें अंकुर जमत चित्त में, छूटत घन अरु धाम
मित्र-मित्र दिन रात रटत हैं और न दूजो काम।
पूर्ण प्रेम कर राम रमा मो, जो चाहो विश्राम।
तज भ्रम लोभ मोह ममता को भज मन शालिग्राम।"

वैश्य जी ने अपनी रचनाओं में नाटकत्व की प्रतिष्ठा की ओर ध्यान नही दिया है। चरित्रचित्रण को ओर ही उनका विशेष ध्यान रहा है। कथोपकथन मे कविता का अधिक प्रयोग है। अंक और दृश्यों के सम्बन्ध में किसी विशेष नियम का पालन नही किया गया है। कवित्त, सोरठे, दोहो इत्यादि का बाहुल्य है।

१०. लाला काशीनाथ खत्री : आपके "तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक" प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त "ग्राम पाठशाला नाटक" (१८९३), "निकृष्ट नौकरी" तथा "बालविधवा सताप" सामाजिक व्यग्य भी लिखे गये। "ग्राम पाठशाला", "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" तथा 'कविवचन सुधा" में प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रारभ में एक सक्षिप्त मगलाचरण है, जिसमें नाटक के मूलविषय की चर्चा है। तदन्तर उन निर्धन अध्यापको की दुर्दशा का चित्रण है, जो कम वेतन पाते है तथा इन्सपेक्टरो के जुर्माने का शिकार बनते हैं। उदाहरणार्थ एक स्वगत लीजिए, जिससे एकाकी की मूल समस्या पर प्रकाश पड़ता है.

"मुदर्रिस अत्यन्त निराश होकर लौटता है और जी में कहता है "या अल्लाह बडे निर्दयी से पाला पडा है। एक रुपये ने ऊपर खा गया, दो रुपये जुरमाना कर गया, बचे दो रुपये। कहो क्या इनसे मैं महीने भर का खर्चा चलाऊ ? क्या घर वालों को जहर दू ? गाव में यहा एक कौडी का किसी का सहारा नही, बल्कि मै उल्टे अपने पास से किताबों के दाम देता हू। फिर भी लड़के पढने नहीं आते। हाय ! कैसे बिचारे दीन-दुखियो के प्रान बचे। धिक्कार है ऐसी नौकरी करना, भीख मागकर पेट भरना अच्छा है, पर या खुदा ! ऐसी नौकरी न करवावे, कुसूर किसी का और मारा जाय कोई और। जब इतनी खुशामद और मिन्नत से भी लडके न पढने आवे, तो कहिए मुदर्रिस ईंट-पत्थरो को पढावे। ऐसी-तैसी में गई यह नौकरी भाई ! इससे तो यही अपने घर का उद्यम अच्छा।"

यह एकाकी सामाजिक सुधारवादी है। पूरे एक लम्बे दृश्य में समाप्त होता है। वस्तु की एकता का अच्छा पालन हुआ है। इस सूचनाओं में कथा-भाग भी रखा

गया है। लाला काशीनाथ खत्री का दृष्टिकोण सामाजिक सुधारवादी था। अपने एकांकी की भूमिका में लिखा है —

" ....नाटक की रचना के द्वारा मदिरापान, वस्त्र व्यसन, परस्त्रीगमन, असभ्य व्यवहार, बहुविवाह, चोरी, काम, क्रोध, मोह, दुःशीलता, लम्पट आदि की निन्दा ऐसी रीति से की जाती है कि बहुतेरे दुष्ट स्वभाव इसके प्रभाव से सुधरकर और कुछ के कुछ होकर नाट्य भवन से निकलते हैं।

"निकृष्ट नौकरी" एकांकी में अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से उत्पन्न क्लर्की करने, व्यापार वनिज से भागने की वृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। इसमें आधुनिक नौकरियों की दुर्दशा दिखाई गई है। एकांकी के अन्त में महोसदास कहता है :

"क्या अंग्रेजी पढ़कर मिट्टी खराब है। दिन भर चक्की पीसनी पड़ती है, फिर भी हेडक्लर्क की हर वक्त झिडकिया सहनी पड़ती हैं ···नौकरी काहे की, गुलामी ठहरी। इससे तो हजार दर्जे अपने घर का उद्यम अच्छा।

पढ़े फारसी बेचे तेल,
यह देखो कुदरत का खेल।

इस तरह से खराबी है दुनिया की। यो चैन, न वो चैन। कहिये अब क्या किया जाय ? यही हाल रहा और अपना कुछ सुभीता कही और होगया, तो इस महाहत्या के नौकरी की ऐसी-तैसी। किसी बुद्धिमान् ने सच कहा है —

"उत्तम खेती मध्यम वनिज,
निकृष्ट नौकरी विपत्त निदान।"

"तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक" ऐतिहासिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा करते हैं। समें तीन ऐतिहासिक एकांकी सग्रहीत हैं। 'सिंध देश की राजकुमारियां", जिसका सम्बन्ध सिंध पर मुसलमानो के प्रथम आक्रमण के समय की घटना से है; द्वितीय "गुनौर की रानी" भूपाल वंश के सस्थापक पराजित राजा की विधवा रानी के चरित्र को स्पष्ट करता है। तृतीय रूपक "लवजी का स्वप्न" प्रचलित कथा के आधार पर लिखा गया है। इनमें सकलन त्रय, वस्तु और देश की एकता, का पूर्णत पालन है। "लवजी का स्वप्न" के अतिरिक्त शेष दोनों दुखान्त सघर्ष प्रधान एकांकी है। आकार और विस्तार छोटा है। केवल १३-१४ पृष्ठो के हैं। "लवजी का स्वप्न" केवल छ पृष्ठो का है, पर अभिनयशील है। तीन-तीन दृश्यो में कथावस्तु का विकास किया गया है। भाषा पात्रों के अनुकूल है। भारतेन्दु युग के नाटको की परिपाटी के विपरीत कविता लगभग नहीं के बराबर है। सफल एकांकी की प्राय सब विशेषताएं इनमें मिल जाती हैं। जब अंग्रेजी में इन्टरल्यूड एकांकी का रूप अंग्रेजी साहित्य में लेते हैं, उससे पूर्व ही खत्री जी हमें इन्टरल्यूड का सफल प्रयोग करते मिलते हैं।

आपकी रचना शैली में गद्य का अधिक प्रयोग होने से ये महत्वपूर्ण हो जाती हैं। सामाजिक सुधारवादी एकांकियो के सृजन में आपने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

१०. श्री सिद्धीलाल मिश्र : आपके एकांकी भी इसी वर्ग में आते हैं। आपकी प्रतिनिधि रचना "विवाहिता विलाप" (१८२०) में उन लोगों पर व्यंग्य किया गया है जो केवल जन्मपत्री के मिलने पर बिना गुण, कर्म, स्वभाव की एकता देखे विवाह कर देते हैं। इसमें एक ऐसे व्यक्ति का चरित्र दिखाया गया है, जो विवाह कर बिना कसूर अपनी पत्नी को छोड देता है। उसकी पत्नी वियोग में दारुण पीडा सहन करती है। इसका प्रारम्भ पुरानी संस्कृत परिपाटी के नटी सूत्रधार से होता है। प्रारंभ में सूत्रधार कहता है :—

"आप सज्जनों को देश की बुराइयां दिखाना जरूरी है। आशा है कि हमारे दर्शक लोग देखकर इन बुराइयों को सुधारने में तत्पर हो जायेंगे।"

"विवाहिता विलाप" का कथानक सरल है। लडका शिक्षित पत्नी को छोडकर वेश्याओं में जाकर फंसा रहता है। अपनी स्त्री को पूछता तक नहीं। उधर पत्नी-वियोग से पीडित है। कारुणिक विलाप करती है। इसमें विवाहिता का विलाप ही मुख्य है। शैली में कवित्त, सवैये, लावनी, गाने राग आदि मुख्य हैं। जैसे दो शैलियों के प्रयोग देखिए :—

"मन की कासों पीर सुनाऊं,
बकनो वृथा और पति खोनो सबै चबहि गवाऊं,
कठिन दरद कोऊ नहिं हरि है, धरि है उलटी नाऊं,
यह तो जो जानें सोई जाने, क्यों करि प्रकट जनाऊं,
बिना ललित मोहनी प्यारे हियरो काढ़ि दिखाऊं,
तुम बिन व्याकुल है जिय मोरा, कैसे तोहि बुझाऊं।

मिश्र जी का उर्दू शैली की गजलों पर भी पूर्ण अधिकार है। इसी एकांकी की एक गजल देखिये :—

फलक गिरता नहीं है इस जहान पर।
ले आह, तूही आग लगा आसमान पर॥
नानिन्द शमा आतशे फुरकत में जल बुझूं।
उफ तक न आने पावे मेरी ज़बान पर॥
सीने पै मेरे गिरते हैं आंसू ढलक-ढलक।
पाला पड़ा है, तो मेरे अंगिया के पान पर॥"

आप सामाजिक व्यंगकार हैं, तथा आपने समस्याप्रधान एकांकी ही लिखे हैं। कथोपकथन नतिन्त काव्य प्रधान है। रंगसूचनाएं संक्षिप्त हैं। 'दृश्य" के स्थान पर "झांकी" शब्द का प्रयोग किया गया है। भाषा चलती हिन्दी है। उनकी कला की पृष्ठभूमि में सामाजिक यथार्थ है।

११. श्री कांतिकप्रसाद खत्री : कान्तिप्रसाद रचित "उषाहरण" (१८६६) छोटा सा २५-२६ पृष्ठों का पौराणिक एकांकी है। तीन दृश्यों में यह उषाहरण के

कथानक को चित्रित करता है। वक्तव्य लम्बे हैं। स्वगत का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक है। जैसे प्रथम दृश्य में अनिरुद्ध का "आप-ही-आप" एक पृष्ठ का है। तृतीय दृश्य में उषा के उद्‌गार दो पृष्ठो में हैं। आपकी कला में हृदयपक्ष की प्रधानता है। इकाइयो का पालन नही किया गया है। भाषा में काव्य की सरसता और स्निग्धता है। जैसे "उदाहरण" में उषा का एक वक्तव्य देखिये

"अहा यह अठनारे पतले सुधापूर्ण होठो के भीतर उज्जवल दातो की पक्ति में उनकी मद मुस्कान की कैसी शोभा हुई कि मानो शरत्काल के अस्ताचल के मेघो में बिजली सी चमक गई। पर हाय मैं कैसी अभागिन हू कि उनके वचनामृत का एक बूद कर्णघटो में पडने न पाया और यह निगोडी नीद खुल गई है। हे अम्बे गौरी, अब मैं क्या करू ?"

१२ श्री श्रीशरण श्रीशरण का एकाकी "बाला विवाह" (१८७४) प्रहसन का कुछ अश "हरिश्चन्द्र मेगजीन" में प्रकाशित हुआ है। डा० सत्येन्द्र ने इसे एकाकी की श्रेणी में रखा है। यह ठीक भी है क्योकि इसमें गर्भाकों का निर्देश है। सक्षिप्त प्रस्तावना के पश्चात संस्कृत परिपाटी के अनुसार इसका प्रारम्भ होता है। इसमें दिखाया गया है कि नाऊ-ब्राह्मण बच्चो का विवाह तय करते समय व्यक्तिगत अर्थलाभ ही देखते हैं, वर-वधू के गुण-कर्मो या सुख का कोई ध्यान नही करते। बाद में उनके बडे भयकर दुष्परिणाम होते हैं। एकाकीकार ने पडा-पुरोहितो को आलोचना का विषय बनाया है। इस प्रहसन के पुरोहित का नाम है "क्षुद्रबुद्धि"। देखिये, लगन लिखते समय क्षुद्रबुद्धि कन्या के भविष्य के विषय में क्या कहते हैं :

"माहराज मेख लगन व्याह की है। याके सतये राहु और मगल पडा है और पूर्ति में केतु है। इससे इसको भर्ता की कमी न रहेगी　　यह विधवा कबहु न होयेगी। क्योकि लिखा है कि इसके सैकडो उपपति तैयार रहेंगे और दसवे शनीचर और चौथे सूर्य हैं, यासो यह व्याह होते ही सास-ससुर को भख लेगी, तब व्यभिचार के लिए याको कोई रोकने वाला भी न रहि जायगा।"

श्रीशरण की विशेषता उनके चुभते हुए व्यग्य है। उन्होने हिन्दू समाज की कमजोरियो, पडा-पुजारियो की अशिक्षा, मूर्खता और षड्यन्त्र रूढिवादी व्यक्तियो की कमजोरियो आदि पर मार्मिक व्यग्य किये है। आपकी वृत्ति सामाजिक सुधारवादी है।

१३ जैनेन्द्र किशोर : आरा निवासी श्री जैनेन्द्र किशोर ने जैन कथाओ के आधार पर एक चुटीला प्रहसन "सोमासती" अथवा "धर्मवती" (सवत् १९६५) अभिनय के लिए लिखा था। एक बडे नाटक "अजना सती" के मध्य में रोचकता तथा लालित्य की अभिवृद्धि के हेतु इसकी सृष्टि हुई थी। इसका प्रधान पात्र एक enlightened gentleman लिया गया है। धर्म के साथ-साथ यह एकाकी समाज सुधार पर भी सकेत करता है। जो लोग पढने के लिए विलायत जाते हैं, वे वहा से आकर कैसे बदल

जाते हैं, इस पर अच्छा व्यंग्य किया गया है। कथोपकथन गद्य तथा पद्य दोनों ही में है। इसकी विशेषता यह है कि एक ही अंक में सम्पूर्ण कथानक को स्पष्ट कर दिया गया है। चतुर्थ दृश्य में अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित जेंटिलमैन तथा उसकी पुराने जैन धर्म का अवलम्बन करने वाली पत्नी में बात-चीत का एक अंश देखिये .

चतुर्थ दृश्य

स्थान : बाबू की हवेली, सोमा बैठी है (बाबू का प्रवेश)

सोमा : (स्वयं निश्चयपूर्वक) फिर आया। देखें अब क्या करता है। ईश्वर की शरण

बाबू (आकर गाता है)

कहरवा

सुनो माई डियर मेरी स्वीट हार्ट।
मेरे साथ खालो तु फोर माई पार्ट।
तेरे हाथ जोड़ूँ धरूँ आगे हैट,
मेरी जान खालो सपर औलराइट।

सोमा : मैं रात्रि को स्वामी करूँ न आहार,
कहै जैन मत दोष इसमें अपार।

बाबू : तू है फल सिर पै चढ़ा तेरे भूत,
मिलो कैसी वाइफ हमारी कपूत॥

इस प्रकार अनेक अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग कर श्री जैनेन्द्रकिशोर ने अधूरे अंग्रेजी पढ़े-लिखे साहबों का खाका खींचा है। यह समस्या प्रहसन है, जिसमें धर्म, आदि समाज पर अंग्रेजी का कुप्रभाव चित्रित किया गया है।

१४. श्री बलदेव : इनका "रामलीला विजय" (१८८७) एकांकी है, जिसमें रामलीला और मुहर्रम का हाल बड़ी कैफियत से समझाया गया है। हिन्दू-मुस्लिम संगठन करना नाट्यकार की मूल वृत्ति रही है। रामलीला विजय में केवल पाँच दृश्यों में साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें यथार्थ चित्र मात्र है। यह एकांकी सं० १९४२ की साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिये लिखा गया था। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह दोहा-चौपाई वाली काव्य पद्धति से सर्वथा मुक्त है।

१५ श्री दामोदर शास्त्री : आपका "बाल खेल या ध्रुव-चरित्र' (१८८९) बालोपयोगी एकांकी है। प्रारम्भ में नान्दी मंगलाचरण में बाल और खेल नामक व्यक्ति आकर इस प्रकार वार्तालाप करते हैं .

बाल : "ध्रुव दानी रानी सुत, ध्रुव ही वा को फूल।

पुरुष और ४ स्त्री पात्र हैं। भक्ति रस का प्राधान्य है। इसे हम यही जरा एकांकी कह सकते हैं।

"भारत आरत' (१८८५) सुन्दर प्रहसन है। यह चार दृश्यों में हिन् भाषियों के लिए अनादर, नशेबाजी के दोष तथा कचहरियों की बुराइयां चित्रि करता है। मजिस्ट्रेट भारत की दुरव्यवस्था पर क्षोभ प्रकट करता है और भारती से अंग्रेजी राज्य की भक्ति की आशा प्रकट करता है।

१८. श्री गोविन्द : श्री गोविन्द का "विजयी धर्म" (संवत् १९८३) अ दृश्यों का एकांकी है जिसका प्रारंभ पुरानी संस्कृत परिपाटी के मंगलाचर सूत्रधार नटी विदूषक इत्यादि द्वारा होता है। मूल भावना नीतिमूलक आदर्शवाद । नटी के निम्न वक्तव्य से नाटक की वृत्ति पर प्रकाश पड़ता है:

"प्रथम गण राज राम दशरथ गुरु गोविन्द को ध्याओ।
कोई फिर खेल उपकारी, सभा में आज दिखलाओ॥
मिले उपदेश का चर्चा, भरी हो भक्ति की सर्चा।
अवस पूरा खिचे दिल में वही तस्वीर बतलाओ॥
मिटे अन्याय ही सारा, बहे सत्पथ की धारा।
दया की याद हो सबको, क्षमा की रीति समझाओ॥"

यह एकांकी अभिनय की दृष्टि से निर्मित है। साहित्यिक तत्व कम है, उपदेशात् अधिक। यत्र तत्र गायन का विधान है। धर्म, अधर्म, विवेक, क्रूरता, क्रोध, इत्यादि को मूर्त रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अन्य नाट्यकार

उपर्युक्त प्रसिद्ध एकांकीकारों के अतिरिक्त पं० बलदेवप्रसाद मिश्र ने न प्रकार में अपने नाट्य टैक्नीक सम्बन्धी विचार प्रकट किये तथा कई एकांकी लिखे जैसे "नवाब मिलन" बाबू कन्हैयालाल कृत "अजगा सुन्दरी" छोटा सा न है। पं० कृष्णविहारी शुक्ल कृत "आनन्दोदय" आदर्शवादी रचना है। पढ़ने से कौतूहल प्रतीत होता है। श्रीमन्त बलवन्तराव भैयासाहब सिंधिया का "उपाहरण" च प्रधान लघुनाटक है। श्री शुकदेव दुबे ने अपना "प्रबोध चन्द्रोदय" (१८९४ लिखा, जिसमें प्राचीन परम्परा के अनुसार नट नटी, काम और रति, विवेक, गु दम्भ, शिष्य, अहंकार, मोह, चार्वाक, अज्ञान, क्रोध, लोभ, तृष्णा, हिंसा इत्यादि मध्य में वार्तालाप प्राचीन अंग्रेजी के मोरेलिटी नाटकों के समान प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु युग में अनेक नाट्यकारो दृष्टि एकांकी के प्रयोगों की ओर गई थी। संस्कृत के रूपक-उपरूपकों के अनुसा आगे बढ़े। प्राचीन परिपाटी को छोड़कर नयी प्रणाली को प्रचलित करने की द उनमें थी।

अनुकरण पर और तृतीय राम, रामलीला और स्वाग इत्यादि की जन रगमच प्रणाली पर। अतिम प्रणाली पर पारसी स्टेज का भी प्रभाव स्पष्ट है।

किन्तु इस सबसे हिन्दी साहित्य में एकाकी नाटको की एक परम्परा स्पष्ट होती है। ये एकाकी सस्कृत शैली पर निर्मित हुए, पर पारसी रगमच के प्रभाव से मुक्त न हो सके। इनमें आधुनिक एकाकी के प्राय सभी तत्व अविकसित दशा मे प्राप्त हो जाते है। एकाकी रचना की कोई सुनिश्चित प्रणाली या तत्वों का विवेचन नही मिलता। "लेखकों ने एकाकियों को केवल एक शैली भेद के रूप में ग्रहण किया। खेलने की दृष्टि से बहुत कम नाटक लिखे गये। नाट्यकारो के साधन बहुत मोटे तथा उनकी धारणाए भी बड़ी हठी थी। इन एकाकी नाट्यकारो को अन्तर आत्म विश्वास और रूढ सस्कारो से छुडाने की आवश्यकता थी। ये नाट्यकार स्वय इस ओर प्रयत्नशील थे। पर बोझ इन पर भारी था।"

इनमें एक लक्ष्य है, चाहे वह समाज सुधार हो या चरित्र गौरव की स्थापना, संकलन त्रय में केवल कृत्य की एकता का निर्वाह हो सकना है, मूल विषय के साथ सहायक विषयो का प्रतिपादन भी हुआ है। सबके निदर्शन मे मितव्यय नही है, कथावस्तु जटिल नही होती थी। पात्रो के चरित्रचित्रण में बाह्य घात-प्रतिघातो का तो विश्लेषण है आन्तरिक द्वद्व की ओर कोई ध्यान नही दिया गया। कुछ एकाकियो के कथोपकथन बडे स्वाभाविक बन पड़े है। रग सकेत में भी थोड़े बहुत प्रत्येक एकाकी में में मिलते है।

अत. हमें यह स्वीकार करना पडेगा कि प्राचीन दशरूपको के अन्तर्गत कुछ रूपकों में एक अक का आश्रय लेकर कथावस्तु को सक्षिप्त तो अवश्य कर दिया गया था, पर उसमें जीवन के एक पहलु पर प्रकाश, एक ही महत्वपूर्ण घटना, परिस्थिति अथवा उद्दीप्त क्षण नही था। विषय की एकता, एकाग्रता तथा आकस्मिकता जो एकाकी के अनिवार्य तत्व है, इनमें नही थे। इनमें वर्णनात्मकता प्रधान हो गई थी। रस निष्पत्ति के लिये उपकरण खोजे जाते थे और या तो सगीत, राग-रागनियो, गजल, दोहे, सोरठो के द्वारा या अस्वाभाविक रूप से पात्रो को हसाकर, या और किसी सस्ते तरीके से वातावरण की सृष्टि की जाती थी।[1] इन एकाकियो में न तो पूर्ण रूप से सस्कृत नाट्य शास्त्र के नियमो का ही पालन होता था, न अन्य किसी विशेष परिपाटी का ही प्रयोग स्पष्ट था।

ये एकाकी प्रारम्भिक रूप के है। इनका निर्माण करते समय एकांकीकारों के सामने मूल समस्या अल्प काल में जनता का मनोरजन कर देना या किसी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट कर देना मात्र था। इनमें एकाकी आधुनिक टेकनीक अविकसित दशा में है तथा ये इनकी सीधी-सादी वर्णनात्मक शैली

---

१. डा० रामकुमार वर्मा "ऋतुराज" भूमिका, पृष्ठ १३ ।

में विनिर्मित हुए हैं। शैलियो के अनुसार इनके दो भेद किये जा सकते हैं। एक तो सरल शैली के व्याख्यामूलक एकांकी है, जिनमें जितना इष्ट है उतना ही प्रकट होता है, शब्द और अर्थ बहुत स्थूल हैं। दूसरे हास्यपूर्ण व्यंग्यात्मक प्रहसन हैं जिन्हें स्थूल रूप में हम समस्या एकाकी का नाम दे सकते हैं। इनमें तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक विद्रूपताओ को उभारा गया है और व्यग्य और परिहास की कटुता है। एकाकी-कार समाज और जीवन की यथार्थवादी आलोचना कर रहे थे। विषय और तन्त्र दोनो ही दृष्टियो से हिन्दी का एकाकी प्रारम्भिक अव्यवस्थित और अपरिपक्व प्रयोग-कालीन दशा में था।

: ३ :

द्विवेदी युग में एकांकी की प्रगति

१. राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण

द्विवेदी युग बहुमुखी राजनीतिक एव सामाजिक समस्याओ और नवीन विचारों का युग था। देश मे सास्कृतिक पुरुत्थान का कार्यक्रम तीव्रता से चल रहा था, राष्ट्रीयता का विकास हो रहा था, काग्रेस की अध्यक्षता मे भारतीय जनता अपने राजनीतिक अधिकारो के लिये सतत सघर्षशील थी, थियोसोफिकल सोसाइटी भारतीय महिला समाज की जागृति मे योग दे रही थी तथा आर्य समाज वैदिक सस्कृति का प्रचार देशभाषा हिन्दी मे कर रहा था। भारत मे स्वदेशी, स्वधर्म, स्वराज्य, समाज-सुधार, विश्व बधुत्व और शिक्षा सम्बन्धी नए विचार फैल रहे थे। राजा राममोहनराय द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज ने निराश लोगो को आशामय भविष्य की सूचना दे दी थी। इस प्रकार यह जन जागृति, समाजसुधार तथा सास्कृतिक पुनर्निर्माण का युग था। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य, शैलियो और विचारो का प्रभाव तीव्रता से आ रहा था।

सन् १९१८ से ही भारत के लिए सामान्य रूप से तथा हिन्दी के लिए विशेष-रूप से एक सक्रमण युग का प्रारम्भ हो जाता है। महायुद्ध मे अग्रेजी को सहयोग देने वाले भारतवासियो को अग्रेजी शासन की प्रतिज्ञाओ के आधार पर अपनी भाग्योन्नति की आशा हुई। जब ब्रिटिश सरकार की कूटनीति, पक्षपात, एव अत्याचार के कारण यह आशा पूर्ण न हो सकी, तो राष्ट्रीय स्वतत्रता आन्दोलन उग्र हो गया। अत १९२४ से २८ का काल अखिल भारतीय राष्ट्र भावना के लिए उत्तेजना और सजीवता का युग है। हिन्दी इस समय लगभग आधे भारत की भाषा थी। अखिल भारतीयता की दृष्टि से अग्रेजी तथा उत्तर मध्य भारतीयता की दृष्टि से हिन्दी भाषा और साहित्य ने इस राष्ट्र भावना के प्रसार मे सहयोग दिया। असहयोग आन्दोलन के आवेश मे जनता की राष्ट्र भावनाए इतनी तीव्र थीं कि सम्पूर्ण हिन्दी भाषा भाषी समाज मे एक लहर सी फैल गई। १९१८ की युद्ध समाप्ति के पश्चात् से पाश्चात्य विचारो का प्रभाव तीव्रता से फैलने लगा था। पश्चिम की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विचारधाराओ से सम्बन्धित साहित्य की ओर भारतीय जनता का कौतूहल सजग हो उठा। जनता मे अग्रेजी साहित्य तथा उसके माध्यम से विश्व साहित्य के परिवर्तनो, विचारो और शैलियो को जानने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। पाश्चात्य ललित साहित्य का पठन-पाठन और तत्सम्बन्धी सिद्धान्तो को जानने और

हिन्दी भापा मे उनके मौलिक प्रयोग करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई । पाश्चात्य साहित्य अब तक पर्याप्त समस्यात्मक हो चुका था । उसका विकास हर दिशा मे नई विशेपताओ तथा नया आकर्षण लेकर हो रहा था । कुछ नवीन साहित्यिक प्रयोग भी चल रहे थे ।

योरोप में एकाकी के विकास की कहानी भी कम मनोरजक नही है । प्रथम महायुद्ध के पश्चात् योरोपीय जीवन मे जटिलता, व्यस्तता, तीव्रता, अशान्ति, कार्य बाहुल्यता और द्वद्व की अभिवृद्धि हुई । मनोरजन तक के लिए अवकाश की कमी अनुभव की गई । समय की कमी और तन्मयता के अभाव मे जनता को गम्भीर तथा लम्वे उपन्यासो या वडे नाटको द्वारा मनोरजन करने का समय न मिलता था । वे मनोरजन के लिए कोई ऐसी साहित्यिक शैली या नया रूप (Type) ढूढने लगे, जो अपने आप में पूर्ण होकर अल्पकाल मे ही मनोरजन कर दे । फलत शोर्ट वैराइटी शो का आविर्भाव हुआ, जिसमे नृत्य, गायन, एकाकी प्रहसन आदि सभी डेढ दो घटो मे हो सके और जिससे थोडे से समय मे प्रत्येक नागरिक को सुविधानुसार अपना मनोरजन अथवा थोडा-थोडा प्रत्येक शैली और कला का आनन्द प्राप्त हो सके । इसी आवश्यकता से प्रेरित होकर पश्चिम के कलाशील और अनुसधान प्रिय मस्तिष्को ने कहानी और एकाकियो का आविष्कार किया है । [१], [२], [३], अपने नाना रूपो प्रहसन, सभापण, मौनोग्राम, फँटेसी, फीचर, झाकिया, स्केच, रिपोर्ताज मे एकाकी लोकप्रिय होने लगा । रिपर्टरी थियेटरो का सहयोग पाकर योरोप के प्रत्येक कोने मे फैशनेबुल समाज मे एकाकी का पठन-पाठन और स्कूल-कालेज अमेचर क्लबो, सोसाइटी, विशेष शो के अवसरो या असाधारण मौको पर एकाकियो के अभिनय की परिपाटी सी हो गई । एकाकी नाटक साहित्य मे भी एक नवीनतम माध्यम था । अत नई चीज के चाव तथा शैली के आकर्षण के कारण अल्पकाल मे ही एकाकी नाटक साहित्य के महत्वपूर्ण

---

१ प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त "महासमर के कुछ वर्ष पूर्व जब अग्रेजी रगमच लगभग एक शताब्दी की गहरी निद्रा से आख मल कर उठ रहा था एक नये ढग के छोटे नाटक का जन्म हुआ और शीघ्र ही वह लोकप्रिय हो गया। अमरीका में विशेपत एकांकी का स्वागत हुआ । उन चार वर्षों (१९१४-१८) में गम्भीर नाटक को रगमच के हल्के सगीत प्रधान प्रहसन ने बाहर किया। दर्शक अपने को भूलने के लिए ही रगभूमि में पहुंचते थे । एकाग्र साहित्य साधना की किसी को इच्छा न रही। ऐसे ही अनेक कारणों से एकाकी नाटक का पश्चिम के साहित्य में उत्थान हुआ।" "छः एकांकी नाटक" भूमिका, पृ० ४ ।

२ प्रो० अमरनाथ गुप्त, एम०ए० "पश्चिम में एकाकी का जन्म रगमच की नई-नई आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु हुआ था। छोटे थियेटर और रिपर्टरी थियेटरों को ही उसका जन्मदाता समझिये।" एकांकी नाटक, पृ० २६ ।

३ डा० सत्यनामसिंह शर्मा "एकांकी का वास्तविक विकास प्रथम महायुद्ध के पश्चात् हुआ है । युग की भौतिकता के कारण एकाकी का छोटा रूप शीघ्र ही लोकप्रिय बन गया है।" "तपस्विनी", भूमिका पृ० ६ ।

अग बन गए। इनकी लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अमेरिकन विश्वविद्यालयो तथा न्यूयार्क के लिटिल थियेटर्स मे प्रति वर्ष ५०० अमेचर सस्थाओ ने प्रतियोगिता मे भाग लिया है। "एकाकी का जन्म हुए पश्चिमी साहित्य में अधिक दिन नही हुए है, फिर भी उसका लघु इतिहास अभी से गौरवपूर्ण है।"[1] पश्चिम के नाटक साहित्य मे अब जो नया जीवन सचार है, उसका एक चिन्ह एकाकी नाटक की सफलता भी है। जनसाधारण मे जो नाट्यकला के प्रति उत्साह है, उसे एकाकी नाटक से बेहद सहायता मिली है।[2]

बीसवी शताब्दी मे हिन्दी और अग्रेजी का सम्बन्ध इतना अधिक हो गया कि अग्रेजी ने हिन्दी को बहुत कुछ अपने रग मे रग डाला।[3] नवीन पाश्चात्य शैलियो, नवीन रूपो और प्रणालियो के प्रति आकर्षण बढा। अत प्रयोगो के रूप मे हिन्दी साहित्यकारो ने पाश्चात्य प्रणालियो के अनुकरण पर साहित्य निर्माण करना प्रारम्भ किया। उन्होंने भी पाश्चात्य शैली पर हिन्दी भाषा मे एकाकी के मिले-जुले प्रयोग प्रारम्भ किये। सस्कृत परम्पराओ मे जन्मे, भारतेन्दु जी द्वारा विकसित हिन्दी एकाकी के विकास की इस अवस्था पर अग्रेजी का प्रभाव पर्याप्त मात्रा मे पड़ा है।[4] जो आलोचक यह मान बैठते हैं कि हिन्दी मे एकाकी के जन्म के भारत मे वही कारण मौजूद थे जो पाश्चात्य देशो मे रहे हैं, वे भूल करते हैं। न तो इस मत के पीछे ऐतिहासिक परम्परा का आधार है और न कला सृष्टि मे सन्निहित नैसर्गिक सिद्धान्तों का लेश है।[5] इस काल से ही हिन्दी एकाकी पर पाश्चात्य अनुकरण का प्रभाव स्पष्ट होने लगता है। द्विवेदी युग का एकाकी भारतेन्दु युग की अपेक्षा विषय और नाट्य विधान दोनो मे अपेक्षाकृत विस्तृत और व्यापक है।

२. द्विवेदी युग में नाट्य कला की स्थिति

इस साहित्यिक युग मे नाट्य साहित्य की धारा कुछ मद सी रही। नाट्यकला के ह्रास के कई कारण थे। "सभव है हमारे यहा नाट्य के ह्रास का यह भी कारण हो कि हम समयानुसार अपना आदर्श परिवर्तित करने मे हमेशा सबसे पीछे रहते हैं। नाटक देखने की चीज़ है। काव्य की तरह पढने की नही। अतएव जो नाटक सफलतापूर्वक खेला जा सके, वह उतना ही अच्छा है। पर इधर हमारे यहा बहुत दिनो से नाटक खेलने की प्रथा उठती जा रही है। लोग नाटक को पढ कर ही उसके असली आनन्द को प्राप्त करने के आदी हो गये हैं। अभिनय कला के प्रचार

---

१. प्रो० अमरनाथ गुप्त एम०ए० "एकाकी नाटक" पृ० ३७।
२. प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त : "हिन्दी एकाकी नाटक, छः एकाकी" भूमिका, पृ० ४।
३ डा० मरनामसिह शर्मा, "तपस्विनी" भूमिका, पृ० ४।
४ डा० सोमनाथ गुप्त · "हिन्दी नाटक साहित्य का इति०" पृष्ठ ३६२।
५. प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल "भारतीय ना० परम्परा के मूलतत्व" हिन्द० जु० १९५५।

से ही अच्छे नाटकों की सृष्टि हो सकती है। उसके विना सर्वाङ्गीण और दोष रहित नाटकों का बनाना कठिन ही नही, असगत है।'[१]

दूसरा कारण हिन्दी रगमच का अभाव था। अतीतकाल मे भारत मे रगमच की वडी सुन्दर परम्परा रही है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व "भरत नाट्य" जैसा नृत्य, नाट्य, एव सगीत का अत्यन्त प्रमाणित और विद्वत्तापूर्ण आलोचना ग्रन्थ जिस देश मे लिखा गया हो, उसके लिये सहज ही यह कल्पना की जा सकती है कि उसकी कलाए कितनी विकसित रही होगी। भवभूति, कालीदास, भास, हर्ष, अश्वघोष, विशाखदत्त आदि अनेक नाट्यकारो के नाट्य ग्रन्थो के आधार पर अनेक रगमच हमारे देश मे विकसित हुए, जो अवती, पाटलिपुत्र, उज्जयिनी इत्यादि नगरो के प्रेक्षागृहो मे प्रयोगित हुए थे। ये प्रेक्षागृह स्थापत्य, ध्वनि, प्रकाश, रगमच, पृष्ठागृह, पोशाकागार आदि की दृष्टि से अत्यन्त वैज्ञानिक थे। लगभग आठवी शताब्दी तक यह उत्तम परम्परा बनी रही। तत्पश्चात् विदेशी आक्रमणो के कारण भारत इतना त्रस्त और आक्रात हो गया कि रगमच का निर्माण न हो सका। भारतीय नाट्य साहित्य का ह्रास हुआ और ऐसे ही नाटक लिखे गये जो लक्षण ग्रन्थो के रूपान्तर मात्र थे और जिनमे अभिनय की अपेक्षा नाट्य तन्त्र की अधिक विवेचना हुई थी। १९ वी शताब्दी के प्रारम्भ में पारसी रगमच का भारतवर्ष मे आविर्भाव हुआ, जिसमे समस्त प्रेरणा भारतीय पारसी जाति के वडे-वडे धनिको और व्यवसायियो से प्राप्त हुई। उत्तर भारत मे अल्फ्रेड, न्यू अल्फ्रेड, कार्थियन, विक्टोरिया, अलेग्जेड्रिया आदि पारसी कम्पनियो द्वारा "हेमलेट, सिलवर किग, खूनी खजर, खूबसूरत वाला, पजाव मेल, श्रीमती मजरी, इन्द्र सभा" जैसे निम्नकोटि के नाटक खेले गये। इस पारसी रगमच का प्रभाव हिन्दी पर पडा। हिन्दी, वगला और मराठी मे भारतीय ढग से अधिक शिष्ट नाटक लिखे गये, किन्तु उनकी शैली पारसी ढग की ही थी। इनमें अनेक अक, दृश्य स्थल, घटनाओ, पात्रों आदि को एक ही स्थान पर गुफित करने के कारण आधुनिक नाट्यतन्त्र की नितान्त अवलेहना हुई। उनके लिए भी उचित रगमच का अभाव था। मराठी और वगाली रगमच मे नवीन प्रयोग अवश्य हुए हैं। आधुनिक ढग के एकाकी और वडे नाटक लिखे जाते थे, परन्तु उनके लिए उपयुक्त रगमच का अभाव इन प्रान्तो मे भी है।

दक्षिण भारत उत्तर भारतीय परिवर्तनो से लगभग वचा रहा और उसकी प्राचीन कलात्मक परम्परा अव भी प्रचलित है। उनके रगमच के प्राचीन प्रकार आज भी वर्तमान हैं, मलावार का कथकली नाट्य इसका वहुत सुन्दर उदाहरण है। कथकली नृत्यो मे अगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक, आदि विविध साधनो से हमारे देश का पौराणिक जीवन व्यक्त किया गया परन्तु समस्त उत्तर भारत इस युग मे अपने प्राचीन रगमच की अनेक परम्पराओ को खो वैठा।

१　प्रो० वदरीनाथ भट्ट बी० ए०, "सरस्वती" १९१५ जून, पृष्ठ ३२४।

तीसरा कारण शिक्षित और सुसंस्कृत समाज की अभिनय के प्रति अरुचि थी। नाटक मे अभिनय करना हीन दृष्टि से देखा जाने लगा था। समाज की यह उपेक्षा-वृत्ति नाट्यकला के लिए हानिकर हुई। इस प्रवृत्ति की ओर श्री बदरीनाथ भट्ट ने अपने एक लेख मे इस प्रकार सकेत किया है· "उत्तम नाटको का साधन उत्तम नाटक मडलिया है, जिनमे देश के पढे-लिखे आदमी शरीक हो। उनके अभाव में उत्तम तथा दोष रहित नाटक नही लिखे जा सकते' ' 'हमारा प्रान्त इस विषय मे बहुत पिछड़ा हुआ है। समर्थ तथा शिक्षित सज्जनो से प्रार्थना है कि वे अब सोई हुई अभिनयकला को फिर से जगावे और इस विषय मे मरहठे, गुजराती और बगाली भाइयो से शिक्षा लें। जब तक वे ऐसा न करेंगे, तब तक हिन्दी मे अच्छे और निर्दोष नाटक न बनेंगे और बिना पढे-लिखे भाइयो मे उत्तम विचारो का प्रचार न हो सकेगा। नाटको द्वारा आप अपने विचारो को सजीव करके दर्शको के हृदय मे मानो उसके लिए घर बना देते हैं। जातीय जागृति और एकता के लिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है।[1]

३. बंगला नाटकों का प्रभाव

इस युग के नाट्यकारो पर बंगाली नाट्यसाहित्य और विशेषत द्विजेन्द्रलाल राय तथा डा० रविन्द्रनाथ ठाकुर के नाटको का विशेष प्रभाव पडा है। हिन्दी एकाकी-कारो ने ऐतिहासिक एकाकियो के क्षेत्र मे द्विजेन्द्रलाल राय की नाट्यकला से विशेष प्रेरणा प्राप्त की है। द्विजेन्द्र के नाटक मध्यकालीन भारतीय इतिहास से सम्बन्धित मुगल युग की नाना प्रवृत्तियो के सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक चित्र हैं। ऐतिहासिक नाटको (शाहजहा, नूरजहा, दुर्गादास, मेवाड़ पतन, ताराबाई) के अतिरिक्त उन्होंने पौराणिक नाटक जैसे "पाषाणी, भीष्म, सीता" तथा सामाजिक नाटक जैसे "उस पार", "भारत रमणी" मे हम सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ उदात्त चारित्रिक विकास और देश की तत्कालीन सामाजिक समस्याओ का उचित समाधान पाते हैं। द्विजेन्द्रलाल राय को अपने ऐतिहासिक नाटकों मे विशेष सफलता प्राप्त हुई। जिनकी नाटकीय परिस्थितिया इतिहास सम्मत होते हुए भी चरित्रचित्रण एव मनोविश्लेषण मे प्रचुर मौलिकता तथा आदर्शो मे आधुनिकता का समावेश रखती हैं। उन्होंने राष्ट्र के पुनर्जागरण तथा विश्वप्रेम की जिन भावनाओ को अपने "दुर्गादास" और "मेवाड़ पतन" नाटको मे मुखरित किया है, वे राष्ट्र को अध पतन से बचाने के लिये उनके हृदय की स्वतन्त्रता और राष्ट्रभावना को स्पष्ट करते हैं। "मेवाड पतन" के तीन स्त्री पात्रो मे मन की तीन उदात्त अनुभूतियो को चित्रित किया है। कल्याणी पतिप्रेम, सत्यवती देश गौरव तथा मानसी विश्वप्रेम को मूर्तिमान करती है। उनका देश प्रेम विश्वप्रेम सर्वोपरि है। सत्यवती राष्ट्र प्रेम की सजीव प्रतिमा है जो यत्र तत्र घूमकर देश-

---

१ प्रो० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० "सरस्वती" १९१५ जून, पृष्ठ ३७८।

वासियो में स्वदेश भक्ति और स्वातन्त्र्य भावना को फूक देती है। विदेशियो के पास से देश को स्वतन्त्र करने के लिए उन्होंने प्रतिनिधि रूप मे "महामाया, ताराबाई, दुर्गादास और गोविन्दसिंह" आदि मे राष्ट्र उत्थान की भावनाए भर दी हैं। उनकी नाट्यकला का आधार यथार्थवाद तथा मनोवैज्ञानिकता है । पात्रो की आन्तरिक विचारधारा के अध्ययन की ओर उनकी विशेष प्रवृत्ति है। द्विजेन्द्रबाबू की यह मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि नूरजहा के चरित्र मे विशेष रूप से प्रकट हुई है, जहा उसके अचेतन जगत् का भी चित्रण है। उन्होंने हास्य की अवतारणा तो नही की है, यत्र तत्र पात्रो के कथोपकथनो मे निर्मल हास्य का पर्याप्त समावेश किया है, जिसमे परिस्थिति के साथ-साथ ध्वनि और व्यग्यार्थ की प्रधानता है।

४. अग्रेजी नाटकों का प्रभाव

भारत मे अग्रेजी भाषा के दीर्घकालीन उपयोग, उच्च कक्षाओ में अग्रेजी की नाट्य शैलियो के विशेष अध्ययन तथा माध्यम के रूप मे व्यापक प्रसार के कारण हिन्दी नाट्य जगत् मे अग्रेजी नाट्यशैलियो एव माध्यमो का विशेष रूप से अनुकरण प्रारम्भ हुआ। ये प्रयोग करने वाले नाट्यकार पूर्ण शिक्षित एव अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ थे। नवीन प्रयोग करने वालो मे विशेषत नाट्य साहित्य के निर्माताओ मे ऐसे नाट्यकारो की प्रचुर सख्या थी, जो अग्रेजी नाट्य जगत् के आदर्शों, परिपाटियो और नवीन प्रयोगो से प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे। अपने व्यक्तित्व का रग चढा भारतीय समस्याओ तथा तत्कालीन विचारधाराओ से कथानक लेकर इन्होने हिन्दी भाषा मे पाश्चात्य शैली के एकाकी नाटको के प्रयोग प्रारम्भ किये।

इधर योरोप मे कृत्रिम भावुकता, रोमान्टिक अतिरजना, कलागत रुढियो एव सौन्दर्य साधन के पुराने मापदड मर्यादा का अतिक्रमण कर चुके थे। धीरे-धीरे नवीन साहित्यिक जागृति एव क्रान्ति के लिए पृष्ठभूमि तैयार होने लगी, किन्तु इग्लैड मे ऐसा कोई साहित्यिक न था, जो आधुनिक युग की विचारधारा के अनुसार परम्परा को ढाल लेता या ऐसी शैली का आविष्कार करता जो आधुनिक परिस्थितियो से मेल खा जाती। यह महान कार्य योरोप मे नार्वेजियन नाटककार हैनरिक इब्सन (१८२८-१९०६) द्वारा सम्पन्न हुआ। इब्सन ने १९वी शताब्दी के अग्रेजी नाटको को अतिभावुकता, जीवन से दूरी, कल्पना तथा जीर्ण-शीर्ण मान्यताओ से मुक्त कर एक नए प्रकार के स्वाभाविक यथार्थवादी घरेलू नाटक की नीव डाली। उनके नाट्य साहित्य मे भावुकतापूर्ण सौन्दर्य, कल्पनाजन्य साहित्य साधना के स्थान पर वर्तमान सामाजिक सघर्ष से उत्पन्न जटिलताए, नये युग की समस्याए और नग्न यथार्थवादी जीवन की झाकिया दिखाई गई। कृत्रिमता के विरुद्ध आवाज ऊची की गई। उन्होंने यथार्थवाद का प्रचार किया, पुरानी बनावटी प्रणाली, काव्यमय कथोपकथन, पुराना रगमच अस्वाभाविकताओ का बहिष्कार किया और नये यथार्थवादी आदर्शों

का प्रचार किया। इव्सन ने प्रथम वार ऐसी यथार्थवादी दैनिक जीवन समस्याओ को अपने नाटको का विषय वनाया जैसे प्रेम तथा विवाह की गुत्थिया, धर्म की उलझनें, नैतिक आदर्शो का खोखलापन, सामाजिक आचार व्यवहार, तथा दैनिक जीवन की विद्रूपताए। ये वे विषय थे जिन्हे विक्टोरियन नाट्यकारो ने विवेचन के उपयुक्त न समझा था और त्याग दिया था। उन्होने स्त्री समस्याओ को अपने "डोल्स हाउस" मे उभारा, "घोस्ट्स" मे सस्कारो से उत्पन्न रोगो का विवेचन किया, "एन एनिमी आफ दी पिपुल' मे जनता की मनोवृत्तियो का खाका खीचकर यह चित्रित किया कि जनता एक स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति को किस प्रकार दडित करती है। "दी वाइल्ड डक" मे नाना प्रकार से मर्यादाओ का अतिक्रमण करने वाले व्यक्तियो पर व्यग्य किया है। इस प्रकार इव्सन ने नाट्य जगत मे विषय सम्वन्धी एक क्रान्ति उत्पन्न की और नाना प्रकार की सामाजिक समस्याओ को प्रविष्ट कराया। उनके पात्र जीते जागते हड्डी और मास के पुतले थे, जो समाज मे दैनिक जीवन की समस्याओ से सघर्ष करते थे। कल्पना की कलावाजियो, अद्‌भुत रोमाचकारी कथानक या रगमच की सस्ती भावुकता से नाटक मुक्त हो गया।

सर्वप्रथम उनके नाटक सामाजिक, दैनिक और घरेलू समस्याओ से सम्वन्धित है। पुराने असभव दृश्यो, मिथ्या भावुकता, रोमास या कृत्रिमता का इनमे कोई सरोकार नही है। उनका मूल उद्देश्य अपने समाज के यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करना है। उन्होंने अनुभव किया कि लम्वी-लम्वी कृत्रिम भावुकता से भरी हुई उक्तियो से परिपूर्ण नाटको का सम्वन्ध मनुष्य के नित्य प्रति के दैनिक जीवन से कुछ भी नही हो सकता। यदि अग्रेजी नाटक महत्वपूर्ण वनना चाहता है, तो उसे समाज का प्रतिविम्व वनकर रहना होगा। युग के जीवन तथा समस्याओ को मुखरित करना होगा, अद्‌भुत् कल्पनायुक्त प्रदेश तथा व्योमविहार से युक्त होकर नये युग के कठोर सत्यो का दिग्दर्शन करना होगा। इन यथार्थवादी आदर्शों का कुछ प्रतिपादन हेवुड ने सत्रहवी शताव्दी तथा लिलिओ ने अठारहवी शताव्दी मे भी किया था। किन्तु उन्होंने इव्सन की भाति सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओ का प्रतिपादन इतने यथार्थवादी ढग से नही किया था।[1] इव्सन ने घरेलू और सामाजिक समस्याओ के प्रति जन रुचि को मोड़ दिया।

उनके नाटक आधुनिक सामाजिक जीवन की नित्य प्रति की घटनाओ से सम्वन्धित समस्या नाटक थे, जिनमे व्यग्य, उपहास, कटाक्ष और आलोचना का सम्मिश्रण था। इनका उद्देश्य मानव को समाज के जीर्ण-शीर्ण सम्वन्ध, कृत्रिमता, रुढिवादिता से मुक्ति दिलाकर स्वच्छ वनाना था। इव्सन ने नये समाज का निर्माण करने वाली भावना के चित्र खींचे हैं। उन्होंने चित्रित किया है कि सामाजिक मानव का भाग्य निर्माण करने वाली कुछ अदृश्य दैवी शक्तिया हैं जो

१ एलैर्डिस निकिल "दी ब्रिटिश ड्रामा," पृष्ठ ३४०।

मच के भीतर से पात्र को प्रभावित करती हैं और धीरे-धीरे नाटक की कथावस्तु को करुणा की चरम सीमा पर पहुँचा देती हैं। विशेषरूप से आपने विवाहित स्त्रियो की दयनीय परिस्थिति तथा समाज के शिकजे मे बधे होने के चित्र खीचे हैं। उन्होने प्रथम बार साहसपूर्वक समाज की कमजोरियो पर व्यग्य किये।

टैकनीक के क्षेत्र मे नाटक के पाच भागो मे से इब्सन ने प्रारम्भिक भाग को छोड दिया। उनके नाटक सघर्ष से प्रारभ हुए। ये सघर्ष को पार कर तीव्र गति से चरम सीमा की ओर चलते है और फिर अतिम निर्णय पर पहुँच जाते हैं। इब्सन ने स्पष्टवादिता से काम लिया है। यह स्वाभाविकता विक्टोरियन युग की अतिरजना और भावुकता के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया स्वरूप हुई थी। लम्बे काव्यमय कथोपकथन, स्वगत, कथन, अर्द्धजाग्रत, सकलन त्रय की अवहेलना, प्राचीन परिपाटी के काल्पनिक मिथ्या विचार और मनोविकारो के कृत्रिम उद्गारो का चित्रण छोड दिया गया। कल्पना लोक तथा कृत्रिम आदर्श भूमि से उतरकर नाटक चिरसघर्षमय वर्तमान मे आ गया।

इग्लैंड मे नाटक की कृत्रिमता, अतिशय भावुकता और रगमच के सस्तेपन से मुक्त करने का कार्य आर्थर पिनरो (१८५५–१९३४) तथा हेनरी आर्थर जोन्स (१८५१–१९२९) के द्वारा सम्पन्न हुआ। उनकी प्रारभ में तीखी आलोचना भी हुई। हेनरी आर्थर जोन्स का नाटक "माइकल एन्ड हिज लोस्ट एन्जिल" ने बडी क्रान्ति उत्पन्न की क्योकि उसका कथानक एक ऐसे पादरी के जीवन से सम्बन्वित था जिसने पाप किया और उस पाप पर उसे जितना पश्चाताप करना चाहिये था न किया। धर्म के सरक्षको ने इस पर तीखे प्रहार किये किन्तु जोन्स तथा पिनरो अपने क्रान्तिकारी कार्य मे दृढता से डटे रहे। इनके अनन्तर आस्कर वाइल्ड तथा डब्ल्यू० एस० गिल्बर्ट के नाटक आते हैं, जिनमे जागृति का प्रकाश है और जो जीवन के अधिक समीप हैं। वाइल्ड ने अपने तीखे बुद्धि विलास और व्यग्य द्वारा अग्रेजी नाटक को विश्व साहित्य मे ऊचा उठाया। वे सौन्दर्य के सब रूपो मे आराधक थे। गिल्बर्ट भी व्यग्य के प्रयोग की असाधारण प्रतिभा सम्पन्न थे तथा अपने युग की कमजोरियो के निर्देश मे विशेष प्रयत्नशील रहे।

इब्सन का नये युग के नाट्यकारो पर विशेष प्रभाव पडा है। उनकी यथार्थवादी कार्यप्रणाली से प्रभावित होकर आर्थर विग, पिनरो, गाल्सवर्दी, शा, इत्यादि एकाकीकारो ने नवीन शैली के यथार्थवादी समस्या नाटको की सृष्टि की है। अग्रजी रगमच क्रमश तडक-भडक तथा व्यवसायीवृत्ति से मुक्त होकर जीवन के समीप आ गया। आधुनिक नाट्यकारो ने तडक-भडक के दृश्य निकाल डाले हैं और अपनी समस्याए, पात्र, स्थितिए, वातावरण इत्यादि मानव जीवन की दैनिक समस्याओ में से चुने हैं। कथोपकथनो मे स्वाभाविकता का पूर्ण ध्यान रखा गया है। पात्रो के भाषण लम्बे न होकर छोटे-छोटे सरल भाषायुक्त, स्वाभाविक, और व्यापक

होने लगे है। नाट्यकारो की कला का केन्द्र बिन्दु जीवन का ज्यों का त्यो यथार्थवादी रूप से चित्रण हो गया। यही नही, पश्चिम के आधुनिक श्रेष्ठ नाट्यकार केवल अग परिचालन तथा मूक अभिनय द्वारा मन की नाना वृत्तियो की अभिव्यजना नाट्यकला का एक अग मानने लगे हैं। वे आधुनिक मानव जीवन तथा समाज का नग्न चित्र प्रस्तुत करना तक अपनी कला का ध्येय समझने लगे है।

अक विधान के सम्बन्ध मे भी नाना प्रकार के प्रयोग हुए हैं। शैक्सपीयर के नाटको की पाच अक वाली पद्धति के विरुद्ध आन्दोलन चले है। पाच के स्थान पर तीन अको को रखने की प्रथा चली। कथावस्तु के तीन महत्वपूर्ण भागो को तीन अको के अन्तराल मे सक्षिप्त कर लिया गया है यह एक विकास अवस्था थी जहा आकर भी नाटक की प्रगति अवरुद्ध नही हुई। तीन सकुचित होकर एक अक मे सीमित हो गये। अनावश्यक पात्रो को बहिर्गत कर दिया गया। एकाकियो मे जीवन का एक पहलू, एक महत्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा उद्दीप्त क्षण का चित्रण आरम्भ हो गया। क्षेत्र सकुचित किन्तु सकलन त्रय का पूर्ण निर्वाह चलने लगा।

इब्सन तथा उनके अनुयायियो के नाटको का योरोप मे पहले तो बडा तिरस्कार हुआ। किन्तु कालान्तर मे उनकी यथार्थवादी शैली का महत्व समझा गया। आज पश्चिम मे इब्सन का जो मान है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सन् १८९५ मे जो भविष्यवाणी बर्नार्ड शा ने की थी वह सत्य थी। इब्सन के प्रभाव से नाटको से वाह्याडम्बर, कृत्रिमता, पद्यो का प्रयोग, नृत्य, स्वगत, इत्यादि का बहिष्कार हो गया। नाटक जीवन के समीप आ गया है। पश्चिम के सभी आधुनिक नाट्यकारो पर इब्सन का प्रभाव स्पष्ट है।

भारत मे भी नाट्यकारों पर यह प्रभाव स्पष्ट दिखता है। हिन्दी के पुरानी शैली के नाटको मे पात्र पद्य मे बातचीत करते थे, शेर सुनाए जाते थे, कविताओ और नृत्यो की भरमार रहती थी। यहा तक कि पात्र गद्य मे बोलता-बोलता अकस्मात पद्य मे बोलने लगता था। स्वगत कथन लम्बे तथा अस्वाभाविक होते थे। इब्सन के प्रभाव के कारण ये कृत्रिमताए विलुप्त हो गई हैं। आधुनिक नाटक मे कुछ विशेष स्थलो और परिस्थितियो को छोडकर पात्रों का रगमच पर लम्बे-लम्बे स्वगत भाषण करना सर्वथा अस्वाभाविक माना जाने लगा है।[1]

आधुनिक अग्रेजी एकाकीकार, जिन पर इब्सन का विशेष प्रभाव पडा है, ये हैं आर्थर विग, पिनरो, आस्कर वाइल्ड, जार्ज बर्नार्ड शा, आर्थर जोन्स, होप्टमैन, शेरवोव, सन्डरमैन, प्रीस्ले। इन सब एकाकीकारो ने कृत्रिमता से मुक्ति पाकर दैनिक जीवन तथा समाज की दिन-प्रतिदिन की समस्याओ, जीवन के नाना पहलुओ, परिस्थितियो को शब्द मितव्यय तथा निदर्शन चातुरी से प्रस्तुत किया। कथोपकथन मे वाक्वैदग्ध्यता,

---

१ सेठ गोविन्ददास "नाट्यकला मीमासा," पृष्ठ ३०

सक्षिप्तता, मर्मस्पर्शिता और चारित्रिकता का समावेश किया। नाटकीय सकेत बढकर लम्बे, व्यापक, प्रभाव व्यजन तथा रगभूमि की व्यवस्था के सम्बन्ध मे लम्बी योजनाओ से युक्त हो गये। रगमच की अपूर्णताओ और न्यूनताओ को दृष्टि मे रखकर अभिनय योग्य यथार्थवादी एकाकियो का निर्माण किया गया।

भारतेन्दु काल मे अग्रेजी का प्रभाव पड चुका था, पर वह इस काल मे और अधिक स्पष्ट होने लगा था। अग्रेजी पुस्तको के अनुवादो, तथा बगला के माध्यम से अग्रेजी साहित्य हिन्दी पर प्रभाव डालने लगा था। हिन्दी एकाकी के बाल्यकाल मे अग्रेजी नाटको के कुछ अनुवाद हुए थे, किन्तु वे अधिक सफल नही थे। अब कविता, गद्य, तथा नाटक तीनो ही क्षेत्रो मे अग्रेजी साहित्य के प्रति लेखको का आकर्षण था। काव्य के क्षेत्र मे श्रीधर पाठक द्वारा गोल्डस्मिथ के "डैजरटेड विलेज" तथा "ट्रैवलर" के अनुवाद हो चुके थे। वर्डसवर्थ के प्रकृति चित्रण का प्रभाव हिन्दी काव्य पर था। हमारे कवियो ने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण कर उनका वर्णन अग्रेजी शैली पर किया। गोल्डस्मिथ की शैली पर श्रीधर पाठक ने स्वय लिखा। सबसे महत्वपूर्ण कार्य नाटक के क्षेत्र मे हुआ। शैक्सपीयर, एडिसन आदि नाट्यकारो के और अनुवाद हुए। इटावा निवासी रत्नचन्द्र (१८४०-१९११) ने "कामेडी आफ एरर्स" का "भ्रमजालक" नाम से अनुवाद किया। तोताराम वर्मा ने जोसेफ एडिसन के "केटो" का "केटी वृतान्त" नाम से अनुवाद किया। अनुवाद की दृष्टि से जयपुर के पुरोहित गोपीनाथ एम० ए० ने "एज यू लाइक इट" का "मनभावन" तथा "रोमियो जूलियेट" का "प्रेमलीला" विशेप सफल रहे हैं। भारतेन्दु ने केवल विदेशी नामो के स्थान पर भारतीय नाम रख दिये थे, भावो, रीति रस्मो, आचार-विचारो को विदेशी रूप मे ही रहने दिया था। जबलपुर की आर्य नामक महिला ने "मर्चेन्ट आफ वेनिस" का एक अविकल अनुवाद प्रस्तुत किया, जिसमे पद्याशो का अनुवाद पद्यो मे ही किया गया। पुरोहित गोपीनाथ तथा इस महिला ने कवि के शब्दो और वाक्यो को अति सुन्दर रूप मे रखा है। सन् १८९३ मे मिर्जापुर के मथुराप्रसाद उपाध्याय शर्मा बी० ए० ने शैक्सपीयर के "मेकवेथ" का "साहसेन्द्र" नाम से अनुवाद किया। इनकी एक विशेषता यह थी कि उन्होंने कथा को भारतीय वातावरण मे प्रस्तुत किया था। अग्रेजी के इस प्रभाव से हिन्दी एकाकी मे नवीन प्रेरणा प्राप्त हुई। हिन्दी नाट्यकारो को अपनी त्रुटियो का भान हुआ, रूढियो मे शिथिलता आने लगी। "स्वगत कथन" भी कम हो गये, पद्यो का प्रयोग भी अपेक्षाकृत शिथिल होने लगा। एकाकियो की रचना भी पाश्चात्य ढाचे के समीप आ गई। भाव, भाषा, शैली, सभी क्षेत्रो मे अग्रेजी अपना प्रभाव डाल रही थी।

५. मराठी मे एकाकी नाटको की प्रगति

फिर भी नाट्य साहित्य को आगे बढाने मे भारतीय साहित्यकार जागरूक थे। मराठी साहित्य मे नाट्य साहित्य की उन्नति के लिये नये नये उपाय सोचे जा रहे थे

पूना मे भारत नाट्य समाज की स्थापना लगभग १९०८ मे हुई। उसके अनेक उद्देश्यो मे यह भी उद्देश्य था कि नाट्य विषयक आलोचनात्मक साहित्य की भी सृष्टि की जाय और पाश्चात्य देशों के नाट्य-आदर्शों से लाभ उठाया जाय। इस नाट्य समाज के प्रबन्ध से महाराष्ट्र मे समय समय पर नाट्य-सम्मेलन हुआ करते थे तथा उनमे महत्वपूर्ण नाट्य-साहित्य से सम्बन्धित निबन्ध पढे जाते थे। १९१३ तक भारत नाट्य-समाज के सात-आठ सम्मेलन हो चुके थे। १९२३ मे इस सस्था ने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम "नाटकीय विषयक सुशिक्षित चर्चा" था। इसमे इन सम्मेलनो के कई सभापतियो के नाटको पर भाषण, नाट्यकला पर निबन्ध, तथा अभिनय सम्बन्धी लेखो का सग्रह किया गया था। नाटक क्या वस्तु है? उससे क्या लाभ है? उसका प्रचार भारत मे कब से है? नाटको के गुण दोष क्या हैं? इस प्रकार की उपयोगी वार्त्ता इस पुस्तक मे है।[1]

द्विवेदीजी नाट्यकला की उन्नति के लिये सदैव प्रयत्नशील रहे। उन्होंने स्वयं "नाट्यशास्त्र" नामक एक ग्रन्थ लिखा था जिसमे नाटक से सम्बन्ध रखने वाली बातो-रूपक, उपरूपक, पात्र-कल्पना, भाषा, रचना-चातुर्य, वृत्तिया, अलकार, लक्षण, यवनिका, पर्दे, रगमच, वेशभूषा, दृश्य, काव्य, काल विभाग आदि अनेक तत्वो का विवेचन किया है। जो लोग नाटक मडलिया स्थापित करके अच्छे नाटको द्वारा देश में सुरुचि का बीजारोपण कर रहे थे, उन्हे इस पुस्तक मे किये गये सकेतो से विशेष लाभ पहुचता था।

द्विवेदीजी के सरक्षण, पथ-प्रदर्शन एव प्रेरणा से हिन्दी साहित्य के प्राय सभी अंगो मे नव-स्फूर्ति का सचार हुआ। साहित्य के पुरातन अङ्गो का नये ढग से विकास प्रारम्भ हुआ। एकाकी, कहानी, काव्य आलोचना, खड काव्य के क्षेत्रो मे अभूतपूर्व परिवर्तन हुए। शार्ट स्टोरी अर्थात लघु कहानी का प्रारम्भ इसी युग मे हुआ। उपन्यास के क्षेत्र मे नये कदम रखे गये। भारतेन्दु-युग से चलकर आगे साहित्य के सभी अङ्ग विकासोन्मुख थे। उनमे रुचि-वैचित्र्य परिष्कार, और परिपक्वता का उद्भव हो रहा था। एकाकी पश्चिम के रूप सिद्धातो एव तत्वो से प्रभावित होकर परिष्कृत हो रहा था। पुराने सस्कृत के मापदड हल्के पड़ रहे थे। व्यक्तिगत रुचि-वैचित्र्य का प्रवेश था। एकांकी के वाह्य रूप तथा टैकनीक पश्चिमी नाट्यकारो से प्रभावित थे। अग्रेजी नाटकों मे कथानक के वैचित्र्य पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

६ द्विवेदी युग के एकांकी

पाश्चात्य प्रभाव तथा कुछ अग्रेजी के सीधे अनुकरण से हिन्दी एकाकी मे नवीनता आ गई। भारतेन्दु-युग मे जो एकाकी सस्कृत परिपाटी पर विरचित हुआ था, वह इस युग मे नये रूप मे विकसित होने लगा। पुरानी कठोर नियन्त्रण की

---

१. देखिए "सरस्वती" सन् १९१३, अङ्क ५।

सस्कृत-पद्धति छूटने लगी और नये ढग के एकाकी नाटक लिखे जाने लगे। नई समस्याए, विचारधारा एव गद्य की शिष्ट भाषा का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। शालाओ में अभिनय योग्य एकाकी, सवादो, प्रहसनो और दृश्यो का विशेष रूप से निर्माण हुआ। स्कूल, कालेज या सामाजिक उत्सवो पर जन-समुदाय के मनोविनोद के लिये एकाकी का अभिनय आवश्यक समझा जाने लगा। कुछ व्यक्तियो ने विद्यार्थियो के आत्म-विकास मे एकाकी को आवश्यक समझा।[1] यद्यपि नाटको का अभाव न था, किन्तु अभिनय योग्य सुरुचि-पूर्ण एकाकी कम मिलते थे। दूसरे स्त्री पात्रो के आने से लडके उनका अभिनय करते लजाते थे और उन पर स्त्री के अनुरूप हाव-भाव करने से बुरा प्रभाव पडता था। तीसरे शृङ्गार-रस प्रधान एकाकियो को विद्यार्थियो के सम्मुख रखना उचित न था। इसलिए इस युग के एकाकी तीन धाराओ मे विकसित हुए। १ सामाजिक व्यग्यात्मक एकाकी, २ राष्ट्रीय नैतिक और ३ पौराणिक आदर्शवादी। प्रथम वर्ग मे प्रहसन भी सम्मिलित हैं।

७ हिन्दी एकांकी की धाराएं

१. सामाजिक व्यग्यात्मक धारा • इस वर्ग मे समाज की भावना लेकर हमारे एकाकीकारो ने समाज की प्रचलित जीर्ण शीर्ण त्रुटियो पर व्यग्य किए हैं। इनमे कुछ समस्याए तो वे ही है, जो भारतेन्दु युग मे प्रहसनो का विषय बनी थी। जैसे बाल, वृद्ध और अनमेल विवाह, जाति बिरादरी की सकुचितता, जुआ, शराब, व्यभिचार, वेश्यागमन, दहेज, धार्मिक पाखड, कन्या विक्रय आदि। कुछ एकाकियो मे नए विषयो का समावेश हुआ, जैसे आनरेरी मजिस्ट्रेटी, म्यूनिस्पैलिटी का चुनाव, पाश्चात्य शिष्टाचार का अन्धानुकरण, मालिक नौकर समस्या फैशन, नारी-स्वातन्त्र्य, हिन्दी की दुर्दशा, अग्रेजी पढे लोगो की कुत्सित वृत्तिया, शृङ्गार-प्रधान कविता के दोष, सार्वजनिक जीवन की त्रुटिया आदि। जहा इन त्रुटियो का उन्मूलन करने का प्रयत्न किया गया, वहा दूसरी ओर सामाजिक नवनिर्माण के लिए कुछ एकाकीकारो ने नए रूप भी प्रस्तुत किए। प्रथम वर्ग मे सर्वश्री चडीप्रसाद हृदयेश, प० तुलसीदत्त शैदा, जी० पी० श्रीवास्तव, बदरीनाथ भट्ट, हरिशकरशर्मा, प्रेमचन्द, सुदर्शन, रूपनारायण पाडेय, रामनरेश त्रिपाठी पाडेय बेचन शर्मा उग्र, ब्रजलाल शास्त्री, डा० सत्येन्द्र, प्रसाद आदि हैं। दूसरे वर्ग में श्रीराम वाजपेयी, मुरारीलाल शर्मा, कुजविहारीलाल सनेही, रामसिह वर्मा, सरयूप्रसाद विन्दु, शिवरामदास गुप्त आदि रखे जा सकते हैं।

विवाह समस्या को लेकर अनेक एकाकी लिखे गए हैं। वृद्ध विवाह की त्रुटियां

१ "मेरी समझ में नाट्काभिनय इतना आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी को यह जानना चाहिये। नाटक खेलने से हाव-भाव प्रकट करने की योग्यता होती है, वृहत् जनसमुदाय के समक्ष अपने विचार स्वतन्त्रता से प्रकट करने का साहस होता है, तथा यदि नाटक अच्छे लेखकों द्वारा लिखे गए हों, तो अभिनेताओं को अच्छे भाव सीखने का अवसर प्राप्त होता है।" श्री नर्मदाप्रसाद मिश्र 'सरल नाटक माला" (१९१७) की भूमिका, पृष्ठ ६।

चित्रित करते हुए जो एकाकी लिखे गए उनमे सर्वप्रथम जीवानन्द शर्मा कृत "वाला का व्याह" (१९१४) है जिसमे सुधारवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। प० हरिशकर शर्मा कृत "वुढाऊ का व्याह" एक साथ वृद्ध और अनमेल विवाहो तथा दहेज पर प्रहार करता है। इन एकाकी के पात्रो के नाम लम्पट लाल, दुर्मतिदेव, द्रव्यदास, भोंदू भक्त, निदुरिया नाई उनकी चारित्रिक कमजोरियो पर व्यग्य करते हैं। श्री जी० पी० श्रीवास्तव कृत "गडवड भाला" (१९१२) रगमचीय एकाकी है, जिसमे वृद्धो की अनियन्त्रित वासना, कामुकता, विरादरी के नेताओ की भ्रष्टता चित्रित की गई है। इन्ही के "वटाधार" (१९१५) मे एक अधेड दुराचारी सूदखोर महाजन की चरित्रहीनता का खाका खीचा गया है। वालविवाह समस्या पर पडित शैंदा का "लज्जा" (१९२७) आठ वर्ष की युवती का विवाह तथा एक वर्ष पश्चात् विधवा होकर असख्य दुःख सहन करने से सम्वन्धित है।

कन्या विक्रय पर श्री रामसिंह वर्मा कृत "रेशमी रूमाल" पुरानी शैली का लम्वा एकाकी है, जिसमे सैंटो नामक पात्र रुपये लेकर शान्ति का विवाह वृद्ध वकील निताई से कर देना चाहता है। इसमे रोमास की त्रुटिया, आधुनिक शिक्षा की कमजोरिया और प्राचीन परम्परा से प्रचलित पतिव्रत-धर्म का प्रतिपादन किया गया है। श्री वदरीनाथ भट्ट कृत "विवाह विज्ञापन" आधुनिक शिक्षित वर्ग की रोमासवृत्ति पर एक व्यग्य है। श्री प्रेमचन्द कृत "प्रेम की वेदी" विपरीत धर्मो के प्रेमियो का प्रणय, नारी की दयनीय स्थिति, विवाह तथा उसमें धर्म का हस्तक्षेप आदि विषयो पर प्रकाश डालता है। प्रेमचन्द का आदर्शवादी सुधारक रूप इनसे प्रकट हो जाता है। इस एकाकी मे धर्म की सकुचितता, जटिलता, साम्प्रदायिकता और द्वेष आदि पर भी छीटे हैं। अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन है। हृदयेश कृत "विनाशलीला" (१९२५) मे कन्या के जन्म से ही सामाजिक कठिनाइयो का विवेचन है।

डा० सत्येन्द्र कृत "वलिदान" दहेज के सामाजिक व्यापार का पर्दाफाश करता है। श्री जयशकर प्रसाद कृत "एक घूट" (१९२९) मे उन्मुक्त प्रेम आलोचना का विषय वन गया है। इसमे चित्रित किया गया है कि संसार के लिए कोई भी आदर्श तभी मंगलमय हो सकता है जव सिद्धात और व्यवहार मे पूर्ण सामजस्य हो। इसमे वनलता और प्रेमलता हृदय-पक्ष के प्रतिनिधि हैं। चन्दुला और झाडूवाला जीवन की व्यवहारिकता के मापदण्ड हैं। आनन्द विद्वान है पर स्वतन्त्र प्रेम का अनुयायी है। यह कोरी कल्पना करता है और उसके विचार व्यवहारिकता की कठोर भूमि पर नहीं टिकते। श्री जी० पी० श्रीवास्तव का "भूलचूक" (१९२६) विधवा विवाह का समर्थन करता है। आपका "अच्छा उर्फ अकल की मरम्मत" (१९१८) शिक्षित पति तथा अशिक्षित पत्नी की वैवाहिक कटुताएं उभारता है।

अन्य सामाजिक समस्या प्रधान एकाकियों मे जी० पी० श्रीवास्तव का "लकड़ वाघा" (१९२७) मे सूदखोर वनियो तथा कर्ज लेने वालो की दुर्गति, सूदखोरो की

कुचालो और दुष्टता का चित्र है। "करिया अक्षर भैंस बराबर" (१९२८) में निर-क्षरता से होने वाले दुष्परिणामो, ऋण के कष्ट, मुकद्दमे बाजी की अड़चनें और पोस्ट-मैनो की चालबाजियो पर व्यग्य है। "भारत माता की जय" (१९३०) में देश मे वस्त्र सकट का चित्रण है। कुछ एकाकी छुआछूत तथा वर्ग वैषम्य की हानिया दिखाने के लिए लिखे गये हैं जैसे प० हरिशकर शर्मा कृत "बिरादरी विभ्राट", "पाखण्ड प्रदर्शन" और "स्वर्ग की सीधी सडक" (१९२५)। श्री बदरीनाथ भट्ट ने पारिवारिक कटुताए चित्रित करते हुए "पुराने साहब का नया नौकर" वैद्यक की ढकोसले बाजी पर "आयुर्वेद कसेरू वैद्य बैंगनदास जी कविराज" तथा राजपूतो के मिथ्या गर्व पर "ठाकुर दानीसिंह" उल्लेखनीय एकाकी हैं।

कुछ एकाकी नाटककारो ने समाज सेवको के खोखलेपन को चित्रित किया है जैसे सुदर्शन कृत "आनरेरी मजिस्ट्रेट" (१९२६) जनसेवकों की मूर्खता, लोभ, डरपोकपन और अशिक्षा को प्रकट करता है। बदरीनाथ भट्ट कृत "चुगी की उम्मेद-वारी" आजकल के चुनावो पर व्यग्य है। प० रामनरेश त्रिपाठी कृत "सीज़न डल है" डाक्टरो के मिथ्या प्रचार, "स्त्रियो की कौंसिल" मे औरतो की कलहप्रियता, शृङ्गारिक कविता द्वारा भारत का मानसिक पतन चित्रित करते हैं। श्री जी० पी० श्रीवास्तव का "दुमदार आदमी" युनिवर्सिटी ग्रेजुएटो की अनुभवशून्यता, "अछूतोद्धार" अछूतो के प्रश्न, डा० सत्येन्द्र कृत "वसन्त स्वागत" पूजीवादी आर्थिक शोषण का चित्र है। डा० सत्येन्द्र के "मानव उद्धार" मे विश्व के समस्त मिथ्याप्रचार के विरुद्ध शक्तिसचय करने वाले आदर्श और स्वस्थ मानववाद की ओर सकेत है। उपर्युक्त "चार बेचारे" के चार एकाकियो में अध्यापक, नेता, सम्पादक आदि की कठिनाइया चित्रित की गई हैं। श्रीराम वाजपेयी, मुरारीलाल शर्मा और कुजविहारी सनेही द्वारा लिखित "जयहोलिका माई", "गगा की बाढ", "विकट फैशन", और "सेर का सवा सेर" नाटको मे समाज सुधार-वृत्ति स्पष्ट है। श्री वनवासी कृत "वन्य प्रदेश" (१९२३) मे निर्बलो के बलिदान द्वारा नए समाज का निर्माण होने का एक प्रतीक चित्र है।

प्रहसन इस युग मे भी लोकप्रिय माध्यम रहा। पहले युग की अपेक्षा यह परिष्कृत होना प्रारम्भ हो गया था। श्री हरिशकर शर्मा, बद्रीनाथ भट्ट और रामनरेश त्रिपाठी का हास्य शिष्ट और परिष्कृत है। श्री जी० पी० श्रीवास्तव का हास्य पुराने हलके ढग का है। इस क्षेत्र मे द्वारिकाप्रसाद गुप्त का "बशर्ते कि" शालग्राम द्विवेदी कृत "भरोसे की भैंस पडा व्यानी", रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे द्वारा बगला से रूपान्तरित "भाव और अभाव" बदरीनाथ भट्ट का "लवड धो धों", सैयद शकर हुसैन शर्मा कृत "पडित और मौलवी", गरीबदास अग्निहोत्री कृत "मजेदार छीक", "लडको की परीक्षा", "सलाम किसे की", मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव कृत "छत पर सभा", राजाराम शुक्ल कृत "दो बदमाश लडके", रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे कृत मौलिक प्रहसन "पाठ-शाला का एक दृश्य", "बच्चे का होना" "सभी हा हा", "मदद मदद", "यमराज

का क्रोध", रूपनारायण पाडेय कृत "समालोचना रहस्य" और "गुरु वाक्य", आत्माराम देवकर कृत "पचानन्द" "गुरु और चेला" वीरेश्वर बैनर्जी कृत "हा मे हा", सुखराम चौबे कृत "गप्पी और शप्पी", "स और म का झगडा", "कौए तोते और हस का सवाद," माखनलाल चतुर्वेदी "शशि और शख," मुरली मनोहर दीक्षित कृत "अघूरी विद्या", मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव कृत "घर सा सुख कही नही है", "अकबर और औरगजेब", गंरीबदास कृत "मिया की जूती मिया के सिर", लालनारायण सिंह कृत "बाह्य आडम्बर", शालग्राम द्विवेदी कृत "ट्रैड टीचर", वृजलाल कृत "बिना मरे स्वर्ग नही दीखता", "गणेशराम मिश्र कृत "लवड धों धों", जनकशकर कृत "बुध अबुध", रामलाल पहारा कृत "देहाती पाठशाला", कामताप्रसाद गुरु द्वारा मराठी से अनुवादित "हमारी छडी", शकर दामोदर पराजपे कृत "अप्रतिम वैद्यराज", अम्बिका प्रसाद चतुर्वेदी कृत "पडित की दुम", तथा शालग्राम द्विवेदी कृत "ठेठ पद्धति का ठाठ" आदि सुधारवादी ढग के उल्लेखनीय प्रहसन हैं। इनमे शिष्ट नाटकीय स्थितिया और सुरुचिपूर्ण हास्य मिलता है। आवश्यकतानुसार ग्रामीण तथा स्थानीय भाषा का प्रयोग करने से अभिनय की रोचकता बढ गई है। इनमे अश्लीलता नही है, नि सकोच विद्यार्थियो द्वारा अभिनय किए जा सकते हैं और स्त्री पात्र नही हैं।

साहित्य समाज से निरन्तर प्रभावित होता, साथ ही समाज को जाग्रत करता है। समाज की भाति साहित्य के परिष्कार की ओर भी ध्यान गया। कुछ कविगण अब भी शृङ्गारी भावनाओ को उद्दीप्त करने वाले उत्तेजक काव्य की सृष्टि कर रहे थे। इस भोगवाद और विलासिता के विरुद्ध एकाकी नाटको मे आवाज़ उठाई गई। इस क्षेत्र मे प० रामनरेश त्रिपाठी, जी० पी० श्रीवास्तव तथा बदरीनाथ भट्ट ने विशेष रूप से कार्य किया। त्रिपाठी जी ने आदर्शवाद, सात्विक विचारधारा और खड़ी बोली का प्रचार किया। "दिमागी ऐयाशी", "कवि", "नखशिख", "नायिका भेद", "कवियो की कौंसिल", "स्त्रियो की कौंसिल", "छायावादी कवि और चित्रकार", मुशी मनबोधन लाल" आदि एकाकी प्रहसनो मे शृङ्गार रस की हानिया कवियो के काल्पनिक जगत, नखशिख नायिका भेद, मानसिक व्यभिचार आदि पर व्यग्य किया है। श्री बदरीनाथ भट्ट ने "हिन्दी की खीचातानी" (१९१५) प्रहसन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के छठे अधिवेशन पर लिख कर इसके द्वारा हिन्दी प्रचार, महत्व, सगठन, भारतीयता, हिन्दुत्व और मातृभाषा का गौरव बढाया। "एडीटर की धूल दच्छना" या "रेगड़ समाचार" मे सम्पादक के जीवन और घरेलू कठिनाइयो को स्पष्ट किया गया है। "धोबावसन्त विद्यार्थी' मे विद्यार्थियो की मनोवृत्तियो का अध्ययन है। श्री जी० पी० श्रीवास्तव के "न घर का न घाट का" (१९२५) मे कुछ उपेक्षित विषयो, काम विज्ञान, शिशुपालन आदि को साहित्य मे स्थान देने की अपील है। श्रीवास्तव जी के "पत्र पत्रिका सम्मेलन" (१९२४), "साहित्य का सपूत" (१९३२), और "मरदानी औरत"(१९३२) साहित्य जगत् के नाना प्रश्नो से सम्बन्धित हैं। "पत्र पत्रिका सम्मेलन"

मे तत्कालीन नाट्यकला एव उपन्यास पर भी विचार व्यक्त किए गए हैं। नाटकमल के ये शब्द तत्कालीन नाटक की अवस्था प्रकट करते हैं।

श्रीवास्तव जी का "साहित्य का सपूत" (१९३२) में हिन्दी ससार का समस्त छीछालेदर चित्रित किया है जो "भविष्य" तथा "चाद" आदि पत्रिकाओ में प्रकाशित हुआ था। "अछूतोद्धार" मे अनेक सामाजिक त्रुटियों पर व्यग्य है। "मोहिनी' (१९२२) साहित्योन्निति पर अपूर्व प्रहसन है। इसमे कृत्रिम तथा पुरानी जीर्ण-शीर्ण परम्परा वाले गन्दे साहित्य पर व्यग्य तथा स्वाभाविकता एव मनोविज्ञान की गहराइयों का प्रतिपादन करने वाले यथार्थवाद का अनुमोदन है। इस प्रकार सामाजिक एकाकी-कारो ने अनेक साहित्यिक त्रुटियो पर व्यग्य कर साहित्य ससार को परिष्कृत किया।

२. **राष्ट्रीय ऐतिहासिक धारा** राजनीतिक जागृति के साथ हमारे नाट्यकारों का ध्यान भारत के गौरवमय अतीत की ओर गया। फलत इतिहास की घटनाए एव चरित्र लेकर राष्ट्रीय नव-निर्माण सम्बन्धी आदर्शवादी एकाकी लिखे गए। देश मे स्वतन्त्रता आन्दोलन, विदेशी शासन के प्रति घृणा, तथा आज़ादी की भावनाओ का स्वर इन एकाकियो में मुखरित हुआ है। जन्मभूमि की स्वतन्त्रता तथा मान मर्यादा की रक्षा के लिए जीवन की भावना सर्वत्र व्याप्त है।

ऐतिहासिक राष्ट्रीय चेतना का प्रतिनिधि काव्य एकांकी श्री सियारामशरण गुप्त कृत "कृष्णा" (१९२१) है।[1] कृष्णा देश की रक्षा के लिए बलिदान की योजना स्वीकार कर लेती है। उसके चरित्र मे आत्मगौरव, देशप्रेम कूट-कूट कर भरा है। इसमे तीन दृश्य हैं पर स्पष्ट रूप से दृश्य विभाजन नही हुआ है। इसकी विशेषता रस सचार है। करुण रस की व्यापकता है।

श्री ब्रिजलाल शास्त्री का "नीला" एकाकी कागडे के नूरपूर ग्राम निवासी ठाकुर सूरजदेव के पठान अब्दुलशरीफ द्वारा बन्दी होने, उसकी पत्नी नीला का कचनी-वेश मे पठान को अपने गाने पर मुग्ध कर हनन करने से सम्बन्धित है। इसमें मुसलमानो की चरित्रहीनता, कट्टरता, विलासिता और क्षत्राणियो की वीरता का प्रदर्शन है। 'दुर्गावती" मे विद्रोह और स्वातत्र्य भावना की प्रधानता है। "पद्मनी" का कथानक टॉड के "ड्रामैटिक इतिहास" से लिया गया है। महारानी की बुद्धिमत्ता, कौशल और वीरता चित्रित करना इसका चरम लक्ष्य है। "तीन क्षत्राणिया" (१९२६) उस समय का चित्र हैं, जब जयमल चित्तौड की रक्षा का भार पत्ता पर सौंप परलोक सिधार गए थे। जब पत्ता अकबर की सेनाओ से घिरा हुआ था, तो उसकी मा, भगनि और पत्नी ने तीर चलाकर अकबर की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया यही कथानक है। "पन्ना" (१९२६) मे पन्ना धाय की स्वामीभक्ति तथा अपूर्व बलिदान चित्रित है। "तारा" रावसूरसेन तथा उन पर देहली के बादशाह अलाउद्दीन

---

१ "प्रभा" १९२१ में प्रकाशित।

के आक्रमण से सम्बन्धित है। इसमे तारा के स्वाभिमान का चित्र है। "कमला" की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। "पद्मा" राजपूताना मे प्रचलित एक कथानक पर आधारित है। "कोडमदेवी" सादू से सम्बन्धित है। इन सभी नाटको मे चरित्र-गौरव प्रधान हैं, किन्तु नाट्य सकेतो के कारण अभिनयशील नही है।

श्री सुदर्शन के दो एकाकी "प्रताप-प्रतिज्ञा" (१९२८) और "राजपूत की हार" (१९२९) राष्ट्रीयता से परिपूर्ण हैं। "प्रताप प्रतिज्ञा" मे राजपूती शौर्य, बलिदान, स्वदेश प्रेम और एक राजपूती वीरागना का जननी जन्मभूमि के प्रति कर्त्तव्य भावना का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। राजमाता के वक्तव्य कुछ लम्बे हैं, किन्तु जातीय गौरव और स्वदेश प्रेम की भावना से परिपूर्ण हैं। "राजपूत की हार" मे महामाया का पति जसवन्तसिंह पीठ दिखाकर रण से भाग आता है तो उसकी पत्नि भर्त्सना द्वारा उसके सोये हुए राजपूती गर्व को उद्दीप्त करती है। दोनो नाटको मे जातीय गर्व, राजपूती शौर्य और देश प्रेम का अच्छा चित्रण हुआ है।

श्री सूर्यनारायण दीक्षित कृत "चन्द्रगुप्त" (१९२७) और श्रीराम वाजपेयी, कुजविहारी सनेही तथा मुरारीलाल शर्मा के राष्ट्रवादी एकाकियो मे भारतीय जागृति स्पष्ट है। "जननी जन्मभूमि" मे गरुड मे स्वदेश प्रेम का आदर्श प्रकट किया गया है। "अपूर्व त्याग" मे प्रताप का मेवाड भूमि त्यागने को उद्यत होना, भामाशाह का आर्थिक सहायता देना और "आदर्श न्याय" मे शेरशाह के न्याय की एक झाकी प्रस्तुत की गई है। इसकी भाषा मुख्यत उर्दू है, तथा पात्रो के अनुकूल है। "शेर वच्चे की ललकार" मे छत्रसाल का औरगजेब के दरबार मे जाकर आत्म-सम्मान और शौर्य के प्रदर्शन का चित्र है। "प्रतिज्ञा" का सम्बन्ध छत्रपति शिवाजी के कर्त्तव्य पालन से है। "अद्भुत सन्धि", बूदी नरेश राव सुर्जनसिंह की दृढता तथा राजपूती विश्वास के चमत्कार का प्रदर्शन है। अनुचर वेशधारी अकबर पहिचान लिया जाता है। अकबर राव सुर्जन के साहस पर मुग्ध हो जाता है। अन्त मे मित्रता की शर्तों पर सन्धि तय होती है। इसमे राजपूती शौर्य, आतिथ्य भावना, स्वातन्त्र्य प्रेम, स्वाभिमान और प्रतिष्ठा का सुन्दर चित्रण किया गया है। "सदाचारी देश भक्त" मे एक आदर्श विद्यार्थी, एक सच्चे देशभक्त के सदाचार, विनयशीलता और सम्भाषण कुशलता का दिग्दर्शन कराया गया है। "जीवन सस्कार" मे युवराज वीरेन्द्र का ब्रह्मचर्य आश्रम मे प्रवेश करना दिखाया गया है। "कल्पित दुर्ग" मे वीर कुम्भा की कल्पित दुर्ग की रक्षा का दृश्य दिखाया गया है। "वीरोद्गार" महाराज चन्द्रगुप्त के चरित्र का चित्र है। "प्रायश्चित" मे उज्जैन के महाराज मुज का बालक भोज की विलक्षण बुद्धि देखकर राज्य छीन लेने के भय से मरवाने का प्रयत्न दिखाया गया है। मुज के पश्चाताप तथा विस्मयपूर्ण ढग से भोज की कुशलता का समाचार कलात्मक रूप से प्रदर्शित किया गया है।

निष्कर्ष यह कि स्वतन्त्रता-सग्राम द्वारा उत्पन्न राष्ट्रीयता, स्वदेश प्रेम,

आजादी की भावनाए ऐतिहासिक पात्रो का आश्रय लेकर प्रकट हुई हैं। विदेशी सरकार का आतक होने के कारण यह धारा कुछ क्षीण सी रही, किन्तु हम इसे निरन्तर विकसित होते हुए पाते हैं। ज्यो-ज्यो आन्दोलन तीव्र होते गए त्यो-त्यो उनका स्वर एकाकियो मे अधिकाधिक मुखरित होता ही गया है।

३ **धार्मिक पौराणिक धारा** . धार्मिक पौराणिक क्षेत्र मे कुछ एकाकीकारो ने कार्य किया है। इनमे सर्वश्री राधेश्याम कथावाचक, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीराम शर्मा, मुरारीलाल, जयशकर प्रसाद, कुजविहारीलाल, जयदेव शर्मा विद्यालकार मुख्य हैं। सामाजिक सुधार की ओर विशेष प्रवृत्ति होने के कारण धार्मिक एकाकियो से जनता की तुष्टि न हो सकी। जो थोडे से प्रयोग उपलब्ध हैं उनसे धार्मिक एकाकियों की अविच्छन्न धारा का ज्ञान होता है।

भारतेन्दुयुगीन पौराणिक नाटको तथा इस युग के पौराणिक नाटको मे अन्तर है। भारतेन्दुयुगीन पौराणिक एकाकियो के विषय प्रधानत राम और कृष्ण से सम्बद्ध हैं। द्विवेदी-युग मे या तो वे रामकृष्ण से सम्बद्ध नही है। जो हैं, उनमे परोक्ष रूप से अधिक सम्वद्ध हैं, प्रत्यक्ष रूप से कम हैं। ऐसे कथानक चुने गए जो रामकृष्ण की कथा की भाति वहुत प्रचलित नही हैं। उदाहरणार्थ "लीला विज्ञान विनोद" नामक एकाकी सस्कृत के 'प्रवोध चन्द्रोदय" के ढग पर केशवानन्द स्वामी ने लिखा जो वेदान्त प्रेमियो के लिए उत्तम है, पर इसमें रगमच की उपेक्षा की गई है।

श्री राधेश्याम कथावाचक ने तीन पौराणिक एकाकियो की रचना की है। १ कृष्ण सुदामा, २ शान्ति के दूत भगवान्, ३ सेवक के रूप मे भगवान कृष्ण। आप महाभारत के आख्यानो से विशेपत प्रभावित हुए हैं। आपका उद्देश्य जनता के रगमच की अश्लीलता और सस्ते रोमास को दूर करना था। पारसी रगमच पर जो शिक्षाहीन तथा आदर्शशून्य अभिनय चल रहा था, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप इन आदर्शवादी एकाकियो की रचना हुई थी। जनता के सामने आदर्श चरित्र प्रस्तुत कर उन्होंने प्राचीन भारतीय सस्कृति की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया था, अपने अथक परिश्रम से पडित जी सद्भावपूर्ण धार्मिक शिक्षा समन्वित, सुरुचिवर्द्धक एव आदर्श स्थापक नाटको को रगमच पर लाने मे सफल हुए हैं। उनके एकाकियो मे यद्यपि पारसी रगमच की भद्दी भूलें हैं, रोना और गाना भी साथ ही साथ है, दृश्य-चमत्कार की कमी नही और अति अमानवीय शक्ति का प्रभाव है पर अनेक विरोधी परिस्थितियो के होते हुए भी उन्होंने रगमच पर हिन्दी भाषा का प्रवेश कराया और दर्शक मडली मे सुरुचि प्रसार का सतत उद्योग किया।

"नाटक रामायण" मे छोटे-छोटे एकाकी गोस्वामी तुलसीदास रामायण के आधार पर लिखे गए। इनमे नाटकीय कथोपकथन के साथ नौटकी धुन मे हर प्रकार के गजल ठुमरी, दादरा, कजरी, कव्वाली आदि गाने मय काफिया वन्द नाटकीय वात-चीत के दी गई थी।

श्रीराम वाजपेयी, मुरारीलाल तथा कुंजविहारीलाल के चार धार्मिक एकाकी प्रकाशित हुए थे। १ ईशदर्शन, २. भक्त परीक्षा, ३. चक्रव्यूह ४ वाके वीर। इनमे बालोपयोगी दृष्टिकोण से उत्थानोन्मुखी चरित्रो का चित्रण किया गया है। "ईशदर्शन" मे परम भक्त ध्रुव की अटल निष्ठा, तपश्चर्या ,एव भक्ति का चित्रण है। कथोपकथनो मे पारसी शैली के दोहो का भी प्रयोग है जो पारसी रगमच के प्रभाव का द्योतक है। इसमे सघर्ष की अपेक्षा उद्देश्य की एकनिष्ठा है। सरल स्वाभाविक गति से कथानक को बढाया गया है। "भक्त परीक्षा" दो दृश्यो में राजा मोरध्वज की भक्ति की परीक्षा का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। भगवान् कृष्ण तथा अर्जुन परीक्षा लेने के लिए वेश परिवर्तित कर मोरध्वज के दरवार मे जाते हैं। राजा के पुत्र का मास मागते हैं, मोरध्वज उनकी आज्ञा शिरोधार्य करता है। इस एकाकी मे मोरध्वज की भक्ति, दानशीलता, सज्जनता और धर्मनिष्ठा प्रकट की गई है। "चक्रव्यूह" मे जयद्रथ द्वारा अभिमन्यु का वध दिखाया गया है। अभिमन्यु और जयद्रथ का युद्ध अभिमन्यु की वीरता, उसके द्वारा अनेक कौरव वीरो का धराशायी होना, अन्त मे सम्मिलित रूप से सब कोरवो का सामूहिक आक्रमण, लड़ते-लडते अभिमन्यु का प्रस्थान आदि घटनाए चित्रण की गई हैं। शैली पारसी है। "वाके वीर" मे लवकुश की वीरता का सजीव चित्रण है। कथोपकथन गद्य-पद्यमय है। उसमे वह वाग्वैदग्ध्य नही मिलता जो सफल एकाकियो के लिए आवश्यक है। वाह्य सघर्ष का ही चित्रण है। जयदेव शर्मा का "न्याय और अन्याय" आध्यात्मिक एकाकी है, जिसमे न्याय-अन्याय का विवेचन इन्द्र तथा शची, वानर और नर द्वारा कराया गया है।

प्रसाद जी के दो एकाकी "सज्जन" तथा "करुणालय" इसी क्षेत्र मे आते हैं। ये प्राचीन सस्कृत परिपाटी पर विरचित पारसी रगमच से प्रभावित्त हैं। इनमे गद्य-पद्यमय शैली, कवित्वमय भाषा तथा अभिनय तत्व की न्यूनता है। फिर भी प्रसाद के एकाकियो मे "सज्जन" महत्वपूर्ण है। इसमे हमे उनके प्राचीन से अर्वाचीन की ओर उत्तरोत्तर प्रसार की प्रथम अवस्था का परिचय मिलता है। "सज्जन" २० पृष्ठो का एकाकी रूपक है जिसकी रचना संस्कृत तथा हिन्दी की पुरानी शैली की है। प्रारम्भ मे नान्दी दिया हुआ है। तत्पश्चात् सूत्रधार आकर अपनी पत्नी से नाटकाभिनय का प्रस्ताव करता है। वातचीत मे चातुरी से सज्जनता का सकेत हो जाने पर स्त्री को "सज्जन" का स्मरण हो आता है और उसी का खेला जाना निश्चित होता है।

"सज्जन" की कथावस्तु महाभारत से ली गई है। प्रथम दृश्य आते ही दुर्योधन की सभा दिखाई देती है। सस्कृत परिपाटी की शैली पर "सज्जन" के कथोपकथन मे पद्य का भी सम्मिश्रण है। पात्रगण अपनी गद्योक्ति को पुष्ट करने के लिए पद्य का व्यवहार करते हैं, जो दृष्टान्त रूप मे होता है। पद्य का ढग भी सस्कृत जैसा ही है। प्राकृतिक वर्णनो मे प्राय प्राचीन सस्कृत एकाकियो की भाति किसी प्राकृतिक दृश्य से आचार अथवा नीति का कोई तत्व निरुपण करने की चेष्टा की गई है। सस्कृत

मे कालीदास तथा हिन्दी में तुलसी ने इस प्रकार का यथेष्ट प्रयोग किया है। कथोपकथन सादा और सक्षिप्त है, कार्य व्यापार की भी न्यूनता नही है।

"करुणालय" (१९३२) मे प्राग् ऐतिहासिक काल से लेकर महाभारत के पाडव, मौर्यवशज चन्द्रगुप्त और मुसलमान आक्रमण काल के जयचन्द्र को अपने एकाकियो का पात्र बनाया है। प्राचीन इतिहास की तत्कालीन परिस्थितियो मे भारत की दुरावस्था के कारणों की ओर सुन्दर सकेत किया है तथा उससे मुक्त होने की प्रेरणा भी दी है। कथावस्तु के विकास मे उन्होंने मानवी और अतिमानवीय दोनों सावनों का प्रयोग किया है। प्रसाद की ऐतिहासिक प्रवृत्ति इस एकाकी से स्पष्ट हो जाती है। "करुणालय" गीति एकाकी के अनुकान्त पद्यो मे है। यह उस काल की कृति है, जब प्रसाद पर अग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्डसवर्थ और बगला के माइकेल मधुसूदन दत्त का प्रभाव पड रहा था।

४ अनुवाद · प० महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी नाट्यकला के विकास की दृष्टि से अनुवादो का होना आवश्यक समझते थे। अनुवादो की आवश्यकता पर द्विवेदी जी के अतिरिक्त अन्य विद्वानो ने समय-समय पर "सरस्वती" में लिखा भी था। इनमे सर्वश्री रूपनारायण पाडेय तथा वदरीनाथ भट्ट प्रमुख हैं। अतएव यद्यपि कम सख्या मे ही रहा, द्विवेदी युग मे भी अनुवादो का होना जारी रहा। सस्कृत, बगला और अग्रेजी से मुख्य रूप से अनुवाद होते रहे। अग्रेजी और बगला से अनुवाद अपेक्षाकृत अधिक हुए।

योरोप के एकाकी साहित्य से भी हिन्दी नाट्यकार प्रभावित हो रहे थे। जनता की तृप्ति के लिए प्रेमचन्द द्वारा गाल्सवर्दी के कुछ नाटकों जैसे "न्याय," "हडताल" और इब्सन के "चादी की डिबिया" अग्रेजी से अनुवादित हुए। जी० पी० श्रीवास्तव ने मौलियर के कई एकाकियो तथा नाटको के सफल अनुवाद किए जैसे "साहब बहादुर", "मारमार कर हकीम", पर "आखो मे धूल," "हवाई डाक्टर" आदि ये रचनाए पर्याप्त लोकप्रिय हुई और रगमच पर अभिनय की गई। इनमे मूल लेखक के हास्य व्यग्य की चुटीली शैली मे व्यक्त किया गया है। श्री क्षेमानन्द राहत ने टाल्सटाय के कुछ छोटे-छोटे एकाकियो का अनुवाद किया, जिसमे "कलवार की करतूत" (१९२६) मुख्य है। श्री रूपनारायण पाडेय ने रवि बाबू के बहुत से एकाकियो का अनुवाद किया, जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं —

१ छात्र की परीक्षा, २ पेट और पीठ, ३ अभ्यर्थना, ४ रोग की चिकित्सा, ५ चिताशील, ६ भाव और अभाव, ७ रोगी का मित्र, ८ ख्याति की विडम्वना ९ आर्य और अनार्य, १० एकान्तवर्ती, ११ सूक्ष्म विचार, १२ आश्रमपीडा, १३ अन्त्येष्टि सत्कार, १४ रसिक, १५ गुरुवाक्य।

निष्कर्ष यह कि द्विवेदी युग मे अनूदित नाटको तथा एकाकियो की गतिविधि जारी रही थी, पर सस्कृत के नाटको का अनुवाद कुछ कम, और बगला अग्रेजी से

अधिक हुए । भारतेन्दु युग मे बात इसकी उलटी थी । इस युग के अनुवादको मे मूल भावो को ज्यो का त्यो रखने की ओर साहित्यकारो की दृष्टि विशेष रूप से थी क्योकि अब तक हिन्दी आधुनिकता की दृष्टि से पर्याप्त विकसित हो चुकी थी ।

८. टैकनीक सम्बंधी विशेषताएं

द्विवेदी युग के एकाकी टैकनीक मे पहले युग की अपेक्षा कुछ विकास हुआ । सस्कृत की नान्दी, प्रस्तावना, भरतवाक्य इत्यादि रूढिया समाप्त हुई तथा पाश्चात्य नाटको की शैली का प्रभाव बढने लगा । यद्यपि दृश्यो की सख्या अधिक रही, किन्तु उनमे कौतूहल का सचय करते हुए चरम-सीमा तक विकास की ओर प्रयत्न था, दो विपरीत पक्ष परस्पर सघर्ष करते और अन्त मे फल की सिद्धि की व्यजना होती थी । ये एकाकी सगीत, स्वगत और पारसी प्रणाली की दोहा-शेर-पद्धति से मुक्त न हो सके । अनेक एकाकियो मे नौटकियो तथा स्वागो जैसा छदमय वार्त्तालाप है । कही आधे भाग मे पात्रो का वार्त्तालाप गद्य मे है पर अन्त मे एक छन्द भी जोड दिया गया है । कही-कही दो व्यक्ति छन्दो मे वार्त्तालाप करते हैं । एक पात्र छन्द का आधा हिस्सा बोलता है और दूसरा कृत्रिम अभिनय से उसी सुर लय मे शेष उत्तर देता है । यद्यपि इनमे कृत्य का सकलन है, किन्तु समय तथा स्थल के सकलनो का पालन नही हुआ है । भिन्न-भिन्न स्थानो मे दृश्य रख कर बडे नाटको के समान कथा-वस्तु का विकास किया गया है ।

नाट्यकारो की दृष्टि मूल समस्या के स्पष्टीकरण और अन्तिम प्रभाव छोडने पर रही है । चरित्र चित्रण भी ऊपरी दृष्टि से ही है । एकाकी धीमी गति से चलते है । इनमे यथार्थवाद की प्रतिष्ठा का प्रयत्न है, किन्तु शैली अस्वाभाविक एव अतिरजित है । नाटकीयता का अभाव है । कथोपकथनो मे हिन्दी, उर्दू, अग्रेजी आदि सभी का सम्मिश्रण है । प० राधेश्याम कथावाचक, शैदा आदि कुछ एकाकीकारो ने करीब, शर्त, मुताबिक, हक, शकिस्त, बेहतर आदि उर्दू शब्दो का प्रचुरता से प्रयोग किया है । "स्वगत" तथा "प्रकट" का प्रयोग चलता रहा । रगमच पर दो पात्र रहे, एक पात्र मन की भावनाए शब्दो मे दर्शको के लिये प्रकट करे, तो यह मान लिया जाता था कि स्टेज का पात्र उसे नही सुन रहा है, केवल दर्शक ही सुन रहे है। प्रारम्भिक स्वगत प्राय लम्बे विवेचनात्मक होने लगे । रगसकेत सक्षिप्त और अपूर्ण थे । इनमे अभिनय के लिये सहायता की कोई भावना न थी । साधारण रूप मे पात्रो का आना-जाना, हसना-बोलना, गायन आदि प्रकट कर दिया जाता था ।

प्रभाव व्यजना की ओर कोई ध्यान नही है । पात्रो की आयु, स्थिति या मूड स्पष्ट करने की ओर ध्यान नही है । इन एकाकियो मे जान बूझकर सस्ते गानो का प्रयोग किया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि एकाकीकार ऐसे अवसर की ताक मे रहते थे कि किसी प्रकार मध्य मे एक छोटा सा गान अवश्य ठूंस दिया जाय या द

पात्र गा-गाकर कविता मे बातचीत करें।[1] इन गानो का कोई साहित्यिक मूल्य न था। केवल साधारण स्तर की जनता का हल्का मनोरजन ही इष्ट था। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि द्विवेदी युग के एकाकी पर पाश्चात्य प्रभाव था, तथापि वह पुरानी परम्परा से जकडा रहा।

६. प्रमुख एकांकी नाट्यकार

१ पं० राधेश्याम कथावाचक : स्वतन्त्र रूप से एकाकी रचना की ओर आपकी दृष्टि न थी, बडे नाटको के मध्य मे कॉमिक के लिये एक छोटा सा एकाकी जोड देते थे। यह एक स्वतन्त्र एकाकी जैसी रचना होती थी। पूरे नाटक से इसका बहुत कम सम्बन्ध होता था। उदाहरणार्थ पडितजी के "परिवर्तन" मे "गोल्डनगोली" का प्रहसन स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। इसमे डाक्टरो की छीछालेदार की गई है। स्वतन्त्ररूप से पडित जी के तीन पौराणिक एकाकी १ "कृष्ण सुदामा", २ "शान्ति के दूत भगवान कृष्ण" और ३ "सेवक के रूप मे भगवान कृष्ण" तथा एक प्रहसन "घन्टा पन्थ" मिलते हैं। ये पौराणिक धार्मिक आदर्शवाद से ओतप्रोत रगमचीय एकाकी हैं, जिनकी रचना पारसी रगमचो की अश्लीलता के प्रतिक्रिया स्वरूप हुई थी। इनका उद्देश्य जनता को धार्मिक, नैतिक शिक्षा प्रदान करना था।[2] सद्भावपूर्ण धार्मिक शिक्षा समन्वित सुरुचिवर्द्धक आदर्श नाटको को रगमच पर लाने का श्रेय पडित जी को है।

टैकनीक की दृष्टि से इनमे पारसी रगमचो की भद्दी भूलें हैं, दृश्य चमत्कार, गाना, उर्दू की पुट है और साहित्यिकता नही है। इनकी भाषा हिन्दी अवश्य थी पर उसमे साहित्यिक सौंदर्य या प्रौढता न थी। "ये पारसी प्रथा के केवल हिन्दी उल्था थे।"[3] कथावस्तु, वातावरण और भाषा शैली की दृष्टि से ये निम्न कोटि की रचनाए थी।

२ पं० तुलसीदत्त शैदा : शैदा समाजसुधार की प्रेरणा से नाटक साहित्य की रचना की ओर उन्मुख हुए थे। ये उस श्रेणी के उर्दू प्रधान रगमचीय नाट्यकार हैं, जिनके नाटको का सम्बन्ध उर्दू से बहुत अधिक है, हिन्दी से कम।[4] आपका प्रतिनिधि एकाकी "लज्जा" (१९२७) है, जिसमे समाज सुधार की वृत्ति स्पष्ट है। "लज्जा" बाल विवाह के विरुद्ध एक करुण पुकार है। इसमे अभिनय तत्व की प्रचुरता है।

---

१. "वर्तमान नाट्यकारों ने अपना सिद्धांत बना लिया है कि नाटकों में कविता बहुत रखते हैं। शायद इससे रगमच की शोभा बढ जाती हो और तालियों से आकाश गूंज उठता हो परन्तु नाटक स्वाभाविक नहीं रहता।"—श्री सुदर्शन, "अनरेरी मजिस्ट्रेट" भूमिका

२ देखिए डा० श्री कृष्णलाल कृत "आधुनिक हिन्दी सा० का विकास", पृष्ठ, २४३।

३ देखिए प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त "नया हिन्दी साहित्य", पृष्ठ ७०।

४. देखिए डा० सोमनाथ गुप्त "हिन्दी ना० सा० का इति०" पृष्ठ २०७।

शैदा का रगमच का ज्ञान उच्चकोटि का था। यही कारण है कि रगसूचनाए निर्बल और अपूर्ण होते हुए भी कथोपकथनो की शक्ति से वे पात्रो का आन्तरिक सघर्ष स्पष्ट कर देते थे। उन्होने समाजसुधार के एकाकी इस मार्मिक ढग से प्रस्तुत किए हैं कि उनका व्यापक प्रभाव पड़ता है। इनके नग्न यथार्थवाद मे अनुभूति की तीव्रता है।

३. मंगलप्रसाद विश्वकर्मा : आप मुख्यत. ऐतिहासिक विषयो पर लिखते रहे हैं। आपका प्रतिनिधि एकांकी "शेरसिंह" (१९२३) "प्रभा" मे प्रकाशित हुआ था, जिससे आपकी राष्ट्रीयता, स्वातंत्र्यप्रेम, भारतीय गौरव और निष्ठा का ज्ञान होता है। कथोपकथनो मे वाद विवाद. लम्बे वक्तव्य, स्वगत का प्रयोग और गानो का सम्मिश्रण है। सकलन-त्रय का भी पूर्ण रूप से निर्वाह नही हुआ है। भाषा मे जटिलता और साहित्यिकता है। आपका "कृष्ण सुदामा" गीति-नाट्य की पद्धति पर विरचित है। इनके एकाकियो मे पात्रो के अनुसार भाषा की भिन्नता नही है। अग्रेजी पात्र भी विशुद्ध साहित्यिक हिन्दी बोलते हैं।

४. सियारामशरण गुप्त : आपका "कृष्णा"[1] ऐतिहासिक आदर्शवादी अतुकान्त छन्दो मे लिखा हुआ गीतिनाट्य है। इनसे गीति एकांकी के विकास पर प्रकाश पड़ता है। प्रारम्भ मे पात्र परिचय दिया हुआ है, रंगमच सबधी सूचनाए स्पष्ट है। काव्य मे होते हुए भी गुप्त जी ने अपने कथोपकथन को सजीव और मर्मस्पर्शी बना दिया है। आन्तरिक सघर्ष, मन विश्लेषण और चरित्र चित्रण अच्छे हैं। कथोपकथन इस क्रम से रखे गए हैं कि कथानक तीव्रता से चरम सीमा की ओर चलता है। इनके एकाकियो का निर्माण केवल पढकर आनन्द लेने की दृष्टि से किया गया है।

५. आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव : श्रीवास्तव जी के चार गीति एकाकी उपलब्ध है। "पार्वती और सीता" "शिवाजी और भारत राजलक्ष्मी," "नूरजहा," "चाणक्य और चन्द्रगुप्त"। इनमे रगसूचनाएं बिल्कुल नही हैं। ये नाटक रगमच के लिए अनुपयोगी हैं किन्तु अपना साहित्यिक महत्व रखते हैं। इनमे विभिन्न ऐतिहासिक या पौराणिक पात्रो के चरित्रो का परिवर्तनशील एव क्रियात्मक अभिव्यक्तिकरण है। सवादो मे घटनाओ का वर्णन और गीत है। श्रीवास्तव जी के एकाकी चिन्तन प्रधान हैं। समाज, देश, काल इत्यादि का भी वर्णन है। चरित्रचित्रण मे गहराई है।

६. ब्रजलाल शास्त्री : शास्त्री जी के दस एकाकी १९२०-२१ में जालन्धर से प्रकाशित "भारती" मे प्रकाशित हुए थे। "नीला" "दुर्गावती", "पद्मनी", तीन क्षत्राणिया, से "पन्ना," 'तारा", "कपल", "पद्मा", "कोडमदेवी", "किरणदेवी"। ये मुख्यत ऐतिहासिक आदर्शवाद से प्रभावित अतीत गौरव को स्पष्ट करने वाली रचनाए

---

१. "प्रभा अप्रैल" मई जून १९२१ में प्रकाशित।

हैं। टैकनीक में शास्त्री जी पाश्चात्य एकाकीकारो से प्रभावित हैं। मुख्य भाव वीरता, प्राचीन भारतीय गौरव और राष्ट्रवाद है। वाणी मे आवेश और अभिव्यजना मे शौर्य सबधी भावुकता की प्रधानता है। शास्त्री जी ने स्वय लिखा है —

"इन एकाकी नाटको मे इनके नाटकपन के अतिरिक्त कुछ भी नयापन नहीं है। दृश्य द्वारा प्रभाव कदाचित् अधिक पडे, लिखने का अभिप्राय यह भी है।"[1] वास्तव मे ये सवाद-प्रधान छोटी-छोटी एकाकी रचनाए हैं, जो रगमच पर भी अभिनीत हो सकती हैं। मुसलमान पात्र उर्दू भाषा का प्रयोग करते हैं, अन्यथा शास्त्री जी के एकाकियो की भाषा सरल, सुगठित सुबोध और भावमयी है।

७ रामसिंह वर्मा वर्मा जी ने सामाजिक कुरीतियो को लेकर प्रहसन के क्षेत्र मे कार्य किया है। आपके दो प्रहसन "रेशमी रुमाल" और "किस मिस' उपलब्ध हैं। "रेशमी रुमाल" बगभाषा के नाटककार बा० मनुजमोहन बोस के कथानक को लेकर लिखा गया है। वर्मा जी की नाट्यकला मे सुन्दर कथानक, वेग-सम्पन्न प्रवाह, समाज सुधार की भावना और अभिनेयता है, पर कही-कही शिष्टता तथा सुरुचि की कमी है। अनमेल विवाह, कन्याविक्रय, प्रेम मे शक घुबे की भयकरता, वेश्यागमन के दुष्परिणामो को आपने अपने प्रहसनो का विषय बनाया है। एकाकियो मे "स्वगत" और गानो का प्रचुर प्रयोग है।

८ प० सरयूप्रसाद बिन्दु बिन्दु जी के "भयकर भूत" "सिंहनाद" तथा "धर्मावतार" सामाजिक एव शिक्षाप्रद प्रहसन रगमचीय शैली पर लिखे गये थे। प्रहसन बडे नाटको के मध्य मे रखने की प्रथा थी। "धर्मावतार" इसी प्रकार का प्रहसन हैं। आपके एकाकियो का मूल विषय समाज सुधार है। समाज की दूषित वृतियो पर व्यग्य, मिथ्या आडम्बर, छुआछूत आदि कुरीतियो के दुष्परिणाम दिखाकर सुधार मे प्रयत्नशील रहे। शैली गद्य-पद्यमय है तथा पुरानी सस्कृत परिपाटी के अनुसार आप सूत्रधार और नटी का वार्त्तालाप प्रारम्भ मे तथा भरत वाक्य अन्त में रखते हैं।

९ शिवरामदास गुप्त गुप्त जी ने "नाक में दम", "जोरु का गुलाम", "धोखे की टट्टी", "करैन्सी नोट", "मर्दमार औरत", "लबड धों धों", "न्यूलाइट", 'समाज का शिकार" आदि रगमचीय प्रहसन लिखे हैं। आपकी सबसे बडी विशेषता अभिनय योग्य प्रहसनो का निर्माण है। इनमे अनेक सामाजिक कुरीतियो को व्यग्य का शिकार बनाया गया है। पाशविक प्रवृत्तियो की पराजय तथा सत्प्रवृत्तियो की विजय प्रदर्शित करना उनकी नाट्यकला का मुख्य उद्देश्य रहा। शैली पुरानी परिपाटी की होते हुए भी सजीव और जोरदार है। इसमे सन्देह नही कि प्रहसनो का पद्य भाग कुछ शिथिल सा प्रतीत होता है, किन्तु रगमच पर ये सफल हैं।

१० श्रीराम वाजपेयी, मुरारीलाल शर्मा तथा कुंजबिहारी सनेही : लेखक-

---

१ देखिए ब्रजलाल शास्त्री कृत "वीराङ्गना" की भूमिका, पृष्ठ २।

श्रय ने सम्मिलित रूप से २० एकाकियो का निर्माण किया। जिनमे एकाकी के कई प्रकार, जैसे प्रहसन, झाकिया, सम्भाषण आदि हैं। इनका निर्माण शिक्षा संस्थाओ और बालचरो को स्वदेश प्रेम, वीरता, सदाचार पूर्ण जीवन का आदर्श उपस्थित करने की दृष्टि से हुआ था। ये तीन श्रेणियो मे विभक्त किए जा सकते हैं। १ सामाजिक जैसे "जयहोलिका मय्या", "गगा की बाढ", "विकट फैशन", "सेर का सवा सेर", "वैज्ञानिक चमत्कार", २ ऐतिहासिक, जैसे "अपूर्व त्याग", "आदर्श न्याय", "शेर बच्चे की ललकार", "प्रतिज्ञा", "अद्भुत सधि", "जीवन सचार" और "कल्पित दुर्ग" आदि। ३ पौराणिक जैसे "ईश दर्शन", "भक्त परीक्षा", "चक्रव्यूह", "बाके वीर" आदि उच्चादर्शों के प्रतिपादन के कारण इनमे मनोरजन का तत्व नही है।

ये आदर्शवादी जीवन के चित्र हैं। बच्चो की उदात्त भावनाओ को विकसित करने की दृष्टि से इनका निर्माण हुआ है। शैली नई पुरानी दोनो के सम्मिश्रण से बनी है। नाटकीय सकेत नाम मात्र को हैं। स्थान-स्थान पर गाने, स्वगत, छन्द-शेर वाली पद्धति के कथोपकथन हैं। अभिनय की दृष्टि से सफल हैं।

११. **बदरीनाथ भट्ट :** भट्ट जी इस युग के प्रमुख स्तम्भ हैं। आपने न केवल नाट्यकारो मे नवचेतना और स्फूर्ति उत्पन्न की प्रत्युत स्वय नाटक और एकाकी लिख-कर नए आदर्श उपस्थित किए। "बोलचाल की भाषा मे सरल सुन्दर, मनोरजक और उत्कृष्ट नाटक लिखने मे आप अपना कोई सानी नही रखते।"[1] उनका ध्येय साहित्यिक नाटको की रचना थी।[2] भट्ट जी ने प्रहसन के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य किया है। आपके "पुराने हकीम साहब का नया नौकर", "आयुर्वेद कसेरु", "ठाकुर दानीसिंह", "हिन्दी की खीचातानी", "रेगड समाचार के एडीटर की धूल दच्छना", "धोखा बसन्त विद्यार्थी", "चुगी की उम्मेदवारी या मेम्बरी की धूम" आदि छोटे तथा "मिस अमेरिकन" और "विवाह विज्ञापन" बडे प्रहसन हैं।

इन प्रहसनो की समस्याए मध्यवर्ग तथा अल्प-शिक्षित व्यक्तियो की सामा-जिक समस्याए हैं। चरित्र-चित्रण मे अतिरजना है। नाटककार को अपने इर्द-गिर्द समाज मे जो मिथ्याचार अथवा पाखड दिखाई दिया उन सामाजिक कुरीतियो का व्यग्यात्मक चित्रण इन प्रहसनो की आधारशिला है। कुछ प्रहसन बहुत छोटे हैं और नाटकत्व की दृष्टि से उनमे समुचित कथा वैचित्र्य और सौन्दर्य नही है। भट्ट जी की सबसे बडी सफलता उनका शिष्ट और सुरुचिपूर्ण हास्य था। सामाजिक नाटको की नीव इनसे पड़ी।[3]

---

१. दयाशंकर दुबे

२. देखिए डा० श्रीकृष्णलाल कृत "आधुनिक हिन्दी सा० का विकास" पृष्ठ २४८।

३. "नाटकों के इतिहास में इन छोटे-छोटे प्रहसनों का कोई महत्त्व और मूल्य नहीं, परन्तु इनसे एक लाभ अवश्य हुआ कि इन्होंने आगे चलकर सामाजिक नाटकों का रास्ता साफ कर दिया।" डा० श्रीकृष्णलाल "आ० सा० का वि०" पृष्ठ २६२।

१२ **प० हरिशंकर शर्मा** शर्मा जी आर्य समाज से प्रभावित रहे हैं। सन् १९२४-२५ मे आर्यसमाज के प्रमुख पत्र "आर्य मित्र" मे शर्मा जी के चार सुधारवादी व्यग्य प्रधान प्रहसन प्रकाशित हुए थे। "बिरादरी विभ्राट्," "पाखंड प्रदर्शन","स्वर्ग की सीधी सडक" और 'बुढऊ का ब्याह" और एक नवीन एकाकी "वापू का स्वर्ग में समारोह" (१९४७) "निराला" पत्र मे प्रकाशित हुआ है।

शर्मा जी ने हिन्दू धर्म मे प्रविष्ट रूढिवादिता, अधविश्वास, सामाजिक कुरीतिया, वृद्ध विवाह, अस्पृश्यता, मूर्तिपूजा, वर्णव्यवस्था की सकीर्णता के विरुद्ध इन प्रहसनो मे व्यग्य किया है। 'बिरादरी विभ्राट" मे जहा जाति बिरादरी की सकुचितता को ध्वस करने का प्रयत्न है, वहा आर्यसमाज के सिद्धान्तो का भी स्पष्टीकरण है। "पाखड प्रदर्शन" शुद्धिकरण की समस्या और ईसाई धर्म तथा इस्लाम के विरुद्ध हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करता है।

शर्मा जी की शैली बदरीनाथ भट्ट स्कूल की हास्य व्यग्य प्रधान है, शिष्ट और सुरुचिपूर्ण हास्य तथा उसमे साहित्यिक सौन्दर्य आपकी विशेषताए है। उनका उद्देश्य धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रो मे तर्क और बुद्धि का जागरण प्रस्तुत करना था। वे हमारे दूषित समाज का विकृत और हास्यास्पद रूप जनता के समक्ष रख उसकी त्रुटिया दिखाने का लोभ सवरण न कर सके। आपके व्यग्य वाणो मे शा की तरह बौद्धिक, मानसिक और तर्कपूर्ण कटाक्षो का आस्वादन उपलब्ध है।

नए राष्ट्रीय चरित्र प्रधान एकाकी "बापू का स्वर्ग समारोह" में गाधी चरित्र गौरव के साथ भिन्न-भिन्न कवियो को उन्ही के प्रिय छदो मे श्रद्धाजलिया मर्मस्पर्शी हैं। रगमच और अभिनय की दृष्टि से इन एकाकियो का कोई महत्व नही, किन्तु साहित्यिक हास्य, काव्य सुषमा, और व्यग्य की दृष्टि से ये उत्तम हैं।

१३. **जी० पी० श्रीवास्तव :** रगमच पर श्रीवास्तव जी के प्रहसन खूब सफल रहे हैं। यह मत ठीक है कि "सामयिक सामग्री के आधार पर नाटको और एकाकियो का प्रारम्भ श्री जी० पी० श्रीवास्तव तथा प० श्रीराधेश्याम कथावाचक के नाटको से होता है। श्रीवास्तव जी ने दो रूपो मे नाटक साहित्य के विकास का कार्य प्रारम्भ किया था १ रूपान्तर, विशेषत मौलियर के नाटको के हिन्दी अनुवाद और २ मौलिक प्रहसन। अनुवादो में श्रीवास्तव जी ने देशी पुट देकर ऐसा बना दिया है कि वे मौलिक से प्रतीत होते हैं।

आपका निर्माण कार्य मौलियर के तीन एकाकियो के हिन्दी अनुवादो से प्रारम्भ होता है। यह सकलन "मार मार कर हकीम" के नाम से लोकप्रिय हुआ है। मौलिक एकाकियो मे "गडवडझाला" (१९१२), "दुमदार आदमी" (१९१७), "कुर्सीमैन" (१९२३), "पत्र-पत्रिका सम्मेलन" (१९२४), "चटाधार" (१९३४), "न घर का न घाट का" (१९३५), "वौछार" (१९५३), "हाकिम या पैदायशी मजिस्ट्रेट", (१९५३), "हजामत", "भूलचूक", "चोर के घर छिछोर," "लक्कडवग्घा" और

"मिरिचानन्द" (१९५४), आदि प्रहसन मिलते हैं। ये हास्य व्यग्यपूर्ण एकाकी अभिनीत हुए हैं और जनता का समुचित मनोरजन कर सके हैं, यद्यपि हास्य साधारण कोटि का है।[1]

इनमे चुगी की उम्मेदवारी, पूंजीपतियो की चरित्रहीनता, साहित्य जगत, नेताओ के चरित्रो की कमजोरिया, विधवाओ की दुर्दशा, जाति बिरादरी की सकुचितता, धनोपार्जन के घृणित रूप, नए फैशन से हानिया, शिक्षित नवयुवक समाज की समस्याओ और सार्वजनिक सामाजिक सस्थाओ के प्रति व्यग्य मिलता है।

इन एकाकियो मे हास्य उत्पन्न करने के कई उपायो का प्रयोग हुआ है। जैसे, विनोदपूर्ण भाषा और हास्य-व्यंग्यमय शैली, देशी प्रान्तीय भाषा के प्रयोग, स्थिति में कौतुक की प्रधानता और बेतुके व बेढगे कार्य, पात्रो की अजीब वेशभूषा आदि। हास्य के अतिरजित चित्रण भी है और अजीब गाने भी यत्र तत्र जोडे गए हैं। कुछ एकाकियों मे चरित्र विचार या भावो की विचित्रता और बेतुकेपन, हास्यप्रधान वार्त्तालाप से हास्य की सृष्टि की गई है। "साहित्य का सपूत" (प्रहसन), मे सरला पत्नी और साहित्यानन्द पति का वार्त्तालाप ऐसे ही बेतुके हास्य विनोद का उदाहरण है। इसमें साहित्यिक पति और दुनियादार पत्नी के विपरीत विवाहित जोड़ो पर अच्छा व्यग्य है।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि श्रीवास्तव जी ने अपने ढग के अनेक लोकप्रिय प्रहसन लिखे किन्तु इनमे उच्चकोटि के शिष्ट हास्य के दर्शन न हुए, पर जनता ने इनमे रस लिया और इनका प्रचार भी हुआ।[2]

१४ रूपनारायण पांडेय : पाडेय जी के "समालोचना रहस्य" (१९१३), "गुरु वाक्य" (१९१४), "मूर्खमंडली" और "प्रायश्चित" प्रहसन मिलते हैं। आपका हास्य शिष्ट और सुरुचिपूर्ण है। "मूर्ख मडली" राय महोदय के प्रहसन का अनुवाद है। "प्रायश्चित" प्रहसन मे देशी होकर भी विदेशी चाल चलने वालो का व्यग्यात्मक खाका खीचा गया है। आपकी "समालोचना रहस्य" और "गुरुवाक्य" शिष्ट हास्यपूर्ण रचनाए हैं।

१५. प्रेमचन्द : आपका एक मौलिक और एक अनुवादित एकाकी मिलता.

---

१. "उनमें मारकूट, धौल धप्पा का परिस्थिति सम्बन्धी हास्य अधिक है।"
—गुलाब राय "हि० सा० का सक्षिप्त इति०" पृ० २११।

२. "हिन्दी में ही नहीं वरन् विदेशी साहित्य फ्रेंच, जर्मनी तक में भी मुझे श्रीवास्तव जी के समान अन्य कोई लेखक नहीं दीखता, जिनकी लेखनी हास्य और करुणा दोनों ही रसों में सफलता प्राप्त कर सकी।"—डा० हरिचन्द शास्त्री, एम ए, डी. लिट.।

"आपने अपने निर्वाचित हास्य-रस के क्षेत्र में वह सफलता प्राप्त की है जिसका दावा कदाचित् ही कोई महारथी कर सकता है। आपके नाटकों का अभिनय कलकत्ते के साहित्य कला प्रेमियों के सम्मुख हिन्दी-नाट्य-परिषद ने किया है।" हिन्दी नाट्य परिषद, अभिनन्दन पत्र (१०-१०-१९३३)।

है। "प्रेम की वेदी" सात दृश्यो का विस्तृत एकाकी है, जिसमे प्रेमचन्द ने समाज के ढकोसलो, कृत्रिम बन्धनो, धर्म की रूढियो, रगभेद और नस्ल भेद पर व्यग्य किया है। "सृष्टि का आरभ" जार्ज बर्नार्ड शा के "बैक टू मैथ्यूसला" के प्रथम भाग का अनुवाद है। अनुवाद इतना सुन्दर हुआ है कि उसमे मौलिकता का सा आनन्द आता है।

प्रेमचन्द पुरानी परिपाटी के एकाकीकार हैं। प्रारम्भ मे पूर्वकथा, स्वगत, लम्बे-लम्बे कथोपकथन तथा अनेक दृश्य आदि हैं। रगसूचनाओ मे आधा कथा भाग, प्रारम्भिक परिस्थिति और आगे की कथा की सूचना आदि हैं। यह रगमचीय नही हैं पर इनके एकाकी सुपाठ्य हैं।

१६ पाडेय बेचन शर्मा उग्र उग्र जी उन क्रान्तिकारी एकाकीकारो मे हैं, जिन्होंने समाज की रूढिवादिता, मिथ्याडम्बर और जीर्णशीर्ण परम्पराओ के विरुद्ध विद्रोह किया है। आपके "अफजल वध", "उजबक", "चार बेचारे" (चार एकाकियो का सग्रह) "भाई मिया" आदि उल्लेखनीय हैं।

इनमे समाज की पोल खोली गई है। कही हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य से उत्पन्न साम्प्रदायिक दगो की तुच्छता और मूर्खता का विवेचन है तो कही अछूतो के प्रति दुर्व्यवहार की हानिया चित्रित हैं। यह विद्रोह तामस की शक्ति लेकर आया, या यो कहें कि तामस मे सत और महान् का अन्वेषण और अवतरण उनका प्रयत्न रहा है।[1]

आपके अन्य एकाकी जैसे "लाल क्रान्ति के पजे मे", "सीता हरण", "बलिदान", तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए हैं। "चार बेचारे" के चारो एकाकी 'बेचारा सम्पादक, (प्रभा, १६२२), बेचारा अध्यापक, (वीणा १६२४), 'बेचारा सुधारक' (१६२३), बेचारा प्रचारक, (१६२५) सफल व्यग्य प्रधान समाजिक एकाकी हैं। "हवाई हैदराबाद" हिन्दी साहित्य सम्मेलन (१६४१) गीति प्रहसन नवीन शैली मे हिन्दी साहित्य में व्याप्त भ्रान्तियो और साहित्यकारो की प्रवृत्तियो पर व्यग्य करता है।

इनके एकाकियो मे एक फक्कडपन है। "उग्र" के हास्य मे एक कठोर व्यग्य छिपा हुआ है। डा० नगेन्द्र का यह विचार सत्य ही है कि वे साहित्य मे ओज के हामी हैं और वह ओज उनकी रचनाओ मे पर्याप्त मिलता है, परन्तु यह प्राय वाणी का ओज अधिक, हृदय, बुद्धि और आत्मा का जोश कम है। उनके पीछे गहरी विचारधारा हमको नही मिली। यही कारण है कि उग्र जी लाछन, भर्त्सना और उपेक्षा के बीच भी उस दृढता और शक्ति से साहित्य सृजना नही कर सके जैसा कि "निराला" ने किया।[2] आपके एकाकियो मे भाषा की सरलता, कथानक की रोचकता और अभिनय की सुविधा के साथ व्यग्य की तीखी मार भी है।

---

१ डा० नगेन्द्र "आधुनिक हिन्दी नाटक", पृ० १३७।

२ वही।

१७. श्री सुदर्शन : सुदर्शन जी के "राजपूत की हार", "प्रताप प्रतिज्ञा", "ग्रानरेरी मजिस्ट्रेट", (प्रहसन) आदि एकाकी मिलते हैं। सन् १६२६ तक भारतीय एकाकी के क्षेत्र मे पारसी रगमच का पूरा प्रभाव था और एकाकियो मे दोहे, शेर, सगीत आदि की प्रमुखता थी। इस कृत्रिमता के विरुद्ध विद्रोह करने और यथार्थवादी दृष्टि-कोण से स्वाभाविक जीवन सम्बन्धी एकाकी लिखने मे सुदर्शन जी का विशेष महत्व है। आपका "ग्रानरेरी मजिस्ट्रेट" इसी पद्धति के विरुद्ध यथार्थवादी शैली मे प्रणीत प्रहसन है।

कुछ आलोचको का विचार है कि सुदर्शन के नाटक पुरानी लीक मे फसे रहे, उगते हुए साहित्य के यहा कोई लक्षण नही दीखे।[1] यह मत सत्य नही है क्योंकि सुदर्शन ने कृत्रिमता के विरुद्ध क्राति कर "राजपूत की हार", "छाया" आदि कई सफल एकाकी दिये हैं। इनमे जिस सहज स्वाभाविक शैली का पालन किया गया है यही आगे चलकर विकसित हुई।

आपकी सब से बडी सफलता चुस्त नाटकीय कथोपकथन है। चरित्र-चित्रण मे भी आपको सफलता प्राप्त हुई। उनके पात्रो मे मित-भाषण के साथ मर्मस्पर्शिता है। जहा आपके ऐतिहासिक एकाकियो का आदर्शवाद हृदय को स्पर्श करता है, वहां सामाजिक व्यग्य क्राति करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

आपके नारी चरित्र, विशेषत राजपूत रानियो के चरित्र बडे सजीव और सफल रहे हैं। प्रहसन मे हास्यविनोद बौद्धिकता है, पर शिष्टता और सुरुचि का सदा ध्यान रहा है। पात्रो की भाषा हास्य उत्पन्न करने के लिए विशेष रूप से पात्रो के चरित्रो के अनुसार अशुद्ध रखी गई है।

१८. पं० रामनरेश त्रिपाठी त्रिपाठी जी के १६ एकाकी मिलते हैं। "स्त्रियो की कौंसिल", "कवि" "बा, और बापू", "नानी नानी", "समानाधिकार", "कुणाल", "मगलमन्दिर", "कर्त्तव्यपालन", "ध्रुव", "एकलव्य", "इन्द्र का अखाडा", "मौन का सिपाही", "नखशिख", "छायावादी कवि और चित्रकार", "सीजन डल है", (प्रहसन) मुशी मनबोधन लाल (प्रहसन) युवक, स्त्रियो, बालको तथा शिशुओ प्राय सभी के लिए सुरुचिपूर्ण एकाकी लिखने मे त्रिपाठी जी सिद्धहस्त हैं।

उनके एकाकियों तथा नाटको मे भारतीय सस्कृति का सच्चा प्रदर्शन हुआ है। नैतिक दृष्टिकोण से स्वस्थ नागरिको का निर्माण, साहित्यिक सुरुचि, अश्लीलता एव शृगार के दूषित वातावरण के विरुद्ध मोर्चा, अति आधुनिकता तथा पाश्चात्य शिक्षा पर व्यग्य आपके एकाकियो की कुछ विशेषताएं हैं। आपके कुछ एकाकियो को छोडकर शेष सामाजिक समस्या-एकाकी ही हैं।

अपने नाटको, विशेषत एकाकियो मे, उन्होंने सदा नया विषय चुना है तथा

---

१. देखिए प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त कृत "नया हिन्दी साहित्य", पृष्ठ ६५।

वर्तमान समाज तथा जीवन की समस्याओ को नाटको का आधार बनाया है। भौतिक सभ्यता का खोखलापन, अर्थप्रधान सामाजिक मूल्यों से हानिया, देश और समाज की शत्रु मिथ्याचार और पाखड के प्रति घृणा उनके नाटक-साहित्य मे व्यक्त हुई है। जहा एक ओर उन्होंने इन पर कुठाराघात किया है, वहा दूसरी ओर भारतीय सस्कृति के अनुकूल आत्मत्याग, साहस, सेवाभाव और शिक्षाओ से परिपूर्ण आदर्श भी उपस्थित किए हैं।

"नखशिख", "छायावादी कवि और चित्रकार", "कवि", "स्त्रियो की कौंसिल" आदि एकाकियो मे त्रिपाठी जी ने अश्लीलता और ब्रजभाषा मे वर्णित शृगारी कविता द्वारा समाज मे फैलती हुई अनैतिकता के विरुद्ध मोर्चा खडा किया। इनका व्यग्य गहरा है। शृगार रस के प्रभाव से होने वाले शैथिल्य, विलासिता और अव्यवहारिकता के चित्र दिखाकर उन्होंने समाज को सचेत किया। "स्त्रियो की कौंसिल" तथा "समानाधिकार" नारी स्वतन्त्र्य आन्दोलनो की अव्यवहारिकता चित्रित करते हैं। "समानाधिकार" इनमे सबसे सजीव नए ढग का एकाकी है। "स्त्रियो की कौंसिल" में दिखाया गया है कि स्त्रिया चाहे कितनी भी शिक्षित क्यो न हो जाय, वे स्वतन्त्र रूप से कोई कार्य ठीक समय पर सुचारुता से सम्पन्न नही कर सकती। राष्ट्रीयता के रग मे रगे होने के कारण त्रिपाठी जी का "बा और बापू" महात्मा गाधी जी के प्रेमपूर्ण ममतामय जीवन, समाज सेवा और सयत व्यवहार की झाँकी देता है।

"सीजन डल है' (प्रहसन) मे डाक्टरो के ढोग, शकशुबे मे डालकर मरीज को ठगना आदि चित्रित किया गया है। यह अभिनय की दृष्टि से भी सफल है। "नाना नानी" और "कुणाल" ऐतिहासिक एकाकी हैं, जिनमे आदर्शवाद की प्रतिष्ठा है। बाल एकाकियो मे भी उच्च विचार उत्पन्न करने वाले चरित्रो की गौरव गाथाए हैं। पुरानी कथाओ को त्रिपाठी जी ने छितराया नही है।

इनकी टैकनीक रगमचीय नही है। कुछ एकाकियो को छोडकर शेष अभिनेय हैं। स्वगत का प्रयोग है। नाटक मे गाने देने के पक्ष मे त्रिपाठी जी नही हैं। जहा गाने देना अनिवार्य हो गया है, जैसे विवाह, कथा, पूजन या साहित्य समारोह पर वही गानो या कविताओ का प्रयोग हुआ है। रगमचीय निर्देश सक्षिप्त हैं। साधारणत समय, स्थान, और स्थूल रूप से पात्रो के मनोभावो का निर्देश कर दिया गया है। "बा और बापू" के नए एकाकियो मे मनोभावो के स्पष्टीकरण का अधिक प्रयास है। भाषा के सम्बन्ध मे त्रिपाठी जी का निजी मत है। वे सरल गतिशील स्वाभाविक खडी बोली के पक्षपाती हैं।[1] कुछ राष्ट्रीय नाटको की भाषा मुख्यत हिन्दुस्तानी है। हमारे प्रचारक अपनी कठिन भाषा मे विचार प्रकट करने मे जैसा निष्फल प्रयत्न करते हैं, उसका एक दृश्य "वफाती चाचा" मे मिलता है।[2]

---

१ देखिए "स्वप्नों के चित्र" "अपनी कहानी", पृष्ठ ३।
२ "वफाती चाचा" भूमिका, पृष्ठ २।

आदर्शवाद की प्रतिष्ठा के साथ त्रिपाठी जी के नाट्यसाहित्य की सब से बडी विशेषता यह है कि उनमे सिद्धान्त वाक्य नही आये हैं। एकाकियो के कथानक ही इतने प्रभावशाली हैं कि दर्शको के मुख से स्वय सिद्धान्त वाक्य निकल जाते हैं। एकाकियों मे उनका दृष्टिकोण सदा भारतीय सस्कृति के प्रदर्शन का रहा है।

१९. जयशंकर प्रसाद हिन्दी एकाकी का सन् १९२५ से नवीन सूत्रपात होता है। इस नवीन उत्थान मे प्रसाद प्रतिनिधि रूप से अग्रसर हुए। प्रसाद जी ने कई प्रकार के नाटको के प्रयोग किये थे। इनमे एकाकी नाटक भी थे। प्रारम्भ मे आप भारतेन्दु शैली से प्रभावित थे, और सस्कृत नाट्यशैली के उपकरणो का प्रयोग करते थे, जैसे "सज्जन, विशाख' तथा राज्यश्री" के प्रथम सस्करण मे। किन्तु बीसवी शताब्दी की पाश्चात्य नाट्य-चेतना ने उनके नाटको के स्वरूप मे परिवर्तन करने प्रारम्भ किये। यद्यपि उन्होंने अपने कथानक पौराणिक और ऐतिहासिक हिन्दू काल से ग्रहण किये, जिनसे उनकी सास्कृतिक अभिरुचि का ज्ञान होता है किन्तु नाट्यकला को चरित्रों पर नवीन मनोवैज्ञानिक प्रकाश डालकर उन्होंने उन्हें यथार्थवादी भावनाओ मे सुगठित किया। उन्होंने भारत के प्राचीन आदर्श एव वर्तमान जीवन की सहानुभूतिशील वास्तविकता का सम्मिश्रण किया। वे स्वभावत कवि थे। अत रसानुभूति एव सौंदर्यशील गीतिकाव्य ने उनके एकाकियो मे विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। एकाकी गीति-नाट्य की पद्धति पर रचित "करुणालय" उनकी भावात्मक रुचि का द्योतक है। प्रसाद का नाटकीय मनोविज्ञान सहृदय काव्य-पक्ष को जाग्रत करता है।

१ "सज्जन", २. 'करुणालय" (गीति एकाकी) ३ तथा "प्रायश्चित" प्रसाद की एकाकी जगत मे प्रयोगात्मक रचानाए हैं। उनके "एक घूट" मे एकाकियो के विकास मे एक नया युग प्रारम्भ होता है। "एक घूट" नवीन दिशा का पथ प्रदर्शक एकाकी नाटक बना।

नई शैली के वास्तविक हिन्दी एकाकी का प्रारम्भ प्रसाद के "एक घूंट" (१९२९) से होता है। वर्तमान एकाकी टैकनीक का इसमे पूर्ण रूप से निर्वाह हुआ है तथा इसी कारण यह एक सफल एकाकी है। "प्रसाद जी के अन्य नाटको की भाति यह भी सस्कृत परिपाटी के अनुसार प्रणीत है।"[1] हम इस मत से कुछ अशो मे सहमत नही हैं। यद्यपि सस्कृत परिपाटी के अनुसार इसका प्रणयन हुआ है, तथापि इस नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट दीख पडता है। आधुनिक एकाकी की टैकनीक का "एक घूंट" मे पूरा निर्वाह है।[2] यह मत आशिक रूप मे कुछ ठीक हो सकता है, क्योकि इस एकाकी मे कुछ अशो मे वे सभी तत्व उपलब्ध हैं, जो आगे चलकर

---

१ देखिए श्री सत्येन्द्र शरत का लेख "हिन्दी एकाकी"।

२ देखिए डा० नगेन्द्र कृत 'आधुनिक हिन्दी नाटक", पृष्ठ १३१।

हिन्दी एकाकी मे पूर्ण विकास पर आये हैं। इसमे प्रसादत्व का रग गहरा है और सकलनत्रय का निर्वाह है।

प्रसाद की सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा नाटकीय पर्यवेक्षण के सन्मुख पुरानी बाधाए न ठहर सकी तथा पाश्चात्य टैकनीक के प्रभाव से हिन्दी-साहित्य पुन वेग से प्रवाहित हो पडा। भारतेन्दु-युग से विकसित होकर प्रसाद-युग तक हिन्दी एकाकी में पर्याप्त परिपक्वता आ गई थी। भारतेन्दु के एकाकियो का विकसित और समृद्धिशाली रूप प्रसाद के एकाकी साहित्य मे उपलब्ध है। अनेक अभावो का निराकरण प्रसाद के एकाकियो मे हुआ। यदि हम यह मान लें कि हिन्दी साहित्य में आधुनिक एकाकी की नीव भारतेन्दु ने डाली, तो हमें यह मानना होगा कि प्रसाद जी ने उसे पुष्पित और फलित किया तथा हिन्दी एकाकी को आगे बढाया।

उनके एकाकियो मे प्राचीन भारतीय इतिहास का जो पुनरुत्थान हुआ है, प्राचीन हिन्दू सस्कृति के जिन उज्जवल चित्रो की अवतारणा हुई है, भारतीय इतिहास के साथ कवित्व तथा दार्शनिकता का जो मधुर साहित्यिक और कलात्मक योग हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रसादजी ने भारतेन्दु युग की पौराणिक ऐतिहासिक सुधारवादी एकाकियो की प्राचीन पद्यमय परिपाटी तो छोड दी, और गद्य के ही माध्यम को साकेतिक बनाने की परिपाटी प्रारम्भ की। उनके "एक घू ट" से आधुनिक हिन्दी एकाकी के विकास का नया पृष्ठ उलटता है।

प्रसादजी की एकाकी रचना-पद्धति का विकास क्रमश हुआ था। हिन्दी नाट्य साहित्य की समृद्धि के निमित्त वे निरन्तर विभिन्न नाटकीय शैलियो के प्रयोग कर रहे थे। प्रारम्भ मे उन्होंने चार प्रयोगात्मक एकाकी लिखे। "सज्जन," "कल्याणी", "परिणय," "करुणालय," तथा "प्रायश्चित।" कला की दृष्टि से इन प्रारम्भिक प्रयोगात्मक एकाकियो का अधिक महत्व नही है, किन्तु प्रसाद की नाट्य-कला के विकास की ये आवश्यक कडिया हैं।[1] "एक घू ट" जो "सज्जन" के १६ वर्ष के दीर्घकालीन अध्ययन तथा अनुभव के पश्चात लिखा गया था एक सफल साकेतिक एकाकी नाटक है। यह नाटक एकाकी के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रसादजी ने तीन एकाकी "सज्जन," "कल्याणी", "परिणय," तथा "करुणालय" (गीति-नाटय) प्रारम्भिक युग की देन हैं। "चित्राधार" मे सग्रहीत दोनो एकाकी उन की प्रथम रचनाओ मे से हैं। ये रचनाए एकाकी के साधारण प्रयोग मात्र हैं। प्रकाशन की तिथि के चक्र मे न पडें, तो हम यह कह सकते हैं कि इन एकाकियों में प्रसाद के प्राचीन से अर्वाचीन की ओर प्रगति की प्रथम अवस्था का परिचय प्राप्त हो जाता है। इनकी रचना सस्कृत तथा हिन्दी की पुरानी पारसी शैली पर है। इनमे प्रसादजी की प्रतिभा विकास पर है। प्रथम अवस्था में ही आपके एकाकियों

---

१ देखिए डा० समनाथ गुप्त कृत "हिन्दी नाटक का इतिहास", पृष्ठ २४१।

में कलात्मक प्रयास दृष्टिगोचर होता है, साथ ही अध्ययन और संघर्ष के चित्रण के भी चिन्ह मिलते हैं। 'विशाख' के पश्चात धीरे धीरे उनमे एक ही प्रकार की शैलिया और विचार पद्धति के विकास और परिपक्वता के उपकरण मिलते है।[1] उनके नाट्य साहित्य की यह विशेपता महान है।

प्रयोगात्मक एकाकी मे निम्न विशेपताएं स्पष्ट है

१ इनकी रचना सस्कृत तथा हिन्दी की पुरानी नाट्य-शैलियो के अनुसार है। प्रारभ मे नान्दी का विधान है। तत्पश्चात् सूत्रधार आता है और नटी से नाटक के अभिनय का आग्रह करता है। अभिनय होना निश्चित होता है। इनके अन्त मे भरत-वाक्य का प्रयोग किया गया है।

२ पद्यो मे सस्कृत छन्दो का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि प्राचीन गद्य-पद्य मय एकाकी के प्रति प्रसाद की सहानुभूति थी। सम्भापणो मे छन्द-वद्ध कविता का प्रयोग है। भिन्न-भिन्न प्रकार के चरित्रो द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार की भापा काम मे लाई गई है।

३ इन एकाकियो के प्राकृतिक दृश्यो के वर्णनो मे सस्कृत मे कवि-कुल-शिरोमणि कालीदास एव हिन्दी मे तुलसीदास आदि जैसे श्लिष्ट प्रयोग उपलब्ध हैं।

४ एकाकियो मे छन्दो का प्रयोग सस्कृत-नाट्य-परम्परा से लिया गया है।

५ इनमे मानसिक सघर्प का वडा दुर्वल प्रयोग है। कथा मे तीव्रता कम है पर भापा शुद्ध परिमार्जित है। छन्द की गति मे मन्थरता है।

६ सस्कृत नाट्यशास्त्र के विरुद्ध इन एकाकियो मे कही-कही वर्जित दृश्यो का भी समावेश है। जैसे "प्रायश्चित" मे जयचन्द से आत्महत्या कराई गई है।

७ इन एकाकियो मे न्यूनाधिक रूप मे भरतमुनि की शास्त्रीय-पद्धति का अनुकरण किया गया है। उनके नाटको मे पहले फलागम का ज्ञान नही होता, पर संघर्ष अभिवृद्धि पर रहता है तथा अन्त मे नायक को शान्ति प्राप्त होती है।

१०. प्रसाद के एकांकियों पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

सज्जन : प्रसाद का "सज्जन" (१६१०) प्रथम मौलिक एकाकी है। इसमे प्राचीन तथा नवीन नाट्य-प्रणालियो का सम्मिश्रण किया गया है। इस एकाकी के द्वारा हमे उनके प्राचीन से अर्वाचीन की ओर उत्तरोत्तर विकास की प्रथम अवस्था का परिचय प्राप्त होता है। "सज्जन" लगभग २० पृष्ठो का एकाकी रूपक है। इसकी रचना सस्कृत तथा प्राचीन हिन्दी नाट्यशैली पर है। प्रारभ नान्दी से होता है। तत्पश्चात् सूत्रधार आता है तथा अपनी पत्नी से नाटकाभिनय का प्रस्ताव करता है। कथोपकथन मे चातुरी से सज्जनता का सकेत हो जाने पर पत्नी को "सज्जन" का

---

१. देखिए राजेन्द्र सिंह गौड़ कृत "आधुनिक कवियों की काव्य-साधना", पृष्ठ २४।

स्मरण हो आता है, तथा इसके अनन्तर दुर्योधन की सभा दृष्टिगोचर होती है। "सज्जन" के कथोपकथनों मे पद्य का यथेष्ट प्रयोग है। पात्र अपनी गद्योक्ति को पुष्ट करने के लिए पद्य का प्रयोग करते हैं जो दृष्टान्त रूप मे होता है। इन पद्यमय अशो की शैली भी सस्कृत जैसी है। प्राकृतिक वर्णनो मे प्राय नीति का कोई तत्व निरुपण करने की चेष्टा की गई है। प्राचीन परिपाटी के हिन्दी एकाकियो मे जैसे खडी बोली गद्य के भीतर पद्य ब्रजभाषा मे प्रयुक्त है, उसी प्रकार के कतिपय प्रयोग "सज्जन" में हैं। कथोपकथन सादा और सक्षिप्त है। पात्रगण सारयुक्त वक्तव्यो का प्रयोग करते हैं। सक्षिप्त होते हुए भी इस एकाकी में कार्य-व्यापार की न्यूनता नही है। अभिनय की उद्भावना एव सक्षिप्त कथोपकथनो के उपकरण आधुनिकता के सूचक हैं। इसका अन्त भरत-वाक्य से होता है। "सज्जन" की कथावस्तु सक्षिप्त है।

करुणालय . यह एक गीति-एकाकी है। यह वैदिक काल की विश्रृङ्खल कार्य-भावना पर एक करुण व्यग्य है। यह तुकान्तविहीन मात्रिक छदो मे विरचित है। इसमे इच्छानुकूल विराम चिन्हो का प्रयोग किया गया है। न कवित्व और न नाट्यकला की दृष्टियो से ही इसे सफल कहा जा सकता है। कथानक कुछ बेतुका सा है। इसमे राजा हरिश्चन्द्र तथा रोहित के जीवन की एक कथा का, जहा पुत्र को निज अधिकारो का ज्ञान होता है, मार्मिक चित्रण है। इस नाटक मे गीति नाट्य के प्राण-तत्व, मानसिक सघर्ष, का दुर्बल प्रयोग है। हरिश्चन्द्र की कर्त्तव्य भावना और पुत्र प्रेम के बीच सघर्ष शिथिल है। लगभग नही के बराबर है। हा, रोहित की जीवन लालसा और पिता के प्रति कर्त्तव्य के मध्य जो सघर्ष हुआ है, उसमे कुछ विद्रोह की शक्ति है, शास्त्रीय दृष्टि से प्रभाव-एक्य ढूढ भी निकाला जाय, परन्तु वह बडा क्षीण है। फिर भी यह एकाकी कवित्व से शून्य नही है। प्रथम दृश्य मे मनोरम प्राकृतिक सौन्दर्य की कोमल अभिव्यजना मिलती है।

इसमे अतुकान्त कविता का मात्रिक वृत्तो मे प्रयोग है। प्रसाद ने अग्रेजी से प्रभावित होकर "करुणालय" की सृष्टि की है, किन्तु इसके अनन्तर उन्होंने अपना यह मार्ग परिवर्तित कर दिया।

"चित्राधार" के एकाकी प्रसाद जी ने २०-२२ वर्ष की आयु में रचे थे। इस सग्रह से उनकी उदीयमान प्रतिभा का सहज ही मे अनुमान हो सकता है, तथा उन पर क्रमश अग्रेजी टैकनीक का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

एक घूट प्रसाद के एकाकियो मे "एक घूट" का विशेष स्थान है। इसका एक ऐतिहासिक महत्व है। कुछ आलोचको ने जिनमे श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, सत्येन्द्र शरत, प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी, डा० नगेन्द्र आदि है, ने इससे नई शैली के आधुनिक हिन्दी एकाकी का प्रारम्भ माना है। कुछ आलोचको की सम्मति इस प्रकार है

"यो तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्णभट्ट, प्रतापनारायण मिश्र और राधाकृष्ण दास ने पिछली शताब्दी मे ही ऐसे रूपक

लिखे थे जो आजकल के एकांकियो से मिलते-जुलते हैं। परन्तु उन्हे आदर्श एकांकी नही कह सकते। हिन्दी एकांकी का प्रादुर्भाव जयशंकर प्रसाद के "एक घूट" से होता है।[1]

"सचमुच हिन्दी एकांकी का प्रारम्भ प्रसाद के "एक घूंट" से हुआ है। प्रसाद पर संस्कृत का प्रभाव है। इसलिए वे हिन्दी एकांकी के जन्मदाता नही कहे जा सकते, यह बात मान्य नही है। एकांकी की टैकनीक का "एक घूट" मे पूरा निर्वाह है।"[2]

"एक घूट" एक सुन्दर साहित्यिक पुष्प है, जिसका रसास्वादन विद्वान्, तर्कशील और गम्भीर पाठक ही कर सकते है। चूंकि प्रसाद जी के नाटक विद्वानो के लिए रचे गए ज्ञात होते हैं, उन पर दुरूहता का आरोप लगाना व्यर्थ सा प्रतीत होता है। अभिनय के अनुपयुक्त होने पर भी स्थान-स्थान पर अभिनय का पूर्ण आयोजन "एक घूट" मे है।[3]

प्रसाद जी का "एक घूट" हिन्दी एकांकियो के विकास की द्वितीय अवस्था का अग्रणी है। यह अवस्था संवत् १९८६ से प्रारम्भ होकर सन् १९३२ तक मानी जानी चाहिए। प्रसाद का "एक घूट" संवत् १९८६ में प्रकाशित हुआ था। प्रथम अवस्था "एक घूट" लिखे जाने के पूर्व तक मानी जानी चाहिये।"[4]

"प्रसाद जी ने साहित्यिक नाटक को हिन्दी के ऊंचे आसन पर बैठाया। आपका "एक घूंट" सफल एकांकी नाटक है। यहा जीवन की विनोद और काव्यपूर्ण झांकी हमे मिलती है, और उत्कृष्ट कोटि के हलके रेखाचित्र।"[5]

निष्कर्ष यह कि नई शैली के वास्तविक हिन्दी एकांकी का प्रारम्भ श्री जयशंकर प्रसाद के "एक घूट" से होता है। वर्तमान एकांकी टैकनीक का इसमे पूर्ण निर्वाह हुआ है और इसी कारण यह एक सफल एकांकी है। इस पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्टत. दीख पडता है। अत इस स्कूल के आलोचको के विचार सत्य कहे जा सकते हैं। "एक घूट" ने हिन्दी एकांकी की एक नई परम्परा को जन्म दिया और एक नवीन दिशा की ओर पथप्रदर्शन किया।

दूसरे स्कूल के आलोचको का, जिनमे प्रो० अमरनाथ गुप्त एम० ए० प्रमुख हैं, कहना है कि प्रसाद जी पर संस्कृति की परिपाटी का प्रभाव अधिक है। वे पथ प्रदर्शक के रूप मे हिन्दी भाषा भाषियो के सन्मुख उपस्थित न हो सके। हिन्दी

---

१. देखिए डा० हरदेव बाहरी एम० ए०, डी-लिट०, "चुने हुए एकांकी नाटक", भूमिका, पृष्ठ ६।

२. देखिए डा० नगेन्द्र, "आधुनिक हिन्दी नाटक", पृष्ठ १३१।

३. प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी, "एक घूट" की आलोचना से।

४. डा० सत्येन्द्र, "हिन्दी एकांकी" पृष्ठ ७८।

५. प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त एम० ए०, "हंस", एकांकी नाटक अंक।

साहित्य के पश्चिम से एकाकी के जन्मदाता प्रसाद जी नही हैं। इसका कथानक भी ऐतिहासिक है। जीवन की विनोदपूर्ण और काव्यमय झाकी हमे मिलती है।

इस मत मे कई भ्रमपूर्ण कथन हैं। इसके कथानक को ऐतिहासिक बतलाया गया है, जबकि उसमे कुछ भी ऐतिहासिक नही है। इसमे पाश्चात्य टैकनीक स्पष्ट दीखती है तथा दृश्य परिवर्तन नही है। पात्रो मे गति है, घटना की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है और जो सघर्ष प्रारम्भ हुआ है, वह धीरे-धीरे शक्तिवान होता है। अन्त मे एक पक्ष अनुभूति के आधार पर निर्बल होकर क्षुब्ध और दूसरा पक्ष प्रबल होकर चरमोत्कर्ष पा गया है। नाटक मे सकलन भी निर्दोष है।

प्रसाद जी का यह एकाकी बिल्कुल पाश्चात्य ढग का तो नही है, पर विकास की एक बडी मजिल पूरी करता है। पात्रो के मनोवैज्ञानिक चित्रण, घटना का सघर्षों मे से होकर चरम सीमा प्राप्त करना, कथोपकथनो मे वाक्वैदग्ध्य, अस्वाभाविक प्रसाधनो का न्यूनतम उपयोग, रगसूचनाओ की व्यापकता तथा गानो का कलात्मक प्रयोग इत्यादि सभी दृष्टिकोणो से प्रसाद के "एक घूट" मे हिन्दी एकाकी की एक विकसित अवस्था दृष्टिगोचर होती है। ये सभी प्रवृत्तिया उभरती हुई दिखती हैं। अभिनय की दृष्टि से यह लम्बा और गम्भीर तर्क तथा दार्शनिकता से बोझिल अवश्य है, किन्तु इसमे चरित्र चित्रण की एकता एव लक्ष्य की ओर वेग-सम्पन्न प्रवाह है, वस्तु-निर्माण मे कलात्मकता है। एक कोणीय प्रदर्शन मे इस एकाकी की ऐतिहासिक महत्ता है, और इसी मे प्रसाद की एकाकी-कला की सफलता है।

"एक घूट" मे प्रसाद जी से रगमच के नियमो की अवहेलना हुई है। यद्यपि चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक है। प्रसाद जी ने एकाकी नाटको की ओर विशेष ध्यान नही दिया। चरित्र निरूपण तथा व्यक्ति सघर्ष ही उनका आदर्श रहा, उस क्षेत्र मे वे अद्वितीय हैं।

प्रसाद के एकाकियो की कथावस्तु सामग्री तीन प्रकार की है। १. ऐतिहासिक, जैसे "प्रायश्चित", २ पौराणिक, जैसे "सज्जन" तथा "कल्याणलय", ३ भावात्मक आदर्शवादी, जैसे "एक घूट"। आपने ऐतिहासिक तथा पौराणिक एकाकियो मे प्राचीन सस्कृति और वैभव का नवीन स्वप्न देखा है और उसे अपनी कोमल भावनाओ से अनुरजित किया है। अपनी प्रतिभा द्वारा शुष्क इतिहास तथा भूले हुए पौराणिक उपाख्यानो को साहित्य का सुदर रूप प्रदान किया। अपने इस प्रयत्न मे सफलता प्राप्त करने के लिये उन्होंने अपनी ओर से कथावस्तु की ऐतिहासिकता मे कुछ परिवर्तन भी किया है, पर एक सीमा के भीतर और कलात्मक ढग से। उनकी समस्याए बहुमुखी हैं, पतितो को उठाना, निराशा के गर्त मे गिरे हुए प्राणियो की पीडित मानवता को विश्व मगलकारी आशावाद का सदेश सुनाना। उनके नाटको मे राजनीतिक द्वन्द्व, प्रणय के घात-प्रतिघात तथा आध्यात्मिक उत्थान

के साथ-साथ एक नया आकर्षण है, ओज है, आदर्श है।[1]

प्रसाद ने अपने एकाकियो मे चरित्र चित्रण के लिए चार उपकरण अपनाए हैं। वार्त्तालाप, स्वगत कथन, दूसरो के कथन और कार्य व्यापार। दो प्रकार के पात्र विशेष रूप से मिलते हैं। स्वाभाविक एव परिस्थिति जन्य। उनके कुछ आदर्शपात्र वाह्य-सग्राम के साथ स्वय अपने मन की अशुभ वृत्तियो के साथ भी लडते हैं और आत्मचिन्तन करते हुए कर्त्तव्य पथ की ओर अग्रसर होते हैं। उदाहरण स्वरूप "एक घूट" के आनन्द तथा कुज रसाल इत्यादि।

प्रसाद के एकाकियो की नारी पात्र वनलता, प्रेमलता इत्यादि पुरुषो को उनके कर्त्तव्य मार्ग पर परिचालित करती है। "एक घूट" के सव पात्र मध्य वर्ग के हैं जिनके आदर्श हैं सरलता, स्वास्थ्य और सौंदर्य। अरुणाचल आश्रम के रूप मे प्रसाद ने एक ऐसी जीवन यात्रा की कल्पना की है जो नागरिक और ग्रामीण जीवन की सधि है। प्रसाद के कथोपकथन मे सव कुछ है पर उनकी भाषा कुछ क्लिष्ट है। "एक घूट" मे अर्थ-सम्वन्धी कठिनाई का अनुभव नही करना पड़ता है। शिष्टता और सुरुचि का सर्वत्र ध्यान रखा गया है। उचित सीमा के अन्दर प्रसाद ने भावव्यजक और सघर्षमय कथोपकथनो की सृष्टि की है। गीतो का वाहुल्य इन नाटको को मृदुल सरसता और रसात्मकता से परिपूरित कर देता है।

प्रसाद जी ने गीत को एकाकी के लिए आवश्यक माना है। "एक घूट" का आरम्भ गीत से होता है। उसी के अर्थ पर एकाकी चलता है। इसमे साकेतिक रूप मे वन्धनो को खोल देने की ओर सकेत है। इसी प्रकार अन्य गीत "जीवन वन मे उजियाली है" तथा "जलधर की माला" साकेतिक हैं। इनमे रहस्यवाद की भी झलक है जिससे रस परिपाक मे दुरुहता आती है। नाटक का अन्त भी एक गीत द्वारा ही होता है, जिसमें नाटक का लक्ष्य स्पष्ट किया गया है।

सक्षेप मे जिस युग में प्रसाद जी ने एकाकियो मे अपने प्रयोग किए थे, हिन्दी नाटको पर वगाली नाट्यकार द्विजेन्द्रलाल राय के अग्रेजी से प्रभावित नाटको का प्रभाव वहुत अधिक पड चुका था। प्रसाद ने अपने अनेक नाटको मे द्विजेन्द्रलाल राय की रचना पद्धति, कृत्रिम भावात्मकता, अस्वाभाविक नाट्य-रूढियो, स्वगत मे अतिरजित भावावेश और असम्भावनाओ का अनुकरण किया है।

---

१ श्री राजेन्द्रसिंह गौड़।

: ४ :

पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित द्वितीय उत्थान

१. सामान्य परिचय

धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोणो से सन् १९२५ से १९३८ तक का युग जागृति का युग था। धार्मिक क्षेत्र की जडता और रूढिवादिता, अस्पृश्यता और सकुचितता धीरे-धीरे क्षीण हो रही थी। इस काल मे शुद्धि आन्दोलन ने विशेष महत्वपूर्ण कार्य किया है। सर सैयद अहमद खा द्वारा मुस्लिम समाज मे उत्पन्न की हुई धर्मान्ध जागृति भी धीरे-धीरे अपना कुत्सित प्रभाव दिखाने लगी थी। मुसलमानो मे साम्प्रदायिकता की वृद्धि हुई द्वेष बढाने वाली मागें प्रारम्भ हुईं तथा अन्य अहितकर कार्य किए गए। साधारण मुसलमानो मे धार्मिक उदारता, सहिष्णुता आदि का विकास न हो सका। अन्य धर्मावलम्बियो मे भी जागृति चलती रही तथा सब ने एक स्वर से धार्मिक दासता के विरुद्ध आवाज़ उठाई।

यद्यपि शिक्षा के प्रभाव से अनेक शिक्षित व्यक्ति उदार हो गये थे, तथापि कितने ही व्यक्ति धर्म के बाह्य स्वरूप को कट्टरता से पकडे हुए थे, तथा आन्तरिक सुधार की ओर समुचित ध्यान नही देते थे। सामाजिक क्षेत्र मे सबसे महत्वपूर्ण तत्व महिलाओ का राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेना था। बाल विवाह, बहु विवाह, बेमेल विवाह, कन्या विक्रय और वर विक्रय रोकने के प्रयत्न किये गए। अन्तर्जातीय और अन्तर्प्रान्तीय विवाहो का प्रचलन हुआ। पर्दा प्रथा का बहिष्कार किया गया। कल कारखानो मे कार्य करने वाली स्त्रियो के अधिकारो की रक्षा के उपाय किए गए। स्त्रियो को राजनीतिक अधिकार मिले और कांग्रेस शासन के अवसर पर कुछ पद भी प्राप्त हुए।

पाश्चात्य विचारो तथा शिक्षा के प्रभाव से जनता मे अभूतपूर्व शिक्षा सम्बन्धी जागृति हुई। इस युग मे हिन्दी भाषा साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव दो रूपो से पड रहा था। १ अंग्रेजी साहित्य के विशेष अध्ययन तथा हिन्दी नाट्यकारो के पश्चिमी नाट्यकारो के अनुकरण द्वारा, २ शिक्षा का माध्यम जो अंग्रेजी ही था। अंग्रेजी माध्यम होने के कारण अप्रत्यक्ष रूप से विद्यार्थी तथा नई पीढी के नाट्यकार अंग्रेजी एकाकीकारो का अधिकाधिक अनुकरण कर रहे थे।

इस काल मे जन-मानस मे राष्ट्रीय चेतना तीव्रता से उठ रही थी। अत इस युग के एकाकी साहित्य मे राष्ट्रीयता, स्वदेश प्रेम, पराधीनता के प्रति क्रान्ति का स्वर है। राष्ट्रीय आन्दोलन ने सत्याग्रह तथा असहयोग का रूप धारण कर लिया था,

गाधीवादी विचारधारा का प्रभाव एकाकियो पर पड़ रहा था। सन् १९३५ के शासन विधान के अनुसार सन् १९३७ से ३८ मे प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हुई जिससे जनता में नवीन आशाओ का उद्रेक हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन की यह बलवती धारा हमारे ऐतिहासिक तथा राजनीतिक एकाकियो मे प्रस्फुटित हुई।

अग्रेजी भाषा के दीर्घकालीन उपयोग उच्च कक्षाओ मे अग्रेजी शैलियों के विशेप अध्ययन तथा माध्यम के रूप मे व्यापक प्रसार के कारण हिन्दी मे अग्रेजी शैलियो का विशेष रूप से अनुकरण प्रारम्भ हुआ। हिन्दी साहित्य निर्माताओ मे विशेषत नाट्य-साहित्य के निर्माताओ मे ऐसे नाट्यकारो की सख्या अधिक थी जो अग्रेजी साहित्य से सीधी प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे। अपने व्यक्तित्व का रंग चढा भारतीय समस्याओ तथा तत्कालीन विचारधाराओ से कथानक लेकर ये हिन्दी में एकाकी के माध्यम को सशक्त बना रहे थे।

उधर योरोप मे कृत्रिम भावुकता, रोमाटिक अतिरंजित नाटको, कलागत रूढियो एवं सौन्दर्य साधना के पुराने मापदड मर्यादा का अतिक्रमण कर चुके थे। नवीन उत्थान के क्रान्तिकारी नाट्यकारो मे (जिनमें इब्सन की स्वाभाविकता तथा शा का यथार्थवाद प्रमुख है) जीर्ण-शीर्ण मान्यताओ के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रारम्भ कर दी थी। जनता पुरानी चीजो से ऊब उठी थी, वे नवीन चेतना की प्रतीक्षा मे थे।

नवीन युग के नाट्यकारो ने भावुकतापूर्ण कला-सौन्दर्य की प्रतिष्ठा तथा कल्पनाजन्य साहित्य साधना के स्थान पर वर्तमान सामाजिक सघर्ष से उत्पन्न जटिलताओ, नये युग की समस्याओ और जीवन की झाँकियो को अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। इब्सन के नये प्रयोगो ने नाटकीय-जगत् मे क्रान्ति का सूत्रपात किया। उनकी प्रेरणा से एकाकी मे नित्य प्रति के मानव जीवन तथा समाज की सच्ची जीवन व्याख्या के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। साहित्य जीवन के अधिक समीप आ गया। कल्पना-लोक, रोमाटिक कलावाद तथा कृत्रिम भावुकता की पुरानी आदर्श भूमि से उतरकर एकाकी जनता की यथार्थवादी राजनीतिक, सामाजिक तथा मानव चरित्र सम्बन्धी समस्याओ के प्रति उन्मुख हुआ।

२. इंग्लैंड में एकांकी की प्रसिद्धि और लोकप्रियता

इंग्लैंड मे एकाकी की प्रसिद्धि का एक कारण रिपर्टरी आन्दोलन रहा है। यह आर्चर ग्रीन-शा आन्दोलन के साथ-साथ विक्टोरियन युग के विरुद्ध क्रान्ति के रूप मे प्रारम्भ किया गया था। विलियम आर्चर बर्नार्ड शा तथा कुछ अन्य साहित्यिकों ने नाटक को सजीव करने के हेतु इन्डिपेनडेन्ट थियेटर की स्थापना की थी। यदि उसे हार्ले ग्रिनविल बारकर जैसे उच्च प्रतिभा के स्टेज डाइरेक्टर की सहायता प्राप्त न होती तो इन्डिपेनडेन्ट थियेटर का अन्त हो गया होता। ग्रिनविल बारकर इंग्लैंड के नाटकीय स्वर्णयुग के सर्वोच्च डाइरेक्टर रहे हैं। आपने १९०४ से १९०७ तक कार्ट

थियेटर मे शा और गाल्सवर्दी तथा अन्य नाट्यकारो के कुछ नाटको का अभिनय कराया था। गिनविल वारकर की प्रेरणा से मानचेस्टर, ग्लासगो, लिवरपूल और विर्मिघम स्थानो पर रिपर्टरी थियेटरो की स्थापना की गई।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् रिपर्टरी आन्दोलन की सहायता और प्रेरणा पाकर अनेक महत्वाकाक्षी अमेचर क्लव उन्नति कर सके हैं। इसके कारण अनेक अभिनेता, डाइरेक्टर तथा नाटककार प्रकाश मे आये हैं। रिपर्टरी थियेटरो की प्रेरणा पाकर अग्रेजी एकाकी ने विशेष उन्नति की है तथा दुखान्त, सुखान्त, प्रहसन, बरलस्क, कास्ट-यूम प्ले, व्यग्य, फैंटेसी और काव्य-नाटको के रूप मे एकाकी को आगे बढाया है।

आधुनिक युग समस्याओ का युग है। प्रतिदिन समाज, आदर्शों, धर्म तथा राजनीतिक वर्गों मे सघर्ष चल रहे हैं। आधुनिक साहित्यकार समाज को आगे बढाना चाहता है। अर्थशास्त्रियो व्यवसायियो, तथा राजनीतिज्ञो ने नये-नये आदर्शों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। साम्यवाद ने नयी क्राति उत्पन्न की है। इनके अतिरिक्त गरीबी-अमीरी, ऊच-नीच, कानून अपराध, विवाह तलाक, जमीदार किसान, न्याय-अन्याय के रूप मे छोटी-बडी समस्याए हमारे सम्मुख आई हैं। एकाकी की ही यह विशेषता है कि यह एक विशाल दर्शक समूह के सम्मुख किसी समस्या को सुचारु और आकर्षक रूप से प्रस्तुत कर सकता है। समस्या का हल भी इतने अच्छे रूप मे प्रस्तुत करता है कि जनता उसे भूल नही पाती और प्रभाव स्थायी रहता है। आज के युग मे जो समस्या-नाटक लिखे गये हैं उनसे एकाकी नाटक बहुत आगे बढा है। समस्या आज के युग की विशेष देन है।

विज्ञान की उन्नति तथा श्रम के यान्त्रिक हो जाने के कारण वस्तुओ के उत्पादन मे आधिक्य हो गया है। इससे बाजारो मे प्रतियोगिता, स्वार्थमयी दलबन्दिया, अन्तर्राष्ट्रीय ईर्ष्या की सृष्टि होती है। युद्ध की विभीषिका सदैव आधुनिक सभ्य कहलाने वाले मानव के मन को अशान्त किए हुए है। वह कुछ देर के लिए अपने विघ्न बाधा दु खो को विस्मृत करना चाहता है। छोटे एकाकियो के मनोरजनो मे वह अपने दु ख भूलना चाहता है। अनेक दर्शक अपने दु ख को विस्मृत करने के लिए रिपर्टरी थियेटरो मे एकत्रित होते रहे हैं। जो अच्छे एकाकी लिखते हैं उन्हे पारिश्रमिक भी अच्छा मिलता है। इस प्रकार के प्रयोगो और आर्थिक प्रेरणाओ से एकाकी उत्तरोत्तर परिष्कृत होता रहा है। हम आधुनिक एकाकी क्षेत्र मे नित्य नये-नये प्रयोग देख रहे हैं। ये सब एकाकी के लोकप्रियता के लक्षण हैं।

इब्सन तथा उनकी विचारधारा से प्रभावित अन्य नाट्यकारो (शा, मैटरलिंक, बैरी, गाल्सवर्दी, चेखोव, सिमोनोव, ओ' नील, माहम, प्रीस्टले) का विश्वास था कि अतीत या भविष्य चाहे कितना ही गौरवपूर्ण एव आकर्षक क्यो न हो वर्तमान की विभीपिकाओ तथा कटुताओ से पलायन कर उस स्वप्निल लोक की शरण ग्रहण करना कायरता है। नाट्यकार का कर्त्तव्य है कि वह मौजूदा जीवन और समाज की

स्थितियो, घटनाओं, व्यापारो से उद्भूत समस्याओ का हल नाटको मे प्रस्तुत करे।

अग्रेजी साहित्य मे इब्सन मे समस्या-नाटको का प्रारम्भ होता है। जीवन के मौलिक तत्वो और मर्मो को उधेड़कर नग्न कड़ुवाहट और विपद्रूता उभर आती है। इब्सन बौद्धिक तत्वो से प्रभावित रहे हैं। मानव की अतल स्पर्शी वेदनाओ को मुखरित करते रहे। युग-युग का सोया मानव व्यक्तित्व जाग्रत हो उठा, पुरानी जीर्ण-शीर्ण परपराए विशृंखलित होकर धराशायी हो गई। नये यथार्थवादी मापदण्ड साहित्य मे अवतीर्ण हुए। इब्सन के नाटको के पात्र समाज की जर्जरित रूढियो के विरुद्ध क्रान्ति का झण्डा उठाये उसमे भारी परिवर्तन करने के हेतु कटिबद्ध हैं। समाज तथा व्यक्ति मे व्यक्ति के पक्ष का प्रावल्य है। एकाकियो के विषय सामाजिक तथा मूल वृत्ति यथार्थवाद होने के कारण इब्सन युग मे नाटकीय पात्र अभिजात वर्ग तक ही सीमित न रहे, जन साधारण, सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक, वैयक्तिक समस्याओं, जीवन के मौलिक तत्वो की व्याख्या, नवीन उपेक्षित विषयो की ओर सकेत और रूढिवाद के स्थान पर बुद्धिवाद का प्रतिपादन प्रारम्भ हुआ।

इस काल मे एकाकियो का मूल स्वर यथार्थवाद के अन्तर्गत यथातथ्यवाद और प्रगतिवाद था। जो नाट्यकार कला को विशुद्ध रूप से प्रस्तुत कर "कला कला के लिए" चरितार्थ करना चाहते थे, उनका युग समाप्त हो चुका था। नवीन एकाकीकारो ने समाज का स्वाभाविक यथार्थवादी स्वरूप चित्रित किया। समाज, धर्म, राजनीति की विषमताओ पर कलावाद का झूठा भावुकता का आवरण चढाने के स्थान पर यथार्थवादियो ने नग्न यथार्थ का चित्रण किया। इन एकाकीकारो का विश्वास था कि युगो की रूढियो तथा समाज के बंधनो मे आवद्ध रहने के कारण कृत्रिम भावुकता और मार्मिकता के चक्र मे पडकर तथा केवल सौंदर्य साधना मे निमग्न रह कर मानव प्रकृति, समाज, तथा सस्कारो का वास्तविक रूप सभ्यता के मोटे आवरण मे विलुप्त हो गया है। इसी सच्चे स्वरूप को उभारकर एकाकियो मे जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

इब्सन की विचारधारा से प्रभावित एकाकीकार वर्तमान सघर्ष एव उत्पीडन के चित्रण मे विश्वास करते हैं और कल्पना की रगीनी या आदर्शवाद मे यथार्थ स्थिति को ढकना नही चाहते। हिन्दी साहित्य मे इस युग के एकाकीकारो का उद्देश्य मानव जीवन तथा समाज की विषमताओ के मूल का अनुसधान तथा उसके समाधान स्वरूप जीवन की नवीन यथार्थवादी प्रणाली का आयोजन है। इब्सन की प्रकृति की ओर लौट चलने, रोमाटिक भावनापूर्ण नाटको से बचने, भावोद्रेक के स्थान पर तर्क तथा बुद्धिवाद से काम लेने का प्रभाव हिन्दी एकाकीकारो पर विशेष रूप से पडा है। योरोप की भांति भारत मे भी साहित्य तथा कला के क्षेत्र मे जो अस्वाभाविक और अतिभावुकता पूर्ण कृत्रिम सभ्यता का प्रतीक तन्त्र था, उनका इस युग मे बहिष्कार किया गया।

इब्सन तथा शा का प्रभाव हिन्दी एकाकीकारो पर लम्बा होकर पडा है। कई एकाकीकारो जैसे भुवनेश्वर तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र मे पाश्चात्य प्रभाव की चेतना पैठ गई और यत्र-तत्र विचारधारा एव टैकनीक में स्पष्ट मुखरित हो गई है।

इब्सन, शा, मैटरलिंक आदि पाश्चात्य एकाकीकारो का अनुकरण हमारे एकाकीकारो के लिए कई दृष्टियो से उपयोगी सिद्ध हुआ है। इनके अनुकरण से उन्हें नये आदर्श मिले, स्वाभाविकता और अभिनयशीलता की प्रवृत्ति जागृति हुई, किन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि उन्हें मनोवैज्ञानिक शैली प्राप्त हो गई तथा हिन्दी एकाकियो मे मानव जीवन का आन्तरिक पक्ष सचाई से चित्रित होने लगा। एकाकी जीवन की सधी हुई झाकी हो गया तथा उसकी व्यजना इतनी स्पष्ट हो गई कि वह कुतूहल के साथ ही साथ स्वाभाविकता और जीवन की सचाई की ओर सकेत भी कर सका। उसमे वर्णनात्मक तत्व की अपेक्षा अभिनयात्मक तत्व की प्रधानता होने लगी।

३. अंग्रेजी के अनुकरण पर हिन्दी में एकांकी का विकास

यो तो प्राचीन तथा नवीन मान्यताओ के अनुसार हिन्दी मे एकाकी का विकास चल ही रहा था, किन्तु नाट्य साहित्य के प्रभाव से आधुनिक ढग से हिन्दी एकाकी का विकास इसी युग की देन है। पश्चिम के अनुकरण पर हमारे यहा भी नई शैली के एकाकियो का प्रारम्भ हुआ। जिस टैकनीक के नए हिन्दी एकाकी लिखे गए, वैसे पहले हमारे यहा नही थे।[1] साधारणत सस्कृत की परिपाटी पर जो एकाकी रचे गये हैं उनकी प्रवृत्ति विस्तार की ओर है। हिन्दी साहित्य में इस युग से पूर्व जिन एकाकियो का निर्देश किया गया है वे पाश्चात्य लक्षणो के अनुसार नही लिखे गए। पाश्चात्य एकाकियो के विशिष्ट तन्त्र का ज्ञान हमे न हो सका था।

इब्सन, पिनरो और शा इत्यादि में पुरानी पद्धति, कृत्रिम भावुकता, जीवन का अतिरजित स्वरूप, स्वगत काव्य का प्रयोग, दृश्यो की अधिकता, सकलन-त्रय की अवहेलना तथा अन्य अस्वाभाविकताओ के विरुद्ध जो यथार्थवादी क्रान्ति थी अब हिन्दी एकाकी में भी दृष्टिगोचर होने लगी। हिन्दी एकाकीकारों ने भी पाश्चात्य टैकनीक के अनुसार नए एकाकियो का निर्माण प्रारम्भ किया। अब तक हिन्दी तथा अंग्रेजी

---

१. कुछ आलोचकों के मत इस प्रकार हैं :

"हिन्दी आधुनिक एकांकी नाटक पश्चिम से आया है। संस्कृत में पुरानी परिपाटी के नाटकों का उल्लेख उपलब्ध है किन्तु ये पुराने टाइप के काव्य प्रधान एकांकी हैं। हिन्दी का एकांकी सस्कृति रीति से नहीं, पाश्चात्य शैली से प्रभावित हुआ है।" डा० हरदेव बाहरी, डी० लिट०, "चुने हुए एकांकी" भूमिका, पृष्ठ २।

हिन्दी साहित्य में एकांकी नाटक पाश्चात्य अनुकरण की देन है। प्रो० चन्द्रकिशोर जैन एम ए, "वीणा", अगस्त १९४०।

(क्रमशः)

साहित्यो का सम्पर्क इतना निकट हो गया था कि हिन्दी एकाकी ने अंग्रेजी के रग में अपने को रग डाला था।

स्वय कुछ प्रयोगवादी एकाकीकारो, जैसे डा० रामकुमार वर्मा सेठ गोविन्द दास, उपेन्द्रनाथ अश्क, इत्यादि ने अपनी नाटकीय प्रेरणा के सम्बन्ध मे स्वीकार किया है कि उन्हें जो प्रेरणा प्राप्त हुई है, उसका कारण प्राचीन सस्कृत या बगला साहित्य न होकर पश्चिम का विशेषत अंग्रेजी का एकाकी है।

नवीन हिन्दी एकाकी के निर्माण मे इब्सन, जार्ज बर्नार्ड शा, गाल्सवर्दी, जेम्स बैरी, जे एम सिंज, आरनाल्ड बैनेट इत्यादि आधुनिक पाश्चात्य नाट्यकारो का प्रत्यक्ष प्रभाव है। इन युगान्तरकारी नाट्यकारो के हाथ मे पाश्चात्य एकाकी ने विकास अवस्था पार कर ली है और परिपक्वता को पहुच गया है।

कुछ हिन्दी एकाकीकारो ने अंग्रेजी एकाकियो के अनुवादो से पाश्चात्य टैकनीक का अभ्यास किया है। स्कूल, कालिज तथा अमेचर क्लबो मे इनका अभिनय होता रहा है। विद्यार्थी तथा शिक्षित वर्ग के मनोरजन मे एकाकी आज एक महत्वपूर्ण साधन बन गया है। अंग्रेजी से अनुकरण की प्रवृत्ति इन एकाकियो मे मूल भावना है।

भारत मे रेडियो पर प्रसारण के लिए भी एकाकियो की माग बढ़ती गई है। रेडियो के लिए अंग्रेजी एकाकियो के अनुवाद किये गये। अंग्रेजी के व्यापक प्रचार एव शिक्षा के कारण जनता मे पाश्चात्य शैली के एकाकियो का पर्याप्त मान हुआ। श्री कामेश्वरनाथ भार्गव ने "विगम्प्स् केण्डिलस्टिक्स" का "पुजारी" (१९३८) नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया। हेराल्ड ब्रिगहाउस के "दी प्रिंस हू वाज पाइपर" तथा जे ए फर्गुसन के एकाकी, "कैम्पबेल आफ किलम्होर" के अनुवाद प्रकाशित हुए। ए ए मिलन की "दी मैन इन दी बौउलर हैट" (१९३९) का अनुवाद प्रो० अमरनाथ गुप्त ने किया। एच. ब्रिगहाउस एव जे ए फर्गुसन के एकाकियो के स्वतत्र अनुवाद श्री प्रेमनारायण टडन ने भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाकर किये। श्री अमृतराय

'हिन्दी एकाकी पर पाश्चात्य एकाकी का प्रभाव है।" प्रो० टी एन दोरगावकर, एम ए "२५ अगस्त" भूमिका।

"एकाकी पश्चिम के अनुकरण में हमारे यहा शुरू हुआ।" जैनेन्द्र कुमार

"हिन्दी साहित्य में एकाकी अभी हाल ही में लिखे जाने लगे हैं। अंग्रेजी के आने से पहले एकाकी न थे।" प्रो० अमरनाथ गुप्त एम ए "एकाकी नाटक" पृष्ठ ३८।

"सन् १९३० से अनेक नाट्यकारों ने पाश्चात्य नाटकों से ग्रहण करने योग्य सामग्री लेकर हिन्दी एकाकी क्षेत्र में उतरना प्रारम्भ कर दिया था। यह एकाकी नाटक और नाट्यकार अपनी विकास अवस्था में थे।" सत्येन्द्र शरत एम० ए०।

"एकाकी लिखने की जो स्फूर्ति हमें हाल ही में मिली है उसका कारण प्राचीन संस्कृत नाटक न होकर पश्चिम का एकाकी ही है। हिन्दी में ऐसा हुआ हो यह बात नहीं, उर्दू भी इस सिलसिले में पश्चिम का एहसानमन्द है। उर्दू में पहिले पहल अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद छपे और अब भी अधिकतर ऐसा ही होता है।" उपेन्द्रनाथ अश्क।

ने रूसी लेखक कोस्तातिव सियोनोफ के एकाकी "रूसी लोग", (हस १६४३) "चार चित्र", और "निशाने वाज" आदि एकाकी प्रस्तुत किये। श्री वृन्दावन लाल वर्मा ने आर्थर वेली के एक एकाकी का अनुवाद "प्रहसन प्रवेशिका" (१६२१) के रूप मे किया है। ओलीफेन्ट डाउन के "मेकर आफ ड्रीम्स" का रेडियो-रूपान्तर किया गया। जौन ड्रिकवाटर के "X=O ए नाइट आफ दी ट्रोजन वार" का अनुवाद श्री दुर्गादास भास्कर एम ए, एल एल बी ने "सरस्वती" मे "कलिंग युद्ध की एक रात" के नाम से प्रकाशित किया था। श्री भारतीय एम ए ने जापान के नौ नाटको की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया था।

१६०० से १६१५ तक हिन्दी एकाकी को अब तक नाटक की एक शैली के भेद की भाति ग्रहण किया जाता था। स्वतन्त्र प्रयोग चल रहे थे। इनमे पुराने और नये तत्व सम्मिश्रित थे। एकाकीकार अब तक जिस सामग्री से एकाकियो की रचना करता था, वह युग की कहानी रोचकता के समक्ष स्थिर नही कर पाती थी। एकाकी का जो आकर्षण था, वह स्कूल, कालिज तथा अमेचर क्लबो के लिए अभिनय की माग के ही कारण था। जब अभिनय की आवश्यकता प्रतीत होती थी, तो या तो कोई पुराना नाटक लेकर सक्षिप्त कर लिया जाता था, अथवा नया लिखवाया जाता था। ये रगमचीय एकाकी प्राय अप्रकाशित ही रहे। एकाकी की धारा यद्यपि मद गति से प्रवाहित हो रही थी, तथापि वह चल अवश्य रही थी। यह प्रयोगो का युग था। पाश्चात्य एकाकियो के स्कूल कालेजो मे अध्ययन एव विद्वानो द्वारा उनके अनुवाद एव अभिनय के कारण धीरे-धीरे हिन्दी एकाकी परिपुष्ट हो रहा था।

श्री सूर्यदेव नारायण श्रीवास्तव ने "करुण पुकार" की भूमिका मे समय की उस आवश्यकता की ओर निर्देश करते हुए लिखा है —

"स्कूलो मे वर्ष मे एक वार पारितोषिक वितरणोत्सव हुआ करता है। इस अवसर पर विल्कुल थोडे समय मे कुछ दृश्य दिखाये जाते हैं। लेकिन इस अवसर के लिए मौजूद चीज हमारे यहा कतई नही है। अत शिक्षको को वडी कठिनाई होती है और उनके लिए एक ही चारा वाकी रह जाता है। वे किसी नाटक के कुछ दृश्य काट छाट कर रख देते हैं, किन्तु यह अवकटा लगता है। इसलिए मुझे अपनी कलम की शरण लेनी पडी।"

हिन्दी मे कुछ अभिनय योग्य झाकियो के निर्माण का श्रेय इसी आवश्यकता के कारण हुआ है। सर्वश्री श्रीरामवाजपेयी, डा० रामकुमार वर्मा, प० मुरारीलाल शर्मा, लाला कुज विहारीलाल स्नेही, श्री कृष्णलाल वर्मा, सूर्यदेव नारायण श्रीवास्तव, डा० सत्येन्द्र आदि ने अनेक एकाकी विशेष उत्सवो पर अभिनय के लिए ही लिखे थे।

सन् १६२०–२२ के लगभग आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने पत्र-पत्रिकाओ मे ऐसे एकाकीनुमा रेखाचित्रो का निर्माण प्रारम्भ कर दिया था, जिनमे कथोपकथन मात्र हैं और सूचनाओ के द्वारा जीवन का कोई महत्वपूर्ण पहलू या मार्मिक घटना या

उद्दीप्त क्षण चित्रित किया गया है। इनमे प्रभाव की एकता, एकाग्रता और आकस्मिकता के गुण हैं। कहानी जैसा विस्तार होते हुए भी उनका विषय एक है। सहायक घटनाए नही हैं तथा कथावस्तु मे जटिलता नही है। सकलन-त्रय का निर्वाह नही हो सका है। चरित्र का विकास, भिन्न-भिन्न आतरिक एव बाह्य उतार-चढाव इनमे स्पष्ट हैं। कथोपकथनो द्वारा ही कथावस्तु का विस्तार एव चरित्र का विकास होता है। दृश्यो के स्थान पर केवल १, २, ३ नम्बर डाल दिये गये हैं। पात्रो का रगमंच पर आना स्पष्टत निर्दिष्ट है। पूर्व कथन मे परिस्थिति, काल और स्थान का विवेचन है। ये रेखाचित्र एकाकी के विकास मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। ऐसे ऐतिहासिक एकाकियो की सख्या १३ है —(१) लोहे का भय, (२) पतिव्रत धर्म, (३) क्षत्रिय पुत्री, (४) अस्मत पर हाथ, (५) दुर्गाधिकारिणी, (६) विधवा सिहनी, (७) भस्म राशि, (८) वीर वधू, (९) हलाहल से व्याह, (१) स्वयवरा वाला, (११) हाड़ा रानी, (१२) पन्ना धाय, (१३) रूठी रानी।

इनमे सबसे सफल रचना "हलाहल से व्याह" है। शास्त्रीजी ने आगे चलकर जो एकाकी लिखे वे अग्रेजी टैकनीक के अनुसार पूर्ण सफल थे, किंतु उनकी प्रारम्भिक कृतियो मे आधुनिक एकाकी के तत्व निहित है। हिन्दी एकाकी के विकास मे सन् १९३० एक महत्वपूर्ण वर्ष है।

इस काल मे अनेक एकाकीकारो ने पाश्चात्य एकाकी के अनुकरण पर अग्रेजी टैकनीक का अध्ययन कर एकाकी के क्षेत्र मे उतरना प्रारम्भ कर दिया था। अग्रेजी के नए आदर्शो के अनुकरण के अतिरिक्त इनमे से कुछ पर पुरानी सस्कृत परिपाटी, द्विजेन्द्रलाल राय के बगला नाटको, हिंदी में पारसी रगमच वाले तथा प्रसाद के भावात्मक नाटको का प्रभाव स्पष्ट हैं। समाज सुधार, धर्म, साहित्य के विविध वाद, राष्ट्रीयता तथा हिंदू-सस्कृति के प्रति ममत्व इत्यादि विषयो के प्रति एकाकीकारो की विशेष रुचि रही।

वहुत अशो मे सस्कृत की रूढियो से हिंदी मुक्त हो चुकी थी। प्रसाद की काव्य माधुरियो से हिंदी एकाकी मे सरसता का सचार तो हो गया था, किंतु वे शेक्स-पियर तथा द्विजेन्द्रलाल राय की अस्वाभाविकता और अमनोवैज्ञानिकता से मुक्त न हो सके थे। गत युग के हिंदी एकांकीकारो ने नेत्र मूद कर द्विजेन्द्रलाल राय का अनुकरण किया था। राय ने शेक्सपियर का अनुकरण अपने बंगला नाटको मे प्रस्तुत किया था। वही विदेशी अनुकरण देश की सभी भाषाओ विशेषत हिंदी साहित्य मे प्रसाद के नाटको पर छा गया था।

इस युग मे इब्सन द्वारा शेक्सपियर के विरुद्ध की गई प्रतिक्रिया धीरे-धीरे डा० रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क तथा उदयशकर भट्ट के एकाकियो मे उभरी। शा के प्रति हिंदी एकाकीकारो का आकर्षण तथा अपनी कृतियों मे उनका अनुकरण अभिवृद्धि पर था। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने वेल्जियम के

सुप्रसिद्ध नाट्यकार मौरिस मैटरलिंक के नाटको "मिस्टर वीट्स" और "यूजलैस डैलीवरेन्स" के अनुवाद कर हिंदी नाट्यकारो का ध्यान पाश्चात्य रगमच की ओर आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया था।

कुछ पत्र पत्रिकाओ विशेषत "सुधा" ने समस्यामूलक एकाकी "व्यग्य विनोद" शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित करना प्रारभ कर दिया था। ये एकाकी पढने की दृष्टि से लिखे गये थे, तथा तत्कालीन समस्याओ का हास्य व्यग्य मिश्रित भाषा मे विवेचन करते रहे। एकाकी मे पाश्चात्य शैली का सभ्य सस्कृत कथोपकथन आने लगा। भाषा दैनिक जीवन के प्रयोग मे आने वाली हो गई। स्वगत कम होने लगे। पाडित्यपूर्ण सलापो का विस्तार रहा। वातावरण कवित्व पूर्ण रहने के स्थान पर यथार्थवादी समयानुकूल हो गया। रगमच निर्देशको मे भी निर्देशन नैपुण्य दृष्टिगोचर हुआ। इन झाकियो मे हिन्दी एकाकी का महत्वपूर्ण विकास उपलब्ध है।

इस सधिकाल के एकाकीकारो मे श्री कृष्णलाल वर्मा, स्वामी कृष्णानन्द, प० तारानाथ, श्री कामताप्रसाद गुरु, सुदर्शन, रूपनारायण पाडेय, इत्यादि प्रमुख हैं। श्री कृष्णलाल वर्मा ने समय समय पर अभिनय की दृष्टि से कुछ सवाद लिखने प्रारभ किये थे, जो बाद मे सवाद सग्रह के नाम से प्रकाशित हुए। ये अभिनय की दृष्टि से विशेष सफल रहे। इनमे आदर्शवाद और सुरुचिपूर्ण मनोरजन का बाहुल्य है। मनोरजन के साथ-साथ नवयुवको मे स्वाभिमान जागृत करने के निमित्त इनका निर्माण हुआ। इन झाकियो मे यत्र-तत्र गानो का भी प्रयोग हुआ है। स्वामी कृष्णानन्द सोख्ता ने अछूतोद्धार के प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। रूपनारायण पाडेय ने बगला से रविन्द्रनाथ ठाकुर के १५ एकाकियो के अनुवाद प्रस्तुत किए।[1] श्री सुदर्शन का "प्रताप प्रतिज्ञा" (सरस्वती, जनवरी १९२२), प० तारानाथ का "दीन बधु" "भी प्रकाशित हुए थे। डा० सत्येन्द्र ने १९२१ से २२ मे चार पाँच दृश्यो का एकाकी लिखा जो बालचरो की बास और चादरो की बनाई स्टेज पर अभिनीत हुआ। उत्सव मे ३०-३५ मिनिट का उपदेशप्रद मनोरजन, बालचरो के उद्देश्य को प्रकट करने के लिए एक कथानक की कल्पना की गई और उसे चार पाच दृश्यो मे विभाजित कर दिया था। वैसे ही प्रेरणा मे लिखा हुआ "कुणाल" १९३७ मे प्रकाशित हुआ था।[2]

४ तीन वर्गों के एकांकीकार

इस विकास काल को तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम तो वे एकाकीकार हैं, जिन पर बगाली या अग्रेजी प्रभाव अब तक नही पडा था। इनके

---

१. पडित रूपनारायण पाडेय कृत "नाट्य कौतुक" रविन्द्रनाथ ठाकुर के बगला एकाकियों का हिन्दी अनुवाद (१९२८)।

२ देखिए डा० सत्येन्द्र "हिन्दी एकाकी आरम और विकास" पृ० ३१।

कथानक ऐतिहासिक हैं और इनमे टैकनीक का कोई नया प्रयत्न नही है । ये एकांकीकार बडे नाटक लिखते थे, उन्ही के अतर्गत छोटे नाटक जैसे एकाकी भी लिखने लगे थे । इस प्राचीन भारतीय पद्धति पर लिखने वाले एकाकीकारो मे सर्वश्री सूर्यदेव नारायण, जैनेन्द्रकुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, प० गोविन्द वल्लभ पन्त, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा, डा० सत्येन्द्र, प्रो० सद्‌गुरुशरण अवस्थी आदि आते है ।

दूसरे वर्ग मे वे एकाकीकार आते हैं, जिन्होने टैकनीक, विचार तथा समस्याएं सब कुछ पाश्चात्य एकाकियो या समाज से ग्रहण की हैं। इनका जीवन-दर्शन पाश्चात्य मापदडो से इतना प्रभावित है कि वे हर एक प्रकार से पाश्चात्यमय हो उठे हैं। इस वर्ग के प्रतिनिधि एकाकीकार हैं श्री भुवनेश्वर प्रसाद, प्रो० धर्मप्रकाश आनन्द इत्यादि ।

तृतीय वर्ग मे वे एकाकीकार आते हैं जिन्होंने पाश्चात्य टैकनीक को भली भाति पचाया और भारतीय समस्याओ को नये ढाचे मे उपस्थित किया । इनके एकाकियो की पृष्ठ-भूमि पश्चात्य होते हुए भी उसमे विचार-दर्शन, तर्क और बुद्धिवाद मौलिक है । इनकी शैली पर पाश्चात्य प्रभाव है पर उसे अपनी मौलिक कथावस्तु के लिए पोशाक की भाति काम मे लिया ।[1] इस वर्ग मे सर्वश्री डा० रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास, उदयशकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि रखे जाते हैं ।

५ पाश्चात्य प्रणाली के एकांकियो का विकास

अग्रेजी के सम्पर्क तथा पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के नियमो का अनुसरण करने से हिन्दी एकाकी की टैकनीक मे भारी परिवर्तन हुआ । पाश्चात्य देशो मे हलचल, व्यस्तता, जीवन की तीव्रता और अवकाश की न्यूनता के कारण एकाकीकारो ने समाज को आलोचनात्मक नेत्रो से देखा । साहित्य के सक्षिप्त रूपो कहानी, खडकाव्य, एकाकियो, रेखा-चित्रो की माग में अभिवृद्धि हुई । स्कूल, कालेजो तथा विश्वविद्यालयो मे अभिनय के योग्य एकाकियोकी खोज मची । विशेष अवसरो के लिए एकाकी लिखाये गये । पत्र-पत्रिकाओ मे एकाकियो को रखने की प्रणाली चल गई और पाठको की रुचि का ध्यान रखते हुए एकाकी प्रकाशित होने लगे । नए माध्यम के प्रति स्वभावत जनता के हृदय मे रुचि रहती है । फिर एकाकी पढने तथा अभिनय दोनो ही दृष्टियो से समाज का मनोरजन करने तथा समस्याओ को उभारने मे सफल हुआ । शीघ्र ही वह जनता का लोकप्रिय माध्यम बन गया ।

६. डा० रामकुमार वर्मा के युगान्तरकारी प्रयोग

पाश्चात्य एकांकी कला से प्रभावित प्रथम प्रभाव डा० रामकुमार वर्मा के

१. देखिए "हिन्दी एकांकी" पृ० ३२ ।

एकाकियो मे मुखरित हुआ है। आपका नये ढग का एकाकी "बादल की मृत्यु" सन् १९३० मे प्रकाशित हुआ था। कला की दृष्टि से यद्यपि यह सफल एकाकी नही था पर प्रयोग की दृष्टि से एकाकी के इतिहास मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यह मैटरलिक की शैली पर पाश्चात्य ढग का एक रूपक है। यह अभिनय के लिए नही है, जीवन के स्वार्थ की एक झाकी है। इसमे केवल कल्पना है, उसके चित्रण मे नाटककार और कवि मे समझौता हुआ है। कुछ आलोचको ने इसे "अभिनयात्मक गद्य-काव्य"[1] कहा है। यह धारणा कवि रामकुमार वर्मा के काव्य से प्रभावित आलोचको की है और बहुत अशो मे ठीक भी है। इस नाटक मे काव्य का अश अभिनय की अपेक्षा अधिक है। सध्या, बादल, हवा का मनुष्यो की तरह बोलना मैटरलिक से प्रभावित है। हिन्दी मे रगमच का अभाव सा है तथा उसकी विकसित करने मे बहुत सी बाधाए हैं। इन्ही बाधाओ के कारण वर्मा जी के "बादल की मृत्यु" मे अभिनय-तत्व दबा हुआ है।दुर्भाग्य से रगमच हिन्दी से साहित्यिक सस्था के रूप मे प्रतिफलित नही हो सका। वर्मा जी के इस नाटक मे अभिनेयता की कमी के यही कारण हो सकते हैं। अन्य विकसित नाटको मे वर्मा जी ने अभिनयात्मक तत्व की प्रधानता रखी है।

डा० रामकुमार वर्मा आधुनिक एकाकी के पथ-प्रदर्शक माने जा सकते हैं या नही? इस प्रश्न पर दो विभिन्न मत प्राप्त है। प्रथम स्कूल उन आलोचको का है जो डा० वर्मा को एकाकी के क्षेत्र मे पथप्रदर्शक मानते हैं। इसमे डा० सत्येन्द्र, रामनाथ सुमन, सत्यप्रसाद, थपलियाल एम ए, देवचन्द्र नारग, प्रो० अमरनाथ, दुलारेलाल भार्गव तथा सत्येन्द्र शरत् हैं।[2]

---

१ देखिए प्रकाशचन्द्र गुप्त, "हस" का एकाकी नाटक अक, पृष्ठ ७२५।

२ इन आलोचकों की सम्मतिया इस प्रकार हैं —

(१) "श्री रामकुमार वर्मा हिन्दी में एकाकी नाटक के जन्मदाताओं में हैं। उनका पहला एकांकी नाटक "बादल" है, जो सन् १९३० में लिखा गया था। "श्री रामनाथ सुमन", "चारुमित्रा" पृष्ठ ८।

(२) "एकाकी नाटकों के टैकनीक की पूर्ण कल्पना इस सग्रह "पृथ्वीराज की आखें" के एकाकियों में हो गई है। यदि कोई भी व्यक्ति एकाकियों का पथ-प्रदर्शक माना जा सकता है, तो उसमें वर्मा जी का ही नाम लिया जायेगा। "कारवा" के लेखक भुवनेश्वर प्रसाद पर शा का बहुत प्रभाव है। स्वय नाट्यकार ने माना है कि उनका शैतान बर्नार्ड शा का ऋणी है। अत "कारवा" (१९३५) के लेखक को इतनी उधार सामग्री के साथ एकांकी के क्षेत्र में पथप्रदर्शक मानना समुचित हो सकता है क्या? डा० रामकुमार वर्मा विचार और चरित्र की उद्भावना में मौलिक हैं। टैकनीक को भी उन्होंने सुस्थिर रूप दिया है, यह मानना होगा।" डा० सत्येन्द्र, "हिन्दी एकाकी", पृ० ४९।

(३) "हिन्दी साहित्य में एकाकी लिखने वाले सर्वप्रथम लेखक आप ही हैं। उन्होंने आधुनिक ढग के एकाकी लिखने की नींव पथप्रदर्शन के रूप में डाली।" प्रो० अमरनाथ गुप्त एम ए,

(क्रमशः)

दूसरा स्कूल उन आलोचको का है और उसमे श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त प्रमुख है। ये वर्मा जी की प्रतिभा और प्रखरता तो स्वीकार करते हैं, किन्तु उन्हे पथ-प्रदर्शक के रूप मे नही मानते। 'हस" के एकाकी नाटक अक मे प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त ने "एकाकी नाटक" शीर्षक एक निबन्ध मे निर्देश किया है —

"वर्मा जी को पथ-प्रदर्शक के रूप मे हम नही देख सके ···एकाकी नाटक को अथवा हिन्दी साहित्य को यहा कोई नया पथ नही सुझाया गया। सरल भाषा और भावुकता जो इनके नाटको के प्रधान गुण हैं, वर्मा जी की निजी सम्पत्ति हैं। टैकनीक इत्यादि मे वर्मा जी ने कुछ नया अन्वेषण नही किया।"[1]

हम उपर्युक्त मत से सहमत नही हैं। १९३० मे हिन्दी एकाकी नाटक के क्षेत्र मे कोई ऐसा बडा एकाकीकार नहीं था, जिसने गम्भीरता से पाश्चात्य टैकनीक का अध्ययन कर नये ढग के एकाकियो की सृष्टि की हो। प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त ने या तो भुवनेश्वर के "कारवा" का उल्लेख किया है, या पृथ्वीनाथ शर्मा के "दुविधा" या सज्जाद जहीर के कुछ राजनीतिक एकाकियो का, जो इसी काल मे प्रकाशित हुए थे।

वास्तव मे यह मत मान्य नही है। भुवनेश्वर प्रसाद का रचना काल १९३३ है। फिर उन पर पाश्चात्य प्रभाव इतना स्पष्ट है कि उनका एकाकी साहित्य बिल्कुल अनुवाद और पाश्चात्य नाटको का अनुकरण सा प्रतीत होता है। भुवनेश्वर के नाटक पढकर हमे अनायास ही शा की "कैन्डिडा" और इब्सन के "पिलर्स ऑफ सोसाइटी" का स्मरण हो आता है। पृथ्वीनाथ शर्मा का "दुविधा" तीन अको का बडा नाटक है। इसमे एकाकी के कुछ तत्व अवश्य हैं, किन्तु यह एकाकी की परिधि मे नही आ सकता।

डा० रामकुमार वर्मा ने जब अपना कार्य प्रारम्भ किया था तो हिन्दी एकाकी प्राचीन प्रचलित सस्कृत बगला प्रणाली पर चल रहा था। प्रसाद का "एक घूट" सस्कृत, बगाली और अग्रेजी तीनो की परम्परा का प्रतीक था। प्राचीन परम्परा में

"एकाकी नाटक" पृ० ९३।

"प्रसाद के, "एक घूट" के उपरान्त श्री रामकुमार वर्मा के "बादल की मृत्यु' का नाम आता है।" डा० सत्येन्द्र।

प्रसाद के पश्चात् हिन्दी एकाकी श्री रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, गणेशप्रसाद द्विवेदी, उदयशकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास का सहयोग मिला और इनमें से हम श्री रामकुमार वर्मा को युग-प्रवर्तक एकाकीकार कह सकते हैं इनके एकाकी "परीक्षा" की तुलना हम अग्रेजी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ एकाकी से कर सकते हैं, और इनके एकाकी 'शिवाजी' का जोड़ तो हमें बगला के सर्वश्रेष्ठ एकाकीकार मन्मथराय की रचनाओं में भी नहीं मिलता। उनमें नाटकीय परिस्थिति और कौतूहल उत्पन्न करने की असाधारण क्षमता है।"—प्रो० चन्द्र किशोर जैन

१ देखिए प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त, "एकाकी नाटक", हस, मई १९३८, पृ० ७२३।

वर्णित अक का वह आधुनिक रूपान्तर मात्र था। उसमे अक तो एक ही है, किन्तु समस्या का केन्द्रीयकरण नही है। रसोद्रेक के लिए सगीत की व्यवस्था, प्राचीन कालीन विदूषक, लम्बे स्वगत कथन कथानक मे तर्क का विस्तार उसे आधुनिक पाश्चात्य ढग की एकाकी कला से दूर तक हटा हुआ रखते हैं। डा० रामकुमारवर्मा ने सर्वप्रथम पाश्चात्य ढग के प्रयोग प्रारभ किये थे।

जिस टैकनीक और समस्याओ को लेकर वर्मा जी ने अपने एकाकी लिखे वे सर्वथा अभूतपूर्व और मौलिक थे। एक लम्बे दृश्य मे सम्पूर्ण घटनाओ को घनीभूत कर पात्रो का चरित्र-चित्रण करना, कौतूहल तथा जिज्ञासा का अन्त तक खिचाव, चरम सीमा का क्रमिक विकास, परिष्कृत रगसूचनाओ के प्रयोग, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि की पद्धति मे वर्मा जी हिन्दी एकाकी के क्षेत्र मे पथ-प्रदर्शक बने हैं।

प्रसाद ने "एक घूट" की रचना मे भारतीय नाट्यशास्त्र की पद्धति का ही अनुसरण किया है। अपने नाटक मे उन्होंने आधुनिक पाश्चात्य ढग के एकाकी के प्रयोगो पर ध्यान नही दिया है। जिस अर्थ मे आधुनिक एकाकी का प्रयोग हुआ वह हिन्दी मे सर्वप्रथम डा० वर्मा द्वारा ही सम्पन्न हुआ है। प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त का मत, जिसमे उन्होने वर्मा जी के पथ-प्रदर्शन को अस्वीकार किया है, सभवत इसलिए हो कि डा० वर्मा ने गुप्त जी द्वारा मान्य प्रगतिशील शैली मे योग नही दिया है।

डा० रामकुमार वर्मा मे चरित्र-चित्रण, समस्या, विवेचन तथा नाटकीय परिस्थिति की सूझ की मौलिकता है। टैकनीक को उन्होंने सुस्थिर रूप प्रदान किया है। पाश्चात्य प्रभाव उन पर यथेष्ट पडा है, किन्तु उन्होने उसे पचा कर अपनी प्रतिभा से मौलिक और भारतीय बना दिया है। उन्होने हमारी सस्कृति और समाज का सजीव चित्रण किया है और भारतीयता को नही भुला सके हैं। उन्होने भारतीय स्त्री-पुरुषो के साथ-साथ उनके सस्कार भी रखे हैं। इब्सन और शा का अनुकरण उन्होंने उसी सीमा तक किया है, जहा तक उन्हें स्वाभाविकता, यथार्थवाद और मनोवैज्ञानिकता को चित्रित करने वाली शैली की आवश्यकता थी। इससे अधिक नही। उनकी व्यजना इतनी स्पष्ट रही कि वह कौतूहल के साथ-साथ स्वाभाविकता और जीवन की सचाई की ओर सकेत कर सकी है। उनके नाटको मे वर्णनात्मकता की अपेक्षा अभिनयात्मकता की प्रधानता रही है। उन्होंने एकाकी की टैकनीक को जिस गहराई से समझा और जिस पूर्णता से वे एकाकी के सारे लक्षणों के मध्य होते हुए अन्त में क्लाइमैक्स के साथ हमारे सामने उपस्थित हुए, उसे देखकर चकित रह जाना पडता है।

६ अन्य प्रयोगवादी एकांकीकार

पाश्चात्य शैली का अनुसरण करते हुए जो अन्य एकाकीकार इस ओर अग्रसर हुए हैं, उनमे सर्वश्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, भुवनेश्वरप्रसाद, उपेन्द्रनाथ

अश्क, उदयशकर भट्ट तथा सेठ गोविन्ददास हैं। नए एकाकी की कला के विकास और प्रयोग मे इन एकाकीकारो का महत्वपूर्ण योग है।

प्रसाद की शेक्सपियर का अनुकरण करने की पद्धति, भावावेग तथा असम्भावनाओ के विरुद्ध क्रान्ति का पग श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने रखा। मिश्रजी को प्रसाद के नाटको की कृत्रिमता, काल्पनिकता और असभावनाए अस्वाभाविक प्रतीत हुई। अपने एकाकियो मे उन्होंने पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक ढग की स्वाभाविक यथार्थवादी शैली ग्रहण की तथा भाषा और भाव की यथार्थ अनुभूति का मार्ग खोल दिया। यह मार्ग हिन्दी नाटक के भविष्य के लिए हितकर हुआ। मिश्रजी का "सन्यासी" डा० रामकुमार वर्मा के "बादल की मृत्यु" की अपेक्षा पुष्ट एव रोचक रचना है। यथार्थवाद की पद्धति पर मिश्रजी ने "मुक्ति का रहस्य" तथा "राक्षस का मन्दिर" (१९३०) लिखे थे। आपका "अशोक" प्रसाद के "चन्द्रगुप्त" से कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका था। "अशोक" को छोडकर आपके शेष नाटक प्रसाद की प्रतिक्रिया मे लिखे गए हैं।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्या एकाकी का विकास किया है। आपके एकाकियो मे न तो अनेक पात्र हैं, न गाने, कविता या अनावश्यक दृश्य परिवर्तन। पट विस्तार भी इतना नही कि उनमे विभिन्न देश, काल, व्यवस्थाओ तथा घटनाओ की भरती हो। स्वाभाविक जीवन के अनुरूप परिस्थितिया निर्माण करने तथा पात्रो के कार्य व्यापार को सुसगत और सुनियन्त्रित करने मे आपको सर्वाधिक सफलता मिली है। इनमे रगमच पर अभिनय सम्बन्धी सुगमता का भी विशेष ध्यान रखा गया है। नाटक का समय थोडा है, घटनास्थल भी एक ही है। प्रत्येक पात्र का निजी व्यक्तित्व है और क्रमिक विकास की ओर भी नाट्यकार प्रयत्नशील है।

मिश्रजी का सस्कृत नाट्यसाहित्य का अध्ययन गहन है। उनके विषय मे यह धारणा कि उन्होंने पाश्चात्य नाट्यकारो का अनुकरण किया है असत्य है।[1] उनकी मूल प्रेरणा सस्कृत के प्राचीन नाटक हैं, जिनमे मानव के स्वभाव का स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण है। योरोप के एकाकियो मे जिस यथार्थ और मनोवैज्ञानिक चित्रण का काल इब्सन से प्रारम्भ होता है, यूनानी और शेक्सपियर की शैली के अतिरजित नाटको के विरुद्ध जब प्रतिक्रिया की लहर चलती है, मनोविज्ञान को आधार बनाया जाता है और इस युग के सभी नाटककार, शा इत्यादि, जिसकी उपज हैं, उस यथार्थवाद को मिश्र जी ने सस्कृत नाटको से ग्रहण किया है। यह उनकी कला तथा प्रतिभा की मौलिकता का प्रभाव है कि उनके नाटक पाश्चात्य यथार्थवाद के इतने निकट आ गए हैं।

---

१. डा० नगेन्द्र लिखते हैं, "मिश्र जी पर विदेशी साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रभाव कुछ अधिक पड़ा है।" आधुनिक हिन्दी नाटक, पृष्ठ ५६।

तीनो इकाइयो का इतना सफल निर्वाह पाश्चात्य एकाकीकार भी नही कर सके हैं। कही-कही तो रगमच का घटनाकाल जीवन के घटनाकाल के ठीक बराबर चलता है जैसे "मुक्ति का रहस्य" मे। आपका "राजयोग" पाच बजे संध्या से प्रारम्भ होता है तथा ८ बजे समाप्त हो जाता है। यही समय रगमच के अभिनय का भी है। आपके चरित्र-चित्रण मे मनोवैज्ञानिक सचाई के साथ सहानुभूति भी है।

श्री भुवनेश्वर प्रसाद ने एकाकी को बल से ग्रहण किया। वे सफल टैकनीशियन हैं। जीवन मे आकस्मिकता को महत्व देते हैं और स्थान-स्थान पर नाटकीय प्रयोग करते हैं। इनके एकाकियो मे पूर्व पीठिका बिल्कुल नही है। वे काफी सतर्क होकर वातावरण का अकन करते हैं। भुवनेश्वर के "श्यामा एक वैवाहिक विडम्बना" (एक दुखान्त नाटिका) तथा "प्रतिमा का विवाह" (हस १९३३) पतित (हस, फरवरी १९३४), "एक साम्यहीन साम्यवादी" (हस, मार्च १९३३) "एक विषाक्त घटना" (हस, सितम्बर १९३५) "मृत्यु" (हस, सितम्बर १९३६) प्रकाशित हुए हैं। आपकी प्रारम्भिक कृतियो पर पाश्चात्य विचारधारा और टैकनीक की गहरी छाप है। रूढिग्रस्त समाज के प्रति इन एकाकियो मे गहरा असतोष है। अवसाद और उद्विग्नता की जो अन्तर्ध्वनि यहा सुन पडती है वह नष्ट होते हुए समाज मे स्वाभाविक है। आपकी शैली तथा कथावस्तु पर पाश्चात्य जीवन दर्शन और एकाकीकारो मे शा का विशेष प्रभाव है। शा की व्यग्य वक्रोक्तियो ने इन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया है।[1] इनके एकाकी अति आधुनिक प्रयोग हैं। भुवनेश्वर ने प्रेम, हिन्दू-विवाह, साम्यवाद, समाज तथा स्त्री मनोविज्ञान को पाश्चात्य ढग से प्रस्तुत किया है।

सेठ गोविन्ददास के प्रयोगात्मक एकाकी "स्पर्द्धा", (सरस्वती, १९३६) तथा "सिद्धान्त स्वातत्र्य" (हस, जून १९३६) इसी सधिकाल की रचनाए हैं। "स्पर्द्धा" का सम्बन्ध समाज मे स्त्री-पुरुष की स्पर्द्धा से है। 'स्पर्द्धा' का प्रथम दृश्य सस्कृत नाट्यशास्त्र के विष्कम्भक की भाति है। क्लब जीवन तथा सभा को एक ही बनाकर एक स्थल पर एक ही क्रम से उपस्थित कर दिया गया है। इसमे क्लाइमेक्स का अभाव खटकता है। वाक्-वैदग्ध्यता नही आई है और नाट्यकार बुद्धिवाद के घेरे मे फस कर रह गया है। सेठ जी के अगले एकाकियो मे परिपक्वता एव प्रौढता आई है, जैसे, "धोखेबाज, कगाल नही, वह मरा क्यो (प्रहसन,) अधिकार लिप्सा, मानव मन, मैत्री" इत्यादि। आपने समाज और राजनीति के क्षेत्र मे गहन अर्न्तदृष्टि दिखाई है और उपक्रम एव उपसहार के नवीन प्रयोग किये हैं।

प० उदयशकर भट्ट का रचनाक्रम १९३४-३५ है। यद्यपि इससे पूर्व ही आपने एकाकी सृजन प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु आपके एकाकी कुछ बाद मे प्रकाशित हुए हैं। प्रथम एकाकी "दुर्गा", (सरस्वती १९३४) मे प्रकाशित हुआ। इस

१ देखिए डा० नगेन्द्र, "आधुनिक हिन्दी नाटक", पृष्ठ १३९।

एकांकी का आधार सामाजिक नैतिक था जिसमे सामन्त युग की विकृतियो को उभारा गया था। "एक ही कब्र मे" (हस, दिसम्बर १९३६) पर मुसलिम लीग का सिद्धान्त, सघर्ष तथा गाधीवाद का प्रभाव था। सन् १९४० तक भट्ट जी के "नेता, उन्नीस सौ पैंतीस, वर निर्वाचन, सेठ लाभचन्द" इत्यादि एकाकी प्रकाशित हो चुके थे। तत्पश्चात् क्रमश "स्त्री का हृदय (१९४२), समस्या का अन्त, आदिम युग, धूम शिखा तथा उनके छ भावनाट्य प्रकाशित हुए। नए ढग के दो एकाकी "जीवन" और "जवान" (प्रतीक रूपक) लिख कर आपने नये आदर्श प्रस्तुत किए हैं।

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का हास्यव्यग्यमय नाटक "झगड़ूमल" १९३१ के आस-पास लिखा गया था। अश्क आपने एकाकी उर्दू मे लिख रहे थे। १९३७ मे "पापी वेश्या, लक्ष्मी का स्वागत, और अधिकार का रक्षक इत्यादि पाश्चात्य शैली से प्रभावित एकाकी हिन्दी मे प्रकाशित हुए। इन रचनाओ पर जे० ए० फर्गुसन के कैम्पबेल आफ क्लिमूर तथा लार्ड डनसनी के "नाइन एट अन इन" की टैकनीक का प्रभाव था। वातावरण सृष्टि तथा स्थानीयता की दिशा मे आप विशेष रूप से आगे बढ रहे थे।

कुछ अन्य एकाकीकारों ने भी छोटे-छोटे प्रयोग आरभ किए। श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी के कुछ समस्या-एकाकी मनोवैज्ञानिकता के गुण लेकर लिखे गये। इनमे मानव के विक्षुब्ध मन का अच्छा चित्रण हुआ। किन्तु इनमे पूर्व निर्देशित एकाकीकारो के समान कथानको मे चुस्ती और सजीवता न आ सकी। कथा जहा से प्रारभ होकर जहा समाप्त होती है, एक दीर्घ समय को अपने अन्दर समेट लेती है। कई दृश्य स्वय अक से प्रतीत होते हैं। कुछ दृश्य प्राचीन परिपाटी के विष्कम्भक जैसे लगते हैं। नाटकीय व्यापार मे कोई विशेष गति नही है। नाट्यकार सरलता से वातावरण उपस्थित करता हुआ जैसे उद्योगपूर्वक चरमोत्कर्ष की ओर ले जा रहा है। द्विवेदी जी के छ नाटक, १ सोहाग बिन्दी २ वह फिर आई थी, ३. परदे का अपर पार्श्व, ४. शर्मा जी, ५ दूसरा उपाय ही क्या था, ६ सर्वस्व समर्पण इस प्रयोगकालीन युग मे लिखे गये थे। हिन्दी मे मौलिक एकाकियो का नितान्त अभाव देखकर आधुनिक नये टैकनीक के प्रयोगो के रूप मे इनका निर्माण हुआ था। हिन्दी एकाकी को दिशा बोध कराने, इस दिशा मे कुछ नवीन खोज करने, मौलिक एकाकियो के निर्माण की भावना से प्रेरित होकर इन एकाकियो को लिखना नाट्यकार ने अपना कर्त्तव्य समझा।

श्री भगवतीचरण वर्मा ने तीन एकाकी लिखे, १. सबसे बडा आदमी (१९३७), २ मैं और केवल मैं (१९३८) और ३ दो कलाकार। आवेगमय वातावरण चित्रित करने तथा वर्तमान सघर्षमय जीवन की अभिव्यजना मे आपको विशेष सफलता प्राप्त हुई। आपका "तारा" नामक एकाकी अतुकान्त छन्द मे लिखा गया है, तथा इस ढग की रचनाओ के आप पथप्रदर्शक हैं। "सबसे बडा आदमी" 'ड्रामेटिक सस्पेन्स' का सफल उदाहरण है। "दो कलाकार" सुनस्कृत प्रहसन है। वर्मा

जी की सफलता यह है कि अभिनय की दृष्टि से इनके एकाकी पूर्ण सफल रहे। घटना का विकास क्रम से हुआ, कार्य व्यापार की अधिकता रही और घटना वैचित्र्य का निदर्शन हुआ।

इन एकाकीकारो के अतिरिक्त जनार्दनराय नागर का "इन्द्र धनुष" (हस, अप्रैल १९३६) सज्जाद जहीर का "बीमार" (हस, नवम्बर १९३६), हरदयालसिंह मौजी का "दादा" कहानीनुमा एकाकी हैं, जिसमे कार्यकलाप की न्यूनता और बौद्धिक तत्व का आधिक्य है। प्रेमचन्द का एकाकी "जादू" भी इस श्रेणी के अन्तर्गत आता है।

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा का "दुविधा" १९३७ की रचना है। इसके विषय मे आलोचको के दो मत हैं। एक स्कूल, जिसके प्रवर्तक प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त हैं, की राय है कि इसे एकाकी मान लेना चाहिये, क्योकि इसमे जीवन के एक पहलू का ही चित्रण है, केवल तीन अको मे कथानक का विस्तार मात्र हो गया है। अक दृश्यो के रूप मे लिए गये हैं। प्रारम्भ से अन्त तक इसमे सुनिश्चित सुकल्पित लक्ष्य एक ही बडी घटना, परिस्थिति अथवा समस्या का विवेचन है उसी की ओर वेग-सम्पन्न प्रवाह है। केवल उसमे सक्षिप्तता का अभाव है। लम्बा होते हुए भी इसे एकाकी की श्रेणी मे रखना उचित है।[1]

दूसरे स्कूल को आलोचको, जिसके प्रवर्त्तक प्रो० सत्येन्द्र है, का विचार है कि "दुविधा" को भूल से एकाकी मान लिया गया है। यह एक छोटा नाटक है। वास्तव मे "दुविधा" तीन छोटे-छोटे अको का नाटक है पर तत्वत ये तीनो दृश्य मात्र है। "दुविधा" का महत्व यह है कि इसमे नाट्यकार ने प्रथम बार पुरानी पाच अको वाली परिपाटी को तोडकर तीन अको वाली पाश्चात्य टैकनीक अपनाई है।[2] बडे नाटको की अपेक्षा उसमे विस्तार कम है। इसे हम एक लम्बा एकाकी मान सकते हैं। यह पाश्चात्य टैकनीक का अनुगत है।

इस प्रकार कुछ एकाकी इस काल मे और एकाकीकारो ने भी लिखे थे। जैसे डा० सत्येद्र का लम्बा उतने ही पृष्ठो का दस दृश्यो वाला एकाकी "कुणाल" इस श्रेणी मे रख सकते हैं। "कुणाल" को डा० सत्येद्र ने स्वय दस दृश्यो का होते हुए

---

१ "श्री पृथ्वीनाथ शर्मा का एकाकी नाटक "दुविधा," पाश्चात्य टैकनीक का अनुगत है।" प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त, "हस एकाकी अक", पृष्ठ ७२५।

२ इस सम्बन्ध में शर्मा जी का मत इस प्रकार है

"सन् १९३७ में 'दुविधा' हिन्दी भवन, लाहोर द्वारा प्रकाशित हुआ था। जिस समय मैंने 'दुविधा' लिखा था, उस काल में इस ढग का कोई नाटक मेरी दृष्टि से नहीं गुजरा था। कहानी लिखते-लिखने मैं ऊब गया था। तब मैंने पाश्चात्य नाटक टैकनीक का अध्ययन किया। और 'दुविधा' के लिए लेखनी उठाई। टैकनीक की पुस्तकें मैंने सीधे अमेरिका से मगाई थीं, क्योंकि मेरा विचार है कि टैकनीक की दृष्टि मे अमेरिकन नाटक सर्वोपरि हैं। मैं एकाकी और तीन अकों के नाटकों में केवल विस्तार का ही अन्तर समझता हू। जैसा एकाकी में केन्द्रीय-भाव होता है, वैसे ही इन नाटकों में रहा है।" (पत्र ता० २० ८ ५०)

भी एकाकी नाम दिया है। वह उनकी एकाकी टैकनीक मे विकास की एक सीढी है। इसी प्रकार डा० सत्येन्द्र का १९२१-२२ में ४-५ दृश्यो का एकाकी है, जो कई बार मथुरा मे अभिनीत हुआ। उस समय वे एकाकी का नाम भी न जानते थे। उत्सव मे तीस-पैंतीस मिनट का उपदेशप्रद मनोरजन वालचरो के उद्देश्य को प्रकट करने के लिए एक कथानक की छोटी कल्पना कर ली गई थी और उसे मोटे रूप से चार-पाच दृश्यो मे विभाजित कर दिया था। इस काल मे दृश्यो के सम्वन्व मे कुछ नाट्यकारो ने अधिक विवेक नही किया। डा० सत्येन्द्र का 'कुणाल" तथा पृथ्वीनाथ शर्मा का 'दुविधा' ऐसे ही एकाकी हैं।

"दुविधा" विचार और टैकनीक दोनो ही दृश्यो से पाश्चात्य शैली का अनुगत है। इसमे पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त इग्लैंड से लौटी हुई एक कुमारी के पति निर्वाचन सम्वन्धी दुविधा का चित्र खीचा गया है। प्रत्येक पात्र का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढग से हुआ है। टैकनीक की दृष्टि से यह एकाकी पाश्चात्य ढग का है। इसमे वही किफायतशारी, वही मार्मिकता, सक्षिप्त स्वाभाविक कथोपकथन, तथा वही लम्बी रगमचीय सूचनाए हैं। स्थान परिचय मे शर्माजी स्थूल और सूक्ष्म रहे हैं। सवाद चुस्त हैं। स्वगत का प्रयोग केवल दो स्थानो मे हुआ है, भाषा सरल है। आधुनिक एकाकी के सबसे बडे गुण सकलन-त्रय का इसमे पूर्ण निर्वाह हुआ है, यह जीवन के अधिक समीप है। पत्र पत्रिकाओ ने इस नाटक को नई दिशा का सूचक समझा और इसकी विशेषताओ का उल्लेख हुआ है।[1]

इसी प्रकार का एक और लम्बा एकाकी शर्माजी ने "अपराधी" लिखा। यह रगमच के लिए विशेष उपयुक्त है। न विशुद्ध साहित्यिक है, न पारसी शैली की ड्रामा कम्पनियो के लिए लिखा गया है। आधुनिक एकाकी नाटक के प्राय सभी गुण अविकसित दशा मे इसमे प्रस्तुत हैं।

८. एकांकी क्या और क्यों ?

हस (मई १९३८) के एकाकी विशेषाक का हिन्दी एकाकी साहित्य के इतिहास मे विशेष स्थान है। इस अंक द्वारा साहित्यकारो का ध्यान एकाकियो की प्रगति तथा तत्व-विवेचन की ओर आकृष्ट किया गया। कुछ आलोचको द्वारा एकाकी के विषय मे अनेक आपत्तिया उठाई गई और अन्य साहित्यकारो द्वारा उन भ्रान्तियो का निवारण किया गया।[2] इस वर्ष तक कई स्थायी कला-कृतिया, जैसे डा०

---

१. "दुविधा" छोटा सा नाटक है, जिसमें ६७ पृष्ठ हैं, नवीन शैली में लिखा हुआ है। नाटक लिखने में शर्मा जी पूर्ण सफल हुए हैं। इसमें पाश्चात्य शिक्षा पर गम्भीर व्यग्य है।"

डा० सत्येन्द्र, "साहित्य सन्देश" भाग १, अक ५, सन् १९३७।

२. देखिए, प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त का "एकाकी नाटक" पृष्ठ ७७१ और श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का पत्र 'क्या एकाकी नाटक का साहित्य में स्थान भी है ?" पृष्ठ ८०१, ८०३ तथा श्रीपतराय कृत "इन्वार्ता" पृष्ठ ८०४–८०६।

रामकुमार वर्मा की "पृथ्वीराज की आँखें" (१९३७) भुवनेश्वर का "कारवां" (१९३५) डा० सत्येन्द्र का "कुणाल" (१९३७) रविन्द्रनाथ ठाकुर के एकाकियो के कुछ अनुवाद, जैसे "मुक्तधारा" प्रकाश में आ चुकी थी, तथापि गभीरता से एकाकियों पर विचार होना १९३८ के 'हस' एकाकी अक से ही हुआ है।

"इस काल में एकाकी लिखने मे दृष्टिकोण का अतर हो गया था। प्रारम्भिक, अवस्था के एकाकीकारो मे एकाकी नाटक लिखने का सकल्प न था। वे नाटक लिखना चाहते थे। उनकी छोटी कथा हुई तो वह एकाकी बन गया। अब तक हिन्दी मे एकाकी का कोई अलग स्थान नही बन पाया। इस उत्थान मे एकाकी सम्बन्धी एक चैतन्य जागृत हो उठा था। इस परिवर्तन की ओर व्यक्तियो और विद्वानो का लक्ष्य था।

"हस" के एकाकी-नाटक विशेपाक (१९३८) से एकाकी विपयक एक विवाद उठा था। अध्ययन की दृष्टि से हम इसे दो वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार के समान प्रथम वर्ग के आलोचको के मत का साराश यह था कि "एकाकी नाटक की कोई निश्चित और निजी टैकनीक न तो अभी बन पाई है और न बन सकती है। इसमे पात्रो के व्यक्तित्व का चित्रण अथवा विकास भी नही किया जा सकता। एकाकी का ध्येय सिर्फ मनोरजक अथवा अर्थपूर्ण वार्त्तालाप है। एकाकी लिखना बहुत आसान है। यह कहानी का रगमच पर खेला जाने वाला सस्करण मात्र है। इसमे कलाइमेक्स का होना आवश्यक नहीं। अत एकाकी का साहित्य मे कोई स्थान नही है।"[1]

दूसरे वर्ग में हम जैनेन्द्र जी जैसे आलोचको के ग्रुप को रख सकते हैं, जिनके विचार सक्षेप मे इस प्रकार हैं।

"एकाकी की व्याख्याओ और परिभाषाओ से पूरा काम नही होना। उससे हिन्दी मे लिखे जाने वाले एकाकी का परिष्कार नही होगा, वरन् लेखक कुछ विकल्प मे पड जायेगा। इसलिए एकाकी नाटक साहित्य की सत्समालोचना अनुचित है। एकाकी मे व्यवहृत कोष्ठ फैशन के हैं। वे ईमानदारी के ब्रैकिट नही है। एकाकी नाटक आज के लिए कृत्रिम चीज है। उसके अपनाये जाने का कारण फैशन है, न कि आवश्यकता। जब हिन्दी मे अपना रगमच ही नहीं, तब निर्देश की क्या आवश्यकता? एकाकी नाटक, यदि वह छपता है, तो सुपाठ्य होना चाहिये।"[2]

कुछ आलोचको का एक तीसरा वर्ग भी है जो एकाकी सम्बन्धी भ्रान्तियो को दूर करने तथा उसकी उन्नति मे सहयोग प्रदान कर रहा है। इस वर्ग मे श्री उपेन्द्रनाथ अश्क प्रमुख हैं। एकाकी के कुछ शुभचिन्तक, जिनमे श्री श्रीपतराय जी अग्रगण्य हैं,

---

१ हस, 'एकाकी नाटक अक' पृष्ठ ८०१।

२ 'हस' 'एकाकी नाटक अक' पृष्ठ ९९३, अश्क जी के नाम जैनेन्द्र का पत्र।

एकाकी के विरुद्ध आरोपो को अंशत ठीक मानते हैं, पर उसकी उपयोगिता और उपादेयता मे सदेह करना अनुचित समझते है ।[1]

उपर्युक्त आरोपो मे मुख्य कारण एकाकी टैकनीक की अनिश्चितता है। यह ठीक है कि सस्कृत एव पाश्चात्य नाटकीय आदर्शो से हमने बहुत कुछ लिया है, प्रयत्न हुए हैं, और अतिम रूप से निश्चयपूर्वक अभी कुछ नही कहा जा सकता, किन्तु यह कहना निराधार है कि उसकी निजी टैकनीक अभी कुछ नही बनी है और न बन सकती है।

"हमारे अनेक एकाकीकार स्वयं आलोचक और कलाकार दोनों ही हैं। उन्होंने स्वय एकाकी की टैकनीक पर पर्याप्त विचार और प्रयोग किए है। उनकी अपनी निजी शैलिया और प्रयोग हैं। डा० रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्ददास, अश्क, प० उदयशकर भट्ट आदि ने स्वय विस्तार से टैकनीक पर लिखा और उनके अनुसार सफल प्रयोग भी किए हैं।[2] रेडियो एकाकी की टैकनीक पर सर्वश्री गिरजाकुमार माथुर, हरिश्चन्द्र खन्ना, सिद्धनाथ कुमार आदि ने स्वतत्र रूप से लिखा है।[3] ये पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित हैं, किन्तु उन्होने टैकनीक को निश्चित करने मे प्रचुर सहयोग प्रदान किया है।

पाश्चात्य नाटकीय सिद्धान्तो के प्रकाश मे हिन्दी एकाकी की टैकनीक बहुत कुछ सुनिश्चित हो चुकी है। उसकी निजी मान्यताए तथा सीमाए है। आधुनिक एकाकी मे हम लम्बे निर्जीव कथोपकथन, अनेक पात्र और दृश्य, विषयान्तरता, वर्णन-बाहुल्य, उलझी कल्पनाए या सगीत की अतिशयता पसन्द नही करते। उनमें एक सुनिश्चित लक्ष्य, सकलनत्रय का निर्वाह, जीवन की एक प्रमुख सवेदना की अभिव्यक्ति, कथा-वस्तु, स्थिति, चरित्र चित्रण, मितव्ययता और मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि होती है। सम्पूर्ण एकाकी एक अन्तिम प्रभाव छोडता है। चरित्र की कोई गुत्थी या जीवन समाज की कोई समस्या सुलझा देता है, अथवा जीवन की कोई मार्मिक झाकी प्रस्तुत कर देता है। तात्पर्य यह है कि आधुनिक एकाकी अपनी कला मे पूर्ण तथा स्वकेन्द्रित है। एकाकी की कला को निखारने का प्रयत्न कुछ एकाकीकारो द्वारा हो रहा है।

---

१ देखिए प्रो० अमरनाथ गुप्त कृत "एकाकी नाटक," पृष्ठ ५।

२. देखिए डा० रामकुमार वर्मा कृत "रजत रश्मि", "ऋतुराज" आदि की भूमिकाए, सेठ गोविन्ददास कृत "नाट्यकला मीमांसा" अश्क कृत आदि मार्ग" "छठा बेटा" और "नाट्यकार अश्क" आदि, प० उदयशकरभट्ट "पर्दे के पीछे" "स्त्री का हृदय", "मनुष्य का अन्त" आदि सग्रहों की भूमिकाएं। टैकनीक पर स्वतंत्र पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं, जैसे डा० सत्येन्द्र कृत "हिन्दी एकाकी", प्रो० रामचरण महेन्द्र कृत, "हिन्दी एकाकी और एकाकीकार"।

३. देखिए हरिश्चन्द्र खन्ना कृत "रेडियो नाटक", श्री सिद्धनाथ कुमार कृत "सिद्धान्त और प्रयोग।"

एकाकी को कहानी का रगमच पर खेला जाने वाला सस्करण मात्र कहना उचित नही है, क्योकि साहित्य के इन दोनो माध्यमो में [कथोपकथन, वर्णन, अभिनय, टैकनीक उद्देश्य आदि का मौलिक भेद है। कहानी केवल पढने या सुनने की वस्तु है, किन्तु एकाकी, यदि वह रगमच के लिये लिखा गया है, का उद्देश्य अभिनयशीलता और कथोपकथन द्वारा पात्रो का चरित्र-चित्रण, कथानक तथा वातावरण आदि का निर्माण और भूत, भविष्य, वर्तमान का स्पष्टीकरण है। सकलन-त्रय उसके प्राण हैं।

एकाकीकार स्वय अपनी ओर से कुछ नही कह सकता। पात्रो के माध्यम से ही उसे अपना मन्तव्य प्रकट करना होता है। उसकी परिधि रगमच तक ही सीमित है। कहानी लेखक के पास परिधि विस्तार है, वर्णन के लिये पर्याप्त स्थान है, केवल वर्णन द्वारा वह वातावरण, परिस्थिति और स्थानीयता का निर्माण कर सकता है। चरित्र चित्रण मे स्वय अपनी ओर से बहुत कुछ कह सकता है किन्तु एकाकीकार को तटस्थ रहना पडता है।

अनेक एकाकी सुपाठ्य हो सकते हैं किन्तु अभिनेताओ द्वारा रगमच पर पात्रो के मनोभावो का सफल प्रदर्शन और अन्तिम प्रभाव छोडने मे एकाकीकार की सफलता है। कहानिया एकाकी के रूप मे परिवर्तित होकर प्राय उतनी प्रभावोत्पादक नही रह जाती, जितनी पढने मे रहती हैं। अत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि एकाकी और कहानी मे कुछ तत्वो का साम्य हो सकता है, किन्तु इनमें से कोई एक दूसरे का स्थान ग्रहण नही कर सकता।[1]

क्या एकाकी सम्भाषण मात्र है? अग्रेजी साहित्य मे एकाकी जब अपने शैशव मे था, तब भी कुछ आलोचको ने, जिनमे विलियम आरचर प्रमुख हैं, एकाकी को केवल सम्भाषण मात्र कह कर एकाकी कला के प्रति भ्रान्ति एव अनभिज्ञता प्रकट की थी।[2]

सम्भाषण तो एक शैली का नाम है। सम्भाषण के माध्यम से नाट्यकार चरित्र का विकास तथा घटनाओ का घात-प्रतिघात प्रदर्शित करता है। एकाकी मे सकलन-त्रय, ऐक्य और अभिनय का विशेष महत्व है। दो पात्रो मे सम्भाषण मात्र न होकर एकाकी जीवन का एक टुकडा है। उसमे छोटी-छोटी घटनाओ और कार्य व्यापार और अभिनय का ध्यान रखना आवश्यक है। प्रो० अमरनाथ गुप्त का यह मत सत्य है, "एकाकी नाटक वार्तालाप से कही अधिक है, वार्तालाप केवल उसका एक अग है, जिसको उसे

---

१. "एकाकी नाटक कहानी से भी कुछ ज्यादा है और यदि मुझे क्षमा किया जाय तो विनय के साथ निवेदन करूगा कि यह आवश्यक नहीं कि हर कहानी लेखक अथवा नाटककार सफल और उत्तम एकाकी और विशेष रूप से झाकिया लिख सकें।" नाटककार अश्क, पृष्ठ ४४०

२ "A One Act Play, a mere piece of dialogue"—William Archer, *The Technique of the One Act Play*, page 11

समयानुसार आवश्यकता पडती है, परन्तु वही सब कुछ नही है।[१] अश्क जी का विचार है कि "केवल सभाषण ही एक सुन्दर खेला जाने वाला एकाकी नहीं बन सकता। उसके लिए अनन्यमनस्कता (कनसन्ट्रेशन) उद्देश्य प्रसग, प्रभाव और कार्य व्यापार की इकाई, छोटी छोटी घटनाओ का ध्यान और आधारभूत विचार का प्रतिपादन आवश्यक है।"[२]

यह धारणा निराधार है कि एकाकी मे क्लाइमेक्स का होना आवश्यक नही। एकाकी अपने आप मे पूर्ण स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला छोटा नाटक है। उसमे छोटे रूप मे वे सभी तत्व है जो बडे नाटक मे होते हैं। यदि बडे नाटक मे क्लाइमेक्स की आवश्यकता है, तो एकाकी मे भी यह आवश्यक है। उसकी कथावस्तु का विकास चरम सीमा की ओर होता है और अन्तत एकाकी समाप्त होता है। कुछ एकाकीकार, जिनमे डा० रामकुमार वर्मा प्रधान हैं, क्लाइमेक्स की ओर विशेष ध्यान रखते हैं। उनके एकाकियो मे ये स्थल अन्तर्द्वन्द्व से ऐसे सजीव हो उठे हैं कि दर्शक का ध्यान पात्रो पर केन्द्रित हो जाता है।[3] यह भी सम्भव है कि क्लाइमेक्स न हो और फिर भी एकाकी सुन्दर हो। किसी रचना मे क्लाइमेक्स का होना उसी घटना प्रवाह पर निर्भर है।[४]

यह धारणा निराधार है कि एकाकी मे पात्रो का चरित्र चित्रण अथवा विकास नही हो सकता। एकाकी की निजी टैकनीक है और उसमे जीवन की झाकी के अतिरिक्त एकाकीकार को पात्रो के चरित्र चित्रण और विकास के लिए पर्याप्त स्थान मिल जाता है। "चरित्र और घटना का दिग्दर्शन एक ही दृष्टि मे कर सकने की क्षमता आधुनिक एकाकी मे है।[५]

एक समालोचक का यह कथन सत्य है कि एकाकी जीवन का एक संक्षिप्त अग है। वह जीवन की झाँकी ही हमारे सम्मुख रखता है। इसका आकार बृहद् होने की अपेक्षा परिमित, पूर्व के स्थान मे उसमे अपूर्णता का भान होता है।[६] अनेक

---

१. देखिए प्रो० अमरनाथ गुप्त कृत "एकांकी नाटक" पृ० ६७।

२ "एकाकी का साहित्य मे स्थान" "नाटककार अश्क", पृ० ४८२।

३. डा० रामकुमार वर्मा 'जीवन की प्रस्तुत संवेदना को लिए हुए एक ही पात्र या एक ही परिस्थिति बादलों की भाति नीचे से उठकर घटनाओं के झोंके में ऊपर जाकर चन्द्र और सूर्य को ढक ले और चरमसीमा की विद्युत् से आलोकित होकर जीवन के सत्य की बूँदों से बरस पड़े, यही एकांकीकार का कौशल है।" "रजतरश्मि', पृ० १०

४. सेठ गोविन्ददास कृत "स्पर्धा" एकांकी मे क्लाइमेक्स न होते हुए भी एकांकी सुन्दर है।' श्री अमरनाथ गुप्त एकाकी नाटक, पृ० १६।

५. डा० रामकुमार वर्मा "रजतरश्मि" भूमिका पृ० १०।

६. प्रो० अमरनाथ गुप्त एका० ९८--The one-act play is a detatched pic-

क्रमश

आधुनिक एकाकीकारो ने केवल चरित्र के अध्ययन को लेकर सफल एकाकियो की रचना की है। डा० रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक एकाकियो मे पात्रो के चरित्र को मनोवैज्ञानिक ढग से चित्रित करने की ओर विशेष दृष्टि रखी गई है। आधुनिक नाट्यकार मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से वातावरण और स्थिति का निर्माण करते हैं। फिर पात्रों का विकास स्वत होने लगता है और वे अपने कार्यो से अन्य पात्रो एव परिस्थितियों से सम्पर्क या सघर्ष लेना प्रारम्भ कर देते हैं। अनेक नाट्यकारो ने पात्रो के अन्तर्द्वन्द्वों, सस्कार और भावनाओ के सफल चित्र खीचें हैं।

एकाकी की लोकप्रियता का कारण एकमात्र रेडियो को मानना रेडियो प्ले को आवश्यकता से अधिक महत्व देना है। एकाकी को लोकप्रिय बनाने में रेडियो ने बहुत कार्य किया है। यह सत्य होते हुए भी रगमचीय और सुपाठ्य एकाकियो की उपेक्षा नही की जा सकती। स्कूल, कालेजो, अमेचर क्लबो आदि में समय समय पर एकाकी अभिनीत होते रहे हैं। इस माग ने भी एकाकी को लोकप्रिय बनाया है। कुछ नाटक पढने की दृष्टि से भी लिये गए हैं। रेडियो प्ले, एकाकी और रगमचीय एकाकी सभी भिन्न भिन्न प्रकार की शैलिया हैं। जहा रेडियो प्ले केवल मनोरजन प्रचार प्रोपगेन्डा या विशेष अवसरो पर हल्की शैली मे बिना नाटकीय सकेतो के लिखे जाते हैं। चरित्र विकास के लिये उनमें कोई गुजायश नही रहती, दृश्य बार बार बदलता है। सब कुछ ध्वनि के माध्यम से ही सुनाया जाता है, वहा दूसरी ओर रगमचीय या सुपाठ्य-एकाकी मे नाटकीय सकेतो, वातावरण निर्माण, स्टेज प्रबन्ध आदि का विशेष स्थान है। प्रसारित करने के लिए एकाकी मे अनेक परिवर्तन करने होते हैं, वातावरण स्थिति और पात्रो का आना जाना तक सूचित करना पडता है। उसका बहुत सा सौंदर्य नष्ट हो जाता है। अत यह कहना चाहिये कि रगमचीय तथा सुपाठ्य एकाकियो ने रेडियो प्ले को लोकप्रिय बनाया है। वे रेडियो प्ले की अपेक्षा साहित्यिक, स्थायी और अधिक प्रभावशाली हैं।

दूसरे स्कूल के आरोपो मे नाटकीय सकेतो को कृत्रिम बताया गया है। यह सत्य है कि हिन्दी मे अभी अपना कोई रगमच नही बन पाया है, किन्तु पृथ्वी थियेटर्स जैसे जो प्रयत्न चल रहे हैं, उनसे उज्ज्वल भविष्य की आशा बधती हैं। इनके अतिरिक्त स्कूल कालेज, विश्वविद्यालयो के अमेचर क्लबो मे एकाकी खेले जाते हैं। इन सब मे नाटकीय सकेत बडे उपयोगी सिद्ध होते हैं, केवल एकाकी पढने वालों के काल्पनिक रगमच पर इन सकेतो से पूरे चित्र का निर्माण हो जाता है। रग सकेतों

---

ture, a part, it merely gives us a peep into life instead of variety; concentration instead of completeness, incompleteness instead of elaboration, intensification instead of length, brevity instead of exhaustion, suggestion and compression—*The One Act Play*, page 13.

की यह महत्ता देख कर ही कुछ एकाकीकार विशेष परिश्रम से साहित्यिक सौंदर्य मे पूर्ण रगसकेत लिख रहे है, जिनसे एकाकी पढने वाले की कल्पना सजग होकर साहित्यिक आनन्द आता है।[1] कुछ नाट्यकारो ने रग सकेतो द्वारा सकेतात्मक की शैली का प्रयोग किया है, जैसे अश्क, गणेशप्रसाद, द्विवेदी, सत्येन्द्र आदि। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि नाटकीय सकेतो मे केवल नवीन शैली का अनुकरण या कृत्रिमता नही, प्रत्युत वे एकाकी-कला के आवश्यक तत्व हैं। रगमच न होने पर भी पाठको और अमेचर क्लबो के नए अभिनेताओ या निर्देशको के लिए रग सकेतो की उपयोगिता है।

आधुनिक हिन्दी एकाकी का स्वरूप स्थिर हो चुका है। अनेक स्थायी कृतियां इस क्षेत्र मे प्रकाशित हुई है और निरन्तर हो रही हैं। वह एक निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर हो रहा है। अनेक हिन्दी एकाकियो मे अन्य साहित्य की भाति ऊची चिन्तना का प्रवेश है।[2] अब एकाकी की उत्तमता उसकी कथा वस्तु की जटिलता मे नही वरन् मानवीय प्रकृति की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याओ के उद्घाटन मे है।[3] उच्चकोटि के मौलिक एकाकी हमारे सामने हैं। थियेटर मैनेजर, रगमचो पर नाटकों का अभिनय देखने वाले दर्शकगण, पाठक, नाटककार यहा तक कि यूनिवर्सिटी प्रोफेसर आदि सब ने एक स्वर से एकाकी की महत्ता पहिचानी है। एकाकी, साहित्य मे अपना सुनिश्चित स्थान बन चुका है। सामयिक साहित्य मे यद्यपि अभी कम एकाकीकारो ने स्थायी कला कृतियो की सृष्टि की है तो भी निराश होने की आवश्यकता नही है।[4]

टी एच डिकिनसन का यह मत सत्य है कि "एकाकी की सृष्टि और प्रसार नाट्यकारो के एक ऐसी कला के ढूढ निकालने का परिणाम है जिसमे ईमानदारी और सच्चाई के गुण पूर्णरूप से विद्यमान हो, नाटककारो, नाट्यशाला के अधिकारियो, रगमच के मैनेजरो रगमंच पर दृश्य आदि के समझने वालो आदि सभी ने ही

---

१ देखिए श्री भुवनेश्वर, डा० रामकुमार वर्मा, सत्येन्द्र शरत और डा० लक्ष्मीनारायण लाल के एकाकियों के रग सकेत।

२ देखिये प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी कृत, "दो एकांकी" सग्रह की भूमिका।

३ श्री गुलाबराय, "हि० सा० का सु० इति०"

४. "Theatre managers, the general theatre-going public, actors, play-wrights, and even the professors in the University, recognise its presence It is to be observed, too, that no apology is being offered for the better sort of contemporary One Act Plays, and indeed none is needed."

B Roland Lewis: 'The Technique of the One-Act Play" pages 9-10.

एकाकी नाटक को नाट्यशाला मे एक नवीन शैली के उत्थान मे साधन स्वरूप बनाने के लिए सहायता की है। लेकिन सबसे अधिक कलाकारो को ही इससे लाभ हुआ। उन्होने इसके प्रयोग से बहुत कुछ सीखा है।[1] पश्चिम मे एकाकी नाटक का स्वरूप पूर्ण स्थिर हो चुका है। प्रयोगावस्था पार कर वह स्थायी साहित्य की सृष्टि कर रहा है।

नए हिन्दी एकाकी के विषय तथा तन्त्र दोनो ही मे पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रगति हुई है। पश्चिमी एकाकी की शैली का अध्ययन कर हिन्दी एकाकीकार गभीरता से एकाकी निर्माण के कार्य मे सलग्न हुए हैं। नए एकाकियो की पृष्ठ भूमि मे पश्चात्य नाट्यशास्त्र का अध्ययम है। कुछ नाट्यकारो पर पश्चिम का स्पष्ट अनुकरण है। शेष ने केवल प्रेरणा मात्र प्राप्त की है। तन्त्र मे पाश्चात्य होते हुए भी वे विचार और समस्याओ मे भारतीय हैं। सामान्य रूप से इब्सन तथा शा की स्वाभाविकता, बुद्धिवाद, यथार्थवाद, कृत्रिमता का बहिष्कार, बनावटी भावुकता के प्रति विरोध, वर्तमान सघर्षमय-जीवन के चित्रण मे आस्था तथा सामाजिक राजनैतिक या वैयक्तिक समस्याओ को सुलझाने की ओर विशेषरूप से दृष्टि जा रही है।

कुछ आधुनिक एकाकीकारो ने पात्रो के चरित्रचित्रण मे विशेष दिलचस्पी दिखाई है तथा मनोवैज्ञानिक अतर्दृष्टि से चरित्रो का विश्लेषण किया है। कुछ एकाकीकारो जिनमे डा० रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, अश्क आदि प्रमुख हैं, ने मानवीय गुण-दोष, गुप्त भावेनाग्रन्थिए, चरित्र की जटिलतायें तथा आन्तरिक मनोविकारो का पाश्चात्य मनोविश्लेषण की शैली पर मन्थन किया है।

आधुनिक एकाकीकार यथासभव कम प्राय केवल तीन पात्रो को प्रविष्ट कराता है। पुराने एकाकियो मे पात्रो की सख्या बढते बढते बारह तेरह तक पहुँच जाती थी। कुछ पात्र केवल दो चार स्थानो पर बोलते थे और अनावश्यक रूप से रगमच पर भीड भाड उपस्थित कर देते थे। इससे चरित्रचित्रण यथोचित रूप मे नही होता था। अब यथासभव कम पात्र रखे जाते हैं। ये मुख्य रूप प्रमुख पात्र, पात्री तथा खल नायक होते हैं। कभी दो पुरुष, एक स्त्री, कभी दो स्त्रिया एक पुरुष रखा जाता है।

---

१ "It was in the pursuit of a new and honest art of the theatre that the One-Act Play was developed by the play-wright. Producers and organizers, draughts-men and Scenery-builders co-operated to make the one-act play an important step in the progress towards a new theatre art But it was the playwright who learned most from the experiment" Playwrights of the new American Theatre, New York, 1925

कुछ एकाकीकार ऐसे एकाकियो की रचना कर रहे हैं, जिनमे स्त्रीपात्र हैं ही नही। इसके विपरीत कुछ ऐसे हैं, जिनमे स्त्री ही स्त्री पात्र हैं, पुरुष एक भी नही है। वे यह नही मानते कि जिस उद्दीप्त क्षण का चित्रण एकाकी का विषय बनता है, उसमे स्त्री या पुरुष पात्र अनिवार्य ही हो। पृथक-पृथक स्त्री और पुरुषो के जीवन मे ऐसी घटनाये आ सकती हैं, जिनमे नाटकीयता हो। कुछ ऐसे एकाकी केवल एक पात्र को लेकर आकाश-भाषित शैली मे भी लिखे गये हैं। हिन्दी मे भारतेन्दु जी ने एक आकाश-भाषित मोनोड्रामा लिखा था। सेठ गोविन्ददास ने स्ट्रिन्डवर्ग तथा ओ नील की शैली पर कुछ मोनोड्रामा लिखे हैं, जिनका टैकनिक भिन्न-भिन्न प्रकार का है। इनमे एक आकाश-भाषित नाटक भी है। इनमे केवल एक ही पात्र है। कुछ वस्तुओ या मूक अभिनय वाले पात्रो को सम्बोधन करके बोलता है। इस प्रकार आधुनिक एकाकी मानव चरित्र की निगूढतम गुत्थियो को खोलने मे प्रयत्नशील है।

१ टैकनीक के क्षेत्र मे आमूल परिवर्तन हुआ है। आधुनिक एकाकीकार अपना सविधान रगमचीय रखता है। उसके एकाकी नाटक रगमंच पर अभिनय की दृष्टि से विनिर्मित होते हैं। बिना किसी असाधारण परिवर्तन के अभिनय हो सकता है। इसी कारण कुछ एकाकीकारो को छोडकर शेष यथासभव कोई पूर्व कथा नही देते। ज्यो-ज्यो एकाकी विकसित होता है, त्यो-त्यो पाठको एव दर्शको का पात्रो के सम्भाषणो द्वारा वस्तु-स्थिति का परिचय, पात्रो का चरित्र चित्रण, नाटकीय परिस्थिति तथा सघर्ष का ज्ञान होता चलता है। पात्रो का परिचय भी एकाकीकार द्वारा नही दिया जाता, वरन् पात्र स्वय अपनी बातचीत मे अपना परिचय दर्शको या पाठको को देते हैं।

रेडियो एकाकी की माग इस युग की विशेषता है। आगे चलकर रेडियो के कार्यक्रमो मे हिन्दी एकाकी का नियमित कार्यक्रम हो गया। कुछ नाट्यकारो विशेषत. डा० रामकुमार वर्मा, उदयशकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर आदि ने रेडियो एकाकी लिखने प्रारभ किए। उनके समक्ष व्यापक श्रोता मडलो का प्रश्न था। इन एकाकियो मे श्रव्य-तत्व का विशेष ध्यान रखा गया था। समयानुकूल वातावरण परिस्थिति अथवा नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने वाले रगमचीय साधनो, दृश्यावली, पात्रो की वेशभूषा, मुख-मुद्रा, कायिक हावभाव तथा चेष्टायें, प्रकाश योजना, यवनिक पतन कोई भी दृश्य उपकरण अथवा साधन रेडियो एकाकी मे सहायक नही हो सकता। इनमे तो कथानक के विकास के साथ-साथ पात्रो का परिचय नये पात्र का प्रवेश का प्रस्थान की सूचना, समय तथा दृश्य के सम्बन्ध मे जानकारी, पात्रो के पारस्परिक कथोपकथन द्वारा ध्वनि के माध्यम से ही व्यक्त होती है। सूत्रधार अथवा सवादो मे वर्णनात्मक एवं चित्रोपमता के गुण विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। पात्रो की सख्या न्यूनातिन्यून होनी है, क्योकि सुनने वाला पात्रो की ध्वनियो से ही पहचान पाता है तथा अनावश्यक प्रसग अथवा सवाद बिल्कुल नही होते। इससे श्रोता का ध्यान मुख्य विषय से हट जाता

है और रस-सृष्टि नही हो पाती । रेडियो मे नि शब्दता का भी उतना ही महत्व है, जितना शब्द का । रेडियो एकाकी मे अप्रासगिक तथ्य पात्रो द्वारा व्यर्थ का वाद-विवाद, उपदेशात्मकता, स्वरो मे घटाटोप सह्य नही है । इनसे सवादो मे वाक् वैदग्ध्य, चुस्ती और सजीवता नष्ट होती है । आगे चलकर रेडियो एकाकी की दिशा मे महत्वपूर्ण विकास हुआ । सधिकाल मे रेडियो की ओर हिन्दी एकाकीकारो की प्रवृत्ति कम रही है ।

कथोपकथन के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण विकास हुआ है । आज के नाटककार लम्बे विवेचनात्मक अथवा वादविवाद वाले कथोपकथनो को अस्वाभाविक मानते हैं । कृत्रिमता हटाने के उद्देश्य से पात्रों द्वारा कहे हुए शेर, दोहे, सोरठे या स्थान-स्थान पर गानो या रागो की पद्धति, नान्दी, मगलाचरण, स्वगत भरतवाक्य का लोप हो गया है । प्राय कथोपकथनो द्वारा चरित्र चित्रण किया जाता है और एकाकी समस्त गति और शक्ति सचित करता हुआ चरम-सीमा पर आता है अथवा सम्भाषण मे ही परिसमाप्ति पा लेता है । कथोपकथनो मे स्वभाविकता का विशेष ध्यान रखा जाता है । कुछ एकाकीकारो ने अग्रेजी के वाक्य या टुकडे या शब्दो का प्रयोग भी किया है, जैसे गणेशप्रसाद द्विवेदी का "कामरेड" ।

प्राचीन एकाकियो की भाषा मे कृत्रिमता या अस्वाभाविकता अधिक थी । अब स्वाभाविकता की खोज मे यथार्थवाद की प्रवृत्ति को उत्तेजित किया जाता है । बहुत से एकाकीकार एकाकी का निर्माण अभिनय के हेतु करते हैं और समाज तथा मानव जीवन के सच्चे चित्र प्रस्तुत करना चाहते हैं । वे पात्रो के मुह मे ऐसी भाषा रखते हैं, जिससे वे स्वाभाविक प्रतीत हो, उनके पात्र उस भाषा का प्रयोग करते हैं जो दैनिक जीवन मे प्रयुक्त होती है तथा जिससे एकाकी वास्तविकता जीवन का टुकडा और जीवन के अत्यधिक समीप जान पडे । साथ ही वह इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि एकाकियो की भाषा, आज से दस साल पश्चात भी नई और स्वाभाविक ही रहे, तथा इतनी पुरानी व निर्जीव न हो जाय कि नाटक खेलने योग्य न रहें ।

अत आधुनिक एकाकी की भाषा यथासभव सरल, स्वाभाविक तथा दैनिक जीवन मे प्रयुक्त चलती हिन्दी होती है । कठिन साहित्यिक प्रयोग, दुरूह वाक्य, सस्कृत मिश्रित क्लिष्ट शब्दो का बहिष्कार कर दिया गया है । "स्वगत कथन" का बिल्कुल प्रयोग नही किया जाता । आज का नाट्यककार "स्वगत" कथन के प्रयोग को कृत्रिम और अस्वाभाविक मानता है । वह इस कौशल से कथोपकथन लिखता है कि स्वगत-कथन की आवश्यकता ही प्रतीत न हो । यदि ऐसी आवश्यकता पड जाती है कि बिना उसके काम नही चलता तो किसी पक्षी, पशु या टेलीफोन का माध्यम लेकर स्वाभाविकता की रक्षा की जाती है । यो दैनिक जीवन मे हम 'स्वगत" का प्रयोग नही करते । फिर एकाकियो मे ही, जो मानव जीवन का एक टुकड़ा है, क्यो इनका प्रयोग किया जाय ।

नाटकीय सकेत या रगमंच के निर्देश की दृष्टि मे आधुनिक एकाकी मे महत्व-पूर्ण विकास दृष्टिगोचर होता है। ये सकेत विवरण-पूर्वक लिखे जाते हैं। इनकी सहायता से रगमच की पूर्ण व्यवस्था, जैसे किस किस स्थान का दृश्य उपस्थित किया जा रहा है, कैसा कमरा है, कितने दरवाजे, खिड़कियां या सजावट कैसी है ? कौनसी वस्तु किस स्थान पर रखी है ? प्रवेश द्वार किधर है ? कमरे मे क्या सामान है ? कौन-कौन व्यक्ति उपस्थित हैं ? उनका रूप रग, पहनावा, चाल-ढाल बैठने का ढग, आदतें आदि विस्तृत वर्णन कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त रगमचीय निर्देश पात्रो की रूपकल्पना तथा उनके अभिनय को भली भाति प्रस्तुत करने मे भी सहायता करते है। कोई कोई एकाकीकार घटना के प्रारम्भ होने से पूर्व के इतिहास को स्पष्ट कर देता है। कोई रगमच का मानचित्र तक उपस्थित कर देता है।[1] सेठ गोविन्ददास के वर्णन विस्तृत होते हैं, डा० रामकुमार वर्मा के सुनिश्चित और सुकल्पित।

रगभूमि की व्यवस्था के सकेतो से कहीं-कहीं एकाकीकार प्रभाव व्यजना का कार्य लेते हैं। कुछ साहित्यकारो जैसे भुवनेश्वर ने अनेक स्थानो पर कुछ सकेत केवल प्रभाव-व्यजना के निमित्त काव्यात्मक स्पर्श से रगीन बना दिये हैं। इनमे काव्य की मधुरिमा प्रस्फुटित हुई है। उपमाओ के आकर्षक प्रयोग हैं। इनसे ये नाटक सुपाठ्य हो गये हैं और कल्पना को सजग करते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि इनका रगमच पर प्रदर्शन किसी भी प्रकार नही हो सकता। इनका उपयोग इसीलिए है कि ये एकाकी को सुपाठ्य, प्रभावशाली और मनोरजक बनाकर रस-परिपाक मे सहायता करें।

इस दिशा मे कुछ एकाकीकारो पर पाश्चात्य प्रभाव इतना अधिक है कि उन्होने हिन्दी मे अग्रेजी ढग की रग सूचनाओं का अनुवाद या अनुकरण करने के स्थान पर अग्रेजी ढग की अग्रेजी भाषा मे ही प्रयोग किया है। गणेशप्रसाद द्विवेदी के "कामरेड" मे कुछ सूचनाए अग्रेजी भाषा मे ही लिखी गई हैं। भावनिर्देश की दृष्टि से "कामरेड" की कुछ रग सूचनाए महत्वपूर्ण हैं।

उपर्युक्त विवेचन से नवीन पाश्चात्य ढग के एकाकी नाटको की टैकनीक सबधी नवीनताओ पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। निष्कर्ष यह है कि आधुनिक एकाकी की टैकनीक के क्षेत्र मे जो छानबीन तथा नवनिर्माण हुआ है, वह पश्चिम के नाट्य-शास्त्र से पूर्णत प्रभावित है। अग्रेजी एकाकियो के अनुकरण तथा पश्चिम के नाट्यशास्त्र के प्रयोग ने नए एकाकी का जन्म हो चुका है। इसी नवीन पाश्चात्य शैली पर एकाकियो का निर्माण हो रहा है।

प्रयोगवादी एकांकीकार : उनकी विषयगत एवं कलाजन्य विशेषताएं

१. डा० रामकुमार वर्मा : पाश्चात्य शैली पर अभिनयात्मक एकाकी के

---

१. श्री जगदीशचन्द्र माथुर और डा० रामकुमार वर्मा प्रायः स्टेज का चित्र देते हैं।

जन्मदाता[1] के रूप मे डा० रामकुमार वर्मा का प्रथम प्रयोगात्मक एकाकी "बादल की मृत्यु" (१९३६) मे प्रकाशित हुआ था। यह मेटरलिंक की रूपक पद्धति पर रचित भावात्मक मानवीयकरण रूपको के अन्तर्गत एक नया प्रयोग था। डा० वर्मा ने उसी शैली मे मनोविज्ञान और सघर्ष को जोडकर जीवन के महान सत्य को अत्यन्त सक्षिप्त पर ज्वलन्त रूप मे उपस्थित किया है। छोटा होते हुए भी यह एकाकी अपने सदेश मे महान है। वर्माजी के एकाकियो के सग्रह इस क्रम से प्रकाशित हुए हैं —

"पृथ्वीराज की आखें"(१९३७),"रेशमी टाई"(१९४१),"चारुमित्रा"(१९४३) "विभूति" (१९४३), "सप्तकिरण" (१९४७), "रूपरग" (१९४८), "कौमुदी महोत्सव" (१९४९), "ध्रुवतारिका" (१९५०), "ऋतुराज" (१९५१), "रजत रश्मि" (१९५२) "दीपदान" (१९५४), "कामकदला" (१९५५), "बापू" (१९५६), "इन्द्र धनुप" (१९५७), "रिमझिम",(१९५७) कुल मिलाकर आपके रगमचीय तथा रेडियो एकाकियो की सख्या ९० के लगभग है। वर्मा जी का क्षेत्र विशेषत ऐतिहासिक और सामाजिक है। विचार और विषय की दृष्टि से इनके एकाकी-साहित्य को निम्न वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है।

१ सामाजिक समस्या प्रधान एकाकी

डा० वर्मा की नाट्यकला जीवन से यथार्थ के उद्भूत होकर सजीव आदर्श की सृष्टि मे लगी है। सामाजिक जीवन के स्वाभाविक गति प्रवाह को एक बल देकर, आदर्श प्रस्तुत करना अथवा उसकी दिशा मे नया झुकाव ला देना ही उनके सामाजिक एकाकी रचना का प्रमुख उद्देश्य रहा है। जीवन की सहज स्वाभाविकता तथा एक व्यावहारिक आदर्शवाद का प्रयोग सर्वत्र आपके सामाजिक नाट्य साहित्य में प्राण सचार करता है। इस वर्ग मे "अठारह जुलाई की शाम," "आखो का आकाश," "आशीर्वाद" "इलेक्शन," "उत्सर्ग," "एक तोले, अफीम की कीमत," "एक्ट्रेस, "कलाकार का सत्य," "कहा से कहा," "चम्पक," "दस मिनट," "नमस्कार की बात," "नही का रहस्य", "परीक्षा", "पुरस्कार," प्रेम की आखें," "फीमेल पार्ट" " फेल्ट हैट," "बादल की मृत्यु," "मर्यादा की वेदी पर," "रगीन स्वप्न," "रजनी की रात," "रूप की बीमारी," "रात का रहस्य," रेशमी टाई," "वह वीर था," "सही रास्ता" आदि प्रतिनिधि रचनायें हैं। इनमे भी "उत्सर्ग," "सही रास्ता", आशीर्वाद", "परीक्षा" और "अठारह जुलाई की शाम" आदि एकाकी नाटको में आपकी सामाजिक यथार्थवादी विचारधारा और कला अपने सर्वोच्च सौन्दर्य मे प्रकट हुई है।

उदाहरण के लिए 'उत्सर्ग' एकाकी मे डा० शेखर अपने वैज्ञानिक अनुसन्धानों मे सच्चे नारीत्व का तिरस्कार करते हैं और अपने दोषो को छिपाने के लिए नारी

---

१ "उन्होंने आधुनिक ढग के एकांकी लिखने की नींव पथ-प्रदर्शक के रूप में डाली।" ले० [illegible] "एकांकी नाटक" पृष्ठ ७२

सेवा का ग्रह्य उपस्थित करते हैं, तो उनके समक्ष वे जीवन का सबसे बड़ा उपहास करते हैं और इसकी सजा नाट्यकार ने उनको बडी से बडी दी है। जीवन भर के सचित विज्ञान के अनुसधानो से उन्हें हाथ धोना पडा है। इस प्रकार डा० वर्मा ने प्रकृति मे जीवन की समरसता उपस्थित करने का प्रयत्न किया है।[1]

वर्मा जी के एकाकियो मे जीवन की तात्कालिक यथार्थता के स्थान पर शैक्सपियर जैसे उस स्थायी सत्य का चित्रण है, जिसमे मनुष्यता का क्रन्दन और जीवन की मुस्कान सन्निहित है।[2] अपने एकाकियो की कथावस्तु -काल्पनिक जगत् से लेने की अपेक्षा वे जीवन के चारो ओर वहते हुए घटनाओ के अविराम प्रवाह से लेते हैं।[3]

उन्होंने मध्य वर्ग की नाना समस्याओ को लेकर यथार्थवादी एकाकियो की रचना की है। जीवन के अनुभवो तथा घटनाओ को अधिक से अधिक घनीभूत कर उन्हे कार्यकरण की मनोरजन शृखला मे बाध देने मे उनका विश्वास है। जीवन की वास्तविकता के चुनाव मे वर्मा जी ने मतभेद प्रकट किया है।[4] उनका दृष्टिकोण प्रगतिवादी नाटककारो से विभिन्न है। जहा प्रगतिशील वर्ग के लेखक जीवन की कुरूपता चित्रित करने की ओर झुके हुए हैं, वहा वे जीवन की ऐसी घटनाए चुनते है, जो हृदय की सहानुभूति प्राप्त कर सकें या हमारी रागात्मक प्रवृत्ति मे कुछ चेतना ला सकें।[5] वह स्वाभाविकता के पोषक है, उनके चित्र यथार्थ जीवन से लिए गए हैं, पर वे जीवन के अभ्युदयशील क्षणो के चित्रण के पक्षपाती हैं।[6] वाह्य तथा सामयिक द्वन्द्वो की अपेक्षा मगलमय भावनाओ और जीवन के भव्य चित्रो की रचना तथा मानव हृदय के शाश्वत प्रश्नो की ओर इगित करना उन्हें प्रिय है।[7] अत कथावस्तु अनेक प्रकार और

---

१. देखिए डा० रामकुमार वर्मा कृत "मै और मेरी कला", धर्मयुग, फर० १९५१।

२ प्रो० अमरनाथ गुप्त एम. ए "एकाकी नाटक", पृष्ठ ७३। इसी सबध में वर्मा जी लिखते हैं "एकाकीकार एक विशिष्ट सवेदना पर अगुली रखना चाहता है। जीवन के साधारण से साधारण धरातल पर उतार कर वह सत्य को छेड देती है और जीवन के विस्तृत आकाश में विद्युत् बनकर समा जाती है। सत्य के तार पर वह अगुली की एक चोट है, जिससे जीवन का सगीत गूजता है और तार की पतली रेखा से निकलकर समस्त दिशाओं को मुखरित कर देता है। "ऋतुराज" पृ० १२।

३ "हमारे जीवन के चारों ओर घटनाओं का अविराम प्रवाह बहता रहता है, जिसमें प्राणों के तत्वों का अत्यन्त रहस्यमय सकेत होता है। आवश्यकता इस बात की है कि इन घटनाओं को सजीव दृष्टि से देखकर उनकी व्यजना में कथावस्तु का निर्माण कर लिया जाय।"

—डा० रामकुमार वर्मा "रेशमी टाई", भू०, पृ० ६।

४. "जीवन की वास्तविकता हमारे नाटक की आधार शिला होनी चाहिए।" वही, पृ० १०।

५. "हमारे प्रगतिशील लेखक अश्लीलता के किनारे बैठकर साहित्य के नाम पर अपनी वासनाओं का नृत्य देखना चाहते हैं।" वही, पृष्ठ १०।

६ 'मैं परियों के देश की कल्पनाओं से हटकर वास्तविकता का क्षेत्र नाटक के लिए आवश्यक समझता हूँ।' वही, पृष्ठ १२।

७ "सामयिक और वर्गगत आवश्यकताओं का बोझ साहित्य को बहुत दूर नहीं चला सकता है।" वही, पृ० १२।

अनेक विषयो की होते हुए भी वे अन्तत मस्तिष्क के चिरन्तन और सर्वकालीन द्वन्द्वो (इच्छा, द्वेष, ग्लानि, करुणा, प्रेम, वासना, त्याग, विवशता आदि) का चित्रण करते हैं।[1]

प्रख्यात या प्रसिद्ध कथावस्तु के सम्पूर्ण भाग को न लेकर वर्मा जी उस कथावस्तु के प्राणतत्व को पाना चाहते हैं और उसकी प्रमुख सवेदना को चित्रित कर देते हैं। उस सवेदना से सयुक्त कार्य कारण को वे कथावस्तु की दिशा विशेष की ओर वढाते हैं। जब कोई ऐतिहासिक नाटकीय स्थिति उनके समक्ष आती है, तो वे उसे देखने के लिए एक ऐसा कोण स्थिर कर लेते हैं जहा से वह घटना वस्तु या दृश्य अधिक से अधिक प्रभावशाली, आकर्षक या अपनी स्थिति में सम्पूर्ण दृष्टिगत हो सके। तीनो इकाइयो का पालन करते हुए वडे-वडे कथानक एक लम्बे दृश्य मे ही उपयुक्त वातावरण सहित अपना पूरा विकास और पूर्णता पा लेते हैं।

पात्रो के ऊपर बाह्य आचार और शील का वातावरण चढा हुआ है। पर अन्दर से वे असख्य भावो, सघर्षो, विपरीत भावना ग्रन्थियो के पुतले हैं। मनोवेगो की अभिव्यक्ति मे वे मौलिक और भारतीय रहे हैं। "औरगजेब की आखरी रात, ध्रुव-तारिका, उत्सर्ग" आदि एकाकियो मे मनोवेगो तथा अन्तर सघर्षों का जितना सूक्ष्म चित्रण वर्मा जी ने किया है, उतना समष्टि रूप से अन्य किसी भी एकाकीकार ने नही किया है। हिन्दी एकाकी मे यह नए दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव कर सका है। "रजतरश्मि" के पाचो एकाकी विशिष्ट सवेदनाओ से सम्बन्धित हैं। डा० वर्मा ने भावना की आखो से देखा, अनुभूति के कानो से सुना और करुणा, प्रेम, शृगार आदि से द्रवित होकर कर्म की वाणी मे हमारी हृदय-तन्त्री के तारो को झकृत किया है। वे नाटककार और कवि हैं।

ऐतिहासिक आदर्शवादी एकाकी

वर्मा जी को सर्वाधिक सफलता ऐतिहासिक आदर्शवादी एकाकी लिखने मे प्राप्त हुई है। इस क्षेत्र मे वे अद्वितीय हैं। "शिवाजी, औरगजेब की आखरी रात, कलक रेखा, कादम्व या विष, कौमुदी महोत्सव, कृपाण की धार, चारुमित्रा, तैमूर की हार, ध्रुवतारिका, पृथ्वीराज की आखें, प्रतिशोध, विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त पराक्रमाक; स्वर्णश्री" आदि ऐतिहासिक एकाकियो मे भारतीय इतिहास विशेषत हिन्दू युग की सूनी अस्थियो मे नवीन रक्त का सचार किया है, जैसे भारतीय इतिहास साकार हो उठा है।

हिन्दी ऐतिहासिक एकाकी के वे सबसे बडे टैकनीशियन हैं। उन्होंने जिस

---

१. "मेरे नाटकों की भूमिका तो उन हृदयों में है जिनमें सौन्दर्य और प्रेम के बीच जीवन का प्रवाह होता रहता है। इस प्रवाह की लहरों में मेरे हृदय के चित्र प्रतिबिम्बित हैं।"

—सही रास्ता, भूमिका पृ० १।

पात्र को एकाकी की कथावस्तु मे पिरोया है, उसे न केवल जीता जागता इतिहास सम्मत रूप मे प्रस्तुत करने मे सफल हुए हैं, प्रत्युत तत्कालीन सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि को भी इतिहास-सम्मत सत्यता और गहनता से उडेल सके है।[1] उन्होने प्राचीन ऐतिहासिक घटनाए लेकर मुख्य पात्रो के व्यक्तियो की रक्षा करते हुए कुछ नए सफल गौण पात्रो की रचना भी की है। वे न केवल अपने ऐतिहासिक पात्रो को प्रतिष्ठित ऐतिहासज्ञो के अनुसधानो के अनुसार प्रस्तुत कर उनके वास्तविक चरित्रो की रक्षा कर सके हैं, प्रत्युत प्रत्येक पात्र दृष्टिकोण, वर्ग को पूर्ण तर्क से अपने पक्ष का समर्थन करने देने मे सफल हुए हैं। भारतीय इतिहास जिन पात्रो के अथवा विभिन्न युगो की सास्कृतिक एव सामाजिक स्थितियो की अभिव्यक्ति मे मौन रहा है, या अपनी अभिव्यक्ति मे स्पष्ट नही है, उन स्थितियो एव पात्रो के स्पष्टीकरण मे डा० वर्मा ने अभूतपूर्व कार्य किया है।[2] उनके पीछे गहरा अध्ययन एव अनुसधान है।

उदाहरण के लिए "प्रतिशोध" धारा नगरी के छठी शताब्दी का एक चित्र है, समुद्रगुप्त पराक्रमाक, सम्राट् विक्रमादित्य आदि गुप्त-काल के अध्ययन है। "दुर्गावती, औरगजेब की आखिरी रात, तैमूर की हार" आदि एकाकी मुगल युग की झाकिया है। कलक रेखा सन् १८१० मे राजपूतो के जीवन तथा सघर्षो को चित्रित करता है। इतिहास से शिवाजी के चरित्र के विषय में स्पष्ट निर्देश नही है। वर्माजी ने शिवाजी के चरित्र को प्रकाशित कर नया आदर्श रखा है, रेखाए सूक्ष्म किन्तु गहरी हैं। "कौमुदी महोत्सव" मे चन्द्रगुप्त के चरित्र को, जो चाणक्य के प्रभाव से दब सा गया था, उभारा गया है। श्री द्विजेन्द्रलाल राय तथा प्रसाद द्वारा चित्रित चन्द्रगुप्त और चाणक्य को पढकर बौद्ध तथा ब्राह्मण ग्रन्थो, मैगस्थनीज तथा चन्द्रगुप्त के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले इतिहास ग्रन्थो का अध्ययन कर उन्होने चन्द्रगुप्त को उभारा है। दोनो का जो विवाद हुआ है, वह उनके व्यक्तियो का पूर्ण परिचायक है। "औरगजेब की आखिरी रात" मे जहा एक ओर मुगल सम्राट् की आत्म-ग्लानि का चित्रण है, वहा वह ऐतिहासिक सत्य से भी ओत-प्रोत है। "चारुमित्रा" की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रामाणिकता के साथ भावना प्रवाण है। "चारुमित्रा" और "त्रिभूमि" में सकलित उनके एकाकी ऐतिहासिक तथ्यो, जीवन के स्पन्दन और नैतिक दृष्टि से कल्याणकारी आदर्श से परिपूर्ण हैं। इन भारतीय आदर्शों के साथ ही साथ जीवन की समस्त स्वभाविकता उनके नाटको का प्रधान अग है।[3] इन नाटको की सास्कृतिक पृष्ठभूमि मे पात्रो के

---

१. इस दशा में मुझे इतिहास के अध्ययन के साथ ही साथ तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की भी पूरी तैयारी करनी पड़ी है।—डा० रामकुमार वर्मा, रजत रश्मि, पृ० १४।

२ देखिए, श्री नर्मदाप्रसाद खरे कृत "चार ऐतिहासिक एकांकी", पृ० २०।

३ वर्मा जी ने ऐसे आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है जो जीवन की स्वाभाविकता से ओत प्रोत होकर नैतिक दृष्टि से भी जनता के लिए कल्याणकारी है। चा० ऐ० एकांकी, पृ० १६।

अधिक प्रभावशाली पात्र होते हैं। घटना स्थिर, पर पात्र गतिशील होते हैं। पात्रो के अन्तर्जगत् और मन सघर्ष का विशेष ध्यान रखते हैं। उनमें स्वभावानुसार क्रिया तथा प्रतिक्रियाए होती हैं। मनोविज्ञान का प्रचुर प्रयोग होने से पात्रो के चित्रण मे स्वाभाविकता और सजीवता आती है। ऐतिहासिक एकाकियो मे तत्कालीन सास्कृतिक पृष्ठभूमि का पूरा ध्यान रखते हैं।

उनके एकाकियो मे जहा मनोविज्ञान की स्थिति एक बार तैयार हो जाती है, तो पात्रो का विकास अपने आप होने लगता है। वे कार्य करते हैं और अपनी ही सवेदनाओ से अन्य पात्रों और परिस्थितियो से सम्पर्क या सघर्ष लेना प्रारम्भ कर देते है। वे पात्र के मनोविज्ञान मे सस्कार और प्रभाव का प्रमुख ध्यान रखते है। यदि प्रभाव सस्कारो के प्रतिकूल होते हैं, तो भयकर अन्तर्द्वन्द्व होता है। यदि ये सस्कारो के अनुकूल होते हैं, तो पात्र विलासी होने लगता है। आपके सभी नाटको मे पात्रो के अन्तर्द्वन्द्वो की यह मानसिक प्रक्रिया मिलती है। इसी से कुतूहलता की सृष्टि होती है जो चरम सीमा मे जाकर समाप्त होता है।[1]

पात्रो की भाषा उनके अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे अभिनयात्मक दृष्टि से प्रयुक्त हुई है। सस्कारो और प्रभावो से ही उनकी भाषा बनती है। वे हिन्दी के शुद्ध और स्वाभाविक रूप के पक्षपाती हैं। वातावरण के अनुरूप भाषा के प्रयोग से स्वाभाविकता की रक्षा हुई है।

उनके सभाषणो द्वारा नाटक की प्रमुख सवेदना उद्दीप्त तथा उसकी गति निर्धारित होती है, पात्रो के स्वभाव और आवेगो का स्पष्टीकरण होता है और सवद्ध घटनाओ की अभिव्यक्ति परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त ढग से होती है। कथोपकथन उतने ही होते हैं, जितने पात्रो की क्रिया और प्रतिक्रिया द्वारा अपेक्षित होते हैं।[2] वे बडी सावधानी से चरमसीमा। (क्लाइमेक्स) पर पहुचते हैं। तथ्य का निरूपण चरम सीमा मे होता है।[3] और उसी मे एकाकी समाप्त हो जाता है। उनके एकाकियो मे क्रमानुसार पात्र तथा उनका मनोविज्ञान, कथोपकथन, चरमसीमा और सकलन-त्रय महत्व का है। सकलन-त्रय का वे बडी कठोरता से पालन करते

---

१ देखिए डा० रामकुमार वर्मा "रजत रश्मि" पृ० १५।

२. "हृदय के भावों के अनुसार कथोपकथनों का अनुपात होना चाहिये। केवल मनोरंजन के लिए या नाटककार द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए कथोपकथन का विस्तार करना पात्रों के कण्ठों से उनकी स्वाभाविक ध्वनि छीन लेना है। फिर तो नाटक के पात्र नहीं बोलते, नाटककार पात्रों के कठ में कोयल या कौआ बनकर बोलने लगता है।"

—डा० रामकुमार वर्मा, "ऋतुराज" पृ० १४,

३ "तथ्य का निरूपण हो चुकने के बाद कथावस्तु को आगे खींचना वैसा ही है जैसा सिनेमा देखकर जाड़े में पैदल घर लौटना।"

—डा० रामकुमार वर्मा, "ऋतुराज", भूमिका पृ० १५।

हैं और एक लम्बे दृश्य मे ही चरित्र चित्रण और समस्त कथा-सूत्रो को एकत्रित करते हुए बिना समय और स्थान बदले एकाकी को पूर्ण और स्वकेन्द्रित कर देते है।[1] उनमे चरित्र, वस्तुस्थिति और घटना का दिग्दर्शन एक ही दृश्य मे करा सकने की क्षमता है। स्वाभाविकता के साथ ऐसा नाटकीय सविधान हिन्दी मे प्रथम बार वर्मा जी द्वारा प्रतिष्ठित हुआ है।

वर्मा जी के नाटको की सृष्टि अभिनय की दृष्टि मे हुई है। अत उन्होने रगमच की आवश्यकताओं तथा दर्शको का विशेष ध्यान रखा है। आपके नवीनतम नाटक सग्रहो "रजतरश्मि, ऋतुराज, दीपदान, कामकन्दला" आदि के एकाकियो का सविधान श्रुतिनाट्य का है। कुछ नाटक जैसे "कलक रेखा, दुर्गावती, स्वर्णश्री, कृपाण की धार" आदि विशेष रूप से रेडियो के लिए लिखे गए हैं। अत उनमे रगमचीय सूचनाए नही हैं। शेष मे दी हुई रगमचीय सूचनाएं विस्तृत, व्यापक, काव्य-माधुर्य से भीगी हुई पाश्चात्य एकाकीकारो जैसी हैं। वे न केवल पात्रो की रूप कल्पना मे सहायता करती हैं, प्रत्युत रगभूमि के सम्बन्ध मे समस्त व्यवस्था, पूर्व इतिहास, मेज कुर्सी आदि वस्तुओ के स्थान, और चित्र तक देती हैं। अत हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि वर्मा जी ने हिन्दी एकाकी को पाश्चात्य शैली से युक्त कर नया सवि-धान दिया, जिस पर नये एकाकीकार चले हैं। शा के सवादो का सौन्दर्य, उनमे अभि-व्यक्त होने वाला व्यग्य और वाद-कौशल डा० वर्मा के एकाकियो मे पाया जाता है। उन्होने अपने सवादो को काव्योक्तियो से अलकृत किया है।

२. श्री उदयशंकर भट्ट हिन्दी नाटक के क्षेत्र मे भट्ट जी के "विक्रमादित्य, दाहर, अम्बा, सगर विजय, कमला, मुक्तिपथ, तथा नया समाज" आदि नाटको से उनकी इतिहास और समाज की समस्याओ के प्रति रुचि स्पष्ट होती है। आपने इति-हास की कथाए ली, जो अनजानी थी, तथा जिनसे हमारे सास्कृतिक और राष्ट्रीय पतन के बुनियादी कारणो पर प्रकाश पडता है। सामाजिक एकाकियो मे उस खोखलेपन, पाखड, आडम्बर और दुरभिमान का चित्र खीचा है, जिसके कारण भारतीय राष्ट्र सामा-जिक रूप मे जर्जर बन रहा है।[2] ये ही प्रवृत्तिया उनके एकाकियो मे प्रकट हुई हैं। अन्तर केवल यह है कि एकाकी के क्षेत्र मे नाटको की अपेक्षा विस्तार है। इस क्षेत्र मे पौराणिक, धार्मिक, सास्कृतिक, प्रागैतिहासिक काल से लेकर वैदिक युग के आचार-विचार के साथ भट्ट जी ने आधुनिक सभ्य जगत् की सामाजिक और मानसिक सम-

---

१. "यदि एकांकी अनेक दृश्यों में बँट जावे और दिनों या महीनों को व्याप्त कर ले तो उसमें और प्राचीन संस्कृत के "अंक" रूपक में अन्तर ही क्या रहा?" देखिए "रजतरश्मि" पृ० १०। "मेरी दृष्टि में स्थान-ऐक्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः सम्पूर्ण कार्य एक स्थान पर एक ही समय में हो जाना मैं एकांकी के लिए आवश्यक समझता हूँ।"

—"ऋतुराज" पृष्ठ १८।

२ देखिए, प्रो० जगन्नाथ नलिन कृत, "हिन्दी नाटककार," पृष्ठ १९८।

स्याओ के यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किए हैं।

भट्ट जी ने जहा एक ओर तर्कपूर्ण अनुसधान के बल पर काल के बन्धन को तोडकर मानव सृष्टि के आदि पुरुष स्वयम्भुव, मनु और शतरूपा द्वारा आदिम युग की झाकी दी है, वहा दूसरी ओर "कालिदास, शशिलेखा, सौदामिनी" आदि रचनाओ द्वारा मध्य युग के भी धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक चित्र उपस्थित किए हैं और आज की सभी समस्याओ पर यथार्थवादी व्यग्यात्मक एकाकी लिखे हैं। इनके एकाकी साहित्य मे गभीर सकेतवादी प्रतीक-रूपको, काव्य नाटको, से लेकर भावनाट्य सगीत रूपक, प्रहसन आदि सभी प्रकार की रगमचीय तथा ध्वनि-एकाकी शैली की रचनाए मिलती हैं जिनमे तटस्थ दृष्टि से एकाकीकार ने जीवन, समाज, इतिहास की ज्वलन्त और अछूती समस्याओ का चित्रण अत्यन्त सफलता से किया है। "आदिमयुग" के एकाकियो मे प्राणी-विज्ञान, समाज-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, पुराण, वेद आदि मानव-जाति शास्त्र (ऐनथरापोलोजी) का समन्वय करते हुए एक सर्वथा नवीन ढग के एकाकियो की सृष्टि की है। मनु के युग सम्बन्धी अब तक की समस्त बिखरी हुई सामग्री को परिष्कृत नाटकीय रूप मे प्रस्तुत करने का नवीन प्रयास किया है। उनकी सबसे बडी देन अन्तर्सघर्षों से पूर्ण "विश्वामित्र, "राधा, मत्स्यगधा, कालिदास, मेघदूत, विक्रमोर्वशी" आदि भावनाट्य हैं। प्रसाद के पश्चात भावनाट्य की परम्परा मे उनका स्थान सर्वोच्च है। भट्ट जी की कला काव्य की समृद्धि, कथा की रोचकता तथा नाटक की सजीवता से सम्पन्न है।[1]

भट्ट जी मूलत यथार्थवादी दृष्टिकोण लिए हुए हैं। आप यथार्थ को ही आदर्श मानते हैं। आपको आदर्श उसी सीमा तक ग्राह्य है, जब तक वह जीवन की ओर उन्मुख करे। जन जीवन के सघर्षों, राष्ट्रीय जागरण तथा सामाजिक गतिविधि को मुखरित करने मे आप सतत प्रयत्नशील रहे हैं। आपका एकाकी साहित्य समाज को समुन्नत करने की ओर एक प्रयोग है। "वे प्राचीन सस्कारो का आदर्श लेकर नवीन यथार्थ के प्रति चिरजागरूक रहे हैं। उनमे मानव के प्रति सहज निष्ठा, जीवन के प्रति सच्चा अनुसराग और इस निष्ठा तथा अनुराग को मूर्त रूप देने की लगन है।[2] आपकी कला कला के लिए नही, वरन्, जीवन के विकास और परिष्कार के लिए है। सकेतात्मकता तथा प्रतीक आपकी शैली की विशेषताए हैं।

भट्ट जी का रचनाकाल १६२१ से २२ मे असहयोग आन्दोलन के समय के दो राजनैतिक एकाकियो "असहयोग और स्वराज्य" तथा "चितरजनदास" से होता है। अन्तिम नाटक मे स्वय उन्होंने अभिनय भी किया था।[3] स्वतत्रता के नये प्रभात

---

१ देखिए, डा० नगेन्द्र, "पर्दे के पीछे", भू० पृ० ७।

२ वही, पृ० ७।

३ देखिए, उदयशकर भट्ट कृत "क्रान्तिकारी", भू० पृ० ७।

का सदेश गति मे आतुरता और विचारो मे क्रान्ति उन नाटको मे मौजूद थी। १६३६ मे हिन्दू मुसलिम समस्या, पारस्परिक घृणा, संघर्ष तथा क्वेटा भूकम्प से प्रभावित होकर अपने गाधीवादी विचारधारा से आच्छादित एक घटना प्रधान एकाकी "एक ही कब्र मे"[1] लिखा था। "दस हजार" १६३८ मे प्रकाशित हुआ था। १६३८ से १६४० तक के मध्य "दुर्गा, नेता, उन्नीस सौ पैंतीस, वर निर्वाचन, सेठ लाभचन्द" आदि सामाजिक एकाकियो की रचना हुई। १६४० से ४२ मे "स्त्री का हृदय, नकली और असली, वडे आदमी की मृत्यु, विप की पुडिया, जवावी, (नाट्यरूपक), मुन्शी अनोखेलाल" लिखे गये। इन एकाकियो मे नाना सामाजिक समस्याओ का चित्रण है। व्यग्य-प्रधान प्रहसन प्रस्तुत करने मे भट्ट जी को अच्छी सफलता मिली है। समस्याओ के सकेत मे जो कटु सत्य बोल रहा है, वह हमारी आखें खोलने और सजग करने के लिए पर्याप्त है। भाषा प्राजल व सजीव है। प्रारम्भिक कृतिया होते हुए भी इनसे एकाकीकार की जीवन-दर्शन की क्षमता प्रकट होती है।

१६४५ मे प्रकाशित "आदिमयुग, प्रथम विवाह, मनु और मानव, तथा कुमार सभव" आदि मे मानव सभ्यता के विकास मे क्रम और नाना परिस्थितियो के चित्र हैं। इनमे कला की प्रौढता है। टैकनीक के प्रयोग मे ये चारो एकाकी सर्वथा नूतन हैं। "कुमार सभव" मे कलावाद का समर्थन किया गया है। कालिदास को सुरा सेवी दिखाकर इसे कविता की प्रेरक शक्ति के रूप मे दिखाया है। नैतिक दृष्टि से यह मान्य न हो किन्तु यथार्थ दृष्टि से यह कला का अद्भुत उदाहरण है। वस्तुत इस एकाकी के कला, काव्यतत्व, व्यक्ति पात्रो के द्वारा मध्ययुग का जीवन चित्र उपस्थित किया गया है।

१६४५–४८ "सामाजिक एकाकियो का निर्माण प्रारम्भ होता है जो १६५४ तक चलता है। "समस्या का अन्त, गिरती दीवारें, पिशाचो का नाच, बीमार का इलाज, आत्मदान, जीवन (प्रतीक रूपक), वापसी, मदिर के द्वार पर, दो अतिथि" (प्रहसन) आदि मे मनुष्य की नौ प्रकार की मानसिक प्रवृत्तियो का सजीव चित्रण है। इनमे कुछ एकाकी सुधारवादी और समस्यामूलक दृष्टिकोण से लिखे गए हैं। प्रत्येक एकाकी तीक्ष्ण व्यंग्य के साथ-साथ एक समस्या का समाधान करते हुए विपमता के सघर्ष का चित्र उपस्थित करता है। १६४६ मे प्रकाशित "अघटित, अधकार, नये मेहमान, नया नाटक, विस्फोट, धूमशिखा" आदि एकाकियो पर श्रुति-नाट्य की छाया है। कुछ एकाकी रगमच पर भी सफलतापूर्वक खेले गये हैं। इनमे नाटककार ने अनुभूति के द्वार खटखटाकर निकलने की चेष्टा की है। वह अपने पात्रो के रूप मे भी कुछ नये अभीष्ट चित्र उपस्थित करता है।

१६४६–१६५५ तक के एकाकियो मे भट्ट जी की कला अपनी प्रौढतम स्थिति

---

१. हंस दिसम्बर १६३६ में प्रकाशित।

पर पहुंच गई है। "नई बात, बाबूजी, यह स्वतन्त्रता का युग, मायोपिया, अपनी अपनी खाट पर, बार्गेन, ग्रहदशा, पर्दे के पीछे", आदि मे भट्ट जी की कला ऐसी निखरी है, जैसे अपना सहज आधार पा गई हो।[१] अधिकाश एकाकी सामाजिक व्यग्य हैं। पिछले दिनो रेडियो के लिए विशेषरूप से भट्ट जी ने "गाधी जी का रामराज्य, धर्मपरम्परा, एकला चलो रे, अमर अर्चना, मालती माधव, मेघदूत, उत्तर रामचरित्र (अनुकूलन), हिमालय के शिखर से, वन महोत्सव, मदन दहन", आदि एकाकी लिखे हैं। इनमें जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियो, भूत भविष्यत वर्तमान की विकृत छायायो, मनुष्य के प्राचीन, वर्तमान और भविष्यत के चित्रो की झांकी प्रस्तुत की गई है। एकाकी कला की प्रौढता के साथ भट्ट जी के एकाकियों में व्यजना का विकास होता गया है। डा० नगेन्द्र का यह मत सत्य है कि "चिन्तन और अनुभव से परिपुष्ट भट्ट जी की जीवनदृष्टि अब प्राचीन और नवीन, प्रवृत्ति और निवृत्ति, अनुशासन और स्वच्छन्दता में सहज ही सतुलन कर लेती है और इस युग की समस्याओ के मर्म तक पहुचकर व्यग्य के द्वारा उनके समाधान की ओर सकेत कर सकती है। उनका व्यग्य निषेधात्मक ही नही है, रचनात्मक भी है। उसमे केवल भर्त्सना मात्र नही है, सहानुभूति भी है।[२]

भट्टजी का एकाकी साहित्य सामाजिक आलोचना, राष्ट्रीय जागरण तथा सास्कृतिक पुनरुत्थान से सम्बन्धित है। राजनीतिक क्षेत्र के आपके दो एकाकियो का उल्लेख हो चुका है। तीसरी कृति "क्रान्तिकारी" (१९५३) में बीसवी शताब्दी के सामूहिक राष्ट्रीय जागरण की झाकी देने का प्रतीकात्मक प्रयत्न है।[3] "दो अतिथि, नये मेहमान, बीमार का इलाज, अपनी अपनी खाट पर" आदि प्रहसन व्यग्य न होकर निर्मल हास्य के उदाहरण हैं। प्रतीक रूपको मे लक्षितार्थ और वाच्यार्थ की गम्भीरता है। विषय वैविध्य की दृष्टि से इनके एकाकियो का विस्तार व्यापक, अन्तर्दृष्टि, सामाजिक चेतना के प्रति जागरूकता और इतिहास का समीकरण महान् है। बहुत कम हिन्दी एकाकीकार इतनी गहराई से समाज इतिहास और जीवन का दर्शन कर सके हैं।

भावनात्र्यो "विश्वामित्र, मत्स्यगधा, राधा तथा कालिदास, मेघदूत, विक्रमोर्वशी" आदि ध्वनिरूपको मे भावो की प्रधानता के साथ अन्तर्जगत में उठने वाले नाना घात-प्रतिघातो, वासना विवेक और नैतिकता का सघर्ष है। अन्तर्द्वन्द्वों को चित्रित करने मे भट्ट जी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इनमे न घटनाओ की प्रधानता

---

१. श्री शिवदानसिंह चौहान।

२ देखिए डा० नगेन्द्र कृत "पर्दे के पीछे" भू०, पृ० ६।

३ यह युग स्वयं अपने में कई छोटे-छोटे युगों को समेटे हुए है, मैंने नाटक में प्रतीक रूप में ऐसी सुगठित झांकी देने का प्रयत्न किया है। उदयशकर भट्ट, "क्रान्तिकारी" पृ० ६।

है, न कथा की लम्बाई, प्रत्युत अन्तर्जगत के भावो तथा मन. संघर्ष की प्रधानता है। संकेतात्मक शैली मे प्रकृति के रूपको द्वारा इन नाटको की आत्मा जैसे उभर-उभर कर मानस अन्तर्द्वन्द्वो को प्रकट करती है। प्रेम, वासना, अह के विभिन्न रूप कही समर्पण मे, कही विद्रोह मे, कही आत्म तल्लीनता मे सहज स्वाभाविक रूप मे प्रस्तुत हुए हैं। प्राकृतिक दृश्यो का उपयोग उद्दीपन के लिये हुआ है। इन नाटको मे प्रतीक प्रकृति है, जिसके द्वारा पात्र अपने हृदय के अन्तर्द्वन्द्वो को स्पष्ट करते है। प्रकृति के रूप विधानो के द्वारा मानव मन की प्रवृत्तियो का विश्लेषण ही उनकी सफलता है। सभी भाव नाट्यो मे स्त्री पात्रो की प्रधानता है। पुरुष पात्र गौण है तथा निर्बलताओ से परिपूर्ण हैं। केवल योगिराज कृष्ण ही अपने पुरातन शक्ति सम्पन्न रूप मे प्रकट हुए हैं। शृङ्गार रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है। "मत्स्यगंधा" के कुछ पद्यो मे पूर्णत लाक्षणिक तथा प्रतीक भावना से काम लिया गया है। प्रकृति के रूप मे जीवन के रूपक क्रमश उपस्थित हो गये है। छायावाद का प्रभाव भी स्पष्ट है।

भट्ट जी के एकाकियो का सविधान रगमचीय है तथा उन्हें सरलता से अभिनीत किया जा सकता है। कुछ को छोडकर शेष एकाकी एक लम्बे दृश्य से ही पूर्ण हो जाते है। कुछ मे पूर्व कथा दी हुई है, रगसूचनाए लम्बी और व्यापक है जिनसे एकांकी सुपाठ्य बन गये है। तात्पर्य यह है कि भट्ट जी के एकाकी जहा ज्ञान बहुल है, मानव जीवन की पारदर्शिता को प्रकट करते हैं, वहा वे जीवन के बहु व्यापी अग-उपागो का गहन विश्लेषण भी करते है। भूत, भविष्यत, वर्तमान के प्रति तीक्ष्ण दृष्टि, मानव के विकास मे चेतना का अन्तर्दर्शी विवेचन उनके इस साहित्य का रूप है। मालूम होता है जैसे भट्ट जी के द्वारा गीति, कविता, कथानक की प्रौढता, समय की अतरग दृष्टि, ऐतिहासिक ऊहापोह, जीवन कल्याण की सभी भावनाओ का उनके नाटकों मे प्रकटीकरण हुआ है।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र : मिश्र जी के एकाकियो में पाश्चात्य प्रभाव अपेक्षाकृत जल्दी ही प्रकट हो चुका था, किन्तु उनका मूल स्रोत अंग्रेजी साहित्य न होकर संस्कृत नाट्य साहित्य है। आपका 'अशोक' (१९२०) पुरानी पद्धति पर विरचित है, किन्तु "संन्यासी" (१९२७) प्रसाद जी की कृत्रिम भावुकता, अतिरंजन और शेक्सपियर वाली काव्यमयी पद्धति के विरुद्ध एक क्रान्तिकारी प्रयास था, प्रसाद के चरित्र निर्माण में जो मनोवैज्ञानिक भूलें है, उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप 'संन्यासी" की सृष्टि हुई थी। मिश्र जी का जीवन दर्शन निजी है। ऊपरी आकार प्रकार, भाषा, संवाद, व्यंग्य आदि अवश्य ही थोडा प्रभाव इब्सन और उनके बाद के नाट्यकारो का उन पर पड़ा है पर भीतरी भावलोक भारतीय है, कालीदास और भास की परम्परा में है।[1] प्रसाद के नाटकों की काव्यमयी कृत्रिमता, मनोवैज्ञानिक प्रभाव और संघर्ष का

१. इब्सन ने पश्चिम के नाटक साहित्य में जो नई बातें पैदा की थीं, और जिस पर

द्वद्व की आवी के विरुद्ध मिश्र जी ने नाटको में स्वाभाविकता, लोकवृत्ति का अनुभव, मनोवैज्ञानिक अतर्दृष्टि और बुद्धिवाद का प्रयोग कर हिन्दी एकाकी को पाश्चात्य एकाकी के समकक्ष ला खडा किया है। अतिरंजित और काल्पनिक साहित्य न लिख कर मिश्रजी ने जीवन के स्वर में यथार्थवादी साहित्य का निर्माण किया है।

मिश्र जी बुद्धिवादी हैं। वस्तुत उनका नाट्य साहित्य विवेक तर्क, मनोविज्ञान का साहित्य है, अवविश्वास या परम्परा निर्वाह का नही। वे जीवन की ऊपरी सतह को उठाकर स्त्री पु ष, धर्म, सदाचार जीवन और मृत्यु का चिरन्तन स्वरूप हमारे सामने तर्कपूर्ण रूप में उपस्थित करते हैं।[१]

मिश्र जी के "राक्षस का मन्दिर" और "मुक्ति का रहस्य" (१९३०) में प्रकाशित हुए थे। "राज योग" तथा "सिंदूर की होली" (१९३३) में लिखे गए थे। एकाकियो में आपके १. अशोक वन (सग्रह), २ प्रलय के पथ पर (सग्रह) ३ एक दिन ४ कावेरी में कमल (१९५१) ५ बलहीन (१९५२) ६. नारी का रग ७ स्वर्ग में विप्लव (१९४७) "भगवान मनु तथा अन्य एकाकी (१९५७) इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक और सामाजिक सभी प्रकार की समस्याओ को बुद्धिवादी मनोवैज्ञानिक विवेचना का विषय बनाया गया है। ये न केवल मनोरजन और ज्ञानवर्द्धक हैं, प्रत्युत अभिनीत भी किये जाने योग्य है। कथोपकथन प्रभावपूर्ण एव मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से परिपूर्ण हैं।

"इसके अतिरिक्त विदेशी साहित्य का बुद्धिवाद, यथार्थवाद, चिरन्तन नारीत्व की समस्या, प्रकृति की ओर परिवर्तन का अनुरोव, जीवन के मौलिक सत्यो की निर्भ्रान्त स्वीकृति आदि सकुल प्रवृत्तियाँ उनके मन में काम कर रही हैं। इवर भारत की अपनी समस्याए यहा की आध्यात्मिकता का भी उन पर प्रभाव है।"[२]

मिश्र जी के एकाकियो पर नवीन प्रभाव दो प्रकार से दृष्टिगोचर होता है। अन्तरग तथा वहिरग में परिवर्तन। वहिरग में कृत्रिमता के सब साधन, जैसे कृत्रिम भाषा, स्वगत, सगीत, भरत वाक्य, वर्णनात्मकता आदि को बहिष्कृत किया गया है। अन्तरग में मनोवैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि, मूक अभिनय, अनुभाव चित्रण, भारतीय जीवन दर्शन के अनुरूप परिस्थितियो तथा व्यापारो की गठन का प्रचलन किया गया है,

---

सभी परिचमी नाटककार अभी तक चलते आ रहे हैं, वह यूरोप के लिए नई थी, पर भास के नाटक चक्र का पता जिन्हें है, वे जानते हैं कि इस देश के साहित्य में भरतमुनि ने लोकवृत्ति के अनुकरण का जो सिद्धांत अपने नाट्य-शास्त्र में रखा था, उसी पर यहाँ के कवि और नाटककार चलते रहे हैं' लक्ष्मीनारायण मिश्र 'मुक्ति का रहस्य" भूमिका पृष्ठ २८।

१ "सन्यासी" और "राक्षस का मन्दिर" लिख चुकने के बाद मैं इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि मेरी प्रकृति बुद्धिवाद की ओर चली है। "मुक्ति का रहस्य" भूमिका प्रथम संस्करण, पृष्ठ ६।

२. डा० नगेन्द्र "आधुनिक हिन्दी नाटक" पृ० ५५

आपकी नाट्य-कला में भारतीयता को लिए हुए प्राचीनता से प्रेरणा है, साथ ही पाश्चात्य प्रभाव को लिए हुए नवीनता की ओर चेतना।

इनके पश्चात कितने ही एकाकीकार यथार्थवादी मार्ग पर चले। अब तो समस्या-एकाकी का हिन्दी में बाहुल्य है, किन्तु मिश्र जी ने पाश्चात्य साहित्यकारो के दृष्टिकोण मात्र को ही अपनाया और अपनी मौलिक प्रतिभा से हिन्दी में पाश्चात्य शैली में समस्या एकाकी का सूत्रपात किया था। आपके एकाकी साहित्य में आपका निजी व्यक्तित्व तथा भारतीयता पूर्णरूप से रक्षित है।

मिश्र जी में नवीन युग की स्वाभाविकता, बुद्धिवाद तथा मनोवैज्ञानिक चेतना विकसित हुई है। देश की वर्तमान तथा अतीत की समस्याओ के विषय में वे गहनता से विचार करते हैं, और समस्या के हल के रूप में अपने नाटक प्रस्तुत करते हैं। सर्वत्र हमें उनका नया रूप, नई व्याख्या और नया दृष्टिकोण उपलब्ध है। एक ओर देश की राजनीतिक, सामाजिक या रूढिगत पारिवारिक समस्या को उठाकर उस पर प्रकाश फेंकते हैं और निजी सुलझाव उपस्थित करते हैं, तो दूसरी ओर किसी पौराणिक कथानक को उठाकर उसमें नवीन समस्याओ का समावेश कर देते हैं। नूतन सामयिक ढंग से पुरानी मान्यताओ की व्याख्या आप ही कर सकते हैं। कल्पना से कोई नया दृश्य वे बना सकते हैं, किन्तु उसमें भी वही बुद्धिवाद तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मुखरित होता है। पलायनवाद, कृत्रिम भावुकता या अतिरंजित आवेश के वे विरोधी हैं।

मिश्र जी के समस्या नाटको में राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओ ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है। व्यक्ति की समस्या, सेक्स की मूल समस्या के साथ अनेक गौण समस्याए भी आपने ली हैं, जैसे उन्मुक्त प्रेम, वेश्या सुधार, एशियाई संघ, इलेक्शन, खद्दर, समाजवाद के व्यवहारिक पक्ष का विवेचन, गाधीवाद की व्याख्या, सुधारवाद का दंभ, नारी की चेतना, सिद्धात और आदर्श का खोखलापन, अव्यवहारिकता, अतीत संस्कृति का इतिहास। आपकी दो समस्याए शा से प्रभावित है, प्रेम और नारीत्व, आपको निष्फल प्रेम मान्य नही है। प्रेम और नारीत्व की समस्याए उठाकर आप उनके चित्रण में नैसर्गिकता और स्वाभाविकता तो ला ही सके है, प्रेम में वासनावृत्ति की तुच्छता भी दिखा सके है, पर कोई निश्चित आदर्श प्रस्तुत नही कर सके हैं। सर्वत्र एक तटस्थता वर्तमान है। आपके एकाकियो में भावावेश का स्थान जीवन की अनुभूति और भावनाओ का नैसर्गिक विवेक, बुद्धि, तर्क और सतुलन ने ले लिया है। कृत्रिम क्षणिक भावुकता, सौंदर्य भावना के चक्र में वे नही पड़े है। बुद्धिवाद का उन में विशेष योग है।

कुछ आलोचको का विचार है कि मिश्र जी द्वारा प्रतिपादित सेक्स समस्या पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानो पर आधारित है। मिश्र जी का विचार है कि फ्रायड से बहुत पहले वात्स्यायन रति भाव को जान चुके थे। रसराज के रूप में संस्कृत के समूचे साहित्य मे शृंगार का वर्णन, यहा तक कि महाकवि कालीदास द्वारा शंकर-

पार्वती की रति क्रीडा का चित्रण फ्रायड को कुछ ऐसी स्थिति में नहीं छोडता, जो हमारे देश के किमी मौलिक साहित्यकार का सबल बन सके। भागवत के १० वें स्कन्ध में वर्णित प्रणय और शृंगार की मधुमयी भूमि जिस देश में मुक्तिदायनी मानी गई हो, उसी पद्धति के मिश्र जी उपज हैं।

आज रूढिवादी विवाह-पद्धति एव नवीन स्वतन्त्र वातावरण में पले आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा मे प्रभावित युवक युवतियो के प्रेम सम्बन्धो में बहुत अन्तर आ गया है। आज के युवक युवती प्राचीन रूढियो और सस्कारो से घबरा कर उन्मुक्त एव स्वतत्र प्रेम के लिए छटपटा रहे हैं। मिश्र जी ने इन्ही सैक्स समस्याओ का मौलिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यद्यपि इनकी समस्याए एव सुलझाव नवीन और मौलिक हे, किन्तु भारतीय वातावरण के उपयुक्त नहीं हैं, जहा कि सभ्यता आध्यात्मिक और नैतिक तत्वो पर आधारित है। मिश्र जी के शब्दो में उनके एकाकियो में "क्या होना चाहिए, क्या न होना चाहिये इन बातो का प्रश्न तो यहा उठता ही नही। यहा तो जो है।" वे साहित्य तथा सामाजिक रूढ़ियो को तोड़ कर स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता तथा स्वतत्रता की ओर अग्रसर दिखाई पडते हे। फिर भी यह मानना पडेगा कि उनका हृदय भारतीयता से शून्य नही है।

टैकनीक की दृष्टि से मिश्र जी क्रान्तिकारी हैं। योरोप की भाति हिन्दी नाट्य-क्षेत्र में जो जो कृत्रिमनाए थी, उसके विरुद्ध विद्रोह में आपका स्वर ऊंचा था। आपके एकाकियो में न तो अनेक पात्र है, न गाने, सोरठे, गजल, या कविता पाठ की सामग्री, न अनावश्यक दृश्यो का परिवर्तन। वे एक लम्बे दृश्य में ही समाप्त हो जाते हैं। बडे नाटक अधिकतर ३ अको के हैं। एक बडे दृश्य को विकसित कर अक का रूप दे दिया गया है। आपने स्वगत-कथन, घटनाओ की जटिलता, वार्तालाप में क्लिष्ट साहित्यिक प्रयोग आदि को त्याग कर स्वाभाविकता का मार्ग अपनाया गया है। विस्तार इतना नही कि उसमें विभिन्न देश, काल, व्यवस्थाओं और घटनाओ की विभ्रममयी भरतो हो। आधुनिक योरोपीय नाट्य-शैली के अनुकूल गिने चुने आवश्यक पात्र हैं। व्यापार भी सुसगत और सुनियन्त्रित है।

रगमच की रचना तथा उसके सचालन के सम्बन्ध में भी सुगमता की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। मिश्र जी ने सकलनत्रय का निर्वाह वडी कुशलता से किया है। एक समय की घटना तक ही परिमित रह कर ये एक एकाकी में एक ही कृत्य का चित्रण करते है। आपके कुछ एकाकियो में अनावश्यक विस्तार का दोष आ गया है तथा शुष्क बुद्धिवाद मे नीरसता भी आई है, किन्तु समस्या-चित्रण में आप अद्वितीय हैं।

४ **उपेन्द्रनाथ अश्क** अश्क के एकाकाकियो पर पाश्चात्य टैकनीक का प्रभाव, स्थानीयता के प्रति सजगता, वातावरण सृष्टि की सत्यता, अनुभूति की यथार्थता एव

सांकेतिक प्रतीकों वाली पद्धति में प्रकट होता है। अश्क का क्षेत्र सामाजिक और पारिवारिक है। शैली यथार्थवादी व्यंग्यात्मक। इनमें मानव-हृदय, विशेषत नारी हृदय का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। पात्रो के चरित्र चित्रण तथा समस्याओं के उभारने की दृष्टि से ये एकाकी अभूतपूर्व है। गभीर मनोवैज्ञानिक एकाकियो से लेकर हल्के हास्यरस के सफल प्रहसनो की सृष्टि आप कर सके हैं। इनमें न केवल अपूर्व नाटकीयता होती है, वरन् कहानी की सी दिलचस्पी भी है। अभिनय-कला का पूरा ध्यान रखा गया है।

अश्क के एकांकी भारतीय समाज, विशेषत. हिन्दू परिवारो की नाना समस्याओ के अध्ययन, स्वानुभव तथा प्रतिभा की सुषमा से पूर्ण पाश्चात्य टैकनीक से प्रभावित नक्काशी की चीज हैं। आपने द्विवेदी युग के अपरिपक्व एकाकी को लिया तथा निज प्रतिभा पाश्चात्य टैकनीक के अध्ययन और स्टेज के अनुभव के बल पर उसे परिपुष्ट कर पाश्चात्य एकाकीकारो मैटरलिंक, स्ट्रिडवर्ग, ओ नील, सिंज, बेरी आदि के समकक्ष ला खड़ा किया है। न केवल आपने हिन्दी एकाकी को पाश्चात्य टैकनीक से वेष्टित किया, वरन् उसमें आधुनिक भारतीय समस्याओ का मनोवैज्ञानिक ढग से प्रतिपादन कर हिन्दी साहित्य का महत्वपूर्ण अग बनाया है।

अश्क के एकाकी कल्पना के व्योम में विहार करने वाले रोमानी कवि की स्वप्निल पृष्ठ-भूमि पर विनिर्मित नही हुए है, प्रत्युत उनमें यथार्थवाद की ठोस अनुभूतिया, मानसिक भावो का सूक्ष्म विश्लेषण तथा अन्तर्द्वन्द्व का पर्याप्त निदर्शन है। द्विवेदी युग के एकाकीकारो में अपने नाटको का विषय केवल समाज की विद्रूपताओ को ही बनाया था और पात्रों के अन्तर्भावो तथा अनुभूतियो की उद्भावना नही के बराबर की थी। अश्क ने सभी कृत्रिमताओ से बचते हुए जर्जरित भारतीय समाज के अनेक चित्र खीचे है। रूढ़िवादिता तथा प्राचीन जीर्ण शीर्ण परम्परा से त्रस्त मध्यवर्ग के क्रन्दन, प्रेम, घृणा, आनन्द, विषाद, संयोग वियोग के अनेक पहलू अंकित किये हैं। आपके एकाकी गिरती हुई सामाजिक सामन्तशाही के भग्नावशेष हैं।

अश्क की वृत्ति अन्तर्मुखी है। वे अपनी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के सहारे आगे बढे हैं। किसी प्रसिद्ध नाटक का अनुवाद करने, विचार ग्रहण करने या उसी की शैली का अनुकरण करने की प्रवृत्ति उनमें नही। पात्र उनके जाने पहचाने व्यक्ति हैं। उन्होंने जीवन में विभिन्नता का अभास पाया है। अनेक सुखद और दुखद अनुभव उनके मस्तिष्क में सुरक्षित हैं। ये पात्र घटनाएं तथा परिस्थितियां किसी व्यक्तिगत चोट से उद्भूत होकर उनके आधारभूत विचारो में सयुक्त हो जाते हैं। उस पर उनकी प्रतिभा का रग और काव्य-सौष्ठव का माधुर्य छा जाता है तथा एकाकी का निर्माण हो जाता है। कई बार दैनिक जीवन के कई पात्र सम्मिलित रूप से एक नवीन पात्र के सृजन में सहायक होते हैं। किन्तु ये नये पात्र नाटक में अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व ले कर आते हैं।

अश्क ने सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, व्यंग्यात्मक, प्रहसन और सांकेतिक प्राय सभी शैलियो के एकाकियो के प्रयोग किए हैं। जिनमें विषय तथा कलागत वैचित्र्य है। प्रयोग से यह तात्पर्य नही कि अश्क ने प्रयोगवाद के दृष्टिकोण किए हैं, अर्थात् प्रचलित शैलियों अथवा साहित्य के रूपो (फार्मस) से ऊब कर नई फार्मस निकाली हैं। अश्क का विश्वास दूर की कौडी लाने में नही है। जब लोग पैरो पर खडे हो, तो वहां सहसा सिर के बल खडे हो जाना कि देखने वाले चौंक जायें, अश्क को पसन्द नही है। किसी घटना अथवा अनुभूति को लेकर जब वे उसे व्यक्त करते हैं, तो यह प्रयत्न करते हैं कि एकाकी का वह प्रकार (फार्म) अपनायें, जिसमें वह भावना या सकेत पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो जाये। इस प्रयास में यदि कोई सर्वथा नवीन फार्म आ जाय, अथवा नया प्रयोग हो जाये, तो उन्हें इसमें भी आपत्ति नही है। उनकी दृष्टि उस अनुभूति के सुचारू और सर्वांगीण व्यक्ति करण पर रहती है, प्रयोग मात्र पर नही।

अश्क का दृष्टिकोण एक आलोचक का है। वे समाज तथा मानव जीवन के आलोचक है। घरो, परिवारो, मनुष्यों के मनो तथा समाज के अन्तराल में जो विद्रूपतायें प्रविष्ट हो गई हैं, जिनसे समाज पतन के मार्ग पर जा रहा है और आगे नही बढ़ पा रहा है, अश्क उन्हें उभार कर हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। वे न तो कोई समस्या देना चाहते हैं, न उपदेशक बन कर कोई आदर्श ही उपस्थित करते है। वे तो समाज की आलोचना कर रहे हैं। समाज तथा मनुष्य की अन्तर्वृत्तियो के भीतरी पर्तों को उखेड रहे हैं। उनमें समाज के प्रति एक तीखा व्यग्य और हल्की सी नैराश्यमयी वेदना छुपी है।

अश्क की सबसे बडी विशेषता मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन का अनुवीक्षण तथा नाटकीय स्थिति की पकड है। आपका प्रत्येक एकाकी किसी मूल सामाजिक समस्या को लेकर जीवन या समाज की किसी गूढ गुत्थी की ओर सकेत करता है या मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में पूर्ण होकर हृदय के अन्तस्थल को स्पर्श करता है। पात्रो का चरित्र चित्रण जिस मनोवैज्ञानिक शैली से किया जाता है, वह अश्क का निजी है।

"अश्क" मध्यवर्ग के समाज की कमजोरियो, रूढ़ियो तथा जीर्ण-शीर्ण परम्पराओ की ओर अनवरत ध्यान दिलाते हैं। वे उपदेश देने में विश्वास नहीं करते, समाज, व्यक्ति अथवा सस्थाओ के खोखलेपन, युगो की कडुवाहट, रूढ़ियो की कमजोरियो का चित्रण इस व्यग्यात्मक शैली से करते है कि एकाकी समाप्त करते न करते दर्शक का मन उसके प्रति विद्रोह से परिपूर्ण हो उठता है। "अधिकार का रक्षक", "लक्ष्मी का स्वागत", "तूफान से पहले" आदि अनेक एकाकी उनकी कला की उपादेयता के उदाहरण हैं। आपने नारी समस्या का विशेष विश्लेषण किया है। भारतीय नारी की विवशता, करुणा, शोषण और दैन्य का मार्मिक चित्रण है।

आपके "चरवाहे, मैंमूना, चुम्बक, चिलमन, चमत्कार, खिड़की, सूखी डाली" आदि सांकेतिक प्रतीकात्मक एकांकी अंग्रेजी एकांकियो से कहीं अधिक तीखे बन पडे हैं। इनके पात्र चिर-परिचित लगने पर भी कुछ विचित्र से अजनबीपन का आवरण ओढे दिखाई पड़ते हैं, तथा कई बार तो वे पात्र, पात्र न रह कर स्वयं प्रतीक अथवा सकेत बन जाते है।[1] हिन्दी एकांकी में प्रथम बार, "अश्क" सकेतो तथा प्रतीको द्वारा मार्मिक रहस्य व्यक्त करने की शैली का ारम्भ हुआ। इन नाटको में परोक्ष प्रतीकों अथवा संकेतो के पर्दे में विषय-वस्तु का ताना-बाना उलझता-सुलझता रहता है। ये प्रतीक जड़ हों अथवा जंगम प्रायः रंगमच पर आते हैं लेकिन कई बार परोक्ष में रह कर एकाकी पर भारी प्रभाव डालते हैं। ये एकांकी घोर यथार्थ पर अवलम्बित हैं। वातावरण रोमानी है। इनका मुख्य गुण साकेतिकता है।

उदाहरण स्वरूप, "चरवाहे" में चरवाहे को चिन्तारहित यौवन का निश्चयात्मक प्रतीक माना गया है। "चिलमन" उस दुःखभरे दीपक को प्रतीक है जो हलकी हलकी लेकिन अनश्वर जलन लिये हुए है। जीवन के लिए किरण की छटपटाहट अश्क ने लाक्षणिक शैली में व्यक्त की है। इस एकाकी में शशि स्टेज पर नहीं आती, किन्तु उसका रूप स्पष्ट सामने आता है। यही अश्क के सकेतों की विशेषता है। "चमत्कार" में सकेतों की बाढ़ तेहरी हो गई है। मृत मीन, भ्रष्ट जीवन का, गडवाली गोलियाँ साधारण लोगों के विश्वास का तथा श्वेत दाढ़ी वाला सर्ववेत्ता लेखक का प्रतीक है। 'मैंमूना" में आमना का वर्तमान पति अरशद एक प्रकार से मैंमूना का ही प्रौढ प्रतीक है। "चुम्बक" में लोहचून के दो कणो, "सूखी डाली" में वट और सूखी डाली और "खिड़की" में प्रतीक्षा करने वाले प्रेमी के संकेत और प्रतीक कलात्मक हैं।[2]

अश्क ने इसी सकेतात्मक शैली में "अंधी गली" एकाकी-माला लिखी है। एक गली को ले लिया है। उसके विभिन्न घरो में जो कुछ हो रहा है, उसे भिन्न-भिन्न एकांकियो में चित्रित किया है। एक एकांकी विभिन्न होकर भी एक ही है तथा हमारा समाज एक अंधी गली के सदृश्य है, यह संकेत उसमें कलात्मक ढग से दिखाया गया है। प्रकट रूप में अंधी गली चाहे किसी बड़े नगर की बीसियो गलियो में से एक गली है, पर परोक्ष में वह ऐसे समाज का प्रतीक है, रूढियों सकीर्णताओं और वर्जनाओं की दीवारें जिसका मार्ग अवरुद्ध किए हैं और जिनमें एक बार घुसने पर आगे बढ़ने का मार्ग नहीं मिलता।

स्वभाव से गंभीर तथा सवेदनशील होने के कारण आपके सबसे सफल एकांकी वे हैं, जिनमें मानवीय भावो तथा दुःखान्त कथानकों को आधार बनाया गया है,

---

१. देखिए, "चरवाहे : एक अध्ययन" कौशल्यादेवी, पृ० २।
२ वहीं, पृष्ठ १८।

या जिनमें दो विरोधी तत्वो को लेकर आन्तरिक पक्ष का तीव्र सघर्ष उत्पन्न किया गया है। पात्रो में स्त्री पात्र विशेष सुचारुता और सचाई से अकित किये गये हैं, जिनमें बेवस पीडित, परित्यक्ता, शोषित और यौन-विकृति से पीडित नारिए हैं। इनकी भिन्न-भिन्न मन स्थितियो में नाना मानसिक जटिलताए तथा अनुभूतिए हैं। पुरुष पात्रो का मनोविज्ञान उतनी सफलता से चित्रित नहीं हुआ है।

टैकनीक के दृष्टिकोण से अश्क के नाटक मुख्यत रगमच के लिए लिखे गए हैं, यद्यपि वे सुपाठ्य भी हैं। रेडियो एकाकी वे विशेष रूप से तैयार करते हैं और रेडियो पर वे सफलता से प्रसारित हुए हैं। अश्क के नाटको में एक और भी विशेषता है जिसे स्थापत्य-सतुलन कह सकते हैं। एक इमारत जिसके सभी अग भली भाति सवारकर शिल्पी ने बनाये हो, जिसको एक निगाह से देखने पर सम्पूर्णता का अभास हो। ऐसे एकांकी का निर्माण साहित्यिक वस्तुकला का ही करतब कहा जा सकता है। और तृतीय विशेषता जो अश्क के नाटको में ही नही, अन्य रचनाओ में ही है, वह है उनकी ईमानदार अभिव्यजना, यह अभिव्यक्ति का खरापन अश्क के व्यक्तित्व की परिपक्वता को घोषित करता है।

कालक्रम के अनुसार अश्क के साहित्य का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं

१. प्रारम्भिक कृतियां १९३६ से १९३९, सामाजिक व्यग्य १ पापी (१९-३७) २ लक्ष्मी का स्वागत (१९३८), ३ मोहब्बत (१९३८), ४ क्रासवर्ड पहेली (१९३९), ५ अधिकार का रक्षक (१९३८), ६ आपस का समझौता (१९३९), ७ स्वर्ग की झलक (१९३९), ८ विवाह के दिन (१९३९), ९ जोक, (प्रहसन १९३९)।

२ द्वितीय उत्थान : १९४० से १९४३ सांकेतिक और प्रतीकात्मक : १ चरवाहे, २ चिलमन (१९४२), ३ खिडकी (१९४२), ४. चुम्बक (व्यग्य), ५ मैमूना (१९४२) ६ देवताओ की छाया में (१९४०), ७ छठा बेटा (फैंटेसी), ८ चमत्कार (१९४३), ९ सूखी डाली (१९४३) ९ अधी गली (१९५२)।

३ तृतीय उत्थान १९४४ से १९५२ मनोवैज्ञानिक एकांकी तथा प्रहसन · १ आदि मार्ग (१९४७), २ अजो दीदी, ३ भवर (१९४४), प्रहसन ४ कैसा साब कैसी आया, ५ अन्धी गली (१९५२), ६ पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ (१९५१), ७ बतसिया (१९५२), ८ सयाना मालिक, ९ कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन, १० मस्केबाजो का स्वर्ग (१९५२), ११ जीवन साथी (१९५२)।

प्रथम वर्ग में अश्क के प्रारम्भिक सामाजिक व्यग्य हैं, जिनमें समाज की जीर्ण शीर्ण परम्पराओ के प्रति क्रान्तिकारी रूप प्रकट हुआ है। "पापी" में सास का बहू पर अत्याचार, समाज में स्त्रियो की निम्न स्थिति, मध्यवर्गीय पतनोन्मुख समाज के शिकजे में जकडी हुई नारी का हाहाकारमय चित्रण है। "देवताओ की छाया में" एक अभावग्रस्त सामाजिक चक्की में पिसने वाली मुस्लिम युवती की जीवन झाकी

है। 'जोंक" में आधुनिक अतिथियों पर व्यंग्य है। "अधिकार का रक्षक" एकांकी में उन सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का खाका खींचा गया है, जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। "विवाह के दिन" एकांकी में पुरानी वैवाहिक पद्धति पर एक व्यंग्य है। "पहेली" आधुनिक शिक्षित युवकों के काम से पलायन की प्रवृत्ति पर व्यंग्य है। "आपस का समझौता" एकांकी में डाक्टरों की चालबाजियां, धोखा, झूठ-कपट और ठगने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य है। "तूफान से पहले" में साम्प्रदायिक झगड़ों का सजीव चित्र खींचा गया है। "वेश्या" एकांकी में प्रेम में अपमान के प्रतिशोध, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा का अध्ययन है। "तौलिये" एकांकी में तकल्लुफ और बाह्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति पर आघात है, "पक्का गाना" एक साहित्यिक वैराइटी है, जिसमें भारतीय थियेटर, रेडियो तथा फिल्म जगत की आलोचना की गई है। अश्क ने मध्यवर्ग की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याएं चित्रित करने में विशेष रुचि दिखाई है।[1]

द्वितीय उत्थान में अश्क के संकेतात्मक प्रतीकात्मक एकांकी आते हैं। "चरवाहे, मैमूना, चुम्बक, खिड़की, चमत्कार, सूखीडाल" इत्यादि का महत्व उनके संकेतों या प्रतीकों में है जो हिन्दी एकांकी में सर्वथा नवीन प्रयोग है और जिसका सूत्रपात अश्क ने किया है। ये सभी सामाजिक व्यंग्य हैं और समाज की कमजोरियों पर अंगुली रख देते हैं। भाव तथा प्रतिपादन दोनों में अश्क का प्रचुर विकास हुआ है और वे चौकन्ने सूक्ष्मदृष्टा और अन्तर्मुखी बन गए हैं। पृष्ठभूमि में संगीत की सहायता से वातावरण निर्माण में सहायता ली गई है।

तृतीय उत्थान में अश्क की प्रवृत्ति निरन्तर अन्तर्मुखी होती चली गई है। बहिर्जगत् की अपेक्षा आपके अध्ययन का मूल केन्द्र आन्तरिक जगत् का रहस्योदघाटन रहा है। अश्क ने मानव चरित्र का गहन अध्ययन किया है और पात्रों के मनोविज्ञान पर आपकी दृष्टि अधिक रही है। "आदि मार्ग", "भंवर" इत्यादि एकांकियों में मनोवैज्ञानिक गहराई दर्शनीय है। चरित्रगत जटिलताओं, पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं, त्रुटियों, चरित्र की गुत्थियों, भावनाओं, तथा मनोवेगों का कुशल मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। अश्क का "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ" रंगमंचीय प्रहसनों का संग्रह है। प्रहसनों में अश्क को अतिरंजना शैली का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके पात्र कार्टून नहीं हैं। उनके मजाक स्थूल नहीं हैं। उनकी परिस्थितियां सरकस की कलाबाजियां नहीं हैं। उनकी पैनी दृष्टि दैनिक जीवन में ही अट्टहास की सामग्री खोज-

---

१. "मेरे अपने विचार में हमें सामाजिक नाटकों की अधिक आवश्यकता है। ऐतिहासिक नाटकों का प्रचार सब देशों में प्रायः उस समय होता रहा, जब उनकी सामाजिक समस्याएं इतनी विषम न थीं या इन समस्याओं को समझने तथा उनका मनन करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं थी, या उनकी सामाजिक स्थिति इतनी दुखद थी कि उससे भाग कर वे अपने उज्ज्वल अतीत में कुछ क्षण के लिए जा बसना, उसके सुख में अपने आप को विस्मृत कर देना ही श्रेयस्कर समझते थे।" स्वर्ग की झलक, भूमिका।

निकालती है और चित्रपट पर हूबहू उतार देती हैं। अश्क की विनोद भावना वार्तालाप के विद्रूप या पात्रो के भोडे व्यवहार के रूप में प्रकट नही होती, वल्कि चरित्र और कार्य सम्पादन की पृष्ठभूमि के रूप में होती है। अश्क के नाटको में व्यग्य की प्रतीति एक महीन वातावरण के रूप में होती है, जिसके सावन हैं हल्की सी फब्तिया, साकेतिक कार्य सम्पादन, और पात्रो की अनजान कमजोरियो का थोडा बहुत उभार, ये प्रसहन सूक्ष्म, सयत और मार्मिक हैं।[1] हास्य उच्च कोटि का है।

५. सेठ गोविन्ददास : स्वदेश विदेश के नाट्यशास्त्रो का अध्ययन एव रगमच का अनुभव प्राप्त कर शा, गाल्सवर्दी तथा ओ नील इत्यादि पाश्चात्य नाट्यकारो के अनुकरण पर पर्याप्त मौलिकता से पाश्चात्य टैकनीक के प्रवाह को पकडकर सेठ जी ने हिन्दी में रगमचीय समस्या-एकाकियो तथा नाटको की सृष्टि की है, जिनमें भारतीय सास्कृतिक चित्रण के अतिरिक्त आजकल की सामाजिक और राजनैतिक समस्याओ के विविध चित्र हैं। ऐतिहासिक पौराणिक नाटको में आप भारतीय सस्कृति के उपासक के रूप में प्रकट हुए हैं, तथा सामाजिक, राजनीतिक नाटको में सन् १९२० से अब तक के वर्षों की बहुमुखी समस्याओं की आदर्शोन्मुखी व्याख्या कर सके हैं। सेठ जी के नाटको में युग की आत्मा सुरक्षित है।

आपका क्षेत्र राजनीति, सस्कृति एव समाज है। अधिकाश नाटको का निर्माण जेल में होने के कारण, उनमें गाधीयुग की राजनीतिक समस्याओ का चित्रण, ऐतिहासिक कथानको में राष्ट्रीय नैतिक वल और सामाजिक नाटको में उच्च मध्य वर्ग का सफल अकन है। स्वार्थी मिनिस्टर, रगे सियार, काउन्सिल के मैम्वर, देशभक्ति तथा जनसेवा का स्वाग भरकर अपना उल्लू सीधा करने वाले अवसरवादी, स्वार्थी और यशोलिप्सा के आदर्श वनाने वाले नेताओ सव पर सेठजी ने सफल व्यग्य किया है। सार्वजनिक जीवन जेल यात्रा, तथा राजनैतिक आन्दोलनो में आपको जो-जो पात्र, विविध प्रकार के चरित्र, सामाजिक भ्रष्टाचार के दृश्य प्राप्त हुए, उनका यथार्थवादी अकन आपने अपने नाटको में किया है।

सास्कृतिक दृष्टिकोण से आप अतीत से वर्तमान की ओर आते हुए दिखाई देते हैं। प्रसाद ने अपने नाटको द्वारा अतीत सस्कृति और भारतीय इतिहास को देखा है, सेठजी ने मुख्यत वर्तमान बहुमुखी जीवन को देखा है। उनका क्षेत्र दूर-दूर तक फैलता हुआ भारतीय समाज और उसका जीवन है। इस दिशा में आप प्रेमचन्द के सहयात्री हैं। कहानी और उपन्यास में प्रेमचन्द ने अपने समय का जो ससार दिया है, एकाकियो और नाटको में वही बहुमुखी ससार सेठजी ने चित्रित किया है। समाज के विविध वर्गों, विविध समस्याओ तथा आन्दोलनो के चित्र दोनो कलाकारो की कृतियो में सुरक्षित हैं। इन नाटको के पीछे आपका व्यक्तित्व है और आपके व्यक्तित्व के पीछे

१ देखिए श्री जगदीश चन्द्र माथुर "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ" भूमिका, पृष्ठ ११।

विगत युग का अभिजात वर्ग है। प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण के लिए एक आदर्श चाहता है और सेठजी को यह आदर्श युग-पुरुष गांधी की नीति में मिला है।[1] उनके नाटकों में गत २२ वर्षो में सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनो की बुद्धिवादी आलोचना मिलती है।

चार बार के जेल जीवन मे सेठजी ने पूरे और एकाकी मिलाकर लगभग ११० नाटक लिखे है जिनमें अनेक का सफल अभिनय हो चुका है, कुछ के फिल्म बन चुके हैं, कुछ का अग्रेजी में अनुवाद भी हो चुका है। विषय की दृष्टि से आपके एकाकियो को निम्न वर्गो में विभाजित किया जा सकता है :—

१. ऐतिहासिक एकांकी

१ बुद्ध की एक शिष्या २. बुद्ध के सच्चे स्नेही कौन ? ३ जालीक और भिखारिणी ४ चन्द्रापीड और चर्मकार ५ सहित या रहित ६ अठानवे किसे ७ अपरिग्रह की पराकाष्ठा ८ चैतन्य का संन्यास ९. नानक की नमाज १०. शिवाजी का सच्चा स्वरूप ११. तेगबहादुर की भविष्यवाणी १२ पतन की पराकाष्ठा १३ निर्दोष की रक्षा १४. बाजीराव की तस्वीर १५ सच्चा धर्म १६ सच्ची पूजा १७ प्रायश्चित १८. भय का भूत १९ वे आसू २० केरल का सुदामा २१. कृष्णा कुमारी २२ अजीजन २३ अजीबोगरीब मुलाकात २४. महर्षि की महत्ता २५ परमहस का पत्नी प्रेम २६ सूखे सन्तरे।

२ सामाजिक समस्या प्रधान एकांकी

२७ स्पर्द्धा २८ मानव मन २९ निर्माण का आनन्द ३०. मैत्री ३१. सुदामा के तन्दुल ३२ आई सी ३३. यू नो ३४. हगर स्ट्राइक ३५ धोखे बाज ३६. फासी ३७. व्यवहार ३८ अधिकार लिप्सा, ३९. ईद और होली ४०. आधुनिक यात्रा ४१. बन्द नोट ४२. उठाओ खाओ खाना ४३ बूढे की जीभ ४४ चौबीस घटे ४५ महाराज ४६. जाति उत्थान ४७. विटेमिन ४८. वह मरा क्यो ? ४९. अर्द्ध जागृत।

३. सत्य घटनाओं पर आधारित एकांकी

५१ कंगाल नही ५२. सच्चा काग्रेसी कौन ५३. पाप का घडा।

४ मोनो ड्रामा या एकपात्री एकांकी

५४. शाप या वर ५५. प्रलय और सृष्टि ५६ अलबेला ५७. सच्चा जीवन

---

१. डा० नगेन्द्र "आधुनिक हिन्दी नाटक", पृ० ६५

५८. पट् दर्शन ।

५. कुछ वैदेशिक कथाओं पर रचित एकांकी

५९ सिग पाई ला ६० मुकदेन ६१ स्तारिक और वाबुश्की ६२ गुलबीबी ६३. परो वाले कारखाने ६४ इस्तखतानोफ ६५ दो मूर्तिया ।

६ पौराणिक एकांकी

६६ कृषि यज्ञ ।

सामाजिक नाटको में हमारे समाज मे फैली हुई नाना समस्याओ पर प्रकाश पडा है। कही सेठ जी का दृष्टिकोण व्यग्यात्मक है तो कही हास्योक्तियो से परिपूर्ण है। व्यापार क्षेत्रो से लेकर सरकारी अफसरो की अनुभवहीनता, धनी रईसों की अधिकार लिप्सा, हिन्दू-मुस्लिम मेल, सामाजिक मिथ्याचार, राजवशो की दुर्दशा, ब्राह्मणो की पतितावस्था, किसान मजदूरो का शोषण, वृद्धो की स्वाद लोलुपता, जातिगत ऊच-नीच, मिनिस्टरों के चुनाव, भूख हडताल का दुरुपयोग, हिंसा, अहिंसा बलिदान आदि का विवेचन धर्म और सत्य की व्याख्या, छुआछूत की समस्या, किसान-जमीदार सघर्ष आदि समस्याओ को उपस्थित कर सके है। आपकी व्याख्या में गाधीवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। सामाजिक कुरीतिया एव जीर्ण-शीर्ण परम्पराए इस प्रकार चित्रित की गई हैं कि हम अपने अविवेक तथा रूढ़िवादिता पर कही हसते है, तो कही उन्हें घृणा की दृष्टि से अवलोकते हैं।

समस्यामूलक एकाकियो की दृष्टि से आपके "धोखेबाज, ईद और होली, मानव मन, तथा मैत्री अति उत्तम है। सम्भाषणो में सबसे अधिक स्वाभाविकता "वह मरा क्यो" तथा "अधिकार लिप्सा" में आ पाई है। प्रभाव की दृष्टि से "कगाल नही" और "मानव मन' सफल रचनाए है। कही-कही सेठजी का उपदेशात्मक स्वरूप प्रमुख हो गया है तथा स्वाभाविकता को ठेस पहुचती है, जैसे "धोखेबाज" में पृष्ठ ४६ पर रूपचन्द का लम्बा कथोपकथन दो तीन पृष्ठो तक का है। कोर्ट सीन गाल्सवर्दी के "जस्टिस" के कोर्ट सीन की छाया पर लिखा गया सा प्रतीत होता है। इन नाटको के सम्भापणों मे नीत्युपदेशक की सी भूमिका या नाटको के अन्त में नीति वचनो का आ जाना स्वाभाविक नही प्रतीत होता। नाटको की समस्याए एकाकी में इतनी स्पष्ट हो जाती हैं कि सेठजी का आदर्शात्मक स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जाता है और कला को हानि पहुचती है। वे अलिप्त नही रह पाते, अपने पक्ष को दृढता से आगे रखते हैं।

सेठजी के राजनीतिक एकाकी प्राय जेल में लिखे गये है। यह उनकी एक उल्लेखनीय विशेपता है। उनका जीवन गले तक राजनीति में डूबा है। अपने राजनीतिक एकाकियो के अन्तर्गत आपने चुनाव, मिनिस्टिरो की अन्त स्थिति, काग्रेस मत्रीमडल त्यागने के पश्चात् के नाना चित्र, मन्त्रियो के उद्दत चरित्र, नाम चाहने वाले पर

कर्त्तव्यच्युत काग्रेसी सत्याग्रहियो के चित्र प्रस्तुत किए है। मजदूर और पूंजीपतियो, हिन्दू मुस्लिम एकता, किसान जमीदार की समस्याओ की ओर भी आपकी दृष्टि गई है। यथार्थ का दिग्दर्शन कराना पर साथ ही आदर्श की ओर सकेत कर देना आपका उद्देश्य रहा है। तटस्थ रहने का प्रयत्न इनमें सफल हुआ है। चू कि सेठजी काग्रेस के अतरग से परिचित हैं, उन्होने काग्रेस की कमजोरियो को अपने कई नाटको में उभारा है।

उदाहरणार्थ "प्रकाश" में आपने वर्तमान राजनीतिक जीवन का खाका खीचा है, जहा स्वार्थी मिनिस्टर है, रगे सियार काउन्सिल के मेम्बर हैं, जो देशभक्ति और जन सेवा का स्वाग भर कर अपना उल्लू सीधा करते है। जिनकी दृष्टि मे स्वार्थ और यशोलिप्सा के सिवा और किसी चीज का महत्व नही, जो आठो पहर मतलब गाठने के लिए हतकडे सोचा करते हैं, मिनिस्टर, लीडर तथा मैम्बर सबकी पोल खोल दी गई है। "सुदामा के तन्दुल" में उन मिथ्या-भाषी मिनिस्टरो पर छीटाकशी की है जो चुनाव के समय वोट लेने के लिए जनता से बडे-बड़े वायदे करते है, किन्तु चुने जाने के पश्चात् अपने वास्तविक स्वार्थी रूप में प्रकट होते हैं। इसमें काग्रेस में आ जाने वाले गैर-जिम्मेदार, पत्थर दिल, स्वार्थी साहबी ठाठबाट से रहने वाले और मुसलिम चपरासी रखने वाले मिनिस्टरो की चारित्रिक दुर्बलता, संकुचितता का पर्दा फाश किया है। "आई सी" उस समय का चित्र है, जब काग्रेस मन्त्रिमडल पद त्याग कर चुका था। "थू नो" में एक उद्धत अभिमान से भरे हुए तेज मिजाज लोकप्रिय मन्त्री का चित्र है। "भूख हडताल" एक ऐसे सत्याग्रही का व्यग्यात्मक चित्र है जो प्रतिष्ठा का भूखा है।

"सेवा पथ" में वर्तमान युग के राजनीतिक वादो का सघर्ष चित्रित किया गया है विशेषकर समाजवाद का उभयपक्षीय चित्रण बडा व्यग्यात्मक है। रईसो की मनोवृत्ति और वातावरण निर्माण बहुत सफल बन पडा है। हास्यरस का आलम्बन एक मारवाडी सेठ जी को बनाया गया है। कथावस्तु तथा राजनीतिक परिस्थितियो, व्यक्तित्वो तथा सिद्धान्तों के चित्रण में सेठजी यथार्थवादी हैं, किन्तु प्रेरणा में आदर्शवादी ही कहे जायेंगे। व्यवहारिक आदर्शवाद ही उनका दृष्टिकोण रहा है।

अपनी ऐतिहासिक नैतिक विचारधारा में सेठजी प्राचीन भारतीय गौरव, संस्कृति, आचार विचार का प्रतिपादन करते हुए, मुख्यतः भारतीय सस्कृति के उपासक के रूप में प्रकट होते हैं। प्रसाद की भाति आप आर्य सस्कृति पर निर्भर आधुनिक एकाकीकार हैं। अपने बडे नाटको "कर्त्तव्य, हर्ष, शशिगुप्त" आदि में भी प्राचीन भारतीय सस्कृति, वेशभूषा, वस्तुकला इत्यादि को सन्मुख रखकर चरित्र गौरव और निष्ठा का पुनरुत्थान प्रदर्शित किया है। भारतीय इतिहास में आपने अपने कथानक उन स्थलों से चुने हैं, जहा आपको अपने आदर्श का विचार विन्दु प्राप्त हुआ है। उदाहरणार्थ, "हर्ष" में आपने सम्राट् हर्षवर्द्धन को आदर्श प्रजापालक, अहिंसा व्रतधारी, धर्मपरायण

चित्रित किया है, जो सर्वथा इतिहास के अनुकूल है।

आपके ऐतिहासिक नाटक पढकर यह धारणा सत्य हो जाती है कि सेठजी हृदय से आदर्शवादी नाट्यकार है। जहा अपने सामाजिक एकाकियो में आपने व्यग्यात्मक दृष्टिकोण से समाज के नाना वर्गो तथा चरित्रो की कमजोरियो पर प्रकाश डाला है, वहा अपने ऐतिहासिक एकाकियो में हमारा ध्यान प्राचीन भारतीय गौरव, चरित्र की दृढता, उत्कर्ष और उत्कृष्टता की ओर आकृष्ट किया है। यदि हम राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करना चाहते हैं तो हमें उत्तमोत्तम मानवी भावो का मूर्त स्वरूप इनके नाटको में उपलब्ध हो सकेगा।

सेठजी के मोनो ड्रामा हिन्दी साहित्य में सर्वथा नूतन प्रयोग हैं। स्वीडन के प्रसिद्ध नाट्यकार स्ट्रेन्डवर्ग तथा अमेरिका के ओ नील की शैली पर पाश्चात्य टैकनीक का अनुकरण करते हुए आपने चार मोनो ड्रामे लिखे हैं १ प्रलय और सृष्टि २ अलबेला, ३ शाप और वर ४ सच्चा जीवन इन सबका विषय तथा प्रतिपादन भिन्न भिन्न प्रकार का है।

'प्रलय' और 'सृष्टि' का नायक चश्मा, नोट बुक, कलम, लाइट हाउस टावर, घन्टा, चिमनी, बादल, धरती इत्यादि को सम्बोधन कर समाज और जनता की मनोवृत्तियो की आलोचना करता है। 'अलबेला" में एक व्यक्ति घोड़े को सम्बोधन करके साहूकारो, जमीदारो तथा शोषको के विरुद्ध विचार प्रकट करता है। यह समाजवादी ढग की चीज है। "शाप और वर" दो भागो में एक सताई हुई स्त्री मृत्यु से पूर्व अपने पति को सम्बोधन कर विगत जीवन की दु खद स्मृतियो को प्रकट करती है। "सच्चा जीवन" आकाश-भाषित मोनोड्रामा है। एक युवक के मन में सच्चे जीवन के सम्बन्ध में नाना शकाए, विचार सघर्ष उठते हैं, वह सोचता है, विचारता है। यह विचार और गूढ आध्यात्मिक चिन्तन प्रधान मोनो ड्रामा है।

आपके मोनो ड्रामे चरित्र की आन्तरिक गुत्थियो का विश्लेषण करते है। एक ही पात्र के चरित्र के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डालते और मूलभाव के अनुकूल वातावरण की सृष्टि करते हैं। विचार पक्ष में चिन्तनशील होते हुए भी सेठजी आदर्शवादी हैं। क्या सामाजिक और क्या ऐतिहासिक नाटक सर्वत्र उनका आदर्शवाद झाकता है। सामाजिक एकाकियो में व्यग्य के साथ किसी न किसी रूप में एक स्वस्थ आदर्श की सृष्टि भी की गई है। ऐतिहासिक एकाकियो में आपका आदर्श अधिक स्पष्ट हो गया है। आपके कुछ पात्र जैसे, शिवजी, हर्ष, रामशास्त्री, चन्द्रपीड, कृष्ण कुमारी यशस्कर, बाजीराव, इत्यादि आदर्शमय होकर पूजा योग्य तथा अनुकरणीय हो गये है। इनकी पृष्ठभूमि में वैभव का वातावरण है, वैभव से झिलमिलाते हुए दृश्य, जिनमें रूप-रग के साथ सूक्ष्म चित्रण भी है।

टकनीक की दृष्टि से सेठजी युगान्तरकारी एकाकीकार वर्ग के ज्वाजल्यमान नक्षत्र हैं। अपनी मौलिक प्रतिभा एव नाटकीय कौशल द्वारा आपने हिन्दी एकाकी

में पाश्चात्य टैकनीक का प्रयोग, विशेषत आपने मोनो ड्रामा में, बडी कुशलतापूर्वक किया है। साहित्यिकता तथा सूक्ष्म अनुवीक्षण के अतिरिक्त आपका सबसे बडा गुण नाटको का रगमंचीय विधान है। सफल अभिनय के लिए इनमें सतत गतिमान कथानक और जीवित कथोपकथन है। नाटकीय क्षण को पकडने की सहज बुद्धि प्रचुरता से है। प्रत्येक एकाकी में एक ऐसे क्षण या जीवन के एक ऐसे पहलू का चित्रण है, जिसमें आन्तरिक एव बाह्य दोनो प्रकार का सघर्ष है। चरम सीमा पर आकर सम्भाषणो का प्रवाह इसी उद्दीप्त क्षण पर केन्द्रित हो जाता है। सेठजी के कथानक चलायमान होते है। और उनका कथोपकथन सरल और स्वाभाविक। ज्यो-ज्यो कथावस्तु चरम स्थिति के क्षण पर पहुचती है, त्यो-त्यो कौतूहल की वृद्धि होती जाती है। प्रत्येक गति उत्सुकता की अभिवृद्धि करती है और नाटकीय केन्द्र बिन्दु पर आकर रोचकता में सबसे अधिक खिल उठता है। नाटक के मूल भाव को दर्शको पर ठीक तरह डालने के लिए सेठ जी निर्देशन के प्रति सजग रहते है। इसी कारण आप पाश्चात्य शैली की विस्तृत रगसूचनाए प्रदान करते है। शा का प्रभाव रगसूचनाओ पर स्पष्ट है। ये व्यापक, चित्रमय तथा सर्वांगपूर्ण है, जिनका उपयोग विशेषत सही प्रभाव तथा उसे उद्दीप्त करने के लिए किया जाता है। पात्रो के रग रूप, आयु, साइज, वस्त्र, आभूषण, वेषभूषा, रगमच की व्यवस्था का वर्णन बडी सतर्कता से किया जाता है। आपके दो एकाकियों "धोखेबाज" तथा "कृष्णाकुमारी" में आरम्भिक सकेत दो-दो पृष्ठो का है। इनमें केवल रगभूमि के सम्बन्ध में लम्बी योजना ही नही, प्रत्युत प्रत्येक एकाकी की घटना के आरम्भ होने से पूर्व का इतिहास भी निर्देश कर दिया जाता है। तत्सम्बन्धी आवश्यक सभी सूचनाए मौजूद रहती है। निर्देश में वातावरण की सृष्टि के साथ पात्रो के चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है।

"उपक्रम" तथा "उपसहार" के प्रयोग आपकी महत्वपूर्ण देन है। उपक्रम एक प्रकार का प्रवेश है, जिसमें पात्रो का परिचय करा दिया जाता है। वस्तुस्थिति एव पूर्व कथा का समावेश इसी में रहता है, भविष्य के घटनाक्रम की एक अस्पष्ट सी कल्पना दर्शक या पाठक के मन में उदित होती है। नाटक के अन्त में उपसहार की योजना है, जो मुख्य दृश्यों के परिणामो को स्पष्ट करता है। सेठजी स्थल-सकलन को इतना आवश्यक नही मानते, जितना काल-सकलन को मानते है। जब ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो जाती है कि घटनाओ के मध्य में अधिक काल व्यतीत हो, तो आप एक ही समय में होने वाली घटना को बीच के दृश्यो में रखकर मुख्य घटना के पूर्व वाली घटना को उपक्रम तथा बाद की घटनाओ को उपसहार में रख देते है, इससे काल-सकलन का निर्वाह हो जाता है। आपका मत है कि इन दोनो के प्रयोग से एकाकी की सौंदर्य वृद्धि हो जाती है। सेठजी ने काल-सकलन के निर्वाह के लिये जो उपाय काम में लिया, वह उनकी मौलिक सूझ का परिणाम है। खेद है आगे आने वाले हिन्दी एकाकीकारो ने इन दोनो साधनो का प्रयोग नही किया

है। रेडियो में उपक्रम या उपसहार की सूचना सूत्रधार द्वारा की जा सकती है, पर रगमच पर यह कृत्रिम प्रतीत होती है। ऐसा प्रयोग अन्य भारतीय या पश्चिमी नाटको में नही हुआ है।

५ श्री भुवनेश्वर प्रसाद हिन्दी एकांकी के नवोत्थान मे भुवनेश्वर प्रसाद ने पाश्चात्य भावो तथा टैकनीक को अपने एकाकियो के माध्यम से प्रकट किया है। इनके भावो और विचार प्रणाली दोनो ही पर बर्नार्ड शा का पूरा पूरा प्रभाव है। इन पर सीधा पाश्चात्य प्रभाव अत्यन्त उभरे रूप में पडा। "शैतान" एकाकी के अन्त में जो स्टेज सकेत निर्दिष्ट किया गया है, वह इस प्रभाव को बडे उग्र रूप में प्रस्तुत करता है। लेखक पर पाश्चात्य प्रभाव इतना अधिक है कि कभी-कभी वह भूल जाता है कि वह भारतवर्ष के लिए लिख रहा है। उसके भारतीय नाम सारे एकाकियो को अवास्तविक रूप दे देते हैं। समाज की स्थिति के आन्तरिक जोड़ो को चीर-फाडकर दिखाने के लिये जिन अस्त्रो का उपयोग नाटककार ने किया है, वे सब विदेशी हैं या पाश्चात्य हैं।[1]

शा और इब्सन इनके विचारो तथा शैली दोनो ही में आदर्श हैं। इनकी प्रत्येक कृति पश्चिम का स्मरण दिलाती है। प्रवेश में आये हुए वाक्यो पर डी० एच० लारेन्स की ट्रेजडी की परिभाषा का विशेष प्रभाव पडा है। "शैतान" में शा की की छाया मुखरित है, "श्यामा" पर "कैन्डिडा" की छाप है दोनो में विचार साम्य पर्याप्त है।[2]

उपर्युक्त आलोचको के मत, विशेषकर शा के प्रभाव वाला तत्व, भुवनेश्वर के प्रारम्भिक एकाकी नाटको के विषय में सत्य प्रतीत होता है। ये एकाकी उस काल में लिखे गये थे जब अग्रेजी साहित्य के माध्यमो का उपयोग हिन्दी में प्रारम्भ हो ही रहा था। नए माध्यम का चाव, अपनी भाषा में अनुकरण की प्रवृत्ति, टैकनीक को समझने के लिए नए प्रयोग स्वाभाविक ही है। भुवनेश्वर ने पाश्चात्य प्रभाव बल से ग्रहण किया, किन्तु अपनी मौलिक प्रतिभा का रग चढ़ा कर ये उसे भारतीय विचार-धारा और जीवन दर्शन से ओतप्रोत न कर सके। भारतीय नैतिक सत्यो पर इनके पात्रो की आस्था नही है। वे पाश्चात्य बुद्धिवाद से प्रभावित हैं। फिर भी यह निर्विवाद स्वीकार करना पडता है कि आपका "कारवा" (१९२५) हिन्दी में एक नई शक्ति का चिह्न था। भुवनेश्वर के सामाजिक व्यग्य, सैक्स सम्बन्धी फ्रायड से प्रभावित विचारधारा, शा और इब्सन की समस्यामूलक प्रवृत्तिया और योरोपीय वस्तुवाद ने हिन्दी एकाकी साहित्य को आगे बढाया तथा योरोपीय नाट्य-साहित्य और यथार्थवाद, बौद्धिकता एव विस्मय से परिपूर्ण कर दिया।

---

१ देखिए डा० सत्येन्द्र "हिन्दी एकांकी" पृष्ठ ४२।
२. डा० नगेन्द्र, "आधुनिक हिन्दी नाटक" पृष्ठ १३९।

सन् १९३३ से ३५ तक की प्रयोगकालीन रचनाओ में पाश्चात्य तत्व स्पष्ट है, किन्तु १९३६ के पश्चात् जो प्रौढ और परिपक्व रचनाए लिखी गई, उनमे भुवनेश्वर ने पाश्चात्य टैकनीक और विचार दर्शन का अपनी कृतियो में इस प्रकार समावेश कर दिया कि उनकी पृथक सत्ता न रही। जहा प्रारम्भिक एकाकियो पर पाश्चात्य प्रभाव अनुकरण प्रतीत होता है और भारतीय विचार पद्धति से मेल नही खाता। वहा १९३६ के बाद के एकाकियो में पूर्ण मौलिकता और रोचकता के गुण है।

कालक्रम के अनुसार भुवनेश्वर का सर्वप्रथम एकाकी "श्यामा एक वैवाहिक विडम्बना" (हस, दिसम्बर १९३३) था। तत्पश्चात् "पतिता" हस १९३४ में प्रकाशित हुआ था। फिर क्रमश "एक साम्यहीन साम्यवादी" (हस, मार्च १९३४) प्रतिमा का विवाह (१९३-), रहस्य रोमाच लाटरी (१९३५) मृत्यु (हस १९३६) मे प्रकाशित हुए। ये कृतिया पाश्चात्य प्रभावो से युक्त है तथा कुछ एकाकियो में विचार साम्य ही नही, शा के अनुवाद जैसे प्रतीत होते है।

इनके पश्चात् जो एकाकी प्रकाशित हुए थे वे परिपक्व है। पाश्चात्य प्रभाव पूर्णत समाविष्ट हो चुका है और कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनो में प्रौढता है। इस वर्ग में "हम अकेले नही है" तथा "सवा आठ वजे" (भारत १९३७), "स्ट्राइक" तथा "ऊसर" (हस १९३८) प्रकाशित हुए है। १९३८ में भुवनेश्वर ने एक पूरा नाटक लिखने की योजना बनाई। यह था उनका "आदमखोर" (रूपाभ १३८)। इसका सर्वप्रथम अक प्रकाशित हुआ था और यह मौलिक विचारधारा से परिपूर्ण है। भुवनेश्वर की कला और विचारो के क्रमागत विकास में यह नाटक अपना विशेष स्थान रखता है। इसका यथार्थवाद यद्यपि भुवनेश्वर के अब तक के सभी नाटको से कठोर है, किन्तु इसी नाटक में उनकी बुनियादी अभिरुचि प्रतीकात्मक हो गई है, जिसका प्रखर रूप उनके आज के नाटको में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। नाटकीय यथार्थवाद को जो अर्थ भुवनेश्वर देते है, यह नाटक उसका प्रतिनिधि है। अगली कृति 'इन्सपेक्टर जनरल" (विश्ववाणी १९४०) गोगोल के एक नाटक पर आधारित है। भुवनेश्वर का पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र एव नाट्यकारो का अध्ययन विस्तृत है। यह नाटक गोगोल के इसी नाम के नाटक का भावानुवाद है। पूरा नाटक कलात्मक ढग से सक्षिप्त कर पैंतालीस मिनट के एकाकी में प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में उन्होने पहली बार एकाकी की विदेशी और हिन्दी परिभाषा और पद्धति का उल्लघन किया। तत्पश्चात् उन्होने अपने एकाकियो को यह नाम देना भी त्याग दिया।

"रोशनी और आग" (विश्ववाणी १९४१) में भुवनेश्वर ने एक पग और आगे बढाया। पाश्चात्य शैली को मौलिकता से समाविष्ट करने में एक नया प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसमें नाट्यकार ने ग्रीक कोरस की भाति कवित्वमय पूर्वालाप का हिन्दी एकाकी में आविष्कार किया।

आपका "कठपुतलिया" (१९२२) पूर्ण प्रतीकात्मक नाटक है। भुवनेश्वर को

इस नाटक पर विशेष स्नेह है। एक तो यह उनके जीवन की एक सरस और अनोखी परिस्थिति की उपज है, दूसरे यह उनके नाटकीय व्यक्तित्व और विचारो की परिपक्वता का द्योतक है। स्वय उनका कहना है कि यह नाटक यद्यपि बहुत सी दृष्टियो से अपूर्ण और अपरिपक्व है, तथा कलात्मकता पर विचारो की दृढता में बाद के कई एकांकियो से कमजोर है, तथापि वह उनकी प्रथम बालिग चीज है तथा अपने से पूर्व की समस्त रचनाओ को आदि के शैशव (टीन एज) की उपज बना देता है। इसी प्रकार "फोटोग्राफर के सामने' (१९४५) भुवनेश्वर की उत्तरोत्तर परिपक्वता को प्राप्त होती हुई प्रतिमा का प्रतीक है। "तांबे के कीड़े" (सन १९४६) बड़े आदमियो के ड्राइग रूमो में लिए लिखा गया नई टैकनीक का एक छोटा सा एकाकी है। "इतिहास की केंचुल" १९४८ में लिखा गया। इस नाटक से भुवनेश्वर की प्रवृत्ति धीरे-धीरे सामाजिक नाटको से ऐतिहासिक नाटको की ओर बढ़ती जाती है। इसी विचारधारा से प्रभावित होकर आपने कुछ और ऐतिहासिक नाटक भी लिखे है। "आजादी की नींद" १९४८-४९ में प्रणीत हैं। इसी वर्ष "जेरूसलम" नामक एक अति ऐतिहासिक एकाकी की रचना हुई, जिससे महात्मा ईसा के चरित्र गौरव की प्रतिष्ठा हुई। इस नाटक की विशेषता उसका वातावरण था और यह एक अति उन्नत रगमच की अपेक्षा करता था। ऐतिहासिक एकांकियों के क्षेत्र में भुवनेश्वर ने कुछ और कलात्मक प्रयोग किये। "सिकन्दर" (लगभग १९५०), "अकबर" तथा 'चगेजखा" (१९५०) आपकी पूर्ण परिष्कृत रचनाए हैं। आपकी नवीनतम कृति "सीकों की गाडी" (१९५०) है।

शा तथा अन्य पाश्चात्य नाटयकारो से प्रभावित एकांकियो में १ "श्यामा एक वैवाहिक विडम्बना" २ "एक साम्यहीन साम्यवादी" ३ "शैतान" ४ "प्रतिभा का विवाह" ५ "रोमास रोमाच" ६ "लाटरी" इत्यादि प्रमुख हैं। इनमें चित्रित जीवन की समस्याए भारतीय समस्याओ से मेल नही खाती। इनकी मूल भावना पाश्चात्य समाज से ली गई है, जैसे दो पुरुषो का रोमास की भावना से भर कर एक ही प्रेमिका के लिए सतत सघर्ष, विवाहिता पत्नी का पति के सम्मुख दूसरे पुरुष से प्रेम सम्बन्ध और पति का विवश सा होना, समाज में धनिक विधवा का प्रेम और नैतिक सम्बन्ध, सुशिक्षित स्त्रियो का सामाजिक प्रतिष्ठा को मातृत्व के मुकाबले में अधिक श्रेयस्कर समझना, सभ्य और शिक्षित स्त्रियो का काम पिपासा शान्त करने का प्रयत्न, विवाहित जीवन में पति की आर्थिक उपयोगिता, पति की अनुपस्थिति में पर पुरुष का दूसरे की पत्नी को प्राप्त कर लेना आदि ये समस्याए सैक्स में केन्द्रित हैं तथा हिन्दी के लिए सर्वथा अभूतपूर्व थीं। भुवनेश्वर ने फ्रायड के मनोवैज्ञानिक विचारो से प्रभावित होकर इन्हें मनोवैज्ञानिक पृष्ठ भूमि के साथ चित्रित किया।

भुवनेश्वर ने सामाजिक रूढियो, प्रचलित किन्तु कृत्रिम विचार स्वातन्त्र्य, साम्यवाद, विवाह वैषम्य तथा मनुष्य के अन्तर्जगत् में उठने वाले काम वासना, प्रेम,

क्रोध, कातरता, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा आदि मनोविकारो से उत्पन्न मानसिक जटिलताओ का मार्मिक चित्रण किया है। इनका द्वन्द्व बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक अधिक है, बुद्धि की अपेक्षा हृदय का है। बुद्धि नैतिक बन्धन मान सकती है, किन्तु हृदय सर्वथा स्वच्छन्द है। वह समाज के कृत्रिम नियन्त्रण में नही बध सकता। इन एकाकियो के स्त्री पात्र बुद्धि के कृत्रिम अनुशासन से नही, अन्तस्थल से उद्भूत भावनाओ से परिचालित होते है। भुवनेश्वर की एक विशेषता आधुनिक मन विश्लेपण का प्रयोग है। नारी तथा पुरुप का मन विश्लेपण वडा सूक्ष्म तथा पूर्ण है।

इन एकाकियो का मूल केन्द्र सैक्स तथा विभिन्न मनोवैज्ञानिक परिस्थितियो का आवेश मय चित्रण है। हिन्दू समाज के कठोर नियत्रण, रूढियो, एवं पाखण्ड में आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवक युवतियो की वासना अनियन्त्रित रूप से भडककर विकृत हो चुकी है। समाज के फौलादी नियन्त्रणो में आधुनिक पुरुष की यौन-क्षुधा अतृप्त रहती है। जैसे-जैसे सभ्यता वढ रही है, वैसे वैसे शिक्षित एव आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न मध्यवर्ग की सैक्स भावना ग्रन्थिया जटिलतर होती जा रही है। इस प्रकार की क्रातिकारी भावनाओ से परिपूर्ण समस्याओ में भुवनेश्वर ऐसे उलझ गये है कि कही कही यह भ्रम होता है कि ये एकाकी भारत के लिये है या पश्चिमी प्रदेशो के विकसित समाज के लिए। उन्मुक्त प्रेम, वैवाहिक वैपम्य, वाहर से सुसस्कृत किन्तु अन्दर से अनेक जटिलताओ के पुलन्दे पात्र प्रारम्भिक नाटको को कुछ कृत्रिम और अस्वाभाविक वनाते है। इनके पात्र मध्यवर्ग के प्रतिष्ठित नागरिक है, किन्तु उनके अन्दर आज भी वही बर्बरता पैठी हुई है जो मानव की सभ्यता के प्रारम्भिक युग में थी।

भुवनेश्वर पर पाश्चात्य प्रभाव इतना अधिक है कि उपरोक्त समस्याओ को सुलझाते हुए वे भारत में पाश्चात्य समाज जैसे समाज की कल्पना कर लेते है। उनके भारतीय नाम और योरोपीय उन्मुक्त प्रेम, सैक्स, वैवाहिक वैपम्य की समस्याए उनके प्रारम्भिक नाटको को अवास्तविक सा वना देती है।

आपके एकाकियो की अधिकाश समस्याए विदेशी सामाजिक जीवन से प्रभावित है। जो कृत्रिम, खोखला और यौन क्षुधा से तडपता हुआ है। उनकी मान्यताओ में स्त्री के पतिव्रत धर्म पर आस्था नही है वह वस्तुवादी है। भारत की आध्यात्मिक सस्कृति का इस समाज पर कोई वन्धन नही दिखता। इन नाटको में भुवनेश्वर सन्देहवादी हो गये है, सन्देह को बुद्धि के लिए विश्राम मानते है। आज के समाज की नैतिक निष्ठा पर उन्हें कोई आस्था नही है। कुछ आलोचको ने उन्हें निराशावादी कहा है।[1] वास्तव में वे निराशावादी नही है उनकी सामाजिक आलोचनाए विध्वसात्मक है, सृजनात्मक नही है। उन्होने मध्यवर्गीय समाज को यथार्थवाद की दृष्टि से देखा है और अनेक मर्मस्थलो पर अगुली रख दी है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से

---

१. देखिए डा० नगेन्द्र, "आधुनिक हिन्दी नाटक", पृष्ठ १३७।

सैक्स का क्या स्वरूप है, यह उन्होने प्रस्तुत किया है। वे समस्या का कोई स्पष्ट उत्तर नही देते। उत्तर दिखाने वाली घटनाओं, व्यापारो तथा कार्णकारण परम्परा को चित्रित भर कर देते हैं। उनके विचार तथा प्रतिपादन में शा का पूरा प्रभाव है।

बाद के नाटको में भुवनेश्वर अपने प्रौढ़तम रूप में प्रकट हुए हैं। "ताबे के कीडे, "जेरूसलम" तथा "सिकन्दर" इत्यादि एकाकियो में वे अपने सर्वोत्तम रूप में देखे जा सकते हैं। "ताबे के कीडे" आज की सामाजिक व्यवस्था के प्रति मर्मस्पर्शी व्यग्य हैं। "जेरुसलम" अग्रेजी शैली का एकाकी है, जिसमें वातावरण का सौन्दर्य है, भाषा उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी है तथा पात्र रोमन और यहूदी हैं। कुछ साकेतिक प्रयोग भी हैं। "सिकन्दर" आपका प्रतिनिधि ऐतिहासिक एकाकी है जिसमें आपकी राष्ट्रीय भावना मुखरित हुई है।

आपके पात्र मुख्यत दो वर्ग के हैं, एक तो समाज के सन्मुख आदर्शवादी बने किन्तु वास्तव में अनेक दुर्बलताए दबाए हुए कपटी, मिथ्याचारी, दूसरे ऐसे पतित जो अन्दर से आदर्शवादी हैं, किन्तु परिस्थितियो के बोझ से समाज में गिर गये हैं, पर बलिदान की क्षमता रखते हैं। पुरुषो की अपेक्षा आपने स्त्री पात्रो की गठन में विशेष रुचि ली है। वे सशक्त विद्रोही, व्यवहार कुशल, प्रेम में उन्मत्त, विवाहित होकर भी अतृप्त कामलोलुप, शिक्षित फैशन, की गुलाम तथा अनियत्रित हैं। आपने स्त्री मनोविज्ञान सम्बन्धी क्रान्तिकारी विचारो का प्रतिपादन किया है, जो फ्रायड से प्रभावित हैं।

भुवनेश्वर में यथार्थवाद है, किन्तु यह नग्नता लिए हुए है। कहीं-कही नग्नता एक कठोर हास्य बन गया है और अपनी चरमता में अश्लीलत्व की सीमा के निकट पहुच गया है। भुवनेश्वर कला में अश्लीलत्व का अर्थ समझते हैं, नग्न पवित्रता।

अपनी टैकनीक में भुवनेश्वर पाश्चात्य एकाकियो से अत्यधिक प्रभावित हैं। इनकी टैकनीक पर पाश्चात्य प्रभाव अत्यन्त उभरा हुआ है। आपके दृश्यो का प्रारम्भ, पात्रो का प्रवेश एव कार्यकलाप, कथोपकथन, रगमचीय, सूचनाए सब कुछ पाश्चात्य ढग के हैं।

किसी पूर्व भूमिका, कथा, सार या पात्रो के मनोभावो स्थिति इत्यादि का निदश किए बिना अकस्मात् इनके एकाकी प्रारभ हो जाते हैं। पात्रो के नाम नाटकीय स्थिति और पात्रो के पारस्परिक सम्बन्ध इत्यादि का ज्ञान भी हमें उनके कथोपकथन द्वारा ही कराया जाता है। इनके नाटक ऐसे स्थलो से प्रारम्भ होते हैं कि विभिन्न वर्गो के पात्रो में सघर्ष प्रकट हो जाता हैं और नाटक शीघ्र गति पकड लेता है, स्थान-स्थान पर नाटकीय गति लेता हुआ कौतूहल तथा आश्चर्य के साथ चरम सीमा की ओर अग्रसर होता है। घटनाओ के चित्रण तथा कथानक सूत्र को आगे बढाने वाले वार्तालाप की सृष्टि है। इनके वार्तालाप बडे कुशलता से लिखे गए हैं, इनमें गति की घनीभूत तरगें आती हैं, जो कुतूहलता की अभिवृद्धि कर चरम सीमा पर केन्द्रित हो जाती है। सविधान के सूत्रो का पारस्परिक ग्रन्थन कलात्मक होता है।

वस्तु की चरम सीमा साफ है। वहा भी अकस्मात् का चमत्कार है। इसलिए इन नाटको मे पूर्व पीठिका विलकुल लुप्त है। सभी वाक्य आगे को चलते हैं, पीछे की उन्हें कोई चिन्ता नही। कभी इससे थोडी सी जिज्ञासा पाठको को क्षुब्ध करती है और घटना को पूरी तरह आसानी से नही समझ पाता।

आपके कथोपकथनो में पाश्चात्य ढग की किफायतशारी, तरलता, मर्मस्पर्शिता और वाक्-वैदग्ध्य है। स्वगत का पूर्ण वहिष्कार है। आपके पात्रो के कथोपकथन न तो लैक्चर हो जाते हैं, न वादविवाद का रूप ही धारण करते हैं। यदि कही वाद-विवाद का अवसर भी आया है, तो उसे कुशलतापूर्वक संविधान का अग बनाकर ही प्रस्तुत किया गया है। जैसे, "शैतान" में हिन्दू धर्म और आर्य सस्कृति का विवेचन। उनके पात्रो में मित भाषण के साथ-साथ मर्मस्पर्शिता तथा तडप भी हैं।

जो तत्व हमें विशेष रूप से भुवनेश्वर की कला की ओर आकृष्ट करता है, वह उनके रग सकेत हैं। ये इब्सन, गाल्सवर्दी तथा वर्नार्ड शा से प्रभावित हैं। वही नमक मिर्च का व्यग्य, उग्रता, काव्य का सहज स्पर्श और उपमा का चमत्कार। शा की व्यग्य वक्रोक्तियो की तरह आपने हिन्दी मे प्रभाव व्यजना के लिए रगसकेतो का प्रयोग प्रारभ किया। "कारवा" का उपसहार वर्नार्ड शा के नाटको की भूमिकाओ से मिलता जुलता है। भुवनेश्वर ने रग सकेतो द्वारा कोई कार्य सम्पन्न किए हैं; जैसे, वातावरण की मूल भावना का अकन, नाटकतत्व का रूप प्रतिष्ठित करना, रगभूमि की व्यवस्था, अभिनय में सहायता, पात्रो की रूप कल्पना, नाटक को प्रभावोत्पादक तथा सुपाठ्य वनाना आदि।

पात्रो के चित्रण में व्यग्य, उपमा और शा जैसी तीखी वक्रोक्ति का चमत्कार देखिये . "साझ की घुधलाहट में तेल और मिलो की दलाँच की सहायता से बाल सवारे लम्बे-लम्बे कालरो की कमीज पहिने स्वय अपने फरिश्ते के समान मिल के मजदूर हंसी ठिठोली कर रहे है।"

"मनुष्य के नाम अपने से ईर्ष्यालु हाड चाम का मजदूर, नारी के नाम की एक २०-२२ वर्ष की युवती मलिन वस्त्रो में इस प्रकार दीखती है, जैसे आसुओ की नीहारिका में नेत्र।"

"आपत्ति के समान एक २६-२७ वर्ष के एक युवक का प्रवेश, उसके वाल रूखे और विखरे, नेत्र काले विष के समान गभीर।"

"खद्दर के हिम श्वेत कपड़ो में देवदूत के समान एक पुरुष बैठा है।"

'किशोर एक कटे हुए वृक्ष के समान सोफे पर बैठ जाता है।"

भाति-भाति के कार्यकलाप, पात्रो के मानोभाव चित्रण तथा नाना क्रियाओ की अभिव्यजना में भुवनेश्वर की कला पश्चिमी एकाकी का स्मरण दिलाती है।

रग सूचनाओ में उपमा के वडे सजीव प्रयोग हैं। कुछ उदाहरण देखिये :—

"मिस्टर अप्पी चींटी से मेहनती, कौवे से चतुर, मृत्यु से भी अधिक व्यस्त

तथा गभीर दीखने का प्रयत्न करते हैं।"

"गोल हसमुख, लापरवाह चेहरा, पर आखो से विषाद की बुद्धिमत्ता, अधरो पर विलास की सजीवता।"

भुवनेश्वर की स्टेज सूचनाए लम्बी और व्यापक हैं उनकी भाषा एक नया आश्चर्य और विस्मय लिए है। उनकी विशेषता काव्य शक्ति और काव्य प्रवाह है। आपके शब्द चित्र हमें विशेष रूप से आकर्षित करते हैं।

७. श्री जगदीशचन्द्र माथुर आपका रचना काल १९३६ से प्रारम्भ होता है। इनका प्रथम एकाकी "मेरी बासुरी" १९३६ में प्रकाशित हुआ था। आपकी सबसे बडी विशेषता रगमच के अभिनय के योग्य एकाकियो की रचना है। रगमच की टैकनीक पर उनका पूर्ण अधिकार है। प्रारम्भिक नाटक "बालसखा" में प्रसहन के रूप में प्रकाशित हुए। चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में आपने शिवाजी पर द्विजेन्द्रलाल राय की शैली में एक एकाकी लिखा था, जिसका प्रारम्भिक अश "सेवा" में सन् १९३० में प्रकाशित हुआ था। तत्पश्चात् १९३६ में म्योर होस्टल के रगमच के निमित्त "मेरी बासुरी" नामक एक आधुनिक एकाकी लिखा जो दूसरे वर्ष "सरस्वती" में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि इसमें टैक्नीक की अपरिपक्वता झलकती है, किन्तु आधुनिक पाश्चात्य शैली के गुण स्पष्ट हे। नाट्यकार की कला के विकास में इस नाटक का विशेष स्थान है। इसके पश्चात् क्रमानुसार आपके एकाकी इस प्रकार प्रकाशित हुए हैं। १ भोर का तारा (१९३७), २ कलिग विजय (१९३७), ३ रीढ की हड्डी (अक्टूबर १९३९), ४ मकडी का जाला (१९४१), खडहर (१९४३), ६ खिडकी की राह (१९४९), ७ घोसले (१९५०), ८ कबूतरखाना (१९५१), ९ भाषण (१९५२), १० ओ मेरे सपने (१९५३)। इन एकाकियो में "मकडी का जाला" तथा 'खिडकी की राह" को छोडकर शेष नाटक रगमच पर सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके हैं। 'खडहर' अग्रेजी मे रूपान्तरित हुआ है। अन्तिम पाच प्रहसन है। आपके नवीनतम एकाकी "शारदीया" (१९५५) तथा "बन्दी" (१९५५) है। "बन्दी" में लेखक ने एक सर्वथा नया प्रयोग किया है।

आपके एकाकी आधुनिक सभ्य जगत् की नाना सामाजिक समस्याओ पर व्यग्य करते है। आज के जीवन के छोटे बडे मामलो का यथार्थवादी चित्रण करने में श्री माथुर दक्ष हैं, किन्तु उनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि इनके नाटक केवल समस्या-नाटक मात्र बन कर नही रह जाते। पात्र में कोई भी उनका माउथ-पीस बन कर नहीं रह जाता, उसका एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व और चारित्रिक विशेषताए स्पष्ट चित्रित की जाती है।

आपने पुराने सुधारवादी नाटको का परिष्कार किया है तथा अपना व्यग्य और अभिनय ज्ञान लगा कर आपने पात्रो के व्यक्तित्व को सुरक्षित रखा है। उन्हे यह बात अप्रिय लगी कि आधुनिक पृष्ठभूमि पर विनिर्मित नाटक समस्या की ओर सकेत

या स्पष्टत उसके विवेचन में लगकर कला विहीन हो जाते हैं, अधिकतर पात्र नाट्यकार के विचारो के प्रतीक बन जाते हैं, विचारो तथा दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण तो हो जाता है, पर नाटकीयता लुप्त हो जाती है, पात्र निर्जीव हो जाते है। कथोपकथन वाद विवाद का रूप धारण कर लेता है। श्री माथुर ने इन सभी दुर्गुणो से एकाकी कला की रक्षा की है।

"कलिंग विजय, शारदीया, तथा भोर का तारा" का वातावरण सास्कृतिक है, पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। "शारदीया" की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ग्रान्ट डफ् के मराठा इतिहास तथा वस्त्र एव उसे बनाने वाले बन्दी सम्बन्धी सामग्री नागपुर सग्रहालय से ली गई है। ऐतिहासिक एकाकियो की शैली, भाषा और टैकनीक विषयो की गुरु गभीरता के उपयुक्त ऊची उठी है। इनमें नाट्यकार ने मानव-मन के निगूढतम भावो का उद्घाटन किया है। भावो की तीव्रता, अभिनयशीलता, और अभिव्यक्ति का सर्वथा अपना ढग श्री माथुर की अपनी चीज है।

श्री माथुर के सबसे सफल एकाकी सामाजिक हैं। इनमें विचारधारा समस्या तथा वातावरण का पूर्ण परिपाक है। आपका सर्वोत्कृष्ट एकाकी "खडहर" है, जिसमे वातावरण का मनोरम चित्रण है। चन्द्रमा की शीतल चन्द्रिका में जब सब मदहोश हो जाते हैं, फैन्टसी के उपयुक्त बडे सफल वातावरण का निर्माण होता है। गुप्त मनोभावो तथा दलित अनुभूतियो का मनोवैज्ञानिक चित्रण यहा बडा प्रभावशाली बन पडा है। "रीढ की हड्डी" एक सफल और सबल व्यंग्य है। स्त्रियो की बेबसी और सामाजिक स्थिति का इसमे अनुमान किया जा सकता है। "खिडकी राह" में एक फरार सगीतकार, जो शादी से मुक्ति के लिए घर से भाग निकला था, के अप्रत्याशित ढग से वैवाहिक बधन में बध जाने का मार्मिक कथानक है। टैकनीक रेडियो का है। इसमें अत्याधुनिक समाज की रोचक झाकी दिखाई गई है। अन्य विषय जिन पर नाट्यकार ने व्यग्य किये है, बाह्य प्रदर्शन रगीली चहल पहल, शिक्षित समाज के रोमास, दाम्पत्य जीवन के नये मापदड, पश्चिमी सभ्यता तथा शिक्षा से प्रभावित नई समस्याए वैवाहिक गुत्थिया नारी को मुग्ध करने की कृत्रिम चेष्टाए प्रेम के अस्थिर स्वरूप, आत्म प्रतारण, विद्यार्थी जीवन का हल्का उत्तरदायित्व विहीन आनन्द, पिकनिकें, रोमास, छायालोक के अनूठे अनुभव, खोखले नेतृत्व का आकर्षण, चमक-दमक, मनोरजन, पेटपूजा, आदि अग्रेजी शिक्षा और सस्कृति में पले हुए ड्राइग रूमो और सिनेमाघरो से प्रभावित समाज की कमजोरिया आदि हैं। अपने एकाकी साहित्य में एक ओर सभ्य कहाने वाली समाज की मस्ती, धन लोलुपता और मिथ्या-प्रदर्शन का चित्रण किया है तो दूसरी ओर मध्य-श्रेणी के निम्नतम भाग में रहने वाले गरीब क्लर्क, बाबू लोग और मामूली कर्मचारियो का भी चित्रण किया है, जो बेरहम और बदसूरत जमाने की ठोकरे खा रहे है। इसमें सामाजिक बधनो के विरुद्ध विद्रोह है।

"ओ मेरे सपने" सग्रह के प्रहसनो को नाटककार ने 'नटखट नाटको" की श्रेणी

में रखा है। ऐसे एकाकी जिनमें नाटककार समाज के नाना वर्गो विशेषत मध्यवर्ग की सभ्यता में पलने वाली समस्याओ का व्यग्यात्मक चित्रण करता है। इनमें कोई गहन जीवनदर्शन न देकर लेखक अपने पात्रो के साथ कुछ छेडछाड, चुहल या शरारत भरा व्यग्य करता और अतिरजनापूर्ण शैली में नई पीढी के सभ्य जीवन की विद्रूपताओ को हास्यास्पद रूप प्रस्तुत करता है। इनमें कही बिल्कुल स्पष्ट या कही सकेतो के रूप में सामाजिक विषमताओ का निदर्शन और उन पर व्यग्य मिलता। नवीनता यह है कि यहा जिन सामाजिक कमजोरियो का खाका खीचा गया है, उन पर नाटककार ने खडग हस्त और कुचित-भ्रू होकर प्रहार नही किया, बल्कि उनके अतिरजित स्वरूप केरिकेचर को सामने रख कर पाठक और दर्शक को उनके बेडौलपन से परिचित करना चाहा है।[1] नाटककार अपने पात्रो के प्रति सहानुभूति शून्य नही है, यद्यपि कही कही ऐसा आभास मिलता है। सभ्य शिक्षित पात्रो की नादानी दिखाना ही उसका उद्देश्य है।

सक्षेप में, माथुर साहब ने सभ्य शिक्षित मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं में मुख्यत वस्तुवाद, मिथ्या दिखावा, बाह्य आडम्बर, मध्यवर्ग के उच्च स्तर की हृदयहीनता, व्यापारी वर्ग की भौतिकता, विद्यार्थी जीवन की झूठ फरेब, नैतिक क्षीणता, बौद्धिक उन्नति के साथ शिष्ट जीवन में आन्तरिक और सास्कृतिक खोखलेपन पर व्यग्य किया है। मध्यवर्ग का कृत्रिम वातावरण उनकी आलोचना का केन्द्र है। उच्च मध्यवर्ग में आपके भोलानाथ, रामस्वरूप, गोपालप्रसाद, सुधाकर, निरन्जन, निर्मला, नर्गिस, नलिनी, उर्मिला आदि पात्र रखे जा सकते है। निम्न मध्य वर्ग में वे क्लर्क म्यूनिसिपैलिटी या बैंको के बाबू लोग है, जो समाज की निर्मम चक्की में पिसते जा रहे हैं। जैसे नदलाल, मकबूल अहमद, युसूफ आदि। इस समाज की कारुणिक दशा, दयनीय स्थिति, पिसे हुए अरमानो का बडा दर्दनाक चित्रण इनके एकाकियो में मिलता है। आधुनिक भारतीय फिल्मो की कृत्रिम परिस्थितियो, उनके भोडे गीतो, उनकी सस्ती भावुकता, चरम अस्वाभाविकता पर भी निर्मम प्रहार किया है।

आपके कथोपकथन मर्मस्पर्शी हैं। प्रहसनों के पात्रो की बातचीत शैली जानबूझकर अतिरजनापूर्ण रखी गई है, क्योकि लेखक का उद्देश्य नई रोशनी के युवक युवतियो के जीवन के हास्यास्पद पहलुओं को तीव्र प्रकाश मे लाना है। "मेरी बासुरी" आधुनिकतम भाषा शैली के प्रयोगो से परिपूर्ण है। इसमें कालेज के उच्च शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों का व्यग्यात्मक चित्रण है। अत कही अग्रेजी उक्तियो का अनुवादमय अनुकरण उपस्थित है। "मेरी बासुरी" मे सुधाकर नामक पात्र के वक्तव्य में जूलियस सीजर की छाया है

"मैं जिस काम में हाथ डालता हू तो निराशा का स्वाद लेने के लिए नही।

१. श्री जगदीशचन्द्र माथुर 'ओ मेरे सपने', भूमिका पृ० २।

आई केम, आई साँ, आई कानकर्ड ।"

टैकनीक के क्षेत्र में श्री माथुर का कार्य विशेष महत्त्व का है। एकांकी के प्रारम्भिक स्थल में ही वस्तुस्थिति का सक्षेप में निर्देश होता है, किन्तु आगे चलकर विकास सघर्ष उत्तरोत्तर वृद्धि पर रहता है और विविध उपादानो से गति सग्रह करता हुआ एकाकी चरमोत्कर्ष तक बढ़ता है। पात्रो का आन्तरिक द्वन्द्व दिखाने के लिए आप विशेष परिश्रमशील रहते हैं।

रगमच के सम्बन्ध में आपका अनुभव तथा अध्ययन गहन है तथा हिन्दी नाट्यकला के विकास में अपना विशेष स्थान रखता है। आपका विचार है कि सवेदनशील अभिनय के द्वारा ही सच्चे वातावरण और अनुभूति का सृजन हो सकता है। यूरोप से भी हम अधकचरा ज्ञान उधार ले सके हैं। फलत एक ओर तो हमारा नाट्य-साहित्य है जिसकी जड़ें गीता के ससार-रूपी अश्वत्यवृक्ष की भाति उर्ध्वमुखी हैं और दूसरी ओर हमारा नाम मात्र का रगमच है, कठपुतलियो तक तमाशे की तरह कृत्रिम और सास्कृतिक अनुभूतियो से शून्य। अत आपके अनुसार हिन्दी नाट्यकार को अपने नाटक के रंगमच सबधी पहलू पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। रंगमच के निर्माण, निर्देशक के कर्त्तव्य, ग्रीनरूम मेकअप, अभिनय सकेत, पर्दो का उठाना गिराना, निर्देश करने वालो के कर्त्तव्यो का बटवारा तथा रिहर्सल आदि के सम्बन्ध में आपने अनुभवपूर्ण सकेत प्रदान किये हैं। आप शा की भाति निर्देशक को सब कुछ ज्ञान दे देना चाहते हैं और अतिम प्रभाव स्टेज इफैक्ट को अपने ही हाथ में रखना चाहते हैं।

आप सगीत को रगमच के लिए आवश्यक समझते है। आपका विचार है कि भारतवर्ष में सगीत-विहीन रगमच नही जम सकता। हम स्वभावत. सगीत-प्रिय और किसी हद तक रोमाटिक जाति है। आधुनिकतम पाश्चात्य नाटको में भी यद्यपि गाने तो नही के बराबर होते हैं, तथापि भावो का आरोह अवरोह दिखाने के लिए बैकग्राउन्ड म्यूजिक प्राय रखा जाता है। आपने इसी प्रकार का कलात्मक विधान रखा है। वायलिन और सितार की ध्वनि का उपयोग भी आपने वाछनीय समझा है। पात्रो की पोशाक की ओर श्री माथुर ने नाट्य-जगत का ध्यान आकृष्ट किया था और वेशभूषा सम्बन्धी मनमानी की आलोचना की थी। प्राय निर्देशको का विचार है कि रगमंच पर सदैव भव्य और शानदार पोशाक होना चाहिए। आपके अनुसार दक्ष निर्देशक को यदि वह प्राचीन युग का प्रदर्शन करता है, तो उसे उस काल के चित्र तथा मूर्तियो का अध्ययन करके यथासाध्य वैसी ही वेशभूषा उपस्थित करनी चाहिए। यदि आधुनिक समाज का दृश्य है तो, जिस वर्ग का कोई पात्र है उसी के अनुरूप वस्त्र भी रखने चाहिए। साधारण स्थिति के घरो में जैसे वस्त्र हो, उनसे भी काम चल सकता है। सूझ और कलात्मक बुद्धि से मेकअप तैयार होना चाहिए। स्त्री पात्रो के विषय में श्री माथुर का विचार है कि स्त्रिया भी उन्हें अभिनय करें। जिस समय भारत

में उन्नत रगमच था, और "मृच्छकटिक" तथा "स्वप्नवासवदत्ता", आदि के अभिनय किये जाते थे, तव प्रश्न उठता ही नही था। कृत्रिमता का वहिष्कार होना चाहिए। उपयुक्त विषयो के अतिरिक्त श्री माथुर ने दर्शको की अनुशासनहीनता की ओर ध्यान आकृष्ट किया और रुचि परिमार्जन की आवश्यकता वतलाई है। रगमचीय सुधार की दृष्टि से माथुर साहब के विचार वडे मूल्यवान सिद्ध हुए हैं। उनके हाथ में नाटक यथार्थ की ओर अग्रसर हुआ, रगमच सम्बन्धी कृत्रिमता विलुप्त हो गई।

वातावरण सृष्टि की दृष्टि से आप विशेष सफल रहते हैं। अपने "कोणार्क" में यूनानी नाट्यकारो के से तमसावृत (फैटल इनविटेविलिटी) से परिपूर्ण वातावरण में कलाकार के विद्रोही व्यक्तित्व की सफल अवतारणा की है। इसके लिए आपने संगीत पृष्ठभूमि का सगीत, रगीन बिजली, वल्व सजावट तथा अन्य नवीनतम प्रसाधनो का उपयोग किया है। पाश्चात्य एकाकीकारो की भाति आपकी स्टेज सूचनाए विस्तृत सूक्ष्म और व्यापक हैं। आपकी प्रभाव-व्यजना अद्वितीय है।

८. श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी नाट्य-साहित्य में मौलिक एकाकियो का नितान्त अभाव देखकर जो नाट्यकार इस क्षेत्र में आये थे, उनमे श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी प्रमुख है। आपका अग्रेजी साहित्य और टैकनीक का अध्ययन गहन है। पाश्चात्य ढग के मनोविश्लेषण प्रधान एकाकियो का सूत्रपात करने का श्रेय द्विवेदी जी को है। उनके एकाकियो में भारतीय सामाजिक जीवन का जीता जागता चित्र मिलता है। हिन्दू समाज की जीर्ण-शीर्ण परम्पराओ के प्रति व्यग्य किए विना नाट्यकार नही रहा है, यद्यपि उनका दृष्टिकोण सुधारक का नही है। उनमें कलात्मक अभिव्यजना है। नाटक के रूप में किसी सुन्दर वस्तु का निर्माण ही उनका ध्येय रहा है।

द्विवेदी जी भुवनेश्वर से कुछ अधिक सावधान और सयमवान हैं भुवनेश्वर के पात्रो में विद्रोह उत्पन्न हो जाता है, वे अपने आपको एकदम स्पष्ट कर देते हैं। मन में कोई गाठ नही देख पाते, चेतन उनका अत्यन्त उद्भासित हो उठता है। द्विवेदी जी के सारे वातावरण में उसका विपरीत प्रभाव मिलता है। यहा सव उद्वेग चेतन के शासन के कारण दवता चला जाता है। द्विवेदी जी की "सुहागविन्दी" का चित्र भारत के साधारण कोटि के घरो में मिल सकता है।[१]

द्विवेदी जी का क्षेत्र सामाजिक व्यग्य है। कुछ एकाकियो में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सैक्स समस्या का विवेचन भी किया गया है। सैक्स के सम्बन्ध में आप नये पाश्चात्य मनोविज्ञान से प्रभावित हैं। कुछ एकाकियो को छोडकर आपके अधिकाश एकाकी जैसे "सोहागविन्दी, वह फिर आई थी, परदे का अपर पार्श्व, शर्माजी, दूसरा उपाय ही क्या था, सर्वस्व समर्पण, कामरेड", आदि सामाजिक होने के साथ किसी निगूढ सैक्स समस्या को लेकर खडे किए गए हैं। भारतीय समाज की प्रेम या

---

१ डा० सत्येन्द्र, "हिन्दी एकांकी", पृष्ठ १०४।

काम-वासना विषयक धारणाओ को उन्होने पाश्चात्य कसौटियो पर परखा है। क्रान्तिकारियो के लडके लडकी परस्पर स्वाभाविक असकोच से काम करते है और सैक्स को भूल जाते हैं, किन्तु पुरानी रूढ़ियो में पले व्यक्ति उनके नये सामाजिक सम्बन्धो को पुराने बटखारो से तोलते है और अपने सन्देह से उन्हें वेधा करते हैं। पुराने समाज के ठेकेदारो के दिमाग में बस एक लिंग भेद की शाश्वत समस्या रहती है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दू समाज का वातावरण दूषित है। यही समस्या द्विवेदी जी ने घुमा-फिरा कर हिन्दू विवाह पद्धति के नाना विषम रूप दिखाते हुए अपने एकाकियो में व्यग्यात्मक ढग से प्रस्तुत की है। समाज की पुरानी मान्यताओ के प्रति विध्वंसात्मक हुए बिना आप नही रह सके है, यद्यपि दृष्टिकोण में नव-निर्माण के लिए कोई सकेत नही है। इनके नाटको का काम कई प्रश्नो का उत्तर देना नही, प्रत्युत स्वय समाज के ठेकेदारो से प्रश्न पूछना है। मानव मनोविकारो का चित्रण है, किन्तु सामाजिक परिस्थितियो के भीतर रह कर क्या प्रतिक्रियाए होती हैं, इन मानसिक सघर्षो को व्यक्त करना है। वे अपने नाटकीय चित्रो द्वारा समाज की विषमता दिखा देते हैं और हमें स्वय सोचने के लिए बाध्य करते है। इब्सन के आदर्शों की ओर आप उत्तरोत्तर अग्रसर हुए हैं। आपके १५ एकाकी उपलब्ध है। १. सोहाग बिन्दी, २ वह फिर आई थी, ३. पर्दे का अपर पार्श्व, ४ शर्मा जी, ५ दूसरा उपाय ही क्या है, ६ सर्वस्व समर्पण, ७ कामरेड, ८ गोष्ठि, ९. दगा, १० परीक्षा, ११ रपट, १२ टैगोर दिवस, १३ रिहर्सल, १४ धरती माता। कुछ नाटक रेडियो पर प्रसारित करने के दृष्टिकोण से लिखे गये है, जैसे, १५. हीरे की लोग तथा १६ पिता पुत्र आदि। अतिम दोनो सफल फीचर है।

द्विवेदी जी के विषय चुनाव को लीजिए। आपने विशेषत स्त्री पुरुष के पारस्परिक यौन आकर्षण (जो सूक्ष्म भावुकता के रग में रगा हुआ है) प्रेम में वैषम्य, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अनमेल होने वाले आधुनिक विवाह, समाज के कृत्रिम बन्धनो में पनपने वाला प्रेम (क्या हम उसे प्रेम कहें ?) मानसिक जटिलताए आदि लिए है। इसके एकाकियो में चित्रित प्रेम मे सर्वत्र वैषम्य है। प्राय वैवाहिक वैषम्य; परन्तु इसके लिए समाज अथवा परिस्थिति उत्तरदायी नही है। यह एक दम मनोवैज्ञानिक है। अर्थात् लेखक ने इसे एक सामाजिक समस्या न बना कर मानव मन में मनोविज्ञान की एक चिरन्तन ग्रन्थि माना है और उसी दृष्टि से उसका विश्लेषण किया है। केवल विश्लेषण, मानो वह उसके स्वरूप को ही समझा सकता है, कारण को नही। कारण के विषय में तो वह मानवीय चिरन्तन सत्यो को स्वत स्वीकार किए बैठा है। द्विवेदी जी ने प्रेम के सूक्ष्म प्राय मानसिक रूप को ही ग्रहण किया है वे। प्रेम को एक स्थायी, एव गहन तीव्र मनोवृत्ति मानते है, परन्तु उसमें आदर्शवादिता नही है। स्त्री के प्रणय में जहा जीवन व्यापी चाह है, समर्पण है, वहां ईर्ष्या, प्रतिहिंसा, पतिग्रहण की उत्कट लालसा भी है। इसी प्रकार पुरुष के प्रेम में जहा सहन करने का बल है, वहा संदेह,

घृणा, दर्प और साथ ही दुर्बलता भी है।

पुरुष की अपेक्षा नारी के प्रति आप विशेष सहानुभूति से परिपूर्ण हैं। आपके एकांकियो में स्त्री पात्रो का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। प्रतिभा देवी, मनोरमा, उर्मिला, तारा, सीता, उमा आदि सभी प्रधान पात्री प्रेम से वंचिता होकर घुल-घुलकर जान देती हैं। तथा बुझते हुए दीपक की भांति बुझने से पूर्व एक नवयुवक का पदार्पण उनके जीवन में एक क्षण आशा का सचार करता है। इनमें नारी के प्रेम जीवन (सैक्स लाइफ) के यथार्थ और स्वाभाविक प्रतिबिम्ब हैं। पुरानी रूढियो तथा सस्कारो के वातावरण में पले हुए व्यक्तियो को ये अश्लीलत्व के दोष से युक्त प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु क्या नारी को अपने सब तरह के अच्छे बुरे वातावरण से सतुष्ट होने का शाप है? क्या वह विवाह बन्धन में बधकर निश्चय रूप से अपना प्रेम भी पति को देने के लिए बाध्य है? क्या पुरुष की तरह स्वतत्र होने, प्रेम पात्र चुनने का का अधिकार नही है? इसी प्रकार के अनेक प्रश्न उनके एकांकियो में निहित हैं। पुरुष पात्र अपनी रुचि का साथी न पाने से कुछ असतुष्ट, अभावुक, यथार्थवादी से हैं। कुछ काली बाबू की तरह अभावुक हैं जिन्हें अपने दैनिक कार्य में ही अवकाश नही मिलता। कुछ बहुत सवेदनशील हैं, जो दूसरे की पत्नी को, जो उनके प्रारम्भिक जीवन में उनकी प्रेयसी रह चुकी है, प्रेम कर विरहाग्नि में जलाते हैं। "सुहाग बिन्दी, दूसरा उपाय, सर्वस्व समर्पण" आदि नाटको में नारी स्वभाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है", तो "वह फिर आई थी, परदे का अपर पार्श्व, शर्मा जी" आदि में पुरुष के मन का अध्ययन। कुछ में केवल चरित्र का ही अध्ययन है पर घटना का अभाव है।

द्विवेदी जी का "सोहग बिन्दी" सैक्स समस्या का स्पर्श करता है। प्रतिभा के पति के मौसेरे भाई विनोद का प्रोत्साहन पाकर प्रतिमा की अतृप्त वासनाए उमडती हैं। उसके मिलने न आने पर अवरुद्ध होकर मानसिक रोग में, फिर उन्माद और अन्त में मृत्यु में परिणत हो जाती है। इस नाटक में वैवाहिक वैषम्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। "वह फिर आई थी" में मनोरमा को अपने प्रेमी से पुन मिलने आने का कथानक है। "परदे का अपर पार्श्व" में वास्तविक प्रेम का चित्रण है। "शर्मा जी" में एक डिप्टी क्लेक्टर के विद्यार्थी जीवन में रोमास की प्रेम गाथा है। तारा के स्वभाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्विवेदी जी ने कलात्मक ढग से किया है। उसमें स्त्री स्वभाव के गुण नही, पुरुष स्वभाव के गुण हैं। यही आस्थाना के वैवाहिक जीवन की समस्या है। "दूसरा उपाय ही क्या है" में पडोस के युवक युवतियो का अबोध और अल्हड होते हुए भी प्रेम-व्याधि मे फस जाना, गुप्त मन में इस प्रेम के सस्कारो का रहना, उसकी प्रतिक्रियाए, ऐश्वर्य के प्रलोभन में दूसरी जगह विवाह, पति का अधिकार-मय प्रेम पर वास्तविक रूप से हृदय पर अधिकार न होना, आन्तरिक तूफान और कसक का हाहाकार व्यक्त हुआ है। "सर्वस्व समर्पण" में विनोद तथा उनके मामा की लडकी निर्मला के प्रेम की कहानी है। इसमें पत्नी और प्रेमिका के मध्य

उत्पन्न होने वाली ईर्ष्या का बडा मनोवैज्ञानिक चित्रण है। "कामरेड" में दो पुरुष एक स्त्री के प्रेम में पडकर पारस्परिक सघर्ष करते है। अपने साहित्यिक एकाकी "गोष्ठी" में द्विवेदी ने साहित्य क्षेत्र की अनेक कमजोरियो को उभारा है। निष्कर्ष यह है कि द्विवेदी जी विषय चयन और प्रतिपादन में सर्वथा मौलिक है।

आपके एकाकियो की टैकनीक अग्रेजी से विशेषत प्रभावित है। मनोविज्ञान की सहायता से पात्रो की अन्त स्थिति को चित्रित करने में आप विशेप कुशल है। एक वारीक तत्व को पकडते है और उसको मनोविज्ञान की सहायता से तीक्ष्णतर करते हुए अत्यन्त कौशल से चरम सीमा तक ले जाते है। उनके विकास मे कही भी असगति नही आई है। द्विवेदी जी की दृष्टि में मन के स्तर खोलने की क्षमता है और वाणी में उनका रसमय वर्णन करने की शक्ति है। आपके सकेतात्मक प्रयोग पाश्चात्य शैली के है।

सर्वप्रथम कथावस्तु के क्रमिक विकास में कौतूहल का प्रयोग है। प्रत्येक एकाकी में घटनाओ का विकासक्रम क्रम से होता है। साथ ही विगत घटनाए खुलती और पारस्परिक सम्बद्धता प्राप्त करती जाती है। प्रत्येक नाटक का एक सुकल्पित लक्ष्य है। आप अपने कथावस्तु की गठन में विशेप चातुर्य दिखाते है। इसी की सहायता से कथासूत्र का विकास होता है। आपके एकाकियो में वाक् वैदग्ध्यता और मर्मस्पर्शिता पर्याप्त रूप में विद्यमान है। निम्न स्थिति के पात्रो से सहज स्वाभाविक ग्रामीण भापा का प्रयोग कराया गया है। 'गोष्ठी" तथा "कामरेड" मे जो शिक्षित पात्र है वे शिष्ट भापा का प्रयोग करते है।

द्विवेदी जी के नाट्कीय निर्देश पाश्चात्य शैली के हैं। इनमें कथासूत्र, स्थान, वातावरण आदि का पूर्ण चित्र विद्यमान रहता है। ये लम्बे, सर्वांगपूर्ण और व्यापक है आपकी एक विशेपता लघु रेखा चित्र उपस्थित करना है। रगसूचनाओ में आप पहले स्थान, काल तथा वातावरण का निर्देश करते है कथानक का प्रारम्भिक भाग देते हैं तथा पात्रो के मनोभाव, अनुभाव विभाव, सूचनाए प्रदान करते है। कुछ सूचनाए अग्रेजी भापा में ही है, जैसे "कामरेड" की कुछ सूचनाए।

पात्रो की वेशभूपा तथा आन्तरिक मन व्यवस्था के चित्रण में भी द्विवेदी जी उद्योगशील हैं, इसके अतिरिक्त रगसूचनाओ में कहीं कही साकेतिक उपयोग भी हुआ है। "सोहागविन्दी" का एक उदाहरण लीजिए।

"काली वावू एकाएक सन्न होकर पेपर को हाथ में लिए सन्दूक वन्द कर देते हैं और मूर्छित से पलग पर पड जाते है। थोडी देर में वह अस्थिखड उनके दूसरे हाथ से फर्श पर आ गिरता है। महाराज दीर्घ निश्वास के साथ कुछ अस्फुट उच्छ्वास करता हुआ वाहर निकल जाता है, मानो वह दृश्य उसके लिए असह्य हो। थोडी देर वाद एक विल्ली उधर से आती है और उस अस्थिखंड को लेकर खेलने लगती है।"

द्विवेदी जी ने पश्चिमी शास्त्र, से विपय तथा टैक्नीक दोनो ही पाश्चात्य

नाटकीय तत्वो से ग्रहणकर उन्हें हिन्दी में प्रविष्ट कराया है। आपका ध्येय पाश्चात्य ढग की कलात्मक वस्तु का उत्पादन था। पाश्चात्य आदर्शों का अनुकरण आपने इस सीमा तक किया कि आप पाश्चात्य प्रभाव को भुवनेश्वर की तरह पचा भी नही पाये हैं। उनके कुछ एकाकियो में पाश्चात्य प्रभाव अधिक मुखरित हो गया है। सैटिंग में भी कुछ भूलें हैं। "शर्मा जी" एकाकी में दो पात्र टेलीफोन पर यथेष्ट काल तक वार्त्तालाप में निमग्न रहते है, मानो प्रत्यक्ष ही वार्त्तालाप हो रहा हो। मध्य में एक्स-चेन्ज भी 'हरी अप प्लीज" कह देता है। मच पर केवल एक व्यक्ति का टेलीफोन पर प्रदर्शन हो सकता है। दृश्यो की सख्या भी प्राय अधिक है। "सोहाग-बिन्दी" एकाकी में यह ग्यारह तक पहुच जाती है। एक त्रुटि यह रही कि द्विवेदी जी समय तथा स्थल सकलन के प्रति कोई ध्यान नही दे सके, जिससे नाटकीय विधान में सकलन सम्बन्धी त्रुटिया बनी रही। "सोहाग बिन्दी" तो छोटे अनुपात में एक पूरा नाटक सा प्रतीत होता है। फिर भी एकाकी के विकास में द्विवेदी जी का योगदान महत्वपूर्ण है।

६. **श्री गिरिजाकुमार माथुर** श्री माथुर का नाटक रचना क्रम १९३६ से प्रारम्भ होता है। आपके "सिराजुद्दौल्ला" से नाट्य-रचना का सूत्रपात्र हुआ था। इसी रचना में उच्च नाटकीय तत्वो का समावेश है। आपके नाटको को पाच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१ वे प्राचीन सास्कृतिक (क्लासिक) नाटक जिनमें कालीदास की रसमय सौन्दर्य भरी आत्मा का सही चित्रांकन किया गया है, २ सामाजिक मनोवैज्ञानिक, ३ ऐतिहासिक, ४ प्रतीकात्मक, ५ रेडियो गीतिनाट्य।

सास्कृतिक नाटको के अन्तर्गत श्री माथुर के निम्न एकाकी आते हैं १ कुमार सभव (कालीदास के रघुवश काव्य का नाट्य रूपान्तर), २ शकुतला (कालीदास विरचित नाटक का भव्य रूपान्तर) ३ मेघ की छाया (मेघदूत के आधार पर रचित रूपक), ४ ऋतु सहार (कालीदास विरचित काव्य का सगीत रूपान्तर), ५ इन्दुमती (रघुवश में इन्दुमति स्वयवर के तत्वावधान पर रचित मौलिक गीतिनाट्य), ६ शान्ति की पुकार (विश्व सस्कृति के समन्वय पर) एक रूपक है, ७ राम की अग्नि परीक्षा" प्राचीन भारतीय आदर्शों पर आधारित राम के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। कथावस्तु रामराज्य में ब्राह्मण पुत्र की अकाल मृत्यु पर आधारित है। ८ गीत गोविन्द जयदेव विरचित काव्य का नाट्य रूपान्तर है। ९ "धरादीप" एकाकी दीपावली की पृष्ठभूमि पर मानव समाज का आदिम, सामाजिक और आर्थिक विकास तथा आर्य अनार्य सभ्यताओं का राम रावण के प्रतीकों द्वारा ऐतिहासिक सघर्ष चित्रित करता है।

सामाजिक मनोवैज्ञानिक एकाकियो में आपके ये नाटक उल्लेखनीय है १ "जन्म कैद", यह एक मनोवैज्ञानिक दुखान्त नाटिका है। इसमें विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर सद्य विवाहिता विधवाओ की समस्या को उभारा गया है। २ "पिकनिक" एक सामाजिक व्यग्य है, जिसमें मध्यवर्गीय महत्वाकाक्षियों के बीच क्षणिक रोमास

की थोथी निराशाओं पर कटाक्ष किया गया है। ३. "मशीनोत्सव" में मशीन युग के मध्य इन्सान और इन्सानी सबंधों की कड़िया कैसे टूट गई हैं, जीवन का आनन्द-पर्व समाप्त हो गया है यह चित्रित किया गया है। इसमें चित्रित किया गया है कि मानव समाज में उसकी पुनः स्थापना तभी सभव है जब मशीन व्यक्ति प्रेम के आधार पर बहुजन के हित का साधन बने। ४ "व्यक्तिमत्त धरामुक्त", जनतन्त्र में श्रम की महत्ता का प्रतिपादन करता है। ५ "राम की अग्नि परीक्षा" में लोक-कल्याण की एक कल्पना दिखाई गई है। ६ "अमर है आलोक!" स्वतन्त्रता और जन-मुक्ति की भावना से अभिभूत रूपक है। ७ 'खून की रेखाए", नाटक में साम्प्रदायिक दगो को उभारा गया है। ८. "बहती जा दामोदर" दामोदर घाटी योजना पर आधारित भारत की नई रचनात्मक आत्मा का शक्तिशाली डाक्यूमेन्ट्री चित्र है। ९ "लाउड स्पीकर", एक सामाजिक व्यग्य है। १०. "मध्यस्थ", विवाह कराने वाले की मुसीबतें और रूढ़िग्रस्त वैवाहिक आचार विचारो के कारण चित्रित करता है। ११ "बरात चढे" (हास्य-व्यग्य) आधुनिक मशीन-युग में प्राचीन परम्पराओं पर व्यग्य करता है।

ऐतिहासिक एकाकियो में आपके निम्न एकाकी विशेष रूप से उल्लेखनीय है: १ 'विक्रमादित्य" (ऐतिहासिक फैंटेसी) विक्रमी स्वर्णयुग के उत्कर्ष पर सवत्सर के प्रारम्भ होने की कल्पना से सम्बन्धित है। २. "विषपान" (ऐतिहासिक दुखान्त एकाकी) कृष्णाकुमारी का राष्ट्र सुरक्षा और शान्ति हित में विषपान की कथा मूर्तिमान करता है। ३. "वासवदत्ता" (ऐतिहासिक दुखान्त एकाकी) उपगुप्त और वासवदत्ता की रोमाचकारी कथा पर आधारित है। ४. "क्रांतिपथ" एक ऐतिहासिक रूपक है। भारतीय सस्कृति की मुक्त आत्मा जो युग युग की तमिस्रा में से आलोक-पथ बनाती चली आ रही है, वेदो की कल्याण कामना से लेकर सन् सत्तावन की क्राति और जनतन्त्र के सघर्ष तक इसमें चित्रित की गई है।

प्रतीकात्मक एकांकियो की रचना श्री माथुर की विशेषता है। इस दिशा में आप पथ प्रदर्शक रहे हैं और अपने गीतिनाट्यो में अपने प्रतीको का बड़ा विलक्षण प्रयोग किया है। १. "रस की जीत" नवरसो के आधार पर रचित एक फैंटेसी है। नवरस के मानवीकरण के बीच मनोराज का संघर्ष और अन्त में इन्सानी प्रेम की विजय दिखाई गई है। २. 'शाति विश्वदेवा" में युद्ध और शाति की अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर स्वर्णदैत्य की अध्यक्षता में भयंकर असामयिक शक्तियो के साथ इंसानी जीवन का चरम सघर्ष और जनमोहन (नागरिक जीवन का प्रतीक) की अतिम विजय दिखाई गई है। ३. "मदनोत्सव" वसन्त का प्रचीन नवीन ऋतु-चित्र है। ४. "वसन्त की चादनी" ५. 'बकुल मुकुल" (संगीत रूपक) में वर्षा का मनोरम भूमिका में भारतीय लोक जीवन की झाकी दिखाई गई है।

गीति नाट्यो के अन्तर्गत ऊपर के अनेक नाटक आते हैं जैसे, "मेघ की छाया,

ऋतु सहार, इंदुमती, राम की अग्नि परीक्षा, घरादीप, शाति विश्वेदेवा, खून की रेखाए, व्यक्ति मुक्त, घरा मुक्त, अमर हे आलोक" इत्यादि। इनके अतिरिक्त इस वर्ग में आपके "वसन्त की चादनी, नीद के देश में (फैंटेसी), दीप शिखा, (रोमास), नैंन छिन्दन्ति शास्त्राणि" गाधी जी की मृत्यु पर जन्म-भूमि भारत की अमर आत्मा का विभिन्न कालो में चित्रण, आदि प्रतीक-रूपक भी रखे जा सकते हैं। इनमें "शान्ति विश्वदेवा" सब से सफल प्रतीक-गीति-नाटय है, जिसमें आधुनिक विज्ञान के समस्त आविष्कारो का चित्रण कर जीवन के कल्याण और प्रकाश की शक्तियो की विजय चित्रित की गई है। मूलत श्री गिरिजाकुमार रोमानी दृष्टिकोण से प्रारम्भ करके सामाजिक यथार्थ तक पहुचे हैं। रूढियो से विरोध रोमान की आत्मा है, यथार्थ से आपका वैर नही।

रेटियो एकाकी के क्षेत्र में श्री माथुर ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। उपरोक्त अनेक एकाकियो तथा गीति नाट्यो के अतिरिक्त २० से २२ रेडियो रूपक, डाक्यूमेन्ट्री और लघु रूपक आपने लिखे हैं। इनमें गीतिनाट्य, प्रतीक रूपक, फैंटेसी, सामाजिक व्यग्य सभी सम्मिलित हैं। श्रव्य रूपको के टैकनीक में आपने बहुत से नये प्रयोग किये हैं, जिसमे ध्वनि चित्र सबधी प्रयोग मुख्य हैं। वैसे भाषा, कथोपकथन, वातावरण, ध्वनि-सतुलन (Balancing and voice perspective) और रूपक की ओवर आल (Over-all) गठन के मौलिक प्रयोग भी हैं। रेडियो रूपक नामकरण सर्वप्रथम आपने ही किया था, जो अब प्रतिष्ठित और सर्व स्वीकृत है। इसके अतिरिक्त नैरेटर को वाचक, फेड आउट को विलियन, पाज (Pause) को अन्तराल, साउन्ड इफैक्ट को ध्वन्याकन, रिकार्डिंग को ध्वनि लेखन, प्रोडेक्शन निर्देशन आदि कितने ही पारिभाषिक शब्द आपने प्रचलित किये है, और बहुत सी टैकनीक सम्बन्धी बारीकिया दी हैं।

जहा तक श्री गिरिजाकुमार माथुर की समस्याओ का प्रश्न है, वे एक ओर समष्टि रूप से समाज को छूती है, तो दूसरी ओर व्यष्टि रूप से इकाई को। इकाई की समस्याए समाज की ही छोटे रूप मे समस्याए हैं। उन्हें समष्टि के सदर्भ में ही रख कर देखना होगा, वही उनका हल है। मनोवैज्ञानिक समस्याए भी उससे बहुत पृथक नहीं। आपका अधिकाश नाट्य-साहित्य समष्टि रूप में ऐतिहासिक और सामाजिक समस्याओ के आधार पर ही रचा गया है। इस अर्थ में वह क्लासिक पैटर्न का अनुगामी है। दो प्रकार के एकाकियो के निर्माण में आप विशेष सिद्धहस्त रहे हैं। १ जहा सघर्ष में भी विश्वास की भावना हो, २ दुखान्त यदि उनका आधार सामाजिक कर्तव्यो के प्रति आत्म-बलिदान है।

१० श्री शभूदयाल सक्सेना रामकृष्ण-भक्ति से सम्बन्धित पौराणिक नैतिक चेतना को मुखरित करने वाली विचारधारा के अन्तर्गत श्री शभूदयाल सक्सेना प्रमुख एकाकीकार हैं। पाश्चात्य टैकनीक के प्रयोग आपने पौराणिक कथानको पर किए

हैं। बाहरी बनावट पाश्चात्य होते हुए भी अतीत भारतीय सस्कृति के आदर्शों का स्पष्टीकरण आपका मूल ध्येय रहा है। इनके नैतिक आदर्शवादी चित्र कलात्मक हैं। विशेष उत्तेजना या भावावेश इन्हें पसन्द नही है, अपनी सहज स्वाभाविकता से उच्चतम हिन्दू आदर्शों की प्रतिष्ठा करता हुआ इनका प्रत्येक एकाकी दर्शक तथा पाठक के मन पर भव्य छाप छोडता हैं।

रामायण के भावपूर्ण स्थलो को लेकर आपने उन्हे अपने एकाकियो मे गूथा है। विकास की दृष्टि से आपका सर्वप्रथम एकाकी सग्रह १९३४ मे प्रकाशित हुआ था, जिसमे सात बालोपयोगी रचनाए थी। १ मातृ प्रेम २ स्वयवर सभा ३ उतराई ४ सीताहरण ५ पम्पा पथ ६ शिला का उद्धार ७ शक्तिबाण। सन् १९३६ से ३७ मे चार पौराणिक एकाकियो का सृजन हुआ। १ प्रहरी २ आतिथ्य ३ सोने की मूर्ति ४. वल्कल। इनमे चरित्र के गौरव तथा भाव सौष्ठव को महत्व प्रदान किया गया है। चरित्रो का निर्माण प्राचीन परम्परा के अनुसार ही है। मृदु कथोपकथन इनकी मौलिकता है, पर कही-कही नाट्यकार चरित्रो मे उस महान् गौरव को निभा नही सके है, जो प्राचीन लेखको ने प्रस्तुत की है। "वल्कल" मे दशरथ का यथार्थत सुमन्त को आदेश देना कि राम वन को जाय तथा भरत को राजगद्दी दे दी जाय, दशरथ के चरित्र को दुर्बल बना देता है। न तो वह आदर्शवाद ही रह पाता है, न अवसरवाद ही। प्राचीन आदर्श भग्न हो उठता है और कोई नवीन प्रतिष्ठा नही हो पाती।"प्रहरी" मे शूर्पणखा के सीता बनने के प्रस्ताव पर सीता का भयभीत होना और शूर्पणखा को हटाने मात्र के लिए उस पर आघात करना भी सीता और लक्ष्मण के चरित्रो के अनुकूल नही बैठते। "सोने की मूर्ति" मे दूसरे विवाह के परामर्श पर राम का मन विद्रोह कर उठता है और वशिष्ठ को क्षोभ हो जाता है। उर्मिला, माडवी आदि मे भी वृद्धो के प्रति अश्रद्धा के बीज मिलते है।[1]

उपर्युक्त आलोचना मे कुछ सत्यता अवश्य है, किन्तु यह कहा जायेगा कि नाट्यकार ने अपने पात्रो की आधुनिक परिस्थितियो के अनुकूल परिवर्तित किया है। पुराने कथानको मे जो तत्व तर्कहीन मालूम हुए उन्हे बुद्धिवादी कसौटी पर तर्कपूर्ण कर दिया गया है।

सन् १९३८ मे "हठ, विदा, वनपथ, तापसी, पचवटी" आदि पाच एकाकियो की सृष्टि हुई। इनमे उनकी कला का महत्वपूर्ण विकास मिलता है। टैकनीक की दृष्टि से एक लम्बे दृश्य मे एकाकी परिसमाप्ति पा लेता है, स्थल सकलन के प्रति नाट्यकार सतत सजग है रगमच की सूचनाए अपेक्षाकृत विस्तृत हैं। इनमे वस्तु-विषयक सौन्दर्य के स्थान पर भाव सौन्दर्य अधिक है। चरम सीमा वहा पहुचती है, जहा प्रमुख पात्र भाव विह्वल हो उठता है, यद्यपि कौतूहल और जिज्ञासा को बडी कुशलता से स्थिर

१ डा० सत्येन्द्र, "हिन्दी एकाकी" पृ० ११३।

किया गया है। न कथानक जटिल है, न सहायक विषयो का प्रतिपादन। प्रत्येक नाटक राम के जीवन चरित्र के किसी विशेष पहलू पर प्रकाश डालता है। इस काल के नाटको की विशिष्टता भाव या रस निष्पत्ति की एकता है।

१९४२ मे "विद्यापीठ" लिखा गया। वह पूर्ण परिष्कृत एव परिपक्व रचना है। १९४३ से ४५ मे "सगाई" लिखा गया है, जो एक सामाजिक व्यग्य है। १९४८ से ४९ के मध्य नन्दरानी, लाख का घर बुद्धवाणी, आर्य मार्ग, शुभ्रा की आखें, चीवर धारिणी तथा "उपसम्पदा" आदि एकाकी लिखे गये। यह गौतम बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओ पर आश्रित है। "लाख का घर" नाटक मे महाभारत की एक घटना को कथानक के रूप मे लिया गया है।

पर्णकुटी (१९५०), तपोवन (१९५०), आदेश (१९५०), (छिन्नतन्तु (१९५१) "सत्य का शोध" (१९५१) "मुक्ति का दर्शन" और "माँ" नवीनतम परिपक्व एकाकी हैं। यह सब रामायण-माला के अन्तर्गत आते हैं। रामायण के अनेक सुन्दर स्थलो को भावमयी वाणी मे गूथ दिया गया है। इनका भाव-सौन्दर्य दर्शनीय है।

श्री सक्सेना ने प्राचीन भारत के पौराणिक सास्कृतिक, गौरवशाली चित्र प्रस्तुत कर हिन्दू सस्कृति, आर्य सभ्यता, भारतीय दृष्टिकोण की नैतिक श्रेष्ठता, बौद्ध-धर्म की भव्यता के आदर्शों की मर्मस्पर्शी झाकिया प्रस्तुत की हैं। आप रामायण काल के नैतिक उच्चता मे विशेष प्रभावित हैं। गौण रूप से आपने कुछ सामाजिक, राजनीतिक, परिस्थितियो की प्रतिच्छाया इन एकाकियो पर पडी है। सामाजिक क्षेत्र में आप सकीर्णता के विरोधी हैं। इनके सामाजिक एकाकियो में सामाजिक विद्रूप का बडा व्यग्यमय चित्रण है। "विद्यापीठ" एकाकी मे जातीयता के भावो के विरोध में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इन एकाकियो पर यत्र तत्र गाधीवादी जीवन-दर्शन, सरल जीवन, नैतिक महानता प्राचीन भारतीय आदर्शो का पर्याप्त प्रभाव पडा है। आप आदर्शमूलक एकाकीकार हैं। इनके साहित्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में किसी नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है। आदर्श किसी महान् व्यक्ति के चरित्र मे उतार कर हमारे समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है जिससे हम उसका अनुकरण कर अपना जीवन उन्नत कर सकें। उनकी कला मे साधारण पात्र भी पूज्य तथा अनुकरणीय हो गए हैं। आपका लक्ष्य रस है। भक्ति रस का विशेष रूप से प्रतिपादन किया है। "नन्दरानी, चन्द्र ग्रहण और लाख का घर" आदि भाव-प्रधान आदर्शवादी एकाकी हैं। भाव सृष्टि ने प्राचीन चरित्रो मे भी एक नवीन सुषमा प्रदान की है। जो पात्र प्रतिष्ठित हैं। उन्हें भी आपने मौलिक रीति और नवीन दृष्टिकोण से उपस्थित किया है। उनकी महानता दिखाने वाले पहलुओ पर विशेष प्रकाश डाला है। जिन गीतो का प्रयोग आपने किया है, वे उपयुक्त स्थानो पर स्वाभाविक स्थिति के अनुसार सजाये गये हैं। 'विद्यापीठ" के तीन मीठे गीत भावपूर्ण स्थलो पर रखे गये हैं। देवयानी की अन्तर्व्यथा का इनसे अच्छा स्पष्टीकरण होता है। प्रत्येक एकाकी में एक हल्की सरल

हिलोर है।

इनमें मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण की ओर यथेष्ट ध्यान दिया है, तथा "लाख का घर, चीवर, धारिणी, चन्द्र ग्रहण, नन्दरानी आदि मे नारी हृदय की निगूढतम मनोवृत्तियो का मंथन प्रस्तुत किया गया है। "पचवटी" मे राम के मन का अन्तर्द्वन्द्व, "विद्यापीठ" मे देवयानी के मन मे होने वाले प्रेम तथा कर्त्तव्य का सघर्ष अपना विशेष आकर्षण रखते हैं। "तापसी" एकाकी की उर्मिला जो दीपक की भाति निरन्तर विरह में जल रही है, विस्मृत नही की जा सकती। आपके एकाकियो के दो महत्वपूर्ण गुण हैं, स्वाभाविकता और सरलता।

टैकनीक की दृष्टि से ये अधिक सफल नही है। प्रारम्भिक एकाकियो में दृश्यो की अधिकता है। "विद्यापीठ" मे सख्या ११ तक पहुच जाती है। "वल्कल" के एकाकी तीन-तीन दृश्यो के हैं। श्री सक्सेना की एकाकी-कला का ज्यो ज्यो विकास हुआ है, त्यो त्यो दृश्यो की सख्या भी न्यून होती गई है। "नन्दरानी" सग्रह मे विशुद्ध रूप से नई पाश्चात्य टैकनीक का निर्वाह है। कही २ छोटे २ चलचित्रो जैसे सक्षिप्त मूक दृश्यो की कल्पना की गई है। "नन्दरानी" एकाकी मे कृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओ का समावेश करने का प्रयत्न रगमच की दृष्टि से ठीक नही सधा है। ये रगमच के उपयुक्त नही है, इनमे साहित्य का अधिक और अभिनय तत्व का अपेक्षाकृत कम ध्यान है। अधिक उत्तेजना और भावावेश इन्हें पसन्द नही, नाटकीयता का निर्वाह हैं। सकलन की दृष्टि से कुछ एकाकी सफल नही है। भावात्मक स्थल ढूढने के कारण नाट्यकार ने कथावस्तु का निर्वाह कई एकाकियो मे समुचित रीति से नही किया है। रगसकेत सक्षिप्त हैं। केवल साधारण निर्देश मात्र कर दिया गया है। कथावस्तु मे रिक्त स्थानो की पूर्ति भी रगसकेतो द्वारा की गई है। भाषा का ओज, सरलता, और साहित्यिक पुट, उसकी सरसता और प्रवाह उन्हे शक्तिपूर्ण बनाती है।

११. श्री हरिकृष्ण प्रेमी : प्रेमी जी के एकाकियो की विशेषता उनका नैतिक आदर्शवाद है। समाज के नव निर्माण मे गाधीवाद से प्रभावित नये आदर्श लेकर वे सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नति के इच्छुक हैं। स्वभाव से ही वे नैतिकता, राष्ट्रीयता और आदर्शवादिता को नहीं छोड पाये हैं।[१]

जिस काल मे "प्रेमी जी" के साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण हो रहा था, नीति ने देशभक्ति और समाज सेवा रूप धारण कर लिया था। अतएव वे तुरन्त उस ओर आकृष्ट हो गए। उन्होंने अपनी शृगार भावना को भी नैतिक रूप मे ढालना शुरू किया है। जिस प्रकार भक्ति-काल मे मनुष्य की शृगार भावना धर्म का चोला

---

१. मेरे साहित्य में नैतिकता का दर्शन करके नए युग के समालोचक नाक भौं सिकोड़ते हैं, किन्तु मैं समझता हू, विकृति को हम प्रगति सिद्ध करने का प्रयत्न न करें, यही ठीक है। संसार के

क्रमशः

पहिन कर आती थी, उसी प्रकार सुधार-युग मे उसने राष्ट्रीयता की शरण ली है।[1] प्रेमी जी के शृगार मे राष्ट्रीयता का समन्वय है।

प्रेमी के एकाकियो मे दो प्रकार की विचारधाराए सर्वत्र विद्यमान हैं। १ राष्ट्रीय नव निर्माण और २ नैतिक आदर्शवाद। प्रत्येक एकाकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी नैतिक आदर्श या राष्ट्रीय नव-निर्माण के लिए किसी नियम की प्रतिष्ठा करता हैं। पग-पग पर आपने समाज की रूढियो और धार्मिक सकुचितता, जाति बिरादरी की सकुचित मनोवृत्ति पर आघात किया है। जीवन को नैतिक और सयमित दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने वालो मे प्रेमी जी प्रमुख हैं। राष्ट्रीय नव-निर्माण के हेतु जहा एक ओर आपने राजपूतो के ऐतिहासिक गौरव, अमर बलिदान, मान रक्षा को प्रतिष्ठित किया है, वहा आपने कुछ एकाकियो मे सृजनात्मक दृष्टिकोण से राष्ट्र प्रेम और स्वदेश भक्ति के दृश्यो, सुझावो तथा वक्तव्यो मे भी विशेष अभिरुचि का प्रदर्शन किया है। इन स्थलो मे आवेग तथा गहन अनुभूति के साथ बौद्धिक तत्वो का भी सम्मिश्रण है। भारतीय राष्ट्र के नव-निर्माण के हेतु कलात्मक ढग से स्वस्थ नैतिक विचारधारा और आदर्श प्रस्तुत किए गए हैं।

प्रेमी जी ने अपने एकाकियो मे जिन समस्याओ का विवेचन किया है, उनमें सामाजिक और राष्ट्रीय प्रमुख हैं। सामाजिक समस्याओ के अन्तर्गत विधवा विवाह, हिन्दू समाज की जाति पाति की कट्टरता, दूषित विवाह-पद्धति, बहू पर सास के अत्याचार, चरित्र पर सन्देह, दुर्व्यवहार, वासना का अप्राकृतिक दमन, देवर की दुश्चरित्रता, जीजा की वासना-लोलुप भावना, सामाजिक कार्यकर्ताओं का अपनी सुन्दर पत्नियो से अधर्म की कमाई कराना, साहित्यिको की गरीबी, बेबसी, आधुनिक शिक्षाप्राप्त नारियो की स्वच्छन्द प्रियता, उन्मुक्त प्रेम, झूठा वैभव, सिनेमा प्रेम, पुरुषो की कठोरता, विवाहित होकर अन्य स्त्रियो के प्रति आकर्षित होना, झूठे प्रेम का अभिनय, धन के प्रलोभन द्वारा सतीत्व पर प्रहार, बिना पर्याप्त श्रम किए आरामतलबी का जीवन, किताबी शिक्षा की हानिया, सामाजिक कठोरता, मान्यताए तथा उनके विरुद्ध विद्रोह करते हुए आधुनिक शिक्षित स्त्री पुरुषो का चित्रण किया है। इनके सामाजिक एकाकियो मे रूढि के जीर्ण-शीर्ण खडहर धराशायी होते हैं, तथा उनके स्थान पर नई बौद्धिक पीढी का निर्माण प्रकट होता है। पुरानी जडता तथा रूढिवादिता के विरुद्ध प्रेमी जी का बुद्धिवाद सघर्षपूर्ण नव-निर्माण करता है।

राष्ट्रीय क्षेत्र मे आपने गाधीवाद की विचारधारा का प्रतिपादन करते हुए

क्रमशः

बनाने बिगाड़ने में साहित्य का बहुत बड़ा हाथ है। समाज के प्रति साहित्यिकों का कुछ कर्त्तव्य है। इस लेन देन में बेईमानी नहीं होना चाहिए।"

—हरिकृष्ण प्रेमी, "मन्दिर", पृष्ठ ४।

१ डा० नगेन्द्र, "आधुनिक हिन्दी नाटक", पृष्ठ ३४।

देश मे ब्रिटिश सरकार के सम्मान प्राप्त राव बहादुर, रईसो की गद्दारी, रूस और लेनिन की विचारधाराओ का प्रभाव, काग्रेस के राष्ट्रवाद का महत्व, हिन्दू-मुसलिम एकता की आवश्यकता, भारत का गौरवमय अतीत, जन-जागरण, मानववाद, गुलामी से मुक्त होने की आकाक्षा को अभिव्यक्त किया है। आपका प्रतिनिधि राष्ट्रीय एकाकी "राष्ट्रमदिर" है, जिसमे उस सघर्षपूर्ण युग का चित्र है, जब अग्रेज भारत में अपना दमन चक्र चला रहे थे। "मान-मन्दिर" एकाकी मे साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम तथा हिन्दू मुसलिम सहयोग भावना की ओर सकेत है। "मान मदिर" तथा "न्याय मदिर" एकाकियो मे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर राष्ट्रीय भावनाएँ व्यक्त की गई हैं। सक्षेप मे इनके एकाकियो मे राष्ट्रीयता और नैतिकता का स्वर है। जन्म-भूमि को ऊचा करने की शुभ प्रेरणा, मानव स्वभाव का परिष्कार समाज की जीर्ण-शीर्ण रूढियो पर आक्रमण, प्राचीन गौरव को प्राप्त करने के लिए एकता सगठन और मानववाद का प्रतिपादन है। उपदेशात्मक स्थल भी बडे कलात्मक ढग से प्रस्तुत किए गए हैं।

टैकनीक की दृष्टि से ये एकाकी नए युग के अनुकूल ही हैं। प्रारम्भ मे एक सक्षिप्त सा पूर्व कथासार परिस्थिति का चित्रण तथा पात्रो के सम्वन्ध मे सूचना देते हैं। एकाकी प्रारम्भ मे धीमी गति से चलते हैं, किन्तु दूसरे दृश्य मे यथेष्ट बल आ जाता है। चरम सीमा की व्यवस्था प्राय तीसरे दृश्य मे पहुचती है। प्रेमी के एकाकी का प्रथम दृश्य बडे नाटको के प्रथम अक सदृश्य ही होता है। इन्हें पढकर बडे नाटको के सक्षिप्त सस्करणो का सा भय होता है। क्योकि इनमे कथावस्तु का विस्तार, पात्रो की अधिकता, घटना चक्र की जटिलता और सगीत का विधान है।

प्रेमी जी मूलत कवि हैं। आपके 'स्वर्ण विहान" (गीति नाट्य) मे आपका कवि हृदय प्रकट हुआ है। यह एक राष्ट्रीय सघर्ष की गाथा है। अन्य एकाकियो मे भी आपने सुमधुर गानो का प्रयोग किया है। ये काव्य की दृष्टि से सफल, भाषा प्रवाह युक्त और भाव प्रतीकात्मक हैं। ये पृष्ठभूमि से भी गाये जाते हैं और वातावरण की सृष्टि से प्रमुख भाग रखते हैं। इनकी योजना से एकाकियो मे अर्थ की मार्मिकता तथा अभिव्यजनावाद तो आ गये हैं किन्तु गति तथा चरम सीमा के विकास से व्यवधान उपस्थित हुआ है।

प्रेमी जी के कथोपकथन लम्बे, साहित्यिक और तर्कपूर्ण हैं। चूकि आपके पात्र उच्च वर्ग के शिक्षित व्यक्ति हैं इनकी बोलचाल सयत और परिष्कृत भाषा मे है। तर्क और विचार के साथ इनमे एक विशिष्ट दृष्टिकोण का प्रतिपादन भी है। कहीं-कही स्वगत का प्रयोग भी है। रगसकेतो मे पूर्व कथा की योजना है, जैसे नाट्य-कार कहानी सी कह रहा हो। रगभूमि की व्यवस्था अथवा अभिनय की सहायता की दृष्टि से ये सूचनाए नही लिखी गई हैं। ये साहित्यिक माधुर्य से भीगी है जो नाटको को सुपाठ्य बनाती हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से आपको अपूर्व सफलता प्राप्त हुई

है। आपके पात्र वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। "सेवा मदिर" की राधा समस्त हिन्दू बाल विधवाओं का प्रतिनिधित्व करती है, तो राय साहब सीताराम सरकारी पिट्ठुओ की विचारधारा को प्रकट करते हैं। चन्द्र प्रकाश जैसे सम्पादक जो अपने पत्नी की पवित्रता बेचकर ऐश्वर्यशाली जीवन व्यतीत करते हैं, दूषित मनोवृत्ति के सम्पादको के प्रतिनिधि हैं। कविकुमार निर्धन, किन्तु सात्विक मनोवृत्ति के लेखको के प्रतिनिधि हैं। प्रेमी जी के पात्र हमारे समाज के चिर परिचित व्यक्ति हैं।

१२. श्री वृन्दावन लाल वर्मा वर्मा जी का रचना काल सन् १८९९ है। बगला अनुवादो विशेषत "अश्रुमति" का आप पर विशेष प्रभाव पडा है। आपने श्रीनिवास दास के "रणधीर प्रेम मोहिनी" तथा भारतेन्दु के "नीलदेवी, भारत दुर्दशा", और राजा लक्ष्मणसिंह के अनूदित "शकुन्तला" का विशद अध्ययन किया था तथा उन्ही का प्रभाव उनकी कृतियो पर स्पष्ट है। इनके ये एकाकी पुरानी परिपाटी के हैं। आप पारसी स्टेज के सम्पर्क मे भी आए, किन्तु उस शैली की कृत्रिमता तथा दोहे शेर वाली पद्धति आपको जीवन की वास्तविकता से दूर जान पडी। एकाकी साहित्य मे जिस नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हुआ, वह आपकी कृतियो मे सन् १९०८ से ही प्रकट होना प्रारम्भ हुआ था।

वर्मा जी ने कलापूर्ण समस्या एकाकियों की परम्परा को आगे बढाया है। इनमें आधुनिक समस्याओ का समावेश किया। राजनीति की कार्य प्रणाली पर व्यग्य तथा आधुनिक समाज के मार्मिक स्थलो पर अगुली रख दी। कही आपने पात्रो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर आन्तरिक सघर्षों को निष्पक्ष दृष्टि से प्रस्तुत किया है, तो कही तीखे व्यग्य से मध्यवर्ग की समस्याओ को उभारा है। वर्मा जी के एकाकी दो श्रेणियो मे विभक्त किये जा सकते हैं। १ एक सामाजिक यथार्थवादी एकाकी तथा २ राजनीतिक गुत्थियो का विश्लेषण करने वाले एकाकी।

सामाजिक एकाकियो में १ पीले हाथ। २ लो भाई पचों लो। ३ बास की फास। ४ सगुन। ५ शासन का डडा। ६ काश्मीर का काटा इत्यादि प्रमुख हैं। इनमे भिन्न-भिन्न सामाजिक समस्याओ को उठा कर उनका समाधान किया गया है। लो भाई पचो लो" पचायत राज्य की दुर्बलताओं, दल बन्दियों तथा अन्याय को प्रकट करता है। इसमे गरीबी और पेट की समस्या तथा अपराधी का मनोविज्ञान प्रस्तुत किया गया है। "पीले हाथ" मे विवाह के अधकचरे सुधार पर व्यग्य किया गया है। "बास की फास" स्वतत्र प्रेम और आधुनिक स्वयवर का एक रूप प्रस्तुत करता है। वर्मा जी अपने विचारो को बिल्कुल स्पष्ट नही करते, उनका सकेत मात्र कर देते हैं। "शासन का डडा" मे आधुनिक शासन की दुर्बलताओ की ओर सकेत है।

"व्योजन" (प्रहसन), आर्थर बेला का अनुवाद है जिसे आपने "नरक मे चिडीमार" (हस १९४६) के नाम से प्रस्तुत किया है। यह मध्यकालीन ढाचे और रुचि

का एकाकी है, जिसे जापान में नौ नाटक कहते हैं। इसका रगमच विशेष प्रकार से विनिर्मित है। इसमे घटनाचक्र की गति तीव्र और सजग है। मूल लेखक की भावनाओं की रक्षा और प्रवलता के साथ वर्मा जी ने इसमे रोचकता की सृष्टि की है।

वर्मा जी विशेषत बुद्धिवादी समाज सुधार प्रिय आदर्शवादी एकाकीकार हैं। उन मे नैतिक चेतना और आदर्शवाद की पूर्ण परिपुष्टि है। अपने समाज सुधारवादी एकाकियों में आपने समाज की अनेक समस्याओ पर विचार किया है, जैसे विवाह मे विषमताएं, दहेज तथा प्राचीन रूढि या, अधकचरे सुधार, जन्मपत्रियो को मिलाने तथा जात पात की कठिनाइयो, ज्योतिषियो के मायाचार, शिक्षा प्रचार की आवश्यकता कालेज, के विद्यार्थियों का नैतिक पतन, सिनेमा के दुष्परिणाम, नशे की बुराइया, विज्ञान और धर्म का सापेक्षित महत्व, जनता के अन्ध विश्वासो की निस्सारता, अधविश्वास तथा पाखड प्रदर्शन आदि। राजनैतिक दृष्टिकोण से आपने पूजीवाद और सामन्तवाद की भीषणता, समाजवाद की उदारता स्वाधीनता का अर्थ, वोट का उत्तरदायित्व, सेवक सघो का महत्व, नियत्रण की आवश्यकता, जन रुचि का परिष्कार, लडाई झगडो मे जनता का उत्तरदायित्व, हिन्दुस्तान के सैनिको की स्वदेश भक्ति, राष्ट्रीयता, अतीत भारतीय गौरव, भारतीय देवियो का राष्ट्र की वेदी पर बलिदान, साहस, शौर्य एव दीप्ति का चित्रण किया है। अपनी सास्कृतिक विचारधारा मे आपका दृष्टिकोण विशुद्ध भारतीय है। इस का प्रतिपादन आपके दो एकाकियों में कुछ अधिक स्पष्ट हुआ है। "पीले हाथ" में निर्मला उन्मुक्त प्रेम को हानिकारक बतलाते हुऐ अपने पति से कहती है

"हम अपने हृदय के टुकडे कर सकते है, परन्तु अपनी सस्कृति को नही छोड़ सकते।" निर्मला प्राचीन भारतीय सस्कृति की जीती जागती प्रतिमा है। "बास की फास" मे पुनीता तथा मन्दाकिनी दोनो उच्च विचार तथा प्राचीन आदर्शों वाली बुद्धिमान स्त्रिया हैं।

विचारधारा के दृष्टिकोण से आपके एकाकी साहित्य को दो भागो में विभक्त किया जा सकता है। १ समस्या एकाकी जैसे "पीले हाथ, बास की फास, लो भाई पचो लो" आदि, २ विचारधारा प्रधान एकाकी। इस वर्ग मे वे एकाकी आते हैं, जिनमें नवीन अथवा प्राचीन धारा का प्रतिपादन किया गया है। इस श्रेणी मे आपके दो एकाकी रखे जा सकते है। १ टटागुरु २ कनेर। इनमे आपने भारतीय दर्शन से लेकर सामाजिक, नैतिक राजनीतिक विषयो पर गूढ विवेचन किया है। आप का मत एव विचार सर्वथा मौलिक, प्रतिपादन ललित और भाषा परिमार्जित है। भारत की अर्थनीति, राजनीति, पुरानपथी, अधविश्वास, सेवक सघ, सिनेमा, रेडियो के हानि लाभ, जनता का मनोविज्ञान आदि अनेक विषयो पर आपने मौलिक विचारधारा ओजपूर्ण कथोपकथनो मे व्यक्त की है। इनमे व्यग्य का प्रयोग है।

कथानको के निर्माण मे वर्मा जी ने स्वानुभव से प्रेरणा प्राप्त की है। "पीले हाथ, बास की फास, लो भाई पचो लो", मे वर्णित घटनाए किसी न किसी प्रकार नाट्य-

कार के जीवन से उद्भूत घटनाए हैं। ये कटु मृदु अनुभव तथा सामयिक समस्याए परिवर्तन तथा कलात्मक सौंदर्य के साथ एकाकियो का कथानक बन गई है। "काश्मीर का काटा" का कथानक २४ अक्टूबर १६४७ को ब्रिग्रेडियर राजेन्द्रसिंह के स्वदेश प्रेम और बलिदान को लेकर विनिर्मित किया है। "टटागुरु" का कथानक गभीर विषयो पर कथोपकथन को लेकर खडा किया गया है। "कनेर" मे अनेक समस्याए उठाई गई हैं। इसके मध्य मे कपिलानन्द साधु का रेखा चित्र आधुनिक ढोगी मायाचरी साधुओ पर एक व्यग्य है, "लो भाई पचो लो", ग्रामीण जीवन की एक सजीव झाकी है। आप मध्यवर्ग की सामाजिक समस्या वाले एकाकी लिखने मे विशेष रूप से सफल हुए हैं।

इन कथानको की मूल प्रवृत्ति समाज सुधार है। एक बुद्धिवादी विचारक की दृष्टि से इन एकाकियो मे दहेज, लेनदेन, वैवाहिक गुत्थिया, पचायत के अन्याय, जनता की मूर्खताए भारतीय जीवन के रोमास अव्यवहारिकता को उघेड कर रख दिया है। आपने समाज के शरीर मे सडे गले अश को दूर करने के लिए एक सर्जन की भाति एक नश्तर लगाया है। किसी मे मानवीय राग विराग के भव्य चित्र अकित किए गए है। सिनेमा के दुष्परिणामो का उल्लेख कई स्थानो पर हुआ है। वर्मा जी के कथानको की सबसे बडी विशेषता उनकी वास्तविकता और साधारण जीवन से निकट सबध है। भावुकता के विरोधी न होते हुए भी उनके पाव सदैव मानवीय सृष्टि पर ही रहे हैं। कौतूहल के तत्व मे ये कमजोर होते हुए भी यथार्थवादी जीवन के आलोचक के रूप मे पूर्ण सफल हैं। यद्यपि कही-कही कल्पना के हल्के स्पर्श यहा उपलब्ध हैं, तथापि ये यथार्थ की भित्ति पर ही खडे किए गये हैं।

वर्मा जी के एकाकियो का ससार मध्यवर्ग का प्रतिबिम्ब है। इस दुनिया में पात्र शिक्षित "उच्च विचार वाले, लोभी, वणिक, व्यवसायी, पूजीपति, ऊचे पदाधिकारी, वकील, ईसाई, विज्ञान, भक्त, हठयोगी, इजीनियर, बैंकर आदि सभी हैं। इन के अतिरिक्त दुकानदार, पुलिसमैन, भिखमगे, औरतें, पच, सरपच, मुखिया, चौकीदार वृद्ध, ग्वाल से लेकर मिलिट्री के ब्रिगेडियर, मेजर, कैप्टिन, स्त्री, डाक्टर आदि तक हैं। यह सृष्टि पूर्णत सफल मानव की सृष्टि है, तथा इनमे न्याय, विवेक, पूर्व तथा पश्चिमी विचारधारा का सम्मिलित स्वर है। इस दुनिया मे पुरातन पथी, समाज के सुधारवादी, 'अवकाश नही मिलता' वृत्ति वाले वैज्ञानिक, योरोपियन विज्ञानभक्त तथा नास्तिक भी हैं, जो हिन्दुस्तानियत प्रदर्शित कर हिन्दुस्तानियो पर एहसान दिखाते हैं और पुरानी भारतीय सस्कृति पर कलक हैं।

वर्मा जी की पात्र कल्पना की एक विशेपता यह है कि उन्होंने किसी भी अश्लील विचार वाले, गन्दे, गुडे को अपने एकाकी साहित्य मे स्थान नही दिया है। उसमे शिवत्व की भावना प्रमुख है। उनके खलनायक छन्दी, मनोरथराम उर्फ टटा गुरु, सोहनपाल आदि अपने अन्दर कीचड मे दबे हुए कमल के सदृश कुछ सात्विक प्रवृत्तिया

भी लिए हुए हैं। छन्दी को बेकारी, मजबूरी, और उदर की अग्नि शात करने के लिए विद्रोही बनाया गया है। "बास की फास" का फूलचन्द तथा गोकुल दोनो रोमांटिक टाइप के विद्यार्थी हैं, जो बाद मे अपनी बदतमीज़ी और लफगेपन पर पश्चाताप करते हैं। "पीले हाथ" का सोहनलाल मुह तोड बातें करने के लिए प्रसिद्ध है। वह एक उद्दड युवक है तथा सदैव कुछ व्यग्यात्मक फूहड़ बात कहता है। लड़ाई झगडा करता है, किन्तु उसकी सनक में एक सार निहित है। इसी प्रकार "टटागुरु" का मनोरथराम बखेडे करने-कराने तथा अवसर आने पर अटपटी बातें कहने से न चूकने वाला व्यक्ति है। उसका दार्शनिक या धार्मिक मत कुछ भी क्यो न हो, जीवन मे वह चाहे जितने बखेड़े करता हो किन्तु उसके आर्थिक तथा समाजवादी विचारो मे पर्याप्त तथ्य हैं, काम करने मे वह दृढ मनोबल का व्यक्ति है।

कला पक्ष पर वर्मा जी ने अधिक ध्यान नही दिया है। एकाकियो के प्रारभ मे पूर्व *कथाए है, जिनमे पात्रो का परिचय, स्थिति तथा वातावरण का चित्रण तथा* आवश्यक जानकारी प्रदान की जाती है। पात्रो के विषय मे भी अनेक ज्ञातय तत्वो का सकेत प्रारम्भ ही मे कर दिया जाता है। भावना के अभ्यन्तर अनुभूति पहलू मे जो उल्लेखनीय गुण हैं, उनका भी प्राय इन पूर्व कथनो मे निर्देश रहता है। ये रेखा-चित्र अपने आप मे पूर्ण हैं। पाठको के अन्त करण मे इनके काल्पनिक चित्र निर्मित करने मे प्रचुर सहायता प्राप्त होती है।

ये एकाकी प्रारम्भ मे बडी धीमी गति से चलते हैं। "टटा गुरु" तथा "कनेर" का प्रवेश इतनी धीमी गति से चलता है कि यह मालूम करना कठिन है, नाट्यकार किस ओर इगित कर रहा है। कुछ नाटको मे मुख्य समस्या के साथ अनेक गौण समस्यायें एक साथ गुम्फित कर दी गई है। "टटागुरु" मे समस्त आधुनिक राजनीति को आलोचना का विषय बना लिया गया है। "बास की फास" मे पृथक पृथक दो युवक युवतियो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर दिया गया है। "कनेर" मे विज्ञान तथा धर्म पर एक लम्बी बहस चलती है। अपेक्षाकृत लम्बे तथा तर्कपूर्ण कथोपकथनो मे ये एकाकी गति पकडते हैं। उनमे बुद्धि और तर्क की घानता रहती है। घटनाए प्राय कम होती है तथा सघर्ष कथोपकथन या उत्तेजित बहस के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। "कनेर" तथा "टटागुरु" एकाकियो के कथोपकथन सक्षिप्त तथा गम्भीर विवेचना से परिपूर्ण हैं। इनमे दैनिक जीवन तथा शिष्ट शिक्षित वर्ग की चलती हिन्दी का उपयोग किया गया है। कही कही अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। यथा :

"मनोरथ" और उसे आप क्या कहेंगे, झिलमिल जी ? पूजी के एक बड़े पुर्जे ने धर्र-धर्र किया। अखबारो ने उसे पोत-पात कर भर्र भर्र कर दिया और भूख की सताई जनता ने उसको सर्र मर्र अपनाया। पूजी के उन बडे पुर्जे के पक्ष में वोट पड गये। इस भ्रम का नाम रख दिया गया, स्वतन्त्र वोट-गुप्त वोट,

जनतन्त्र का आधार,"—(टटागुरु)।

कही कही कथोपकथन वाद विवाद का रूप ग्रहण कर लेता है, लेकिन वे कुशलतापूर्वक सविधान का अग बना कर एकाकियो को प्रगति प्रदान करते हैं। कहीं-कहीं नाटकीय सजीवता एव क्रिया प्रदान करने के लिए बहस मे हाथापाई का प्रयोग भी किया गया है, किन्तु इनके कथोपकथनो मे हृदय की अपेक्षा बुद्धि और मस्तिष्क की चिन्तन रेखाओ की स्पष्ट छाया है। वर्माजी का हृदय रोमानी नही है। वे तो स्वाभाविकता की रक्षा करते हुए गहन तथ्यो का उद्‌घाटन करने मे विशेष दिलचस्पी लेते हैं। जहा वे वाद विवाद या मत प्रतिपादन मे सलग्न हुए है, वहा वाक्य और वक्तव्य लम्बे हैं। "कनेर" मे विज्ञान और आध्यात्म के सामजस्य पर जोर डालने वाले प्राय सभी वक्तव्य लम्बे और कही कही नीरस हैं। पात्र आदर्शोन्मुख होने के कारण प्राणहीन विवाद में सलग्न हो जाते हैं तथा निर्जीव दार्शनिक तथ्यो का उद्‌घाटन करते हैं। इन लम्बे दार्शनिक वक्तव्यो का भार हल्का करने और एकरसता नष्ट करने के लिये अन्य पात्रो द्वारा चुहल और उत्तेजना उत्पन्न की जाती है, किन्तु वे लम्बे व्याख्यानो से उत्पन्न शैथिल्य का निवारण नही कर पाते, कुछ एकाकी जैसे"कनेर" बिना कथानक के हैं, केवल कुछ गौण समस्याओं पर प्रकाश डालने मात्र के लिए लिखे गये हैं।

पर टैकनीक के क्षेत्र मे वर्मा जी ने कोई नया योग नही दिया है। उस पर द्विवेदी युग के प्रभाव की सर्वत्र झलक है। एकाकियों मे प्राय कई दृश्यो का विधान है। प्रारम्भिक दृश्य बडी धीमी गति से अग्रसर होते हैं। सकलन-त्रय का ऐक्य भी अनिवार्य रूप से माना नही गया है। स्थल सकलन की अवहेलना "पीले हाथ," "लो भाई पचो लो" तथा "बास की फास" आदि में हुई है।

वर्मा जी के एकाकियो मे क्लाइमैक्स स्पष्ट नही है। उनमे अनेक छोटी-छोटी घटनाओ का चित्रण है। यह नाटकीय कौशल से कौतूहल का सचय करते हुए नहीं उठते हैं। "कनेर" तथा "टटागुरु" मे आश्चर्य या जिज्ञासा की झकोर नही है।

विगत घटनाओ की व्यजना अधिकतर रग सूचना मे व्यक्त कर दी जाती है। वर्मा जी ने स्थान और समय का विस्तृत वर्णन कहानी की शैली में रगसूचनाओ मे व्यक्त किया है। ये लम्बे, वर्णनात्मक प्रारम्भिक कथासार तथा पात्रों के कार्यकलाप का निर्देश करने वाले हैं। प्रभाव व्यजना या चटपटेपन की ओर नाट्यकार की दृष्टि नही गई है। "काश्मीर का काटा" एकाकी का प्रारम्भिक रग-सकेत एक पृष्ठ का है। "लो भाई पचो लो" के प्रारम्भिक निर्देश मे वस्तु स्थिति तथा कथासार सक्षेप में दिया गया है।

इनके एकाकियों का सविधान रगमचीय है। ये अपने वर्तमान रूप मे साधारण परिवर्तन के साथ अभिनीत हो सकते हैं। रेडियो पर भी इन्हें प्रसारित किया जा सकता है। गीतो का भी प्रयोग किया गया है। "पीले हाथ" का प्रारम्भ द्विवेदी-

कालीन एकांकियो की भाति निम्न गीत से होता है।

"पवन तू डाल सुरभि झोली में
थकी हुई सी, झुकी हुई सी, रश्मि सिमटकर चली आ रही ,
झुकी हुई सी, लुकी हुई सी, निशा झिलमिली सजी आ रही ,
गगन ने घोले रंग रोली में ,
पवन तू डाल सुरभि झोली में।"

यह गीत एकाकी मे आने वाली युवती तथा युवक के मनोभावो का प्रतिबिम्व उपस्थित करता है। निर्मला आन्तरिक उल्लास से भरी हुई है। वह अपने हृदय के आवेग को सम्हाल नही पाती और प्रकृति मे अपनी भावनाओ की छाया पाती है। इसी प्रकार के साकेतिक गीत "बास की फास" मे ही हैं जिनसे एकाकी सरस हो गये हैं। इनका स्निग्ध और मृदुल प्रवाह दर्शनीय है। कुछ गानो मे आध्यात्म की गम्भीर छाया भी है, जैसे—

"मन का चेत न खोने दे तू ,
जग का हित मत खोने दे तू ,
तब हरयाली छा जायगी ,
फूलों से लद जायगी ,
लदी रहेगी, फली रहेगी, जगी रहेगी।'

वर्मा जी जिस ढग से निज अनुभूतियो की व्यजना तथा विचारधारा का प्रतिपादन करते हैं, उस पर उनके व्यक्तित्व की छाप सर्वत्र रहती है। जहा भावो की गहनता से उत्पन्न दुरुहता से मुक्त है, वहां उनकी भाषा मे वह अविकल प्रवाह पाया जाता है, जिससे मन प्रसन्न होता रहता है।

१३. डा० सत्येन्द्र : डा सत्येन्द्र के एकाकी सम्बन्धी प्रयोग सन् १९२१–२२ से प्रारम्भ हुए थे। आपका प्रथम एकाकी १९२१ में बालचरो के उद्देश्यो का प्रतिपादन करने वाला एक समस्या नाटक था और मूलत अभिनय की दृष्टि से लिखा गया था।[1] उस समय एकाकीकार सत्येन्द्र के मन मे एकाकी का उद्देश्य स्पष्ट न था। इस प्रारम्भिक कृति मे उन्होंने बालचरों के उद्देश्यो को प्रकट करने वाला एक सक्षिप्त कथानक गढ लिया था तथा उसे सुविधानुसार ४, ५ उद्देश्यों मे विभाजित कर दिया था। वैसी ही प्रयोगात्मक मन. स्थिति मे आपका प्रथम एकाकी "कुणाल" (१९३७) प्रकाशित हुआ था।[2] इस ऐतिहासिक रचना का एकाकी के इतिहास मे वही महत्व है जो प्रसाद के "एक घूट" का है। "एक घूट" की भाति इसे हम सस्कृत के दश रूपकों मे अक का परिष्कृत और आधुनिक रूपान्तर मान सकते हैं। इसमे पात्रो की सख्या

---

१ देखिये, डा० सत्येन्द्र कृत "हिन्दी एकाकी : आरम्भ और विकास", पृ० ३१।
२. वही, पृ० ३१।

तेरह है। इतिवृत लम्बा है तथा "कुणाल" के सम्पूर्ण जीवन का विश्लेषण प्रस्तुत करता है, काल तथा स्थल सकलनो का पालन नही किया गया है तथा प्राचीन एकांकियो की भांति इसमे रसोद्रेक की व्यवस्था के लिए, "मधु बरसे तेरे रजकण से" "मेरा मन भूले पक्षी सा", "चपल चपला सा जगत जीवन के सुख सपने" आदि नौ सरस गीतो का विधान है। कथोपकथनो मे प्रसाद जैसी भावुकता और साहित्यिकता का समावेश है, स्वगत कथन और स्वय अपने ही आप कहने की परिपाटी का भी पालन है। "कुणाल" मे ग्यारह दृश्य और ६४ पृष्ठ हैं। अत "कुणाल" आधुनिक एकाकी होते हुए भी आधुनिक एकाकी की कला से काफी दूर हटा हुआ है।

अन्य एकांकियो मे डा० सत्येन्द्र की कला का विकास हुआ है। "स्वतत्रता का अर्थ" (१९३९) नये विधान का एक सफल प्रयोग है। इसमे केवल एक लम्बा दृश्य है। मध्य मे पर्दा फटने का विधान है, जिससे मूल विचार का प्रतिपादन सही रूप मे हो जाता है। यह जीवन के अधिक समीप है। "प्रायश्चित" एक परिष्कृत रचना है जो आधुनिक टैकनीक पर निर्मित एक सफल एकाकी का उदाहरण है। "बसन्त" तथा "मानव उद्धार" नवीन एकाकी विधान के प्रयोग है। इनकी विशेषता ओजमयी शैली, व्यग्यात्मक चित्रण और प्रतीकात्मकता है। अभिनय की दृष्टि से ये सफल एकाकी है।

विचार तथा विषय की दृष्टि से आपके एकाकी साहित्य को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है। १ राष्ट्रीय ऐतिहासिक चेतना आदर्शवादी होने के कारण सत्येन्द्र ने प्राचीन इतिवृत लेकर स्वस्थ विचारधारा का प्रतिपादन किया है। अतीत कालीन भारतीय गौरव, भारतीय सस्कृति की प्रतिष्ठा तथा नागरिको के चारित्रिक बल की अभिवृद्धि करने वाले आदर्शों की सृष्टि कर राष्ट्रीय पुन निर्माण मे सहयोग प्रदान किया है। इनमे यत्र तत्र सामयिक समस्याओ पर भी सकेत है। इस वर्ग मे आपके "कुणाल," "विक्रम का आत्ममेघ", "प्रायश्चित" तथा "स्वतन्त्रता का अर्थ" आदि नाटक रखे जा सकते हैं। २ सामाजिक-नैतिक चेतना इसके अन्तर्गत लेखक ने सामाजिक आचार-विचार नियम तथा बन्धनो पर व्यग्यात्मक प्रकाश डाला हैं। "बलिदान" (१९४०) दहेज की कुप्रथा का चित्रण है। मध्यवर्गीय समाज को एक ओर अपने मान प्रतिष्ठा की चिंता है, दूसरी ओर अच्छा वर पाने के लिए दहेज देने का फिक्र है। यह सुधारवादी ढग का समस्या नाटक है। "बसन्त" (१९४०) ग्यारह दृश्यो का लम्बा एकाकी है। एक ओर एक वर्ग बसन्त का उत्सव, आनन्द मगन, क्रीडाए आदि करता है, दूसरी ओर पूजीवादी आर्थिक शोषण के परिणाम स्वरूप भूख, बीमारी, विकलता, मौत का भयकर ताडव है। पूजीवाद ने जन समाज को किस प्रकार बन्दी बना रखा है, भविष्य मे ये बन्धन किस प्रकार टूटेंगे, भावी समाज का कैसा नक्शा होगा, इसका भी मर्मस्पर्शी चित्रण यहा प्रस्तुत किया गया है। इनमे समाज की रूढियो, पूजीवादी व्यवस्था, जन समाज की महत्वाकाक्षाए

तथा नई रोशनी का चमत्कार, श्रमजीवियो की करुण चीत्कार नाट्यकार के क्रांतिकारक व्यक्तित्व को प्रकट करती हैं। सास्कृतिक दृष्टिकोण से नवयुग के आगमन की सूचना यहा दी गई है। "मानव उद्धार" (१९४३) भी लम्बा एकाकी है, जिसमे विश्व के समस्त मिथ्याचार के विरुद्ध सचय करने वाली आदर्श और स्वस्थ मानववादी विचारधारा की ओर सकेत है। इसमे नैतिक शैथिल्य के प्रति असहिष्णुता मिलती है। आधुनिक सभ्य कहलाने वाले मानव के कृत्रिम पर्दे को फाड़ कर मानव कल्याण के लिए सच्ची मानवता की प्रतिष्ठा ही है। इनके एकाकियो की पृष्ठभूमि का निर्माण करता है।

डा० सत्येन्द्र ने अपने एकाकियो मे उन स्थितियो को उभारकर दिखाया हैं, जिन पर समाज को जर्जर करने का उत्तरदायित्व है। शुभ शक्तिया उनसे सघर्ष करती हैं और उन्हे सन्मार्ग पर लाती हैं। "मानव उद्धार" एकाकी का ब्रह्मचारी विश्व के समस्त मिथ्याचार के विरुद्ध शक्ति सग्रह करने वाले भावी मानव का एक सकेत है। नाट्यकार ने वर्ण और धर्म पर मानवता की पूर्ण विजय दिखाई है।

टैकनीक की दृष्टि से ये प्रारम्भिक शैली के हैं। आधुनिक एकाकी जैसे जीवन के एक पहलू के चित्र न होकर इनमे परिधि और विस्तार है। पात्रो के स्वभाव तथा आवेगो की अभिव्यक्ति तो पर्याप्त है किन्तु अनेक घटनाओ का जमघट, अनेक परिस्थितियो का चित्रण, कथोपकथन का विस्तार और साहित्यिकता पात्रो के कठो से उनकी स्वाभाविक ध्वनि छीन लेता है। रगमच निर्देश कम है, केवल साधारण सूचनाए मात्र देकर नाट्यकार विचार प्रदर्शन मे निरत रहा है। पात्रो के मनोभावो का प्रत्यक्षीकरण करने वाली कृतियो के निर्देश प्राय लुप्त हैं। इतिवृत्तो के विकास मे नाट्यकार की दृष्टि समस्या तथा अपनी विचारधारा के प्रतिपादन की ओर रही है।

ये एकाकी अभिनय की दृष्टि से सर्वथा सफल हैं और उसी के लिए इनका निर्माण हुआ था। घटनाए चरम सीमा के विकास की ओर निरन्तर गतिशील हैं। गतिशीलता के साथ साथ प्रत्येक उपस्थित घटना मे कुछ नाटकीय प्रभाव अर्थात वेग और क्षिप्रता है। घटनाए एक एक कर दर्शको की दृष्टि से ओझल होती जाती हैं, परन्तु उनका प्रभाव अन्त तक अक्षुण्ण बना रहता है और वह सवेदना के सचित उत्कर्ष मे सहायक होता है। इनमे नाटको के कथानक की मौलिकता न होकर सवेदना की मौलिकता है। प्रत्येक एकाकी मे नाट्यकार का आदर्शवादी सात्विक किन्तु समाज के विरुद्ध क्रातिकारी व्यक्तित्व मौजूद है।

डा० सत्येन्द्र की पात्र कल्पना सूक्ष्म अध्ययन और अनुभव पर आश्रित है। उनमे राजा से लेकर गरीब भूखे गडरिये, मजदूर, कृषक, कालेज के फैशनेबुल युवक, कवि, ब्यूटी लवर, आदर्शवादी ब्रह्मचारी युवक, कापालिक, ऐतिहासिक महापुरुष जैसे बुद्ध, अशोक, उपगुप्त, कुणाल, आनन्द, मुज आदि, आजकल के दिखावा पसन्द समाज का शोषण करने वाले सम्पत्ति राम, धर्म के ढोंगी धर्मेश, समाज का पतन

करने वाले समाजशिव, गोविन्द फटमुल्ला आदि अनेक वर्ग और स्वभाव के व्यक्ति मौजूद हैं। स्त्री पात्रो मे पतिव्रता कचना, कुटिला तिष्यरक्षिता, आदर्शवादी शान्ता आदि विभिन्न प्रकार हैं। इनके चरित्र चित्रण मे अनुरूपता तथा स्वाभाविकता है। क्या घटना नियोग तथा क्या चरित्र चित्रण, सर्वत्र नाट्यकार ने स्वाभाविकता का ध्यान रखा है। कुछ अलौकिक पात्र जैसे 'मानव उद्धार' मे भीषण आकृतिया आदि कथानक के मूल आदर्श की पुष्टि के निमित्त प्रयुक्त हुए हैं। सामान्य पीडित मानवता के चित्र मर्मस्पर्शी हैं। स्त्री पात्रो की अपेक्षा आपके पुरुष पात्र सफल और गहरे हैं।

इन एकाकियो की भाषा साहित्यिक होते हुए भी सरल और स्वाभाविक है। यत्र तत्र काव्य माधुरी की शुभ्र छटा दर्शनीय है। प्राय प्रत्येक एकाकी मे सामाजिक परिस्थितियो को स्पष्ट करने वाले सुमधुर साहित्यिक गीत हैं। सत्येन्द्र के नाटको की गति सुगठित और सुललित होती है। वेदना रहित उच्चादर्शों से पूर्ण अनुभूति के निरूपण मे आप विशेष सफल हुए है। इनमें गम्भीर भावुकता है।

डा० सत्येन्द्र के एकाकियो मे विस्तार है तथा प्रत्येक दृश्य मे अनेक छोटी-बडी घटनाओ का समावेश किया गया है। बडे दृश्यो के मध्य मे छोटे दृश्यो की योजना है। प्राय प्रत्येक दृश्य एक गीत से प्रारम्भ होता है। निष्कर्ष यह कि वर्तमान एकाकी की परिभाषा पर ये एकाकी हलके उतरते हैं।

१४. श्री गोविन्द वल्लभ पन्त श्री गोविन्द वल्लभ पत का रचना-काल "एकाग्रता की परीक्षा" (१६२०) से प्रारम्भ होता है। आपके विषयो का चुनाव व्यापक तथा क्षेत्र विस्तृत है। इनमे ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, हास्यरसात्मक प्राय सभी प्रकार के प्रयोग हैं। मूल रूप से आप मानववादी आलोचक हैं तथा उनका मूल मानव चरित्र अकन है। काल क्रम के अनुसार ये एकाकी "एकाग्रता की परीक्षा (१६३६), विष कन्या (१६३७), खूनी लोटा (१६३८), अपराध मेरा ही (१६३६), भस्म रेखा (१६३६), साक्षात्कार (१६४३), दो वर और एक शाप (१६४३), पर्दा-तोडक क्लब, विप का दात; बडे दिन का शिकार (१६४३), अवन्ती की कुबडी (१६४२), काला जादू (१६४८) तथा १०४ डिग्री (१६५०) प्रकाशित हुए थे।

पतजी के एकाकी उत्तम कला, भाषा तथा रगमच पर अभिनय किए जाने की दृष्टि से सफल हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के चरित्रो को लेकर आपने अपनी नाटकीय कला का प्रदर्शन किया है। आपकी विशेषता ऐसे एकाकी हैं जो साहित्यिक होकर स्टेज अभिनय की दृष्टि से भी सफल हो सकते है। इनमें पतजी की मार्मिक कल्पना और प्रखर प्रतिभा के विभिन्न रूप मिलते हैं। आपके सामाजिक एव ऐतिहासिक पात्र कल्पित भी हैं, जो घटनाकाल की दृष्टि से विस्मृति और अनुसधान से परे हैं। आपकी दूसरी विशेपना है, पात्रो का मनोवैज्ञानिक विकास। दृश्यावली और पात्र योजना की घटनाओ से अच्छा सामजस्य पाया जाता है। पत का यह दृष्टिकोण उनकी कृतियो की सफलता का प्रथम कारण है। विषय निर्वाह और कथानक का विकास

सराहनीय है।

मोटे रूप मे इन्हें हम दो श्रेणियो में अध्ययन कर सकते है :

(१) ऐतिहासिक पौराणिक चेतना : इस वर्ग मे "एकाग्रता की परीक्षा, विपकन्या, भस्मरेखा, दो वर और एक शाप, अवन्ती की कुवडी" आते है। "एकाग्रता की परीक्षा" मे आपने महाभारत का वह दृश्य चित्रित किया है, जिसमे गुरु द्रोणाचार्य के वन प्रान्त मे कौरव पाडवो की धनुपवाण की परीक्षा हो रही है। अर्जुन के चरित्र की एकाग्रता को स्पष्ट करना इसका मूल अभिप्राय है। "विपकन्या" एक साहित्यिक कृति है, जिसमे रूपवती अपराजिता का महारामचन्द्र विजय की हत्या का षड्यत्र खोला गया है। "अवन्ती की कुवडी" में महाराज उदय का अवन्ती मे छल से पकडा जाना तथा अन्त मे अवन्ती की राजकुमारी से विवाह करना चित्रित किया गया है। "दो वर एक शाप" तथा "भस्म रेखा" रामायण के कुछ भागों को चित्रित करते हैं। प्रथम मे दशरथ द्वारा श्रवणकुमार का वध तथा द्वितीय मे सीता हरण के दृश्य है। इनमे पात्रों के चरित्र गौरव पर विशेष ध्यान दिया गया है। "विप-कन्या" तथा "अवन्ती की कुवडी" के कथानको मे कौतूहल तत्व का विशेष रूप से समावेश किया गया है। "विपकन्या" की अपराजिता जिस कौशल से चन्द्रविजय की हत्या का षड्यन्त्र करती है, वह हमें आश्चर्य मे डाल देता है। इसमे भाषा की साहित्यिकता भी विशेष दर्शनीय है। "दो वर एक शाप" मे करुणरस का स्रोत प्रवाहित किया गया है।

(२) सामाजिक व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण : इस वर्ग के एकाकियों मे समाज की विकृतियो का चित्रण दो प्रकार की शैलियो मे हुआ है। कुछ एकाकी गहन गम्भीर हैं। जैसे : "अपराध मेरा ही" अथवा "काला जादू"। कुछ मे भावात्मक विस्मय तथा घटनाक्रम विस्मय का प्रयोग है। जैसे 'खूनी लोटा' अथवा 'साक्षात्कार' है। इनका ध्येय समाज की कुरीतियो की ओर सकेत मात्र करना है। अत: आपने जिन रूढियो पर प्रहार किया है, वह अप्रत्यक्ष रूप से ही सम्पन्न हुआ है। सामाजिक क्षेत्र मे आपके "खूनी लोटा, अपराध मेरा ही, साक्षात्कार, काला जादू, १०४ डिग्री, पर्दा तोडक क्लव, विप का दात, वडे दिन का शिकार" आदि रचनाए आती हैं। कही गम्भीर तो कही हास्य व्यग्य शैली मे आपने समाज की रूढियो तथा जीर्णशीर्ण मान्यताओं पर प्रहार किया है। "खूनी लोटा" एक सेठ के चरित्र का अध्ययन है, जिसमे मनोवैज्ञानिक ढग से सेठ के चरित्र की निर्बलताओ की ओर संकेत है। सेठ ऐसा वहमी है कि गेरू मिश्रित जल को अपना रक्त समझकर बीमारी का स्वांग करता है। इसमे उसके गुप्त मन की विक्षिप्तावस्था चित्रित की गई है। "अपराध मेरा ही" भी मनोवैज्ञानिक एकाकी है जिसमे प्रेम, घृणा और अभिमान का रहस्य" मय विश्लेषण है। "साक्षात्कार" मे एक महात्मा जी का एक शिक्षित को ठगना और फिर डाक्टर द्वारा महात्मा को वैसा ही प्रत्युत्तर देना चित्रित किया गया है।

इसका अन्त अत्यधिक रोचक है। "काला जादू" मे एक वैज्ञानिक तथा राजनीतिज्ञ की बातचीत है। अन्त मे नाट्यकार जिस निष्कर्ष पर आता है, वह यह है कि जलाने वाले विज्ञान को स्वय जल जाने दो। वह विज्ञान नही "काला जादू" है। "१०४ डिग्री" मे माता का एक बच्चे को एक सौ चार डिग्री बुखार का वहम दिखाया गया है। थर्मामीटर पहले का चढा हुआ रखा है। उसे बिना उतारे ही लगा दिया जाता है और बखेडा फैलता है। इसकी विशेषता हास्यात्मक परिस्थिति का सृजन है। "परदा-तोड क्लब" मे भी बडी कौतूहलपूर्ण हास्य व्यग्यमय स्थिति उत्पन्न की गई है।

पत जी की कला हास्य व्यग्यमय परिस्थिति सृजन मे विशेष रूप से प्रकट हुई है। आप अपने कुछ पात्रो को ऐसी हास्यमय स्थिति मे रख देते हैं कि उसकी चरित्रगत विकृतिया उभर उठती हैं। सेठ लम्बोदर, "साक्षात्कार" के महात्माजी, "एक सौ चार डिग्री" एकाकी की मालती ऐसी हास्यमय परिस्थिति मे रखे गये हैं कि उनके चरित्र की निर्वलताए वरवस हमे हसने को बाध्य करती हैं।

टैकनीक की दृष्टि से पत जी एकाकी को जीवन की वास्तविकता की ओर समीप लाये हैं। जी० पी० श्रीवास्तव की हास्यमय शैली के परिष्कार का श्रेय आपको है।

प० गोविन्द वल्लभ पत ने कुछ गानो का प्रयोग भी किया है, किन्तु ये गाने ऐतिहासिक पौराणिक नाटको में ही हैं। आधुनिक जीवन से सबधित एकाकियो मे गानो का प्रयोग नही है। आपका कथानक सरल सुलझा हुआ होता है, किन्तु उसमे रोचकता की रक्षा की जाती है। अन्त मे एक गाठ सी खुल जाती है। चरित्र चित्रण मे सजीवता और मनोवैज्ञानिकता रहती है।

आपकी कला या सर्वोच्च गुण मनोहर परिस्थिति का निर्माण है। इस दृष्टि से "खूनी लोटा, विष कन्या, और अपराध मेरा ही" उत्तम रचनाए हैं। आपके "अपराध मेरा ही, विषकन्या, एक सौ चार डिग्री" मनोवैज्ञानिक एकाकी हैं, जिनमे मानव की निगूढतम गुत्थियो का विश्लेषण मिलता है। उनमे चेतन तथा उपचेतन का सघर्ष उत्कृष्ट रूप से प्रगट होता है। रगमच के उपयुक्त सरल सुन्दर भाषा का प्रयोग हुआ है, किन्तु कुछ एकाकियो जैसे 'विष कन्या' मे साहित्यिक दुरुहता भी विद्यमान है। उनकी शैली मे ओज है। भाषा मे प्रवाह है और अनुभवशीलता की छाप है।

१५ श्री भगवतीचरण वर्मा श्री भगवतीचरण वर्मा के एकाकियो मे हमे यथार्थवादिता का चित्रण मध्यवर्ग की नाना समस्याओ का वास्तविक चित्रण, दुनियादारी, स्थूल से सूक्ष्म की ओर सकेत, मधुर से कठोर की ओर प्रवृत्ति, यथार्थ से आदर्श तथा यथार्थ से निकटतम वर्तमान का चित्रण, समाज की वास्तविकता की अभिव्यजना उपलब्ध होती है। ये हमे कल्पना लोग की रगीनी से जगत की कठोर वास्तविकता का परिचय देते हैं। सभी समस्याओ के चित्रण मे आपने आवेशमय व्यग्यात्मक शैली का उपयोग किया है।

वर्मा जी के निम्न एकाकी उल्लेखनीय है। १ सबसे बडा आदमी (१६३६), २ मैं और केवल मैं (१६३८), ३ दो कलाकार (१६४०), ४ चौपाल मे (१६४८), ५ बुझता दीपक (१६४६), ६ तारा (१६३०), ७ महाकाल, ८ द्रौपदी, ६. त्रिपथगा। अन्तिम चार एकाकी अतुकान्त छन्दो मे लिखे गये हैं। 'तारा' हिन्दी मे प्रथम सफल पद्य एकाकी है। आपके एकाकियो को तीन वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है १ गभीर एकाकी, जिसमे समाज की किसी जर्जरित रूढि या व्यवस्था पर व्यग्य किया गया है। "जैसे मैं और केवल मैं, बुझता दीपक, चौपाल" मे आदि, २ हास्य व्यग्यमय एकाकी जैसे "सबसे बडा आदमी, दो कलाकार, आई गवनवा की वेला" आदि, ३ पद्य एकाकी जैसे "त्रिपथगा, तारा" आदि।

गम्भीर एकाकियो मे मनुष्य के ग्रह, प्रताडना, पीडित मानवता की एक करुण पर आवेशमय वातावरण की झाकी है। आधुनिक समाज की आलोचना करते हुए मानव मनोविज्ञान को स्पर्श करते हुए वर्मा जीने वडी मौलिक बाते कही है। वर्मा जी यथार्थवादी हैं तथा आपने सभ्य समाज की छाया मे पनपने वाले अत्याचारो का मार्मिक चित्रण किया है। किसी विद्रोहीमय भाव को केन्द्र बना आप नाटक का सृजन करते हैं, सकेत रूप मे समस्या का हल भी प्रस्तुत कर दिया जाता है।

"मैं और केवल मैं" मे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ससार की कठोर निर्मलता के प्रति अत्याचार और स्वार्थ प्रवचना, दुरभि सधि के विरुद्ध कटु बाते कही हैं। यहा ससार की दुनियादारी, स्वार्थ तथा शोषण पर व्यग्य है। यदि कही सहानुभूति या स्निग्धता है तो वह गरीब निम्न स्तर के असभ्य कहाने वाले मानव प्राणियो मे ही है। मँहगू चपरासी निर्धन सहानुभूति का प्रतीक है। 'बुझता दीपक" वर्तमान राजनीतिक तथा सामाजिक क्रान्ति की पुकार है। इस एकाकी का उदय वर्तमान समाज के विरुद्ध नया मोर्चा स्थापित करता है। ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाकर पूँजीवाद के गुलामो की वर्तमान सरकार को उलटना चाहता है। उसे वर्तमान सरकारी व्यवस्था से घृणा है, जिसमे सिफारिश से अयोग्य व्यक्ति उच्च पदो पर कार्य करते हैं, जबकि योग्य से योग्य व्यक्ति साधारण सी नौकरी के लिए मारे मारे फिरते हैं। इसमे काग्रेस के उच्च पदाधिकारियो के खोखलेपन का यथार्थवादी चित्र अकित किया गया है। नारी स्वतन्त्रता तथा उच्छृखलता पर भी व्यग्य है। इसकी सुषमा तथा कमला दो स्वतन्त्र नारियो के अध्ययन हैं। साहित्य जगत मे कोरा प्रदर्शन करने वाले नौसिखिये कवि तथा कवियित्रियो का भी व्यग्यात्मक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। आज की दुनिया का यह सर्वाङ्गीण चित्र हैं। अत मे एक सकेत द्वारा समाज तथा सरकार के परिष्कार के लिए कुछ सकेत भी दे रखे हैं। "चौपाल मे' अछूतो तथा जाति पाति की कट्टरता का टूटती दीवारो का एक चित्र है।

हास्य व्यग्यमय एकाकियो मे "सबसे बडा आदमी" आपकी एक उल्लेखनीय रचना है। सबसे बडा आदमी कौन है? इस प्रश्न पर शैली, नैपोलियन, गाधी जी,

लेनिन आदि को लेते हुए आपने नाना पक्षो को प्रस्तुत किया है। अन्त मे एक ऐसे नवयुवक को बडा दिखाया है जो व्यवहार कुशलता के कारण सबको चकमा देकर अपना काम बना लेता है। "दो कलाकार" मे एक चित्रकार तथा कवि कैसे प्रकाशक, मकान मालिक, रईस को वाक् चातुर्य से कैसा छकाते हैं, चित्रित किया गया है। वर्मा जी का हास्य उच्च साहित्यिक कोटि का शिष्ट हास्य है। "सबसे बडा आदमी" का वातावरण तथा रामेश्वर का चरित्र का सम्मिश्रण है। इसमे सजीवता, उल्लास एव स्फूर्ति है। "दो कलाकार" में कलाकारो की दुखद परिस्थिति से निकलने की युक्ति तथा शिष्ट हास्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

वर्मा जी के यथार्थवाद मे कटुता है, जिसे वे कभी अपने हास्य व्यग्य से, तो कभी अन्य किसी गौण समस्या को उभारकर हल्का कर देते हैं। कही कही निरपेक्ष हास्य या व्यथा की भी सृष्टि है। वे परिस्थितिया चित्रित करने मे विशेष सफल रहे हैं। जैसे 'मैं और केवल मैं" या "चौपाल मे" मे, पात्र ऐसे शिकजे में फस जाते हैं कि उनसे बाहर नही निकल पाते हैं। मानव को अपनी विषम परिस्थितियो मे बधा हुआ दिखाने के पश्चात् वे उसे यथार्थ की कठोरता के चगुल से बचाने मे प्रयत्नशील दीखते हैं। वे द्रष्टा हैं, आलोचक बाद मे हैं। उनकी आलोचनाए साकेतिक ढग से केवल इशारा मात्र करती हैं। यथार्थवादी चित्रण मे वे हमे प० गणेशप्रसाद द्विवेदी की भाति निराशावादी नही प्रतीत होते, प्रत्युत सघर्ष के साथ आशावादी भी हैं। उनके एकाकियो मे भावुकता कम है, बुद्धि कौशल तथा मनोवैज्ञानिकता अधिक। वे विशुद्ध वर्तमान का निरीक्षण करते हैं, उसमे जो कुरूपताए उन्हें मिलती हैं, उन्हें उभारकर हमारे सामने प्रस्तुत कर देते हैं।

वातावरण की सृष्टि मे वर्मा जी को पर्याप्त सफलता मिली है। भिन्न भिन्न प्रकार के वातावरण इनके एकाकियो मे चित्रित हुए हैं। "सबसे बडा आदमी" का वातावरण वाग्युद्ध के अतिरिक्त हास्य व्यग्यमय है, तो "मैं और केवल मैं" मे प्रारम्भ से अन्त तक गम्भीरता, हृदय क्रन्दन और घुटता हुआ सास है। "चौपाल में" मे ग्रामीण जीवन सम्बन्धी यथार्थवादी खाका खीचा गया है। कथानक मे दिलचस्पी न लेकर नाट्यकार ने जीवन की किसी मर्म स्पर्शी झाकी, किसी उद्दीप्त पहलू या विशेष दृष्टिकोण को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इनमे कथा विस्तार न होते हुए भी नाटकीय स्थिति की पकड है, जीवन या समाज के एक पहलू का चित्र है। प्रारम्भ मे एकाग्रता का अभाव सा प्रतीत होता है, किन्तु आगे चलकर समस्त कथासूत्र परस्पर सम्बद्ध हो जाते है, एकता और सगठन आता जाता है। अन्त मे प्रभाव और वस्तु का ऐक्य मिश्रित हमारे जीवन का एक पहलू चमक उठता है। कथावस्तु मे जटिलता इन्हें सह्य नही है।

वर्मा जी ने समय, स्थान तथा वस्तु की इकाइयो का अधिकतर पालन किया है। "बुझता दीपक", जो ४ दृश्यो मे समाप्त हुआ है, के अतिरिक्त प्राय एक ही

दृश्य मे सब कुछ एकत्रित कर दिया गया है। बिना किसी पूर्व कथन या लम्बी स्टेज सूचना के ये एकाकी फौरन प्रारम्भ हो जाते हैं। मूल कथानक मे गौण विषय के छोटे पात्रो द्वारा फेंके जाते हैं। ऐसे छोटे-छोटे विषयो को समेटता हुआ इनका एकाकी प्रभाव-साम्य लेकर समाप्त होता है। 'बुझता दीपक' के अतिरिक्त सभी एकाकियो मे काल सकलन का कुशल निर्वाह है।

आपकी सबसे बडी विशेषता आपके कथोपकथन हैं। मध्यवर्ग के दैनिक जीवन तथा समस्याओ की अच्छी जानकरी होने के कारण आपके पात्र चलती हिन्दी का प्रयोग करते है, किन्तु उसी मे हृदय को झकृत करने वाले मर्मस्पर्शी वाक्य, भाव का ऊचा धरातल, अन्तर का उल्लास, स्फूर्ति, दुख निराशा, दैन्य, सभी कुछ उडेल दिया जाता है, जैसे दर्पण मे मुख। रगमच तथा नाटक का व्यक्तिगत अनुभव होने के कारण वे यथासम्भव कथोपकथनो को सक्षिप्त मर्मस्पर्शी, वाक्वैदग्ध्ययुक्त चरित्र की विशेषताए प्रकट करने वाले रखते हैं। आपके कई एकाकियो मे वादविवाद के भी कुछ स्थल हैं, किन्तु आपने वादविवाद को सविधान का एक अग बना कर एकाकी को आगे बढाया है। अन्तर तथा बाह्य दोनो प्रकार के सघर्ष कथोपकथन मे सफलता-पूर्वक प्रयुक्त हुए हैं। उसका करुण स्पदन सुनने के लिए उनके कर्ण-कुहर खुले हैं तथा उसे नाटकीय रूप मे प्रकट करने के लिए उनके पास रगमच का अनुभव है। आपकी रगसूचनाए पाश्चात्य प्रणाली की हैं।

१६ **श्री चतुरसेन शास्त्री :** शास्त्री जी के एकाकियो का मूलतत्व रसोदय है। आपने वातावरण निर्माण को विशेष महत्व दिया है। आपका आदर्श एक विशेष रस को लेकर उसके अन्तर्गत समस्त छोटे बडे विभावो का प्रत्यक्षीकरण है। आप सस्कृत के शास्त्रीय रस-पद्धति से प्रभावित होकर रस-निष्पत्ति पर विशेष ध्यान देते हैं। आप उन भावुक एकाकीकारो मे है, जो अन्तिम प्रभाव का जीवन की आलोचना या मानव समाज के सघर्ष से अधिक महत्व प्रदान करते हैं। घटनाओ तथा परिस्थितियो को किसी आधार या प्रथा की कसौटियो की भाति खड़ा कर देते हैं, जहा पात्रो का आचरण बिना तर्क या वाद विवाद या शाब्दिक आलोचना के विश्लेषित होकर स्वयं लाछित आलोचित सी हो जाती है। रस की सृष्टि कलात्मक शैली मे की गई है। रस-निष्पत्ति के निमित्त अभिव्यंजना करने के कारण आपके एकाकियो का आकार विस्तृत हो गया है।

आपके एकाकी साहित्य का प्रारम्भ ऐतिहासिक एकाकियो से होता है। इनमें रगसूचनाए कम हैं, कथोपकथन तथा दृश्य अधिक हैं। इनकी रचना लगभग १९३६ से हुई थी। अत इनमे हिन्दी एकाकी का विकास स्पष्ट दिखाई देता है। इस वर्ग मे आपके निम्न एकाकी आते हैं। १. लोहे का भय २ पतिव्रत धर्म ३ अस्मत पर हाथ ४. दुर्गाधिकारिणी ५ विधवा सिंहनी ६. क्षत्रियपुत्री ७ भस्म राशि ८ वीर वधू ९. हलाहल से ब्याह १०. स्वयवरा वाला ११ हाड़ा रानी १२ पन्ना धाय

१३ रूठी रानी, १४ राखी। इन सभी एकाकियो मे राजपूत रमणियो तथा पुरुषो के चरित्र गौरव, वीरता, और दृढता का चित्रण है। देश मे नवीन जाग्रति और नव निर्माण की दृष्टि से ऐतिहासिक आधार के साथ राष्ट्रीयता की भावना का अच्छा चित्रण किया गया है।

दूसरे वर्ग मे वे एकाकी रखे जा सकते हैं जिनमे पौराणिक, नैतिक चेतना मुखरित हुई है। इनमे नैतिक आदर्शवाद की स्थापना है। आदर्श पौराणिक महापुरुषो मे प्रस्तुत किया गया है। अनीति पर नीति की, असत्य पर सत्य की, अधकार पर प्रकाश की विजय चित्रित की गई है। इनमें सत्य की स्थापना, आदर्श चरित्र की सृष्टि, अतीन्द्रिय प्रेम, आदर्श भ्रातृ प्रेम और आत्म गौरव को चित्रित किया गया है। इस वर्ग मे १ राधाकृष्ण, २ हरिश्चन्द्र शैव्या ३ श्री भरत ४ सीताराम, आदि आते हैं।

सीताराम, "उत्तर रामचरित" की छाया पर निर्मित तप, त्याग और वीरता का आदर्श उपस्थित करता है। "राधा कृष्ण" मे कल्पना तथा मौलिकता का कलात्मक समन्वय है । इस भाव नाट्य मे राधाकृष्ण को अतीन्द्रिय प्रेम की भूमि पर स्थापित करने की नवीन चेष्टा की गई है। इसके लिए प्रेम तत्व की भूमि स्थिर की गई है और रसोदय के लिए परकीया भाव मे राधा को कृष्ण के वाम भाग मे स्थापित कर वाम मार्ग धर्म की स्थापना की गई है। इसमे धर्म मे मनुष्य जीवन की परिपूर्णता धार्मिक कर्त्तव्यपालन मे दिखाई गई है। शास्त्री जी ने राधाकृष्ण को अतीन्द्रिय प्रेम की भूमि पर स्थापित करने की चेष्टा की है। "हरिश्चन्द्र शैव्या" मे हरिश्चन्द्र के सत्य वचन पालन तथा धैर्य की परीक्षा प्रस्तुत की गई। इसमें करुणारस की अजस्त्र धारा प्रवाहित हुई है। "श्री भरत" मे भरत की कर्त्तव्यनिष्ठा, ज्येष्ठ भाई के प्रति आदर, मान प्रतिष्ठा, विनयशीलता, सेवा और बलिदान के साथ सात्विकता का चित्रण किया गया है। इसकी भाव व्यजनाए महाकवि भास की हैं। आपके अन्य एकाकी सग्रह इस प्रकार हैं। १ क्षमा २ जुआ ३ अष्ट मगल आदि।

शास्त्री जी के एकाकियो का सविधान अभिनय के लिए न होकर, पठन पाठन या रेडियो प्रसारण के लिए है। काल सकलन का प्राय पालन नही हुआ है। "राधाकृष्ण, सीताराम" एकाकियो मे काल सकलन का अतिक्रमण किया गया है। एकाकीकार की दृष्टि रस-निष्पत्ति तथा वातावरण निर्माण की ओर विशेष रूप से रही है। पढने के पश्चात् एक अन्तिम प्रभाव छोडना इस एकाकी का मूल सौन्दर्य है। सविधान रगमचीय नही है। कही-कही वक्तव्य एव स्वगत लम्बे भाव प्रधान और दुर्बल है। भाव का धरातल ऊचे स्तर पर है। चरम परिणति पर पहुँचकर भाव पूर्णत प्राप्त करता है। इतना अन्तर सघर्ष कम एकाकीकारो मे है। कथानको के निर्माण मे प्रायः प्राचीन परम्परा, महाकवि भास, भवभूति आदि से सहायता ली गई है, पर भाव नाट्य तथा भाव व्यजनाए सर्वथा मौलिक हैं। रगमच निर्देश केवल पाठको की कल्पना को

सजग करने की दृष्टि से दिये गये हैं। पात्रो का वर्णन तो साधारण रूप से किया गया है, किन्तु अभिनय के लिए कोई विशेष सकेत नही दिए गये हैं। स्वगत, दीर्घ आकार, दृश्यो की अधिकता तथा सगीत की व्यवस्था इन्हें द्विवेदी युग के एकाकी साहित्य से जोड देती है।

१७. श्री पृथ्वीनाथ शर्मा शर्मा जी ने शिक्षित मध्यवर्ग के जीवन को अपने सामाजिक एकाकियो का आधार बनाया है तथा उनकी नाना सामाजिक और पारिवारिक समस्याओ को चित्रित किया है। इनका मूल विषय सैक्स है, जिसके चतुर्दिक समाज की अनेक समस्याए अवगुठित हैं। विवाह की नाना अड़चनें, विचार-वैषम्य, स्त्री के अह का विश्लेषण, स्वतत्र जीवन की रगीनी एव नक्काशी, यौवन के उन्माद, आधुनिक शिक्षित युवती का त्रियाहट, शिक्षित पुरुषो के रोमास, विदेशी सस्कृति का दुष्प्रभाव, स्वतत्र जीवन का विवाहित जीवन पर प्रभाव, मनोवैज्ञानिक गहराइयो से आपने प्रस्तुत किया है। इन सबकी पृष्ठभूमि मे शर्मा जी का नैतिक आदर्शवाद हैं।

शर्मा जी विदेशी भावुकता से प्रभावित नवयुवक हैं, उनकी रुचि मे परिष्कार है। आज के शिक्षित युवक जीवन का रोमास उनकी रचनाओ का मूल आधार है। उनमे यौवन का उत्माद एव रगीनी है।[1] इस आलोचना मे शर्मा जी के नैतिक आदर्शवाद की ओर कोई भी सकेत नही है। यह दृष्टिकोण एकागी कहा जायगा क्योकि उनके चित्रण मे इस आदर्शवाद की झलक सर्वत्र वर्तमान है।

शर्मा जी का एकाकी साहित्य इस क्रम से प्रकाशित हुआ है। १ वैज्ञानिक की पत्नी, २. छोटी वात, ३ भूल और विजय, ४ साध, ५ मुक्ति, ६ दुविधा, ७ अपराधी, ८ सौन्दर्य प्रतियोगिता।

"वैज्ञानिक की पत्नी" मे शर्मा जी ने एक ऐसे वैज्ञानिक का चित्रण किया है, जो नारी हृदय की गहराइयो को न समझने के कारण दुखी रहता है और अन्त मे अपनी गलती महसूस करता है। "छोटी वात" मे एक साधारण सी वात पर एक शिक्षित पत्नी आत्मघात कर वैठती है। अति सवेदनशील हृदय की एक झाकी यहा मिल जाती है। "भूल और विजय" एक उदीयमान डाक्टर हरेश्वर के रोमास की कहानी है। इसमे पुरुष की धृष्टता तथा उसे सन्मार्ग पर लाने मे पत्नी की मनोवैज्ञानिक कुशलता का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। इस एकाकी मे शर्मा जी का नैतिक आदर्शवाद विशेष स्पष्ट हो गया है। "साध" एकाकी वर्तमान युग मे नारी की विचारधारा तथा उसके सस्कारो मे मिलने वाले सघर्ष से सवधित है। "मुक्ति" मे जान पहचान न होने पर भी वरवस आने वाले मेहमानो का हास्य व्यग्यात्मक चित्रण है। "दुविधा" मे ऐसी नारी का चित्र है, जो स्वतत्र जीवन की रगीनी देख चुकी है। दूसरी ओर वैवाहिक जीवन के वन्धन, कटुता, मनोमालिन्य के विषय मे भी यथेष्ट सुन

१. देखिए डा० नगेन्द्र कृत "आधुनिक हिन्दी नाटक", पृ० ६०।

चुकी है। इन दोनो बिन्दुओ मे उसका मन अटक जाता है। माता-पिता के निश्चय पर उसे विश्वास नही, स्वयं निश्चत करने का उसे विवेक नही। अन्तत उसे अपने चुनाव पर पछताना पडता है। "दुविधा" की समस्या आज की अनेक शिक्षित नवयुवतियो के जीवन की समस्या है। "अपराधी" के मूल मे सामाजिक आदर्शवाद है। जिसे हम अपराधी कहते हैं, वह परिस्थितियो के कारण अपराधी बनता है। सैक्स से सयुक्त कर इस मनोवैज्ञानिक समस्या को शर्मा जी ने नये ढग से प्रस्तुत किया है। "सौन्दर्य प्रतियोगिता" (१९५१) मे आधुनिक शिक्षित नारी का सौन्दर्याभिमान तथा सन्तान के प्रति कम होता हुआ मातृ स्नेह चित्रित किया गया है। इन एकाकियो की पृष्ठभूमि मे झलकता हुआ नैतिक आदर्शवाद मिलता है।

आपने आधुनिक शिक्षित नारी को हर पहलू से देखा है और मनोवैज्ञानिक रूप से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। पुरुष पात्र साधारणत अशक्त नही आवश्यकता से अधिक आदर्शवादी हैं, तो कही व्यक्तित्व विहीन। डा० हरेश्वर लीला और नीला के हाथ की कठपुतली से लगते है। प्रवोध उच्चकोटि का वैज्ञानिक होकर भी अपनी युवा पत्नी विभा के अगुली-निर्देश पर नाचता है। नरेश एक बुद्धिमान समृद्धिशाली नवयुवक होकर भी इतना शिथिल और भावुक है कि बुआ और मौसी को मेहमान के रूप मे जबरदस्ती ठहरने को इन्कार नही कर पाता। "अपराधी" एकाकी के मातादीन तथा अशोककुमार की प्रेरक शक्ति नारी ही है। इनके विपरीत शर्मा जी के नारी पात्र सशक्त, दृढ, हटी, और बुद्धिमान ससारी कुशलता से युक्त व्यक्ति हैं। नारी पात्रो की रेखाए साफ और सशक्त हैं।

स्त्री पात्रो मे जहा आन्तरिक चरित्र की दृढता है, वहा उनके फैशन, बनाव-शृङ्गार की ओर भी नाट्यकार की सूक्ष्म दृष्टि गई है। उनके रग, रूप, साडिया, जम्परो के रग, नखशिख, खडे होने, बातें करने, चलने फिरने का सूक्ष्म वर्णन यहा उपलब्ध है। पेन्ट की आभा फूट रही है। आधुनिक स्त्री के स्वतन्त्र जीवन की रगीनी, वैवाहिक जीवन की गुत्थिया, स्वच्छन्दता और आन्तरिक इच्छाए आपने सुलझा कर उपस्थित कर दी है।

शर्मा जी की सबसे बडी सफलता उनका टैकनीक है। यह विदेशी टैकनीक के आधुनिकतम तत्वो से प्रभावित है। "अपराधी" एकाकी मे उन्होंने माया, अनिल, प्रमीला और अशोक तथा नीला, रेणु की कहानियो को मनोहर ढग से गुम्फित किया है। गुम्फन की ऐसी सफाई विदेशी नाट्यकारो से ग्रहण की गई है। "भूल और विजय" के कथानक मे लीला और नीला का सघर्ष, सिनेमा की फिल्म के कथानक से हरेश्वर का सही रास्ते पर आना, अन्त मे चन्दन का चालाकी से पति की मान रक्षा करना एक कौतूहल की उत्पत्ति कर समाप्त होता है। "मुक्ति" मे बुआ और मौसी के छुटकारे के साथ-साथ नरेश का नीलाम्बरा से विवाह एक कलात्मक गुत्थी है। "वैज्ञानिक की पत्नी" मे विभा का यह कहना कि "मैं पथभ्रष्टा नही, आदर्शभ्रष्टा जरूर

हूँ", स्थिति को स्पष्ट कर देता है। इन सभी नाटकीय स्थितियों मे कथानक में कौतूहलता सुन्दरता से मिश्रित की गई है।

शर्मा जी के एकाकियो मे विस्तार है। प्राय चार पाच दृश्यो का प्रयोग कर आप क्लाइमैक्स का सृजन करते हैं। इनमें लक्ष्य की सुनिश्चितता तो है, वेग सम्पन्न प्रभाव का अभाव है। निर्देशन मे एकांकी सुलभ मितव्यय और नक्काशी नही है। स्थल एव काल सकलनो का निर्वाह भी उत्तम नही हो सका है। एक प्रकार से इन्हें बडे नाटको का सक्षिप्त रूप भी कहा जा सकता है, क्योकि इनमे आदि, मध्य, अवसान आदि नाटक की तीनो अवस्थाए मौजूद होती हैं। "भूल और विजय" एकाकी होते हुए भी बडा नाटक सा प्रतीत होता है।

आपके कथोपकथन सक्षिप्त सजीव मर्मस्पर्शी, वाक् वैदग्ध्युक्त होते है। उनके द्वारा स्वाभाविक रूप मे चरित्र पर मनोवैज्ञानिक प्रकाश डाला जाता है। इन्ही की सहायता से आप पात्रो का अन्तर्संघर्ष प्रकट करते हुए तथा सूत्रो का विकास करते हैं। रगसूचनाओ मे कथानक के सम्वन्व मे कोई निश्चित जानकारी प्रदान नही की जाती। केवल प्रारम्भिक कथोपकथन द्वारा ही वस्तु स्थिति, पात्रों का परिचय प्रदान किया जाता है। कही-कही परिस्थिति के स्पष्टीकरण के लिये, जैसे "मुक्ति", "साध" आदि मे प्रारम्भिक कथोपकथन कुछ विस्तृत है, किन्तु इससे कथानक का विकास होता है। स्वगत का प्रयोग कही नही है। आपकी रगसूचनाए वर्नार्ड शा की भाति विस्तृत एव व्यापक है। इनका उपयोग पात्रो की स्थिति, स्थान, रगभूमि की व्यवस्था के वर्णन के लिए किया गया है। कमरो की व्यवस्था तथा रगमच निर्माण के सम्वन्व मे भी विस्तृत योजनाएं प्रदान की गई हैं। पात्रो की रूप कल्पना का परिचय देने में नाट्यकार रगो के निर्देश मे बडा सतर्क रहा है।

१८. प्रो० सदगुरुशरण अवस्थी अवस्थी जी के एकाकियो का मूल आधार आदर्शवाद और सांस्कृतिक पुनरुत्थान है। आदर्शवाद की प्रतिष्ठा सर्वत्र व्याप्त है। आपने प्राचीन भारतीय नायको तथा कथानको को लेकर उन्हें भारतीय सस्कृति और आदर्शों के उपयुक्त नये रूपो में नये तर्कों से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इनमे नए तर्कों के प्रकाश मे भारतीयता, नैतिकता और बुद्धिवाद के उदात्त स्वरूप का विवेचन हुआ है और व्यवहार के अनुकूल आदर्शो की सृष्टि की गई है। इन आदर्शो की सृष्टि मे आपका दृष्टिकोण तटस्थ रहा है।

प्राचीन स्वरूपो का नया मूल्याकन तथा आधुनिक समस्याओं की बुद्धिवादी तर्कपूर्ण आलोचना इनके एकाकियो मे यत्र तत्र विद्यमान है। उन्होंने बुद्धि की आंखो से देखा, तर्क के कानो से सुना और विवेक के प्रकाश से उद्दीप्त हो कर्म की वाणी मे हमें पुकारा है। वे दार्शनिक हैं और उनके नाट्य साहित्य मे सर्वत्र गम्भीरता और चिन्तन की प्रधानता है। दार्शनिक विवेचना में आप प्रसाद की पद्धति से विशेष प्रभावित हैं। उनके दार्शनिक स्थलो को भावात्मक-दर्शन कहा जा सकता है। आपने

पात्रो की सृष्टि मे यह ध्यान रखा है कि उनमे दैवी स्वरूप की अव्यवहारिक प्रतिष्ठा न हो जाए, साथ ही वे ऐसे पार्थिव न हो जाए कि उनकी सास्कृतिक महत्ता, आदर्शवाद और चरित्र गौरव नष्ट हो जाय। न आप यथार्थ के नाम पर अत्यन्त साधारण व्यक्तियो का चित्रण करते हैं, न आदर्श को इतना ऊँचा उठाते हैं कि वह व्यहृत न हो। आप व्यवहारिक, नैतिक, आदर्शवाद के पुजारी हैं।

पुराने पौराणिक तथा धार्मिक चरित्रो को आपने मौलिक ढग से, नवीन तर्क, विचार, आदर्श तथा नैतिक तत्वो सहित प्रस्तुत किया है। अनेक नई-नई विचार-धाराओ का समावेश किया है। उदाहरण स्वरूप, आपका "सुदामा" ऐश्वर्यशाली होने पर भी महल मे निवास करने की अपेक्षा अपनी पुरानी जीर्ण-शीर्ण झोपडी में निवास करना अधिक पसन्द करता है। "कैकयी" के चरित्र मे एक नवीन दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। आपने चित्रित किया है कि कैकयी इसलिए राम को बनवास भेजती है, जिससे वे मानव जीवन की कठोरता, कष्ट एव कटको से भली भाति परिचित हो जाए। इसका मूल स्वर राष्ट्रीय है। "शम्बूक" एकाकी मे वर्ण व्यवस्था पर विवेचनात्मक प्रकाश डाला गया है जो नवीन तर्कों से युक्त है। "विभीषण" पर प्राय यह लाछन लगाया जाता है कि वह भाई को छोड कर चले गए। अवस्थी जी ने यह चित्रित किया है कि वे परिस्थितिया ही ऐसी थी कि जब विभीषण जैसे सद्प्रवृत्तियो वाले व्यक्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग ही न था, सद्प्रवृत्तियो का समुदाय राष्ट्रवाद और कुटुम्बवाद सबसे उच्च है। "ध्रुव" एकाकी मे ध्रुव की तपस्या का विवेचन है। यह तपस्या क्या है, ध्रुव कैसे उसके द्वारा आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर विजयी हुए थे, यह तर्क चित्रित किया गया है। "प्रहलाद" एकाकी मे आर्य तथा अनार्य सस्कृतियो का सघर्ष तथा उदात्त सस्कृति के विस्तार का स्वर है। "शकुन्तला" मे शाप के स्थान पर, चोट लग कर विस्मृति हो जाना एक नवीन नई मनोवैज्ञानिक सूझ है। शकुन्तला का आत्म,समर्पण, समाज की कन्या पर अधिकार भावना अभूतपूर्व रचना है। "तुलसीदास" एकाकी मे प्रेम के क्षणिक उन्माद का एक चित्र खीचा गया है। "अहिल्या" मे यह दिखाया गया है कि किस परिस्थिति मे अहिल्या का सतीत्व भग हुआ था तथा वे कैसे पवित्रता स्थिर रख सकी। "सती का अपराध" एकाकी मे स्त्री का सच्चा स्वरूप क्या है, चित्रित किया गया है। यह एक सामाजिक व्यग्य है। "त्रिशकु" मे यह दिखाया गया है कि स्वर्ग की स्थिति और दुर्गुण क्या हैं। 'बलिवामन" आर्य अनार्य सस्कृतियो की तुलनात्मक विवेचनाओ और अतिवाद की मूर्खता दिखाता है। "महाभिनिष्क्रमण" एकाकी मे "वैराग्य," "एकलव्य" एकाकी मे ब्राह्मण, अब्राह्मण की विवेचना, "हा मे नही का रहस्य" मे रूढियो का प्रतिपादन और "ईश्वर" एकाकी मे आस्तिक नास्तिक की व्याख्या है। इन सभी एकाकियो मे अवस्थी जी का नया दृष्टिकोण तथा तर्कपूर्ण बुद्धिवादी विवेचना है। नई समस्याओ और नई विचारधाराओ को पुराने कथानको मे नियोजित कर निष्पक्ष

तर्क से उनका उत्तर दिया है ।

आपके एकाकी-साहित्य की सबसे बडी विशेषता ऊची चिन्तना, बुद्धिवाद, नवीन तर्क और दार्शनिक गहनता का प्रवेश है, जो पग-पग पर हमे सोचने विचारने को बाध्य करता है ।[1] भावना की अपेक्षा नये तर्क, विवेक और बुद्धि की प्रधानता है। हलके मनोरंजन या सस्ती भावुकता से बच कर यह हमारी बौद्धिक जिज्ञासा को सजग कर हमे जीवन और सामाजिक व्यवस्था पर गम्भीरता से सोचने के लिये विवश करते हैं। पौराणिक कथानको के प्रति आपका विशेष आकर्षण है। उच्च चिन्तन तथा दार्शनिक विचारधारा से बोझिल होने के कारण आपके कुछ एकाकी जन साधारण के लिये दुरूह एव शुष्क से हो गये हैं। वाद विवाद एव तत्व की अधिकता के कारण इनके कथोपकथन मे रूखापन अथवा मानसिक ऊहापोह मिलते है और स्वाभाविकता कम हो गई हैं। कोई कोई प्रसग कथावस्तु मे उखडे से अथवा कुछ हटे से भी प्रतीत होते हैं। भावो और विचारो का उलझापन, प्रसादगुण का अभाव, उक्तियो का घुमाव सर्वत्र मिलते हैं। इनके होते हुए भी साहित्य और कला विद्यमान है। इनका उद्देश्य वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक, साहित्यिक कथानको और नायको को युग के नेत्रो से देखना और दिखाना है और उनका समीचीन मूल्याकन करना है। अपने इस प्रयास मे अवस्थी जी ने प्राचीन रूढिवादी तथा परम्परावादी धारणाओं को तोडा है यद्यपि उन्होने अपना आदर्श प्राचीन और अर्वाचीन वैज्ञानिक सामजस्य ही रखा है। आपके पात्रो की भाषा गुरु गम्भीर सस्कृत गर्भित साहित्यिक हिन्दी है, जिसमे सकेतात्मकता विशेष रूप से विद्यमान है। प्रेम सम्बन्धी जटिलताओ का विवेचन भी इतने शिष्ट ढग से हुआ है कि अश्लीलता की गध तक नही आ पाई है। रगसूचनाओ मे व्यापक वर्णन एव साहित्यिक सौन्दर्य है।

रगभूमि की व्यवस्था या अभिनय सम्बन्धी तत्वो का इन नाटको मे अभाव है। अभिनय की दृष्टि से इनका निर्माण नही किया गया है। ये तो साहित्य के अध्ययन के हेतु हैं। सक्षेप में अवस्थी जी के एकाकी साहित्य को भावात्मक आध्यात्म कहा जा सकता है। अध्ययन द्वारा ही इनका आनन्द लिया जा सकता है।

१९. धर्मप्रकाश आनन्द · प्रो० आनन्द की प्रवृत्ति सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक मान्यताओ एव रूढियो पर प्रहार करने की ओर है। किसी महत्वपूर्ण विषय को लेकर आप एकाकी का निर्माण करते हैं। आपकी प्रवृत्ति यथार्थवाद की ओर है। अपने एकाकियो मे आपने नग्न यथार्थवाद के चित्र प्रस्तुत कर वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक विधान पर गम्भीर व्यंग्य किया है। प्रो० आनन्द के अनेक रूप मिलते हैं। कही राजनीतिक आलोचनाए हैं, तो कही किसी प्राचीन रुढि या सभ्यता की किसी

---

१. "आजकल के समस्त साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता ऊंची चिन्तना का प्रवेश है। आज का युग तो चिन्तनाओं के संघर्ष से ही प्राण ग्रहण करता है। उसके बिना नाटक का सारा काव्य ही केवल सुनने सुनाने की वस्तु रह जायगा।" प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी "नायक और नाटक" पृ० ११

बिगडी हुई परिस्थिति या बेवकूफी को बिगाडकर आपने हमारी सामाजिक विद्रूपताओं को अतिरजित रूप मे प्रस्तुत किया है।

उदाहरण स्वरूप "प्यास" एकाकी मे विवाह सस्था की अनुपयोगिता सिद्ध की है। "मिस्टर मौलिक" मे उन व्यक्तियो पर व्यग्य किया गया है जो स्वय तनिक भी मौलिक नही हैं। "सोशलिस्ट"(१६३८) मे मौखिक सहानुभूति रखने वाले पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित व्यक्तियो का व्यग्यात्मय चित्रण है। "दीनू" एकाकी मे सामाजिक विधान पर प्रहार किया गया है। आपके कुछ एकाकी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को लेकर लिखे गये हैं। जैसे, "सितमगर"। इस नाटक मे एक फक्कड अलमस्त भिखारी की मानसिक स्थिति प्रकट की गई है।

प्रो० आनन्द की विशेषता यह है कि उन्होंने अपने एकाकियो मे नग्न यथार्थ-वाद के साथ बौद्धिक एव रागात्मक दोनो तत्वो का समावेश किया है। परिस्थिति चित्रण मे उन्हें विशेप सफलता प्राप्त हुई है। जहा कथोपकथनो मे उच्च कोटि का वाक् वैदग्घ्य प्राप्त होता है, वहा पात्रो के चरित्र चित्रण मे रागात्मक तत्वो का निर्वाह भी है। सकेत द्वारा समाज, राजनीति तथा आर्थिक विधान के परिष्कार मे आपका विश्वास है।

२० **चन्द्रगुप्त विद्यालकार** आपके "अशोक, काफिर, रेवा, मनुष्य की कीमत, हिन्दुस्तान जाकर कहना, तागेवाला, भेडिये, नवप्रभात, कौसमोपोलिटन क्लब" इत्यादि प्रकाशित हो चुके हैं। १६३८ मे 'हस' के एकाकी नाटक अक मे एकाकी के टैकनीक सबधी वाद विवाद को उठाकर आपने हिन्दी एकाकी की टैकनीक के परिष्कार की ओर कलाकारो का ध्यान आकर्षित किया था। यद्यपि आपने एकाकी अधिक नही लिखे, किन्तु जो भी लिखे जनता ने उन्हें काफी पसन्द किया है। आपके प्रथम एकाकी का अग्रेजी अनुवाद "हिन्दू" (१६३५) के विशेपाक मे प्रकाशित हो चुका है। आप एकाकी की आधारभूत श्रेष्ठता उसकी कहानी मानते हैं।

आपका प्रतिनिधि एकाकी "मनुष्य की कीमत" (१६४०) है, जिसमे आपने एक आधुनिक सुशिक्षित युवक के जीवन तथा ससार के स्वार्थ, खोखलापन, सामाजिक मिथ्याचार का व्यग्यात्मक चित्र खींचा है। स्वतत्र विचारो वाला युवक विनय एम०ए० पास कर नौकरी की तलाश में बीमा कम्पनी के दफ्तर, हाई कोर्ट मे अनुवादक के स्थान के लिए, दैनिक अखबार के दफ्तर मे सवाददाता के लिए तथा काग्रेस दल के दफ्तर मे सेक्रेटरी के पद के लिए जाता है, किन्तु सर्वत्र उसे एक-सी स्वार्थपरता, शोषण और परावलम्बन की गध मिलती है। उसे अनुभव होता है कि जब तक वह अपना व्यक्तित्व खोकर समाज के आर्थिक या राजनैतिक सगठन का एक निष्प्राण पुर्जा नही बन जाता, तब तक समाज की दृष्टि मे उसका कोई मूल्य नही है। यह सामाजिक व्यग्य का एक सफल उदाहरण है।

"हिन्दुस्तान जाकर कहना" (१६४८) ध्वनि एकाकी में मार्मिक शैली मे पाकिस्तान से हिन्दुस्तान लौटते हुए एक राष्ट्रीय हिन्दू की करुण कहानी अभिव्यक्त की गई है। साथ ही सिकन्दर के आक्रमण से आज तक के स्वाधीनता सग्राम और गौरवशाली इतिहास के चित्र उपस्थित किए हैं। श्री चन्द्रगुप्त की कला आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की कला है।

"तागेवाला" (१६३७) मे यह चित्रित किया गया है कि मान्यताए कितनी महत्त्वपूर्ण होती हैं और वे मनुष्य को कितना प्रभावित करती हैं। "भेडिये" (१६४६) मे सामाजिक स्थितियो का अच्छा चित्रण है। इस एकाकी का नाम साकेतिक रूप मे समाज की नृशस पशु प्रवृत्तियो का सूचक है। "कौसमोपौलिटन क्लव" (१६४५) राजनीतिक एकाकी मे समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रतीक तथा उनकी भावनाए प्रकट कर उन पर व्यग्य किया गया है। "नवप्रभात" (१६४७) रेडियो प्ले मे भारतीय सस्कृति का पर्यवेक्षण है। आपके एकाकी साहित्य मे किसी वाद विशेष का प्रतिपादन न होकर स्वतन्त्र चिन्तन की प्रधानता है। सामाजिक एकाकियो मे व्यग्य के प्रयोग द्वारा व्यवहारिक आदर्शवाद की ओर प्रवृत्ति है।

२१. श्री सज्जाद जहीर : आप प्रगतिशील विचारो के एकाकीकार हैं। समाज की वधी व्यवस्था को आप कठोर आलोचनात्मक दृष्टि से देखते हैं और आपकी रचनाएं नई दिशाओ की ओर इगित करती हैं। आपकी प्रतिनिधि रचना "बीमार", नवम्बर १६३६ मे "हस" मे प्रकाशित हुई थी।

"बीमार" के पात्र स्वतन्त्र परायण हैं। इसके पात्र वशीर के मुख से जहीर साहब ने अपने प्रगतिशील विचारो का प्रतिपादन किया हैं। वशीर विद्रोही है। पूजीवादी समाज, जिसने गरीव किसान मजदूरो को चारो ओर से जकड़ रखा है, के विरुद्ध एक सामाजिक क्रान्ति चाहते हैं। भारतीय समाज तथा परिवार की कठोर सामन्ती शृखलाओ को तोडने का प्रयत्न "बीमार" मे है। एक ओर सलीमा भारतीय मुस्लिम परिवार मे स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करती है दूसरी ओर वशीर प्रगतिवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करता हैं। यह दो मुखी क्रान्ति सज्जाद जहीर के एकाकी तथा नाटको मे सर्वत्र मुखरित हुई है।

यथार्थवाद की भूमि पर सज्जाद जहीर ने पूजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई है। आपकी समस्याए सामाजिक यथार्थ से सम्बन्धित हैं। आप पलायनवाद के विरुद्ध हैं। आपके कथोपकथन सक्षिप्त और मर्मस्पर्शी होते हैं। उनमे यह ध्यान रखा जाता है कि चरित्र की विशेषताए प्रगट हो सकें। नाटकीयता की रक्षा के लिए कहीं-कहीं हल्के व्यग्य का भी प्रयोग किया है। स्वगत का कहीं प्रयोग नहीं है। रूढिग्रस्त समाज जीर्ण-शीर्ण ढाचा आपको रुचिकर नहीं है। इसी से गभीर शैली में आपने क्रान्ति का स्वर ऊचा किया है। आपका एकांकी साहित्य जाग्रत और उन्नत है।

श्री यज्ञदत्त शर्मा आपने जनवादी परम्परा और मानवतावादी आदर्शो की रक्षा करते हुए कुछ एकाकी लिखे। १ प्रतिशोध २ हेलन ३ दहेज ४ दया इत्यादि एकाकी उल्लेखनीय हैं। इसमे "प्रतिशोध" और "हेलन" ऐतिहासिक रचनाए हैं। "दहेज" एक दुखात सामाजिक एकाकी है। "दया" एक प्रतीक एकाकी है, जिसमे मानव प्रवृत्तियो का प्रतीकात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। शर्मा जी के साहित्य मे भारतीय आदर्शों और गौरव की पृष्ठभूमि पर समाज सुधार के उद्देश्य को लेकर यथार्थवादी चित्रण पाया जाता है।

निष्कर्ष यह कि इन एकाकीकारो ने हिन्दी एकाकी क्षेत्र मे नये नये प्रयोग किए हैं। उनमे से अनेक ने पाश्चात्य शैलियो पर, विशेषत अग्रेजी के अनुकरण पर, नवीन एकाकी प्रस्तुत किए हैं। कुछ प्राचीन शैली पर भी लिखते रहे हैं। साधारणतः ऊपरी आकार प्रकार, सवाद, दृश्य-विभाजन, रगसकेत और भाषा आदि पर थोडा प्रभाव इब्सन तथा उसके बाद के अग्रेजी नाट्यकारो का पडा, पर भीतरी भावलोक और विचारधारा भारतीय परम्परा मे है। द्विजेन्द्र तथा प्रसाद की भावमयी अतिरजित कृत्रिमता और कल्पना-प्रधान शैली का अन्त हो गया। उसके स्थान पर नित्यप्रति की मध्यवर्गीय समस्याए, दैनिक जीवन मे प्रयुक्त भाषा, सवाद, सामाजिक जीवन का कार्य व्यापार और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियो की स्वाभाविकता पर ध्यान दिया गया। इस वर्ग के कुछ एकाकीकार जैसे डा० रामकुमार वर्मा, प० उदयशकर भट्ट, "अश्क", जगदीशचन्द्र माथुर, गिरिजाकुमार माथुर आदि का एकाकी रचनाक्रम विकास पथ पर है और उनकी नई नई रचनाए पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहती हैं।

: ५ :

द्वितीय महायुद्ध एवं परवर्त्ती हिंदी एकांकी का विकास

युग का राजनीतिक सामाजिक जीवन

द्वितीय महायुद्ध ने वज्ञानिक विकास द्वारा प्राप्त समस्त विनाशक यत्रो एव साधनो से जो धन और जन का भयकर विध्वस किया है, वह ससार के इतिहास मे अभूतपूर्व घटना है। इस युद्ध की काली छाया १९३९ मे पडनी प्रारम्भ हुई तथा उसने दूर दूर तक अपना विप्लवकारी प्रभाव उत्पन्न किया। मूलत इस युद्ध का कारण फासिस्टवाद तथा स्वार्थी भावनाए थी। इस युद्ध से कोई देश अछूना न वच सका, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सभी को इसमे कूदना पडा। इगलैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध छेडने पर भारत की प्रान्तीय सरकारो का मत लिए विना ही भारतवर्ष को भी लडने वाला घोपित कर दिया। काग्रेस सरकार को यह वहुत अप्रिय तथा असगत प्रतीत हुआ। उन्होने ब्रिटिश सरकार से युद्ध का उद्देश्य स्पष्ट करना तथा युद्ध समाप्त होने के पश्चात् भारतवासियो को अपनी विवान सभा वना कर उनके द्वारा अपनी शासन-पद्धति निश्चित करने का अविकार चाहा। ब्रिटिश सरकार का कोई सन्तोपजनक उत्तर न मिलने पर काग्रेम सरकारो ने त्यागपत्र देकर सरकारी युद्ध नीति का विरोव किया। इस पर सरकार ने उनके अविकार गवर्नरो को सौंप दिये और दूसरी सरकारें निर्मित करने का कोई उद्योग नही किया। १९४० मे रामगढ काग्रेस के पश्चात् गाधीजी का व्यक्तिगत आन्दोलन भी चल पडा। जनता मे भीतर ही भीतर विद्रोह छटपटा रहा था। उवर मुस्लिम लीग ने लाहौर मे अपना ध्येय पाकिस्तान निश्चित किया। १९४२ मे जव योरोपीय युद्ध पूर्ण भयकरता से चल रहा था और जापान के भारत पर आक्रमण की आशका थी, तो ब्रिटिश युद्ध मन्त्रि-मडल ने सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारत की भावी शासन योजना देकर भेजा, जिसके अनुसार युद्ध के पश्चात् कुछ शर्तो के साथ औपनिवेशिक स्वराज्य देने की वात कही गई थी।

ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता को कोई भी विशेप अविकार नहीं देना चाहती थी। अत ८ अगस्त १९४२ को काग्रेस ने "भारत छोडो" प्रस्ताव पास किया। क्रुद्ध होकर सरकार ने काग्रेस नेताओ तथा कार्यकर्ताओ पर मुकदमे चलाये, दमन चक्र चलाये और उन्हें नजरवन्द किया। जनता मे क्रान्ति हुई। सन् १९४२ राजनीतिक जागृति का एक चिरस्मरणीय वर्ष है, जव नाना विध्वसात्मक रूपो में जन-क्रान्ति उभरी। युद्ध की विभीपिका की छाया मे जव जन-जीवन ऐसा आतंकित

हो रहा था, हमारे अनेक पुरुषार्थी बन्धु श्री सुभाषचन्द बोस की अध्यक्षता मे जापानियो की सहायता से भारत पर आक्रमण कर उसे विदेशी शासन से मुक्त करने मे प्रयत्नशील थे। उन्होंने १९४३ मे सिंगापुर मे आजाद हिन्द फौज तथा सरकार का सगठन किया तथा साम्राज्यवादी शक्तियो के विरुद्ध युद्ध घोषणा का स्वर ऊचा किया।

अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय आन्दोलनो के कारण जनता पिस रही थी। एक ओर सरकार का भारत से बरवश मनुष्य, अन्न तथा वस्त्र लिया जाना, राजनीतिक दमन-चक्र चल रहा था, दूसरी ओर सामाजिक जीवन में घूस, चोर बाजार और मुनाफाखोरी वृद्धि पर थी। भोजन की वस्तुओ का नियत्रण होने से जनता को दैनिक उपभोग की वस्तुए प्राप्त करने मे कठिनाई होने लगी थी। इसी समय बगाल का अकाल जैसी भयकर दुर्घटना घटी, जिसमे दस लाख व्यक्ति काल के ग्रास बने। अकाल, महगाई तथा विदेशी दमन ने लोगो को पस्त कर दिया था। अत विदेशी जाति के चगुल से छूटने की उत्कट आकाक्षा के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र हो उठा।

द्वितीय महायुद्ध मे एक प्रकार से प्रजातत्र की विजय तथा ब्रिटिश सरकार ने तीन मत्री भारत मे भेजकर भावी विधान निर्माण के लिए एक सभा के सगठन की योजना निर्मित की जिसके निर्णय को अनेक दोष होने पर भी काग्रेस ने अन्त में पूर्ण स्वराज्य की आशा से स्वीकार कर लिया। सन् १९४६ मे राष्ट्र नेता प० जवाहरलाल नेहरु ने राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की, किन्तु इसमें मुस्लिम लीग सम्मिलित नही हुई। १६ अगस्त को प्रत्यक्ष सघर्ष दिवस मनाया गया तथा बगाल एव नोआखली मे मुसलमानो ने भयानक हत्याकाड किये। २० फरवरी १९४६ की सरकारी घोषणा मे निश्चयात्मक रूप से कहा गया कि विदेशी शासन का अन्त होगा तथा १५ अगस्त १९४७ को भारत खडित कर हिन्दुस्तान सघ तथा पाकिस्तान दो भागो मे विभाजित कर दिया गया। जून १९४८ तक शासन सत्ता भारतीयों को सौंप दी गई। गत वर्षो मे हिन्दुस्तान मे उथल-पुथल के बावजूद राजनीतिक उन्नति हुई है। निष्कर्ष यह कि ये वर्ष राजनीतिक आन्दोलनो, विषम परिस्थितियो तथा भयकर अस्तव्यस्तता के थे।

समाज या देश मे घटित घटनाओ का प्रभाव हिन्दी एकाकी-साहित्य पर भी पडा है। इस काल के साहित्य पर विदेशियो द्वारा भारत पर किये गये अत्याचार, गुलामी की पीडा, फौलादी जजीरो में जकडी हुई भारत की आत्मा की चीत्कार, युद्ध के नाना पक्षो के चित्रण, भारत का उसके प्रति दृष्टिकोण आदि युद्ध से पूर्व की भावनाए तो मुखरित हैं ही, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् की दुखद सुखद घटनाए देश का स्वातन्त्र्य-सग्राम, विभाजन, नोआखली तथा पश्चिमी पाकिस्तान मे भीषण नरमेध, लज्जा की प्रतीक नारियो का नग्न प्रदर्शन, निर्दोष बालकों के अगविच्छेद, क्रूर पैशाचिक कार्य, गाधी हत्या, सघ की भावनाए, कम्युनिस्टों का बगाल, हैदराबाद में

उत्कर्ष तथा प्रसार, भारत पर लाल झडे की छाया, हैदराबाद पर अभियान, काश्मीर में युद्ध के बादल भी, किसी न किसी रूप मे प्रकट हुए हैं। जनता के सामाजिक जीवन की कठिनाइयो तथा प्रतिकूलताए, बगाल मे दुर्भिक्ष, सुरसा की भाति बढती हुई महगाई, सरकारी तथा गैर-सरकारी सस्थाओ मे घूस, भ्रष्टाचार, पक्षपात, साम्प्रदायिक उत्पात, शरणार्थियो तथा अपहृता स्त्रियो की समस्या, बाजारों मे कन्ट्रोल, पेट की ज्वाला से जली हुई, भोजन तथा वस्त्र के लिए तड़पती मानसिक पीडा से भाराक्रान्त तथा भयाक्रान्त जनता, कालाबाजार आदि आदि अनेक समस्याए इनमें चित्रित हुई हैं। इन वर्षों के एकाकी-साहित्य के अन्तर्गत हम निम्नलिखित प्रवृत्तिया पाते हैं :—

१ राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना, २ गाधीवादी तथा व्यक्तिगत रूप से गाधीजी के जीवन तथा मृत्यु से सम्बन्धित एकाकी साहित्य, ३ प्रगतिशील एकाकीकार, जिन्होंने शोषण के विरुद्ध आवाज ऊची की है, ४ सामाजिक पुनरुत्थान, ५ पार्टी साहित्य : समाजवादी, कम्युनिस्ट, काग्रेस, हिन्दू महासभा आदि का प्रचार साहित्य।

युद्धोत्तर कालीन एकांकी का विकास

युद्धोत्तर काल मे पाश्चात्य एकाकी की टैकनीक के अनुसरण पर हिन्दी एकाकी विकसित हुआ और उत्तरोत्तर विकास पथ पर है। यह आज नाट्यजगत् मे एक शक्तिशाली, लोकप्रिय, प्रचलित युग के अनुकूल अल्पकाल मे मनोरजन, शिक्षा या प्रचार करने वाला माध्यम बन गया है। आज हिन्दी-जगत् मे एकाकी का सर्वाधिक प्रचार है। बडे नाटको का युग समाप्त सा हो गया है तथा एकाकी ने उसे दबा सा लिया है। बड़े नाटको के निर्माता भी लघुकाय एकाकी के निर्माण मे संलग्न हो गये हैं, अन्य नये लेखको की तो इस ओर विशेष रुचि है। आधुनिक जीवन मे द्वन्द्व, व्यस्तता, अशान्ति, कार्य बहुग्रता आदि उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर हैं तथा मनोरजन के लिये अल्पकाल ही प्राप्त होता है। अपने संक्षिप्त स्वरूप तथा अल्पकाल मे ही मनोरंजन प्रदान करने के विशेष गुण के कारण तो एकाकी प्रसिद्ध हुआ ही है, आजकल स्कूल-कालेजो मे विशेष अवसरो पर उसके अभिनय की एक परिपाटी सी चल पडी है। समारोहो पर एकाकी के अभिनय के विना मनोरजन फीका लगने लगा है, परन्तु उसके प्रचार का एक विशेष साधन रेडियो बना है। रेडियो में मिलने वाला पारिश्रमिक, प्रसिद्धि की भूख, तथा फैशन ने उच्चकोटि के प्रतिभावान नाट्यकारो को रेडियो एकाकी की ओर आकृष्ट किया है। रेडियो एकाकी हिन्दी में ध्वनि-मूलक रूपको, फीचर, तथा छोटी नाटिकाओ के प्रचार प्रसार का साधन बना है।

हिन्दी कहानियो पर एकाकी ने अपना प्रभाव डाला है। एकाकी तथा कहानी दोनों के योग से नाट्य-कहानी का जन्म हुआ है। इनमे वर्णनात्मक तत्व की अपेक्षा अभिनय-तत्व और सवादों की प्रचुरता है। इनके संवाद का पर्यवसान कार्य व्यापार

मे और उस कार्य व्यापार का परिणाम उसकी क्षिप्रता मे होता है। घटनाचक्र कार्य व्यापार की ओर प्रवर्तित होता है। इन नाट्य-कहानियो मे अभिनय के लिए तथा पाठको की कल्पना को सजग करने के लिए रग सकेतो का विधान एकाकी तरह का है।

गीति नाट्यो के क्षेत्र मे भी पर्याप्त उन्नति दिखाई देती है। गीति और अभिनय के सयोग से नृत्य तथा सगीत नाटको की सृष्टि हुई है। पत के नृत्यनाट्य तथा चिरजीत और गिरिजाकुमार माथुर के सगीत रूपक इस क्षेत्र मे नई चीज हैं।

पाश्चात्य रगमच के अनुकरण पर हिन्दी मे खुले रगमच (ओपन स्टेज थियेटर) की ओर भी हमारे नाट्यकारों का ध्यान आकृष्ट हो रहा है। खुले रगमच पर अभिनय की दृष्टि से विनिर्मित कुछ एकाकी लिख गये हैं। श्री वीरेन्द्रनारायण इसी क्षेत्र मे कार्य कर रहे हैं।

३ नवीन एकांकी की धाराएं

१ सामाजिक राजनीतिक विचारधारा यह युग राजनीति प्रधान होने के कारण एकाकियों मे राजनीतिक घटनाओ, आन्दोलनो, विविध राजनीतिक दलो के प्रतिनिधित्व करने वाले विचार तथा दृष्टिकोणो का विस्तृत विवेचन हुआ है। जनता के जीवन मे सामाजिक सघर्ष, भूख, अकाल तथा पूजीवाद के शोषक प्रबलता से आ रहे थे। बगाल का अकाल, अन्न तथा वस्त्र की न्यूनता, किसान मजदूरो की विवशता, अग्रेजी लिबास, रहन-सहन, दिखावे के प्रति घृणा, ब्रिटिश सरकार के प्रति असतोष, आर्थिक विषमता, रूस की महत्ता, शोषक वर्ग की निरकुशता के प्रति आकुलता, युद्ध तथा युद्धोत्तर काल के एकाकी की प्रमुख समस्याए रही है और असतोष तथा विद्रोह की भावना मुखरित हुई है। हिन्दी एकाकी मे प्रगतिवाद का आन्दोलन एक निश्चित प्रणाली पर चला तथा उसे पनपने के लिए उपयुक्त भूमि भी प्रस्तुत हो गई है। राष्ट्रीय जागरण के साथ प्रगतिवादी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढती रही है। सुधारवाद, राष्ट्रीयता, मानववाद, मार्क्सवाद इन चार प्रकार से प्रगतिवाद विकसित होकर प्रबल धारा के रूप में हमारे सामने आया है। जापानी फासिज्म, दुर्भिक्ष, महामारी, गुलामी, अनाज चोरो और मुनाफाखोरो के विरुद्ध जनता को सगठित कर उन्होंने सास्कृतिक जागरण मे सहायता की। इन एकाकियो मे उत्कृष्ट कला का परिमार्जन एव परिष्कार तो नही है पर तात्कालिक परिस्थितियो तथा सामाजिक राजनीतिक समस्याओ की सफल अभिव्यक्ति है। उनमे एक प्रबल अग्नि तथा शक्ति है।

इस वर्ग के प्रमुख एकाकीकार सर्वश्री अर्जुन चौबे काश्यप, गोविन्द शर्मा, विनोद रस्तोगी, गोविन्द लाल माथुर, अनन्त कुमार पाषाण, रागेय राघव, शिवदान चौहान, विजन भट्टाचार्य, कृष्णचन्द्र, प्रकाशचन्द गुप्त, पहाडी, सुब्बाराव, अमृतराय, मुक्तिदूत, प्रभाकर माचवे, विमला लूथरा, जयनाथ नलिन, प्रो० डी एम मोरगावकर, श्रीराम शर्मा राम, शभूनाथ सिह, सत्येन्द्र शरत् आदि हैं।

महात्मा गाधीजी की विचारधारा का व्यापक प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पडा है। एकाकी साहित्य भी इससे अछूता नही रह सका है। गाधीजी की विचारधारा स्वातन्त्र्य सग्राम तथा उनकी मृत्यु पर अनेक एकाकी लिखे गये हैं। इस वर्ग के एकाकीकारो को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम वर्ग मे वे एकाकीकार हैं, जिन्होने महात्मा गाधीजी की नीति, योजनाओ, विचारधाराओ तथा गाधीवाद का प्रतिपादन किया है। इस श्रेणी मे विष्णु प्रभाकर, सुधीन्द्र, देवीलाल सामर, हरिकृष्ण प्रेमी, विराज, रामचन्द्र तिवारी, सत्येन्द्र प्रमुख हैं। महात्मा जी की मृत्यु पर कुछ एकाकीकार इतने प्रभावित हुए कि उनके सम्पूर्ण जीवन की घटनाओ को एकाकियो का विषय वनाया गया। कुछ ने उनकी मृत्यु पर ही एकाकी लिखे हैं, जैसे शिवकुमार, ओझा, प्रेमराज शर्मा, देवदत्त अटल, हरिशकर शर्मा, आरसी प्रसाद सिंह, जानकीशरण वर्मा, गणेशदत्त गौड इन्द्र आदि।

राजनीति की प्रधानता होने के कारण ऐतिहासिक विषयो की ओर से हमारे एकांकीकारो का ध्यान कुछ हटा सा रहा। अत इस क्षेत्र मे अपेक्षाकृत कम रचनाए ही लिखी गई। ऐतिहासिक क्षेत्र मे कुछ तो पुराने एकाकीकार जैसे डा० रामकुमार वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, उदयशकर भट्ट आदि ही कार्य करते रहे, कुछ नये एकाकीकार इस ओर आकृष्ट हुए हैं। इनमे सवसे सफल एकाकीकार डा० लक्ष्मीनारायण लाल, गणेशदत्त गौड, रामवृक्ष, वेनीपुरी, हरिनारायण मैणवाल, चन्द्रकिशोर जैन, दुर्गादत्त मैनन आदि हैं।

२. **मानवतावाद** गाधीजी की सवसे वडी विशेषता थी उनका मानवतावाद। उन्होंने राजनीति को मानवता से विच्छिन्न करके कभी नही देखा। उनकी राजनीति नैतिक एव आध्यात्मिक जीवन के साथ सश्लिष्ट हो गई थी। गाधीजी का यह प्रभाव हिन्दी एकाकियो पर पडा है।

एक धारा उन सामाजिक यथार्थवादी एकाकीकारो की है जो युद्धकालीन सघर्ष, फासिस्टवाद, भ्रष्टाचार के विरुद्ध मानववाद का प्रचार कर शान्ति स्थापित कर मानव विकास का उद्योग कर रहे थे। इन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक जीवन की विषमताओ को दूर करने के लिए मानवतावादी दृष्टिकोण से मार्मिक एकाकियो की सृष्टि की है। इनका मूल ध्येय मानववाद के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय पुन. निर्माण है। इसलिए जहा इन्होंने एक ओर समाज के भीतर पनपने वाले भ्रष्टाचार, व्यक्तियो मे जीवन की विषम स्थितियो, समाज के उपेक्षित वर्गों, या रूढियो को व्यग्यात्मक रूप मे प्रस्तुत किया है, वहा दूसरी ओर पुन निर्माण के आदर्श भी प्रस्तुत किए हैं।

यह साहित्य जीवन के वहुत समीप आ गया है। प्राचीन आदर्शों मे समयानुकूल परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। हृदय की अपेक्षा बुद्धि का कार्य विशेप प्रवल दीखता है। इनकी शैली मनोवैज्ञानिक है, जिसमे मानव के अन्तस्थल, रूढियो के

निर्माण के कारण तथा नवीन परिस्थितियो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। इस वर्ग के एकाकियो की सब से महत्त्वपूर्ण दो प्रवृत्तिया उल्लेखनीय हैं, वर्ग चेतना और मानव की असीम शक्तिमत्ता।

वर्तमान मानववादी प्रवृत्ति भौतिकवादी दर्शन से प्रेरित पिछले युग से भिन्न है। नवीन एकाकी साहित्य मे स्वाश्रयी मानव के अकपित रूप की कल्पना बडी ही मनोबल-शालिनी और उत्कर्ष विधायिनी है। इस वर्ग के प्रमुख एकाकीकार विष्णु प्रभाकर, रामचन्द्र तिवारी, सत्येन्द्र शरत, रावी, प्रेमनारायण टडन, हीरादेवी चतुर्वेदी, गणेशदत्त इन्द्र, विमला लूथरा आदि हैं।

३ **धार्मिक पौराणिक धारा** धार्मिक क्षेत्र मे जनता तथा एकाकीकारो की रुचि अत्यन्त क्षीण हो गई है। इस क्षेत्र मे कभी कोई रचना प्रकाशित हो जाती है। किसी एकाकीकार ने जमकर इस क्षेत्र मे कार्य नही किया है फिर भी डा० कृष्णदत्त भारद्वाज, शभूदयाल सक्सेना, विष्णु, डा० लक्ष्मीनारायण, विपुलादेवी आदि कुछ कार्य कर रहे हैं।

४ **समाजवाद यथातथ्यवाद** आधुनिक हिन्दी एकाकी का मूल स्वर यथा-तथ्यवाद है। आधुनिक एकाकीकार सामाजिक क्रान्ति, युग सघर्ष, रूढियो के प्रति विद्रोह, श्रमजीवी वर्ग की अन्तर वाह्य मन स्थितियो का यथार्थवादी चित्रण करने में ही कला की सार्थकता समझते हैं। आदर्शवाद तथा समाजसुधार की भावनाए छोड कर हमारे एकाकीकार जीवन की जटिलताओ में अधिक दिलचस्पी ले रहे हैं। समाज, राजनीतिक जीवन या धर्म की आदर्शवादी कल्पनाए या भावुकता की लीपापोती की कृत्रिमता पीछे छूट चुकी है। वे समाज को जैसा देखते हैं, वैसा ही चित्रित कर देते हैं। इनका विश्वास है कि आदर्शवादिता, समाज सुधार तथा झूठी भावुकता (सेन्टी-मेन्टीलिटी) मे पडकर मानव प्रवृत्ति, समाज तथा सस्कारो का वास्तविक रूप सभ्यता के आवरण में छिप गया है। आज के एकाकीकार इसी वास्तविक स्वरूप को जनता के समक्ष ला रहे हैं। वे मनुष्य, समाज या राजनीतिक घटनाचक्र की विकृतियो को तटस्थता पूर्वक उभार मात्र देते हैं। वे कला मे प्रवृत्ति का स्वाभाविक प्रतिबिम्ब ही नही देते प्रत्युत मानव तथा समाज के गूढ रहस्यो को बडे सघर्ष से खोजते हैं। साहित्य जीवन के बहुत समीप आ गया है, हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क के चिन्तन एव अन्त-र्दृष्टि की प्रधानता है।

५. **सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद** आज के एकाकीकार का दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक है। वह जहा एक ओर मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित है, वहा दूसरी ओर फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धात से प्रभावित है। वह केवल ऊपरी चरित्र चित्रण में विश्वास नही रखता, वह पात्रो के अन्तर के गहन गहरो को मनो-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चित्रित करता है। इसका मानव प्रकृति का अध्ययन गहरा है। इस वर्ग के एकाकी किसी मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि पर उगली रख देते हैं, उसे खोलने के प्रयत्न

मे अपना नख लगाते हैं। व्यक्ति के आन्तरिक जगत् के सूक्ष्म विश्लेपण, मानसिक प्रवृत्तियो, मनोवेगो और उत्तेजनाओ की आधारभूत व्यापक व्याख्या करते हैं। विष्णु प्रभाकर, हरिश्चन्द्र खन्ना, प्रभाकर माचवे, प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप, लक्ष्मीनारायण लाल, डा० रामकुमार वर्मा आदि का चरित्र चित्रण इसी दृष्टिकोण से किया गया है। इनमे से कुछ नाट्यकारो ने अवचेतन मन की प्रक्रिया, कुठाओ एव विकृतियो, दलित यौन वासना की व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रो० काश्यप ने इस प्रकार के अनेक सफल एकाकी लिखे हैं।

६. विविधता और वैचित्र्य कथानको मे विविधता और वैचित्र्य या वैराइटी का समावेश हो गया है। आधुनिक युग के राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक, धार्मिक, सास्कृतिक जीवन अनेक क्षेत्र इन एकाकियो द्वारा प्रकाश मे लाए गए हैं। कम्यूनिज्म, स्वदेश प्रेम, मानवगौरव, व्यक्तिवाद, युद्धकालीन चतुर्दिक सघर्ष तथा युद्धोत्तर कठिनाइया, वगाल का अकाल, सन् ४२ का जन विद्रोह, आजाद हिन्द फौज, अकाल, महामारी, महगाई, मकानो तथा किरायेदारो की समस्याए, दलित वर्ग का चित्रण, वर्ग-चेतना, देश के विभाजन से उत्पन्न समस्याए, शरणार्थी तथा अपहृत महिलाए आदि अनेकानेक समस्याए एकाकियो मे अभिव्यजित हुई है।

दु खवाद की करुण धारा इनमे विशेप रूप से प्रवाहित हुई है। ये वर्ष भारत के इतिहास मे वडे सकट एव सघर्षो के रहे हैं। देश का करुणाजनक विभाजन, महगाई, अकाल, वगाल मे भीषण रक्तपात, मध्यवर्ग का अन्न-वस्त्र तथा वस्तुओ के मूल्य ऊचे हो जाने के कारण वढी हुई कठिनाइया, पीडित भारत का क्रन्दन इनमे मुखरित हैं। युद्ध से उत्पन्न भुखमरी, देश व्यापी, राजनीतिक भूकम्प तथा जनता की वेवसी हमारे सामने आ रही है।

७. रेडियो एकाकी रेडियो एकाकी नाटक का एक नया रूप है जिसका विकास गत वर्षो मे द्रुत गति से हुआ है। इस युग मे रेडियो की उन्नति मे सबसे वडा महत्वपूर्ण साधन वना है। स्कूल कालेजो या अमेचर क्लवो मे तो एकाकी की माग वढ ही रही थी, किन्तु उससे भी अधिक रेडियो पर इसका प्रचार, आकर्षण, एव प्रसिद्धि तीव्रतर होती जा रही है। रेडियो द्वारा हिन्दी एकाकी का प्रचार अधिक व्यापक होता गया है। रेडियो एकाकी इस युग की माग है और रेडियो के नियमित कार्यक्रम मे इसने विशिष्ट स्थान वना लिया है। टेलीविजन की प्रतीक्षा है जो इसे और लोकप्रिय वना देगा।

हिन्दी रेडियो एकाकी प्रधानत तीन धाराओ मे प्रवाहित हो रहा है। यथार्थोन्मुख आदर्शवाद, जिसके अन्तर्गत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर नए सामाजिक आदर्शो, वर्तमान सामाजिक विपमताओ से मुक्ति और टूटते सामन्ती आदर्शो के विपरीत नई ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का चित्रण है। राष्ट्रीय नवनिर्माण की अनेक योजनाओ को अनेक सुधारवादी रेडियो एकाकियो में प्रस्तुत किया गया है। दूसरी धारा समाजवादी यथार्थवाद की है, जिसमे समाज और व्यक्ति की समस्याओ का यथातथ्य चित्रण है।

श्रमजीवी वर्ग के सघर्ष, नई आशा आकाक्षाओ का चित्रण है। तीसरी धारा मनोविश्लेषणात्मक नग्नवाद है, जो फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धान्त से प्रभावित है।

रेडियो एकाकीकारो मे उदयशकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर, रामचन्द्र तिवारी, रामसरन शर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर, विशम्भर मानव, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती, रेवती रमन शर्मा, चिरजीत, फकीरचन्द्र माथुर, त्रिलोकचन्द्र कौसर, भारत भूषण अग्रवाल, गोपाल शर्मा, कृष्ण किशोर श्रीवास्तव, भृङ्ग तुपकरी, रामपूजन मालिक, अनिल कुमार, राजाराम शास्त्री आदि हैं।

८. टैकनीक सम्बन्धी नवीनताएं टैकनीक क्षेत्र मे रगमचीय तथा रेडियाई दोनो प्रकार के एकाकियो ने उन्नति की है। आज के एकाकी रगमच के और समीप आ गए हैं। कुछ नाटककारो ने मच पर अभिनय के लिए ही अपने नाटको का निर्माण किया है। रेडियाई एकाकियो के निर्देशो मे सूत्रधार की पद्धति का अनुसरण किया जा रहा है। रेडियो ने हमे रूपक नामक एक नई शैली प्रदान की है। इनमे सिनेमा तथा पाश्चात्य नाट्य-साहित्य का प्रभाव स्पष्ट मुखरित है।

आधुनिक एकाकियो मे प्रारम्भिक पूर्वकथा नही दी जाती है, वरन् ज्यो की त्यो पाठको एव दर्शको के सामने पात्रो के सभाषणो द्वारा सब स्थिति का ज्ञान करा दिया जाता है। कुछ नाट्यकार, जिनमे प्रभाकर माचवे तथा सत्येन्द्र शरत प्रमुख हैं, इस बात मे विश्वास करते हैं कि पात्रो का परिचय भी नाट्यकार द्वारा नहीं देना चाहिये। प्रत्युत पात्र स्वय ही अपनी बातचीत मे एक दूसरे के द्वारा अपना परिचय पाठको एव दर्शको को दें। नाटको के आरम्भ मे सवादो के निर्देश मे पात्रो का नाम न देकर पहला व्यक्ति, दूसरा व्यक्ति अथवा युवक युवती का प्रयोग किया जाता है। तत्पश्चात पात्रो के ही एक दूसरे के नाम को लेकर पुकारने पर उनके नाम प्रकट किये जाते हैं। इस दृष्टि से ये एकाकी को जीवन का और भी यथार्थवादी अग बनाते हैं। एकाकी मे रगमच सकेत कम हो और बातचीत से ही सब कुछ व्यक्त हो जाय, तो उत्तम है। यही आधुनिक एकाकीकार की धारणा है, क्योकि हिन्दी नाटक का रगमच अभी पश्चिम की भाति विकसित नही है। सिनेमा ने बहुत हद तक रगमच का आकर्षण समाप्त सा कर दिया है, क्योकि उसने समाज के सास्कृतिक जीवन की उपेक्षा कर रखी है।

आजकल पाश्चात्य देशो मे सजे सजाये रगमच के साथ खुला रगमच काफी लोकप्रिय हो रहा है। पाश्चात्य टैकनीक के प्रभाव मे हमारे यहा खुले रगमच (ओपन स्टेज थियेटर) के भी प्रयोग चले हैं। सिनेमा द्वारा विकृत सामाजिक रुचि का परिष्कार करने के हेतु खुला रगमच ही एकमात्र सभव प्रयास दृष्टिगोचर होता है। छोटी छोटी नाट्य मडलिया नाम-मात्र के व्यय से यह काम कर सकती हैं। कुछ एकाकीकारो, जिनमे वीरेन्द्र नारायण प्रमुख हैं, ने हिन्दी रगमच के हित के लिये ऐसे एकाकी लिखे हैं, जो बिना किसी झझट के खुले रगमच पर अभिनीत हो सकते हैं। इनमें क्रिया-

कलाप का अधिक सहारा लिया गया है ।

९. रंगमंचीय सूचनाओं में प्रभाव व्यंजना : रगमचीय सूचनाओ मे पाश्चात्य अनुकरण यहा तक उन्नत हुआ है कि न केवल रगमच का निर्देश वातावरण उपस्थित करने के लिए किया जाता है, प्रत्युत पूर्ण दृश्य में पात्रों की गतिविधि से रगमच की वस्तुओ का भी सम्बन्ध दिखाता है। इनमे क्रियाकलाप का वातावरण की अपेक्षा अधिक चित्रण है। कुछ निर्देश प्रभाव-व्यजन के लिए भी प्रयुक्त किये जा रहे हैं, जिससे पाठकों को भी रसास्वादन मिल सके। प्रभाव-व्यजक निर्देश एकाकियो को सुपाठ्य, मनोरजक तथा रस-परिपाक मे सहायक बनाते हैं।

१०. अभिनय की ओर प्रवृत्ति · हमारे रगमच के विकास न होने का एक कारण यह भी है कि रूढियो मे जकडे रहने के कारण स्त्रियां स्वच्छन्दतापूर्वक अभिनय नही कर सकती, स्त्री पात्रो का अभिनय भी प्राय पुरुष ही करते हैं। ऐसे एकांकियो की माग की जाती है, जिसमे स्त्री पात्र न हो, अथवा कम हों। स्कूल, कालेजो में अभिनय के लिये चुने जाने वाले एकाकियो मे यह सबसे पहली शर्त होती है। यह कठिनाई देखकर कुछ एकाकीकारो, जिनमे सत्येन्द्र शरत प्रमुख हैं, ने ऐसे एकाकियो की रचना की है, जिनमे पुरुष पात्र हैं, या स्त्री पात्र बहुत कम हैं। आज के समय से भावी सामाजिक जागृति के युग तक जो रिक्त है, उसे पूरा करने के लिए पुरुष पात्र प्रधान एकाकियो की रचना भी हुई है।

११ संगीत शून्यता . सगीत का प्रयोग बहुत कम किया जा रहा है। एक तो संगीत अस्वाभाविक सा है। दूसरे दैनिक जीवन मे हमारा समाज इसका प्रचुर प्रयोग नही करता। इसके अतिरिक्त स्वगत कथन का प्रयोग छोड दिया गया है। आज का एकाकीकार हर प्रकार की अस्वाभाविकता से बचता है। भाषा, सवाद तथा पात्र परिचय मे स्वाभाविकता की रक्षा की जा रही है। दैनिक जीवन मे हम न कविता, न गानो या स्वगत कथनों का ही प्रयोग करते हैं। फिर एकाकी में, जो जीवन का जीता जागता टुकडा है, क्यों इन कृत्रिमताओ का प्रयोग किया जाय ?

निष्कर्ष यह है कि आधुनिक एकाकी नाना विषयो तथा समस्याओ को लेकर अपने पूर्ण वेग से विकसित हो रहा है। हिन्दी के अनेक प्रतिभाशाली नाटककारो का ध्यान एकाकी निर्माण की ओर गया है। कुछ उदीयमान नई प्रतिभाए भी इस क्षेत्र मे सफल प्रयोग कर रही हैं। कुछ साहित्यकार ऐसे हैं जो केवल एकाकी ही निर्माण कर रहे हैं, कुछ ने केवल रेडियो नाटक को ही अपनाया है। एकाकी साहित्य में विविधता, कलात्मक अभिव्यक्ति, नाटकीयता तथा प्रौढता आ रही है। नवीन युग के एकाकीकारों की भाव तथा कला पक्षों की विशेषताएं इस प्रकार हैं।

४. नवीन युग के एकांकीकार : विचारधारा एवं टेक्नीक

१. श्री रामवृक्ष बेनीपुरी . आपके एकाकी साहित्य में विविधता है। ऐनि-

हासिक पौराणिक, सामाजिक समस्याओ को लेकर अपने एकाकियो तथा रेडियो रूपकों की रचना की है, किन्तु ऐतिहासिक नाटको के क्षेत्र में आपको विशेष सफलता मिली है।

"अम्बपाली, विजेता, तथागत" आदि ऐतिहासिक नाटको को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई है। आपके, "सघमित्रा" और "सिहलविजय" सम्राट अशोक के शासन का एक गौरवमय चित्र उपस्थित करते हैं। "नेत्रदान" कुणाल की ऐतिहासिक घटना का सर्वथा एक नवीन विश्लेषण है। सामाजिक क्षेत्र मे आपके "नया समाज, रामराज्य, अमर ज्योति और गाव का देवता" आदि उल्लेखनीय रेडियो रूपक है "नया समाज" मे नये समाज के जन्म की ओर नये टैकनीक से सकेत है। "अमर ज्योति" महात्मा गाधी के जीवन पर प्रथम सुन्दर रूपक है। "सीता की मा" हिन्दी का नवीनतम पाच दृश्यो मे स्वोक्तिरूपक है। "शकुन्तला" साहित्यिक रेडियो रूपक है। निष्कर्ष यह कि विषयचयन की दृष्टि से बेनीपुरी के एकाकी-साहित्य मे विविधता, व्यापकता और विस्तार है।

आपके एकाकी साहित्य मे यथार्थ जीवन को जानने, समझने और चित्रित करने का आग्रह है। सामाजिक कुत्सा के विरुद्ध विद्रोह है और व्यापक सोद्देश्यता है। आदर्शवाद का मिश्रण अपने समस्त सौंदर्य से ऐतिहासिक एकांकियों में ही प्रकट हुआ हैं। ऐतिहासिक कृतियो मे इतिहास की अपेक्षा कलाकार बेनीपुरी का कलात्मक रूप, उसकी आत्मा की सत्यता और सुन्दरता ही प्रकट हुए हैं। जिन ऐतिहासिक पात्रो को उन्होंने चुना है जैसे अम्बपाली, चन्द्रगुप्त मौर्य, कुणाल, भगवान बुद्ध, सघमित्रा, अशोक आदि की आत्मा के चित्रण मे उन्हें विश्वास है।[1]

पात्र प्रधान नाटको मे घटनाओ, भावनाओ तथा व्याख्या की मौलिकता है। उनका दृष्टिकोण सर्वथा नवीन है। उदाहरण के लिए "नेत्रदान" मे करुण घटना का मूल स्रोत कलिग के युद्ध तक गया है। इसमें यह भी चित्रित किया गया है कि युद्ध मानवता के लिए सदा अभिशाप रहा है। जो युद्ध करते हैं या कराते हैं, उन्हें प्रायश्चित देना होगा। चाहे आज दें, या कल देने को बाध्य हो।

बेनीपुरी ने सर्वत्र भारतीय नाट्य-परम्परा के पालन का ध्यान रखा है।[2] जैसे "नेत्रदान" मे तिष्यरक्षिता रगमच पर कुणाल से प्रणय की भिक्षा नही मागती, न कुणाल के नेत्र ही दर्शको के समक्ष निकलवाये जाते हैं। तिष्यरक्षिता का कुणाल की आखों पर मोहित होने के तत्व को सत्य मानकर उनमे होने वाली भिन्न भिन्न व्यक्तियों की क्रियाओ से बेनीपुरी जी ने इस एकाकी के भ्रमो और भ्रान्तियो का ताना बाना

---

१ "कलाकार वाध्य नहीं है कि वह इतिहास को पूरा पूरा जैसा का तैसा दुहराए। यदि वह ऐसा करे तो ऐतिहासिक इतिवृत्ति और कलाकृति में भेद ही क्या रह जाय।"—रामवृक्ष बेनीपुरी, बेनीपुरी ग्रथावली, "नेत्रदान" पृ० ३।

२ देखिए "नेत्रदान" भूमिका, पृष्ठ ६।

बुना है और यह ताना बाना स्वभावत ही इस करुण घटना का स्वाभाविक कारण बना है। पात्रो के मनोभावो के चित्रण में बेनीपुरी सर्वत्र मौलिक और प्रभावशाली हैं। तिष्यरक्षिता की मनोवेदना के चित्रण मे नई पद्धति से काम लिया गया है। वह अपने ही दर्पण मे अपनी छाया को देखती हुई हृदय कथा उडेलती है। इससे लम्बी स्वोकित-सम्बन्धी ऊब नही आती और अभिनय के लिए पूर्ण अवसर भी मिल जाता है।

इसी शैली पर "सीता की मा" स्वोक्ति रूपक की रचना हुई है। बेनीपुरी ने कुछ घटनाओ को भी नवीनता प्रदान की है और पौराणिक कथानको को भी तर्क-सम्मत बना दिया है। "सीता की मा" मे जगल मे रहनेवाली नारी के उदर से सीता जी का जन्म और घास फूस मे ढकी हुई राजा जनक को प्राप्त होना, सर्वथा नवीन कल्पना है। यह तर्कसम्पत भी है। निष्कर्ष यह है कि बेनीपुरी के एकाकियो के कथानक, मुख्यपात्र तथा व्यजनाए सर्वत्र मौलिक है।

उनके नाटको की शैली रगमचीय है। रेडियो रूपक सफलता मे प्रसारित हो चुके हैं। कथोपकथनो का प्रत्येक वाक्य या वाक्याश उनके सम्पूर्ण नाटक को एकसूत्र मे बाधता है। यह एकसूत्रता उनकी एक विशेषता है। भावो के अनुसार नए शब्दों का चुनाव, नई अभिव्यक्तियो, प्रौढ चिन्तन, विचित्र और आकर्षक शब्द-योजना, इन नाटको की अपनी विशेषताए है। भाषा लोक जीवन के निकट है। हिन्दी उर्दू इत्यादि जहा से जो भी शब्द बोधगम्यता और विषयोचित जचा, उसे ले लिया है, पर प्रभाव-शीलता का ध्यान रखा है। भाषा के प्रवाह और शैली के बाकेपन के कारण ये नाटक प्रभावोत्पादक बन पडे हैं।

२. **प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप** मौलिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण तथा नई विचार-धारा लेकर काश्यप जी हिन्दी एकाकी क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए है। अपने ६४ नए पुराने समस्या एकाकियो मे उन्होने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भारतीय जीवन और समाज के सभी पहलुओ तथा जीवन-मूल्यो को बुद्धिवादी कसौटी पर परखा है और नवीन क्रान्तिकारी ढंग से चित्रित किया है।

हमारे युग मे जो नवीन बौद्धिक आर्थिक और मनोवैज्ञानिक आदर्शों मे गत्या-त्मक परिवर्तन हो रहा है, नैतिकता के नए मूल्य स्थापित हो रहे हैं, तथा जीर्ण-शीर्ण परम्पराओ के विरोध मे जो विरोध आ रहा है उसकी क्रान्ति का स्वर इनके एकाकी साहित्य मे स्पष्ट है। डा० फ्रायड तथा कार्लमार्क्स का प्रभाव यत्र तत्र प्रकट हुआ है। जहा जीवन तथा चरित्रो के चित्रण मे विविधता है, वहा नई शिक्षा से प्रकाशित बुद्धि-वादी व्यक्ति की मानसिक, यौन सम्बन्धी और नैतिक उलझनो, सामाजिक वैषम्यो का मनोवैज्ञानिक विवेचन भी है।

आपका रचना काल १९३६ और प्रारम्भिक कृति "समाज बल" एकाकी है। इसके अनन्तर कालक्रम के अनुसार विभिन्न एकाकी इस प्रकार लिखे गए हैं :—

१९३७ : कला, व्यक्तिपूजा, मरीचिका, विचारधारा, मोहन की गवाही,

रक्त चाप ।

१९३८ पागल कुत्ता, कपट, पानी, दृष्टिकोण, महतो की दुलहिन, खेल, पडित जी, बडे भाई, भाग्य, सहोदर ।

१९३९ समाचार, दुविधा, परीक्षा की घडिया, अधकार, उन्मादी, अजन्ता की घाटी ।

१९४० नौकरी, मौत की घडिया, न्यौछावर, मगल काका, झाकी ।

१९४१ मोहिनी का प्यार, धोखा, दिवालिया, विजय, हार, मौका, भाभी, बताशा ।

१९४२ नया युग, विवशता, सिद्धान्त का आटोग्राफ, नयी रात ।

१९४३ बुनियादी धक्का, प्रयोग, भीतर और बाहर, परिणय की बेला, सेवा, जमीदार सा० साजिन्दे ।

१९४४ मानवी, नशे में, दूसरी बीवी, धृतराष्ट्रालिंगन, विद्रोह ।

१९४५ प्रतिक्षावलि, मीठे आसू, शून्यवाद, परमाणुबम, स्वप्नहार, आरती, ब्लाउज, गुडा, मजमा ।

१९४६ समाज की चिंगारी, दर्शन और जीवन, मन की जीत, सन् बयालीस, अपने राज्य मे, महलो की दासी, पत्रो की चोरी, झलक, कटघरे मे ।

१९४७ परसीथाल, तलाक, मास्टरजी, तार आया था ।

१९४८ बरगद का पेड, डायन, मूर्छा, पहली रात, दिन की दिवाली ।

१९४९ रजनीगधा, धरोहर, कविप्रिया, शादीरिकी, सराय मे, टूटती कडी, सयोग ।

१९५० प्रेरणा, सम्मोहन, अपनी लडकी ।

१९५१ अन्त सलिला, निर्देशन, विक्रमी सम्वत् ।

१९५२ दोहरा व्यक्तित्व ।

काश्यप जी की जीवन, समाज और नैतिक मूल्यो सम्बन्धी विचारधारा मौलिक है । अपने एकाकियों मे उन्होंने जीवन को भौतिक एव सामाजिक अनुक्रमो (Sequences) की इकाई माना है । उन्होंने दिखाया है कि जीवन को प्रकृति से जो कुछ प्राप्त होता है, उसका विकास व्यक्ति के सामाजिक परिवेश में होता है । अत. व्यक्ति के विकास का समस्त दायित्व वे समाज पर मानते हैं । वे व्यक्ति और उसके जीवन को समाज की कसौटी पर कसते हैं और दिखाते हैं कि किस प्रकार व्यक्ति का खरा खोटा होना समाज के रूप रग पर निर्भर है । भौतिक परिवेश के अतिरिक्त सामाजिक परिवेश उनके पात्रो के मूलगत लक्षणो के सगठन में द्वन्द्व उपस्थित करता है । "नया युग" में ऐसे ही मनोवैज्ञानिक असतोष की एक झाकी है । समाज के नियमो के अनुसार दो विवाहित दम्पत्ति दु खी हैं । पति अपनी पत्नी के व्यवहार से

क्षुब्ध है तो पत्नी पति को हृदय नही दे पाती है।

"मानवी" एकाकी में नारी के दोहरे व्यक्तित्व समाज के नैतिक बधनों में बंधे हुए प्रेम तथा स्वाभाविक रूप से उत्पन्न वासना के द्वन्द्व का चित्रण है। "प्रतिक्षावलि" मे रानी मुकुन्द से प्रेम करती है, पर उसकी विवाहिता पत्नी जानवती के आने के भय से आत्महत्या का पथ निर्धारित कर लेती है। इसमे चित्रित किया गया है कि व्यक्ति समाज के भय का शिकार है। समाज के आगे उसका पौरुष झुका हुआ है और उसकी अन्तरात्मा विद्रोह कर रही है। "भीतर बाहर" मे विवाहित युवक के क्रान्तिकारी जीवन की विषमता का प्रकाशन है। आधुनिक विवाह व्यवस्था पर कटु व्यग्य है। "परमाणु बम" के एकाकियों में समाज अपेक्षाकृत अधिक प्रबल है, यद्यपि न्याय व्यक्ति के पक्ष में है।[1]

भौतिक परिवेश के अतिरिक्त सामाजिक परिवेश व्यक्ति के मूलगत लक्षणो के सगठन मे द्वन्द्व उपस्थित करता रहता है और इस प्रकार व्यक्ति क्रमश आनुवशिकता एवं वातावरण का गुणनफल है। काश्यप जी इसी तत्व मे व्यक्ति की इकाई देखते हैं। समाज के अन्तर्गत रूढियो मे पिसते आज के जागरूक व्यक्ति अपनी समस्याए लेकर इनके एकाकियो मे चित्रित किए गए हैं। जिस वातावरण मे उन्हें रखा गया है, उसमे अनेक आर्थिक, नैतिक, मानसिक और लैंगिक समस्याए हैं। जितने व्यक्ति हैं, आनुवशिकता के अनुसार उतने ही परिवेश और परिवंतन चक्र हैं। काश्यप जी ने दिखाया है कि इन चक्रो मे बुद्धिवादी व्यक्ति परेशान हो उठा है और अपना अपनापन खो बैठा है। कुछ सचेत व्यक्ति उत्क्रान्ति करना चाहते हैं पर अन्तत असफल होकर किसी प्रकार सामाजिक स्थिति से समझौता कर लेते हैं।

उनके अनेक पात्र जैसे मानवी, "नया युग" के ठाकुर साहब, "नशे मे" का मदन और विभु धनजय आदि व्यक्ति क्रान्तिकारी हैं, कायर नही हैं और न वह पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र के पात्रो के समान दकियानूसी हैं। समस्याओ मे बचने के लिए वे सस्कृति की बालुका राशि मे मुह नही छिपाते।

उनके कुछ पात्र उग्र बुद्धिवादी हैं। वैज्ञानिक साहित्यिक अथवा जागरुक हैं, किन्तु लाचार भी है, जैसे 'प्रतिक्षावलि" मे मुकुन्द किंकर्तव्यविमूढ भी है, क्योकि उस पर समाजबल हावी है। वह अपने आर्थिक पहलू से भली भाति परिचित है किन्तु वैज्ञानिक ढग से सोचने एव बुद्धिवादी होने के नाते वह अपनी शारीरिक भूख की दिशा की ओर उन्मुख है।

उनके कुछ पात्र ऐसे हैं जो हिपोक्रिट हैं, चाहते कुछ हैं करते कुछ हैं। हमारे समाज मे ऐसे कुसगठित व्यक्तियो की भरमार है। समाज की प्रत्येक दिशा में प्रत्येक पहलू मे ऐसे व्यक्ति हैं। इन पात्रों के द्वारा काश्यप जी ने हमारे समाज के विभिन्न

---

१. देखिए प्रो० शिवनन्दन प्रसाद कृत "परमाणु बम", भूमिका, पृष्ठ ८।

वर्गों, पेशो, स्तरो के व्यक्तियो के स्वरूपो पर व्यग्य किए हैं। उनकी चरित्र सृष्टि का आधार पूर्णत मनोवैज्ञानिक है।

काश्यप जी समाजवाद की ओर झुके हुए हैं। वे समाज के दुराव छिपाव, वनावटपन के विरुद्ध हैं। अहकार से लदे व्यक्तियो, शोषको, समाज, द्रोहियो, जनता लाछनो से रगे शासकों मे रेचन (catharsis) उत्पन्न करना, दरिद्रो से सहानुभूति, शोपितो के प्रति अपनी सहृदयता, उत्पीडितो एव अपहरित व्यक्तियो से सहयोग उन्हें प्रिय है। उनके एकाकी इसी रेचन-क्रिया के लिए प्रणीत हुए हैं।[1]

काश्यप जी ने स्वसपादित "लोकमच"(साप्ताहिक के उद्देश्य स्पष्ट करते हुए जो) लिखा है, वह उनके एकाकी साहित्य की प्रेरणा और विचारधारा को स्पष्ट करता है। वे लिखते हैं :

"लोकमच एक जागरूक प्रकाशन होगा। इसमे चलशील मानव को उद्वोधन की सारी सामग्रिया मिलेंगी। वे व्यक्ति, जो अनुदार हैं, परम्परा प्रेमी अन्धभक्त हैं, उन्हें उदारता, नये प्रकाश, नये भावो की पीठिका एव गतिमान जीवन की ओर वढने का इशारा मिलेगा, क्योकि "लोकमच" अपने अभिनय के दृश्यो मे सभी सडीगली, भ्रमित, चक्रित एव अगति सूचक प्रवृत्तियो का भण्डाफोड करेगा। दकियानूसी विचारो का यह अभिनय मात्र करेगा, किन्तु इसका उद्देश्य होगा कि लोग उन ग़लत विचारो के कारनामे देख लें और परख लें उनका तर्कहीन खोखलापन।"[2] ये विचार काश्यप जी की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कुछ एकाकियो (विशेषत "नया युग", "मानवी" "नशे मे") मे दिखाया गया है कि आज का मानव विभिन्न प्रवृत्तियो का शिकार होता जा रहा है। जन जन में एक विचारमूढता सी समा गई है। ठीक से वस्तुस्थिति का परिज्ञान नहीं हो पाता। भक्ति ज्ञान के पुराने वातावरण के कारण जनता की क्रियाए, इच्छा और सकल्प गलत दिशा मे वह रहे हैं। ऐसी स्थिति मे क्या श्रेयस्कर है यह धर्मान्ध जनता समझ नही पाती। इस प्रकार काश्यप जी ने मनोवैज्ञानिक एव तर्कयुक्त प्रणाली से राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति तथा अर्थनीति, सभी मानवी पहलुओ पर बुद्धिसगत प्रकाश डालते हुए नए जीवन मूल्यो की स्थापना की है।

अव तक जीवन के तीन ही मूल्य प्रशसित रहे हैं, सत्य, शिव, सुन्दर। काश्यप जी ने भारतीय सस्कृति मे एक और मूल्य की झाकी पाई है और वह है भक्ति या विश्वास, जो धर्म की आधारशिला पर स्थित है। भक्ति या विश्वास के कारण हीं सस्कृति का भण्डार अक्षय रहा है। इसी जीवन मूल्य के कारण ससार में अभूतपूर्व कार्य किए गए हैं। उन्होंने दिखाया है कि जव तक जन-जन मे भूख की ज्वाला है

---

१ देखिए प्रो० अर्जुन काश्यप द्वारा सम्पादित "लोकमंच", साप्ताहिक के उद्देश्य।
२ वही।

सव तक सघर्ष है, किन्तु जव वह ज्वाला उचित मात्रा मे भोजन के ईंधन से शान्त हो जायेगी, वेकारी और लाचारी का नाम न रहेगा तथा जीवन के अन्य व्यापक क्षेत्र में समानता और स्वतत्रता का मान हो जायगा, तव शान्ति की भूमि स्थिर हो जायगी।

सामाजिक एवं धार्मिक पक्षो में काश्यप जी ने दिखाया है कि जिस आधार भूमि पर अव तक साहित्यिक, कलात्मक और आध्यात्मिक प्रवृत्तिया अपने भवनो को खडा करती रही हैं, वह अव हिल चुकी हैं और उसके साथ भवन की दीवारो में दरारें पड़ गयी हैं। आधुनिक प्रवुद्धता गलत आदर्शों का ढोग नही कर सकती। आदर्शों के पूजन मे वर्ण विभेद स्व पर तथा व्यक्ति गरिमा का ऐसा घटाटोप पाया जाता है कि सामूहिक जीवन कुण्ठित हो जाता है। आज की मागें (काम, क्षुधा आदि) जीवन की स्वाभाविक मागें हैं। दर्शन, साहित्य, धर्म, कला, आदि के ज्ञान एव आदर्शों से हमारे शरीर की भूख की शान्ति नही हो सकती। ये आदर्श तो व्यक्तिगत महत्व रखते हैं, न कि सामूहिक। इन्होंने दिखाया है कि ऐसे खोखले आदर्शों से जनता थरगलायी जा सकती है। इस प्रकार भारतीय समाज भयकर गलत आदर्शों की चक्की मे पिसता चला जा रहा है।

काश्यप जी अपने एकाकियो मे वेष्ठित अपनी नई विचारधारा एव प्रणाली द्वारा सामाजिक चेतना भरना चाहते हैं और समाज के कोढ को दूर कर उसे स्वस्थ मान्यता देना चाहते हैं। वे स्वाभाविक चेतना से उत्पन्न साहित्य, कला को उद्वोधन देकर एक ऐसी जीवन नीति स्थापित करना चाहते है जो किसी विशेप वर्ग को उत्साहित न कर सव को अपनी शक्ति के अनुरूप वढने का अवसर देंगे। उन्होंने दिखाया है कि ऊच-नीच का सामाजिक विभेद, धर्म और दर्शन का घटाटोप जीवन को सहज रूप मे वढने नहीं देता, उसे कुठित कर देता है। आज हमें पुरानी रूढियो मे से केवल श्रेयस्कर तत्वो की ही खोज करनी है और उन्ही को मान्यता देनी है जो जन-कल्याण एवं लोकमगल के लिए हो।

काश्यप जी ने नए ढग से जीवन और समाज पर विचार किया है। उनके एकाकियो की समस्याए यौन जीवन, प्रेम व्यवहार, अतृप्त युवको का जीवन, सभ्यता का खोखलापन, गलत आदर्शों के प्रति आकाक्षा, सामाजिक वैपम्य नई हैं।[1] आज जो सामाजिक वन्धन ढीले पड गए हैं और व्यक्ति व्यक्ति मे क्रान्तिकारी वौखलाहट आ गई है, उसका स्वर इन एकाकियो मे है।

एक ओर तो प्राचीनतावाद वुद्धिवाद की क्रातिकारी लहरियों की पकड़ में आ गया है और दूसरी ओर आधुनिकतावाद नयी नयी समस्याओ से उलझ वैठा है। इन दोनो व्यापक प्रवृत्तियों के मूल मे क्या है और समस्या का समाधान क्या है, इसका उनके एकाकियो मे विशेप महत्व है और इसे उन्होंने स्वतन्त्र निर्णयात्मक

---

१ देखिए प्रो० वासुदेव नन्दन प्रसाद कृत "नया युग" भू० पृ० ४।

बुद्धि वाले पाठकों एव दर्शको के समक्ष मनोवैज्ञानिक कसौटी से प्रस्तुत किया है। राजनीतिक अधिकार एव कर्त्तव्य की लोक नीति से सामयिक उलझनो को सुलझाने का प्रयत्न भी है।

ये अपने एकाकियों द्वारा कुठित व्यक्तियो के लिए मनोवैज्ञानिक पूर्वपीठिका उपस्थित कर रहे हैं, जिससे कि आधुनिक शिक्षित व्यक्ति अपनी अभिलाषाओ को बिना कुठित किए समाज की सुन्दर व्यवस्था मे लाछन न बने और उसे आगे ले चले। उनके एकाकियों मे असत्य, आदर्श, कृत्रिम व्यवहार, दिखावे तथा मिथ्याडम्बर के प्रति विद्रोह है और है नये युग, नयी अभिचेतनाओ एव स्वस्थ मान्यताओ के प्रति वैज्ञानिक मोह। वे व्यक्ति के उत्स को उसके वातावरण की गरिमा मे देखना चाहते हैं। वातावरण की गरिमा वर्ग स्वार्थहीन समाज तथा पूजीवादी नीति की दुर्गन्धि से दूर जन-जन की समान आकाक्षाओं की पूर्त्ति के लिए निर्मित राष्ट्र नीति पर निर्भर करती है। काश्यप जी के एकाकी ऐसे ही वातावरण के निर्माण की योजना उपस्थित करते हैं। इस विचारधारा को प्रकट करने मे उन्होंने बडी निर्भयता से काम लिया है।

छायावादी कवि होने के कारण युग धर्म एव युग प्रणाली की छाप इनके एकाकियो की अभिव्यजना प्रणाली पर है। अधिकाश पात्र बुद्धिवादी एव बुद्धिजीवी हैं। अत उनकी अभिव्यक्ति प्रणाली की भूमि के बौद्धिक होने के नाते भाषा प्रवाह मे साहित्यिकता एव कवित्व की पुट पाई जाती है किन्तु पात्रानुसार शब्द व्यवहार का ध्यान रखा गया है। "कवि प्रिया" "रजनीगधा", "प्रतिक्षावलि" मे उनकी कवित्व शक्तिया विशेष रूप से मुखरित हुई हैं।[1] उनके एकाकी कवित्व की नाटकीयता के प्रतीक हैं।[2]

उनके एकाकियों के चरित्र अपने मे कोलाहल पाते हैं, द्वन्द्वग्रस्त हैं। विवेक अविचार पाते हैं और चारो ओर जीवन की उमडती-घुमडती आकाक्षाओ की उल्लसित प्रतिच्छाया देखते हैं, जोउनके जीवन को एक नई धारा देती हैं। काश्यप जी ने दिखाया है कि वास्तव मे हम अयथार्थ जीवन अगो से सटे हुए हैं और वास्तविकता से दूर रह कर वास्तविक होने का दावा करते हैं। हम लोगो के जीवन मे सभ्यता के नाम पर अनेक कृत्रिमताए प्रवेश कर गई हैं। पात्रो के माध्यम से इन कृत्रिमताओ का उद्-घाटन किया गया है।

काश्यप जी की शैली मनोवैज्ञानिक है। आपने एक मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से नारी पुरुष के यौन जीवन प्रेम, व्यापार, विषमताओ और असगतियो का विश्लेषण

---

१ प्रो० काश्यप "इनमें मेरी रागात्मिका वृत्ति समाज मन के साथ अभिनय करती रही है। कवि मन विदग्ध है और उसकी सहचरी वृत्तिया कुमारी ही रह गई हैं।"

—"कविप्रिया", भू० पृष्ठ ३।

२ श्री मानन्दीलाल तिवारी, "कविप्रिया", पृष्ठ ५।

किया है। इनमें नारी के यौन जीवन का चित्रण ऐसे रहस्यमय ढग से हुआ है कि पुराने सस्कार टूटते प्रतीत होते हैं।

भारतीय जीवन और समाज के लिए ये निष्कर्ष नए हैं। आपके नारी पात्र समाज की रूढियों और पुराने नैतिक मानदडो (Standards) को तोडते हुए क्रान्ति करते हैं। "रजनीगधा" मे यौनवृत्ति का जो उद्घाटन किया गया है,[1] वह बडे साहस तथा निर्भीकता से किया गया है।[2] "स्वप्नहार" मे दो पुरुष एक स्त्री को प्रेम करते है और वह दोनो ही का समाधान करता है। उनके नारी पात्र नारी मनोविज्ञान के तत्वो पर आधारित हैं। उनके विचारों की मनोवैज्ञानिकता, उनके प्रतिभास, स्नायुदोष परक वृत्तिया, चिन्ताकुलता, विद्रोह और उन्माद आदि मनोविज्ञान तथा समाज शास्त्रीय पहलुओ पर आधारित है।

उनके कुछ पात्र उनके विचारो के मूर्तरूप हैं, कुछ नए समाज मे पाये जाने वाली नई जटिल भावना ग्रन्थियो से ग्रसित अपने मन मे अनेक दलित भावनाए, यौन अतृप्ति पर समाज के शिकजो मे कसे है। नारी के प्रेम, वासना, अतृप्ति त्याग, यौन जीवन का बडा ही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण, "स्वप्नहार, धरोहर, समाज की चिनगारी, कविप्रिया" आदि एकाकियो मे मिलता है। इनकी विषय वस्तु यथार्थ के आधार पर होने से चरित्र चित्रण से मेल खाती है। मानव जीवन के जिन अगो को उन्होंने चुना है, वे यथातथ्य उतर सके हैं। नारी पुरुष के आत्मीय भाव, विचार एव सकल्प मे वैभिन्नय है। उनकी एक विशेषता कौतूहल का कलात्मक प्रयोग है। कथानक निर्माण इस ढग से किया जाता है कि अन्त तक पहुचते-पहुचते गाठ सी खुल जाती है। सभी नाटको का अन्त एक रहस्यपूर्ण ढग से होता है।

जहा अन्य एकाकीकारो ने समाज के ऊपरी स्तर, वाह्य सघर्ष, पुराने विषय ही लिए हैं, काश्यप जी ने पात्रो के अन्तर्जगत् को फ्रायड के दृष्टिकोण से चीरकर हमारे सामने रखा है। वे कभी पुराने कथानको या घिसीपिटी सामाजिक समस्याओ से सतुष्ट नही हुए। अन्तर्दृष्टि की गहराई और यौन-जीवन के निगूढतम रहस्यो का उद्घाटन उनकी विषयगत और चरित्र चित्रण सम्बन्धी विशेषता है।

उन्होंने अपनी मौलिकता को बनाये रखने के लिए पात्रो का जीवन भाति भाति के विचारो से सश्लिष्ट किया है। कहीं आपने तीखा व्यग्य किया है, कही व्यजनात्मक एव लक्षणात्मक ढग से अपने को सतर्क रखा है, केवल विषय वस्तु के प्रवाह में

---

१ वर्तमान नारी पुरुष के मन में पड़ी उलझी गाठों को जितनी बारीकी के साथ इन्होंने खोलने का प्रयत्न किया है उतना हिन्दी का दूसरा लेखक नहीं कर सका है।

—प्रो० वसुदेव "नया युग," भूमिका

२. काश्यप जी के एकाकी नाटकों में परकीया प्रेम का ही चित्रण हुआ है जो साहित्य शास्त्र के प्रतिकूल होते हुए भी उनके नाटकों की खास बात है।" श्री लक्ष्मीमित्र, गया कालेज मैगज़ीन, १९५३, पृष्ठ २९।

अपनी मनोवैज्ञानिक परिपाटी भर बरती है। व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्वो तथा समस्याओ का समाधान आपने व्यापक ढग से किया है, किन्तु समाधान देने के सिलसिले मे काश्यप जी ने कथावस्तु के साथ-साथ पात्रो के जीवन की यथार्थता का नाश नही होने दिया है। उनका कलापक्ष पुष्ट और मौलिकता अक्षुण्ण रही है। पात्रो की दृष्टि एव आलेखन मे वे आत्मपरकता से दूर रहे हैं, यद्यपि आपका जीवन दर्शन प्रकट होता गया है।

काश्यप जी के एकाकियो की सबसे बडी विशेषता अभिनयशीलता है। बिहार मे अनेक सस्थाओ मे वे सफलतापूर्वक अभिनीत हुए हैं। इनका सविधान रगमन्चीय है। सकलन-त्रय का बडा सुचारु पालन किया गया है। समस्त पुरानी घटनाओ का उल्लेख तथा भविष्य का नियोजन ऐसे कलात्मक ढग से किया जाता है कि एक ही लम्बे दृश्य में कौतूहल और नवीनता लिए हुए एकाकी की चरम परिणति होती है। प्रतीकात्मक नाटकीय वातावरण और कवित्वमय भाषा इनके निजी गुण हैं। जिस तरह की भाषा का व्यवहार किया गया है, वह हिन्दी गद्य भाषा का आधुनिकतम रूप है। वाक्य प्राय छोटे-छोटे चलते रहते हैं। वह सरस, स्वाभाविक और बोधगम्य हैं।[१] कुछ को छोडकर काश्यप जी के सभी पात्र बुद्धिवादी एव बुद्धिजीवी है। अत उनकी अभिनय प्रणाली की भूमि के बौद्धिक होने के नाते भाषा प्रवाह में साहित्यिकता एव कवित्व की पुट पायी जाती है। तब भी पात्रानुसार शब्द व्यवहार का ध्यान रखा गया है।

३. विनोद रस्तोगी रस्तोगी जी मूलत ऐतिहासिक और सामाजिक एकाकीकार हैं। "पुरुष का पाप, पत्नी परित्याग; साम्राज्य और सोहाग; दो चाद; प्यार और प्यास, आकाश पाताल; सोहागरात, सौंदर्य का प्रायश्चित; आज मेरा विवाह है", आदि में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आज की समस्याओ पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। लेखक ने इन एकाकियो मे नारी के प्रति पुरुष के कुत्सित एव अन्यायपूर्ण व्यवहार और शोषण की भर्त्सना की है, साथ ही विभिन्न युगो मे नारी की परवशता और दीनता, विशेषत शारीरिक निर्बलता के कारण पुरुष की वासना तृप्ति का साधन बनना चित्रित किया है। "ये एकाकी नारी की मनोवृति को उत्कर्ष की ओर ले जाने तथा पुरुष के हृदय मे उसके प्रति ममता जगाने एव नारी के शौर्य, बलिदान और सद्गुणो की गौरव गाथा गाने के लिए लिखे गए हैं।[२] "पत्नी परित्याग" में लेखक की लेखनी राम के प्रति कुछ अमर्यादित हो गई हैं।[३] "आकाश पाताल" मे पुरुष के प्रति स्त्री का पाप प्रदर्शित किया गया है। इतिहास के प्रति सत्यता के साथ इनमे पुरुष की वासना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है।

सामाजिक एकाकियो में रस्तोगी जी आधुनिक जीवन के बहुत पास हैं।

---

१ प्रो० वासुदेवनन्दन प्रसाद, "नया युग" पृ० १२।

२ श्री विश्म्भरनाथ उपाध्याय "सा० सन्देश" भा० १५, अ० १२, पृष्ठ ५१३।

३ देखिए प्रो० गोपीनाथ तिवारी "सा० सन्देश" भा० १५, अक १०, पृष्ठ ४३३।

आजादी के बाद एक दृश्य नाटक में भारत के पतनोन्मुख समाज का चित्रण है। इसका उद्देश्य है पूंजीवादी शासन के स्थान पर श्रमिकों की साम्यवादी सरकार की स्थापना। जिन समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है वे ये हैं: शरणार्थी समस्या, व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार, भ्रष्ट नेतागिरि, काला बाजार, भ्रष्टाचार आदि। "पाप का पुण्य" में एक बेकार शिक्षित युवक के मनोविज्ञान का चित्रण है जो बड़ी ईमानदारी से काम करता है पर छटनी मे आकर नौकरी से पृथक कर दिया जाता है। परिवार के दुःखो से तंग आकर वह पाकेटमार बन जाता है। अब उसके लिए ईमान का कोई मूल्य नहीं है, अब पैसा ही भगवान् है। परिस्थितियां मनुष्य को कहां का कहां पहुंचा देती है, इसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन इसमें प्रस्तुत किया गया है।

"सोना और मिट्टी" में धनिकवर्ग की उस वृत्ति का चित्रण है, जिसके कारण वह निर्धन वर्ग को चोर बदमाश और बेईमान समझता है। "प्यार और पैसा" मे एक आधुनिका अपने सच्चे प्रेमी को केवल इसलिए ठुकरा देती है कि वह गरीब है। आधुनिका को कार चाहिए, नौकर चाहिए, कोठी चाहिए, नित नए फैशन के साधन चाहिए। वह दूसरे युवक को फसाती है। वह इस युवक को बड़ा आदमी समझती है, पर वास्तव मे वह भी अन्दर से खोखला है और वह भी किसी ऐसी युवती को शिकार बनाना चाहता है जो धनी बाप की इकलौती पुत्री हो। इस आधुनिका को ऐसी ही समझ कर वह प्यार जताता है पर जब उसे ज्ञात होता है कि उसके पिता का ठाट बाट दिखावटी है, वह दूसरी कुरूप किन्तु धनी लडकी से विवाह कर लेता है। आधुनिका को न पैसा मिलता है न प्यार। यह एकांकी आज की इस दोगली संस्कृति पर करारा व्यंग्य है जिसकी चोट से हम तिलमिला उठते हैं।

"लूपहोल" हमारी उस सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार है जो लड़की को दान की वस्तु समझती है। एक पत्नी की मृत्यु पर हम उतने दुखी नही होते, जितना कि हमें उसके आभूषणों पर अधिकार जमाने का ध्यान रहता है। प्रहसन के रूप मे यह एकांकी वास्तव मे होली का मजाक न होकर एक चुभता हुआ व्यंग्य ही है।

"रथ के पहिए" समस्यामूलक एकांकी है, जिसमे समस्या का हल भी दिया गया है। गृहस्थी का रथ सुख शान्ति के राजपथ पर सरलता से तभी चल सकता है जब पति पत्नी रूपी दोनो पहिए साथ आगे बढ़े। "पैसा, जनसेवा और लड़की अनाथालयो, विधवाश्रमो तथा विवाह कराने का ठेका लेने वाली तथाकथित संस्थाओ की ओट में पनपने वाले व्यभिचार तथा अनाचार को लेकर लिखा गया है। यह एक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचना है।

"पैसा पत्नी और बच्चा" में एक ऐसी तरुणी का चित्रण है, जो अपने वृद्ध धनी पति और पुरुष जाति से बदला लेने के लिए उसी पैसे, से जिससे वह कभी स्वयं खरीदी गई थी, पुरुषों को खरीद कर अपनी वासना की तृप्ति करती है। वह पुरुषों से खेलती है, उन्हें अपना दास बनाती है।

"मगलमानव और मशीन" काल्पनिक पर विज्ञान पर आधारित है। शान्ति का प्रचार ही इसका ध्येय है। हिन्दी मे यह एक मौलिक प्रयोग है। "और मुन्ना मर गया" मनोवैज्ञानिक एकाकी है। इनकमटैक्स आफिस का एक क्लर्क ईमानदार है। उसका बच्चा बीमार है। एक सेठ किसी साधारण कार्य के लिए कुछ रुपया रिश्वत देता है, पर वह इन्कार कर देता है। उसकी पत्नी उसे समझाती है कि बच्चे के इलाज के लिए तो पैसा चाहिए ही। क्लर्क रिश्वत लेने को तैयार हो जाता है, तभी अन्दर से पत्नी के रोने की आवाज आती है। वह अन्दर आ जाता है और एक क्षण बाद ही लौट कर रुपये सेठ को लौटा देता है। क्लर्क कहता है, जिसके लिए रुपये ले रहा था अब वही नही रहा। मेरा मुन्ना मर गया।

अन्य सामाजिक समस्या एकाकियो में "अन्धेरा फिसलन और पाव, कुमारी बहु, खोपडी और बम, डाक्टर इसे बचा लो" आदि उल्लेखनीय है। अतिम एकाकी मनोवैज्ञानिक भित्ती पर लिखा गया है। कथावस्तु एक ऐसे युवक की कहानी है जो अपनी असुन्दर पत्नी को अपना प्यार नही दे पाता। उसके चेतन मस्तिष्क में उसके लिए घृणा है पर अर्द्ध-चेतन मस्तिष्क मे प्यार पनप रहा है।

कुछ नए ऐतिहासिक एकाकी उल्लेखनीय हैं, जैसे "मावली विजय"। जिस विधि से शिवाजी ने मावली को जीता था, वह प्रशसनीय नही है। इतिहासकारो ने इस घटना को लेकर काफी वाद विवाद किया है। वास्तव मे एक विधवा रानी को छल से जीतना और फिर उसके दत्तक पुत्र की तथा उसके पुत्र-पुत्रियो की नृशस हत्या किसी भी दशा मे उचित नहीं है। शिवाजी के चरित्र पर यह बडा कलक है। इसकी असतयता को दूर करने का प्रयत्न है।

"कालादाग़" मे अकबर की कूटनीति का चित्रण है। असीरगढ के शासक मीरन बहादुर खा को अकबर ने अपने शिविर मे बुलाकर कैद कर लिया और जब फिर भी किले का द्वार न खुला तब रिश्वत का सहारा लिया। अकबर के चरित्र के इस कलक का चित्रण इस एकाकी मे हुआ है। "कसम कुरान की" शेरशाह ने कुरान की कसम खाकर किस प्रकार रायसेन के शासक पूरनमल को धोखा देकर किला जीता इसका चित्रण है।

रस्तोगी जी के एकाकियो मे कथानको की नवीनता और रोचकता है। "आजादी के बाद" मे एक लम्बा दृश्य रखने का मौलिक प्रयोग है। ये एकाकी रग-मचीयता के गुणो से ओत-प्रोत है। कम से कम तथा सरलता से रगमच पर उपस्थित किये जा सकने योग्य दृश्य छोटे और सरल सवाद रखे गए हैं। इनमे स्वगत कथन नही है। कथोपकथन ही इस खूबी से लिखे गए हैं कि पात्रो के मनोभाव और मुद्राएं प्रकट हो गए हैं। रगमच निर्देश पर्याप्त है। एक से अधिक दृश्य रखने के पक्ष मे वे नही है। एक ही स्थान पर एक ही समय मे घटने वाली कोई नाटकीय घटना ही उनके एकाकियो का विषय बनी है। पूर्व परिचय भी सवादो की सहायता से ही दिया

गया है। प्राय पहला सवाद कथावस्तु के मूल विचार से सम्बन्धित कथासूत्र को आगे बढ़ाने वाला है। आगे भी हर सवाद, हर वाक्य, हर शब्द सार्थक होकर इच्छित प्रभाव उत्पन्न करता है। यह सामूहिक प्रभाव रस्तोगी जी की विशेषता है। आपके एकांकियों का अन्त चरम सीमा पर हो जाता है जिससे इच्छित प्रभाव सफलता से पड़ता है।

४. गोविन्द शर्मा शर्मा जी के नौ रंगमचीय नाटक उपलब्ध हैं। पौराणिक: १ लक्ष्मण परित्याग (१९४७) २. महारथी कर्ण (१९५०), ३. जय गिरिराज (१९५३), ४ नारी का दान (१९५४), राजनीतिक. "पाच मार्च की शाम (१९४८), पागलपन (१९५१), टीपू का अन्त (१९४९); सामाजिक उत्तरदायी कौन ?(१९५१) तथा सूर का अवसान (१९५२)।

"लक्ष्मण परित्याग" लेखक की आरम्भिक कृति होते हुए भी रगमच की अभिनयशीलता से पूर्णत विभूषित है। कथावस्तु पौराणिक होते हुए भी कल्पना के सम्मिश्रण से नाटकीयता आ गई है। भाषा शुद्ध सस्कृतनिष्ठ, प्राजल, सलाप, सजीव व मनोवैज्ञानिक हैं। राम का जीवन एक अलौकिक आदर्श का जीवन है। कर्त्तव्य-निष्ठ भाई और आदर्शपति होते हुए भी वह सम्राट् राम हैं, जो प्रजा के सुख से सुखी तथा दुख से दुखी होते हैं।

"टीपू का अन्त" ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित है। श्रीरगपट्टन के तोरण द्वार पर किस प्रकार उस वीर का अन्त होता है, यही कथावस्तु का आधार है। "महारथी कर्ण" पौराणिक सघर्ष-प्रधान एकांकी है। मनुष्य केवल परिस्थितियों का दास है। विश्व मे वही शूरवीर है, वही बलवान है और विजेता है जिसे परि-स्थितिया और समय का बल प्राप्त है। इसी मत का प्रतिपादन करने के लिए प्रारभ मे ही कर्ण इसको स्वीकार करते हुए कहता है कि यह सब अर्जुन को प्राप्त था और यही उसकी सफलता का रहस्य है। इसमे कौतूहल की प्रधानता है। एक पौराणिक गाथा के चित्र को नवीन चौखटे मे प्रस्तुत कर उसके सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है। "उत्तरदायी कौन ?" एक सामाजिक समस्यामूलक एकांकी है, जिसका विषय दहेज की समस्या है। "पागलपन" एक राजनीति समस्यामूलक एकांकी है जिसमे स्वतत्र भारत में भ्रष्टाचार की समस्या का विवेचन किया गया है।

"सूर का अवसान" एक साहित्यिक एकांकी है, जो आज तक की एकांकी परम्परा से भिन्न अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसमे लेखक ने सूर के अव-सान को अपनी कल्पना-जनित कहानी मे सम्मिश्रित कर उसको अलौकिक स्थान पर बैठा दिया है। यह लेखक की सर्वोत्कृष्ट कृति है। 'जय गिरिराज" मे पौराणिक गाथा को नवीन रूप प्रदान किया गया है। गोवर्धन पर्वत की पूजा जैसे पुराने विषय को वर्तमान श्रमदान से सम्बन्धित कर नाटककार ने अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का ही परि-चय ही नहीं दिया वरन् राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित समस्या को पौराणिक गाथा मे हल

करके दिखा दिया कि बडे से बडा गभीरतम कार्य श्रमदान से सभव है। कृष्ण के श्रमदान का आदर्श आज भी राष्ट्रीय सरकार के मन्त्रियो के लिए चुनौती है, क्योंकि इन्होंने केवल सुझाव ही नही दिये, न केवल उद्घाटन ही किया वरन् सबसे कठिन कार्य को स्वय अपने हाथों से सम्पन्न करने का आदर्श रखा है। विषय का प्रतिपादन नवीन रूप मे हुआ है।

"नारी का दान" मे कल्पना से महाकवि तुलसी के जीवन के परिवर्तन-विन्दु को नाटकीय गौरव प्रदान किया गया है। तुलसी की जीवनी के खोजकर्त्ताओ के समक्ष एक नई समस्या खडी कर दी है। क्या तुलसी ने रत्नावली द्वारा प्रेरित होने से पूर्व भी कुछ रचनाए लिखी थी। यदि रचनाए की तो क्या स्वय उनको नष्ट कर दिया अथवा काल के ग्रास ने ? यदि तुलसी ने स्वय नष्ट किया तो क्या अन्तर्साक्ष्य नितान्त मौन है ? यह एकाकी कौतूहल मिश्रित है और अन्त सघर्ष प्रधान है। रत्नावली का अन्तर्द्वन्द्व मार्मिक है।

नाटककार गोविन्द शर्मा स्वय एक कुशल अभिनेता और निर्देशक हैं। आपके सभी एकांकी अभिनेयता के गुणो से भरपूर हैं। रगमच की दृष्टि से ही लिखे गए और अधिकतर उनका रगमच पर सफल अभिनय भी हो चुका है। रंगमचीय सकेतो का आप विशेष ध्यान रखते हैं। सूक्ष्म पर निश्चित सकेत देकर निर्देशक के लिए सहायता प्रदान की है। अधिकाश एकांकी एक ही दृश्य में पूर्ण हो जाते हैं। पात्रो के कथोपकथन की भाषा सजीव एव पात्रो के अनुसार उनके चरित्रों को प्रकट करने वाली हैं। संवाद रोचक एव स्वाभाविक हैं।

आपके एकाकियो मे कुछ न कुछ समस्या और नवीन दृष्टिकोण रहता है। उनके एकाकियो मे कला यथार्थवादिनी होते हुए भी आदर्शोन्मुख है। समाज की कुरीतियो एव बुराइयो के प्रति लेखक की दृष्टि सदैव जागरूक रही है। अपने प्रत्येक एकांकी मे आपने सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण आज की सामाजिक दशा को दृष्टि में रखते हुए किया है। "लक्ष्मण परित्याग" से लेकर 'नारी का दान" तक प्रत्येक एकाकी मे आपकी समाज सुधार सम्बन्धी मान्यताए यही रही हैं। "रामराज्य" आपकी सामाजिक कल्पना का आदर्श है। अन्ध-विश्वासों पर आपने सर्वदा प्रहार किया है। आपके नाटको की शैली पर इव्सन और गाल्सवर्दी का प्रभाव है।

५ श्री देवीलाल सामर श्री देवीलाल सामर स्वय उच्चकोटि के कलाकार, नाट्यकार, अभिनेता और नायक हैं। नाटकों के क्षेत्र मे आपने उल्लेखनीय कार्य किया है। हिन्दी साहित्य मे अभिनेय नाटको की न्यूनता, दृश्यो की अधिकता, पात्रों की बहुलता और कथानको की जटिलता के कारण जो कठिनाइया उत्पन्न हुई, उनसे हिन्दी एकाकी का उद्धार करने वालो में सामरजी का कार्य सराहनीय है।

सामरजी के नाट्य साहित्य की विशेषता यह है कि हिन्दी में प्रथम बार अभिनय योग्य एकाकियो का आपने प्रचलन किया। आपने अनुभव किया कि जिन

नाटको का रंगमच पर जीवन नही हो सकता, उनकी अपील केवल वाचनालयो तक ही सीमित रह सकती है। रगमच विहीन नाटक के द्वारा सास्कृतिक कलाओ का पुनरुत्थान सभव नही है। अत रगमच के अनुभव लेकर अभिनय और नृत्य कलाओ को दृष्टि मे रखते हुए आपने अभिनेय एकाकी नाटको की सृष्टि की है, जिनमे गतिमान कथानक और जीवित कथोपकथन का निजी सौंदर्य है। आपका प्रत्येक एकाकी रगमच पर सफलतापूर्वक अभिनय हो चुका है। पिछले वर्षो से स्कूल, कालेजो के एमेचर रगमचो पर सामरजी के एकाकी बडे लोकप्रिय रहे हैं। उन्होंने हिन्दी अभिनेय नाटको को आधुनिक नाट्यकला से वेष्ठित किया है तथा आधुनिक विचारो एव समस्याओ का आधुनिक ढग से प्रतिपादन किया है। इनमे अपूर्व नाटकीयता होती है। नाट्यतत्र तथा अभिनय की कठिनाइयो को दृष्टि मे रखकर वालको की रुचि तथा उनके मानसिक और भावात्मक विकास का ध्यान रखते हुए पाठको और दर्शको की उत्कठा को उत्तरोत्तर बढाकर उसे चरम सीमा तक पहुचाने का पूरा प्रयत्न है।

सामरजी के नाटको को कई वर्गो मे विभक्त कर सकते है

१. सामाजिक व्यंग्यात्मक १ वल्लभ २ तवायफ के घर वगावत ३ मृत्यु के उपरान्त ४ उपन्यास का परिच्छेद ५ अमीरो की वस्ती ६ कलजुग ७ परित्यक्ता ८ अछूत और ९ स्वतान्त्र्य दिवस।

२ आध्यात्मिक जैसे १ आत्मा की खोज २ ईश्वर की खोज।

३. ऐतिहासिक आदर्शवादी १ वीर वल्लू २ ओ नीला घोडा रा रामवार ३ जीवनदान

४. मनोवैज्ञानिक समस्या प्रधान जैसे समस्या वालक।

५. काल्पनिक तथा वैज्ञानिक जैसे "चन्द्रलोक" इत्यादि

सामाजिक व्यग्यात्मक नाटको मे आपने आश्रयहीन तिरस्कृत विधवाओ, समाज मे उनके प्रति दुर्व्यवहार, छुआछूत, वेश्या, पुरानी जीर्ण-शीर्ण परम्पराए, रूढिवादिता तथा परिवारो मे होने वाले छोटे-छोटे अत्याचारो की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इस वर्ग मे आपकी १ परित्यक्ता, २ तवायफ के घर वग़ावत, ३ मृत्यु के उपरात ४ अछूत इत्यादि हैं।

"परित्यक्ता" मे विधवा की समस्या और सामाजिक रूढियो, भ्रमात्मक धारणाओ, सकुचितता मे फसे हुए ग्रामीणो का एक चित्र खीचा है। सारा ग्राम एक गरीब विधवा के विरुद्ध हो उठता है, वह उपेक्षिता और तिरस्कृत होकर जीवन व्यतीत करती है। अपनी एकमात्र पुत्री के लिए वह जीना चाहती है किन्तु रूढ़िवादी समाज उसके विरुद्ध हो जाता। गाव मे पानी भरने जाती है तो लोग ढेले मारते है। उसकी छाया से वच्चा वीमार हुआ समझा जाता है। अन्त मे विधवा के निःस्वार्थ वात्सल्य का मर्म खुलता है और उसका वलिदान प्रकट होता है। इस नाटक मे अन्धविश्वासो, जादू टोना, रूढिवादिता और हिन्दू समाज मे विधवा की दुरावस्था की एक मार्मिक झाकी

दी गई है। समाज को नए आदर्शो के अनुसार बदलना चाहिए, पापी नही, पाप घृणा के योग्य है, ये तत्व नाटक मे प्रकट किये गये हैं।

"मृत्यु के उपरान्त" मे बाहरी दिखावा, झूठा प्रेम, मिथ्या ज्ञान, बनावटी आदर, रुपये का बोलबाला और दुनियादारी का मिथ्याचार चित्रित किया गया है। आज के युग तथा समाज का यह बोलता हुआ सजीव चित्र है। इसमें सामरजी ने व्यग्यमयी यथार्थवादी शैली का प्रयोग किया है। "अछूत" समाज की कुरीतियो का एक विशद चित्र है। सामरजी समाज के तीखे आलोचक हैं। अपने सामाजिक नाटको मे आपने आजकल की सकुचिता, झूठा दिखावा, कल्पना का वातावरण और मिथ्यावाद पर प्रहार किये हैं। वे समाज के उन गले-सडे अशो की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते है, जिन्हे प्राय हम नही देखते। छोटे बडे पात्र जो आज भी पुराने युग की गन्दगी अपने अन्दर समेटे हुए है, उन्ही मे से कुछ को लेकर वे निर्मम मूर्तिकार की तरह सब कुछ हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। वे जीवन और समाज की वास्तविकता छोड अपनी आकाशगामी कल्पना के पीछे नही भागे हैं। जीवन के दुख, अश्रु, सताप इनमे मुखरित हो उठे हैं।

अपने आध्यात्मिक नाटको मे सामरजी का गम्भीर विचारशील दार्शनिक व्यक्तित्व मुखरित हुआ है। बौद्धिक दृष्टिकोण से वे दर्शन की समस्याओ मे उलझे रहे हैं। "ईश्वर की खोज" और "आत्मा की खोज" आदि नाटको मे वे जटिल तत्वो के विश्लेषण मे अटके रहे हैं। इनमे प्रतीको की सहायता से मूल अभिप्राय को व्यक्त किया गया है। मन्दिर में अनेक यात्री आते हैं, जो परम्परावादी, भावनावादी एव ईश्वरवादी, अनीश्वरवादी के प्रतीक हैं। "ईश्वर की खोज" का भवानी पीठ का आचार्य ससार के पूर्ण सामजस्य प्राप्त मानव का प्रतीक है। यह गम्भीर विवेचना प्रधान नाटक है।

नाट्यकार सामर ने सामयिक समस्याओ को भी अपने नाटको का विषय बनाया है। भारत के विभाजन पश्चात् जो विषम स्थिति उत्पन्न हुई, रक्तपात, बलात्कार, मौत, कत्ल और खूरेजी का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण अपने 'बलिदान" नाटक मे किया है। "बापू" नाटक मे महात्मा गाधी जी की लोमहर्षक हत्या से उत्पन्न हलचल को अभिव्यक्त किया गया है। "मृत्यु के उपरान्त" मे मरने के बाद सगे सम्बधियो, मित्रो तथा समाज का रुख कैसे बदल जाता है, इसका चित्रण किया गया है।

ऐतिहासिक क्षेत्र मे सामरजी के "वीर बल्लू" तथा "नीला घोडारा असवार' नाटको मे प्राचीन राजपूती शौर्य, अपूर्व बलिदान मातृभूमि प्रेम, स्वातन्त्र्य प्रेम और दान आदि का चित्रण किया है। मारवाड के निवासी होने के कारण आपने राजपूतो का जीवन, स्वाभिमान, वश की मर्यादा इत्यादि का चित्रण कुशलता से किया है।

मनोवैज्ञानिक नाटको मे आपका "समस्या बालक" उल्लेखनीय रचना है। माता पिता के दुर्व्यवहार, मारपीट, निर्ममता से किस प्रकार बालको मे जटिल मानसिक ग्रन्थिया उत्पन्न हो जाती हैं, इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण आपने किया हैं।

इस नाटक के मास्टर तो जैसे वे स्वय ही हैं। आपके नाट्य साहित्य का निर्माण रग-मच की आवश्यकताओ के अनुसार होने के कारण इनमे कथानक या प्रगति व्यजना मे कही भी शिथिलता नही आई है।

उच्च कोटि का रगमचीय नाट्य साहित्य निर्माण करने के अतिरिक्त सामरजी अभिनय, कला और नाट्य लेखन के नवीनतम प्रयोगो मे सलग्न हैं। वे स्वय राजस्थान के सर्वोच्च कलाकार, नृत्यकार एव अभिनेता है और उनका समस्त जीवन ही लोक-नृत्यो, लोक नाट्यो और लोक गीतो के पुनरुत्थान, प्रचार और विकास मे लगा हुआ है। आपने जयपुर (राजस्थान) मे 'भारतीय लोक कला मडल' नामक एक सस्था को जन्म दिया है, जिसका ध्येय आज के मनोरजन के कुप्रभाव को बचा कर देश मे कला-पूर्ण राजस्थानी नृत्य नाट्यो का प्रचार करना है। आपने लोक नृत्य नाट्य "गौरी" और "रामधारी" का उद्धार किया है, और लोक नाट्यो के प्रदर्शन के हेतु भिन्न भिन्न नगरो मे जा रहे हैं।

अपने नवीनतम एकाकियो मे ही नही, पूर्णाङ्की नाटको मे भी आप क्रांति-कारी परिवर्तन कर रहे हैं। उनके दो नाटक "दलित कन्या" तथा "महान बलिदान" पूर्णाङ्की नाटको के नवीनतम प्रयोग हैं। एक ही घटना स्थल पर एक विशद कथानक के रूप मे जीवन की समस्त झाकिया उपस्थित करना कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इन नाटको मे चरित्र चित्रण की परिपक्वता के साथ ही नाटक के समस्त तत्त्वो का सुन्दर ढग से निभाव हुआ है। ये नाटक अभिनीत हो चुके हैं।

६. श्री चन्द्रकिशोर जैन · श्री चन्द्रकिशोर जैन बगला नाटको मे प्रभावित रहे हैं[1]। आपकी प्रथम रचना भयकर भूत अभिनय के दृष्टिकोण से लिखी गई थी। विकसित होकर यही आपकी एक विशेषता बन गई है। बगला से "माटीरघर" का हिन्दी में "प्यास" नाम से अनुवाद किया था, जो रगमच पर पूर्ण सफल रहा था।[2] "सिराजुद्दौला" क्रातिकारी चीज थी, जिसके नाटकीय कौशल और सवादो की तुलना हम आगा हश्र काश्मीरी के नाटको से कर सकते हैं। यह जब्त कर लिया गया था।[3] राजा राधिकारमण प्रसादसिंह के "राम रहीम" उपन्यास को नाटकीय रूप देकर आपने अपनी नाट्यकला मे नवीन परीक्षण किया था।[4] "नवाबी के अन्तिम दिन" तथा बगाल से अनूदित "ककावती घाट" भावपूर्ण रचनाएं हैं।[5] दोनो अभिनय की दृष्टि से अत्यन्त सफल हैं। रेडियो से प्रभावित होकर अग्रेजी टैकनीक पर "रहनुमा" लिखा,

---

१. श्री चन्द्रकिशोर जैन "एकांकिका" द्वार पूजा, पृ० घ।
२. श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर "वन्दनवार" पृ० ठ। (भूमिका)।
३. वही।
४ वही।
५. वही।

जो नवम्बर १९४२ मे लखनऊ रेडियो से प्रसारित हुआ था। तत्पश्चात "नीद एवं रानी" रेडियो एकाकी लखनऊ एव दिल्ली से प्रसारित हुए। "विषकन्या" भारत के विभिन्न रेडियो स्टेशनो से प्रसारित श्रेष्ठ एकाकी है।[1] नारी की विवशता और अजेय प्रतिहिंसा का उसमे अद्भुत चित्रण हुआ है।

प्रकाशन की दृष्टि से आपके एकाकियो का क्रम इस प्रकार है। १ नेपोलियन की विजय का रहस्य (१९४२) २ विषकन्या (१९४३) ३ हीरे का टुकडा (१९४३) ४ पहली भेंट (१९४३) ५ कानून (१९४३) ६ इसाफ (१९४४) ७ अस्पताल का कमरा (१९४४) ८ भगवान बुद्ध की चरण धूलि (१९४६) ९ रावी (१९४६) १० भूत की शादी (१९४६) ११ सिराज (१९४६) १२ बसेरा (१९४८) १३ विद्रोही (१९४९)। इन एकाकियो मे "नैपोलियन की विजय का रहस्य" सबसे उज्वज्ल, स्पष्ट एव भव्य है, "कानून" सबसे गहरा, समस्यामूलक और गम्भीर है। "विषकन्या" मे सिद्धात और वास्तविकता, आदर्श तथा यथार्थ, कोरी नैतिकता और प्रेम के सघर्ष तथा वासना की दलित अनुभूतियो का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। इस पर प्रसाद के "स्कन्धगुप्त" भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा" तथा बच्चन की कृतियो की स्पष्ट छाया है। "हीरे का टुकडा" मे मीरखा भारतीय मूल चरित्र का प्रतिनिधि होकर हमारे सामने आता है। अपील की दृष्टि से नाट्यकार को इसमें सबसे अधिक सफलता मिली है। "इसाफ" (प्रहसन) स्त्री पुरुष की अधिकारो के प्रति प्रतिद्वन्द्वता को चित्रित करता है। जिस नारी को उपेक्षित कर मनुष्य त्याग देता है, वह अपने प्रेम के कारण पति के लिए महान से महान त्याग भी कर सकती है, और नवीन आकर्षण घर की बरबादी भी कर सकता है। यह तत्व मनोवैज्ञानिक ढग से "अस्पताल का कमरा" मे चित्रित किया गया है। "पहली भेंट" मे प्रेम तथा वैभव के मध्य सघर्ष, अतृप्त आकाक्षा की पूर्ति के लिए प्रतिशोध और उत्सर्ग के रूप मे दिखाया गया है। "कानून" मे अपराधी की समस्या का चित्रण और हमारे सामाजिक विधान पर एक तीखा व्यग्य है। "विद्रोही" सन् १९४२ की जन क्राति की पृष्ठभूमि पर एक क्रातिकारी का चित्र है।

चन्द्रकिशोर जैन न तो जीवन के यथार्थवादी चित्रण मे ही विश्वास रखते थे, और न वे उसके चारण ही थे। वे जीवन के व्याख्याता थे और कुछ इस ढग पर व्याख्या करते थे कि दर्शक हृदय को स्पन्दित कर उनकी उदात्त भावनाओं को जाग्रत करे, भले ही उन्होंने राजनीतिज्ञ की भाति आन्दोलन न किया हो या प्रचारक की भाति धुआधार न उडाई हो। उन्होंने अपनी निर्माण साधना मे न तो मनुष्यो के

---

१ "मेरा विश्वास है कि हिन्दी एकाकी के विशाल भण्डार से यदि दस श्रेष्ठ नाटक चुनने हों तो "विषकन्या" को उनमें स्थान देना होगा।"—श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, "एकाकिनी" की भूमिका।

मुह पर देवताओ के नकली चेहरे लगाने का प्रयास किया है, न शैतान के पथ का ही पथिक बनाया है, किन्तु मनुष्य को मनुष्यता की उच्चतम सीमा पर अधिष्ठित करने का सफल प्रयत्न किया है। ये एकाकी समय समय पर रेडियो स्टेशनो से प्रसारित हुए और जनता ने इन्हें पसन्द किया है। रगमच पर अभिनय की दृष्टि से भी ये सफल हैं। सवादो तथा चरित्र चित्रण मे मनोवैज्ञानिक गहराई बनाये रखने का ध्यान रखा गया है। परिस्थितियो के धरातल को भी सर्वत्र ही पारसीपन से बचाकर सस्कृति की स्वाभाविकता से समतल रखने की चेष्टा की है। नाट्यकार एक एक शब्द के प्रयोग के लिए सतर्क रहा है।

७. श्री प्रेम नारायण टंडन · प्रेम नारायण टडन के एकाकी भावयुक्त सकेतात्मक पद्धति पर विनिर्मित हुए है, जिनमे मनोरजकता के साथ गद्य काव्य का सा आनन्द आता है। अपने सामाजिक एकाकियो मे आपका लक्ष्य आदर्शवाद है। एकाकियो मे आपकी सामाजिक आलोचनाए निम्न विषयो पर हैं। म्यूनिसपेलिटियों मे चुनाव सम्बन्धी भ्रष्टाचार, बेईमानी तथा मिथ्या प्रदर्शन की भावना साहित्य क्षेत्र मे फैली हुई साहित्यिको की निर्धनता, बेबसी, पारिवारिक चिन्ताए, धनपतियो का नैतिक पतन, खोखलापन, उपदेशको का खोखला आदर्शवाद, सार्वजनिक नेताओ के अनुभवहीन व्याख्यान, मिथ्या पीडा का प्रदर्शन, विदेशी वेशभूषा, रहन-सहन का मिथ्या दभ, आपके एकाकियो मे इन मूल समस्याओ के साथ छोटी-छोटी अनेक स्थूल समस्याए साकेतिक ढग से उठाई गई हैं और उनका उचित सुलझाव भी उपस्थित किया गया है।

टडन जी का दृष्टिकोण समाज सुधार की ओर है किन्तु, राष्ट्रीय पुन निर्माण के लिए भी आपने सकेत किये है। "गाधार पतन, सकल्प, माता" आदि एकाकियो की मूल भावना स्वदेश प्रेम है। "प्रेमी" मे आपने सैक्स की गुत्थिया सुलझाने का प्रयत्न किया है, यद्यपि उनमे आप रुचि न ले सके हैं। आपके व्यक्तिगत जीवन से सबधित तीन नाटक हैं। "प्रेरणा, बचपन के साथी और अधूरा लेख।" "अधूरा लेख" मे उठाये गये लेखक के पारिवारिक जीवन के प्रश्न का सम्बन्ध तो मध्यम वर्ग के अधिकाश साहित्यकारो के जीवन से जोडा जा सकता है। "प्रेरणा" मे जिस आन्तरिक सघर्ष का कोलाहल चित्रण है उसमें लेखक का व्यक्तित्व कुछ अधिक स्पष्ट हो गया है। "रोगी के बच्चे" शीर्षक एकाकी मे साधनहीन लेखक के अबोध बालको की विवशता और तुष्टि का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। धनियो के बालको का अपव्यय देखकर खाने-पीने की मामूली चीजो के लिए उनका ललचाना, पिता को साधनहीनता का ध्यान आते ही मिठाई, बर्फ जैसी चीजो के दोष बताकर उनके प्रति अनिच्छा प्रकट करना और अन्त मे सबसे छिपाकर राम से रुपए देने की प्रार्थना करने का निश्चय करना आदि का मार्मिक चित्रण इस एकाकी मे है। आपके नाटको में चित्रित पात्रो की समस्याए मध्यवर्ग के सुशिक्षित सार्वजनिक जीवन मे भाग लेने वाले वर्ग की समस्याएं

हैं जैसे कीर्ति और प्रतिष्ठा का अर्जन तथा सरक्षण, कन्वेंसिंग, सार्वजनिक महत्व, प्रतिष्ठा (चाहे वह नैतिकता का बलिदान करके ही क्यो न हो) बचपन का साथी, रोमास मे निराशा प्रेमी, ऐश्वय की लालसा, प्रेरणा, लेखको का दिखावटी आदर्शवाद आदि "अधूरा लेख" समाज मे छोटे और बडे व्यक्तियो के बच्चो के मनोभाव, सम्पादक के जीवन का असतोष, स्त्री पुरुष प्रवृत्ति के गुप्त भेद, कुटिलता, धोखा, पूजीवादियो की दुश्चरित्रता, समाज के आर्थिक विभाजन की विषमता चित्रित करता है। टडन जी ने ऐतिहासिक विषयो मे भी रुचि प्रदर्शित की है। आपका "गाधार पतन" राष्ट्रीयता, देश प्रेम, स्वदेशानुराग तथा भारतीय गौरव की भावनाओ से परिपूर्ण है। "माता" मे हूणो की पाशविक क्रूरता तथा राष्ट्रवादी युवक सतीश का बलिदान एक स्वर्ण-रेख है। "दड" मे ईसा के मुख से भारतीय सस्कृति की उच्चता एव भव्यता दिखलाई गई है। "कर्मपथ" एक मार्मिक गीति नाट्य है, जो शैक्सपियर की रचना पद्धति से प्रभावित है। "श्रमदान" और "उपहार" आपकी नवीनतम रचनाए हैं।

टडन जी की टैकनीक पर अग्रेजी पद्धति का विशेष प्रभाव पडा है। "माता" (१९४०), जे० ए० फर्गुसन तथा 'प्रेमी" (१९४१) एस० ब्रिगहाउस के एकाकियो के स्वतन्त्र अनुवाद हैं। भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए दोनो पात्र पात्रियो के नाम, स्थान तथा स्थितियो मे कुशलता से परिवर्तन कर दिया गया है।[1]

कथानक की न्यूनता के कारण अभिनयोचित क्रियाशीलता का प्राय इनके एकाकियो मे अभाव है। इस त्रुटि को नाटककार ने भी स्वीकार किया है।[2] तथापि पात्रो की वर्गगत विशेषताओ के सम्बन्ध मे किए गये सकेत रोचक हैं। आप बुद्धिवादी विचारक है। अत आपके पात्र गभीर तर्क व सिद्धान्तो मे उलझे रहते हैं। सार्वजनिक कार्यों मे भी आदर्शवादिता पर जम जाते हैं। जीवन मे एक ओर सरलता का चित्रण है, तो दूसरी ओर गूढ मनोवैज्ञानिक गहराइयो को चित्रित किया है। यहा सामाजिक, पारिवारिक एव राजनीतिक जीवन की बुद्धि परक तर्कसम्मत आलोचना मिलती है।

टैकनीक दृष्टि की से ये एकाकी शिथिल हैं, अभिनय की ओर नाट्यकार की रुचि नही है, प्रारम्भ में बडी हलकी गति से अग्रसर होते हैं। सघर्ष देर मे आता है। मध्य मे कौतूहल कम रहता है। रगसूचनाए व्यापक, विस्तृत और अपने में पूर्ण हैं। रगसूचनाओ मे उनके पात्रो के स्केच दो-दो तीन-तीन लकीरो मे खिंचे हुए हैं, परन्तु एकदम स्पष्ट हैं। "गाधार पतन" तथा "कर्मपथ" गीति नाट्य अग्रेजी की पद्धति पर विरचित काव्य के माधुर्य से सज्जित रचनाए हैं।

८ प्रो० महेन्द्र भटनागर महेन्द्र भटनागर का आतकवादी रूप लिए हुए सर्वप्रथम "विस्फोट" शीर्षक एक कहानीनुमा एकाकी प्रकाशित हुआ था। इसके बाद

---

१ देखिए "प्रेरणा" निवेदन, पृ० ४।

२ वही, पृ० ४।

"चाय" शीर्षक एक छोटा सा व्यग्यात्मक एकाकी छपा है। उपर्युक्त दोनो एकाकी १९४५-४६ के लगभग लिखे गये थे। फिर "मालवाना जय" १९४६ मे विक्रम पर ऐतिहासिक एकाकी छपा। इसी का विकसित रूप "अवन्तिका" के मई १९५३ के अक मे "गण नायक विक्रम" के नाम से प्रकाशित हुआ था। इस एकाकी मे विक्रम सवत् और मालव सवत् को एक बताने का प्रमुख उद्देश्य है। लेखक विक्रम को गण-नायक मानते हैं। 'कविराज' भोज (१९५४) मे भोज के मानवीय रूप का चित्रण है, साहित्य और साहित्यकार भोज उसमे चित्रित किया गया है। "जीमूतवाहन" (१९५४) नितान्त मौलिक न होकर हर्ष रचित "नागानन्द नाटकम्" का सक्षिप्त एव यत्किंचित परिवर्तित रूप है। इन रचनाओ के अतिरिक्त इन्होने प्राचीन सस्कृत नाटको के एकाकी रूपान्तर भी किए हैं, जो आधुनिक रुचि के अनुकूल हैं, जैसे श्री हर्षवर्द्धन देव के "नागानद नाटकम्", का रूपान्तर और "हितोपदेश" की चित्रग्रीव कबूतर और हिरण्यक चूहे की प्रसिद्ध कहानी का रेडियो रूपान्तर आदि।

श्री महेन्द्र भटनागर की रुचि ऐतिहासिक एकांकी की ओर विशेष रूप से रही है। इन एकाकियो मे जहा नाटकीय तत्व का सफल निर्वाह हुआ है, वहा ऐतिहासिक अनुसधान की ओर भी नाटककार का निरन्तर ध्यान रहा है। "मालवाना जय" में जहा गण नायक विक्रम के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है, वहा मालव सवत् तथा विक्रम सवत् के चले आए हुए विवादों पर भी तर्कसगत ढग से लिखा गया है, जो एकाकी की वस्तु मे कोई व्यवधान उपस्थित नही करता। रूपान्तर करते समय श्री महेन्द्र का ध्यान दो तत्वो की ओर विशेष रूप से रहता है। प्रथम तो यह कि मूल रचना की आत्मा सुरक्षित रहे तथा दूसरे उसमे अलौकिकता का समावेश कदापि न हो। उदाहरणार्थ "जीमूतवाहन" हर्षवर्द्धन द्वारा लिखित "नागानन्द नाटकम्", का सक्षिप्त किन्तु यत्किचित परिवर्तित रूप है। श्री हर्ष ने इस नाटक के कथानक का निर्माण प्राचीन वृहत्कथा तथा बौद्धजातको के आधार पर किया है। भारतीय नाट्य परम्परा के अनुसार यह नाटक भी सुखान्त है, परन्तु लेखक ने असाधारण तथा लौकिक तत्वो से बचने के लिए उसे दुखान्त ही रखा है, जो घटनाओ का एक स्वाभाविक परिणाम है। मूल नाटक में पाच अक हैं और पात्रो की सख्या २० है। प्रस्तुत एकाकी मे न छोड़े जाने वाले केवल १२ पात्रो का समावेश किया गया है तथा नाटक के मध्य का कथानक छोड दिया गया है। सवादो, परिस्थितियो तथा घटनाओ के क्रम मे लेखक ने परिवर्तन अवश्य किए है, पर सर्वत्र मूल नाटक की आत्मा को बनाए रखा है। पात्रो की चारित्रिक विशेषताएं तथा नाटक का उद्देश्य ज्यो का त्यो है। प्रस्तुत एकाकी मे विद्याधर, नाग, तथा राक्षस जाति के व्यक्तियो की कथा है। परोपकार के लिए जीमूतवाहन स्वेच्छा से अपनी देह गरुड राक्षस को भोजनार्थ अर्पित कर देता है। इस प्रकार यह एकाकी वीर और करुण रस का एक मिश्रित रूप है यद्यपि प्रधानता करुण रस की है। उनके "गणनायक विक्रम" और "कवि-

राज भोज" लोकप्रिय रचनाए हैं। निष्कर्ष यह कि महेन्द्र भटनागर हिन्दी एकाकी साहित्य को अपनी उद्देश्यपूर्ण, नाटकीय तत्वों से युक्त रचनाओ द्वारा समृद्ध कर रहे हैं।

९. **प्रो० जयनाथ नलिन** श्री नलिन ने पाश्चात्य एकाकीकारो मे जे० ओ० फ्रासिस के नाटकीय तत्वो को हिन्दी मे लाने का प्रयत्न किया है। मीठा व्यग्य तथा उसके लिए परिस्थिति सृजन की सामर्थ्य। आपके नाटको का प्राण व्यग्य है और एक तीक्ष्ण साधन भी। जे० एम० सिंज आपका दूसरा प्रिय आदर्श है। आपके एकाकियो में है सूक्ष्म अनुभूति, यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, समाज के वस्तुवाद तथा विद्रूपताओ के प्रति तीखा व्यग्य। नलिन की कला का उद्देश्य है, मानव। उसकी कला का सहचर है, मानव और उसकी मात्रा का छोर भी है, मानव। वे मानववादी एकाकीकार हैं। हाड मास के मानव से परे भी कुछ है, ऐसी आस्था नलिन की नही। सभी मानवो को वास्तविक अर्थों मे मानव बनाने और बनाये रखने के लिए वे लिखते हैं। यही उद्देश्य उनके साहित्य के समस्त माध्यमो में उनकी कला का प्रकाश बन चुका है। इस उद्देश्य का साधन व्यग्य है। कहानी की अपेक्षा एकाकी मे यह साधन अधिक सफल और सशक्त बन कर आया है। सच्ची कलात्मक अभिव्यक्ति मे जीवन का विकास, प्राणो का उल्लास, मानव के तन मन जीवन की स्वाधीन व्याख्या पूर्ण परिपुष्टि के लिए प्रेरणाए रहनी चाहिए। यह प्रेरणा नलिन के एकाकियो में है। समाज की विद्रूपताओ पर एक मीठा व्यग्य छोडकर नलिन आगे बढ जाते हैं। मानव के विकास मे सतत प्रयत्नशील। इस व्यग्य के अन्तर मे अपेक्षापूर्ण तटस्थ अश नही, एक रागात्मक सवेदना की शीतल धारा बहती है। अनेक स्थानो पर मानवता के बहते घावो पर मरहम बनने के लिए यह रागात्मकता व्यग्य का आवरण फाड स्वाधीन अन्तर्वृत्ति के रूप में प्रकट होती है।

श्री नलिन के निम्न एकाकी प्रकाशित हो चुके है

(१) **प्रहसन** आपका एकाकी साहित्य १ लोमडियो का शिकार (१९३८) से प्रारम्भ होता है। तत्पश्चात् २ लखनवी बहादुर (१९३९) ३ नवाब साहब का इन्साफ ४ बटेरों के शौकीन (१९२५) ५ शतरज के खिलाड़ी १९४० मे लिखे गये। ६ लस्सी का गिलास (१९५२) ७ बड़े आदमी (१९५३) भलो की दीनता के बाद की रचनाए हैं। 'नवाबी सनक' दिसम्बर १९४९ मे आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित हुआ था और यह उस वर्ष का सर्वश्रेष्ठ रेडियो-रूपक माना गया था।

(२) **प्रगतिशील राष्ट्रीय चेतना** इस वर्ग मे आपके गभीर राष्ट्रवादी एकाकी आते हैं। जैसे १ परमात्मा का पश्चाताप २ युद्ध के बाद ३ विद्रोही की गिरफ्तारी (१९४६) ४ देश की मिट्टी (१९४७) लाल दिन (१९४८)।

(३) **रेडियो एकांकी** १ फिलोस्फर (१९५०), २. मेहमान (१९५०), ३ कन्वेंसिग (१९५०) ४ सागर तट पर (१९५०) ५ फिल्मी कहानी (१९५०)

६ डिमोक्रॅसी (१९५०) ७ चित्त भी मेरी पट्ट भी मेरी (१९५०) ८. मार मार कर हकीम (मौलियर का अनुवाद) (१९५०) ९ बाबू उधारचन्द (१९५३), १०. लाटरी (१९५४) ११. अभिशाप।

(४) लम्बे व्यंग्यात्मक एकाकी इस वर्ग मे आपके लम्बें एकांकी आते हैं। १ संवेदना सदन (१९५१) २ शान्ति सम्मेलन (१९५४) ३. वर निर्वाचन (१९५५) ४ नेता (१९५५), (५) मेलमिलाप (१९५६)।

अपने प्रहसनों में नलिन ने बडे व्यग्यात्मक चित्र खीचे हैं। ये घटनावली, वातावरण तथा भाषा सभी दृष्टियों से व्यग्यात्मक हास्य से पूर्ण है। ये सभी प्रहसन अभिनय के योग्य हैं। इनमें अवध की नवाबी, उनके शौक, नज़ाकत, नफासत तथा उनके इर्दगिर्द रहने वाले जन समुदाय का यथातथ्य चित्रण है। कहीं कही अतिशयोक्ति से भी काम लिया गया हैं, यद्यपि पढते समय यह अनुभव प्राय नहीं होता है। लम्बें व्यग्यात्मक एकांकिओ का निर्माण बारह वर्ष के अनुभव के पश्चात हुआ हैं। "संवेदना सदन" परिष्कृत तथा उच्चकोटि की रचना है, जिसमे नलिन का व्यंग्यात्मक स्वरूप अपने समस्त कटीले, सक्रिय और विद्रोही रूप मे प्रकट हुआ है। समाज की कृत्रिमता, खोखलापन, झूठा दिखावा, फोरमेलिटी का पर्दाफाश किया गया हैं। इसी प्रकार "शान्ति सम्मेलन" में नलिन की कला विकास की ऊची चोटी पर है। "वर निर्वाचन" में चित्रित किया गया है कि धन ही व्यक्ति की परख बन गया है। शिक्षित लडकिया भी धन के कारण अनमेल पति के लिए वैसे ही लालायित हैं, जैसी अशिक्षित। "नेता" मे व्यक्ति पर बहुत ही कटु व्यग्य किया गया हैं। यह व्यग्यात्मक कम प्रहसन प्रधान अधिक हो गया है।

राष्ट्रीय रचनाओ मे नलिन की कुछ सृजनात्मक प्रवृत्ति प्रकट होती है। देश की स्वतन्त्रता, उसके लिए किया हुआ बलिदान, सर्वोच्च त्याग, सतत उद्योग की आवश्यकता के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। "विद्रोही की गिरफ्तारी" मे उनकी प्रतिनिधि विचारधारा प्रकट हुई है जिसमे उनका उग्रवाद प्रकट हुआ हैं। "देश की मिट्टी" में प्रतीकात्मक ढंग से देश की पुकार, विदेशी आक्रमणकारियो द्वारा किया हुआ विध्वस, देश की ललनाओ पर किये गये अत्यचारो तथा नवयुवकों के देश सेवा और स्वदेश के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करने की चेतावनी दी है। इसमें साहित्यिक विवाद का कलात्मक परिणाम भी है। कला कला के लिए, या जीवन के लिए, जीवन संघर्ष, यथार्थ परिस्थितियो का सामना करने के लिए या पलायनवादी बन कला की दुहाई दे अपनी कायरता पर पाखड का पर्दा डाल विलास में अपना करुण अवसान करने के लिए, इस पर "देश की मिट्टी" मे विश्वास पूर्ण प्रकाश पड़ना है। अन्त में कला जीवन के लिए और जीवन यथार्थ की पुकार का सबल उत्तर देने के लिए ही है, यह परिणाम निकलता है। कला, जीवन, रूपा, रागिनी आदि के प्रतीकों द्वारा कला और जीवन की परिभाषाए भी प्रस्तुत हैं।

"सवेदना सदन" परिष्कृत व्यग्य है। इसमे दिखाया गया हैं कि मानव धन का इतना गुलाम हो गया है, व्यापार, व्यवसाय इतना बढ गया है कि धन समेटने की धुन मे मानव की सुहृदयता, करुणा, सरसता, सहानुभूति, सवेदना को उसके लालच का जलता रेगिस्तान पी गया है। चादी बटोरने की धुन मे वह मा बाप के लिए शोक भी नही प्रकट कर पाता। व्यक्ति, समाज, सभ्यता, कला, सस्कृति और नाटक के पात्रो पर भी इसमे मीठा व्यग्य है। यह व्यग्य शब्दो, घटना या वेशभूषा मे नही अर्थ मे, चारित्रिक विषमता, सहज स्वाभाविक जड आस्था या परिस्थिति मे रहता है। नलिन का व्यग्य स्थिति मे नही, परिस्थिति में है।

स्वय निर्देशक एव अभिनेता होने के कारण नलिन के एकाकी अभिनय की दृष्टि से सफल हैं। इनमें कथावस्तु की जटिलता नही, एकता, एकाग्रता और आकस्मिकता है। कई घटनाए भी एक विशेष घटना की कडिया हैं। थोडे समय से ही चुस्त कहानी, अप्रत्याशित घटना, आकस्मिकता और तीव्र क्रियाकलाप नलिन तलाश कर लेते हैं। "विद्रोही की गिरफ्तारी, देश की मिट्टी, युद्ध के बाद, परमात्मा का पाश्चाताप" आदि नाटको मे घटनाओ की आकस्मिकता है, तीव्र सक्रियता और सघन कौतूहल है। "विद्रोही की गिरफ्तारी" मे विद्रोही कौन है, यह भी विवाद, कौतूहल और जिज्ञासा भरा प्रश्न है। सक्रियता अभिनय आदि उछलकूद आकस्मिक घटना या प्रवेश प्रस्थान मे नही अनुभवो मे है। सवाद इस अभिनय में सहायक हैं। इसलिए सवाद के बीच बीच मे स्वर, गीत, भाषा आदि परिवर्तन के लिए निर्देश है। अनेक भावों का मिश्रण और एक साथ मिश्रित भावो का प्रकाश भी इसी चारित्रिक अभिनय का प्रमाण है।

वे मूल भावना को टैकनीक से अधिक महत्व देते हैं। जिस कला द्वारा मूल भावना या प्रभाव की एकता स्थिर रह सके, वही टैंकनीक श्रेष्ठ है। उनका टैकनीक बोझ बनकर नही आताफिर भी नलिन के एकाकियों मे टैकनीक बहुत ही स्वस्थ और सबल रूप मे आया है। उनके टैकनीक की सफलता इसमें है कि नाटक का अभिनय भी हो जाय और वह प्राणवान भी रहे। इस कार्यप्रणाली के अनुसार वे जीवन के जिस पहलू को आलोकित करना चाहते हैं, उस तक धीरे धीरे पहुचना प्रारम्भ कर देते हैं। सहायक विषयों को उसमे कोई स्थान नही देते। अन्त भी उसी प्रकार आकस्मिकता से होता है। लगता है, अर्जुन तरकश टटोल रहा है और उद्देश्य की मछली की आख वेधने के लिए तीर इतनी तीव्रता से आता है कि दर्शक मुग्ध हो जाता है।

इनके एकाकियो मे घटनाओ की स्फूर्ति, नाटकीय अनजान, हास्य प्रधान स्थितिया, चरित्रो का अपने प्रति ही व्यग्य, अभिनयोपयोगिता सभी सफल रूप मे मिलते हैं। आपकी एक विशेषता यह है कि पात्रो के अनुसार ही परिचय होता है। "देश की मिट्टी" मे कला और जीवन की विवेचना है। इसलिए इसमे परिचय भी

कलात्मक और काव्यमय है। "विद्रोही की गिरफ्तारी, सवेदना सदन, शान्ति सम्मेलन" आदि एकाकियो मे पात्र परिचय अधिक नाटकीय और गद्यात्मक है। वे पात्र परिचय के लिए वेशभूषा का सहारा लेते हैं तथा अपनी ओर से कुछ न कह कर उनके सवादो से ही चरित्र उद्घाटन करते हैं। चरित्र-चित्रण मे घटनाए भी सहायक हैं।

रगसकेतों से नलिन ने चरित्र प्रकाशन का काम लिया है। सकेत लम्बे-चौडे नही है, जिससे नाटक के पढने वालों के रस में बाधक हो सकें। ये सक्षिप्त और अभिनय को सफल बनाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। स्टेज निर्माण के लिए किसी किसी एकाकी मे सकेत है। "विद्रोही की गिरफ्तारी, देश की मिट्टी, सवेदना सदन" आदि सभी के आरम्भ मे जो रगसकेत दिये गये हैं, वे रगमच निर्माण के दृष्टिकोण से ही निर्मित हैं। अभिनय के हेतु जो सकेत हैं, वे कार्य व्यापार, सवाद की गति, स्वर शैली और मुख पर आने वाले अनुभवो का निर्देश करते हैं। कहीं कही सवादो के बीच-बीच मे भी सकेत किए गए हैं। सवाद का कुछ भाग किसी स्वर और गति से और शेष भाग अन्य शैली, स्वर और गति से व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैसे "सवेदना सदन" का यह भाग लीजिए :—

राधा "हाय, छोटी सेठानी जी · मोटी छोटी सेठानी जी · तेरी रेशम की झिलमिल चदरिया ही · (वार्तालाप की शैली मे) सोने की थलिया मे, पखानक की खीर भर भर कौन खायगा · ।"

कही कही सवाद के मध्य मे ही प्रवेश और प्रस्थान भी रहना है। प्रिमपल कोमल वार्तालाप करता है और मध्य मे चार पाच लडकियो का प्रवेश हो जाता है। अनुभावो तथा भावो के प्रकाश के लिए सकेत कई कई भावो का मिश्रण प्रकट करते हैं, जो बहुत ही कुशल अभिनेता और सफल निर्देशक का काम है। जैसे, चंचल प्रसन्नता से : प्रसन्न चमक से, साभिनय, आदि।

उनकी नाट्यकला मे वातावरण, सवाद, स्थितियो परिस्थितिया सभी नाटक की अन्तर्वृत्ति और समाजगत या व्यक्तिगत चरित्रोद्घाटन के लिए हैं, और सभी इने घुलमिल कर एक चेतन मस्तिष्क, अनुभूतिशील हृदय, सानुपातिक स्वस्थ शरीर के अग बन जाते हैं। इन सब बातो से प्रकट है कि नलिन की अपनी कला है। अभिनय का उन्हे बहुत ज्ञान है। विभिन्न भावो का मिश्रण प्रसन्न विस्मय, भयाश्चर्य, सस्नेह-रोश आदि भावमिश्रण प्राय मिलते हैं।

१०. प्रो० गोविन्दलाल माथुर : राजस्थान मे युथार्थवादी धारा के एकाकी-कारो मे एक युगान्तरकारी शक्ति लेकर राजस्थानी भाषा मे ही एकाकी रचना कर रहे हैं। राजस्थान के मध्य तथा निम्न वर्गो की अनेक सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक समस्याए लेकर आपने १ नानची मा बाप २ ठाकुरसाही की एक झलक ३ सूद-खोर ४. शिक्षा का सवाल ५ हरिजन ६ शफाखाना ७ बाल विनता ८ मौ तगाऊ

और एक खाक ६ परदा १० फिल्मी हवा ११ बेकारी १२ काला बाजार १३ मध्यम वर्ग की आर्थिक अवस्था १४ कर्ज का अभिशाप १५ बच्चों की बढती हुई फौज १६ धर्म का विकृत रूप १७ मुकद्दमेबाजी १८ अनुशासन हीनता १९ लाल फीता और नौकरशाही २० यूनियन का रोग २१ छोटे धधे बनाम बडे कारखाने आदि एकाकियो की रचना की है। इनमे देश मे व्याप्त अन्य सामाजिक समस्याओ के अतिरिक्त राजस्थान प्रान्त के सभ्य समाज, जागीरदार, ठाकुर, धनाढ्य महाजन, सूदखोर बनियो के आतकवादी जीवन से लेकर राजस्थान के जन जीवन मे ग्रामीण तथा पिछडी हुई जातियों की दैनिक परिवारिक विषमताओं, अशिक्षा, मूढता, जातिभेद, अज्ञान, रूढिवादिता, भूतप्रेत, जादू मतर में विश्वास, शराबखोरी, रिश्वत, मुकदमेबाजी, कालाबाजार आदि समस्याओं को लेकर एकाकियो की रचना की है।

माथुर साहब ने राजस्थान प्रान्त के सामाजिक जीवन का गहनता से अध्ययन कर उन्हें समस्याओं के रूप में खडा किया है और राजस्थान के वास्तविक जन जीवन की प्रगति मे बाधक अडचनों की झाकी दी है। प्राय सब एकाकियों के विषय उनके नामो से ही स्पष्ट हैं। जैसे "लालची मा वाप" मे विवाह के समय अधिक से अधिक दहेज लेने की दुष्प्रवृत्ति, "शफाखाना" मे ठाकुर और जनता के हितों में विरोध होने के कारण उनका पारस्परिक सघर्ष, "हरिजन" में ग्रामीणो की रूढिवादिता, "बालविधवा" में जातीय पचायतो के सडे गले रूप, "शिक्षा का सवाल" में विद्वानो की पुस्तकीय शिक्षा, "ठाकुर शाही की एक झलक" मे राजस्थान के ठाकुरो का अहंकारपूर्ण निकम्मा जीवन चित्रित किया गया है। निष्कर्ष यह है कि इन एकाकियों के विषयचयन में पर्याप्त विभिन्नता और वास्तविकता है।[1] अधिकाश पात्र वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं, परन्तु नाटककार ने उनके उज्जवल और मलिन दोनों ही पक्षों की झाकी प्रस्तुत की है। राजस्थान के बडे कस्बें और ग्राम ग्रामीण जीवन की कार्य कलाप और जनता की प्रवृत्तियो का यथार्थवादी चित्रण है।

कथोपकथन मार्मिक, स्वाभाविक और मच के उपयुक्त हैं। प्राय पात्रो को उन्हीं की वय, स्थिति और शिक्षा के अनुसार उन्ही की भाषा में व्यक्त करने का प्रयत्न है। इस भाषा मे कहीं-कही हास्य व्यग्य और विनोद की यथेष्ट पुट है। "लालची मा बाप" मे कहीं-कहीं बडे तीखे व्यंग्य हैं। लेखक ने गृहस्थ जीवन को माधुर्य प्रदान करने वाले पति पत्नी के पारस्परिक विनोद के प्रचुर छीटें फैंके हैं। "शफाखाना" में अंग्रेज द्वारा ठाकुरो के मूर्खतापूर्ण रवैय्ये की जैसी खिल्ली उड़ाई गई है, वह दृश्य बडा यथार्थ और मनोरजक है। कथोपकथनों में वातावरण का चित्रण अत्यन्त यथार्थ रूप में हुआ है, शब्दों, भाषा, मुहावरों सब पर राजस्थानी जन जीवन की अमिट छाप है। लेखक ने राजस्थानी जीवन को निकट से परखा है, निरखा है। समाज के पहिये की

---

१. देखिये गणपति चन्द्र भण्डारी कृत भूमिका "सप्तरंगनी" पृ० ६।

धुरी अब बहुत पुरानी हो चुकी है, समय के जग ने उसे काट खाया है, वह अब अधिक नही चल सकती। अतएव प्राचीन रूढियो का वहिष्कार कर नवीन स्वस्थ परम्पराओ का निर्माण करना है, जिनका आभास कही कही इन एकाकियो मे मिल जाता है।

श्री माथुर ने एकाकियो की नवीन शैली मे अपने आपको नही बाँधा है। इनके कथानक क्षीण हैं। उस ओर ध्यान न देकर ये रोचक नाटकीय स्थितिया चुटीली भाषा मे व्यक्त कर देते हैं। पात्रो की चरित्रगत विशेषताए खुलती जाती है। कुछ एकाकी जैसे "शिक्षा का सवाल" एक प्रकार के सिम्पोजियम जैसे रह गए हैं। विषय की गभीरता उनकी रोचकता मे बाधक हुई है, परन्तु वह एक नए ढग की चीज़ है। रग सकेतो के साथ साथ कही-कही लेखक ने पात्रो के विचारो को भूमिका के तौर पर व्यक्त कर दिया है। निष्कर्ष यह कि राजस्थान की सामाजिक समस्याओ को तथा जनजीवन की झाकिया प्रस्तुत करने की श्री माथुर मे अद्भुत प्रतिभा है।

११. श्री सत्येन्द्र शरत : १९४६ से अग्रेजी एकाकी के टैकनीक के शास्त्रीय अध्ययन के पश्चात् सत्येन्द्र शरत् ने एकाकी सृजन प्रारम्भ किया है। पहले आपने अपने इर्द गिर्द की सामाजिक समस्याओ को समझा तथा परखा है, फिर रग-मच के लिए उतारा है। इन एकाकियो को अग्रेजी के सर्वोच्च एकाकियो के समकक्ष रखा जा सकता है। इनमे पाश्चात्य टैकनीक का पूरा निर्वाह हो गया है। वही किफायतशारी, वही यथार्थवाद और वही आडम्बर विहीन मनोवैज्ञानिक चित्रण उपलब्ध है। एक शब्द भी व्यर्थ नही कहा गया है। कथोपकथन इतनी कलात्मकता और बारीकी से लिखे गए हैं कि यथार्थ जीवन का जीता जागता चित्र उपस्थित हो जाता है। पात्रो के नाम, परिस्थिति, चरित्र की विशेषताएं स्वाभाविक रीति से खुलती जाती हैं। इनके वार्तालाप चुस्त, भाषा पात्रानुकूल और रगमच निर्देश प्रभाव व्यजना के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इन एकाकियो की कला सशक्त है और वह हृदय को स्पर्श करती है।

सत्येन्द्र शरत् के निम्न एकाकी विशेष उल्लेखनीय हैं। १. ओहदा २. गुड बाई अनीता, ३ एस्फोडेल, ४. प्रतिशोध ५ तार के खभे। ये सभी १९४६ की रचनाएं हैं। इसके पश्चात् ६ करेंसा ७ खंडहर ८ वह रात ९. गर्मी और रोशनी १०. उषा की मुसकान ११. मौत के कतरे आदि लिखे गए हैं। इन पर बैरी, इब्सन, शा और सामरसेट माम का विशेष प्रभाव है। हिन्दी मे भुवनेश्वर से ये अधिक प्रभावित हैं।

सत्येन्द्र शरत् के कथानक अपने आप मे पूर्ण हैं। प्रारम्भिक विकास सघर्ष को पार कर चरमोत्कर्ष की ओर तीव्रता से बढते हैं और वहा सदैव के लिए समाप्त न होकर एकदम रुक जाते हैं। इनका अन्त नाटकीय अन्त जैसा कोई गौरव ग्रहण नही करता। नाटको के समाप्त होने पर भी कुछ शेष रह जाता है। समाप्ति के पश्चात् उन्ही कथानको को बढाकर और विकसित किया जा सकता है और इन्ही को

विकसित कर बडा नाटक बनाया जा सकता है। स्टेज इफैक्ट का आप विशेष ध्यान रखते हैं। "शोहदा" नाटक मे जुआरिओ का पीछे से हसना, शोर मचाना, स्टेज इफैक्ट उत्पन्न करने के लिए रखा गया है। जुआरियो के समूचे ठहाके रगमच पर उपस्थित पात्रो के प्रति व्यग्य रूप हैं। होटल मैनेजर की घटी का ठीक तरह न बज कर भद्दी तरह किर्र किर्र कर रह जाना साकेतिक है। बिगडी घटी कमरे की अस्पष्टता तथा अनिश्चितता की ओर सकेत करती है। सत्येन्द्र शरत् ने नाटको मे अनेक स्थलो पर परेशानी, उलझन तथा अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक प्रदर्शन किया है। कहीं वायलिन तो कही खामोशी भिन्न-भिन्न रीतियो से वातावरण को घना तथा उलझन-पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। "प्रतिशोध" मे एक नवयुवती के दो प्रेमियो के सघर्ष का चित्रण है। पात्रो के अन्त सघर्ष के साथ साथ प्रकृति मे भी हलचल और तूफान बढ जाते हैं। बारिश और आधी चलने लगती है, तेज वर्षा की आवाज और विद्युत की कडक भी बीच-बीच में सुन पडती है। "प्रतिशोध" जब दया के रूप मे परिवर्तित होता है, तव प्रकृति भी शान्त हो जाती है। वातावरण मे प्रतीकवाद का बडा मार्मिक एव कलात्मक प्रयोग शरत ने किया है। यह साकेतिक चित्रण इन की विशेषता है।

अग्रेजी एकाकी की तरह आपके रगमच निर्देश प्रभाव व्यजना के लिये होते हैं। ये तीखे हैं और अपनी प्रभाव व्यजना द्वारा पाठको को नाटकीय आनन्द एव उत्तेजना प्रदान कर कल्पना को सजीव बना देते हैं। कुछ निर्देश बडे कलात्मक हैं, जैसे

"एक उदास शाम के छ बजे, दुर्भाग्य की भाति एक युवक का प्रवेश, मूछें हैं ते के नुकतो की भाति जैसे दो मक्खिया नाक के नीचे बैठी हो, अन्धेरा घना हो गया है, हवा खामोश है, और तारे सहमे हुये हैं, हसता है फिर सिहर उठता है, जैसे वह हँसी उसकी रीढ की हड्डी में झनझना उठी हो" आदि।

हिन्दी मे इतने प्रभाव व्यजक निर्देश केवल भुवनेश्वर ने लिखे है। कही कही छोटे छोटे अधूरे वाक्यो द्वारा पात्रो का चित्र ही खीच दिया गया है। शब्दो का मितव्यय, किन्तु भाव प्रकाशन की अद्भुत क्षमता आपकी शैली की विशेषताए हैं।

१२. प्रो० डी० एम० बोरगावकर अग्रेजी टैकनीक का विशद अध्ययन करने के पश्चात आपने अग्रेजी तथा हिन्दी दोनो ही भाषाओ मे अपने प्रयोग किये हैं। शा की विस्तृत भूमिका वाली पद्धति पर आपने "हिटलर की मृत्यु" अग्रेजी मे लिखा। हिन्दी में उसी पद्धति पर आपने निम्न एकाकियो का निर्माण किया है। १ रुद्र की वलि (१९४६) २ मदिर प्रवेश (१९४६) ३ पद्रह अगस्त (१९४७) ४ छ अगस्त (१९४७) ५ तीस जनवरी (१९४८) ६ शुद्धि ७ शरणार्थी (१९४८) ८ हिटलर की मृत्यु (१९४९) ९ अन्वा (१९४९)।

विचारधारा मे दो मार्ग स्पष्ट हैं। प्रथम वर्ग के एकाकियो मे आपके राजनीतिक एकाकी हैं, जिनमे गत ५-६ वर्ष की राजनीतिक घटनाओ की मार्मिक व्यग्यात्मक

झाकी है। द्वितीय वर्ग में आपके सामाजिक आदर्शवाद के दर्शन होते हैं, प्रथम वर्ग मे जिन महत्वपूर्ण राजनीतिक समस्याओ पर प्रकाश डाला गया है, उनमे से प्रमुख ये हैं : १५ अगस्त १९४७ का भारत विभाजन तथा उससे उत्पन्न साम्प्रदायिक विषमताए, शरणार्थियो के जटिल प्रश्न, पाकिस्तान से युद्ध की सम्भावना, अपहृतो की समस्या, एटम बम का दुरुपयोग, बापू की हत्या, तथा उससे उत्पन्न जनता की निक्षुब्ध मानसिक अवस्था, तानाशाही शासन की मीमासा, हरिजन, मन्दिर प्रवेश आदि। इस वर्ग मे "रुद्र की बलि, पन्द्रह अगस्त, छ अगस्त, तीस जनवरी, हिटलर की मृत्यु" आदि एकाकी आते हैं। आपका ध्येय सामाजिक यथार्थ है।

दूसरा वर्ग सामाजिक आदर्श का है। सामाजिक विद्रूपताओ को उभारते हुए नाट्यकार ने अछूतोद्धार पर अधिक जोर दिया है। आपकी राय मे अछूतो के प्रश्न का अभी केवल राजनीतिक हल ही हुआ है। सामाजिक क्षेत्र मे मिथ्या प्रदर्शन, धोखेबाज और छल-कपटमय व्यवहार वृद्धि पर है। ऊच-नीच की भावनाए पूर्ववत चल रही हैं। सभाओ मे ओजस्वी भाषण देने वाले नेता, या समाज सुधारक केवल ऊपरी दृष्टि से ही अछूतो से प्रेम भाव प्रदर्शित करते हैं। वास्तविक रूप मे नही। "मन्दिर प्रवेश" तथा "अन्धा" मे ऐसे ही दिखावटी नेताओ तथा समाज सुधारको का व्यग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

विषयों मे विविधता, राजनीतिक उथल पुथल, गाधीवाद के हानि लाभ, काश्मीर समस्या इत्यादि अनेक नए विषय जोडकर आपने हिन्दी एकाकी को व्यापक बनाया है। गाधीवाद की विवेचना कर आपने स्पष्ट किया है कि यही सबसे अधिक मानवीय पहुच है, जिससे शान्ति, न्याय और समृद्धि प्राप्त हो सकती है। गाधीवाद को हम बुद्धिवाद की कसौटी पर परखें, केवल अधविश्वास से प्रेरित न रहें।

आपकी विचारधारा मे दो तत्व हमे विशेष रूप से आकृष्ट करते हैं १ अति मानववाद तथा २. स्त्रियो का ओज, वीरत्व और साहस, सुपरमैन (अतिमानववाद) मे आपका विश्वास है जो नीत्से से प्रभावित है। आपका हिटलर नीत्से की विचारधारा से प्रभावित है। "हिटलर की मृत्यु" मे स्वय हिटलर तथा अन्त मे मनका नामक पात्री मानववाद मे आस्था प्रकट करती है। अतिमानववाद के दोनो पक्षो का विवेचन है। वीरगावकर के स्त्री पात्रो मे नवीन जागृति और ओज भरा है। राजनीतिक अधिकारो के प्रति जागरूकता है। वे अपने आप को अबला के रूप मे नहीं देखती। उनमें अपनी रक्षा की चेतना है। "पन्द्रह अगस्त" की प्रभावती के हाथ मे कृपाण है तथा वह अपने नौकर को पिस्तौल खरीदने भेजती है जिससे आवश्यकता के समय निज स्वत्वो की रक्षा कर सके। वह १२ बजे रात्रि मे उठकर पाकिस्तान मे भारत का तिरगा फहराती है, खूनी लुटेरो की परवाह नहीं करती। "शरणार्थी" मे पुष्पा निरजन से स्पष्ट शब्दों मे कहती है "मैं किसी से मदद नहीं चाहती।" "तीस जनवरी" मे आनन्दी बाई का स्वभाव व कर्म सिपाहियो जैसा है। "मन्दिर प्रवेश" की जानकी रायबहादुर

साहब की बातो पर गहरा व्यग्य कसती है। इन नाटको की स्त्रिया पुरुषों की अपेक्षा अधिक क्रियाशील हैं। रजनी के ये शब्द उनके नारी पात्रो मे कहे जा सकते हैं, "अब नए हिन्दुस्तान मे कोई स्त्री अबला न कहलायेगी।"

प्राचीन सस्कृत आदर्शों के विरुद्ध आपने स्टेज की मान्यताओ को विस्तृत किया है। रगमच पर मृत्यु भी दिखाई गई है। दुखान्त नाटको को प्रस्तुत करने के हेतु हल्के से गम्भीर वातावरण पर आना, दो विभिन्न मन स्थितियो का विरोध दिखाना आपकी विशेषताए हैं।

१३. श्री रावी नये एकाकीकारो मे रावी नाट्य कहानी के जन्मदाता हैं। रावी जैसे जीवन दर्शन एव मौलिक विचारक हिन्दी नाट्य जगत में अल्प सख्या मे हैं। आपका चिन्तन मौलिक, जीवन दर्शन नवीन तथा व्यजना सर्वथा अभूतपूर्व है। किसी विशेष वाद, पिष्टपेषित विचारधारा या मत मतान्तर के पीछे चलना उन्हें नही भाता। वे उन स्वतत्र विचारको मे हैं, जो पुरातन रूढियों, जीर्ण-शीर्ण परम्पराओ या समय, स्थान, पूर्व विचारधारा या सकीर्ण व्यक्तित्व के बन्धनो से सर्वथा मुक्त हैं। इनके एकाकियो मे सृजनात्मक अन्तर्दृष्टि तथा प्रतिपादित समस्याओ की चरम फल प्राप्ति के सफल प्रयत्न हैं। अपने मौलिक ढग से भौतिक के विरुद्ध आध्यात्मिक निष्पक्षता, आत्म प्राप्ति एव विकास का चित्रण किया है।

रावी के दो गुण स्पष्ट हैं। १ भावी जीवन दर्शन, जो तर्क एव बुद्धि के भावी विकास पर निश्चित किया गया है। २ सूक्ष्म जगत (occult) सम्बन्धी विचार-धाराओ का प्रतिपादन। उनका चिन्तन समय से बहुत आगे है। उनका चिन्तन तथा भावी जीवन दर्शन कला का परिधान पहनकर नवीन कलेवरो मे प्रस्फुटित हुआ है। उन्होंने अपनी एकाकी साहित्य मे चिन्तन और गभीरता का समावेश किया है। रावी के एकाकियो को दो भागो में विभक्त किया जा सकता है

(१) सैक्स सबधी जैसे १ पूर्व और पश्चिम २ रेखा मनुष्य भी है ३ पुरुष सुन ले इत्यादि (२) सूक्ष्म जगत सम्बन्धी जैसे १ बुद्ध की घाटी २ गेहू का दाना ३ यहा और वहां इत्यादि सैक्स सम्बन्धी विचारो में आपने पुरानी रूढियों के स्थान पर नई मान्यतायें रखी हैं। "पूर्व और पश्चिम" में नीति आचार सम्बन्धी स्वतन्त्र चिन्तन, पूर्व तथा पश्चिमीय सस्कृतियो की तुलना, प्रतिबन्धो का निष्कासन तथा प्रगति का चित्रण है। भावी युग में मानव समाज इतनी प्रगति कर लेगा कि आधुनिक कृत्रिम प्रतिबन्ध टूट जायेंगे। उस युग में मनुष्य की वासना निम्न स्तर से उठ कर उच्च बौद्धिक स्तर पर रखी जायेगी। एकाकीकार के अनुसार अभी हमारे समाज के काम मानस (Desire mind) का विकास चल रहा है। भावी युग में शृगार सम्बन्धी आशिक अनभिज्ञता रहेगी, पाप पुण्य की परिभाषायें बदल जायेंगी। "रेखा मनुष्य भी है" मे सैक्स की सीमा को विस्तृत करने वाली चेतना का विवेचन है। "पुरुष सुन लें" मे दो विचार हैं १ पाप पुण्य की कल्पना अज्ञान जनित है।

२ पुरुष अपने पौरुष और पशुबल पर गर्व करता है, पर भावी युग की सृष्टि का क्रम विना पुरुष के हो सकता है। इससे पुरुष की शासन प्रवृत्ति, वन्धनमय नियत्रण, आन्तरिक कुरूपता, हृदयहीनता, कठोरता और विचारहीनता पर आक्षेप किया है।

आपके सूक्ष्म जगत और जीवन सवधी एकाकी विषय की दृष्टि से सर्वथा नवीन और मौलिक प्रयोग हैं। इसमे आप श्रीमती ऐनी वेसेन्ट तथा सी० डव्ल्यू० लैंडवीटर से विशेष प्रभावित हुए हैं। थियोसोफिकल साहित्य से प्राप्त जानकारियो को आपने अपने नाटको की पृष्ठभूमि वनाया है। साथ ही अपनी कल्पना एव सहानुभूति का भी प्रयोग किया है।

'रेस्तोरा" मे राजनीतिक एकाकी मे गत महायुद्ध मे हिटलर तथा अन्य मित्र राष्ट्रो के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। हिटलर मे आर्य भावनाओ की छाया है।

टैकनीक की दृष्टि से रात्री के एकाकी सम्भाषण एव कहानियो का सम्मिश्रण है, इनमे रगमच की सूचनाए सक्षिप्त और बौद्धिक विचार प्रतिपादन मुख्य तत्व हैं। जिन नाटकीय स्थितियो का चित्रण किया गया है, वे अति नाटकीय और अतिरजित हैं। कथोपकथन लम्बे तर्कपूर्ण हैं। अन्तिम निष्कर्ष स्पष्ट नही प्रत्युत सकेतो के द्वारा प्रदान किया जाता है। कही २ दार्शनिक प्रतिपादन के कारण विचार नीरस एव अस्पष्ट हैं। अभिनय के लिए ये अनुपयुक्त हैं, पर सुपाठ्य और विचारपूर्ण तत्वो से परिपूर्ण हैं।

१४. श्री लक्ष्मी नारायण लाल, एम. ए. आप उन एकाकीकारो मे हैं जो जीवन की आलोचना बुद्धि विकास से नही, प्रत्युत भावना के माध्यम मे करते हैं। ये भावना का एक तूफान लेकर एकाकी जगत मे प्रविष्ट हुए हैं और प्रखर अनुभूति से एक अभिनय चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं। आपका मन भावना मे अनुभूति की विह्वलता, मानव के आतरिक कार्य व्यापार मे उमडा पडता है। ये एकाकी का आधार ऐसे तत्व पर खड़ा करते हैं, जहा तर्क और विवाद या शाब्दिक आलोचना काम नही करती, मनुष्य की भावना का उद्वेलन की घटनाओ, व्यापारो का औचित्य अनौचित्य निर्णय करता है। इनमे एक अतल स्पर्शी हूक उफनी पडती है, व्यथा और अन्तर्वेदना का समुद्र लहरा रहा है। आपका आदर्श कलावाद है, आप सौंदर्य, प्रेम और शिवत्व के उपासक हैं। जीवन के सौंदर्य सगीत तथा कष्ट पीडा वेदना आदि उभय पक्षो का कलामय प्रतिपादन किया है। मनुष्य विशेषत स्त्री के हृदय का भावुक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उद्वेग, तीव्रता उभार कर रख दी गई है। स्वयं नाटककार का क्या उद्देश्य है। "पर्वत के पीछे" सग्रह की भूमिका मे स्वय लेखक ने अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा है, "मैं ऐसे नाटक लिखना चाहता हू जिनमे कोई वदसूरत वेनकाव कर दी गई हो, कोई घिनौना नासूर घाव साफ करके दिखा दिया गया हो, स्वप्न मे रोता हुआ इन्सान के आसुओ को मूर्त कर दिया हो।" अपने सब एकाकियो मे यही विद्रूपताएं अकित करने का सफल प्रयत्न किया है।

डाक्टर लक्ष्मीनारायण लाल के एकाकियो मे भावना की नवीनता है। मौलिकता कथानक की न होकर भावना की है। पुराने पात्रो को लेकर भावना वल लेखक ने अपनी सम्पूर्ण अनुभूति और रसप्रवणता एकाकियो मे उडेल दी है, सिद्धात के ऊपर कला का आधिपत्य है। विचार से पूर्व आपका कवि हृदय उद्वेलित हुआ है। अत इनके साहित्य की महत्ता ऐतिहासिक जीवन को मूर्तिमान कर देने मे है। डा० रामकुमार की भावात्मक पद्धति पर चल कर आपने पीडा, कसक, असमर्थता, घात प्रतिघात, के अनेक सघर्षमय क्षण चित्रित किए हैं। प्रसाद की भाति इनकी अन्तरात्मा मनुष्य की वेदना और असमर्थता को नही सम्हाल पाती। आपने अपने एकाकियो मे मुगल काल विशेषत नूरजहा, जहागीर, शाहजहा, जहाआरा इत्यादि पात्रो को वडे भावपूर्ण ढ ग से चित्रित किया है।

आपके एकाकी नाटको मे कथानक विन्दुमात्र, किन्तु भावना का सम्मिश्रण तथा कल्पना की रगीनी अधिक रहती है। सकेतात्मकता की मात्रा यथेष्ट है। सामाजिक नाटको के कथानक मौलिक और यथार्थवादी हैं। ऐतिहासिक एकाकियो मे कथानक की कमी की पूर्ति भी भावना के द्वारा ही की गई है। "आकाश की ऊचाई" तथा "पर्वत के पीछे" मे स्त्री पुरुष दोनो पक्षो का प्रतिनिधित्व करने वाले एकाकी सग्रहीत हैं। सामाजिक एकाकियो के मध्य मे समाज पर व्यग्य और ध्वसात्मक आलोचना अधिक रहती है। पात्र प्रधान तथा परिस्थितिया गौण हैं। आप किसी विचार को लेकर कथानक की सृष्टि करते हैं।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के निम्न ऐतिहासिक एकाकी प्रकाशित हुए हैं। १ उर्वशी २. महाकाल का मन्दिर ३ नूरजहा की एक रात ४ जहाआरा का स्वप्न ५ ताजमहल के आसू। इसके अतिरिक्त ६ सुवह होगी ७ मकवरा ८ पर्वत के पीछे ९ आकाश की ऊचाई १० पाप और प्रायश्चित ११ मडवे का मोर १२ फूल और काटे १३ दो तस्वीरें १४ नई इमारत १५ धुए के नीचे १६ कैद से पहले आदि सामाजिक एकाकी प्रकाशित हो चुके हैं। आपका पौराणिक रेडियो एकाकी "शरणागत" (१९५५) आल इन्डिया रेडियो प्रतियोगिता मे सर्वश्रेष्ठ घोपित हुआ है।

आपने भावना प्रधान तीखे व्यग्य मिश्रित एकाकियो का सृजन किया है, किन्तु भावना के साथ कही-कहीं मनोवैज्ञानिक तथ्यों की उपेक्षा हो गई है। सयम और तर्क का समावेश है। चरम सीमा पर ही परिसमाप्ति हो जाती है, व्यर्थ के व्याख्यान मे आपका विश्वास नही है। मुख्य भावना के समीपस्थ तत्सवधी अनुभूतियो का ही समावेश होता है। सामाजिक एकाकियो मे दैनिक समस्याओ तथा मन विश्लेषण का अच्छा विवेचन है। करुणा, शृगार, वात्सल्य, घृणा आदि विकारो का उत्तम चित्रण करते हैं। आस्कर वाइल्ड तथा चखोव से विशेप प्रभावित हैं। वस्तुवाद के विरुद्ध ध्वनि उठाई गई है। आपकी रगसूचनाए अग्रेजी पद्धति की हैं, विस त कलापूर्ण

और प्रभाव व्यजक। आप हृदय स्पर्शी चित्र प्रस्तुत करने मे विशेष कुशल हैं। इनके कथोपकथन के दो गुण हमे विशेषत आकृष्ट करते है, तडप तथा वाक् वैदग्ध्यता। भावात्मक स्तर पर रख कर आपने कुछ कथोपकथनो को इतना तीखा बनाया है कि वे प्रभावशाली हो उठे हैं। एकाकियो के कथानक जितने कसे हुए और प्रभावोत्पादक हैं, उतनी परिष्कृत और परिमार्जित भाषा नही है। आधुनिक एकाकी शिल्प का सफल प्रयोग है। आपके एकाकी आकाशवाणी द्वारा प्रसारित हुए हैं और कुछ एकाकी सफलतापूर्वक रगमच पर भी अभिनीत किए जा चुके हैं।

१५. श्री आरसी प्रसाद सिंह आपके एकाकी मुख्यत सामाजिक समस्या प्रधान हैं। अपने मौलिक विचारो को मूर्तिमान करने लिए ही आप एकाकी रचना मे प्रवृत्त हुए, ऐसा हमारा अनुमान है। वे विचार अवश्य ही ऐसे रहे होंगे, जिन्हें वह कविता अथवा कहानी मे प्रकट नही कर सकते होंगे और उन विचारो को स्थूल रूप देने का एक मात्र उपाय उन्हें एकाकी मे ही दिखाई पड़ा होगा। उनके एकाकी उनके विचारो का एक स्थूल एव सुन्दर माध्यम हैं।

आपने अपने एकाकियो मे अनेक छोटी मोटी सामाजिक समस्याओ को उठाकर उनका हल प्रस्तुत किया है, जैसे परित्यक्ताओ की समस्या, साम्यवाद, समाजवाद, प्रेम और कला, गरीबी तथा उदरपूर्ति की विपमताए, पूजीवाद का शोपण, दलितो की दुरावस्था, जर्जर सामन्तशाही के चित्र आदि। आपका दृष्टिकोण प्रगतिवादी है। आप युग की सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा को मुखरित करते हैं। आपकी वाणी मे जराजीर्ण सामन्ती समाज के प्रति घृणा और विद्रोह के भाव हैं। तटस्थ भाव से आप समाज की विपमताओ की आलोचना करते है तथा निष्कर्ष पाठकों पर छोड देते हैं। जनता की आकाक्षाए हास्य, विपमता, दुखद अनुभूतिया मुखरित करने वाले साहित्यकार को आप वास्तविक कलाकार समझते हैं, लेकिन यह भी मानते हैं कि शोपित वर्गों के प्रति किसी भी कलाकार की सहानुभूति केवल बौद्धिक ही हो सकती है, क्रियात्मक नही। अर्थात् एक कवि चित्रकार या सगीतज्ञ उनकी स्फूर्ति बल या प्रोत्साहन के लिए रग राग के उपादान ही प्रस्तुत कर सकता है। कोई चित्रकार यदि अपनी तूलिका को छोडकर किसी शोपित कृपक के लिए स्वय हल जोतना स्वीकार करता है, तो उसका यह कार्य एक दृष्टि से उपादेय होने पर भी दूसरी दृष्टि से अनुचित है। इतिहास मे कुछ ऐसे कलाकारो के उदाहरण मिलते हैं, जिन्होंने कलम छोडकर तलवार पकड़ ली है, परन्तु आरसीप्रसादसिंह इन नियम के अपवाद ही हो सकते हैं। वीणा वीणा है, शख शख है, गुलाव गुलाव है और गेहूं गेहू है। जिस तरह वीणा से शख का काम नही लिया जा सकता, उसी तरह गेहू से गुलाव का कार्य लेना असभव है। अन्य तथाकथित प्रगतिशील कलाकारो और आरसीप्रसादसिंह मे यहीं पर एक मौलिक मतभेद हो जाता है।

सख्या मे आपने थोडे एकाकियो की रचना की है, परन्तु आपकी एकाकी

रचनाओ का महत्व इसलिए नही हैं कि वे कितने लिखे गये हैं । प्रत्युत वे कब तथा कैसे विनिर्मित हुए हैं और कला की दृष्टि से उनका मूल्य क्या है ।

आपका रचनाकाल युद्ध के पूर्व ही आरम्भ हो जाता है, जब हिन्दी मे एकाकी लेखक इतने न थे । न तो रेडियो की ओर से कोई उतना आकर्षण था और न कला की दृष्टि से कोई मूल्याकन ही करने वाला था । ऐसे समय मे केवल अपने मनोभावो को प्रकट करने के उद्देश्य से ही आरसीप्रसादसिंह ने अपना सर्वप्रथम एकाकी "जब दुनिया अबोध थी" (१६३७) लिखा था । इसमे मानव जीवन की दो अनादि समस्याओ, भूख और काम, का विश्लेपण सर्वथा नूतन नाटकीय प्रणाली में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि मर्म मे पैठ कर देखने से यह एकाकी कुछ अपूर्ण सा प्रतीत होता है, तथापि इसमे जितना विषय प्रतिपादन हो सका है, उससे स्पष्ट होता है कि काम से भी प्रबल सस्कार क्षुधा का है तथा एक आदि मानव को दूसरे विपरीत लिंग के आदि मानव को देखकर जो मनोभाव उत्पन्न हुए होंगे वे प्रथम क्षुधा के ही होंगे, काम वासना के नही । यह प्रथम रचना है, जो आज भी हिन्दी के एकाकियो मे दिशा निर्देश तथा विचार स्वातन्त्र्य का महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित कर रही है । इसके छोटे छोटे सम्वाद मानो इस सत्य के ज्वलन्त प्रमाण हैं कि मनुष्य स्वभावत जो वार्त्तालाप करता है, वह छोटे छोटे टुकडो मे है । दीर्घ वक्तव्य होने से सम्वाद मे नीरसता आती है, जो दर्शको के मन पर अच्छा प्रभाव नही डालती । आपके एकाकी दो भागो मे विभक्त किए जा सकते हैं ।

(अ) सामाजिक एकाकी जैसे १ "टूटे हुए दिल २. कलक मोचन ३ वैतरणी के तीर पर ४ समझौता ।

(आ) सास्कृतिक एकाकी जैसे ५ पुनर्मिलन ६ जब दुनिया अबोध थी ७ धूपछाह (गीति नाट्य) आदि ।

१६ **श्री गणेशदत्त गौड 'इन्द्र'** इन्द्र के एकाकियो का प्रारम्भ "बलिदान" एकाकी से होता है जो २७ जनवरी सन् १६२७ को "हिन्दू पच" मे प्रकाशित हुआ था । यह पारसी शैली से प्रभावित पुराने ढग का एकाकी था । इसी शैली पर "मीठा जहर; लीला चमत्कार, भक्तराज नन्द, जित देखो तित वही है, जय बोलती हड्डी" इत्यादि धार्मिक पौराणिक एकाकी प्रसूत हुए हैं । इनमे गद्य-पद्यमय सवादो का प्रयोग किया गया हे । इनके बाद इन्द्र जी ने लगभग ८०-९० एकाकियो की आधुनिक शैली मे रचना की है । जिनमे मुख्य एकाकी इस प्रकार हैं

(अ) ऐतिहासिक नैतिक १ विचित्र सयम २ विचित्र बालक ३ लीला चमत्कार ४ प्रत्युपकार ५ गुरवा परवरी ६ प्रेम और कर्त्तव्य ७ क्षत्रियो का कर्त्तव्य पालन ८ मुकुटधारी भिक्षुक ९ कुणाल १० कलिंग विजय ११ परिमार्जन १२ नारी पाप है १३ गर्द भिल्लोन्मूलन १४ कला का पुरस्कार १५ विजय महोत्सव १६ यह कैसी मजाक है १७ स्वाधीनता की देवी ।

(आ) राजनीतिक . १८ राष्ट्र ध्वज गरिमा १९ जय हिन्द २० खुदा ज़मीन पर आ गया २१ भारत माता के मन्दिर पर २२ बलिदान।

(इ) धार्मिक पौराणिक : २३. लीला चमत्कार २४ भक्तराज नन्द २५. जित देखो तित वही है २६ जय बोलती हड्डी २७ मीठा जहर २८. देवलोक में दीपोत्सव।

(ई) बाल एकाकी · २९ अजेय कुमार जीव ३० बावरिक का बलिदान ३१ सम्मान ३२ परीक्षा ३३ विक्रम विजय ३४ पुरस्कार ३५ सत्यकाम ३६. उदारता ३७ भगवा झडा ३८ त्यागी हातिम।

(उ) सामाजिक एकाकी ३९ बलिदान ४०. प्रत्युपकार।

इन्द्र जी का मुख्य क्षेत्र ऐतिहासिक राजनीतिक है। ऐतिहासिक एकाकियो मे हमे उनके आदर्शवाद तथा राजनीतिक एकाकियो मे यथार्थवादी व्यग्य से विशेष प्रभावित होते हैं। ऐतिहासिक क्षेत्र मे प्राचीन हिन्दू सम्राटो के आदर्श चरित्रो को उभार कर उनका चरित्र गौरव हमारे सन्मुख रखा गया है, कही कही मुसलिम युग की भी झाकी दी गई है। अपने सामाजिक, राजनीतिक और सामयिक नाटको मे इन्द्र जी ने छुआछूत निम्नवर्ग के प्रति सवर्ण का अत्याचार, हिन्दुओ की सकुचितता, धर्म के मिथ्याडम्बर, प्रपच, अध पतन, धार्मिक क्षेत्र मे स्वार्थ तथा टकार्थियो का प्रवेश, धर्म शुद्धि की सम्भावना, हिन्दू धर्म को त्याग कर अन्य धर्मो मे प्रवेश के कारण, अवैदिक धर्म का वितडावाद, मुसलिम गुडो के विश्वासघात, सरकारी नौकरी मे अग्रेजो की नमक हलाली, भारतीय जागृति को क्षति पहुचाने की मानसिक गुलामी, नौकरशाही, समाज की गति और उन्नति रोकने वाले प्रतिक्रियावादियो की छीछालेदार आदि विविध समस्याओ का चित्रण किया गया है तथा सामाजिक जीवन के सघर्षो को उभारा तथा जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन को मुखरित किया है। राजनीतिक जगत् मे आते हुए प्रकाश तथा जागृति की चेतना इन एकाकियो मे स्पष्ट अकित है। एक प्रखर बुद्धिवादी दृष्टिकोण से इन्द्रजी राजनीतिक गुत्थियो मे नही उलझते, वे अपने निष्पक्ष दृष्टिकोण से तत्कालीन कुठित अवस्था का सुलझाव करते चलते हैं। "भारत माता के मदिर मे" एकाकी मे सम्पूर्ण भारतीय राजनीतिक अवस्था का सिहावलोकन प्रस्तुत कर दिया गया है, जो उनकी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है।

टैक्नीक की दृष्टि से इन्द्रजी की कला पर पारसी स्टेज का प्रभाव स्पष्ट है। स्वगत का प्रयोग है, प्रारम्भिक नाटको मे शेर-दोहे वाली पद्धति का अनुसरण है। कथोपकथन लम्बे तथा विवेचनात्मक हैं, सरसता के लिए नाटको के अन्तराल मे मधुर गीतो का भी विधान है। दृश्यो की अधिकता है। प्रेम और कर्तव्य मे दृश्यो की सख्या ७ तक पहुच गई है। अन्य मे ३, ४ तो हैं ही। कही-कही आवर्तन और प्रत्यावर्तन तथा उनका निर्देशक दृश्य अधिक जटिल होने लगते हैं। अभिनय की दृष्टि से ये सफल हैं। युद्ध वाले दृश्यो के अतिरिक्त अन्य सफलता से अभिनीत हो सकते हैं।

रचनाओ का महत्व इसलिए नही है कि वे कितने लिखे गये हैं । प्रत्युत वे कब तथा कैसे विनिर्मित हुए हैं और कला की दृष्टि से उनका मूल्य क्या है ।

आपका रचनाकाल युद्ध के पूर्व ही आरम्भ हो जाता है, जब हिन्दी मे एकाकी लेखक इतने न थे । न तो रेडियो की ओर से कोई उतना आकर्षण था और न कला की दृष्टि से कोई मूल्याकन ही करने वाला था । ऐसे समय मे केवल अपने मनोभावो को प्रकट करने के उद्देश्य से ही आरसीप्रसादसिंह ने अपना सर्वप्रथम एकाकी "जब दुनिया अबोध थी" (१९३७) लिखा था । इसमे मानव जीवन की दो अनादि समस्याओ, भूख और काम, का विश्लेषण सर्वथा नूतन नाटकीय प्रणाली मे प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि मर्म मे पैठ कर देखने से यह एकाकी कुछ अपूर्ण सा प्रतीत होता है, तथापि इसमे जितना विषय प्रतिपादन हो सका है, उससे स्पष्ट होता है कि काम से भी प्रबल सस्कार क्षुधा का है तथा एक आदि मानव को दूसरे विपरीत लिंग के आदि मानव को देखकर जो मनोभाव उत्पन्न हुए होंगे वे प्रथम क्षुधा के ही होंगे, काम वासना के नही । यह प्रथम रचना है, जो आज भी हिन्दी के एकाकियो मे दिशा निर्देश तथा विचार स्वातन्त्र्य का महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित कर रही है । इसके छोटे छोटे सम्वाद मानों इस सत्य के ज्वलन्त प्रमाण हैं कि मनुष्य स्वभावत जो वार्त्तालाप करता है, वह छोटे छोटे टुकडो में है । दीर्घ वक्तव्य होने से सम्वाद मे नीरसता आती है, जो दर्शकों के मन पर अच्छा प्रभाव नही डालती । आपके एकाकी दो भागो मे विभक्त किए जा सकते हैं ।

(अ) सामाजिक एकाकी जैसे १ "टूटे हुए दिल २. कलक मोचन ३ वैतरणी के तीर पर ४ समझौता ।

(आ) सास्कृतिक एकाकी जैसे ५ पुनर्मिलन ६ जब दुनिया अबोध थी ७ धूपछाह (गीति नाट्य) आदि ।

१६ **श्री गणेशदत्त गौड 'इन्द्र'** इन्द्र के एकाकियो का प्रारम्भ "बलिदान" एकाकी से होता है जो २७ जनवरी सन् १९२७ को "हिन्दू पच" मे प्रकाशित हुआ था । यह पारसी शैली से प्रभावित पुराने ढग का एकाकी था । इसी शैली पर "मीठा जहर, लीला चमत्कार; भक्तराज नन्द, जित देखो तित वही है, जय बोलती हड्डी" इत्यादि धार्मिक पौराणिक एकाकी प्रसूत हुए हैं । इनमे गद्य-पद्यमय सवादो का प्रयोग किया गया है । इनके बाद इन्द्र जी ने लगभग ८०-९० एकाकियो की आधुनिक शैली मे रचना की है । जिनमें मुख्य एकाकी इस प्रकार हैं

(अ) ऐतिहासिक नैतिक १ विचित्र सयम २ विचित्र बालक ३ लीला चमत्कार ४ प्रत्युपकार ५ गुरवा परवरी ६ प्रेम और कर्त्तव्य ७ क्षत्रियो का कर्त्तव्य पालन ८ मुकुटधारी भिक्षुक ९ कुणाल १० कलिंग विजय ११ परिमार्जन १२ नारी पाप है १३ गर्द भिन्नोन्मूलन १४ कला का पुरस्कार १५ विजय महोत्सव १६ यह कैसी मजाक है १७ स्वाधीनता की देवी ।

आप ही सब कुछ खो बैठता है। किन्तु विजयी वर्ग को भी दंड मिलना चाहिए। क्योंकि वह भी हत्याए करता है और अशान्ति उत्पन्न करता है। इस श्रेणी मे आपके एटम से पहले और एटम के बाद आदि नाटक आते हैं।

(५) प्रहसन . पुराने अधविश्वासो को समूल नाश करने के हेतु या किसी विशेष मत को लेकर विभिन्न हास्यास्पद पात्र या मनोरजक व्यक्तियों को लेकर लिखे गये हैं। इनमे भी कोई न कोई मुख्य उद्देश्य वर्तमान रहता है, जैसे "कोयल" का उद्देश्य हिन्दी ही राष्ट्र भाषा हो सकती है यह दिखावा है। विभिन्न प्रान्तो के लोग बोलते है तो उन्हें हिन्दी की आवश्यकता होती है।

इनके अतिरिक्त मुक्तिदूत ने अनेक स्फुट नाटिकाए भी लिखी हैं। आपके एकाकियो का कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य रहता है। आप यहा तक मानते है कि सुखात एकाकी भी केवल मनोरजन ही देकर न रह जाय। आपके एकाकी रेडियो पर भी सफलता से प्रसारित होते रहते हैं।

१८. डा० सरनाम सिंह अरुण : डा० अरुण के एकाकियो की सख्या ४० के लगभग है जो १ नन्दिग्राम का तपस्वी २ साधना ३.एकावली ४ परित्याग ५ स्वर्ग-पतन ६ तपस्विनी ७ सत्य का दण्ड आदि एकाकी सग्रहो में प्रकाशित हुए है। इनमें सामाजिक, पौराणिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक एव हास्य व्यग्यमय कथानको को लेकर नाटक रचे गये है। सामाजिक विषयो की ओर आपकी विशेष प्रवृत्ति है।

डा० अरुण के एकाकी साहित्य की विशेषता मानव के अन्तर्जगत का चित्रण है। बाह्य सघर्ष की अपेक्षा आप पात्रो के अन्तर्संघर्षों में विशेष रुचि लेते रहे है। पात्रो के अन्त स्थल में प्रविष्ट होकर मनोवैज्ञानिक तूलिका से उन्होने अपने चित्र बनाए हैं। अपनी विशाल और व्यापक अनुभूतियों, स्थूल से सूक्ष्म के प्रति निरन्तर प्रयत्न, अन्तर्संघर्ष का चित्रण, भावात्मक आनन्द की प्रतीति द्वारा उन्होने अनेक सफल एकाकियो की सृष्टि की है। रस, वातावरण और मनोविज्ञान की ओर सतर्क रहे बिना मूल सवेदना नही उभरती। जब नाट्यकार का मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण जागरूक रहता है तो वह पात्र के हृदय में रहने वाली अनेक छोटी बडी भावनाओं का चित्रण सूक्ष्मता से प्रस्तुत करता है। प्रत्येक मूल भाव के अनुसार वातावरण का निर्माण होता है। डा० अरुण के एकाकियो का प्रधान आकर्षण सवेदना की दिशा में है। अनेक समस्याओ के होते हुए भी ये नाटक संवेदना के विकास में सुन्दर है। आपकी सफलता एक रस तथा मूल भावना के निर्वाह में है। एक मूल भाव लेकर अपने उपभावो के सहित इनका एकाकी अपने कलेवर की वृद्धि करता है। कथोपकथन तथा कार्यव्यापार भी एकाकी की मूल सवेदना को तीव्र करने में सचेष्ट रहते हैं।

संवेदनाए दो प्रकार की होती है। १ विस्फोटनमय और २ विकासमय। डा० अरुण ने दूसरी सवेदना को लिया है, जो समय और स्थान दोनो पर अधिकार

भापा सरल, सुवोध और स्पष्ट है।

१७ श्री जनार्दन मुक्तिदूत मुक्तिदूत का एकाकी साहित्य विविध विपयो को लेकर चलता है। सक्षेप मे हम उसका अध्ययन निम्न वर्गों के अन्तर्गत कर सकते हैं

(१) मनोवैज्ञानिक एकाकी इस वर्ग के एकाकी मानव स्वभाव की विकृतियो को लेकर वढते हैं। इनमे यह चित्रित किया गया है कि मूल और निर्दोष मानव स्वभाव मे मनोवैज्ञानिक विकृतिया आखिर क्यो उत्पन्न होती हैं। तथा जो भावना ग्रथिया मानव के अन्तंजगत मे गहनता से प्रविष्ठ हो जाती हैं, उनका उन्मूलन किस प्रकार किया जा सकता है अथवा जो व्यक्ति ऐसी भावना ग्रथियो के कारण अत्यन्त दीन-हीन जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें कैसे उठाया जा सकता है। पात्र लाभ उठाते हैं या न उठाते हो, किन्तु पाठक समझता है कि अमानवीय भावना लाभप्रद नही और न उससे उसका मूल्य वढता है। आपके इन एकाकियो की यह विशेषता है कि आपने किसी पात्र की कमजोरी को महत्ता प्रदान नही की है। इस वर्ग मे आपके १ गोद २ धुआ तथा ३ ऊपा मुसकाई ४ पाचवा सफा आदि एकाकी आते हैं।

(२) रोमाटिक तथा प्रणय के स्वस्थ दृष्टिकोण वाले एकाकी इन नाटको मे प्रेम के विभिन्न स्वस्थ दृष्टिकोण को लेकर कथानक निर्माण किए गए हैं। प्रेम सत्य है, प्रेम शिव है, प्रेम सुन्दर है। वासना नाम की वस्तु यद्यपि प्रेम से अधिक शक्तिशालिनी है पर वह प्रेम की राह में व्यवधान नही खडे कर सकती। प्रेम करना जीवनधारी का स्वभाव है, प्रेम मनुष्य स्वभाव का सबसे अधिक विकसित रूप है। कर्त्तव्य का पथ प्रेम का पुट पाकर और सीधा हो जाता है। इस वर्ग मे आपके १ सत्य और सनातन २ किनारा ३ घोघा और सीपी ४ नीद के बादल तथा ४ मृगतृष्णा आदि एकाकी आते हैं।

(३) सामाजिक एकाकी दलित और दुर्बलो मे प्राण भरने वाले ओजस्वी एकाकी इस वर्ग मे विशेष रूप से रखे जा सकते हैं। इनमे नारी मजदूर या निम्नवर्गीय मानव को पुनर्जन्म देने का सिद्धान्त मुख्य रूप से मोजूद है। नारी भी सम्पूर्ण मानवीय भावनाओ की अधिकारिणी है। उसे भी पुरुष के बराबर अधिकार हैं, या होने चाहिए। पुरुष को ही कोई विशेष अधिकार नही है। मानव समाज मे वर्ग भेद को तोडना होगा। मुक्तिदूत का नाट्यकार उस युग मे विश्वास करता है जब हर व्यक्ति बरावर होगा। इस वर्ग मे ये एकाकी आते है १ लच आवर २ मरुस्थल का गीत ३ गोविन्दी और ४ नीहारिका।

(४) मानवतावाद या विश्वशान्ति की भावना वाले एकाकी इनमे युद्ध को मानवता के लिए एक खतरा बताया गया है। यदि शान्ति स्थापित करने के लिए भी युद्ध लडना पडे तो वह और भी अशान्ति का कारण बन जायगा। एटम हमारी सभ्यता के लिए भयानक आविष्कार है। युद्ध में जो पराजित होता है, वह तो अपने

आप ही सब कुछ खो बैठता है। किन्तु विजयी वर्ग को भी दण्ड मिलना चाहिए। क्योंकि वह भी हत्याए करता है और अशान्ति उत्पन्न करता है। इस श्रेणी मे आपके एटम से पहले और एटम के बाद आदि नाटक आते हैं।

(५) **प्रहसन**: पुराने अधविश्वासो को समूल नाश करने के हेतु या किसी विशेष मत को लेकर विभिन्न हास्यास्पद पात्र या मनोरजक व्यक्तियों को लेकर लिखे गये हैं। इनमे भी कोई न कोई मुख्य उद्देश्य वर्तमान रहता है, जैसे "कोयल" का उद्देश्य हिन्दी ही राष्ट्र भाषा हो सकती है यह दिखावा है। विभिन्न प्रान्तो के लोग बोलते है तो उन्हें हिन्दी की आवश्यकता होती है।

इनके अतिरिक्त मुक्तिदूत ने अनेक स्फुट नाटिकाए भी लिखी है। आपके एकाकियो का कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य रहता है। आप यहा तक मानते है कि सुखात एकाकी भी केवल मनोरजन ही देकर न रह जाय। आपके एकाकी रेडियो पर भी सफलता से प्रसारित होते रहते हैं।

१८. डा० सरनाम सिंह अरुण : डा० अरुण के एकाकियो की सख्या ४० के लगभग है जो १ नन्दिग्राम का तपस्वी २ साधना ३ एकावली ४ परित्याग ५ स्वर्ग-पतन ६ तपस्विनी ७ सत्य का दण्ड आदि एकांकी सग्रहो मे प्रकाशित हुए हैं। इनमें सामाजिक, पौराणिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक एव हास्य व्यग्यमय कथानको को लेकर नाटक रचे गये है। सामाजिक विषयो की ओर आपकी विशेष प्रवृत्ति है।

डा० अरुण के एकाकी साहित्य की विशेषता मानव के अन्तर्जगत का चित्रण है। बाह्य सघर्ष की अपेक्षा आप पात्रो के अन्तर्संघर्षों में विशेष रुचि लेते रहे है। पात्रो के अन्तस्थल में प्रविष्ट होकर मनोवैज्ञानिक तूलिका मे उन्होंने अपने चित्र बनाए है। अपनी विशाल और व्यापक अनुभूतियो, स्थूल से सूक्ष्म के प्रति निरन्तर प्रयत्न, अन्तर्संघर्ष का चित्रण, भावात्मक आनन्द की प्रतीति द्वारा उन्होंने अनेक सफल एकाकियो की सृष्टि की है। रस, वातावरण और मनोविज्ञान की ओर सतर्क रहे बिना मूल सवेदना नही उभरती। जब नाट्यकार का मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण जागरूक रहता है तो वह पात्र के हृदय में रहने वाली अनेक छोटी बडी भावनाओं का चित्रण सूक्ष्मता से प्रस्तुत करता है। प्रत्येक मूल भाव के अनुसार वातावरण का निर्माण होता है। डा० अरुण के एकाकियो का प्रधान आकर्षण सवेदना की दिशा में है। अनेक समस्याओ के होते हुए भी ये नाटक सवेदना के विकास में सुन्दर है। आपकी सफलता एक रस तथा मूल भावना के निर्वाह में है। एक मूल भाव लेकर अपने उपभावो के सहित इनका एकाकी अपने कलेवर की वृद्धि करता है। कथोपकथन तथा कार्यव्यापार भी एकाकी की मूल सवेदना को तीव्र करने में सचेष्ट रहते है।

संवेदनाए दो प्रकार की होती है। १. विस्फोटनमय और २. विकासमय। डा० अरुण ने दूसरी सवेदना को लिया है, जो समय और स्थान दोनो पर अधिकार

रखती है। एकाकी की सवेदना मुक्तक पद की सवेदना से भिन्न होती है। मुक्तक पद में उसका विकास वाछनीय है। वहा तो विकसित सवेदना की योजना ही इष्ट रहती है, किन्तु एकाकी में विकासहीन सवेदना अपनी प्रभावोत्पादकता खो बैठती है। डा० अरुण ने विकासमय सवेदना का मार्ग ग्रहण किया है। उनके एकाकी साहित्यक दृष्टि से सफल है। अभिनय-तत्व की ओर उनकी दृष्टि नही रही है, वे सुपाठ्य हैं।

आपके मनोवैज्ञानिक नाटको में 'ममता" और "साधना" विशेष उल्लेखनीय हैं। ममता में नारी के वात्सल्यमय ममत्व तथा "साधना" में विरह और व्याकुलता का चित्रण है। "प्रेम परीक्षा" सास्कृतिक राजनीतिक नाटक है, "स्वर्गपतन" में नहुप की वासना लोलुपता, मदान्धता, अत्याचार विवेकशून्यता, क्रोध और आत्म नियत्रण की कमी का चित्रण है। सामाजिक नाटको में "आशीर्वाद", "रबड का बुल्ला", "गूढ न्याय", "तपस्विनी", "आदर्श का पिशाच", "चालबाज", "भगवदिच्छा बलीयसी", "विवेकी" इत्यादि में यथार्थवाद का चित्रण किया गया है। इनमें आपने समाज की विद्रूपताओ को उभारा है। यथार्थ के साथ इनमें आदर्श की ओर सकेत भी है। आपके एकाकियो का आधार मनोविज्ञान है। कुछ भावात्मक नाटक जैसे "क्रोध विजय" मनोविकारो के सीधे अध्ययन हैं। प्रहसनो में "घोडे वाले", "आशीर्वाद", "रबड का बुल्ला", व्यग्यात्मक नाटक है। इनकी भाषा सस्कृत शब्दो से परिपूर्ण क्लिष्ट है। इनमें प्रभाव व्यजक रग सकेतो की न्यूनता है। दृश्यो की अधिकता के कारण इनकी सवेदना सम्पूर्ण नाटक में फल गई है। अभिनय तथा रगमच की ओर दृष्टि नही है।

१६ अनन्त कुमार पाषाण : पाषाण जी के प्रथम एकाकी "नारायणी" (१९४५) का विषय है नारी के प्रेरणारूप की शक्ति का प्रतिफलन और प्रकृति का आग्रह है। उसकी शैली रूपक जैसी है। दूसरे एकाकी "युग का आग्रह" का विषय है। एक सगीत प्रेमी युवक का शोषितो के लिए प्राणदान और उसके फलस्वरूप उस युवक के माता पिता का युगाग्रह पर कर्मशील होने को सन्नद्ध होना। तीसरा एकाकी "आदि का अन्त" (१९४७) है, जिसमें प्रेम का आदर्श रूप अकित करने का प्रयत्न किया गया है। एक राजकुमारी का एक साधारण सैनिक के प्रति प्रेम तथा बलिदान चित्रित किया गया है। ये प्रारम्भिक रचनाए हैं, जो रोमान्टिक है और अपरिपक्व है। "महारानी रूपवती" मालवे की महारानी के चरित्र गौरव पर आधारित रचना है। "ऋतुराज" (१९४६) प्रथम प्रौढ रचना है, जो वसन्त के वैभव पर एक रूपक है। इसमें बहुत गम्भीर तत्व प्रहसनात्मक शैली में व्यक्त हुए है।

एक आलोचक ने लिखा है "ऋतुराज" नामक गीतिनाट्य हमारी जान में हिन्दी भाषा का प्रथम ही मौलिक प्रयत्न है। सस्कृत नाटक के उपभेदो के लक्षणो पर ध्यान देते हुए "ऋतुराज" की सगति हम प्रकरण में लगा सकते हैं। इसमें एक

ही गीतिपूर्ण अक है ।"[1]

"हडताल और उपवास" गाधी जी के खेडा के किसान व मजदूरो से सम्बन्धित है । विषय है हडताल में आने वाली कठिनाइया व विशाल नेतृत्व द्वारा उनका शान्तिमय समाधान । इसमें गाधी जी के व्यक्तित्व को मंच पर उपस्थित करने की चेष्टा है पर अपने टैकनीक में निर्बल है ।

अपने नए एकाकियो में पाषाण जी सामाजिक विषय लिए हैं । जैसे "पतझर के फूल" (१९५४) अनेक युवतियों से रटी रटाई बातें बोल कर प्रणय सिद्ध करने वाला एक युवक रामलाल इसका मुख्य पात्र है । वह एक काग्रेस मिनिस्टर का सेक्रेट्री भी है । उसी के चरित्र के इर्द गिर्द कथा प्रवाह चलता है । "बर्फ की चट्टानें" (१९५४) एक प्रहसन है । आदर्श की दुहाई देने वाली नटी मुनाफाखोर मारवाडी नाटक कम्पनी के मैनेजर से विद्रोह करती है । उसने "बर्फ की चट्टानें" नामक एक ऐसा नाटक लिखा है जो नैतिक उत्कर्ष की प्रतिष्ठा करेगा । लगता है कि नटी कर गुजरेगी । मगर उस नाटक कम्पनी में काम करने वाले "लैला मजनू" खेल के लेखक से उसका सामना होता है । उस छिछोरे लेखक की खुशामद से प्रसन्न होकर वह उसके प्रणयपाश में बध जाती है । आदर्श वाक्य सब समाप्त हो जाते हैं । यहा तक कि "रगीली सेठानी" नामक सस्ते रोमास प्रधान नाटक में उसी लेखक के साथ वही हीरोइन का पार्ट करने को प्रस्तुत हो जाती है । कथनी और करनी में कितना अन्तर होता है, यह स्पष्ट किया गया है । टैकनीक की दृष्टि से इस प्रहसन में दो कथाए एक साथ चलकर अन्त में मिल जाती हैं । एक साथ मंच पर दो नाटकों की व्यवस्था है ।

"सूनी सडकें" (१९५५) चरित्र प्रधान एकांकी है । विषय है एक अतिशय भावुक युवक जो कर्मशील जगत के संघर्ष से घबराकर आत्महत्या करने जा रहा है । रात को क्रम से उसकी भेंट उठाईगीर छोकरो, पुलिस कास्टेबिल, व एक गार्ड से होती है । इन सब मुलाकातो में कर्म की गरिमा से दूर मात्र कल्पना के ससार का खोखलापन उभरता आता है । युवक जिस पत्नी से विरक्त होकर आत्महत्या करना चाहता है, अन्ततोगत्वा वही पत्नी आत्महत्या कर लेती है । अपने मातृहीन पुत्र के सरक्षण को उसे फिर कर्म जगत में आ जाना पडता है । इसमें नाटककार जिन निष्कर्षों पर पहुँचता है, वह इस प्रकार कहे जा सकते हैं । "मुक्ति पलायन से नहीं, स्वीकृति से मिलती है । स्वीकृति की सम्भावना तभी है, जब अहकार न रहे ।"

"किलकिलाने के कांवे" (१९५५) प्रहसन में गोरो के उपनिवेशवाद पर व्यग्य है और उन पाखडी धर्म के सिपाहसालारो का चित्रण है, जो धर्म को कलकित करते हैं और अहंकार के बलबूते पर आश्वस्त रहते हैं । "गर्द के गुम्बद" (१९५५) में

---

[1] देखिए "वीणा", अप्रेल १९४६, पृष्ठ २६२, सम्पादकीय ।

एक पति का चित्रण है, जो अहंकार से कायरता पर उतर आता है। ये सभी रचनाएं अभिनेय हैं। इनका सविधान मचीय है।

२० सत्यदेव शर्मा आपके एकांकियों का क्षेत्र मध्यवर्ग की सामाजिक समस्या है, किन्तु इनके अतिरिक्त आपने पौराणिक समस्याओं पर भी कुछ एकांकी लिखे हैं। प्रथम वर्ग में आपके "डाक्टर, नर्तकी और साधना" आदि सामाजिक यथार्थवादी एकांकी तथा दूसरे में मीराबाई और उर्मिला आदि रखे जा सकते हैं। आपकी अभिव्यक्ति में मनोवैज्ञानिकता की पृष्ठभूमि और पात्रों तक चरित्र चित्रण में गहनता होती है। यथार्थवादी सामाजिक जीवन के चित्र खीचने में आप वशेष प है। आपके एकांकियों का एक आकर्षण, कथानक पटुता एवं कथोपकथनों की मार्मिकता है। "डाक्टर" एक सफल मनोवैज्ञानिक एकांकी है जिसमें आत्मग्लानि का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। डाक्टर के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रण करने में नाटककार को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। डाक्टर इन्सान भी है, देवता भी। "नर्तकी" एकांकी में एक चित्रकार का बलिदान और कला के प्रति साधना प्रकट की गई है। एक नर्तकी उसे प्रेम करती है, वह चित्रकार की कला की प्रेरणा है। चित्रकार अपनी कला के द्वारा नर्तकी को अमर बना देता है, वासना के छिछले स्तर पर नहीं उतारता चित्रकार के चरित्र के गौरव, पवित्रता, कर्त्तव्य भावना तथा कला साधना का अच्छा विवेचन हुआ है।

साधना में एक ऐसे कवि का चित्रण खीचा गया है जो दिल की गहराइयों को धीरे-धीरे समझकर सच्चे अर्थों में कवि बनता है। अन्त में वह मिलन की मधुर वेला त्याग कर विरह के लम्बे मार्ग पर चल देता है। इसमें कवि हृदय का अच्छा विश्लेषण है।

"मीराबाई" ऐतिहासिक एकांकी है। मीरा के व्यक्तित्व के विकास को चित्रित करना नाट्यकार का ध्येय रहा है। मीरा के प्रेम विह्वल विरह-विदग्ध हृदय तथा राज मर्यादा स्थिर रखने के लिए विक्रम से मीरा का सघर्ष सुन्दर बन पड़ा है। "उर्मिला" में विरहणी उर्मिला के हृदय की धड़कनों को चित्रित करने की चेष्टा की गई है। शर्मा जी के एकांकियों के कथानक पुष्ट होते हैं। सहज स्वाभाविकता के साथ साथ उनमें यत्र तत्र काव्य स्पर्श है। वे मर्म पर प्रहार करते हैं। शब्द चयन में कोमलता और साहित्यिक अभिरुचि का परिचय मिलता है।

२१. गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश गिरीश जी के "दो राहें, त्रिवेणी, डाक्टर, जल्लाद, लौहपुरुष, बादल का दान, चोरी के पैसे, सिगरेट का धुआ, शर्मा जी का विवाह, निराशा की खेती" आदि एकांकी प्रकाशित हुए हैं। "त्रिवेणी" पौराणिक एकांकी है, जिसमें तर्कपूर्ण ढग से गगा यमुना और सरस्वती के सगम की नए ढग से विवेचना है। "दो राहों' में जमीदारों के ग्रामीणों पर अत्याचार पर धीरे-धीरे ग्रामीणों में जागृति की भावना का चित्रण है। निरकुशता और अत्याचार के विरुद्ध आवाज ऊची की गई है। "त्रिवेणी" एकांकी के अतिरिक्त गिरीश जी के अन्य

एकांकी समस्यामूलक हैं। उनका यथार्थवाद प्रचलित यथार्थ से सर्वथा भिन्न है। प्रचलित यथार्थवाद तो भौतिकवादी है, पर उनका यथार्थवाद भारतीय आत्मवाद की संगति में है। बर्नार्ड शा का अनुकरण कर कुछ नाटककारों ने हिन्दी नाट्यकला में ऐसी भूख और प्यास चित्रित करने का प्रयत्न किया है जो हमारे समाज की प्रकृत भूख और प्यास नहीं है। अस्वाभाविक आवश्यकताओं और अभावों का चित्रण न कर गिरीश जी सत्य के वास्तविक यथार्थवाद का कल्याणकारी स्वरूप समझते हैं, जो प्राय असत्य के घने वातावरण में रहता है और मोहग्रस्त होने के कारण जिसे जन साधारण स्वयं तो सम्मुख नहीं ला सकता, किन्तु साहित्य रचना के माध्यम से साकार आह्लादित हो जाता है।

गिरीश जी के एकांकियों की प्रिय समस्याएं हैं . पौराणिक कथाओं का वैज्ञानिक दिग्दर्शन जैसे 'त्रिवेणी" में वैयक्तिक समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, आत्मवाद के केन्द्र में रख कर सामाजिक प्रगति का विधान। गिरीश जी का मत है कि इब्सन आदि नाटककारों की पद्धति पर आधुनिक नाटकों में जो गीत का बहिष्कार किया जाता है वह ठीक नहीं है। वे उचित स्थलों पर जहां भाव को तीव्रता देने के लिए उनका उपयोग सहायक हो सकता है, गीत का समावेश आवश्यक मानते हैं। "दो राहें" और "त्रिवेणी" दोनों एकांकियों में प्रयुक्त गीत स्वाभाविक ढंग से सजाये गये हैं। सामाजिक एकांकियों में वे असाधारण पात्रों द्वारा कथानक का रूप विधान नहीं पसन्द करते। जैसे चरित्र समाज में सभव है, उन्हीं के द्वारा नाटकीय कार्य का निर्वाह उन्हें मान्य है।

२२. डा० कृष्णदत्त भारद्वाज : डा० कृष्णदत्त भारद्वाज पौराणिक कथावस्तु को आधार मानकर एकांकी क्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं। "प्रह्लाद, सोने की वर्षा, वृन्दा, मिथिला" आदि एकांकियों में पौराणिक कथावस्तु का प्रतिपादन नवीन एवं बौद्धिक ढंग से हुआ है। आपके एकांकियों में अनेक प्राचीन रहस्यों का उद्घाटन मिलता है।[1] "प्रह्लाद" में एक भक्त का चरित्र अभिनव रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन कथानक की भित्ति पर प्रतिष्ठित होने पर भी वर्णन शैली के कारण नूतन वस्तु का आनन्द उपलब्ध होता है। बालकों में आस्तिक भावना, बलिदान भावना और निष्ठा उत्पन्न करने की दृष्टि से सफल है। कथानक को मार्मिक संवादों के द्वारा पल्लवित करते हुए नाटककार ने स्थान स्थान पर छोटी छोटी कवितामयी उक्तियां भी बड़ी मार्मिक अभिव्यंजना के साथ रखी हैं। अपनी नूतन शैली में वह एकांकी जहां अभिनेय है, वहां सुश्राव्य भी है।[2] सोने की वर्षा[3] कालिदास की अमर कृति "रघुवंश" पर आधा-

---

१. देखिए प्रो० अमर चन्द, एम० ए० "एकांकी पंचक" भूमिका में।

२ देखिए प्रो० वेदव्रत शर्मा, एम० ए० "आदर्श एकांकी" भूमिका में।

३ लेखक की पत्नी द्वारा लिखित।

एक पति का चित्रग है, जो अहकार से कायरना पर उतर आता है। ये सभी रचनाए अभिनेय है। इनका सविवान मचीय है।

२०. **सत्यदेव शर्मा** आपके एकाकियो का क्षत्र मध्यवर्ग की सामाजिक समस्या है, किन्तु इनके अतिरिक्त आपने पौराणिक समस्याओ पर भी कुछ एकाकी लिखे है। प्रथम वर्ग ँ आपके "डाक्टर, नर्तकी और साधना" आदि सामाजिक यथार्थ-वादी एकाकी तथा दूसरे में मीराबाई और उर्मिला आदि रखे जा सकते हैं। आपकी अभिव्यक्ति में मनोवैज्ञानिकता की पृष्ठभूमि और पात्रो तक चरित्र चित्रण में गहनता होती है। यथार्थवादी सामाजिक जीवन के चित्र खीचने में आप वशेष प हैं। आपके एकाकियो का एक आकषर्ण, कथानक पटुता एव कथोपकथनो की मार्मिकता है। "डाक्टर" एक सफल मनोवैशानिक एकाकी है जिसमें आत्मग्लानि का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। डाक्टर के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रण करने में नाटककार को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। डाक्टर इन्सान भी है, देवता भी। "नर्तकी" एकाकी में एक चित्रकार का वलिदान और कला के प्रति साधना प्रकट की गई है। एक नर्तकी उसे प्रेम करती है, वह चित्रकार की कला की प्रेरणा है। चित्रकार अपनी कला के द्वारा नर्तकी को अमर वना देता है, वासना के छिछले स्तर पर नही उतारता चित्रकार के चरित्र के गौरव, पवित्रता, कर्त्तव्य भावना तथा कला सावना का अच्छा विवेचन हुआ है।

साधना में एक ऐसे कवि का चित्रण खीचा गया है जो दिल की गहराइयो को धीरे-धीरे समझकर सच्चे अर्थों में कवि वनता है। अन्त में वह मिलन की मधुर वेला त्याग कर विरह के लम्बे मार्ग पर चल देता है। इसमें कवि हृदय का अच्छा विश्ले-षण है।

"मीराबाई" ऐतिहासिक एकांकी है। मीरा के व्यक्तित्व के विकास को चित्रित करना नाट्यकार का ध्येय रहा है। मीरा के प्रेम विह्वल विरह-विदग्ध हृदय तथा राज मर्यादा स्थिर रखने के लिए विक्रम से मीरा का सघर्ष सुन्दर वन पडा है। "उर्मिला" में विरहणी उर्मिला के हृदय की धडकनो को चित्रित करने की चेष्टा की गई है। शर्मा जी के एकांकियों के कथानक पुष्ट होते हैं। सहज स्वाभाविकता के साथ साथ उनमें यत्र तत्र काव्य स्पर्श है। वे मर्म पर प्रहार करते हैं। शब्द चयन में कोमलता और साहित्यिक अभिरुचि का परिचय मिलता है।

२१ **गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश** गिरीश जी के "दो राहें, त्रिवेणी, डाक्टर, जल्लाद, लौहपुरुष, वादल का दान, चोरी के पैसे, सिगरेट का धुआ, शर्मा जी का विवाह, निराशा की खेती" आदि एकाकी प्रकाशित हुए हैं। "त्रिवेणी" पौराणिक एकाकी है, जिसमें तर्कपूर्ण ढग से गगा यमुना और सरस्वती के सगम की नए ढग से विवेचना है। "दो राहो' में जमीदारो के ग्रामीणो पर अत्याचार पर धीरे-धीरे ग्रामीणो में जागृति की भावना का चित्रण है। निरकुशता और अत्याचार के विरुद्ध आवाज ऊची की गई है। "त्रिवेणी" एकाकी के अतिरिक्त गिरीश जी के अन्य

एकांकी समस्यामूलक हैं। उनका यथार्थवाद प्रचलित यथार्थ से सर्वथा भिन्न है। प्रचलित यथार्थवाद तो भौतिकवादी है, पर उनका यथार्थवाद भारतीय आत्मवाद की सगति में है। बर्नार्ड शा का अनुकरण कर कुछ नाटककारो ने हिन्दी नाट्यकला में ऐसी भूख और प्यास चित्रित करने का प्रयत्न किया है जो हमारे समाज की प्रकृत भूख और प्यास नही है। अस्वाभाविक आवश्यकताओ और अभावो का चित्रण न कर गिरीश जी सत्य के वास्तविक यथार्थवाद का कल्याणकारी स्वरूप समझते हैं, जो प्राय असत्य के घने वातावरण में रहता है और मोहग्रस्त होने के कारण जिसे जन साधारण स्वय तो सम्मुख नही ला सकता, किन्तु साहित्य रचना के माध्यम से पाकार आह्लादित हो जाता है।

गिरीश जी के एकांकियो की प्रिय समस्याए हैं पौराणिक कथाओ का वैज्ञानिक दिग्दर्शन जैसे 'त्रिवेणी" में वैयक्तिक समस्याओ का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, आत्मवाद के केन्द्र में रख कर सामाजिक प्रगति का विधान। गिरीश जी का मत है कि इब्सन आदि नाटककारो की पद्धति पर आधुनिक नाटको में जो गीत का बहिष्कार किया जाता है वह ठीक नही है। वे उचित स्थलो पर जहा भाव को तीव्रता देने के लिए उनका उपयोग सहायक हो सकता है, गीत का समावेश आवश्यक मानते हैं। "दो राहें" और "त्रिवेणी" दोनो एकांकियो में प्रयुक्त गीत स्वाभाविक ढग से सजाये गये हैं। सामाजिक एकांकियो में वे असाधारण पात्रो द्वारा कथानक का रूप विधान नही पसन्द करते। जैसे चरित्र समाज में सभव है, उन्ही के द्वारा नाटकीय कार्य का निर्वाह उन्हें मान्य है।

२२. डा० कृष्णदत्त भारद्वाज · डा० कृष्णदत्त भारद्वाज पौराणिक कथावस्तु को आधार मानकर एकांकी क्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं। "प्रह्लाद, सोने की वर्षा, वृन्दा, मिथिला" आदि एकांकियो में पौराणिक कथावस्तु का प्रतिपादन नवीन एवं बौद्धिक ढग से हुआ है। आपके एकांकियो में अनेक प्राचीन रहस्यो का उद्घाटन मिलता है।[1] "प्रह्लाद" में एक भक्त का चरित्र अभिनव रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन कथानक की भित्ति पर प्रतिष्ठित होने पर भी वर्णन शैली के कारण नूतन वस्तु का आनन्द उपलब्ध होता है। बालको में आस्तिक भावना, बलिदान भावना और निष्ठा उत्पन्न करने की दृष्टि से सफल है। कथानक को मार्मिक सवादो के द्वारा पल्लवित करते हुए नाटककार ने स्थान स्थान पर छोटी छोटी कवितामयी उक्तिया भी बडी मार्मिक अभिव्यजना के साथ रखी है। अपनी नूतन शैली में यह एकांकी जहा अभिनेय है, वहा सुश्राव्य भी है।[2] सोने की वर्षा[3] कालिदास की अमरकृति "रघुवंश" पर आधा-

---

१. देखिए प्रो० अमर चन्द, एम० ए० "एकांकी पञ्चक" भूमिका में।
२ देखिए प्रो० केवल आर्य, एम० ए० "आदर्श एकांकी" भूमिका में।
३ लेखक की पत्नी द्वारा लिखित।

रित है। "वृन्दा" में तुलसी के पौत्रे को व्यक्तिकृत किया गया है तथा पौराणिक व्याख्यानो को सयुक्त कर तुलसी की महिमा को प्रस्तुत कर दिया है। "मिथिला" का कथानक वाल्मीकि रामायण से लिया गया है जिसमे श्री राम लक्ष्मण का विश्वामित्र जी के साथ शोण, गगा और विशाला होते हुए मिथिला पहुचने और वहा श्रीराम के द्वारा धनुर्भग का प्रदर्शन हुआ है। कथा प्राचीन है, पर इसे अभिनव और अभिनेय रूप में अकित किया गया है। याज्ञवल्क्य के प्रसग के अतिरिक्त अन्य सभी बातें वाल्मीकि सम्मत हैं और याज्ञवल्क्य का प्रसग उपनिषद के आधार पर है। नैतिक आदर्शवादी उद्देश्य से ये रगमच के लिए रचे गए है। डा० भारद्वाज के एकाकियो की भाषा क्लिष्ट और सस्कृत गर्भित है। नाट्यविधान की दृष्टि से ये पुरानी शैली के हैं।

२३ **श्री विट्ठलदास कोठारी** कोठारी जी के दो एकाकी सग्रहो "पुष्पाजली और दहेज" में दस एकाकी है, जो धार्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक भावना से अनुप्राणित है। इनका नैतिक स्तर ऊचा है। इनमें सवादो की प्रमुखता है और कथानक शिथिल हैं। इनमें नैतिक भावनाओ की प्रमुखता है और इसी प्रचार की दृष्टि से इनका निर्माण हुआ प्रतीत होता है। नाटककार के आधुनिक मानव के मन को आलोडित तथा विपाक्त करने वाले विचार सघर्षों का शास्त्र, तर्क और युक्तिपूर्वक मथन करके भारतीय सस्कृति का प्रतिपादन किया है। वह प्राचीन भारतीय सस्कृति के आधार पर वर्तमान सामाजिक जीवन के निर्माण के पक्ष में है। अत उसके अर्वाचीन तर्क शैली में प्राचीन संस्कृति के मूलाधारो का प्रतिष्ठा सस्कृत के गभीर श्लोको के आधार पर किया है। वातावरण के सर्जन तथा रस सचार के लिए कथोपकथन विस्तृत हो गए हैं और नाटकीयता को आघात पहुचा है। स्थल स्थल पर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का आश्रय लिया गया है। एकाकी अश्लीलता से पृथक है पर केवल पठन पाठन मात्र की वस्तु रह गये हैं। शिष्ट, मृदु हास्य, व्यग्यपूर्ण शैली, गूढ विचार सदोहन, सस्कृति गर्भित भाषा, और लोकोक्ति सस्कृति श्लोको के उद्धरणो के कारण ये अध्ययन के वस्तुमात्र हैं, अभिनय के नही।

२४. **लक्ष्मीनारायण अग्रवाल** रगमच को दृष्टि में रख दृश्यो के परिवर्तन का उपयुक्त समन्वय और कथानक की सरसता को लेकर श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल के १ काश्मीर घाटियो में २ स्वप्न निर्माता ३ प्यार का तूफान ४ मृत्यु पथ ५ बेकारो की बैठक ६. नया रास्ता आदि नाटक लिखे है। लेखन के अतिरिक्त श्री अग्रवाल अभिनय तथा निर्देशन भी करते हैं।[1] रगमच का क्रियात्मक अनुभव होने के

---

१ मेरा मत है कि नाटक मच पर खेले जाने के लिए लिखा जाना चाहिए। ऐसे नाटक जो मंच पर नहीं खेले जा सकते। हिन्दी मच के विकास के लिए घातक। हैं अच्छे हिन्दी नाटकों के अभाव के कारण ही हिन्दी रगमच पिछड़ा हुआ है। मेरा यह भी मत है कि नाटककार को केवल नाटक के सिद्धान्त जानना ही आवश्यक नहीं है वरन अच्छे नाटकों के लिए नाटककार को टेबिल कुर्सी छोड़ मच पर भी उतरना चाहिए।—श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल - पत्र ता० २१-८-५५ से उद्धत।

कारण उनके एकाकी अभिनेय हैं। आपने सामाजिक, ऐतिहासिक, सास्कृतिक सभी विषयो पर एकाकी लिखे हैं। छोटे बच्चो द्वारा अभिनय किये जाने वाले कुछ एकांकी भी विशेष रूप से लिखे हैं। दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख रहता है। पर गौणरूप में जनता का मनोरजन करना, नई उमग भरना, स्वस्थ भावना का संचार करना उनका उद्देश्य है। पाश्चात्य दुखान्त नाटको के स्थान पर उनकी रचनाओ में भारतीय आनन्दवाद अधिक स्पष्ट हुआ है। हिन्दी मंच के लिए स्त्री पात्र कठिनता से मिलते है। अस्तु आपके "मृत्यु पथ" तथा "बेकारो की बैठक" में केवल पुरुष पात्र ही हैं। उनके एकांकियों में पर्याप्त क्रियाशीलता या एक्शन है, ध्वनि और प्रकाश सकेतों की ओर भी ध्यान है और उनका दृश्य निर्माण इससे प्रभावित है। उन्होने वे ही दृश्य रखे हैं, जो मंच पर सरलता से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। टैकनीक के क्षेत्र में वे पाश्चात्य नाटको से प्रभावित हैं पर विषय के सम्बन्ध में स्वतत्र हैं। "स्वप्न निर्माता" ही उनका एक अंग्रेजी से अनुवादित एकाकी है, शेष मौलिक कृतिया हैं।

२५. प्रो० इन्दुशेखर : सामाजिक रूढियों पर व्यंग्य करते हुए प्रो० इन्दुशेखर ने अपने एकाकियो का निर्माण किया है। "आपके मेहमान (१९४७), महल्ले की आबरू (१९५१), जीवन (१९४६ प्रतीक रूपक), काफी हाउस, तूफान, गुरु दक्षिणा (१९५५), राजसूय यज्ञ (१९५५)" आदि एकांकी प्रकाशित हुए हैं। आपने आधुनिक शिष्ट जीवन, राजनीतिक, सामाजिक रूढ़ियो तथा साहित्य कला सम्बन्धी विद्रूपताओं को उभारा है। हमारे राष्ट्रीय जीवन की दुर्बलताएं सभ्यता के ढोंग भरने वालों के स्वार्थ, दिखावा, झूठ फरेब, सामाजिक जीवन की सकुचितता, फैशन, लापरवाही, मिथ्या प्रदर्शन इत्यादि पर व्यंग्यात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला है।

"महल्ले की आबरू" में सामाजिक जीवन की नैतिक कुरूपता, शकगुबे की आदत, समाज के दावेदारो की दुष्प्रवृत्तिया चित्रित की गई हैं। "जीवन" प्रतीक रूपक में भाव, नृत्य, गीत और अभिनय के सफल प्रयोग हैं। "काफी हाउस" में विवाह प्रथा का विश्लेषण नए रूप में किया गया है। यह सैक्स का अध्ययन है जिसमें दिखाया गया है कि जैसा पुरुष ने नारी को बनाया है, वैसी ही वह बन गई है। नारी एक ऐसी मिट्टी है, जिसे जैसा चाहो ढाल सकते हो। "तूफान" में नारी का समाज के प्रति विद्रोह है। नारी पर लगाए गए सामाजिक प्रतिबन्धो के विरुद्ध वह एक जोरदार आवाज बुलन्द करता है। "गुरु दक्षिणा" में एक ऐसे संगीताचार्य का चित्रण है, जो बड़े कट्टर हैं। स्त्रियो को अपने आश्रम में प्रविष्ट नहीं होने देते। बड़ी कठिनता से एक लड़की ली जाती है। वह लडकी एक लड़के से प्रेम करने लगती है। सगीताचार्य यह अनुभव करते हैं कि होनहार लड़के का पतन होता जा रहा है और वह उनका नाम नहीं रख सकेगा। अत वह लड़की का गला घोंट देते हैं। क कला की सृष्टि के लिए दूसरी कला की हत्या कर देते हैं। वसन्तोत्सव के दिन लड़का उसके विरह में इतना व्याकुल होता है कि उसका ओज नष्ट हो जाता है। लड़का विषपान कर गुरु दक्षिणा देता है।

"राजसूय यज्ञ" एक पौराणिक एकांकी है, जिसमें लव कुश का राम मिलन है चित्रित किया गया है। इसमें राम और लव के चित्रो का तुलनात्मक अध्ययन है। राम का स्त्रैण तथा लव का उद्दीप्त चरित्र दिखाया गया है। राम लव के समक्ष नत मस्तक हो जाते हैं। यह न जानते हुए कि उनका पुत्र है, राम चाहते हैं लव उनके साथ रहे। सम्मिलन में पिता पुत्र का भाव इतना नही है, जितना ओज और स्त्रैण भावो का तुलनात्मक अध्ययन है।

निष्कर्ष यह है कि प्रो० इन्दुशेखर के कथानक सर्वथा नये दृष्टिकोण को लेकर बनते हैं। उन्होने नए विचारो को लेकर रूढ़िवादिता का उन्मूलन करते हुए सफल पाठ्य एकाकी लिखे हैं। विचार, समस्या और टैकनीक तीनो दृष्टियो से ये सफल एकाकी हैं। अभिनय के लिए इनका निर्माण नही हुआ है।

२६. श्रीमती विमला लूथरा, एम० ए० आपने विशेष रूप से अग्रेजी एकाकी से प्रभावित व्यग्य के प्रयोग में अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनके नाटको में लेखिका का व्यक्तिगत अह भी स्पष्ट प्रकट होता है। समाज कैसा है, कैसा होना चाहिए। यह प्रश्न आपको चिंतित नही करता। व्यक्तिगत जीवन में आपका जिस जिस व्यक्ति से सम्पर्क पडा है, उन्ही की बनावटी बातें, कृत्रिम लोक व्यवहार, झूठी रहन सहन, सामाजिक खोखलापन आपको लिखने के लिए प्रेरणा तथा व्यग्य कटाक्ष करने के लिए विवश कर देता है। हमारे पढे-लिखे सभ्यता का दावा भरने वाले मध्य-वर्गीय समाज में यह खोखलापन अधिकतर दिखाई देता है। वही इनके एकाकियो के पात्र हैं। आप अग्रेजी में भी एकाकी लिखती हैं। अभी तक आपके १ गृहलक्ष्मी (१९४७) २. मुन्ने का नामकरण (१९४८) ३ प्रीतिभोज (१९४८) ४ टाट और सुतली (१९४७) ५. धोबी का आगमन (१९४९) ६ सगाई का प्रवन्ध (१९४९) ७ लाइन क्लीयर (१९५०) ८. आल इडिया रेडियो पर तानसेन (१९४९) ९ टिकिट चेकर (१९४९) १० आठवा आश्चर्य (१९५०) ११ बलिदान (१९४९) १२ कला के दावेदार (१९५०) १३ काश्मीर की सैर (१९५२) १४. बचपन का फेर (१९५२) १५ हीरोइन (१९५३) १६ कलाकार और नारी (१९५४) १७ आवागमन (१९५५) आदि एकाकी प्रकाशित हुए हैं। व्यग्य और कटाक्ष का नवीनतम प्रयोग आपकी कुशलता का परिचायक है। आपकी पैनी दृष्टि मध्यवर्ग के सामाजिक और सार्वजनिक जीवन, दिखावे मिथ्याचार तथा कृत्रिम खोखलेपन की जडो तक पहुची है और आपके एकांकियों मे एक हास्यमिश्रित व्यग्य के साथ ये उभरी है। आपकी शैली यथार्थवादी है, अतिरजना शैली का सहारा लेने की आपको आवश्यकता नही पडती है। आपके पात्र कार्टून नही है। हास्य स्थल नही है और परिस्थितिया भी असाधारण नही हैं। सभ्य कहलाने वाले आधुनिक सभ्य और सुसस्कृत जीवन में ही अपने अट्टाहास की सामग्री खोज निकाली है। आजकल के सामाजिक एव राजनीतिक जीवन की कमजोरियो को इन एकांकियो में चित्रित देखकर हम हस

उठते हैं। इनके एकांकियो में अंग्रेजी नाटकों जैसे व्यंग्य का सफल प्रयोग है। लगभग सभी एकांकियो की पृष्ठभूमि आज का मध्यवर्ग और उच्च मध्यवर्ग ही है। उन्ही के जीवन और समस्याओ का यह सच्चा दर्पण है। पढने में दिलचस्प और अभिनय के लिए भी आसान है।

२७. कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह, एम० ए० कुवर साहब के एकांकी साहित्यिक दृष्टिकोण से कवियो के जीवन, तथा विचारो को नाटकीय रूप मे प्रस्तुत करने के लिए लिखे गए है। आपने सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर साहित्यिक युग की विचारधाराएं, हिन्दू संस्कृति में जीवन दर्शन, आचरण की सभ्यता, त्यागमयी परम्परा, दैवी सम्पदा के समस्त गुणो से प्रेम, आत्मा की महत्ता, आदर्श एव यथार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया है। आप हिन्दू सस्कृति की आत्मा के पुजारी हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जो विषय उपेक्षित रहे हैं, उनका आपने नाटकीय दृष्टि से प्रतिपादन किया है तथा सांस्कृतिक विकास मे कवियो की उदात्त प्रेरणाएं चित्रित की है। आपके निम्न एकांकी उपलब्ध हैं १. तुलसीदास २. महाकवि चन्द्र ३ कविवर भूषण ४ "भारतेन्दु शताब्दी" (दो दृश्यो मे है)। टैकनीक के क्षेत्र में आप संकलन त्रय को आवश्यक नहीं मानते। नाटको में कार्य व्यापार यथेष्ट है, कथोपकथन कम और अभिनय का विशेष ध्यान रखते हैं। पात्रो के वय, विचारो तथा अनुकूल भाषा का विधान है। सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण कुशलता से किया गया है। रंगसूचनाएं संक्षिप्त हैं। पूर्ण इतिहास देने में आपको विश्वास नही है। गीत यदि परिस्थिति और पात्र के व्यक्तित्व के लिए जरूरी हैं तो उनका प्रयोग किया गया है। कुवर चन्द्रप्रकाश सिंह हिन्दू संस्कृति के विचारक और प्रतिनिधि नाट्यकार हैं।

२८. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी द्विवेदी जी के एकांकी आदर्शोन्मुख यथार्थ की भीत्ति पर विनिर्मित हैं। आपने नारी मनोविज्ञान के शास्त्रीय अध्ययन तथा चित्रण में विशेष निपुणता प्राप्त की है। आपके नाटक यौन जीवन के विविध अध्ययन हैं, जिनमें वासना के दमन की अपेक्षा उसके उन्नतिकरण को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। फ्रायड के मनोविज्ञान से आप विशेष प्रभावित हैं। प्रहसनो में आपका "वसन्त विभ्राट" मनोवैज्ञानिक नाटको में 'सुदिव्य" तथा वार्तालापों में "रीति काव्य" तथा "इतिहास का सत्य" आदि प्रसिद्ध हैं। प्रेमचन्द की कहानी "शतरंज के खिलाड़ी" को भी आपने ६, ७ दृश्यो के नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। "वसन्त विभ्राट" में २२वीं शताब्दी का चित्रण किया गया है। स्त्री तथा पुरुष वर्ग के दो पृथक पृथक राज्य हैं, स्त्रियां पुरुष वर्ग का बहिष्कार करती हैं। धीरे धीरे स्त्रियों के क्षेत्र में मदन तथा वसन्त का प्रवेश होता है। वासना के दमन की प्रतिक्रिया होती है, अन्त में पुरुष भाग से मिलकर ही उन्हें शांति मिलती है। इसमें लेखक ने आधुनिक संस्कृति तथा नारी स्वतन्त्रता पर चुभता हुआ व्यंग्य किया है। इस एकांकी के नाम प्रतीकात्मक हैं। "सुदिव्य" बौद्ध कालीन चित्र है, जिस में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से

वासनाओ का दमन सम्भव नही है, दिखाया गया है। अपने वार्तालापो में द्विवेदी जी का आलोचक सजग हो उठता है १ रीति काव्य २ कल्पलता तथा ३ इतिहास का सत्य तर्कपूर्ण वार्त्तालाप है, जिनमें विविध पात्रो द्वारा गंभीर चिन्तन प्रधान कथोपकथन प्रदान किया गया है। आपके गीतिनाट्यो में कल्पना की चित्रोपमता तथा सगीत की सरसता का मणिकाचन सयोग है।

२९. **प्रो० रामदीन पांडेय, एम० ए०** पाडेय जी के १ घर का आटा गीला २ बलिदान ३ परख ४ जीवन का एक पृष्ठ ५ प्रेम का पागलपन ६ टाइफायड ७. उलट फेर ८ पाप का पतन ९ आरखड की झाकी १० ज्योति आदि प्रकाशित हुए है। इतिहास, राजनीति, परिवार, समाज, धर्म, सस्कृति आदि जीवन के अनेक क्षेत्र इनमें चित्रित हुए हैं। प्राय चरित्र वर्गगत हैं, जो विविध भावो या विचारो का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें विशिष्ट चरित्रगत सौंदर्य व्यक्त नही हो सका है तथा टैकनीक के दृष्टिकोण से भी ये विशेष सफल नही हैं। जन जीवन, जन-हित को दृष्टि में रखकर एकाकी निर्माण करना ही आपके नाटक साहित्य का लक्ष्य है। अपने दस एकाकियो में आपने शिष्ट, अशिष्ट, भले बुरे, तामस सात्विक वाले पात्रो का मनोविश्लेषण किया है। प्रत्येक एकाकी का अपना पृथक उद्देश्य है। प्रत्येक को प्रेरणा और पोषण भारतीय समाज तथा सस्कृति से प्राप्त है। कुछ एकाकी सफलतापूर्वक रेडियो पर प्रसारित भी हो चुके हैं। आपके नवीनतम एकाकी १ गुरुकुल की समस्या २ होली का दहन ३. अंधे की लकडी ४. सभा की ओट में ५ मेरी विदाई, अधिकतर समाजगत स्थितियो की ओर सकेत करते हैं।

३०. **श्री मधुकर खेर, एम० ए० :** आपका क्षेत्र सामाजिक तथा पारिवारिक है। यों आपने आधुनिक राजनीति पर भी व्यग्य किया है। १ नवनिर्माण तथा २. अन्नदेवता को छोडकर आपके शेष नाटक ३. समाज देवता ४ अतिम विजया सम्मेलन ५ वसीयत का रहस्य ६ देश भक्ति ७ समस्या का हल ८ कलियुगी अवतार ९ साहित्य सेवा १० पाकिस्तानी बैक ११ यह पाकिस्तान है १२. अखिल भारतीय फासिस्ट विरोधी सम्मेलन १३ फिल्मी कहानी १४ मदिर प्रवेश आदि यथार्थवादी एकाकी सभ्य समाज के जीर्ण अगो और कमजोरियों पर व्यग्य करते हैं। समाज और राजनीति के कुछ दलो तथा धर्म के ढोगियो के व्यग्य चित्र आपने खींचे हैं। सामाजिक कुरूपताओ को हास्यात्मक स्थिति में रख कर आपने विद्रूपताओ को उभारा है। आपकी विशेषतायें वह मीठा व्यग्य है जो गहराई से चोट करती है। आपके पात्र दैनिक जीवन की सरल भाषा को ही प्रयोग में लाते हैं। वातावरण निर्माण में विशेष सतर्क रहते हैं।

'नारी की पसन्द" में नई रोशनी में पले नवयुवको की विवाह विषयक मूर्खताओं और नखरो को व्यग्य का शिकार बनाया गया है। विवाह में पुरुष को ही नही, स्त्री की सम्मति को भी स्थान मिलना चाहिए। यही एकाकीकार का लक्ष्य है। "यह

पाकिस्तान है" में एक मुसलिम वकील का परिहासमय चित्र है, जो पाकिस्तान के सब्ज बाग के चक्करों में पड जाता है, जहा उसे निराश होना पडता है। पाकिस्तान में छायी धर्मान्धता, अंधविश्वास, ढोंग और रूढियो का व्यग्यात्मक ढग से पर्दाफाश करते हुए यह चित्रित किया है कि पाकिस्तानी मुल्लाओ, गुन्डो तथा रजाकारो ने सामान्य नागरिको का जीवन दूभर कर दिया है। "कलियुगी अवतार" में ढोंगी साधुओ का भडाफोड किया गया है, जो वैद्य, ज्योतिषी, साहित्यिक होने का ढोंग करते है। "फिल्मी कहानी" में ऐसे ऐसे निर्देशको का चित्रण है, जो हिन्दी लेखकों की अपने नाम से फिल्म बनवा लेते है। "अखिल भारतीय फासिस्ट विरोधी सम्मेलन एक व्यग्यात्मक राजनीतिक रचना है जिसके पात्र कांग्रेस, कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट, लीग, हिन्दू महासभा के प्रतिनिधि है, जो आज की राजनीतिक गुत्थियो पर विचार विनिमय करते हैं। मधुकर खैर की व्यापक दृष्टि समाज, राजनीति, परिवार प्राय. सभी के अधेरे कोने में पहुची है और विद्युत प्रकाश में उनकी विद्रूपताओं को प्रकाशित करती है।

३१. डा० सुधीन्द्र · डा० सुधीन्द्र का क्षेत्र राजनीतिक तथा मूल चेतना राष्ट्रीय है। आपके एकाकी पाश्चात्य टैकनीक तथा अभिनय की अनुकूलता के दृष्टिकोण से लिखे गये है। इनकी एक विशेषता प्रतीकात्मकता है। सुधीन्द्र स्वभावत कवि थे, किन्तु एकाकी नाटको में आपने स्टेज इफैक्ट तथा आवश्यकतानुसार ही गानो का प्रयोग किया है। इनमें से अधिकाश वनस्थली विद्यापीठ की कन्याओ के अभिनय के लिए लिखे गए थे और वही उनका अभिनय हुआ है। अत इनमे स्त्री पात्रो की अधिकता है। उनके चरित्र गौरव में नाट्यकार ने विशेष रुचि का प्रदर्शन किया है। इन सब में सुधीन्द्र का आदर्शवाद अपने कलात्मक रूप में प्रकट हुआ है। सुधीन्द्र का विश्वास एक लम्बे दृश्य में सम्पूर्ण एकाकी कथावस्तु को समेट कर अभिप्रेत सवेदना प्रकट कर देने में नही है। वे अपनी सवेदना को चरम सीमा तक लाने के लिए एक अक के भीतर चार पाच छोटे-छोटे दृश्यो में आवर्तन प्रत्यावर्तन की परिस्थितिया लाते हैं, किन्तु एकाकी को जटिल होने से बचाए रखते हैं। सम्पूर्ण एकाकी समाप्त होने पर सवेदना पूर्णत प्रतिष्ठित होती है।

दृश्य नियोजन में नाट्यकार ने सबसे अधिक कुशलता का परिचय दिया है। राजदरबार के दृश्य अन्त में आते हैं। इनका क्रम अभिनय में सरलता और टाइमिंग में आसानी पैदा कर देता है। अधिक देर में तैयार होने वाले दृश्यों को स्टेज के अतिम पर्दे में पहले से ही सजा कर रखा जा सकता है। आपने १ खून की होली २. राखी ३. नया वर्ष, नया सदेश ४. संगम ५ रेवा का राजमुकुट ६ नाम सम्मान ७ ज्वाला और ज्योति आदि समस्या एकाकी प्रकाशित हुए है। इनमें अन्तिम प्रभाव के ऊपर विशेष ध्यान रखा गया है।

३२. श्री मोहन सिंह सेंगर श्री मोहनसिंह सेंगर जी के ५, ६ एकाकी प्रका-

शित हो चुके हैं। जिनमें मुख्य इस प्रकार हैं । १ मिस्टर चार सौ बीस (१९३८) २ सम्पादक जी (१९४०) ३ हुकूमत ए आलिया हिन्दोस्तान का नया विधान (१९४७) ४ भूतपूर्व मिनिस्टर (१९५२) ५ "पीले हाथ" राजस्थानी में सामाजिक एकाकी (१९५२) इन पर इब्सन, शा, शेक्सपियर का प्रभाव है। अंग्रेजी की अपेक्षा आप फ्रास, बेलजियम और फिनलैंड के आधुनिक एकाकी साहित्य की दृष्टि से अच्छा समझते हे और उनकी कला पर इन्ही का प्रभाव है। सेंगर जी के एकाकी के विषय हल्के और व्यग्यपूर्ण हैं । ये चरित्र प्रधान हैं। और आधुनिक शिष्ट जीवन के भ्रष्टाचार, मिथ्या प्रचार, झूठे दम्भ और दिखावे के रोग को चित्रित करने में सफल हुए हैं। "मिस्टर ४२०" में आपने के० के० वर्मा नामक एक शिष्ट धूर्त का व्यग्यात्मक चित्र खींचा है, जो युवक युवती के अभिनय, प्रेम, रोमास का अनुचित लाभ उठाकर ठग लेता है। यह उन व्यक्तियो का प्रतिनिधि है जो जनता के भोलेपन का अनुचित लाभ उठाते हैं। "सम्पादक जी" में एक आर्थिक पारिवारिक कठिनाइयो, प्रेस, पत्र तथा जनता की बहुमुखी मागो से तंग पत्र सम्पादक का व्यग्यात्मक चित्रण है। "नया विधान" में नाट्यकार की दृष्टि राजनीति की ओर गई है और उसने अंग्रेजो का प्रस्थान एव हिन्दुस्तान के नये विधान पर व्यग्य किया है। अत में मानवता का सन्देश देकर नाटक समाप्त होता है। "भूतपूर्व मिनिस्टर" में एक लोकप्रिय प्रजातन्त्र के मिनिस्टर की व्यग्यात्मक खाका खीचा गया हैं। "पीला हाथ," दहेज तथा विवाह व्यवस्था के दोष दिखाते हुए ६ दृश्यो का सामाजिक समस्या एकाकी है। आपकी सूक्ष्म दृष्टि आधुनिक भ जीवन के कृत्रिम दिखावे और मिथ्याचार की ओर गई है। सामाजिक और राजनीतिक जीवन की रगीनी, भ्रष्टाचार, सभ्यता के आवरण में ढके हुए मिनिस्टर, लीडर, मेम्बर, वकील, सम्पादक, मतलबी नेता सब की कलई खोल दी गई है। पृष्ठभूमि में सामाजिक यथार्थ के दर्शन होते हैं रगमच पर अभिनय की दृष्टि से भी ये एकाकी सफल हैं।

३३. श्री हरिनारायण मेंणवाल, एम० ए० यद्यपि आप पाश्चात्य टैक्नीक से प्रभावित है, तथापि आपने किसी नाट्यकार का अनुकरण नही किया है। ऐतिहासिक एव पौराणिक एकाकियो में आपने निज कल्पना और प्रतिभा के स्पर्श से भावना की नवीनता उत्पन्न की है। आपके सामाजिक एव प्रचारात्मक एकाकी भी मौलिक हैं । यहा भारतीय जन समाज के कठोर जीवन की निर्मम झाकी है। प्रारम्भिक एकाकियो पर प्रसाद का प्रभाव है । हार्डी का दु खवाद कही-कही आपकी विचारधारा को स्पर्श करता है, किन्तु प्रसाद साहित्य के अनुशीलन की प्रतिक्रिया ने आपको हिन्दी नाट्य ससार में एक आदर्शोन्मुख आशावादी नाट्यकार बना दिया है । आपके दुखान्त एकाकियो में भी आशा की स्पर्श रेखा चमकती है। आपकी विशेषता छोटे, किन्तु सवेदना की तीव्रता सम्हाले हुए तीखे एकांकियों का निर्माण करना है। आप दो तीन पात्रो की सहायता से एक ही स्थान पर उसी समय की घटनाओ को जोड तोड कर

चरित्र की किसी विशेष वृत्ति एवं मनोदशा का मनोवैज्ञानिक ढग से प्रतिपादन करते है।

नये एकाकी साहित्य में ऐसे एकाकियो की कमी है जो तीव्र सवेदना प्रभाव की ऋजुता, आकस्मिकता, गोपन व्यजना आदि तत्वो को रखते हुए केवल एक दृश्य मे अधिक की कामना नही करते। एक दृश्य में ही वे भरपूर और अपने आप में हर प्रकार पूर्ण होते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप अग्रसर हुए है। यही इनकी विशेषता है। आपके निम्न एकाकी प्रकाशित हो चुके हैं (अ) सामाजिक समस्या एकाकी १ सौभाग्य सिन्दूर २ मोटर साइकल ३ गरीब का ससार ४. सह शिक्षा ५ आसाम का मोर्चा ६ गृहस्थी ७ साथी ८ ताड गुड ९. कौसिलर आदि।

(ब) पौराणिक आदर्शवादी एकाकी : १. प्रतिज्ञा २. शत्रु से प्रेम ३. पर्जन्य यज्ञ ४ गुरु दक्षिणा ५. पितृभक्ति, कृष्ण वियोगिणी आदि। आपका "सुनह की आखें" ऐतिहासिक एकाकी है।

३४. डा० धर्मवीर भारती : मानव जीवन धारा को पूर्णत झकझोर मनोभूमि की अटल गहराई में सुप्त भावनाओ को जगाकर मानसिक उद्वेलन उत्पन्न करने वाले मार्मिक क्षणो को लेकर डा० भारती ने एकाकियो की रचना की है। ऐसे क्षणो के चुनाव में कलाकार ने बडी ही सहृदयता और मार्मिकता का परिचय दिया।[1] भारती का दृष्टिकोण मानव की पराजय चित्रित करना नहीं है। वे यह तो चित्रित करते है कि आज पूजीवादी शिकजो में फसा हुआ मानव भ्रान्त और उद्विग्न है, पथ भूला हुआ विवश भटक रहा है, पर वह निराश, पराजित हतोत्साह नही है। भारती पलायनवादी नही हैं। उनके पात्र अन्त में स्वस्थ चेतना प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए "नदी प्यासी थी" का जीवन से ऊबा हुआ आत्महत्या को प्रस्तुत राजेन पद्मा के प्रेम और सहानुभूति से नवचेतना प्राप्त करता है। यह रंगमच पर उतना सफल नही हुआ जितना रेडियो पर हुआ है। "आवाज का नीलाम" एकाकी में लेखक ने पूजीवाद के प्रति अपना विरोध प्रकट किया है। दिवाकर एक स्वाभिमानी पत्रकार है, पर गरीबी ने उसे विवश कर दिया है। उसकी पत्नी मरणासन्न है। इन परिस्थितियो में फसकर वह अपने जीवन भर की सचित साहित्य सम्पदा सेठ बजोरिया के हाथ बेच देता है। "सृष्टि का आखिरी आदमी" में इस आस्थाहीन ध्वसोन्मुख सस्कृति के नाश की कल्पना के साथ नवीन सृष्टि का स्वप्न भी देखा गया है।[2] यह एक अजीब तरह का ध्वन्यात्मक एकाकी है, जिसका टेकनीक सर्वथा नवीन एव अभूतपूर्व है। "नीली झील" में आधुनिक युग की विषमता को चित्रित किया गया है, किन्तु लेखक का विश्वास है कि मानव शीघ्र ही नई आत्मा प्राप्त करेगा। इस एकाकी का वातावरण सर्वथा ऐन्द्रजालिक होते हुए भी इसमें उठाई गई समस्या आज की यथार्थ समस्या

---

१. देखिए प्रो० रामचन्द्र तिवारी "हिन्दी वाङ्मय" जनवरी, १९५४।

२ वही।

है और मानवीय संस्कृति की प्रगति के सामने एक प्रश्न चिन्ह के समान बन कर खडी हो गई है। पूजीवादी देशो में आर्थिक विषमता है, तो कम्युनिस्ट देशो में उग्र मानसिक तानाशाही। कही आर्थिक सुविधाए देकर, तो कही छीनकर मानव को खोखला, विचारहीन और बेजान पशु बनाया जा रहा है। पूजी का प्रजातंत्र हो या जनता का प्रजातंत्र, आज तो तत्र ही मुख्य बन गया है और प्रजाए उसकी अनुवर्तिनी बेज़बान भेड-बकरियां। उनकी आत्मा छीन ली गई है। डा० भारती ने इस रूपक में यह चित्रित किया है कि कलाकार उस आत्मा का निर्माण न तो पूंजीवादी शिकजों को स्वीकारकर कर सकता है, न कम्युनिस्ट पार्टी के राजनैतिक आदेशो के समक्ष सिर झुकाकर। कलाकार को अपने अन्तरतम की ईमानदारी के साथ जन जीवन में उतरना होगा। जनता के सघर्ष, अभाव, पीडा और विद्रोह को आत्मसात कर लेना होगा, लेकिन जनता का अर्थ क्रेमलिन नही है।

"सगमरमर पर एक रात" ऐतिहासिक एकाकी है, जिसमें मेहरुन्निसा के जीवन की वह रात है जिसमें उसकी जीवनधारा का क्रम परिवर्तित हो गया था। इसमें मेहरुन्निसा के अन्तर्द्वन्द्व, सकल्प, विकल्प और घात प्रतिघात का मार्मिक चित्रण है।

टैकनीक की दृष्टि से डा० भारती के प्रयोग अभूतपूर्व हैं। कम से कम परिवर्तनो के द्वारा मच पर दृश्य उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। "नीली झील" में जापानी नो नाटको की टैकनीक का प्रवेश कराया है। अधिकाश पात्र स्टेज पर आकर स्वय अपना परिचय देते हैं। अन्त में एक पात्र एक बार स्टेज से उतरकर दर्शको के मध्य में घूम आता है, जिससे हम कलाकार के जन जीवन में उतरने का सकेत भी ग्रहण कर सकते हैं। रगमचहीन अभिनय के लिए दृश्य की नियोजना न करके निर्देशन प्रारम्भिक वक्तव्य में श्रोताओं से अनुरोध कर सकता है कि वे दृश्य की कल्पना मात्र कर लें। हिन्दी रगमच की दुरावस्था देखते हुए बहुत कम एकाकियो में नारी पात्र रखते हैं। डा० भारती एकांकी की मूल भावना या संवेदना को पूरी तरह उभारने में विशेष पटु हैं। रगमचीय निर्देश, भाषा की मार्मिकता, सवादो का प्रवाह, आकस्मिक परिवर्तन, पात्रो का अन्तर्द्वन्द्व और घटनाओ की तीव्रता डा० भारती की नाट्यकला की विशेषताए हैं।

अन्य एकाकीकार

उपर्युक्त एकाकीकारो के अतिरिक्त अन्य नए उदीयमान नाटककार भी एकाकी के क्षेत्र मे उत्साह से कार्य कर रहे हैं। कुछ के एक दो एकाकी सग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, शेष की रचनाए पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित होती रहती है। यो तो सभी विषयो को लेकर एकाकियो की रचना हो रही है। किन्तु मुख्य रूप से इनकी प्रवृति सामाजिक और राजनीतिक विषयो की ओर है। देश में राजनीतिक स्वतत्रता के पश्चात् आई हुई जागृति के कारण कुछ एकाकीकारो ने नई मान्यताओ के अनुसार नवनिर्माण सबधी एकाकी भी लिखे हैं। इन उदीयमान

नाटककारो की प्रवृतिया, विचारधारा एवं टैकनीक सम्बन्धी विशेषताएं इस प्रकार हैं :

श्री देवदत्त अटल ने राष्ट्रीय क्रातिकारी जीवन के अनुभवो की पृष्ठभूमि पर राष्ट्रीय भावना तथा देश प्रेम की भावना से परिपूर्ण एकाकी साहित्य लिखा है। साम्प्रदायिक विद्वेष ने हिन्दुओ को निर्दय और हिंसक बना दिया, उनकी हृदय हीनता की पराकाष्ठा हुई और देश में भयकर उथल पुथल। इनके नाटको में महात्मागाधी की जीवन घटनाओ को आधार माना गया है। आपके १० एकाकी प्रकाशित हुए हैं : १. स्वर्ग में गाधी २. सत्य की विजय ३. यह विजयदशमी है ४ खुदा की मार ५ असफल षड्यन्त्र ६. युग का ईसा ७. सच्चा स्वर्ग ८. मुक्तिदाता गाधी ९. नोआखाली तीर्थ यात्रा १०. सत्याग्रह या दुराग्रह। इनमें देश की विविन अवस्थाओ का अच्छा चित्रण मिल जाता है।

श्री प्रेमराज शर्मा विद्रोही एम० ए० महात्मा गाधी की विचारधारा से प्रभावित हैं। आपके लिखे एकाकियो का उद्देश्य सर्व साधारण विशेषत नवयुवको तथा विद्यार्थियो में गाधी जी के अमर सिद्धातो का प्रचार करना है। वे मानते हैं कि हमारी आधुनिक शिक्षा में ऐसे साहित्य का समावेश होना चाहिए, जिसे उन्हें उच्च समाज सेवा के आदर्श प्राप्त हो सके और क्रियात्मक अभ्यास द्वारा उन्हें शिक्षित किया जा सके। मानवता तथा भारतीयता, विकास के लिए के सत्य, अहिंसा, प्रेमभाव जाग्रत करने की आवश्यकता समझकर आपने दो सुन्दर एकाकी लिखे हैं। १ बापू के प्यारे २ महान् भगी। "बापू के प्यारे" में अहिंसा, चरखा, सत्याग्रह, असहयोग, खादी सगठन, हरिजन तथा स्वदेशी को भी मूर्त रूप में पात्र बना दिया गया है। "महान भगी" में हरिजन समस्या का विवेचन है। इनका दृष्टिकोण शिक्षा प्रदान करना है।

श्री विराज की मूल चेतना राष्ट्रीय है। आजाद हिन्द फौज के साहसिक कार्य से प्रभावित होकर आपने तीन नफल एकाकियो की रचना की है १ तिरगा झडा २ सीमान्त का सन्तरी ३ ध्वज पोत। 'तिरगा झडा' के भौगोलिक सकेतो में ही भारत राष्ट्र को सम्पूर्ण प्राकृतिक वैभव सहित मूर्त किया है। नाटककार को राष्ट्रीय समस्याओ की अच्छी जानकारी है। तिरगे के विविध रंगो की जैसी व्याख्या हुई है, वह राष्ट्र पताका के गौरव को प्रमाणित करती है। उसमें नाटककार बौद्धिक तथा चितनशील हो उठा है। इसमें कोई व्यापार और अन्तर्संघर्ष नहीं है। "सीमान्त का सन्तरी" में स्वतन्त्र भारत राष्ट्र की भूमिका में जो बलिदान की मधुर कल्पना नाटकीय आधार पर की गई है वह स्पृहणीय है। "ध्वज पोत" का अभिनय चित्रपट की सहायता से हो सकता है, क्योंकि इसमें चित्रित घटनाएं रगमंच पर सभव नहीं है। दूरबीन जैसे आधुनिक यत्र का प्रयोग किया गया है किन्तु यह भी नाटक में प्रयुक्त सूच्य दृश्य का भ्रम सिद्ध नहीं कर सकता। इनमें नाटकीय कौशल का अभाव है। वे नाटकीय रंगमच की सुविधा से युक्त कथावस्तु का निर्माण नहीं कर सके हैं।

पाठ्य एकाकी का ही गौरव इन कृतियो को प्राप्त है।

श्री शिवकुमार ओझा "सुकुमार" का क्षेत्र भी राष्ट्रीय गौरव का चित्रण है। श्री सुभाषचन्द्र तथा उनकी आजाद हिन्द सेना से सम्बन्धित आपके तीन एकाकी प्रकाशित हुए है। १ रक्तदान २ सोहागदान और ३ सर्वस्व दान इत्यादि। इसी प्रकार महात्मा गाधीजी के जीवन सम्बन्धी छ एकाकी आपने लिखे है। १ देव दर्शन २ अग्नि परीक्षा ३ पुण्य स्मृति ४ बा की बीमारी ५ धर्म सकट ६ वैरिस्टर का स्वागत गाधीजी तथा सुभाष के पवित्र राष्ट्रीय चरित्रो को लेकर शुष्क इतिवृत्ति से ऊपर उठाकर उन्हें काव्य के सम्मिश्रण से मर्मस्पर्शी कर दिया है। एकाकियो की कुछ घटनाए कल्पित हैं, किन्तु उनको नाटकीय ढग से प्रस्तुत करने में यथार्थता का आभास मिलता है।

डा० लक्ष्मण सिह के लिखे हुए १ गुलामी का नशा २ असहयोग ३ एक ही समाधि ४ चुनाव आदि एकाकी प्रकाशित हुए हैं। गुलामी का नशा (१९३४) दस दृश्यो में राजनीतिक एकाकी है, जो असहयोग आन्दोलन का जीता जागता चित्र है। इसकी सूचनाए विशद है। "एक ही समाधि" बडा कलापूर्ण एकाकी है। आपके पात्र बडी स्वाभाविक और प्रभावशाली भाषा का प्रयोग करते है। राजनीतिक क्षेत्र में आपको अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। उत्कृष्ट एकाकियो के सभी गुण आपकी एकाकी कला मे मौजूद है, जैसे गभीर राजनीतिक समस्याए, इकाइयो का सकलन, विशद पाश्चात्य ढग की सूचनाए आदि।

प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त ने अपनी मौलिक प्रतिभा एव पैनी दृष्टि से भारतीय राजनीतिक जीवन की विद्रूपताओ पर प्रहार किया है। आपका दृष्टिकोण प्रगतिशील रहता है। समाज, साहित्य, तथा देश की राजनीतिक प्रगति में बाधा उपस्थित करने वाले व्यक्तियो, सस्थाओ, वर्गो पर आप निर्मम आघात करते है और शिव और गतिदायक तत्वों को एकाकियो में उभारते हैं। आपने १ विजय किसकी (१९४३) २ होटल (१९४१) ३ आसाम का एक चित्र (१९४३) आदि एकाकी लिखे हैं। 'विजय किसकी" में भारत के एक ग्राम पर जापानी आक्रमण, अमानुषिक अत्याचार, भारतवासियो के डरपोकपन का नग्न चित्रण है। "होटल" में रानीखेत के एक बहुत साधारण गरीब होटल का जीवन चित्रित किया गया है। एक सैनिक छुट्टी पर लौट कर घर जाता है, उसकी भावनाओ का चित्रण इसमें किया गया है। "आसाम का चित्र" में आसाम का एक काल्पनिक चित्र है, जब जापानी वहा पर बम गिरा रहे थे। जन साधारण के जीवन की वेदना, उनके सघर्ष, राजनीतिक हलचलो में जनता की भावनाए, प्रतिक्रियावादी तत्वो की व्याख्या करना और जन आन्दोलन के विकास में सहयोग प्रदान करना आपके एकाकियो का मूल ध्येय है।

श्रीकृष्णचन्द्र ने भारत में आजादी के पश्चात् उत्पन्न राजनीतिक एव सामाजिक समस्याओ को यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत किया है। आप प्रगतिशील नाट्यकार हैं, जो

पूंजीवाद के शोषण के विरुद्ध सब कुछ नग्न रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। आपका "हमारा मदरसा" समाज की तीखी आलोचना है, जिसमें पूंजीवादी व्यवस्था पर प्रहार किया गया है। आजादी के इतिहास की अनेक भयकर स्मृतिया इनके नाट्य साहित्य में मूर्तिमान हैं। आपका "पराजय के बाद" (१९४४) जान स्टाइनबेक के प्रसिद्ध उपन्यास पर आश्रित एकाकी है, जिसमें आपने युद्ध की मूल समस्याओ को उठाया है और मानवीय भावनाओ की उन तहो तक पहुच जाना चाहा है जो हमें केवल उपचेतन स्तरों में उभरती नजर आती है। "सराय के बाहर" आपका सर्वश्रेष्ठ एकाकी सग्रह है।

श्री अमृतराय रूस की कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित एकाकीकार हैं। आपका भी दृष्टिकोण प्रगतिशील है और आपने सामाजिक और राजनीतिक शोषण, बहुमुखी पीडा, सभ्यता की छाया मे पनपने वाली कुरूपता, अत्याचार, और वेदना को मुखरित किया है। आपके निम्न एकाकी प्रकाशित हुए हैं : १. रूमी लोग (१९४३) २ राह चलते (१९४३) ३. चार चित्र (१९४४) जर्मनी से अनुवाद ४ निशाने बाज (रूसी एकाकी १९४५) श्री अमृतराय ने रूस के नेतृत्व में पनपते हुए मानववाद तथा जनतत्र की भावनाओ को अपने नाटको मे मार्मिकता से चित्रित किया है। आपका एकांकी साहित्य रूसी विचारधारा और टैकनीक से प्रभावित है।

श्री शिवदान सिंह चौहान भी प्रगतिशील वर्ग के नाट्यकार हैं, जो अपने एकाकियो में देश के नगे भूखे, शोषित वर्ग की भावनाओं को मुखरित करते हैं। पाश्चात्य टैकनीक पर आपने अपना सुन्दर एकाकी "मरने दो" सन् १९४४ मे लिखा था, जिसकी टक्कर का एकाकी आज तक न लिखा जा सका है। वातावरण निर्माण आपकी विशेषता है। आपके पात्रो का चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक होता है। आपने फासिस्ट विरोधी एकाकीकार ज्योफ्रे पर्मन्स के कुछ एकाकियो का भी हिन्दी में अनुवाद किया है, जैसे 'योजना के अनुसार" (१९४६)। इनके एकाकियो की पृष्ठभूमि का निर्माण बडी कुशलता के साथ होता है।

प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा के एकाकियो में प्राचीन भारतीय सस्कृति और इतिहास के कथानक रहते हैं। प्रत्येक में मानव स्वभाव का सूक्ष्म विश्लेषण मिलता है। आपका एकाकी "परिजात मंजरी" कादम्बरी के उस स्थल पर आश्रित है, जहा पुन्डरीक महाश्वेता के आकर्षण में अपने शरीर को विनष्ट कर देता है। सम्पूर्ण एकाकी मे एक करुणा व्याप्त है। "ज्ञानोदय" का सम्बन्ध रत्नावली के उपालम्भ के कारण तुलसीदास के ज्ञानोदय से है। शर्मा जी ने नारी हृदय को टटोला है और उसकी व्यथा को व्यक्त करने में सफल हुए हैं। "बाबर की ममता" में उस उद्दीप्त क्षण को उभारा गया है, जहा बादशाह पुत्र की बिमारी में उनके जीवन के लिए ईश्वर से अपनी मृत्यु का वरदान मागता है। "अनुपात" में सलीम के हृदय के उस मानसिक कष्ट को प्रगट किया गया है जो अबुल फजल की हत्या के कारण उसे दग्ध कर रहा था। उनके सभी एकाकियो में इस अन्तर्संघर्ष का सुन्दर चित्रण है। भाषा चरित्रों के अनुसार

रखने हैं। प्रभाव की इकाई को बनाये रखने में आप निपुण हैं। आपके एकाकी अभिनेय हैं।

सरदार मोहनसिंह के तीन एकाकी उपलब्ध हैं। १ नई गीता २ खुदा और शैतान ३ नया औतार। नई गीता उपास्य और उपासक की अभिन्नता, प्रेम और ज्ञान की एकता का प्रतिपादन करता है। "खुदा और शैतान" हमारे वर्तमान समाज की दुर्घटना का सुन्दर व्यग्य है। "पाप और धर्म" में सत्य तथा असत्य, खुदा और शैतान का दार्शनिक निरूपण किया गया है। "नया औतार" एकाकी में साम्प्रदायिक वैमनस्य पर व्यग्य करते हुए सर्वव्यापी प्रेम का सन्देश है। सरदार मोहनसिंह के एकाकियो में कल्पना, मौलिकता और नवीनता पर्याप्त है। आपके एकाकियो में वेदना है, अभिलाषा है और सग्राम है। आप प्रेम के उपासक हैं। आपकी प्रवृत्ति आदर्शवाद की ओर है, पर रंगमच पर अभिनय करने की दृष्टि से ये असफल हैं। शैली अस्वाभाविकता पूर्ण है और पात्रो का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित नही किया गया है।

श्री मातादीन भगेरिया ने प्राचीन सस्कृति तथा अतीत गौरव की पृष्ठभूमि पर ऐतिहासिक एकाकियो का निर्माण किया है। कुछ एकाकियो का काल प्रागैतिहासिक है। सामयिक समस्याओ पर भी आपने कुछ एकाकी लिखे हैं। आपका एकाकी "तीन दृश्य" वर्तमान राजनीतिक जीवन का व्यग्यात्मक चित्र उपस्थित करता है। भाषा साहित्यिक तथा गम्भीर चिन्तन से परिपूर्ण है। "क्रातिकारी चाणक्य" एकाकी में आपने चाणक्यके चरित्र गौरव का प्रतिपादन किया है। आपके नाट्य साहित्य की मूलवृत्ति आदर्शवाद की ओर है।

प्रो० दुर्गादत्त मेनन एम० ए० ने अग्रेजी में शा तथा हिन्दी में रामकुमार वर्मा, गोविन्ददास, अश्क, आदि से प्रेरणा लेकर उसी टैकनीक पर अपने एकाकियो को आधारित किया है। शा के समाजवाद, व्यग्य, प्रहसन तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को आपने हिन्दी में लाने का सफल प्रयत्न किया है। शैली और विचारधारा में आप साद से विशेष प्रभावित हैं। आपका क्षेत्र ऐतिहासिक है। वैसे तो आपने सभी युगो का लिया है, किन्तु विशेष प्रवृत्ति हिन्दू युग की सास्कृतिक अवस्था के चित्रण की ओर है। आपका ध्येय भारतीय इतिहास के उन स्थलो को जनता के समक्ष रखना है, जिनको विदेशी इतिहासकारो ने विकृत रूप में दर्शाया है। हिन्दू बौद्ध सस्कृति, हिन्दू मुसलिम सस्कृति एव हिन्दू क्रिश्चियन सस्कृति के सघर्ष से भारतीय जीवन में जो परिवर्तन आया है, उसे आप अपने एकाकियो द्वारा चित्रित कर रहे हैं। वर्तमान काल को भी आप अछूता नही छोडना चाहते। काश्मीर के इतिहास "राजतरगिणी" के आधार पर रचित "सम्राट अनन्तदेव" आपकी उल्लेखनीय रचना है। आपकी अन्य रचनाए १ मिलिन्द २ मिनान्डर (१९२०) ३ पीली आधी (१९५०) आदि हैं।

हस कुमार तिवारी ने ध्वनि रूपक की शैली में "शकुन्तला, मिलन यामिनी, मेघदूत, कच देवयानी, पुजारिनी" इत्यादि गीति नाट्य लिखे हैं। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक नाटको में "अन्तपुर, अन्धकार, आकाश पताल,

इलाज, झूठे सपने" इत्यादि प्रमुख हैं। इनमें आपने आधुनिक समाज की विद्रूपताओं पर व्यग्यात्मक प्रकाश डाला है। यह रगमच पर खेले जा चुके है। एकाकी में आप वाद विवाद को आवश्यक नही समझते। प्रारम्भिक नाटको मे चरित्र विकास के लिए कुछ आजादी बरती है। सवाद जितने चुस्त और सक्षिप्त हो, उनमें चरित्र वार्ताओ में जितना निखार आ सके, उतना ही आपने सफल माना है। अतएव वर्णनात्मकता से आप दूर रहे हैं। घटना से स्थिति को आपने अधिक महत्व दिया है। परिणाम निर्णीत करके आप कला की योजना नही करते, समस्या के अनुरूप उन्हें स्वाभाविक परिणाम की ओर आने देते हैं।

श्री लक्ष्मीनारायण टंडन प्रेमी के छ सामाजिक व्यंग्यात्मक एकाकी प्रकाशित हुए हैं। १ रोगी का स्वर्ग २. जाति का सेवक ३ रोगी के मित्र ४. देश के लिए ५. जेल से छुटकारा आदि। इनमें समाज की दुनियादारी, झूठा दिखावा, सामाजिक सस्थाओ का खोखलापन, धोखेबाजी, शिक्षित व्यक्तियो की नाक के नीचे होने वाले अत्याचारो का चित्रण है। "रोगी का स्वर्ग", अस्पतालो की दुरावस्था, कर्मचारियो की असावधानी तथा कम्पाउन्डरो की लालची वृत्ति का नग्न चित्र है। "जाति का सेवक" जातीय सभाओ के यशोलिप्सा की भावना की तृप्ति के लिए खोखले नेताओ का व्यग्यात्मक खाका है। "रोगी के मित्र" कोरी सहानुभूति दिखाने वाले मित्रो का यथार्थवादी चित्र है। प्रगतिशील दृष्टिकोण से आपने समाज तथा वर्गो की आलोचनाए की हैं। जीवन के व्यथापूर्ण पहलू की झाकिया आपके साहित्य में मचित है। एकाकियो के वायुमडल में निरन्तर घडघड़ाहट, व्यथा और विद्रोह है। अग्रेजी में जिसे रियलिस्टिक आर्ट कहते हैं, उससे आप विशेष प्रभावित हैं। सभी एकाकी अभिनय के योग्य है।

श्री रामप्रसाद सिंह आनन्द के सात सामाजिक एकाकी प्रकाशित हुए हैं। १. परख २ प्रतीक्षा ३. प्रेम पथ पर ४. प्रतिशोध ५. प्रायश्चित ६. पुरस्कार ७ परिव्राजक आदि। आपका उद्देश्य यथार्थवाद की आधार शिला पर आदर्शवाद का निर्माण तथा मनोरंजन के साथ साथ लोक मंगल करना है। आपकी राय में उस साहित्य में कुछ भी लाभ नही, जो हमारी कुरूपता का दर्शन कराकर सौन्दर्य के प्रति हमें जिज्ञासु न बना सके। आज हमारे प्रगतिशील कलाकार यथार्थवाद के नाम पर अश्लीलता का नग्न ताडव और कुत्सित वासनाओ का प्रदर्शन कर रहे है, जो आपको पसन्द नही। आपने प्रगतिशीलता के विरोध में उत्तरदायित्व की भावना से प्रेरित होकर यथार्थवाद और आदर्शवाद के समन्वय से स्वस्थ एकाकी साहित्य की रचना की है। इनमे स्थान, काल तथा वस्तु की एकता का निर्वाह नहीं किया गया है। इन नाटकों में यथार्थ का आग्रह नही है न आदर्श का लदाव ही है। नाटकीयता की रक्षा का प्रयास किया गया है। भाषा में प्रवाह तथा स्वच्छता की कमी है।

कुशल अभिनेता होने के कारण प्रो० राजेन्द्र लाल सेठ के एकाकियो में नाटकीयता प्रचुरता से आई है। आपके चार अभिनय योग्य सामाजिक एकाकी प्रकाशित

हुए है। १ पुरोहित जी २ डिप्टी साहब ३ प्रायश्चित ४ उलटी गगा। नाटको में सगृहीत घटनाएं कालक्रम से अव पुरानी पड गई हैं, पर उनमें पर्याप्त सजीवता और आकर्षण है। आपकी सबसे बडी विशेषता है निष्पक्षता। नवीन तथा प्राचीन दोनों की निष्पक्ष आलोचना यहा मिलती है। प्रकृत रूप का आभास देने के लिए साधारण पात्रो की भाषा बोलचाल की रखी गई है।

श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल भारतीय दृष्टिकोण को प्रमुखता देते हैं तथा अग्रेजी नाटको के सिद्धातो से प्रभावित नही हैं। आपका क्षेत्र हास्य-व्यग्यमय एकाकी है। आपकी प्रमुख रचनाए १ हजामत २ घर और बाहर ३ वर यात्रा ४ सुहाग रात (१९३९) ५ राबर्ट नैथनियल ओझा (१९३७) है। इन एकाकियो में आपने समाज में दिखावा, झूठी नेतागिरी, आर्य समाजियो का तथ्यहीन उपदेशपन, विद्यार्थियो की अनैतिक गपशप, मिथ्याचार, कन्वेंसिग आदि की पोलें खोली हैं। रगमच सूचनाए केवल नाम मात्र के लिए हैं। स्वगत का प्रयोग करते हैं। टैकनीक में सस्कृत के कालीदास और भवभूति से प्रभावित है। सरल सीधी शैली में व्यग्य और उच्चकोटि का हास्य उत्पन्न करने में विशेष निपुण हैं। इनके एकाकियो में ताजगी और चोट है।

श्रीमती रत्नकुमारी एम० ए० का क्षेत्र पारिवारिक है, शैली में व्यग्य और मनोवैज्ञानिक चित्रण है। आपके १ रक्त का अर्घ्य २ श्यामा ३ गुलाबी साडी ४ दोषी कौन ? ५ वे यात्री ६ चाची ७ भाई ८ चरित्रहीन ९ मर्यादा का मूल्य १० दस मिनट पहले आदि एकाकी प्रकाशित हो चुके है। भाव, भाषा तथा कला तीनो के दृष्टिकोणो से इन एकाकियो का एक निजी व्यक्तित्व है। एक ऐतिहासिक एकाकी के अतिरिक्त शेष हमारे आधुनिक पारिवारिक जीवन का सजीव चित्र अकित करते हैं। हमारे पारिवारिक जीवन में जो दोष आ गये हैं, उनकी ओर सकेत है। नाटकीय तत्वो और वास्तविक अनुभूतियो से पूर्ण होने के कारण प्रत्येक में सन्देश छिपा है। "दोषी कौन ?" तो जहा वास्तविक अनुभूतियो से पूर्ण है, वहा परिस्थितियो में सत्य और विलासपूर्ण है। साथ ही मनोवैज्ञानिक चित्रण में अद्वितीय है। भाषा ओजपूर्ण, शैली सरस, विचार पुष्ट, कथानक पारिवारिक और कथोपकथन रोचक होता है। इन एकाकियो की शैली नारीसुलभ कमनीयता है जो स्त्री लेखिकाओ में ही पाई जाती हैं।

डा० एस० पी० खत्री के सात एकाकी प्रकाशित हो चुके हैं। १ मा (१९४६) २ ठाकुर का घर (१९४७), ३ चौराहा (१९४७) ४ मछुवे की मा ५ बन्दर की खोपडी ६ दादा की मौत ७. प्यारे सपने। पाश्चात्य नाट्य साहित्य का अध्ययन गहन होने के कारण इनकी शैली पर पाश्चात्य एकाकियो का अधिक प्रभाव है। "मा, ठाकुर का घर, तथा बन्दर की खोपडी" अग्रेजी एकाकीकारो की छाया पर भारतीय वातावरण को लेकर लिखे गये हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के नाटको का जो अध्ययन आपने किया है, उन्ही के अनुसार विविध स्वरूप इन एकाकियो में प्रस्तुत किये गये हैं। जैसे "चौराहा", दृश्यात्मक "मा", भावात्मक "ठाकुर का घर", प्रचारात्मक "मछुए की मा",

नाविक जीवन सम्बन्धी, "दादा की मौत" प्रहसनात्मक तथा "प्यारे सपने" कल्पनात्मक एकाकी हैं। अग्रेजी एकाकी के तत्वो के अनुसार ये सफल एकाकी कहे जा सकते हैं। अभिनय की दृष्टि से भी सफल हैं।

श्री प्रशान्त के १. सती सुभद्रा (१९३६) २ हार जीत (१९४५) ३. लालरुख (१९४५) ४ दो नोट (१९४४) ५ खोये हुए भगवान (१९४६) ६. जय सोमनाथ (१९४७) ७ गुल्शावनिह (१९४८) आदि एकाकी प्रकाशित हुए हैं। इनमें मुख्यत ऐतिहासिक तथा पौराणिक रचनाए हैं। "दो नोट' सामाजिक है। आपके पौराणिक नाटको की मूल चेतना आदर्शवाद है, जैसे "सती सुभद्रा" "खोये हुए भगवान" आदि एकाकियो में प्राचीन जीवन की विनोदमयी काव्यपूर्ण झाकी है। "गुरु दक्षिणा" में वृद्ध विवाह की कटु आलोचना है। ऐतिहासिक नाटक भारतीय संस्कृति के सजीव चित्र उपस्थित करते है। "दो नोट" रूढिवादिता के विरुद्ध एक पुकार है। अनुभूतियो को नाटकीय ढग से चित्रित करने में आप सिद्ध-हस्त हैं। गतिशील जीवन की कुछ अचल घड़िया यहा सुरक्षित है।

श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी के एकाकी मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओ से सबधित है। जैसे सभ्यता के मिथ्याचार, धोखेबाजी, ठगी, तरुणाई के प्रवाह में मूर्खताए, रोमास तथा तज्जनित कुरूपताए, मिथ्यादभ, साझे के व्यापार का दिवालियापन। इनके एकाकियो में हम समाज का वह पहलू चित्रित पाते है, जिसके प्रति हम अनजान है, समाज का लड़खडाता हुआ महल जिसकी बुनियादें खोखली हो चुकी हैं। आपके प्रमुख एकाकी १. रगामियार (१९४६) २ भुलभुलैया (१९४६) ३ मुह दिखाई (१९५०) हैं। हीरादेवी चतुर्वेदी का यथार्थवाद केवल समाज का यथातथ्य चित्रण मात्र नही है। उनमें आशावादिता की एक हल्की झाकी अवश्य रहती है। उनकी आलोचनाए विनाशक और सहारक न होकर निर्माणकारी हैं।

प० देवीदयाल 'मस्त' आदर्शवाद तथा सामाजिक नवनिर्माण में आस्था रख अशिक्षित वर्ग की विद्रूपताए उभार रहे हैं। आप उन एकाकीकारो में है जो घर मे, मन मे, समाज के भीतर प्रवेश कर उनकी कमजोरियो उभारने तथा समस्याओ का हल स्पष्ट भाषा में अकित कर देते है। इनके पात्रो में उद्वेग अथवा भावावेश नही, विवेकबुद्धि का प्राधान्य है। मस्त ने ग्रामीण जनता के पुनरुद्धार के हेतु परिष्कृत लौकिक जीवन की योजनाए प्रस्तुत की है। इनके एकाकियो में दो प्रकार के आदर्श हैं। १. मानव में वीर पूजा की स्थापना २. नवीनतम पूर्णता की कल्पना सृष्टि। उनके आदर्श व्यवहारिक आदर्शवाद है। समाज सुधार उनका ध्येय है। आपके १ सुन्दर गाव २. शराब का चक्कर ३ मेल मिलाप ४. रेशमी डोरे आदि एकाकी प्रकाशित हो चुके है।

प० श्रीराम शर्मा राम यथार्थवाद के पुजारी है, जो निम्न वर्ग में स्वाधीनता के पश्चात् आती हुई जागृति, प्रतिशोध तथा अधिकार भावना को अपने एकाकियो

में चित्रित कर रहे हैं। उनका क्षेत्र सामाजिक है, जिसमें निम्न वर्ग का सजीव चित्रण है, साथ ही निम्न वर्ग में अधिकार तथा उत्तरदायित्व की भावना सत्ताधारी सेठो, लाला वर्ग तथा जमीदारो से उनका सघर्ष चित्रित है। इनके साहित्य में पूजीवाद की जड़ें हिल रही हैं, गरीब निर्धन जनता के प्रति किए जाने वाले शोषण, दम्भ, स्वार्थ, मिथ्या गर्व, उच्चवर्ग के प्रति अधभक्ति तथा अकारण पूजा की भावनाए धराशायी हो रही हैं। १९४० से अब तक की सामाजिक क्राति, फासिस्टवाद, कम्युनिज्म तथा साम्राज्यवाद के विविध सघर्ष युद्ध से कुठित मानव को किस प्रकार समाजवाद में ही शान्ति प्राप्त हो सकती है आदि आपने एकाकियों में चित्रित किया है। भारत में राजनीतिक स्वाधीनता के प्रति आर्थिक सामाजिक तथा धार्मिक स्वाधीनता भी प्राप्त होनी अनिवार्य है। यह आपका प्रिय विषय है। अमीरी गरीबी की विषमता, देश की करोडो नंगी भूखी भारतीय जनता की प्रतिष्ठा और अधिकार के लिए सघर्ष, पूजीवाद के विरुद्ध जनवाद और मानववाद का मोर्चा, जन समूह का शोषण करने वाले, उन्हें नीची निगाह से देखने वाले, उच्चवर्ग से टक्कर लेने वाली नारिया इनके नाट्य साहित्य में मुखरित हो उठी हैं।

आपकी प्रमुख रचनाए इस प्रकार हैं १ मसले हुए आसू २ धर्म अधर्म ३ टुकडे ४ नाते रिश्ते ५ बापू ६ जादूगर, गाधीवाद से सबधित ७ जलदान पौराणिक नाटक आदि।

श्री सूरजदेव प्रसाद श्रीवास्तव के पाच मौलिक एकाकी प्रकाशित हुए हैं। लेखक की पात्र परिवर्त्तन की शैली अस्वाभाविक और अमनोवैज्ञानिक है। पात्रो के चित्रण में अन्तर्द्वन्द्व नहीं है। "देवदासी" और "परीक्षा" एकाकियो में यही दोष है। टैकनीक निर्बल है। शिक्षा एकाकी अपनी चरम सीमा पर पहुचकर प्रभावहीन हो गया है। अशोकयुग के पात्रो का "हट बे" इत्यादि उच्चारण करना काल दोष है। "प्रायश्चित" और "चुनाव" नामक एकाकियो में पात्र बदल्ले से अगरेजी शब्दो और वाक्यो का प्रयोग करते हैं जो उचित नहीं है। इनकी रचनाओ में अभी अपरिपक्वता है।

"लोकेश्वर शनि" में सुश्री विपुलादेवी के छ एकाकी सग्रहीत हैं। यो तो इनकी विषय वस्तु मानव जगत का अतिक्रमण कर अतिमानव लोक में आ पहुची है, पर सभी की पीठिका अन्तत मानवतावादी है। नाटक पठनीय है। श्री अरुण के एकाकी सग्रह "रेल का डिब्बा" में सग्रहीत एकाकी रोचक और अभिनय योग्य हैं। इन नाटककारो के अतिरिक्त और भी एकाकीकार हैं, जिनका साहित्य हिन्दी एकाकी की प्रतिभा और शक्ति का आशाप्रद रूप प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष यह है कि अनेक नए नाटककारो ने हिन्दी एकाकी निर्माण के लिए दृढ कदम उठाया है और अपने व्यक्तित्व तथा विचारधारा के अनुसार नए-नए प्रयोग किए हैं। अधिकाश एकाकी केवल पठन पाठन की दृष्टि से लिखे गए हैं, पर उनमें जन जीवन की अनुभूतियो और समस्याओ का समावेश हो गया है। कुछ ऐसे भी

एकांकी लिखे गए हैं, जिनका रंगमंच पर सुगमता से अभिनय किया जा सकता है। नाटकों के पात्र मध्यवर्ग के हैं और अपने क्षेत्र में प्रतिनिधित्व करते हैं। कथानक और भाषा सरल है। नवीनता से प्राचीनता निखर रही है। हिन्दी का एकांकी एक खासी अच्छी मंजिल पार कर चुका है। उसके मूल में फार्म का आकर्षण तो है ही, साथ ही मंच का आग्रह भी है। आज कालेज और क्लब के स्टेज पर उसकी माँग बढ़ती जा रही है। स्वभावतः उसकी सीमा में विस्तार हो रहा है और सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं से विशेष लगाव होने पर भी विचित्रता की कमी नहीं है। उसके अनेक रूप मिलते हैं।[1] विदेशी, विशेषकर रूसी अनुवाद, ज़ोर पकड़ रहे हैं। सामाजिक और स्थूल समस्याओं, प्रश्न और आवश्यकताओं ने एकांकीकारों को आकर्षित कर लिया है और वे इस स्थूलता से उन्हें प्रकट भी करने लगे हैं। वे एकांकी को उस कला के माध्यम में प्रकट करना चाहते हैं, जो तथाकथित कलाकारों को, चाहे कला का माध्यम न प्रतीत हो, पर जन साधारण के लिए एक माध्यम बन सके।[2]

---

१. डा० नगेन्द्र, "आधुनिक हिन्दी नाटक" पृ० १५८।
२. देखिए डा० सत्येन्द्र, "हिन्दी एकांकी" पृ० ३१।

: ६ :

हिन्दी ध्वनि एकांकी की प्रगति और संभावनाएं

रेडियो का माध्यम हिन्दी एकाकी के लिए नवीन है, किन्तु फिर भी आधुनिक सभ्य जीवन के मनोरजन के क्षेत्र में रेडियो के अवतरण ने भी एकाकी नाटको को विशेष प्रोत्साहन दिया है। कुछ आलोचको का तो मत है कि रेडियो ने ही अनेक एकाकी नाट्यकारो को जन्म दिया है।[1] रगमच या पठनीय एकाकी लिखने वाले पुराने हिन्दी नाटककारों को भी रेडियो से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। कुछ कहानीकारो ने रेडियो एकाकी में प्रयोग किए है। रेडियो विभाग से प्राप्त होने वाला अच्छा पारिश्रमिक, विस्तृत श्रोतासमाज, अखिल भारतीय प्रचार, अभिनय की सुविधाओ और भावी प्रसार की उज्ज्वल सभावनाओ के कारण नए पुराने नाटककार नए उत्साह एव मनोयोग से इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। डा० दशरथ ओझा का विचार है कि हिन्दी के जितने नाटक आज रेडियो स्टेशनो पर अभिनीत होते हैं, उतने सिनेमा की प्रयोगशालाओ में भी न होते होंगे। इसलिए नाट्यकला का भविष्य रेडियो रूपक के रचयिताओ के हाथ में है।[2] अनेक उदीयमान एकाकीकार इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं।

रगमच पर अभिनीत होने वाले एकाकी नाटको और रेडियो ारा प्रस्तुत एकाकी नाटको में बडा भेद है। दोनो की टैकनीक भी पृथक पृथक है, क्योकि रेडियो पर नाटक के समस्त वातावरण को हृदयगम कराने का एकमात्र उत्तरदायित्व ध्वनि पर है। रेडियो में समस्त इन्द्रियो का केन्द्र बिन्दु श्रवणेन्द्रिय पर होता है। श्रवण ही नेत्र के कार्य का सम्पादन कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में श्रवण की समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति ध्वनि नाटक के सयोजक को करनी पडती है।[3] रगमचीय नाटक बडे दर्शक समूह को दृष्टि में रखकर उनकी सम्मिलित सवेदनाओं को उद्दीप्त करने के लिए लिखे जाते हैं, किन्तु रेडियो एकाकी में व्यक्ति का ध्यान रखना पडता है। रेडियो अभिनेता दर्शकों से मिलने वाले प्रोत्साहन और प्रतिक्रियाओ से वचित रह जाता है। यहा वेश-भूषा, वय, मुद्राओ गति या शारीरिक गठन आदि की बाधाए नही हैं। रगमचीय नाटको में दृश्य परिवर्तन और सजावट की सीमाए हैं, पर रेडियो नाटक में गति और

---

१ देखिए डा० रामकुमार वर्मा कृत "रजत रश्मि" पृ० ११, भूमिका।
२ डा० दशरथ ओझा "हिन्दी नाटक उद्भव और विकास"।
३ डा० रामकुमार वर्मा "रजत रश्मि" पृ० १२।

दृश्य परिवर्तन सुगमता से हो जाते हैं। भीड़, युद्ध, दौड़, प्रकृति के नाना ध्वनिमूलक दृश्य, हवाई जहाज, समुद्र आदि के दृश्य रेडियो पर विभिन्न ध्वनियों द्वारा सुविधापूर्वक दिखाये जा सकते हैं। रेडियो एकाकी में सर्वत्र सरसता और आकर्षण अनिवार्य है, अन्यथा श्रोता उसे न सुनेंगे। घर, क्लब या दूकान पर होने वाले शोरगुल के बावजूद केवल अपनी नाटक शैली, सरसता और उत्सुकता बनाये रखने के बल पर ही रेडियो नाटककार को अपनी कृति को सामान्य श्रोताओं के लिए ही बोधगम्य बनाना होता है।[1]

रेडियो पर कल्पना प्रधान दृश्य भविष्य अथवा अतीतकाल के गर्भ में छिपे हुए असाधारण एवं अभिनय व्यक्तित्व वाले पात्रों से लेकर नाटककार पशु पक्षियों और मनुष्य की शक्तियों का मानवीय रूप, प्रतीकात्मक पात्र[2] अथवा जड़ पदार्थों का मानवीकरण[3] सुविधापूर्वक उपस्थित कर सकता है। वह नाटक में पात्रों के सम्मिलित स्वर और सगीत का व्यवहार भी कर सकता है। मनुष्य के अतर्जगत तथा अन्तर्द्वन्द्व को चित्रण करने की सुविधाएं हैं। मनोवैज्ञानिक एकाकी जिनमें घात, प्रतिघात, विरोधी भावनाओं का सघर्ष अथवा विक्षिप्तावस्था का चित्रण होता है, या स्वप्न दृश्य विशेष सफल होते हैं। समय के बीतने की व्यजना सगीत या नैरेशन से सरलता से व्यक्त हो जाती है। रेडियो नाटक में स्थान और काल का कोई बन्धन नहीं है। केवल घटनाओं की शृखला और नाटकीय प्रभाव का ध्यान रखना होता है। स्वगत कथन, धीमे अथवा उच्च स्वर, वातावरण के रुपरूप की सुविधाएं रेडियो नाटक की निजी विशेषताएं हैं। तात्पर्य यह है कि रेडियो एकाकीकार को सर्वदा सतर्कता से यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसका श्रोता समाज चक्षुहीन है। कथानक और समस्या का प्रकटीकरण, पात्रों का चरित्र विन्यास, पात्र निर्देश, काल स्थान, परिस्थिति का स्पष्टीकरण वह अन्य उपकरणों जैसे पात्रों के कथोपकथन, पृष्ठभूमि सगीत, ध्वनि आलेखन द्वारा ही करता है।

१. ध्वनि प्रधान संवाद: श्रुति नाट्यकार को ध्वनि प्रधान संवाद लिखने में रंगमंचीय नाटककार की अपेक्षा अधिक ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि यहां एक पात्र दूसरे पात्र के विषय में श्रोताओं के मानसपटल पर निर्देश अंकित करते हैं। पात्रों के कथोपकथनों द्वारा स्थिति दृश्य, दूसरे पात्रों की मन स्थिति और वातावरण का ज्ञान होता है। कथोपकथन की मनोवैज्ञानिकता, वर्णनात्मक शक्ति, दूसरे पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं पर प्रकाश, कार्य व्यापार की गतिविधि, प्रवेश, प्रस्थान और

---

१ प्रो० सिद्धनाथकुमार 'रेडियो नाट्य शिल्प' पृ० ७३ ।

२. जैसे प्रो० सिद्धनाथ कुमार 'विस्तारों का देश' में यह कल्पना कि एशिया में [illegible] सामाजिक व्यवस्था में सभी व्यक्ति विकलांग हैं देखिए "सृष्टि की सांझ" नाटक ।

३. जैसे प्रो० सिद्धनाथ कुमार का "लौह देवता" इसमें यन्त्रयुग को लौह देवता की संज्ञा दी गई है ।

सघर्ष आदि कथासूत्र को आगे ढकेलते हैं। सवादो में ध्वनि के उतार-चढ़ाव द्वारा मानवीय जगत की नाना भावनाओ को व्यक्त करने की विशेषता है। इससे न केवल समस्या, पात्रपरिचय, स्थिति का स्पष्टीकरण होता है, वरन् रगसूचनाओ का भी कार्य होता है। इन सवादो की कुशलता द्वारा ही श्रोता के कल्पना मच पर नाटक दृश्यता प्राप्त करता है। श्रोता के कान श्रोता निवास स्थल (ओडीटोरियम) हैं और कल्पना जगत रगमच। नाटक के दृश्य प्रभाव को श्रोता देखता नही ; संवादों, ध्वनि, सयोजन और सगीत द्वारा अपने कानो के निवास स्थल में ग्रहण कर उसकी कल्पना करता है।

अत श्रुति एकाकी की सफलता या असफलता का सम्पूर्ण आधार ध्वनि-मूलक सवाद की कुशलता है। सवाद की प्रमुख विशेषता यह है कि वे चरित्र के अनुरूप होते हुये नैसर्गिक रूप से बोले जा सकें। इनमें पुस्तकीय या साहित्यिक भाषा अनुपयुक्त रहती है। नित्य प्रति की बोलचाल की भाषा ही काम में आती है। भाषा की स्वाभाविकता पात्रो की सही रूप में कल्पना करने और उसका व्यक्तित्व निर्धारित करने में सहायक होती है।

२. विस्तार रेडियो एकाकी की सबसे बड़ी मर्यादा उसका श्रोता है, जो व्यक्तिगत रूप में नाटक का श्रवण करता है। रगशाला की भाति श्रोता का स्वरूप सामूहिक नही होता। रगमच नाटक या फिल्म को दर्शक घर से चल कर स्वय देखने जाता है, परन्तु रेडियो एकाकी को विभिन्न रुचि, शिक्षा, वर्गों के असख्य श्रोता घर में बैठकर सुविधानुसार व्यक्तिगत रूप में सुनते हैं।[1] बिना कायिक अभिनय के श्रोता के ध्यान को रेडियो एकाकी पर निरन्तर केन्द्रित रखना रेडियो नाट्यकार के लिए एक बहुत ही दुसाध्य कार्य है, क्योंकि श्रवणेंद्रिया शीघ्र ही ऊब जाती हैं। इसी कारण रेडियो एकाकी की लम्बाई पाच मिनट से लेकर एक घटा तक मानी गई है।

३ कथावस्तु . रेडियो एकांकी की कथावस्तु अत्यन्त सरल, आडम्बरविहीन, बिना सहायक विषय या घटनाओं की जटिलता के होनी चाहिए। उसका विषय एक हो, परन्तु आरभ होकर वह क्रमिक विकास द्वारा शीघ्र ही केन्द्र बिन्दु तक पहुचे। सहायक घटनाए कथावस्तु में अनावश्यक जटिलता उत्पन्न करती हैं। कई अच्छे नाटक घटनाओ की जटिलता के कारण असफल हो जाते हैं।

---

१. "He is dealing with an audience infinitely larger, but an audience mainly composed of individual units. His approach therefore must be far more personal more intimate Val Gielgud. "The Radio One Act Play", page 98 "He cannot count on the help of the audience as his audience covers every section of society of different tastes." Ibid.

४. पात्र . पात्रो की संख्या यथासम्भव कम होनी चाहिए[१] क्योंकि स्वर की विभिन्नता से कम पात्रो की रूप रेखा चरित्र की विशेषताएं स्थिति श्रोताओं को सहज बोधगम्य हो सकती है। पात्रो की स्वर विकृति ही श्रोताओ को उनका निर्दिष्ट ज्ञान प्रदान करती है। रेडियो एकाकीकार को ऐसे पात्रो की सृष्टि करनी पडती है, जो मानव सापेक्ष गुणो से निज व्यक्तित्व तथा परिस्थिति की वास्तविकता स्थापित कर सकते है। पात्रों का पारस्परिक परिचय प्रवेश, प्रस्थान, स्थान, समय तथा समस्या, विषय की सूचना पात्रो के सवादो या सूत्रधार द्वारा दी जाती है, जिनमें वर्णनात्मकता तथा चित्रमयता का प्रमुख स्थान है। अनावश्यक विस्तार प्रसग अथवा भाषण लम्बे तर्क, बहस इत्यादि को कोई स्थान नहीं दिया जाता, क्योकि इनसे श्रोताओ का ध्यान मूल समस्या, विषय तथा रसानुभूति, अन्तर्द्वन्द्व और घटनाओं के घात प्रतिघात से हट जाता है। ध्वनि एकाकी में नि शब्दता का भी उतना ही महत्व है, जितना शब्द या पृष्ठभूमि सगीत का।

५. सगीत श्रव्य नाटक में सगीत का विशेष स्थान है। सगीत का प्रमुख कार्य मूलभाव को उद्दीप्त कर प्रभाव और वस्तु का ऐक्य स्थापित करना है। इसकी सहायता से एकता, एकाग्रता, वातावरण एव मनोरजकता की सृष्टि होती है। दृश्यान्तर की अभिव्यक्ति, विराम (पाज) और पृष्ठभूमि निर्माण सगीत की स्वर लहरी द्वारा किया जाता है। अभिनयात्मक के स्थान पर वर्णनात्मक सगीत कथावस्तु का प्राण बन जाता है। नाटक के सार तत्व भावाभिव्यजन एव अन्तर्द्वन्द्व के लिए भी सगीत का प्रयोग किया जाता है। यदि निर्देशक और ध्वनि प्रभाव सयोजक सगीत का सफल प्रयोग करें तो रेडियो एकाकी के प्रभाव की वृद्धि हो जाती है। श्री गिरिजाकुमार माथुर, प० उदयशकर भट्ट इत्यादि के कुछ सगीत रूपक बडे सफल हुए हैं। कारण उनमें सगीत का कुशल प्रयोग हुआ है। रेडियो अभिनेता का कार्य रगमचीय के अभिनेता की अपेक्षा कठिन है, क्योंकि उसे समस्त मनोभाव, आन्तरिक गति, अतर्द्वन्द्व और विकास संघर्ष अपनी ध्वनि ही के उतार चढाव मे करना पड़ता है।

६. स्वगत भाषण : जो स्वगत भाषण रगमंचीय एकाकियो में एक त्रुटि बन जाते है, वे ध्वनि रूपको में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। रेडियो का विशिष्ट माइक्रोफोन सूक्ष्मतर ध्वनियो को भी सफलतापूर्वक ग्रहण करके उन्हें श्रोताओं तक पहुंचा देता है। ध्वनि रूपको में श्रोता दो या अधिक पात्रो की फुसफुसाहट अथवा किसी एक व्यक्ति का एकान्त में बुदबुदाना तक भलीभाति सुन सकते है। इसलिए ध्वनि रूपकों में स्वगत भाषण रगमच पर अभिनीत किये जाने वाले उन स्वगत भाषणों की भांति अस्वाभाविक एव उपहासनीय नहीं होते, जिन्हें अभिनय की दृष्टि से मन पर पडे

---

१. There is need for limiting characters in number to a minimum and for differentiating them as strongly as possible. Ibid.

होकर दर्शको को सुनने के लिए विवश होना पडता है। लम्बे लम्बे स्वगत भाषणो से रूपक की गति में बाधा तो आती है, परन्तु कभी कभी वे अनिवार्य हो जाते हैं।[1]

७ **अभिनय** · ध्वनि रूपको में अभिनय का कार्य कठिन होता है। रगमच अथवा रजतपट पर दृश्य रूपक के अभिनेता वेशभूषा, आकृति, भावभगिमा अथवा विभिन्न दृश्यो, परदो के द्वारा दर्शको को प्रभावित करने के लिए अनिवार्य सहायता लेते हैं, परन्तु माइक्रोफोन पर ध्वनि रूपक का अभिनय करने वाले कलाकारो के पास वाणी के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नही होता। रूपक की प्रतिलिपि उसके हाथ में होती है और उसे पढते पढते उन्हें अभिनय करना होता है। तनिक चूके और गए। विराम चिह्न की एक छोटी सी भूल ध्वनि रूपक के अभिनेता के लिए हलाहल हो सकती है। ध्वनि के उतार चढाव के लिए स्वय निश्चित सकेत विशेष सहायक सिद्ध होते हैं। अभिनेता में विशिष्ट पात्रो जैसे ध्वनि, उसके भावो के अनुसार उत्थान पतन, हर्ष विषाद इत्यादि मनोभावनाओ को नाटकीयता से प्रदर्शन की कला में पारगत होना आवश्यक है, आकार आकृति अथवा वेश का होना नही क्योकि ध्वनि नट अपनी ध्वनि के अतिरिक्त अन्य कुछ भी श्रोताओ के सन्मुख नही लाता। कुछ ध्वनि नटो को अपनी आवाज पर असाधारण अधिकार होता है, और वे कई ध्वनियो में कई पात्रो का अभिनय सफलतापूर्वक कर सकते हैं।

८ **वातावरण :** रेडियो नाटको में वातावरण का विशेष महत्व है। यह प्राय विभिन्न प्रकार के रिकार्डो द्वारा किया जाता है। प्रत्येक स्टूडियो में ध्वनि निर्देशक का पृथक स्थान होता है। जिसमें सिंह गर्जन, बादलो की गडगडाहट, बिजली की कडक, आधी के झोंके, चिडियो की चहचाहट, मूसलाधार वर्षा, नदी की कलकल, रेलगाडी, जनता की भीड, जगल के दृश्यो या शहरो की हलचल इत्यादि के रिकार्डों के अनेक वर्ग होते हैं, जिनकी ध्वनियो के सम्मिश्रण से ध्वनि निर्देशक नाटक के उपयुक्त वातावरण का निर्माण करता रहता है। दूरी अथवा समीपता प्रकट करने के लिए धीरे धीरे ध्वनि का घटाया या बढाया जाना इसी प्रकार निर्देशक के हाथ में रहता है, जिस प्रकार हम रेडियो सैट की ध्वनि घटा या बढा सकते हैं।[2]

९ **इकाइयों की अवहेलना** . रगमच की कठिनाइयो से मुक्त होते हुए, रेडियो नाटककार को कुछ विशेष सुविधाए भी रहती हैं। जहा यह वेष-भूषा की कठिनाइयो से मुक्त है, वहा काल, स्थान की इकाइयो से भी मुक्त है। इस दिशा में यह सिनेमा से भी अधिक स्वच्छन्द है। भिन्न-भिन्न काल तथा समय के दृश्य केवल ध्वनि और वातावरण के परिवर्तन मात्र से सफलतापूर्वक प्रसारित किए जा सकते हैं। यदि कथा

---

१ देखिए प्रो० बृहस्पति कृत "सागर मन्थन", भूमिका, पृष्ठ ८।
२ वही।

वस्तु बडी है तो मध्य में सूत्रधार अपने वर्णन द्वारा रिक्त अशो की पूर्ति करता है।[1]

प्रमुख हिन्दी ध्वनि नाटककार

पुराने एकाकीकारो में दिल्ली आकाशवाणी मे श्री जगदीशचन्द्र माथुर और भगवतीचरण वर्मा, इलाहाबाद से सर्वश्री सुमित्रानन्दन पंत, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क और डा० रामकुमार वर्मा, लखनऊ से गिरिजाकुमार माथुर, नागपुर से उदयशकर भट्ट, पटना से प्रफुल्लचन्द्र मुक्त और जालधर से हरिकृष्ण प्रेमी आदि के एकाकी प्राय नियमित रूप से प्रसारित होते रहते है। रेडियो ने अनेक एकाकी नाटककारो को जन्म दिया है और हिन्दी एकाकी को विकास पथ पर आगे बढाया है।

डा० रामकुमार वर्मा का "औरंगजेब की आखरी रात" अनेक बार आकाशवाणी दिल्ली, लखनऊ और पटना केन्द्रो से प्रसारित हुआ है। इनका गुजराती अनुवाद बम्बई से प्रसारित हुआ था। "तैमूर की हार" प्रथम बार आकाशवाणी इलाहबाद से २७ नवम्बर १९५०, "प्रतिशोध" २४ जुलाई १९५०, "दुर्गावती" २८ जून १९५१ तथा "कलंकरेखा" आकाशवाणी के दिल्ली रेडियो नाट्य-महोत्सव में २७ मार्च १९५१ को प्रसारित होकर प्रकाशित हो चुके है। वर्मा जी के नवीनतम एकाकी जैसे "कादम्ब या विष, स्वर्णश्री, भरत का भाग्य, ज्यो की त्यो धर दीनी चदरिया, स्वागत है, ऋतुराज" आदि विशेष रूप से रेडियो के ही लिए लिखे गए है।[2] अत इनमें प्रतिन्यास नही दिये गए हैं। इनके अतिरिक्त आपके "पुरस्कार, कलाकार का सत्य, फेल्ट हैट, छोटी सी बात, तथा आंखो का आकाश" सफलतापूर्वक प्रसारित तथा ध्वनि नाटको के रूप में भी मान्य हुए है। अधिकाश ऐतिहासिक एकाकियो में इतिहास के अध्ययन के साथ तत्कालीन सास्कृतिक पृष्ठभूमि में पात्रो के चरित्रो को मनोवैज्ञानिक ढग से चित्रित करने की ओर दृष्टि रखी गई है। रेडियो टैकनीक के सम्बन्ध में डा० वर्मा ने विस्तार से लिखा है[3] तथा वे सकलन-त्रय के निर्वाह में विशेष पटु है। चरित्र तथा घटना का दिग्दर्शन एक ही दृष्टि में करा सकने की क्षमता उन्ही के ध्वनि नाटको में है।

प० उदयशकर भट्ट के "समस्या का अन्त, धूमशिखा, पर्दे के पीछे" आदि सग्रहो के एकाकियो पर ध्वनि टैकनीक छाप है। उन्होने विशेष रूप से रेडियो के लिए अपने "आदिम युग, कुमार सम्भव, आत्मदान, गिरती दीवारें और अशान्ति" आदि

---

१. He is not hampered by having to get along without changes in time and space. The radio theatre has the freedom of the cinema, perhaps an even greater freedom in regard to changes of scene and sequence.. Val. Gielgud. The One Act Play and the Radio" page 102.

२. देखिए डा० रामकुमार वर्मा कृत "ऋतु राज" भूमिका, पृ० १८।

३. देखिए डा० नगेन्द्र "पर्दे के पीछे" भूमिका, पृ० ७।

एकाकियो में आंगिक अभिव्यक्ति को कम करके ध्वनि से पूर्ण किया है।[1] इनमें निर्देश के साथ ध्वनि भी दी है, जिससे वे रेडियो तथा रंगमच दोनो के लिए उपयुक्त हो सकें। रेडियो द्वारा प्रसारित "नवभारत" के रूपको में भी आपका विशेष योग रहा है। "एकला चलो रे, कालीदास, मदन दहन, सौदामिनी" आदि गीतिनाट्य रेडियो की प्रेरणा से लिखे और सफलता से प्रसारित किए गए हैं। भट्ट जी के नए एकाकी रेडियो की प्रेरणा से ही लिखे जा रहे हैं। हमारा आज का सभ्य जीवन विशेषत स्वतत्रता के बाद का समय समस्यामूलक है। समाज में स्वच्छन्दता, भ्रान्त धारणाए, गलत जीवन मूल्य तथा उच्छृखलता आदि त्रुटियां आ गई है। भट्ट जी ने आपने ध्वनि नाटकों में इन्ही थोथे सामाजिक मूल्यों पर व्यंग्य और प्रहार किया है। भाषा सहज, सरस, सभाषण सक्षिप्त और चुटीले, घटनाओ और कार्यों की सश्लिष्ट सयोजना और सकलन-त्रय का पूर्ण निर्वाह है। भट्ट जी की कला, विशेषत नए गीति नाट्यों में आकर अपने सर्वांगीण रूप से विकसित हो गई है। जीवन की दैनिन्दिनी अनुभूतियो को कला के माध्यम से चित्रित कर देना, इनकी विशेषता है। भट्ट जी के व्यक्तित्व में परम्परा की गरिमा और प्रयोग की स्फूर्ति है और वे प्राचीन सस्कारो का आदर्श लिए नवीन यथार्थ के प्रति चिर जागरुक रहे है।[2]

अश्क स्वय रेडियो में कार्य कर चुके हैं।[3] अत रेडियो नाटक के शिल्प से भली भाति परिचित हैं। अपने एकाकियो के निर्देशन में आप स्वय सहायता करते हैं। आपके 'लक्ष्मी का स्वागत, अधिकार का रक्षक, जोक, आपस का समझौता, छटा बेटा, हजूर मेरा नाम बैट्रिस है, पापी, कैद और उडान, स्व की झलक, भवर, अजो दीदी" एकाकी सफलतापूर्वक प्रसारित हो चुके हैं। आपका उपन्यास "बडी-बडी आखें" भी नाटक रूप में इलाहाबाद रेडियो से प्रसारित हो चुका है। रेडियो के लिए उन्होंने कई एकाकियो को नए रूप से परिवर्तित भी किया है।[4] उन्होंने वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के चक्र में उलझे हुए मानव के अन्तर्मन में बसने वाली पीडा, घायल सस्कार तथा प्यासी खूंखार, प्रवृत्तियो का चित्रण किया है। वातावरण निर्माण, सकेतात्मकता, तथा नारी मन की गुप्त व्यथाओ का चित्रण अश्क की निजी विशेषताए हैं। आपका एकाकी "पापी" रेडियो पर विशेष लोकप्रिय हुआ है। "पापी" और "लक्ष्मी का स्वागत" जैसे नाटकीयता, वोधगम्यता और मार्मिकता अश्क के सभी एकाकियो में है। "पापी" कलात्मक अन्तर्दृष्टि और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक सघर्षों का सफल रूप उपस्थित करता है।

लखनऊ रेडियो से श्री गिरिजाकुमार माथुर के अनेक एकाकी और काव्य

---

१. देखिए, उदयशकर भट्ट कृत "समस्या का अन्त" भूमिका पृ० २।

२ देखिए डा० नगेन्द्र "पर्दे के पीछे" भूमिका, पृ० ७।

३ जून १९४१ में अश्क आल इण्डिया रेडियो में परामर्शदाता के रूप में कार्य करने लगे और १९४५ में त्यागपत्र दे दिया "नाटककार अश्क" पृ० ४९२।

४ जैसे, "शिकारी" नाटक का अन्त। देखिए "नाटककार अश्क" पृ० ११८।

नाटक प्रसारित हुए हैं। इनमें "जन्म कैद, पिकनिक, मशीनोत्सव, रस की जीत, विक्रमादित्य आदि एकाकी, "मेघ की छाया, इन्दुमती" आदि गीति नाट्य, "गीत गोविन्द, कुमार सभव, शकुन्तला" आदि नाट्य रूपान्तर, "विषपान, क्रान्तिपथ, वासवदत्ता आदि ऐतिहासिक एकांकी तथा शान्ति की पुकार, व्यक्तिमुक्त धरामुक्त, राम की अग्नि परीक्षा शान्ति विश्वेदेवा, मदनोत्सव, वकुल मुकुल, खून की रेखाए आदि उल्लेखनीय है। माथुर साहब की नवीनतम रेडियो कृतियो में "लाउड स्पीकर, मध्यस्था, बरात चढे, बनन्त की चादनी और बहती जा दामोदर" आदि पुष्ट और परिष्कृत रेडियो एकाकी है। उनके गीति एकाकी बहुत सुन्दर हैं। इनमें वैयक्तिक अनुभूति के साथ काव्यकला और साकेतिकता भी है।

उपर्युक्त पुराने नाटककारो के अतिरिक्त कुछ नाटककार ऐसे है, जो रेडियो के लिए नियमित रूप से एकाकी लिख रहे है। रेडियो ने अनेक हिन्दी एकाकीकारो को जन्म दिया है। स्थायी रूप से रेडियो नाटक लिखने वाले नाटककारो के एकाकी साहित्य की निजी विशेषताए हैं। प्रत्येक का स्वतत्र व्यक्तित्व, पृथक विचारधारा, एव अलग क्षेत्र है। कुछ रेडियो नाटककारो जैसे विष्णु, चिरजीत, प्रभाकर माचवे, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव आदि के एकाकी इतने लोकप्रिय हुए है कि श्रोताओ के आग्रह से पुन पुनः प्रसारित हुए है। हिन्दी के आधुनिक रेडियो नाटककारो के नाटक साहित्य में इनकी विषयगत और कलाजन्य विशेषताए इस प्रकार प्रकट हो रही हैं।

१. श्री विष्णु प्रभाकर : विष्णु यथार्थ और आदर्श को पृथक नही मानते, यथार्थ की भित्ति पर ही आदर्श की स्थापना करते है। कहानी के क्षेत्र में प्रगतिशील, यथार्थवादी तथा आदर्शवादी तीनो ही श्रेणियो मे आपको स्थान प्राप्त हो चुका है, किन्तु आपका झुकाव यथार्थ के सहारे सदा आदर्श की ओर ही अग्रसर होना रहा है। मानव आपका लक्ष्य है। आप एक मानववादी एकाकीकार है, जो मानववादी आदर्श के बिना जीवित नही रह सकता और यथार्थ के बिना चल नहीं सकता। मानववादी विष्णु अपनी कला और अभिव्यक्ति के प्रति ईमानदार रहने के लिए सदा प्रयत्नशील रहे है।

मानव का अध्ययन आपके रेडियो रूपक, रेडियो रूपान्तर, फैंटेसी, और स्वगत नाटको में किसी न किसी रूप में प्रकट होता रहा है। मानव जीवन के किसी पक्ष, व्यक्ति के चरित्र के किसी पक्ष अथवा समाज की किसी समस्या, राजनीति के किसी पहलू, पात्रो के अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक भावना ग्रन्थि, आन्तरिक संघर्ष या सामाजिक विषमता को उभार देते हैं। विष्णु के हाथ में एकांकी एक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कला है। ये मध्यवर्गीय समाज में फिरते हुए विभिन्न रुचियों के व्यक्ति, विभिन्न वर्गों की विचारधारा, संस्कार और भावनाओं, किसी विशेष परिस्थिति अथवा जीवन की उद्दीप्त घडी या मार्मिक पहलुओं के चित्र है। आपने अपने एकांकियों में मानव की रुचि, तथा भावनाओ उनकी उलझनो और संघर्षों के तार तार को पृथक करने की चेष्टा की है। विष्णु का मनोविज्ञान गहरा है। उनके कुछ एकाकी नाटको में पात्रो

का अन्तर्द्वंद्व, अचेतन मन की कटु मृदु स्मृतिया, विक्षिप्तावस्था आदि वडी सफलता और प्रभावशाली ढग से चित्रित हुई है।

राष्ट्रीय क्रान्ति और भारत की राजनीतिक हलचलो का चित्रण, गाधीवादी विचारधारा का प्रतिपादन और सामाजिक विद्रूपताओ का चित्रण इनकी कुछ विषय-गत विशेषताएं है। सामयिक और पारिवारिक समस्याओ तथा प्रेम सम्बन्धी जटिल-ताओ पर भी आपके अनेक एकाकी लिखे गये हैं। घृणा द्वेष के ऊपर मनुषोचित प्रेम तथा सहानुभूति की विजय चित्रित करना, मानवता के हृदय तथा आत्मा के सहज सौन्दर्य का उद्घाटन करना, इस एकाकीकार के एकाकी साहित्य का प्रधान आक-र्षण है।

विष्णु के एकाकियों में प्रथम वर्ग उनके सामाजिक समस्या एकाकियो का है। इसमें उन्होंने भारत की पुरानी सामाजिक कुरीतियो के अतिरिक्त देश में होने वाली विभाजन सम्बन्धी नवीन सामाजिक समस्याओ का भी चित्रण किया है। आपके कुछ एकाकियो में ये समस्या चित्रित है। १. "बन्धनमुक्त" में अछूतोद्धार २ "पाप" में अविवाहित युवती का अनुचित प्रेम सम्बन्ध, ३ "साहस" में गरीबी और वेश्यावृत्ति ४. "प्रतिशोध" और ५ "इन्सान" में हिन्दू मुसलिम झगडे और साम्प्रदायिक समस्याएं ६. "देवताओं की घाटी" में काश्मीर तथा दुष्ट आक्रमणकारियो का विरोध चित्रित है। ७. "वीर पूजा" में भ्रष्ट शरणार्थी देवियो की समस्या है। ८ "चन्द्र-किरण" परित्यक्ताओ को पुन अपनाने के सम्बन्ध में लिखा गया है ९ "रक्तचन्दन" काश्मीर युद्ध में बलिदान की एक करुण पर गौरवपूर्ण घटना पर आधारित है। १० "मां" ११. "भाई" १२ "दूर और पास", एकाकियो में नाना पारिवारिक समस्याओ

के बाद" में नारी के मन का अध्ययन है। ६. "मा बाप" में दिखाया है कि पिता महान् उद्देश्य के लिए पुत्र की मृत्यु पर गर्व तो माता संताप का अनुभव करती है। ७ "एक ही नाव में" पुत्री के दोष को मा बाप अपने जीवन के प्रकाश में ताड़ना से नहीं सहानुभूति से दूर करने का प्रयत्न करते हैं। ८ "मुन्शी" में एक साधारण व्यक्ति की समस्याएं हैं। ९. "प्रेयसि पहले" सेक्स का अध्ययन है। इनके अतिरिक्त १०. रहमान का बेटा ११. मानव १२. जहां दया पाप है १३ दोराहा १४ और वह जा न सकी १५. रात दस बजे १६ जज का फैसला १७ दो किनारे १८ दरिन्दा १९. "सवेरा" आदि एकाकी नाटकों में विभिन्न चरित्रों के अध्ययन हैं। पात्रों के संस्कार, गुप्त मन का विश्लेषण, अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित करने की ओर लक्ष्य रहा है।

तीसरे वर्ग में विष्णु के राजनीतिक एकाकी रखे जा सकते हैं। इनमें देश की राजनीतिक उथल पुथल, समाज पर राजनीति का प्रभाव, राष्ट्रीय गौरव और आजादी आन्दोलन के चित्र खींचे गये हैं। १. "बीमार" एकाकी में १९४२ की देशव्यापी राजनीतिक क्रान्ति का चित्र है। २. "क्रान्ति' एकाकी पूंजीवाद के विरोध में लिखा गया है ३. "कांग्रेस मैन बनो," कांग्रेस में घुसे अवसरवादियों और भ्रष्टाचारियों पर एक व्यंग्य है ५. "हमारा स्वाधीनता संग्राम" (छ भाग) में भारतवासियों की आजादी की लड़ाई का चित्रण है। शुष्क इतिहास को भी बड़ा सजीव और रोचक बना कर प्रस्तुत किया गया है। इनमें सन् १८५७ के ग़दर, जलियानवाला बाग, असहयोग आन्दोलन, स्वतन्त्रता की घोषणा, सन् १९३० का जन आन्दोलन, सन् १९४२ का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन, १५ अगस्त १९४७ की स्वतन्त्रता प्राप्ति आदि घटनाएं नाटकीय दृष्टि से विशेष मार्मिक बन पड़ी हैं। नए एकाकी ५ "शरीर का मोल" में विदेशी दूतावास के जाल दिखाये गये हैं। राजनीतिक एकाकियों में भी विष्णु की दृष्टि व्यापक रही है। तत्कालीन राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को प्रकट करने का विशेष ध्यान रखा है।

चौथे वर्ग में विष्णु के हास्य व्यंग्य प्रधान प्रहसन रख सकते हैं। इनमें शिष्ट हास्य के साथ व्यंग्य का कलात्मक समन्वय है। इस वर्ग में निम्न प्रहसन रखे जा सकते हैं १ "प्रो० लाल" इस प्रहसन में सोचने और बोलने की मशीन के सहारे भाषण देना सीखने वाले एक व्यक्ति पर व्यंग्य किया गया है २. "रेत के बोल" में चित्रित किया गया है कि सिनेमा के अश्लील गीतों के फैलाने में मां बाप का हाथ रहता है। ३ "मूर्ख" प्रहसन में उन व्यक्तियों पर व्यंग्य है जो एक पत्नी रहते दूसरा विवाह करने के इच्छुक रहते हैं। ४ "सरकारी नौकरी" में दफ्तरी जीवन की झांकी है। ५ "पुस्तक कीट" में रट्टू विद्यार्थियों पर व्यंग्य है। ६. 'मार्क्सिज्म' में जनतंत्र के मंत्रियों पर आक्षेप व्यंग्य है। ७ "कांग्रेस मैन बनो" में अवसरवादी कांग्रेसियों पर व्यंग्य है। ८. व्यंग्य प्रहसन में दिखाया गया है कि जो बात हम जीवन

का अन्तर्द्वन्द्व, अवचेतन मन की कटु मृदु स्मृतिया, विक्षिप्तावस्था आदि बडी सफलता और प्रभाववाली ढग से चित्रित हुई है।

राष्ट्रीय क्रान्ति और भारत की राजनीतिक हलचलो का चित्रण, गाधीवादी विचारधारा का प्रतिपादन और सामाजिक विद्रूपताओ का चित्रण इनकी कुछ विषय-गत विशेषताए हैं। सामयिक और पारिवारिक समस्याओ तथा प्रेम सम्बन्धी जटिल-ताओ पर भी आपके अनेक एकाकी लिखे गये हैं। घृणा द्वेष के ऊपर मनुष्योचित प्रेम अथवा सहानुभूति की विजय चित्रित करना, मानवता के हृदय तथा आत्मा के सहज सौन्दर्य का उद्घाटन करना, इस एकाकीकार के एकाकी साहित्य का प्रधान आक-र्षण है।

विष्णु के एकाकियो में प्रथम वर्ग उनके सामाजिक समस्या एकाकियो का है। इसमे उन्होने भारत की पुरानी सामाजिक कुरीतियो के अतिरिक्त देश में होने वाली विभाजन सम्बन्धी नवीन सामाजिक समस्याओ का भी चित्रण किया है। आपके कुछ एकाकियो में ये समस्या चित्रित हैं। १ "बन्धनमुक्त" में अछूतोद्धार २ "पाप" में अविवाहित युवती का अनुचित प्रेम सम्बन्ध, ३ "साहस" में गरीबी और वेश्यावृत्ति ४ "प्रतिशोध" और ५ "इन्सान" में हिन्दू मुसलिम झगडे और साम्प्रदायिक समस्याए ६ "देवताओ की घाटी" में काश्मीर तथा दुष्ट आक्रमणकारियो का विरोध चित्रित है। ७ "वीर पूजा" में भ्रष्ट शरणार्थी देवियो की समस्या है। ८ "चन्द्र-किरण" परित्यक्ताओ को पुन अपनाने के सम्बन्ध में लिखा गया है ९ "रक्तचन्दन" काश्मीर युद्ध में बलिदान की एक करुण पर गौरवपूर्ण घटना पर आधारित है। १० "मा" ११. "भाई" १२ "दूर और पास", एकाकियो में नाना पारिवारिक समस्याओ का विश्लेषण है। १३. "किरण और कुहासा" अन्तर्जातीय विवाह से सम्बन्धित है। १४ "नये पुराने" में सयुक्त परिवार में माता पिता व सन्तान की नाना स्थितियो का अध्ययन है। १५ "श्वेत अधकार" में रिश्वत लेने और देने की विशेष परिस्थितियो का चित्रण है। इनके अतिरिक्त १६ "भगवान" १७ "नया समाज" १८ "विचार और कर्म" १९ "प्रेम" आदि विभिन्न सामाजिक समस्याओ पर आधारित हैं।

दूसरे वर्ग में विष्णु के वे एकाकी रखे जा सकते हैं जिनका विषय तो सामा-जिक है किन्तु शैली मनोवैज्ञानिक है। मनोवैज्ञानिक एकाकियों के क्षेत्र में विष्णु सबसे उत्तम और साहित्य की रचना कर सकते हैं। इनमें पात्रो की अन्तर्वृत्तियो और गुप्त मन की जटिल और स्थायी छुपी हुई भावना ग्रन्थियो का सूक्ष्म विश्लेपण है। इस वर्ग में विष्णु को निम्न एकाकी उल्लेखनीय हैं। १ 'ममता का विष" में चित्रित किया गया है कि माता की ममता में पुत्र के हित से अधिक अपना स्वार्थ होता है। २ "भावना और सस्कार" में दिखाया गया है कि सस्कारो के दास मनुष्य को भावना प्रगतिशील बना देती है। ३ "अपचेतना का छल" में लीलामयी अन्तश्चेतना के गूढ रहस्य दिखाये गये हैं। ४ "मैं दोषी नही हू" एकाकी में अपराधी के मन का विश्लेषण है। ५ "हत्या

के बाद" में नारी के मन का अध्ययन है। ६. "मा बाप" में दिखाया है कि पिता महान् उद्देश्य के लिए पुत्र की मृत्यु पर गर्व तो माता संताप का अनुभव करती है। ७ "गुरु ही नाव में" पुत्रों के दोष को मा बाप अपने जीवन के प्रकाश में ताड़ना से नहीं सहानुभूति से दूर करने का प्रयत्न करते हैं। ८ "मुल्ली" में एक साधारण व्यक्ति की समस्याएं हैं। ९. "प्रेयसि पहले" सैक्स का अध्ययन है। इनके अतिरिक्त १० रहमान का बेटा ११. मानव १२. जहा दया पाप है १३ दोराहा १४ और वह जा न सकी १५. रात दस बजे १६ जज का फैसला १७ दो किनारे १८ दरिन्दा १९ "सवेरा" आदि एकाकी नाटकों में विभिन्न चरित्रों के अध्ययन हैं। पात्रों के संस्कार, गुप्त मन का विश्लेषण, अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित करने की ओर लक्ष्य रहा है।

तीसरे वर्ग में विष्णु के राजनीतिक एकाकी रखे जा सकते हैं। इनमें देश की राजनीतिक उथल पुथल, समाज पर राजनीति का प्रभाव, राष्ट्रीय गौरव और आजादी आन्दोलन के चित्र खीचे गये है। १. "बीमार" एकाकी में १९४२ की देशव्यापी राजनीतिक क्रान्ति का चित्र है। २. "क्रान्ति" एकाकी पूजीवाद के विरोध में लिखा गया है ३ "कांग्रेस मैन बनो," कांग्रेस में घुसे अवसरवादियों और भ्रष्टाचारियों पर एक व्यग्य है ५. "हमारा स्वाधीनता संग्राम" (छ भाग) में भारतवासियों की आजादी की लडाई का चित्रण है। शुष्क इतिहास को भी बड़ा सजीव और रोचक बना कर प्रस्तुत किया गया है। इनमें सन् १८५७ के ग़दर, जलियानावाला बाग, असहयोग आन्दोलन, स्वतंत्रता की घोषणा, सन् १९३० का जन आन्दोलन, सन् १९४२ का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन, १५ अगस्त १९४७ की स्वतंत्रता प्राप्ति आदि घटनाएं नाटकीय दृष्टि से विशेष मार्मिक बन पडी है। नए एकाकी ५ "शरीर का मांस" में विदेशी दूतावास के जाल दिखाये गये है। राजनीतिक एकांकियों में भी विष्णु की दृष्टि व्यापक रही है। तत्कालीन राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को प्रकट करने का विशेष ध्यान रखा है।

चौथे वर्ग में विष्णु के हास्य व्यंग्य प्रधान प्रहसन रख सकते हैं। इनमें शिष्ट हास्य के साथ व्यग्य का कलात्मक समन्वय है। इस वर्ग में निम्न प्रहसन रखे जा सकते है १ "प्रो० लाल" इस प्रहसन में सीने और बोलने की मशीन के सहारे भाषण देना सीखने वाले एक व्यक्ति पर व्यग्य किया गया है २ "ीत के बोल" में चित्रित किया गया है कि सिनेमा के अश्लील गीतों के फैलाने में किस का हाथ रहता है। ३ "मूर्ख" प्रहसन में उन व्यक्तियों पर व्यग्य है जो एक पत्नी रहते दूसरा विवाह करने के इच्छुक रहते है। ४. "सरकारी नौकरी" में क्लर्क जीवन की झाकी है। ५. "पुस्तक कीट" में रट्टू विद्यार्थियों पर व्यग्य है। ६. "पार्लमेंट" में जनतंत्र के मंत्रियों पर आक्षेप व्यग्य है। ७. "कांग्रेस मैन बनो" में अवसरवादी कांग्रेसियों पर व्यंग्य है। ८. व्यंग्य प्रहसन में दिखाया गया है कि जो बात हम जीवन

का अन्तर्द्वन्द्व, अवचेतन मन की कटु मृदु स्मृतिया, विक्षिप्तावस्था आदि बडी सफलता और प्रभाववाली ढग से चित्रित हुई है।

राष्ट्रीय क्रान्ति और भारत की राजनीतिक हलचलो का चित्रण, गाधीवादी विचारधारा का प्रतिपादन और सामाजिक विद्रूपताओ का चित्रण इनकी कुछ विषय-गत विशेषताए हैं। सामयिक और पारिवारिक समस्याओ तथा प्रेम सम्बन्धी जटिल-ताओ पर भी आपके अनेक एकाकी लिखे गये हैं। घृणा द्वेष के ऊपर मनुषोचित प्रेम अथवा सहानुभूति की विजय चित्रित करना, मानवता के हृदय तथा आत्मा के सहज सौन्दर्य का उद्घाटन करना, इस एकांकीकार के एकाकी साहित्य का प्रधान आक-र्षण है।

विष्णु के एकाकियो में प्रथम वर्ग उनके सामाजिक समस्या एकाकियो का है। इसमें उन्होने भारत की पुरानी सामाजिक कुरीतियो के अतिरिक्त देश में होने वाली विभाजन सम्बन्धी नवीन सामाजिक समस्याओ का भी चित्रण किया है। आपके कुछ एकाकियो में ये समस्या चित्रित हैं। १ "बन्धनमुक्त" में अछूतोद्धार २ "पाप" में अविवाहित युवती का अनुचित प्रेम सम्बन्ध, ३ "साहस" में गरीबी और वेश्यावृत्ति ४ "प्रतिशोध" और ५ "इन्सान" में हिन्दू मुसलिम झगडे और साम्प्रदायिक समस्याए ६ "देवताओ की घाटी" में काश्मीर तथा दुष्ट आक्रमणकारियो का विरोध चित्रित है। ७ "वीर पूजा" में भ्रष्ट शरणार्थी देवियो की समस्या है। ८ "चन्द्र-किरण" परित्यक्ताओ को पुन अपनाने के सम्बन्ध में लिखा गया है ९ "रक्तचन्दन" काश्मीर युद्ध में बलिदान की एक करुण पर गौरवपूर्ण घटना पर आधारित है। १० "मा" ११. "भाई" १२ "दूर और पास", एकाकियो में नाना पारिवारिक समस्याओ का विश्लेषण है। १३ "किरण और कुहासा" अन्तर्जातीय विवाह से सम्बन्धित है। १४ "नये पुराने" में सयुक्त परिवार में माता पिता व सन्तान की नाना स्थितियो का अध्ययन है। १५ "श्वेत अधकार" में रिश्वत लेने और देने की विशेष परिस्थितियो का चित्रण है। इनके अतिरिक्त १६ "भगवान" १७ "नया समाज" १८ "विचार और कर्म" १९ "प्रेम" आदि विभिन्न सामाजिक समस्याओ पर आधारित हैं।

दूसरे वर्ग में विष्णु के वे एकाकी रखे जा सकते हैं जिनका विषय तो सामा-जिक है किन्तु शैली मनोवैज्ञानिक है। मनोवैज्ञानिक एकाकियों के क्षेत्र में विष्णु सबसे उत्तम और साहित्य की रचना कर सकते हैं। इनमें पात्रो की अन्तर्वृत्तियो और गुप्त मन की जटिल और स्थायी छुपी हुई भावना ग्रन्थियो का सूक्ष्म विश्लेषण है। इस वर्ग में विष्णु को निम्न एकाकी उल्लेखनीय हैं। १ 'ममता का विष" में चित्रित किया गया है कि माता की ममता में पुत्र के हित से अधिक अपना स्वार्थ होता है। २ "भावना और सस्कार" में दिखाया गया है कि सस्कारो के दास मनुष्य को भावना प्रगतिशील बना देती है। ३ "उपचेतना का छल" में लीलामयी अन्तश्चेतना के गूढ रहस्य दिखाये गये हैं। ४ "मैं दोषी नही हू" एकाकी में अपराधी के मन का विश्लेषण है। ५ "हत्या

के वाद" में नारी के मन का अध्ययन है। ६. "मा वाप" में दिखाया है कि पिता महान् उद्देश्य के लिए पुत्र की मृत्यु पर गर्व तो माता सताप का अनुभव करती है। ७ "एक ही नाव में" पुत्री के दोष को मा वाप अपने जीवन के प्रकाश में ताडना से नहीं सहानुभूति से दूर करने का प्रयत्न करते है। ८. "मुल्वो" में एक साधारण व्यक्ति की समस्याए है। ९. "प्रेयसि पहले" सैक्स का अध्ययन है। इनके अतिरिक्त १०. रहमान का वेटा ११. मानव १२. जहा दया पाप है १३ दोराहा १४ और वह जा न सकी १५. रात दस वजे १६ जज का फैसला १७ दो किनारे १८ दरिन्दा १९. "सवेरा" आदि एकाकी नाटको में विभिन्न चरित्रो के अध्ययन है। पात्रो के संस्कार, गुप्त मन का विश्लेषण, अन्तर्द्वन्द्व और सघर्ष को मनोवैज्ञानिक ढग से चित्रित करने की ओर लक्ष्य रहा है।

तीसरे वर्ग में विष्णु के राजनीतिक एकाकी रखे जा सकते है। इनमें देश की राजनीतिक उथल पुथल, समाज पर राजनीति का प्रभाव, राष्ट्रीय गौरव और आजादी आन्दोलन के चित्र खीचे गये हैं। १. "बीमार" एकाकी में १९४२ की देशव्यापी राजनीतिक क्रान्ति का चित्र है। २. "क्रान्ति" एकाकी पूजीवाद के विरोध में लिखा गया है ३. "कांग्रेस मैन बनो," कांग्रेस में घुसे अवसरवादियो और भ्रष्टाचारियो पर एक व्यग्य है ५ "हमारा स्वाधीनता सग्राम" (छ भाग) मे भारतवासियो की आजादी की लडाई का चित्रण है। शुष्क इतिहास को भी वडा सजीव और रोचक बना कर प्रस्तुत किया गया है। इसमें सन् १८५७ के ग़दर, जलियानावाला वाग, असहयोग आन्दोलन, स्वतत्रता की घोषणा, सन् १९३० का जन आन्दोलन, सन् १९४२ का 'भारत छोडो' आन्दोलन, १५ अगस्त १९४७ की स्वतत्रता प्राप्ति आदि घटनाए नाटकीय दृष्टि से विशेष मार्मिक वन पडी हैं। नए एकाकी ५ "शरीर का मोह" में विदेशी दूतावास के जाल दिखाये गये है। राजनीतिक एकाकियो में भी विष्णु की दृष्टि व्यापक रही है। तत्कालीन राजनीतिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि को प्रकट करने का विशेष ध्यान रखा है।

चौथे वर्ग में विष्णु के हास्य व्यग्य प्रधान प्रहसन रख सकते है। इनमें शिष्ट हास्य के साथ व्यंग्य का कलात्मक समन्वय है। इस वर्ग में निम्न प्रहसन रखे जा सकते हैं १ "प्रो० लाल" इस प्रहसन में सोचने और वोलने की मशीन के सहारे भाषण देना सीखने वाले एक व्यक्ति पर व्यग्य किया गया है २. "रेल के वोल" में चित्रित किया गया है कि सिनेमा के अश्लील गीतो के फैलाने में मां वाप का हाथ रहता है। ३ "मूर्ख" प्रहसन में उन व्यक्तियों पर व्यंग्य है जो एक पत्नी रहते दूसरा विवाह करने के इच्छुक रहते है। ४. "सरकारी नौकरी" में क्लर्क जीवन की झाकी है। ५ "पुस्तक कीट" में रट्टू विद्यार्थियो पर व्यग्य है। ६. "जनतंत्र" में जनतत्र के मंत्रियो पर आक्षेप व्यग्य है। ७ "कांग्रेस मैन बनो" में अवसरवादी कांग्रेसियो पर व्यग्य है। ८. व्यंग्य प्रहसन में दिखाया गया है कि जो वात हम जीवन

में नही सह सकते, उसे कहानी में स्वीकार कर लेते हैं। ९. "कला का मूल्य" में सम्पादक की मिथ्या प्रशसा तथा गरीब लेखको का शोषण चित्रित है। इनके अतिरिक्त १०. दृष्टि की खोज, ११. रसोइघर में प्रजातत्र और १२ रिश्तेदार आदि ऐसी ही व्यग्यप्रधान झांकियां हैं।

पाचवा वर्ग पौराणिक ऐतिहासिक एकाकियो का है। इस वर्ग में निम्न एकाकी रखे जा सकते हैं। १ "अशोक" में कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक के परिवर्तित स्वरूप का चित्रण है। २ "परिवेदन" में अकबर की धर्म समन्वय नीति का दिग्दर्शन कराया गया है। ३. देवताओ का प्यारा ४. "झासी की रानी" आदि सुन्दर ऐतिहाहासिक एकाकी हैं। इनके अतिरिक्त विष्णु ने पौराणिक विषयो पर भी कुछ रूपक लिखे है। जैसे १. नहुष का पतन २ कसमर्दन ३ जन्माष्टमी ४ शिवरात्रि ५. सम्भवामि युग युग ६ गगा की गाथा आदि।

छठे वर्ग में प्रचारात्मक दृष्टिकोण से रचित नाटक हैं, जिनमें देश की सामयिक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और विशेषत गाधीवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है। जैसे १ यू० एन० ओ० और युनेस्को २ हमारा स्वाधीनता सग्राम ३ सयम ४ स्वतत्रता का अर्थ ५ मजदूर और राष्ट्रचरित्र ६ काम ७ सर्वोदय ८. सहिष्णुता ९ शिक्षा १० नारी ११ अनुशासन १२ नया समाज १३ काग्रेस और सांस्कृतिक उन्नति १४ पडोसी १५ समाज सेवा १६ राजस्थान १७ मध्यभारत १८ विन्ध्यप्रदेश १९ बच्चे तथा उनके माता पिता २०. नया काश्मीर २१ जमीदारी उन्मूलन २२ पचायत २३. चोर हाट।

रेडियो उन्मूलन : १ ढोलामारू २ कमला (रामचन्द्र तिवारी के उपन्यास का रेडियो रूपान्तर), ३ सिंदबाद, ४ शतरज के खिलाडी (प्रेमचन्द की कहानी का रूपान्तर), ५ समाज के स्तम्भ (इब्सन), ६ सूरदास (प्रेमचन्द कृत), ८ आश्रिता, ९ प्राइड एण्ड प्रेजुडिस, १० मुक्ति मार्ग, (प्रेमचन्द कृत), ११ मनोवृत्ति (प्रेमचन्द कृत), १२ काबुलीवाला और छुट्टी (रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत), १३ मृगजाल (अ० गो० शेवडे कृत), १४ मृगनयनी (वृ० ला० वर्मा कृत), १५ नीली छतरी (एक उर्दू का जासूसी उपन्यास), १६ सन्यासी (इलाचन्द्र जोशी कृत)।

बच्चों के एकांकी : इस वर्ग में आपके १.न्याय २ ईमानदार लडकी ३ सफाई ४ चोर हाट ५ मा का बेटा ६ समवेदन ७ न्याय ८ पुस्तक कीट ९ ऐसे ऐसे १० होली ११ गुरू द्रोण की पाठशाला १२ भीम और राक्षस १३ हसलो, गालो, आज दीवाली, १४ मोटे लाला और १५ "दादा की कचहरी" आदि आते हैं।

विष्णु की ममतामयी कला ने भावना की भूमि पर क्रमिक विकास पाया है। उन्होंने कल्पना के आकाश में नही, जीवन की कठोर भूमि पर अपने उपकरण जुटाये हैं। उनकी दृष्टि यथार्थ से जूझ-जूझ-कर ही व्यापक, गहन, निर्मल और स्निग्ध बनती गई है। विष्णु के नाटक यथार्थ तथा भावना से निर्मित हैं। यथार्थ

उनकी कला को इस जीवन से टूटने नही देता, भावना उनकी कला को पंख देती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण उनके पात्रो तथा पृष्ठभूमि को सूक्ष्म बना देता है। यथार्थ द्वारा वह कठोर से कठोर तथ्य से भी नही घबराये है। गम्भीरतम समस्याओं, जैसे राजनीतिक नाटको में भारत का स्वतन्त्रता के लिए युद्ध, नोआखली तथा पश्चिमी पाकिस्तान का नरमेध, लज्जा की प्रतीक नारियो का नग्न प्रदर्शन, वालको के अग विच्छेद, काश्मीर आक्रमण, परित्यक्ताओ की समस्याए, साम्प्रदायिक झगडे, महगाई घूसखोरी, काग्रेस की कमजोरिया, सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट पार्टियो का निर्माण और वल प्राप्त करना, राजनीति में धर्म, भारत में फैली हुई गुटवन्दी, उलझन संकीर्णता, राजनीतिक पार्टियो के क्षुद्र स्वार्थ और सस्ते ढग के राजनीतिक कार्यकर्ताओं की ईमान फरोशी गाधीवाद आदि को भी आप नग्न स्वरूप में रख पाये है। भावना ारा उन्होने अपनी सहानुभूति को व्यापक वनाया तथा सार्वभौमिक किया है। यथार्थ से आगे वढकर आदर्श की सृष्टि की है और मानव चरित्र के कुशल शिल्पी वने हैं। "ममता का विप, भावना और सस्कार, उपचेतना का छल, मैं दोषी नही हू, जहा दया पाप है, और वह जा न सकी, सवेरा, जज का फैसला, मा वाप, एक ही नाव में" आदि मनोवैज्ञानिक एकाकियो में विष्णु की अन्तरात्मा जाने अनजाने मानवता की पृष्ठभूमि पर सत्य की खोज मे सतत प्रयत्नशील रही है। यही कारण है कि विविध वादो के बीच में से गुजर कर वह अन्ततोगत्वा किसी एक वाद का न हो सका। आज के हिन्दू समाज की पुरानी वाह्याचार, विचारो की सकीर्णता, आर्य समाज के स्वमताभिमान (dogmatism) उस पर हावी न हो सके। गाधीवाद, युग वाद, प्रगतिवाद, अथवा युग धर्म की स्पष्ट छाप पडी, पर विष्णु उनमें वध न पाये।

इनके अधिकांश एकाकियो का नविधान रगमचीय नही है। इधर के नये एकांकियों में रंगमच का ध्यान है। सकलन-त्रय की दृष्टि से भी नाटक सफल हैं। रेडियो एकाकी अपने आप में पूर्ण है। प्रारम्भिक एकाकियों में दृश्यों की अधिकता है, किन्तु नवीन एकाकी जैसे "अशोक" और "रक्त चदन" आदि में कथानक एक ही दृश्य में पूर्ण कर दिया गया है। अन्तिम प्रभाव को तीव्र करने के लिए आखिरी भाग वडी सतर्कता एव परिश्रम से लिखे जाते है। इनके प्रचारात्मक रूपक विस्तृत है, जिनमें किसी विशेष विचारधारा या समस्या की मार्मिकता पर अधिक ध्यान दिया गया है। रगसकेतो में प्रभावोत्पादकता या मार्मिकता की ओर विष्णु का ध्यान नही है, क्योकि ये पढने के लिए न होकर रेडियो की दृष्टि में रख कर लिखे गए है। कथोपकथन साधारण संक्षिप्त और अर्थपूर्ण हैं और कथानक को आगे बढाते हैं। "अशोक" के कथोपकथन बड़े जोरदार है। प्रचारात्मक रेडियो रूपको में जहा नाटककार ने विचारक का वाना पहिना है और आदर्शवादिता के चक्र में पड गए हैं, वहा वक्तव्य लम्बे और विवेचना प्रधान हो गए है। इनमें मनोवैज्ञानिक आधार भी

ओर विशेप ध्यान दिया गया है। साधारणत स्वगत कम हैं, किन्तु मनोवैज्ञानिक एकाकियो जैसे, "ममता का विष", "जहा दया पाप है", "उपचेतना का छल" आदि मे स्वगत बडे विशद और महत्वपूर्ण हैं। बच्चो के एकाकियो में सरल, स्पष्ट भाषा में शिक्षात्मक दृष्टिकोण ही सामने रखा गया है। गम्भीर नाटको में भाषा मध्यवर्ग द्वारा प्रयुक्त शुद्ध हिन्दी है। कही कही काव्य की माधुरी फूटी है। ऐसे अश भावना के तीखेपन के कारण कवित्वमय हुए हैं। इनके प्रहसनो में व्यग्य का सफल प्रयोग हुआ है।

प्रभाकर माचवे श्री माचवे के एकाकियो की सख्या सौ से ऊपर है, जिनमें रगमच तथा रेडियो दोनो प्रकार की शैलियो की रचनाए हैं। कालक्रम के अनुसार आपके मुख्य एकाकी इस प्रकार हैं १ सत्यान्त (१९३८), २ अदालत के पास होटल (१९३९), ३ श्रमपूजा (१९४०), ४ सौष्ठव पूजा (१९४१), ५ व्यवहार पूजा (१९४२), ६ बुभुक्षित किमकरोति पापम् (१९४३), ७ अपनी अपनी ढपली (१९४५), ८ चौमुख दिवला बार (१९४५), ९ स्तालिन तुलसी सवाद (१९४६), १० कारकून (मराठी से अनुवाद), ११ आत्मा के मच पर (रूमी नाटक का अनुवाद), १२ उत्तर रामचरित (सस्कृत से अनुवाद) १३ गली की मोड पर (तीन भाग) (१९५०), १४ गुडबाई मिस्टर शर्मा, १५ पागल खाने में (तीन भाग), धनवान बनो, बलवान बनो, सुन्दर बनो (१९५०), १६ पचकन्या (पाच भाग) अहिल्या, तारा, द्रोपदी, सीता, मन्दोदरी (१९५०), १७ यदि हम वे होते (चार भाग) पुरुरवा, उर्वशी, दुष्यन्त, शकुन्तला, पृथ्वीराज सयोगिता, सलीम मेहरुन्निसा, (१९५१) १८ विनय पत्रिका (१९५२), १९ पर्वत श्री (तीन भाग), कूर्माचल, चित्रकूट, विन्ध्याचल (१९५३), रायगिरि (१९५४), २० सकट पर सकट (सात भागो में जासूमी एकाकी माला १९५१), २१ वधू चाहिए, तीन प्रहसन (१९५१) २२ ललित कला क्लब, २३ लका वैभव (मराठी से रेडियो रूपान्तर) २४ गाधी की राह पर (१९५१) २५ सेवा ग्राम का सत, २६ मृत्योर्मा अमृतगमय, २७ नायम् हन्ति न हन्यते (१९५१) २८ घरेलू झगडे, सवेरे दोपहर साझ, २९ कवायदवादी (तीन भाग), ३० नाटक का नाटक (चार भाग) समालोचक को सुनाया, नाटक कम्पनी वालो को सुनाया, फिल्म कम्पनी वालो को सुनाया, श्रीमतीजी को सुनाया (१९५१) ३१ राम भरोसे, ३२ पुराने चावल, ३३ अधकचरे, ३४ अन्नाकाङ्क्षा, [३५ "क्या यह नारी है?" ३६ टाइगर! टाइगर! ३७ कला किस लिए, ३८ झलकिया (मेहमान, मकान) ३९ अप्रेल फूल, ४० मुक्तिपर्व, ४१ मुद्रासामुद्रिक, ४२ गलत नम्बर, ४३ उत्तर प्रदेश' ४४ बिटिया रानी वाल मेले में, ४५ पैरोडी कवि सम्मेलन ४६ कबीर, (दो रूपक), ४७ मदिरा (मालवी भाषा में)। इनके अतिरिक्त बच्चो के लिए कई पद्य एकाकी भी लिखे हैं। रेडियो रूपान्तरो में आपके "यशोधरा" (१९५०), "कामायनी" (१९५१) और "बाणभट्ट की आत्मकथा" (१९५२) आदि उल्लेखनीय हैं।

श्री माचवे के एकांकियों में दो तत्व विशेष महत्वपूर्ण हैं, मनोविज्ञान की नवीनतम खोजों का कलात्मक समावेश तथा सामाजिक विद्रूपताओं, सभ्यता के मिथ्याडम्बर में फंसे मनुष्य के कृत्रिम आचार व्यवहार पर निर्मम व्यंग्य। आपने आधुनिक सभ्य जीवन, सामाजिक तथा पौराणिक मान्यताओं पर एक बौद्धिक तत्वचिन्तक के दृष्टिकोण से विचार किया है। नई पुरानी सामाजिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक समस्याओं को मौलिक रूप से परखा है। अपने एकांकी साहित्य में आधुनिक सभ्य जीवन, समाज, तथा युग की अनेक विकृतियों को यथार्थवादी रूप में उभारा है। आपके लिये कला जीवन का विवेचन है। जीवन की नाना समस्याओं से पृथक होकर केवल सौंदर्यरंजन मात्र के लिये उन्होंने कुछ नहीं लिखा है। मनोवैज्ञानिक गहराइयों में उतरकर उन्होंने बुद्धिवादी दृष्टिकोण से हमारी नई पुरानी मान्यताओं तथा सामाजिक प्रवृत्तियों के आवरण हटाकर नए रूप में परखा है। आपके एकांकी मानव की अन्तर्वृत्तियों को झकझोर हमारी मनोभूमि की अतल गहराइयों में उतरकर मानसिक जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं।

मानव की नाना आन्तरिक विकृतियों को उभारकर वे मानो हमें पग पग पर टोकते हैं, जैसे हमसे पूछते हों कि क्या तुमने अपनी सभ्यता की छाया में पनपने वाले इन दुर्गुणों, वासनाओं और स्वार्थों को परखा है? क्या इन नाटकों में चित्रित साहित्य, समाज तथा मानव जीवन की इन प्राथमिक मांगों पर गहराई से विचार किया है? क्या केवल कल्पनाजीवी होकर जीवित रहा जा सकता है!

इनके एकांकी साहित्य का जगत विस्तृत एवं वैचित्र्यपूर्ण है। जीवन की नाना विषमताएं, सत्य शिव सुन्दर का अर्थ, कला और जीवन का समन्वय, शहरी और ग्रामीण कला साधना में अन्तर, संस्कृति एवं सुरुचि, जीवन के व्यावहारिक और सौंदर्य सम्बन्धी आदर्शों का तुलनात्मक विवेचन, जनता की आवश्यकताएं, वास्तविक और यथार्थवादी दृष्टिकोण, प्राचीन चरित्रों को आधुनिक परिस्थितियों और नए विचारों में रख कर नवीन रूप में चित्रण इनके एकांकियों में है। इस प्रकार माचवे के नाट्य साहित्य में युग की साहित्यिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक एवं कला सम्बन्धी समस्याओं की अभिव्यक्ति हुई है। सर्वत्र दृष्टिकोण और विचार में नवीनता और मौलिकता है। नई पुरानी समस्याओं की अभिव्यंजना में मौलिकता और विविधता ही नहीं, कल्पना वैचित्र्य एवं मनोवैज्ञानिक सम्पन्नता भी प्रचुरता में है।

वाणी द्वारा भावाभिव्यक्ति का माध्यम होने के कारण इनके कथोपकथन विट (wit) और पुष्ट बौद्धिकता से परिपूर्ण हैं। गम्भीरता, विनोदशीलता, मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के अतिरिक्त परिहास और व्यंग्य का भी उपयोग प्रचुरता से किया गया है। सामूहिक प्रभाव डालने के बजाय आपने समाज के आधारभूत बन गए ध्वंसोन्मुख पूंजीवाद, जीर्ण अर्थव्यवस्था, आर्थिक शोषण, ढहते सामन्ती आदर्श, नई पुरानी अन्ध मान्यताएं, शहरी मध्यवर्ग की विडम्बनाएं मनोविश्लेषणात्मक ढंग से में

प्रस्तुत किये हैं। मनोविज्ञान के द्वारा व्यक्ति और समाज की सद् असद् प्रवृत्तियों तथा आन्तरिक वाह्य द्वन्द्वो का उद्‌घाटन किया है। समाज की जीर्ण शीर्ण मान्यताओ का थोथापन स्पष्ट करने के लिए कुछ विशेष परिस्थितियो और व्यक्तियो को अपनी कल्पना के सहारे जन्म दिया है और अपने विशेष मत या विचारधारा का प्रतिपादन कराया है।

अपने कथोपकथनो में माचवे चमत्कार के प्रधान तत्व मानते हैं। इनके पात्र तर्क और विवेचना अधिक करते हैं और कुछ आवश्यकता से अधिक बुद्धिवादी हो गए हैं। कही कही वातावरण निर्माण अथवा घटनाक्रम का चित्रण करने में लम्बे सवाद आये हैं जिनसे नाटकीयता को हानि पहुंची है। इनकी विशेषता सफल मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण है। अर्द्धचेतन मन का विश्लेषण सूक्ष्मता से हुआ है। व्यग्य की गहरी चोट रहती है। कुछ एकाकी केवल भिन्न भिन्न प्रकार के चरित्रो के अध्ययन मात्र हैं, जिनमें अनेक कुण्ठाओ, विकृतियो, दलित यौन प्रवृत्तियो का विशद विश्लेषण है। आपकी चित्रपटी सुविस्तृत है, जिनमें नए पुराने नाना प्रकार के वर्गों, विचारधाराओ और मान्यताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले चरित्रों का विश्लेषण है। उनके कुछ पात्र स्पष्टवादी हैं, नकली चेहरे मुह पर नही लगाते। परिस्थिति सृजन का सामर्थ्य न होने से श्री माचवे ने पौराणिक चरित्रो को भी युक्तिसगत, तर्कपूर्ण और यथार्थ बना कर चित्रित किया है।

उनके कई एकाकी रगमच के लिए लिखे और सफलतापूर्वक अभिनीत हुए हैं। मराठी के समृद्ध और वैभशाली रगमंच तथा नाट्य साहित्य का ज्ञान उनके लिए बहुत सहायक हुआ है। नाटकीय घटना तथा भाषा का निर्माण प्रतिदिन के जीवन की सहज और अनाटकीय जान पडने वाली बातों में से वे कुशल बाजीगर की भाति करते हैं।

उनका बहुत सा नाट्य लेखन रेडियो मे रहते हुए रेडियो के लिए हुआ है। उनके जैसा तीव्र गति से नाटक निर्माण करने वाला शायद ही कोई हो।[1] समय समय पर प्रसगानुकूल परिस्थितियो की सीमाए ध्यान में रखकर उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह रेडियो एकाकी के क्षेत्र में अद्‌भुत है। इसका कारण यह है कि उन्हें अपने टैकनीक का विश्वास है और वे अच्छी तरह से मानते हैं कि स्टेज का नाटक, रेडियो नाटक और सिनेमा के लिये लिखा जाने वाला नाटक कैसे भिन्न हैं। पद्य रचना पर विलक्षण प्रभुत्व होने के कारण "घिरआई बदरिया" हो, चाहे "मुक्तिमगल"

---

[1] एक बार रेडियो अधिकारियों द्वारा दोपहर को दो बजे आज्ञा हुई कि शिवरात्रि पर रूपक हो। शाम को छ बजे माचवे जी ने "अनगदहन" स्वयं लिखकर और उसमें स्वय अभिनय कर प्रस्तुत कर दिया। सरदार पटेल की मृत्यु पर समाचार के बाद उसी रात को आध घन्टे का "अहिंसक सेनानी" रूपक श्रोताओं को स्मरण है।"—लेखक

विन्ध्याचल या रत्नागिरि माचवे ने इस क्षेत्र में जो छंद और गीत प्रयोग किये हैं, उनका मूल्य अभी पूरी तरह ध्यान में आने में समय लगेगा, क्योंकि हमारे आलोचक-गण, विशेषत नाटक के अभी पुराने ढर्रे पर चल रहे है।

इसके साथ ही माचवे के नाटको का एक दोष भी उल्लेखनीय है और वह है उनकी जल्दबाजी। लगता है यदि नाटककार को इन्हें परिष्कृत करने के लिए अवकाश और शान्ति के क्षण मिलते तो ये और निखर सकते थे।

भृङ्ग तुपकरी . "भृङ्ग" तुपकरी ने रगमच और रेडियो की विभिन्न शैलियो में ३०० के लगभग एकाकियो की रचना की है, जिनमें नाना सामाजिक, पारिवारिक तथा राष्ट्रीय समस्याए चित्रित की गई है। तुपकरी नवीनता के पुजारी तथा मानवीय जीवन तथा समाज के नाना स्वरूपो के प्रत्यक्षदर्शी नाटककार है। आपके विचार से अभी अनेको शैलिया ऐसी अछूती पड़ी है जिन पर उन्हें प्रयोग करने है। ग्रामीण चरित्रो को पात्रो के रूप में लेकर मुहावरो और कहावतो से बने हुए सवादो के माध्यम से वे नवीन शैली के एकाकी लिखने में प्रयत्नशील है। ग्राम गीतो की सरसशैली में भी वे कुछ एकाकी लिख चुके है और आगे भी लिखना चाहते हैं। तात्पर्य यह है कि किसी एक शैली का आग्रह न होकर आपको पृथक-पृथक शैलिया प्रिय है। वस्तु पात्र और परिस्थिति के अनुकूल भाषा और शैली के सगठन का आप विशेष ध्यान रखते है। ऐतिहासिक तथा सामाजिक, प्रहसन और गभीर गामीण और शहराती आदि भिन्न वातावरणो में भाषा और शैली का स्पष्ट अन्तर इनके एकाकियो में देखा जा सकता है। शैली की दृष्टि से मच नाट्य, ध्वनि नाट्य, सगीतनाट्य काव्यरूपक, नृत्य नाट्य, मोनोलोग, फैंटसी व्यग्य नाट्य, प्रहसन, तुलनात्मक नाटक आदि और सामग्री की दृष्टि से पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, समस्यामूलक, मनोवैज्ञानिक वैचित्र्य प्रधान, अपराध मनोविज्ञान सम्बन्धी, जासूसी और विभिन्न रसो का परिपाक करने वाले अनेक प्रकार के एकाकी, रूपक, फीचर आदि की मौलिक रचनाए आपने की है। सामग्री की दृष्टि से कही पुनरावृत्ति दोष न आ जाय, इसका भी विशेष ध्यान रखा है। रचना बाहुल्य के बावजूद भी कही सामग्री सगठन की शिथिलता या रचना सयम की कमी अथवा अपेक्षित प्रभाव का अभाव कही दृष्टिगोचर नही होता।

"भिखारी का भेद" तुपकरी जी का एक ऐसा एकाकी है, जिसमे प्रत्येक दृश्य में पात्र बदल जाते हैं, स्थान परिवर्तित हो जाते है और प्रधान पात्र केवल अत में एक पक्ति कहता है। यद्यपि पूर्व नाटकीय मान्यताए इसे नाटक के तन्त्र के अनुकूल नही मान सकती, तथापि इसे पढकर यह नही कहा जा सकता है कि यह नाटक नही है।

"फूल और पत्ता" के पात्र यद्यपि मंच पर मानवीय स्वरूप में नही देखे जा सकते तथापि रेडियो एकाकी में उनके अस्तित्व को भी स्वीकृति देनी पड़ती है।

"फूल" नामक एकाकी क्लाइमैक्स की दृष्टि से नया प्रयोग है। क्रान्तिकारी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर विरचित "धुआं" तथा ब्लैक मार्केट के जुर्म में दूसरे को फसा देने वाले व्यक्ति वर्मा साहब के लिए हुए प्रतिशोध सम्बन्धी एकाकी "बदला" भृग जी का सफल वैचिश्र्य प्रधान ध्वनि एकाकी है। "खतरनाक शिकार" और "प्राणदान" आदि में भी कथानक का वैचिश्र्य है।

मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से परिपूर्ण एकाकियो में तुपकरी जी की प्रतिभा विशेष रूप से खिली है। पिता पुत्र स्नेह और भारतीय मध्यवर्ग की करुण स्थिति से सम्बन्धित "प्यार का पहलू" एक मर्मस्पर्शी मनोवैज्ञानिक एकाकी है। "खाना बदोश, धुए की लकीर, अधेरा, हमारा हमराही, दस का नोट, फूल, मोम की मूर्ति, आचल की आग, उलझन, दोपहरी, दो किनारे" आदि नाटक मानव की व्यक्तिगत समस्याओ के व्यापक अध्ययन हैं। इनमें अपने अध्ययन और अनुभव की आधार शिला पर नाटककार ने मानव मन के निगूढतम रहस्यो का उद्घाटन किया है। "दस का नोट" आपकी मार्मिकता के कारण अखिल भारतीय तरुणोत्सव (१९५४) में सर्वश्रेष्ठ रेडियो नाटक घोषित होकर भारतीय ख्याति प्राप्त कर चुका है। "मोम की मूर्ति" अपराध मनोविज्ञान पर आधारित एक सफल सामाजिक समस्या नाटक है। "घेरा" एक मोनोलोग शैली का एकाकी है, जिसका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक है। अभिनय की स्थिरता को अब तक नाटककार क्लाइमैक्स पर रखना एक दोष समझते रहे हैं, किन्तु इसके अन्त में जो पात्र हैं, वह अभिनय को जितना स्थिर करता है, क्लाइमैक्स को उतना ही ऊचा उठाता है। "काच का टुकडा" नामक मोनोलोग में सडक पर पडे हुए एक काच के टुकडे जैसे नगण्य पदार्थ की कहानी भी कितनी सवेदनशील हो सकती है, देखते ही बनती है।

सामाजिक क्षेत्र में भृग के कुछ समस्या एकाकी विशेष उल्लेखनीय हैं। जैसे "दोपहरी, अगिया वैताल, देहातिन, सबके दाता राम"। ये भारतीय ग्राम्य जीवन के आदर्शवादी चित्र हैं, जिनमें समाजसुधार की प्रवृत्ति स्पष्ट है। सामग्री और स्वरूप की दृष्टि से भृग तुपकरी हिन्दी के अभावो से अधिक प्रेरित हुए हैं। भाई बहिनो के पवित्र स्नेह सम्बन्धो पर अब तक किसी भी नाट्य साहित्य में प्रभावशाली रचनाओ का अभाव है। इस विषय पर आपके "दूर बहिन का गाव" (गीति नाट्य), "आग और अमृत" (मच नाट्य) और "स्नेह का सूत" रेडियो रूपक सुन्दर प्रयास हैं। "दूर बहिन का गाव" तो हिन्दा में अनेक श्रोताओ का प्रिय नाटक बना है। ग्राम्यगीत की सी शैली में इसका प्रभावशाली काव्य बरबस ही पाठको की हृदयतन्त्री को झकृत कर देता है।

ऐतिहासिक एकाकियो में "आग और अमृत" सन १९५० में हुए आसाम के भूकम्प की पृष्ठभूमि पर आधारित है। "हर्ष का विषाद, आत्माभिमान, मुक्ति और नीव का पत्थर" विशेष सफल एकाकी हैं। इनके अनेक ऐतिहासिक एव पौराणिक

एकांकियो ऐसे कथानको का चुनाव किया गया है, जिसमें आज की अनेक ज्वलन्त समस्याओ को सुलझाया गया है और आज के मानव को कोई न कोई सन्देश दिया गया है। "हर्ष का विषाद" में सम्राट् हर्ष को दक्षिण नरेश पुलकेशिन से पराजित होने के उपरान्त की स्थिति को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपस्थित किया गया है। विश्व शान्ति की स्थापना में बडी शक्तियो का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए। इस तत्व पर भारतीय दृष्टिकोण से विचार किया है। मनोवैज्ञानिकता का पुट होने के कारण यह मार्मिक हो गया है।

आपका विचार है कि ओपेरा रेडियो पर अत्यधिक लोकप्रिय हो सकते है, यदि उनका संगीत और काव्य श्रोताओ के मर्म को स्पर्श कर सके। संगीत ध्वनि नाट्य की दिशा में तुपकरी जी सक्रिय सहयोग देते रहे हैं। "फ्यूली" एक छोटी सी गढवाली लोक कथा पर आधारित ऐसा ध्वनि नाट्य है, जो नाटक को कहानी की नात्रिक व्यापकता के समीप लाता है। इसके संवादों की गीतात्मकता मर्मस्पर्शी है। "भूख और भीख" एक समस्यामूलक एकांकी है, जिसमें ध्वनि से संगीत के बजाय शब्दो को ही पार्श्वभूमि में इफैक्ट के स्थान पर रख कर ध्वनि नाटकों की परम्परा में एक नवीन प्रयास किया है। "होली आई" ध्वनि नाट्य की विशिष्ट शैली में संगीत काव्य रूपक है। "राधा" संगीत रूपक की शैली मे लिखा गया है, किन्तु यह नृत्य नाट्य की भांति मंच पर भी सफलतापूर्वक अभिनय किया जा सकता है। "आशा" आज की सामाजिक परिस्थिति का चित्रण करने वाला एक गंभीर काव्य रूपक है और इसे भी रंगमंच पर नृत्य नाट्य की तरह अभिनय किया जा चुका है।

प्रहसनो के क्षेत्र में भी भृंग तुपकरी कि कई रचनाएं बडी मर्मस्पर्शी बन पडी हैं। मुख्यत "मुंशी जी लेखक बने, शनि का कोप बिजनेस बकवास, मैंने कहा जी, मुंशी जी घर में, मुंशी जी उलझन में" आदि चुटीले प्रहसन मध्यवर्ग की अनेक पारिवारिक समस्याओ पर मार्मिक व्यंग्य करते हैं। चौराहा, कायदा, आशी,न्न का किला, यमराज सिनेटोन लिमिटेड आदि शुद्ध और स्वस्थ व्यंग्य के अच्छे उदाहरण हैं। इनमें सस्ता हास्य या भद्दापन नहीं है। सम्पूर्ण परिवार एक स्थान पर बैठ कर इन्हें देख या सुन सकता है और उन्मुक्त हास्य का पूरा आनन्द उठा सकता है।

फुटकर विषयो पर भी भृंग तुपकरी ने कलम चलाई है। "सुबह से पहले" एक सामाजिक राजनीतिक समस्या एकांकी है। "छाया" जासूसी एकांकी है। तो "अंधेरे पर विजय" ध्वनि रूपकों की विशिष्ट शैली में विरचित फीचर है। एवरेस्ट विजय की पृष्ठभूमि पर इतना सुन्दर साहित्यिक रूपक अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगा। नीरस से नीरस विषयो को भी स्पर्श कर रसमय और प्राणवान बना देना भृंग की शैली की विशेषता है। महान् चरित्रो की जीवन घटनाओं पर भी सूचना प्रधान रूपक आपने लिखे हैं। "सीमान्त का प्रहरी" महाभारत में वर्णित और अब तक उपेक्षित किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली चरित्र बलराम के उस शान्तिवादी पहलू पर प्रकाश डालता है, जिसकी आज की दुनिया को अपेक्षा है। संवाद नाटक एक हल्के रूप का एकांकी [illegible]

"फूल" नामक एकाकी क्लाइमैक्स की दृष्टि से नया प्रयोग है। क्रान्तिकारी आन्दोल की पृष्ठभूमि पर विरचित "घुर्रा" तथा ब्लैक मार्केट के जुर्म में दूसरे को फसा दे वाले व्यक्ति वर्मा साहब के लिए हुए प्रतिशोध सम्बन्धी एकाकी "बदला" भृ ग ज का सफल वैचिश्य प्रधान ध्वनि एकाकी है। "खतरनाक शिकार" और "प्राणदान" आदि में भी कथानक का वैचिश्य है।

मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से परिपूर्ण एकाकियो में तुपकरी जी की प्रतिभ विशेष रूप से खिली है। पिता पुत्र स्नेह और भारतीय मध्यवर्ग की करुण स्थिति से सम्बन्धित "प्यार का पहलू" एक मर्मस्पर्शी मनोवैज्ञानिक एकाकी है। "खान बदोश, धुएं की लकीर, अधेरा, हमारा हमराही, दस का नोट, फूल, मोम की मूर्ति आचल की आग, उलझन, दोपहरी, दो किनारे" आदि नाटक मानव की व्यक्तिगत समस्याओ के व्यापक अध्ययन हैं। इनमें अपने अध्ययन और अनुभव की आधार शिल पर नाटककार ने मानव मन के निगूढतम रहस्यो का उद्घाटन किया है। "दस का नोट" आपकी मार्मिकता के कारण अखिल भारतीय तरुणोत्सव (१९५४) में सर्वश्रेष्ठ रेडियो नाटक घोषित होकर भारतीय ख्याति प्राप्त कर चुका है। "मोम की मूर्ति" अपराध मनोविज्ञान पर आधारित एक सफल सामाजिक समस्या नाटक है। "घेरा" एक मोनोलोग शैली का एकाकी है, जिसका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक है। अभिनय की स्थिरता को अब तक नाटककार क्लाइमैक्स पर रखना एक दोष समझते रहे हैं, किन्तु इसके अन्त में जो पात्र हैं, वह अभिनय को जितना स्थिर करता है, क्लाइमैक्स को उतना ही ऊचा उठाता है। "काच का टुकडा" नामक मोनोलोग में सडक पर पड़े हुए एक काच के टुकडे जैसे नगण्य पदार्थ की कहानी भी कितनी सवेदनशील हो सकती है, देखते ही बनती है।

सामाजिक क्षेत्र में भृ ग के कुछ समस्या एकाकी विशेष उल्लेखनीय हैं। जैसे "दोपहरी, अगिया बैताल, देहातिन, सबके दाता राम"। ये भारतीय ग्राम्य जीवन के आदर्शवादी चित्र हैं, जिनमें समाजसुधार की प्रवृत्ति स्पष्ट है। सामग्री और स्वरूप की दृष्टि से भृ ग तुपकरी हिन्दी के अभावो से अधिक प्रेरित हुए हैं। भाई बहिनो के पवित्र स्नेह सम्बन्धो पर अब तक किसी भी नाट्य साहित्य में प्रभावशाली रचनाओ का अभाव है। इस विषय पर आपके "दूर बहिन का गाव" (गीति नाट्य), "आग और अमृत" (मच नाट्य) और "स्नेह का सूत" रेडियो रूपक सुन्दर प्रयास है। "दूर बहिन का गाव" तो हिन्दा में अनेक श्रोताओ का प्रिय नाटक बना है। ग्राम्यगीत की सी शैली में इसका प्रभावशाली काव्य बरबस ही पाठको की हृदयतंत्री को झकृत कर देता है।

ऐतिहासिक एकाकियो में "आग और अमृत" सन १९५० में हुए आसाम के भूकम्प की पृष्ठभूमि पर आधारित है। "हर्ष का विषाद, आत्माभिमान, मुक्ति और नीव का पत्थर" विशेष सफल एकाकी है। इनके अनेक ऐतिहासिक एव पौराणिक

एकाकियो ऐसे कथानको का चुनाव किया गया है, जिनमें आज की अनेक ज्वलन्त समस्याओ को सुलझाया गया है और आज के मानव को कोई न कोई सन्देश दिया गया है। "हर्ष का विषाद" में सम्राट् हर्ष को दक्षिण नरेश पुलकेशिन से पराजित होने के उपरान्त की स्थिति को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपस्थित किया गया है। विश्व शान्ति की स्थापना में बडी शक्तियो का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए। इस तत्व पर भारतीय दृष्टिकोण से विचार किया है। मनोवैज्ञानिकता का पुट होने के कारण यह मार्मिक हो गया है।

आपका विचार है कि ओपेरा रेडियो पर अत्यधिक लोकप्रिय हो सकते है, यदि उनका संगीत और काव्य श्रोताओ के मर्म को स्पर्श कर सके। सगीत ध्वनि नाट्य की दिशा में तुपकरी जी सक्रिय सहयोग देते रहे हैं। "प्यूली" एक छोटी सी गढवाली लोक कथा पर आधारित ऐसा ध्वनि नाट्य है, जो नाटक को कहानी की तात्विक व्यापकता के समीप लाता है। इसके सवादो की गीतात्मकता मर्मस्पर्शी है। "भूख और भीख' एक समस्यामूलक एकाकी है, जिसमें ध्वनि से सगीत के बजाय शब्दो को ही पार्श्वभूमि में इफैक्ट के स्थान पर रख कर ध्वनि नाटकों की परम्परा में एक नवीन प्रयास किया है। "होली आई" ध्वनि नाट्य की विशिष्ट शैली में सगीत काव्य रूपक है। "राधा" सगीत रूपक की शैली मे लिखा गया है, किन्तु यह नृत्य नाट्य की भाति मच पर भी सफलतापूर्वक अभिनय किया जा सकता है। "आशा" आज की सामाजिक परिस्थिति का चित्रण करने वाला एक गभीर काव्य रूपक है और इसे भी रगमच पर नृत्य नाट्य की तरह अभिनय किया जा चुका है।

प्रहसनो के क्षेत्र में भी भृग तुपकरी कि कई रचनाएं बडी मर्मस्पर्शी बन पडी हैं। मुख्यत "मुशी जी लेखक बने, शनि का कोप विजनैस बावजान, मैने कहा जी, मुशी जी घर में, मुशी जी उलझन में' आदि चुटीले प्रहसन मध्यवर्ग की अनेक पारिवारिक समस्याओ पर मार्मिक व्यग्य करते हैं। चौराहा, कायदा, आबीरैन का किला, यमराज सिनेटोन लिमिटेड आदि शुद्ध और स्वस्थ व्यग्य के अच्छे उदाहरण हैं। इनमें सस्ता हास्य या भद्दापन नहीं है। सम्पूर्ण परिवार एक स्थान पर बैठ कर इन्हें देख या सुन सकता है और उन्मुक्त हास्य का पूरा आनन्द उठा सकता है।

फुटकर विषयो पर भी भृग तुपकरी ने कलम चलाई है। "सुबह से पहले" एक सामाजिक राजनीतिक समस्या एकाकी है। "हत्या" जासूसी एकाकी है। तो "अजेय पर विजय" ध्वनि रूपको की विशिष्ट शैली में चिरचित फीचर है। एवरेस्ट विजय की पृष्ठभूमि पर इतना सूचनावाही रूपक अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगा। नीरस से नीरस विषयो को भी स्पर्श कर रसमय और प्राणवान बना देना भृग जी शैली की विशेषता है। महान् चरित्रो की जीवन गाथाओ पर भी सूचना प्रधान रूपक आने लगे है। "सीमान्त का प्रहरी" महाभारत मे वर्णित और अब तक उपेक्षित किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली चरित्र बलराम के उन शान्तिवादी पक्ष पर प्रकाश डालता है, जिसकी आज की दुनिया को अपेक्षा है। सवाद नाटक एक हल्के रूप का एकाकी सवाद

जाता रहा है, किन्तु इस एकाकी से प्रतीत होता है कि उसकी उठान का भी अनोखा पहलू शैली की दृष्टि से सभव है। पराजित विजेता, देवयानी, पतन की छाया, कामदहन आदि अन्य अनेक ऐसे पौराणिक ध्वनि नाटक और एकाकी हैं जिनमें विषयो का चुनाव एक विशिष्ट दृष्टिकोण का परिचय देते है और आज भी जीवन को प्रेरित करते हैं।

भृग तुपकरी ने फैंटेसी अनुवाद और रेडियो-रूपान्तरो के क्षेत्रो में भी पर्याप्त कार्य किया है। सस्कृत, मराठी, अग्रेजी और गुजराती से अनुवादित और रूपान्तरित एकाकी रेडियो पर अनेक बार लोकप्रिय हो चुके हैं। सस्कृत से "स्वप्न वासवदत्ता", मराठी से "शीला अडियल टट्टू" रुकमणी स्वयवर आदि अग्रेजी से रौबिन्सन क्रूसो, पांच साल हुए, बन्दर का कलेजा और गुजराती से "जमुना मैया" रूपान्तरित सफल एकाकी है। हिन्दी की अनेक कहानिया, उपन्यासो और महाकाव्यो के नाटय रूपान्तर भी आपने किये हैं, जिनमें कामायनी, पुरस्कार, मझला रानी, प० दुर्गाशकर मेहता का उपन्यास "अनबुझी प्यास" आदि रूपान्तर उल्लेखनीय है। 'प्रतिभा" इनकी एक ऐतिहासिक फैंटेसी है तथा परिवर्तन, उदय, ज्योतिवाला, प्रकाश के पदचिन्ह, सपनो का सत्य आदि फैन्टेसीज और रूपक है। नवीन शैलियो और प्रभावशाली एकाकी की ओर भृग उन्मुख हैं।

रामपूजन मलिक मलिक जी के १ तूफान और तिनका २ अधेरे उजाले ३ बरसात की धूप ४ हाथ की लकीरें ५ किरण ६ रेगिस्तान की प्यास ७ माँ की चूड़ियाँ ८ कच्चे धागे ९ कन्दील का खम्भा १० रेशमी साडी ११ घर घर की बात १२ वर्ष गाँठ १३ झेलम के पार १४ बैजू बावरा १५ रोज की बात १६ तकरार १७ कविता का भूत १८ रेत का किला १९ धुए के बादल २० घरोदा २१ पागलखाना २२ दबी आग २३ और आग बुझ गई २४ भीगी रात २५ आँधी का दिया २६ मिटती परछाइयाँ २९ जमीन आसमान २८ चोरी २९ हाथी के दाँत ३० भूखी आँखें ३१ शीशे का घर ३२ मुन्ने की शादी ३३ वधू चाहिए ३४ तिल का ताड ३५ त्रिशकू ३६ डा० मनमोहन ३७ मरघट जागता है, ३८ दो किनारे ३९ प्रतिभा के आसू ४० कालिदास ४१ लवकुश ४२ गुरुदक्षिणा ४३ पतवार ४४ रेल का सफर (सगीत रूपक) ४५ ग्राम्य गीत ४६ सावित्री आदि एकाकी उल्लेखीय हैं। इनमे से अनेक एकाकी स्कूल कालेजो मे अभिनीत हो चुके हैं, "पागलखाना" तथा "पतवार" नागपुर में पुरस्कृत किये जा चुके हैं। मध्य प्रदेश द्वारा आयोजित गणराज्य प्रदर्शनी मे "रेत का किला" पुरस्कृत हो चुका है। आपने रगमचीय तथा ध्वनि दोनों प्रकार के एकाकियो मे समान रूप से सफलता प्राप्त की है।

आज का एकाकीकार जब अपने चारो ओर दृष्टि घुमाता है, तो उसे एक-सी ही बात देखने को मिलती है। सामाजिक विपमता, जलते हुए विविध सामाजिक प्रश्न, गरीबी, बेकारी, असतोप, चीटियो की तरह व्यस्त जीवन और सघर्ष की परछाइयां।

श्री मलिक के नाटको मे इन्ही मध्यवर्गीय समस्याओ तथा सघर्षों के सजीव चित्र अकित किये गये हैं। मध्यवर्ग वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक और वैवाहिक समस्याओ की फौलादी दीवारो के बीच घिरा हुआ है। लगता है परिस्थितियो की सारी प्रतिकूलता, दुखो तथा निराशाओ की सारी भीड और अनगिनत सघर्षों के जत्थे मध्य-वर्गीय जीवन मे ही सिमटकर आ गये हो। इनकी विविध समस्याओ को लेकर श्री मलिक ने अपने "तूफान और तिनका, अधेरे-उजाले, बरसात की धूप, हाथ की लकीरे, किरण, रेगिस्तान की प्यास" जैसे एकाकियो की रचना की है। छोटे-बडे घरो मे मिट्टी के चूल्हे होते हैं, यह उक्ति अक्षरश सत्य है। हर परिवार किसी न किसी गुत्थी को सुलझाने मे लगा है। इसके अतिरिक्त समाज मे अनेक कुप्रथाए प्रचलित है जो अनेक निर्दोष जनो की आहुति लेकर भी ज्यो की त्यो बनी हुई हैं। इन्ही पारिवारिक उलझनो को लेकर मलिक जी ने "रोज की बात, तकरार, धुए के बादल, घरोदा, पागलखाना, दबी आग, मा की चूडिया, कच्चे धागे, कन्दील का खम्भा, रेशमी साडी, घर घर की बात और वर्ष गाठ" आदि एकाकियो की रचना की है।

गन्दी नालियो मे कीडो-मकोडो की तरह उपेक्षित जीवन व्यतीत करने वाले निम्न वर्ग की ओर प्राय नाटककारो की दृष्टि बहुत कम जाती है। आवश्यकता इस बात की है कि इस वर्ग को गन्दी गलियो से बाहर निकालकर जीवन की साफ-सुथरी धरती पर खडा किया जाए। इनकी विविध समस्याओ को हल करने के लिए, "आधी का दिया, मिटती परछाइया, जमीन आसमान, और चांद" आदि एकाकी लिखे गए हैं।

तथाकथित सभ्य कही जाने वाली सोफेस्टिकेटेड सोसाइटी का जीवन कितना बनावटी तथा आदमियत से परे है, यह सत्य अब प्रकाश मे आ चुका है। आडम्बर की परतें हटाकर देखने पर इस समाज का वास्तविक रूप सामने आता है, इसके चेहरे पर भोंडे भद्दे दाग उभर आते हैं। "हाथी के दात, सूखी आखें और शीशे का घर" आदि नाटको मे सोफेस्टिकेटेड सोसाइटी की सारी कुत्सना का पर्दा-फाश किया गया है।

"डा० मनमोहन" और "मरघट जागता है" वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं। "दो किनारे" और "प्रतिभा के आसू" कल्पना प्रधान एकाकी हैं। कुछ ऐतिहासिक और पौराणिक एकाकी भी नए दृष्टिकोण से लिखे हैं। "चन्दन के दाग" रजिया बेगम के जीवन पर आधारित हैं। "बैजू बावरा, नवीन शैली मे है। [illegible] अर्जुन और एकलव्य के जीवन से सबधित 'गुरु दक्षिणा' पौराणिक एकाकी है। शिक्षाप्रद एका-कियो मे पनघार और रेल का सफर आते हैं, जिनमे मलिक जी ने उपदेश, [illegible] झाडने के दोष से बचते हुए बडे सहज और [illegible] ढग से अपनी बात लिखायी है। 'ग्राम्य गीत" और 'सावित्री" आदि संगीत रूपक हैं।

जीवन मे हसी का महत्वपूर्ण स्थान है। जब जीवन मे हम [illegible]

अनुभव करते हैं, तब क्यो न चिन्ताओ से छुटकारा पाकर यदाकदा हसने का क्रम वना लिया जाये। "मुन्ने की शादी" "वधू चाहिए, "तिल का ताड" और "त्रिशकू" सोद्देश्य हास्य व्यग्य प्रधान एकाकी है।

श्री मलिक का मुख्य क्षेत्र मध्यवर्गीय समाज है। वे सामाजिक समस्याओ के कुशल चित्रकार हैं। स्वय मध्यवर्ग के परिवार के सदस्य होने के नाते, उसकी सारी कठिनाइयो, बाधाओ और छोटी से लेकर वडी सभी समस्याओं से होकर आप निकल चुके हैं। सभी समस्याओ पर आपने शान्ति से विचार किया है। एतदर्थ प्रधानत मध्यवर्ग की समस्याए ही आपके एकाकियो की समस्याए बन गई हैं।

उदाहरण के लिए आपके "रोज की बात" (१६४६) एकाकी में मध्यवर्ग की दैनिक जीवन सम्बन्धी समस्याओ को प्रस्तुत किया गया है। इसमें चित्रित किया गया है कि बडी-बडी और कठिन समस्यायो के अतिरिक्त मध्यवर्गीय बाबू की कुछ अपनी हल्की-फुलकी कमजोरिया भी हैं, जिनके कारण कभी-कभी उसे कठिन सघर्षों में से होकर गुजरना पडता है। छुट्टी के दिन सुधीर भुर्ता खाने की तीव्र इच्छा से प्रेरित हो बैंगन लेने बाजार चल देता है। वडे परिश्रम से अच्छे-अच्छे वैंगन खरीदता है पर घर पर आने पर सारे सडे निकलते हैं। पत्नी की ताडना से विद्ध हो वापस करने पहुचता है, वडी हुज्जत और ऊची बातो के पश्चात् उससे पैसे वापस ले लेता है और दूसरे बैंगन लेकर घर पहुँचता है। इतनी परेशानियो के पश्चात् बेचारे की भुर्ता खाने की इच्छा पूर्ण होती है। यही बात हल्के-फुलके ढग से चुटीले सवादो मे बडी सजीव शैली मे प्रस्तुत की गई है। हास्य रस का समावेश है।

"तकरार" (१६४६) मे एक मध्यवर्गीय दम्पत्ति की मीठी तकरार है, जो जरा-जरा सी बातो पर प्रारम्भ होती है। हास्य की सहज चुटकियो से उत्तरोत्तर बढती और अतत समझौते पर समाप्त हो जाती है। हास्य के साथ-साथ मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति का भी बडे स्वाभाविक और सहज ढग से परिचय दिया गया है,"कविता का भूत"(१६५०) मे धीरेन्द्र नामक लापरवाह कामचोर और निकम्मे युवक कवि का खाका खीचा गया है। यह एकाकी उन कवियों पर करारा व्यग्य है जो समय की आवाज न सुन कर जनता को गुमराह करने वाली ऊल-जलूल रचनाओ का सृजन करते हैं, जिनके पग आदमी की धरती पर नही वरन हवा की तरगो में बढते हैं। "रेत का किला" (१६५१) में निम्नवर्ग का एक बूढा पिता अपना पेट काट कर बडे पुत्र को इस आशा पर पढाता है कि उसकी बूढी आखें भी अपने छोटे से परिवार को खुशहाल देख सकेंगी, किन्तु दुर्भाग्य से पुत्र को चपरासी की नौकरी भी वडी कठिनाई से प्राप्त होती है। बूढा फिर भी निराश नही होता। उसे भगवान् पर अटूट विश्वास है। लडका कठिनाइयो से लड-लडकर भाग्यवादी बन गया है। वह भी चुप रहता है। छोटे लडके के रक्त मे उष्णता है। वह भगवान् और भाग्य के भरोसे अपने जीवन पर आसू बहाते रहना कायरता समझता है। वृद्ध बीमार पडता है उधर बडे लडके की कठिनाइयों से मिली

नौकरी छूट जाती है, फाकामस्ती बढती है। छोटा लडका जीने का अधिकार चाहता है आदमी की तरह जीना चाहता है और पिता के लिए दवाई चाहता है। अन्त मे वह भगवान् की सोने की मूर्ति मन्दिर से चुराकर मन मे जीत की खुशी और भविष्य की सुखद कल्पनाए लिए घर पहुचता है तब तक वृद्ध इस ससार से कूच कर चुका होता है। उधर पुलिस उसका पीछा करते-करते वहा पहुचती हैं और उसे हथकडिया पहना-कर ले जाती है। इस नाटक मे निम्नवर्ग की विपिन्नावस्था का मार्मिक चित्रण करते हुए एकाकीकार ने यह दर्शाया है कि अपने जीवन की खुशहाली तथा सुरक्षा के लिए इस वर्ग द्वारा निर्मित बड़ी-बडी उम्मीदों और मन्सूबो का गढ़ क्रूर काल तथा प्रतिकूल परिस्थितियो के आगे एक रेत का किला मात्र है।

"धूए के बादल" (१९५२) मे चित्रित किया गया है कि बेकारी की समस्या कानून अथवा किसी की दया से हल नही हो सकती। इसके लिए सम्मिलित श्रम और सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है। "परोंदा" (१९५३) में आज के साहित्यकार के कष्टग्रस्त और सघर्षमय जीवन तथा उसकी निरीहावस्था का यथार्थ चित्र खींचा गया हैं। "पागलखाना" (१९५३) मे हास्य व्यग्यमय शैली मे वैज्ञानिक, धर्मगुरु, शिक्षक, नेता, डाक्टर आदि अनेक पात्रो को पागलखाने में रखा गया है। जनता की भलाई के लिए इन सबके नाना विध्वसकारी प्रयोग, इनकी ऊल-जलूल मान्यताए और भ्रामक विचारो को बाहर निकालने के लिए पागलखाने का माध्यम चुना गया है। प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति अपने को दूसरे से अधिक विद्वान, शक्तिशाली और महत्वपूर्ण समझता है। प्रत्येक को भ्रम है कि वही ससार का सूत्रधार है और उसे अपना अस्तित्व सब मे ऊपर रखने के लिए अपने अहभाव की रक्षा के लिए कुछ न कुछ नया करना चाहिए, चाहे उससे जनता का अहित ही क्यों न होता हो। इन सभी पागलो के हास्यास्पद तर्क-वितर्कों मे यह एकाकी चलता है। नाटककार इस निष्कर्ष पर पहुचता है कि यदि ये सम्पूर्ण शक्तिया एक होकर जनहित की दिशा मे सोचें तथा कार्य करें तो ससार और समाज अधिकाधिक उन्नत तथा समृद्ध बनाया जा सकता है।

"दबी आग" (१९५४) में एक सास के तानों तथा आवारागर्द पति की घृणा और रुखाई से शीला नामक नवविवाहिता की दुर्दशा और मानसिक व्यथा के कारु-णिक चित्र हैं। परित्यक्ता नारी की समस्या पचहत्तर प्रतिशत हिन्दू परिवारो की समस्या है तथा इसकी ओर नाटककार ने समाज का ध्यान आकर्षित किया है। "और आग बुझ गई।" (१९५५) मे ऐसे व्यक्ति की प्रवृत्तियो तथा मन स्थिति का चित्रण किया गया है, जिसे दुनिया से कभी प्यार तथा सहानुभूति नही मिली। यह मनोवैज्ञानिक एकाकी है। प्यार तथा सहानुभूति के अभाव मे मनुष्य कितना विध्वंसकारी और समाज का कितना बडा शत्रु बन जाता है यही इस एकाकी मे दर्शाया गया है। "भीगी रात" एक कल्पना प्रधान एकाकी है जिसमें एक मृत पत्नी की आत्मा डाक्टर को लाकर अपने पति की चिकित्सा कराती है।

अपने सभी एकाकियो में मलिक जी ने अनेक समस्याओ और सघर्षों का चित्रण मौलिक रूप मे किया है। विषय और कथानक सभी नवीन हैं। किसी विशेष वाद का प्रतिपादन न कर मलिक जी ने मौलिक दृष्टिकोण से अनेक सामाजिक समस्याए उभारी हैं। कथानको में नवीनता और कल्पना का सहज स्पर्श तो है ही, किन्तु अनुभूति की सचाई पर उनका अधिक विश्वास है। वस्तुत उनके एकाकियो की कथावस्तु मे स्वाभाविकता, सजीवता और सबलता है। वे जन-जीवन के मार्मिक चित्र हैं। एकाकियो द्वारा रस की सृष्टि करना और मानव जीवन की गरिमा स्थापित करना उनकी नाट्यकला का प्रधान उद्देश्य है।

मलिकजी का टैकनीक उनका अपना है। नाटको मे भी सादगी के साथ प्रभावशीलता हो सकती है। वस्तु (कनटेंट्स) पर घ्यान केन्द्रित कर आप जन जीवन की समस्या की ओर सकेत कर देते हैं। कुछ एकाकी पात्र के आधार कुछ नाटको का प्रारम्भ उनकी कथावस्तु (Theme) के अन्त और कुछ को मध्य से प्रारम्भ कर वे पाठक या दर्शक की जिज्ञासा को भग नही होने देते। उनकी टैंकनीक की विशेषता यह है कि वे पाठक पर नाटक की वस्तु का बोझ नही होने देते। वह उकताहट से बचा रहता है। नाटक का गठन, उसके पात्रो का क्रमगत अवतरण, उनके व्यक्तित्वो के क्रमिक विकास पर उनकी दृष्टि मुख्य रूप से रहती है। टैकनीक के प्रपच में वे नाटक का गला नही घोटते। आपके एकाकियो की भाषा सरल, स्वाभाविक और पात्रो के अनुकूल होती है। सवादो मे क्रमबद्धता उनका विशेष गुण है। पात्रो के मुख से लम्बे भाषणनुमा सवाद कहलवाना, भारी भरकम शब्दो का प्रयोग और बोझिल तथा दुरुह भाषा की ठूस-ठास कही भी नही है।

स्वदेशकुमार आपके तेरह एकाकी उपलब्ध हैं। उनमे सात सामाजिक व्यग्य-प्रधान एकाकी हैं। १ अजनबी २ पति पत्नी ३ नारी का मूल्य ४ शादी की बात (१९५४) ५ उपहार (१९५३) ६ सौदा (१९५५) ७ बीत गई बात पुरानी (१९५५) शेष बालोपयोगी एकाकी हैं। जैसे, "हरी मिर्च, भूत, शेखचिल्ली, खजाना, नीद नही आती।"

प्रथम वर्ग मे सामाजिक व्यग्यप्रधान एव गभीर समस्या दोनो ही प्रकार के एकाकी हैं। "अजनबी" मे एक अविवाहित मा की समस्या की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया गया है। "पति पत्नी" मे हिन्दू पारिवारिक जीवन मे पति पत्नी की दैनिक समस्याओ और सम्बन्धो की एक झाकी प्रस्तुत की गई है। "नारी का मूल्य" मे दहेज और पत्नी मे से किसका मूल्य अधिक है, इसका विवेचन करते हुए समाज के गिरते मानदण्डो पर कटाक्ष किया गया है। "सौदा" मे भी दहेज के लोभी वर पक्ष पर चुटकी ली गई है। "उपहार" मे पति की अपव्ययता के कारण परिवार की हीन आर्थिक दशा का चित्रण है। "बीत गई बात पुरानी" मे लेखक तथा प्रकाशक के सम्बन्धो पर प्रकाश डाला गया है। नाटककार का दृष्टिकोण प्रगतिशील है और

समाज के नये स्थिर तथा कृत्रिम मूल्यो पर व्यग्य किया गया है । इनमे दिखाया गया है कि कहने को तो हम अपने आपको शिक्षित और सभ्य कहते है, पर आज भी हम पुरानी रूढियो और क्षुद्र स्वार्थो की दलदल मे फसे हुए है ।

श्री स्वदेशकुमार के बाल एकाकियो मे एकाकी मनोरजक एव शिक्षाप्रद बन पडे है । जैसे "हरी मिर्च" की पृष्ठभूमि मे देश मे अन्न की कमी की समस्या का चित्रण है । एक पुरोहित को जब एक बच्चा तीनियो प्रकार का भोजन करते देखता है, तो उसे यह अनुचित लगता है । वह भोजन मे चुपके से हरी मिर्चे मिला देता है, जिन्हे खाने पर पुरोहित जी का बुरा हाल हो जाता है । "भूत" एकाकी मे बच्चे साहस कर एक चोर को स्वय भूत बनकर डरा देते हैं और पकड लेते है । "शेखचिल्ली" एकाकी का प्रारम्भ बेतुकी मनोरजक बातो से होता है और अन्त टमाटर खाने के लाभ से । "खजाना" बच्चो के मन से भूत प्रेतो के मिथ्या काल्पनिक भय को दूर करने का एक प्रयास है । "वह यहा नही रहते" एकाकी मे एक बच्चा एक अनचाहे मेहमान को बडी खूबी से टरका देता है । "नीद नही आती" मे बडे मनोजरक ढग से 'जो सोयेगा, सो खोयेगा' वाली कहावत को चरितार्थ किया गया है ।

इनके अतिरिक्त श्री स्वदेशकुमार के कुछ एकाकी बच्चो की रेडियो पत्रिका "चमचम" मे झलकीनुमा शैली के भी निकले हैं, पर इनमे शुद्ध मनोरजन के अतिरिक्त और कुछ भी नही है। नाटककार सर्वत्र अपने प्रति सजग और ईमानदार है। यह ससार रोने वालो के लिए नहीं है। जिसे कुछ करना है, उसे कोई नहीं रोक सकता। बाधाए उन्ही के लिए हैं जिन्हे अपनी मजिल का ज्ञान नहीं, मानव का कदम प्रगति के पथ पर आगे बढता चले यह है उनके एकाकी साहित्य का उद्देश्य जो एकाकियो मे स्पष्ट होता रहा है। नाटककार भगवान से पूर्व इन्सान को मान्यता देता है। उनका विचार है कि इन्सान की सेवा करो, भगवान् की पूजा स्वय हो जायगी । वे कर्तव्य को सर्वोपरि मानते है । अपने परिवार, समाज, और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य निभाने मे ही आत्मसतुष्टि मानते है । इसी उद्देश्य और मान्यताओ को अपने एकाकियो मे ढालने का प्रयत्न किया है । उनकी एकाकी कला समाज और मनुष्य के उत्थान और मानसिक विकास के लिए सतत प्रयत्नशील है । गत १५ वर्षो से रगमच से सम्बन्धित होने और अभिनय के अतिरिक्त निर्देशन मे भी कुशल होने के कारण आपके एकाकियो की टेकनीक पुष्ट है ।

कृष्णकिशोर श्रीवास्तव : श्रीवास्तवजी के सामाजिक समस्या प्रधान एकाकियो का रचना काल १९५१-५२ से प्रारम्भ होता है । सन् १९५२ से १९५८ तक आपने अनेक रगमचीय एकाकियो की रचना की और स्वय अभिनय भी किया । इनमे केवल दो ही एकाकी प्रकाशित हुए । १ "मै मैके जाऊँ" २ "हम भी बोलते है ।" नागपुर रेडियो की प्रेरणा से १९५८ से नियमित रूप से आपके एकाकियो का निर्माण चल रहा है । स्वयं इस केन्द्र से सम्बन्धित होने से कारण रेडियो के लिए नाटक

लिखते तथा स्वय अभिनय करते थे। रगमच पर अभिनीत सफल नाटको मे आपके "डिस्पेन्सरी", "कहानी का प्लॉट", "हवाई किले", "युगान्तर" "नाटक का नाटक" आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्रीवास्तव जी के रेडियो एकाकियो की सख्या वृहत है। किन्तु उनके प्रतिनिधि एकाकियो मे "रेखाए" (एकाकी सग्रह), मछली के आसू (१९५७) (रेडियो एकाकियो का सग्रह), आस्तीन का साप, (एकाकी सग्रह) उल्लेखनीय हैं। रेडियो एकाकियो मे "अपूर्ण, तूफान के बाद, लेखक के घर मे, धुधले चित्र, जीवन का अनुवाद, कच्चे धागे, सत्य किरण, आख, आसू और आग, और नाटक निर्माण मडल", प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त, "बेवकूफ की रानी, मरीचिका, नौ दो ग्यारह, बच्चो की अदालत मे माता पिता" आदि भी उत्तम एकाकी हैं। अन्य रचनाओ में "सर्दी की रात, खेत की मेंड, सर्वोदय के पथ पर, काली छायाए, राष्ट्र पिता, इतिहास के पृष्ठो से, मुक्ति का वरदान, छाया, मलयकुमार, भीष्म पितामह, गुरूजी की बेंत, बाल सभा मे बीरबल" आदि भी उल्लेखनीय हैं।

विषय चयन की दृष्टि से श्रीवास्तव जी ने सामाजिक विद्रूपताओ और विषमताओ पर लेखनी चलाई है। मनोविज्ञान का आधार लेकर उन्होंने हमारे मध्य-वर्ग की नवीन प्रतिष्ठित पर अन्दर से खोखली तथा दिखावटी मान्यताओ, रीति-रिवाजो, सभ्यता, रहन-सहन, पूजीवादी एव सामन्ती उत्पीडन और जन सघर्ष का चित्रण किया है। उनके एकाकियो में सामान्य जनता की आशाओ पर आकाक्षाओ को व्यक्त किया गया है और उन्हें राष्ट्रीय एव सामाजिक सुरक्षा के लिए होने वाले जन सघर्ष से अविच्छिन्न रूप मे जोड दिया गया है। समाज के साथ कही कही राजनीति का विवेचन भी आ गया है पर राजनीति उनका लक्ष्य नही है।

उनके एकाकी साहित्य में निम्न मध्य वर्ग की दीनता और बेबसी के बडे मार्मिक चित्र हैं, जो आजकल आफिसों मे पनपती पूजीवादी मनोवृत्ति पर तीव्र व्यग्य करते हैं, पात्रो मे अफसरो के शिकजो मे फसे हुए कम वेतन पाने वाले क्लर्क या आर्थिक शोषण से चुसे हुए ऐसे युवक हैं जिनका यौवन, उल्लास और आशाए नष्ट हो गई हैं, जिन्हें रूढियो से सघर्ष करते करते जीवन मे अब कोई उत्साह नही रहा है। नारी जीवन के भी अनेक वेदनामय चित्र हैं। समाज के दम्भ, झूठ-फरेब और मिथ्याचार पर श्रीवास्तव जी तीव्र व्यग्य करते हैं। इनके पीछे एक उत्साहप्रद नवीन सामाजिक चेतना भी मिलती है, जिसमे आशावाद की झलक है। यद्यपि उनके सर्वाधिक सफल एकाकी दुखात हैं, तथापि वह चेतना सामाजिक त्रुटियो पर कठोर प्रहार करती हुई जनवादी क्रातिकारी भावना को स्पष्ट करती है। इस चेतना मे नया ओज, पौरुष और बल है।

श्रीवास्तव जी के एकाकियो का सामाजिक यथार्थ और व्यग्य कभी कभी

बहुत कटु और तिलमिला देने वाला होता है और मानवीय दुर्बलता को छूता है।' जैसे "मछली के आंसू, जीवन का अनुवाद, आग, आंसू और आग और बेवकूफ की रानी" आदि में किन्तु उस यथार्थ के पीछे निहित भावना प्राय: कल्याणकारी जीवन निर्माण की ओर संकेत करने वाली होती है जैसे "पायल" मे महेन्द्र के अपने पुत्र चित्रकार अजीत से कहे ये वचन कि 'संगीत चित्रकारी आदि कलाएं सुरुचिपूर्ण और कल्याणप्रद होनी चाहिए।" आपके सैद्धान्तिक एकांकियो मे मानव मन तथा गुप्त भावना ग्रन्थियो के सूक्ष्म तन्तुओ का चित्रात्मक रूप मिलता है जिसे उनकी विशेषता माना जा सकता है। "आदर्श की हत्या, मरीचिका, कच्चे धागे, सत्य किरण, आग, आंसू और आग" आदि एकांकी मनुष्य के अवचेतन मन और अन्तर्प्रदेश मे विचरने वाली प्रवृत्तियो के अनेक अस्पष्ट रूपो को आकार देने का प्रयत्न है। उन्होंने मनोविश्लेषणात्मक शैली के प्रयोग से मनुष्य की कुटिल रहस्यमय संघर्षयुक्त मन स्थितियों को सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है।

"मछली के आंसू" समाजवाद के पक्ष में लिखा हुआ एकांकी है, जिसमे निम्न बाबू वर्ग की आर्थिक हीनता, बेबसी, संघर्ष और दफ्तरो मे अफसरो द्वारा क्लर्कों पर होने वाले अत्याचारो का एक चित्र है। प्रधान पात्र कैलाश सुधारवादी प्रकृति का क्लर्क नेता है। दफ्तर के पिसते हुए क्लर्को की मांग को ऊंचा करता और आफिसर का कोप सहन करता है। अन्त मे पारिवारिक और सामाजिक दुःख सहन करता है। इसमे चुन्नीलाल का कृत्रिम धार्मिक ढोंग दिखावटी धार्मिक व्यक्तियों पर एक व्यंग्य रूप में आया है। इसके चरित्र मे समाज मे प्रचलित, 'बगल मे छुरी मुंह में राम-राम' वृत्ति के व्यक्तियों को चित्रित किया गया है। पात्रो के चरित्र चित्रण मे स्वाभाविकता और सजीवता है।

"बेवकूफ की रानी" मे क्लर्क के प्रति अफसर का अशिष्ट तथा दुर्व्यवहार का कारुणिक चित्र है। जिस शब्द "रानी" को अफसर क्लर्क की बातचीत मे नापसन्द करता है, अन्तत: स्वयं अपनी पत्नी द्वारा प्रेरित होकर उसी का प्रयोग करता है। हलका सा हास्य उत्पन्न करता हुआ एकांकी समाप्त होता है।

"सत्यकिरण" मे एक अद्भुत विज्ञान के आविष्कार द्वारा मुख्य पात्रो के छुपे हुए रहस्यो का उद्घाटन किया गया है। हमारी आज की सभ्यता कोरी दिखावटी सभ्यता मात्र है। करुणा एक धनी सेठ की पत्नी, समाज सेविका है। बाहर से पति को प्रेम, पर अन्दर से घृणा करती है। वह दुश्चरित्रा है। समाज सेवा के बहाने बाहर घूमने फिरने प्रेमियों से मिलने जुलने मे स्वतंत्र है। गणेश जी बाहर से लेखक बने फिरते हैं, किन्तु साहित्य के नाम पर शून्य हैं। अपनी चतुराई और चाटुकारिता से साहित्य मे प्रख्यात हो जाते हैं। इसी प्रकार राम गरीब सार्वजनिक नेता है, जो झूठी

---

१. देखिए, कृष्णकिशोर कृत "मछली के आंसू" भूमिका, पृ० ६।

नेतागिरी और स्वार्थसिद्धि मे लगे हैं। स्वय विज्ञानाचार्य ने अपने गुरू की हत्या कर उनके आविष्कार पर अधिकार कर लिया है। प्रारम्भ से अन्त तक यह हमारी दिखावटी सभ्यता का भडाफोड करता है। एकांकी मे एक चरित्र और है जीरासिंह। यह पुलिस के रिटायर्ड कप्तान हैं। इस चरित्र का आधार लेकर उन पुलिसवालो का चित्र खीचा गया है जो अग्रेजो के हिमायती थे और आज अपनी चालाकी से स्वाधीन भारत के रक्षक भी बने हैं।

"लमसेना" मे मध्यप्रदेश के आदिवासियो की प्रथाओ के साथ उनके सामाजिक जीवन का चित्रण भी किया है। इसमे दिखाया है कि आदिवासियो से लगाकर सभ्य शिक्षित समाज तक में आज तक स्त्री न्यूनाधिक रूप मे पुरुष की सपत्ति ही मानी जाती रही है। इसमे समाज की अर्थव्यवस्था पर व्यग्य है।

"मरीचिका" मे यह स्पष्ट किया गया है कि अपने से आर्थिक स्थिति मे उच्च परिवार में विवाह करना भी एक प्रकार का अनमेल विवाह ही है। धनी परिवार से जाने वाली वधू गरीब पति का सिर दर्द बन जाती है। इस समस्या के निदान के लिए नाटककार ने कुछ मनोवैज्ञानिक सकेत भी दिये हैं।

"सध्या की छाया" मे हिन्दी लेखको के दयनीय अभावग्रस्त किन्तु आदर्श जीवन का बडा कारुणिक चित्र है। "आदर्श की हत्या" मे एक निर्धन साइस ग्रेजुएट क्लर्क एक ऐसी युवती रेखा से प्रेम मे निराशा प्राप्त करता है जो प्रेम को धन से तोलती है। रेखा ऐसी युवती है जिसके स्वभाव मे बडे पिता की पुत्री होना ही सबसे महत्वपूर्ण बात है। इस एकांकी के राव साहब नारायणदास एक मजिस्ट्रेट हैं, जो आज के समाज मे पलने वाले अधिकारियो के प्रतीक हैं। आज के अर्थप्रधान युग में आदर्श केवल आदर्श मात्र ही बन कर रह जाते हैं। जीवन को सचाई से स्पर्श नहीं करते, नाटक मे यही चित्रित किया गया है।

"धुधले चित्र" मे सभ्य तथा सरल भोले-भाले व्यक्तियो के प्रेम का एक तुलनात्मक चित्र है। सभ्यता की सफेद पोशी ने जीवन के चित्रो को धुधला कर दिया है, जबकि सरल भावुक अपढ व्यक्तियो मे आज भी जीवन और प्रेम के प्रति ईमानदारी है।

श्रीवास्तव जी का "कच्चे धागे" बालविधवाओ की व्यथाओ से सबधित कालेज जीवन का एकांकी है। शरीर से सुन्दर किन्तु गुप्त रूप से विधवा रेखा अनेक मनचले कालेज युवको के आकर्षण का केन्द्र बनती है, सताई जाती है। अन्तत एक कुरूप पर स्थायी गुणो को प्रेम करने वाले वकील से विवाह कर लेती है। वह एक बार दिखावटी प्रेम के धोखे मे पड चुकी है, पुन कच्चे धागो मे झूलना नही चाहती। दूसरी बार वह स्थायी प्रेम वाले कुरूप युवक को चुनती है। इस एकांकी मे आदर्श और यथार्थ का सुन्दर द्वन्द्व किया गया है। कथानक का विकास रहस्यपूर्ण और अन्त चमत्कारपूर्ण है।

"जीवन का अनुवाद" में एक पत्नी की मृत्यु के उपरान्त पुनर्विवाह की समस्या

पर प्रकाश डालता है। विधुर की अश्रु धारा शुष्क भी नही हो पाती, वह अपने बच्चे को पूर्ण रूप से प्रेम कर भी नही पाता कि अन्य व्यक्ति उसकी मानसिक वेदना की अवहेलना कर नए विवाह का आग्रह करते हैं। वर का ध्यान न रख प्रत्येक व्यक्ति की पृथक्-पृथक् दिलचस्पी तथा स्वार्थ होते हैं। निखिल नामक विधुर की गुप्त वेदना न समझ उसकी चुप्पी को नए विवाह की स्वीकृति समझ लिया जाता है। निखिल विवाह को रद्द कर एकाकी दुखपूर्ण जीवन व्यतीत करता है, उचित पोषण के अभाव मे शिशु भी मृत्यु को प्राप्त होता है। पारिवारिक जटिलताओ, स्वार्थों और विषमताओ का बडा सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

"अपूर्णा" का कथानक एक हजार वर्ष पुराना है। कला और सौन्दर्य को लेकर एकाकी चलता है और देव मन्दिरो के पुजारियो पर तीखा व्यग्य करता है। "तूफान के बाद" भारत विभाजन के समय का मार्मिक चित्र है। उस राष्ट्रीय तूफान मे किन किस के घर उजडे और किसके फिर बसे, यही इसका मूल आधार है। हमारी स्वाधीनता के लिए जो बलिदान हुए, हम स्वाधीन होते ही उन्हे भूल गये, यह कटु सत्य इसमे चित्रित किया गया है।

"आख, आसू और आग" एक मनोवैज्ञानिक रेडियो रूपक है जिसका नायक सतीश विज्ञान का विद्यार्थी है। प्रयोग करते समय एक दुर्घटना से उसकी आख मे चोट लग जाती है, अस्पताल मे डाक्टर और नर्स के बीच उसका मन सशय मे घुला जाता है। इस कथानक के पार्श्व मे जो प्रधान चरित्र है वह नर्स का है। नर्स भी आखिर स्त्री है, उसके स्त्रीत्व और चरित्र है यही इस नाटक का मूल है। सतीश एक स्थान पर अपने डाक्टर मित्र से पूछता है, "डाक्टरी पढने वाली लडकिया इस वातावरण में भी आपके लिए देवी बनी रहती हैं, पर नर्सों को तुम गिरा क्यों मानते हो, स्त्री हर जगह स्त्री है।" चरित्र चित्रण की दृष्टि से नाटक की नर्स एक रोगी है जिनके प्रति हमारी सहानुभूति जाग उठती है। श्रीवास्तव जी के रेडियो रूपको मे यह एक सफल रचना है।

श्रीवास्तव जी के जीवन तथा विचारों पर सन् ४२ की क्रान्ति का प्रभाव पडता है। "तूफान के बाद" एकाकी पर उनकी छाया है। स्वयं विज्ञान के विद्यार्थी रहने के कारण उनके नाटको मे वाद विवाद और ठोस तर्कों की बहुलता है। दो रचनाओ मे विज्ञान वाले ही प्रमुख पात्र हैं। "सन्धिरेखा" तो विज्ञान की ही वस्तु है। "आदर्श की हत्या" और "आख, आसू और आग" के नायक विज्ञान के विद्यार्थी हैं। विज्ञान ने उन्हें यथार्थवादी बना दिया है और एक सूक्ष्म दृष्टि प्रदान की है जिससे वे विज्ञान और साहित्य का समन्वय कर सके हैं। उनके पात्र परिस्थितियों से निरन्तर सघर्ष करते और दुर्बलताओ को जीतने मे प्रयत्नशील हैं, वे धर्म पर विश्वास कम करते हैं, कर्म पर अधिक।

श्रीवास्तव जी ने रगमंच तथा रेडियो दोनो ही प्रकार के सफल एकाकियों

की रचना की है। "रेखाएं सग्रह" के सब एकाकी रगमच को दृष्टि में रख कर लिखे गए हैं। रगमच की साजसज्जा, प्रवेश, प्रस्थान, पात्रो की वेशभूषा तथा कार्यकलाप आदि का सदा वे ध्यान रखते हैं। यथासभव अभिनय के लिए सकेत भी देते हैं। उन्हें स्वय अभिनय एव निर्देशन का अनुभव है। अतएव इसका ध्यान भी रखते हैं कि सवाद कितने बड़े हो, शब्द कैसे हो, वाक्यो का तारतम्य कैसा हो, कथानक से उन्हें चरित्र अधिक प्रिय हैं। चरित्र के निखार के लिए आप कथानक को पीछे चलाते हैं। अपने आसपास के चरित्रों को बड़ी सफलता से एकाकियो में उतारा है। आप कम से कम पात्रो के पक्षपाती हैं। अनावश्यक पात्र नही रखते। यदि नौकर भी आता है तो उसके चरित्र का एक महत्व होता है। कथानक और सवाद मे कही कही मूल कथानक को छोडकर कुछ क्षणो के लिए प्रासगिक बातो पर भी प्रकाश डाल देते हैं। बातचीत मे यह स्वाभाविक भी होता है, दूसरे व्यग्य के लिए कहीं-कही यह अनिवार्य भी हो गया है। तात्पर्य यह है कि उनके नाटक तथा उनका व्यक्तित्व पुराने नाटककारो से पृथक हैं। उनके व्यक्तित्व मे एक दबा ज्वालामुखी मालूम होता है जो यदाकदा विस्फोट करता करता रुक जाता है। सम्भव है उस ज्वालामुखी का पूर्ण विस्फोट श्रीवास्तव जी की रचनाओ को कुछ नया रूप दे।

गोपाल शर्मा श्री गोपाल शर्मा एक सफल कवि तथा प्रतिभासम्पन्न नाटककार हैं। कवि होने के कारण आप सगीत रूपक सृजन मे विशेष सफल रहे हैं। स्नेहालोक, वसन्त, वर्षा, मगल, विद्रोही कृष्ण, जयस्वतत्रे और मीरा आदि सगीतरूपक विशेष उल्लेखनीय हैं। आपका "दी प्रोफैशनल" (१९३९) अग्रेजी एकाकी अजीब नाटकीय स्थिति प्रस्तुत करता है जब कि एक पी० एच-डी० उपाधि प्राप्त डाक्टर, एक मनोवैज्ञानिक डाक्टर तथा एक चिकित्सक डाक्टर एक ही कुटुम्ब मे पहुचकर गडबड उत्पन्न करते हैं। हिन्दी में आपका रचना काल १९४३ से प्रारम्भ होता है। तब से अब तक आप तीस से अधिक एकाकियो का सृजन कर चुके हैं, जिनमे प्रतिशोध, सौन्दर्य प्रतियोगिता, अपराधी कौन, सरला और मुक्ति की पुकार कुछ दीर्घ आकार के एकाकी हैं। शेष की अभिनय अवधि कम है। कुछ अन्य उल्लेखनीय एकाकी इस प्रकार हैं "दीवाली के मेहमान, दातो का डाक्टर, नारी की व्याख्या, झगडे की जड, भूख, विश्वप्रेम की बलि वेदी पर, अहिल्या, शिशुपाल वध, होली के दिन, बाध टूट गया, कच्चे धागे, सभी अभागे, अछूत, क्रिकेट और चरोखर, कपडो का सवाल" आदि हैं।

शर्माजी की नाट्यकला सम्बन्धी विशेषताओ पर प्रकाश डालने से पूर्व उनके नाट्यकला सबधी विचारो से परिचित होना आवश्यक है। वे नाटक की सार्थकता उसकी अभिनेयता मे ही मानते हैं और उनका स्पष्ट मत है कि नाटक वास्तव में लेखक, अभिनेता और दर्शको की सम्मिलित सृष्टि है। रगमच के तत्र का ज्ञान, पात्रो की सजीवता, घटनाओ का औत्सुक्य और आकर्षण तथा स्वाभाविक कथोपकथन

नाटक के प्राण हैं।[1] इसी प्रकार शर्मा जी लोक रंगमंच को शिक्षा का एक सफल साधन मानते हैं तथा उनका विचार है कि रंगमंच को शिक्षा का एक बड़ा ही प्रभावोत्पादक साधन है। सजीव प्राणियों की क्रियाओं और संभाषणों से संवलित होने के कारण यह एक हृदयग्राही वातावरण उत्पन्न करता है। सूखे व्याख्यानों की अपेक्षा एक कथानक के पात्रों के मुख से कही गई बातें अच्छी तरह समझ में आती हैं और भावात्मक प्रभाव के कारण अधिक समय तक टिकती हैं।[2] अतः रंगमंच तथा अभिनयता इनके नाटकों के मुख्य गुण हैं। संकलन त्रय पर भी विशेष ध्यान दिया है। आपके बड़े एकांकियों में भी एक ही दृश्य है। दीर्घाकार एकांकियों में शर्मा जी की कला निखरी है।

"प्रतिशोध" पौराणिक पर कल्पना प्रधान एकांकी है। इसकी एक विशेषता यह है कि इसमें शूर्पणखा, मंदोदरी, सीता, मत्स्यनेत्रा, प्रमदा, विकट चंडिका, तपस्विनी, त्रिजटा और दासियां आदि नारी पात्र ही हैं, पुरुष पात्र नहीं। केवल नारी पात्रों को लेकर ऐसा सुगठित एकांकी दूसरा नहीं है। इसमें शूर्पणखा उच्छृंखल नारीत्व की और वैदेही कौटुम्बिक मर्यादा की प्रतीक हैं तथा इन दोनों के आदर्शों का तुलनात्मक दृष्टि से चित्रण करते हुए नाटककार ने कौटुम्बिक मर्यादा की भावना को ही महत्व दिया है। मत्स्यनेत्रा का चरित्र चित्रण बड़ी कुशलता से हुआ है।

"सौंदर्य प्रतियोगिता" व्यंग्यमूलक एकांकी है, जिसमें सौंदर्य निरीक्षण करने की अपेक्षा देश की सुन्दरता वृद्धि पर जोर दिया गया है तथा श्रमदान की उपयोगिता सिद्ध की है। प्रधान पात्र धनीराम झोपड़िया है जो नेतागिरी की आड़ में अपना उल्लू सीधा करना चाहता है तथा कोरे सिद्धान्तों और आदर्शों की दुहाई देता फिरता है परन्तु उनको प्रयोग में नहीं लाता। स्वयं तो वह ५० वर्ष का होने पर भी सौन्दर्य प्रतियोगिता में निर्णायक बनकर जाने को उत्सुक रहता है और अध्यक्ष बनाये जाने की खुशी में फूला नहीं समाता। अर्धनग्न अवस्था में युवतियों को देखने की लालसा में तो उसके मुह में पानी आ जाता है, परन्तु उसे यह सहन नहीं होता कि उसकी पुत्री विमला स्विमिंग सूट धारणकर इस सौन्दर्य प्रतियोगिता में भाग ले। जिस प्रकार नेताओं के विचार अस्थिर और रबर की भांति लचीले रहते हैं, झोपड़ियाजी भी हर अवसर से लाभ उठाना चाहते हैं।

"मुक्ति की पुकार" तथा "अपराधी कौन" सामाजिक एकांकी हैं। इनमें मानव जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं को अंकित किया गया है लेकिन नाटकीय तत्वों की दृष्टि से "मुक्ति की पुकार" श्रेष्ठ है। आकार की दृष्टि से भी यह "प्रतिशोध" और "सौन्दर्य प्रतियोगिता" से लघु ही है पर इसका अभिनय सफलता से सात तीन चार स्थानों पर

---

१. देखिए अभिनन्दन ग्रंथ : मध्यदेश का नाट्य साहित्य : श्री [illegible] शर्मा पृ० १०।
२ श्री गोविन्द शर्मा : शिक्षा का एक सफल साधन रंगमंच "[illegible]" पृ० ११।

हो चुका है।[1] "मुक्ति की पुकार" मे दिखाया है कि किसी समाज के सक्रातिकाल मे खलनायक को न तो दड मिलता है और न उसकी आत्मा का परिष्कार होता है।

"दीवाली के मेहमान" व्यग्यप्रधान है, जिसके पात्र समाज के विशिष्ट वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा विविध वर्गों का होने के फलस्वरूप उनके विचारो मे विभिन्नता भी रहती है। इसलिए दीवाली की उपयोगिता सम्बन्धी विचार परस्पर मेल नही खाते। इस एकाकी मे अग्रेजी के शब्दो का बाहुल्य खटकता है।

"दात का डाक्टर" मे एक बेईमान महत्वाकाक्षी व्यक्ति का चित्रण किया गया है। इसमे चित्रित किया गया है कि आज के इस बुद्धिवादी समाज में कुछ सफेद पोश दूसरो को ठगना अपना कर्तव्य समझते हैं। "कपडो का सवाल" मे हमारे मध्य-वर्ग पर व्यग्य है जो भरपेट भोजन की व्यवस्था तो कर नही पाता परन्तु उजले वस्त्रो से मानस को छिपाना चाहता है और किराये के वस्त्र लेकर काम चलाता है। धोबी भी क्यो समय पर काम नही करते यह भी स्पष्ट किया गया है। इसका मूल विचार (थीम) निम्न अवतरण से स्पष्ट हो जाता है—

"आज हम एक दूसरे की मदद नहीं कर सकते मगर यह अर्थव्यवस्था किन्ही न किन्ही अच्छे बुरे तरीको से हमारी चीजो को इधर-उधर करती ही रहती है। जरूरत पर हम जाने अनजाने एक दूसरे को बनाये रखने मे सहायक हो जाते हैं।"

"भूख" एक मजदूर की भूख विलुप्त हो जाने से समाज मे किस प्रकार भिन्न भिन्न परिस्थितिया उद्भूत हो जाती हैं, प्रस्तुत करता है। "होली के दिन" और "झगडे की जड" व्यग्यप्रधान एकाकी हैं, जिनमे "होली के दिन" मे एक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक, कवि, अवसरवादी नेता और एक व्यपारी को माध्यम बनाकर एकाकीकार ने व्यक्तियो की स्वार्थपरक भावनाओ का चित्रण किया है तथा यह दिखलाया है कि किस प्रकार आधुनिक समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने लाभ का ही अधिक से अधिक ध्यान रखता है।

"झगडे की जड" हास्यप्रधान है, जिसमे एकाकीकार ने बडी कुशलता से पुरुष जाति पर व्यग्य करते हुए दिखलाना चाहा है कि किस प्रकार विवाहित पुरुष का अन्त करण भी सर्वदा ही दूसरी नारी के लिए छटपटाता रहता है और वह केवल अपने लाभ का ही ध्यान रखता है तथा नारी की अभिलाषाओ को तनिक भी महत्व नही देता। इस एकाकी की पात्री आनन्दी जैसी समाज से साहसी मुकाबला करने वाली नारियो की सख्या चाहे आज हमारे समाज मे कम ही हो, परन्तु करुणा-शकर जैसे वासनालोलुप पुरुषो की बहुलता दृष्टिगोचर होती है।

---

१. म० प्र० हिन्दी सा० सम्मेलन के तत्वावधान में गणतन्त्र दिवस १९५१। नागपुर महाविद्यालय स्नेह सम्मेलन १९५३ तथा अ० भा० राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन वार्षिक अधिवेशन १९५१ इत्यादि।

"नारी की व्याख्या" मे लेखक ने यह दिखलाना चाहा है कि नारी की व्याख्या करना उचित नही है और जहा तक प्रेम का प्रश्न है, वह जातिगत नही, व्यक्तिगत होती है। इसी प्रकार "बाब टूट गया", "कच्चे धागे" और "सभी अभागे" एकाकी सामाजिक समस्याओ पर आधारित हैं तथा उनमे व्यंग्य की प्रधानता है। ग्राम पंचायत के उपयोग के हेतु लिखे गए "अछूत" एकाकी मे राष्ट्रीय विचारधारा की प्रधानता है। इसी भावना का चित्रण "क्रिकेट" और "चरोतर" मे मिलता है। उपयोगिता की दृष्टि से क्रिकेट और चरोतर की तुलना करते हुए यह चित्रित किया गया है कि लोगो को जिस प्रकार मन बहलाने के लिए क्रिकेट खेलना अच्छा लगता है, उसी प्रकार देश की उन्नति के हेतु उन्हें हल भी जोतना चाहिए। सामाजिक भावना का अभाव खेलों द्वारा पूर्ण नही हो सकता, क्योंकि उसकी न्यूनता के बीज गरीबी के कारण पल्लवित होते हैं। अत सर्वप्रथम हमे अपने जीवन मे नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न करना होगा और देश की दरिद्रता को पहले दूर करना होगा। निष्कर्ष यह कि शर्मा जी के अनेक युग की भावनाओ का चित्रण और नवीन संदेश प्रदान करने वाले हैं।

"शिशुपाल वध" ध्वनि रूपक माघ के महाकाव्य पर आधारित है किन्तु उसमें विचारधारा की मौलिकता स्पष्ट रूप से विद्यमान है। अहिल्या की कथावस्तु रामायणकालीन होते हुए भी भावपक्ष तथा टैकनीक की दृष्टि से नूतन कृति जैसी प्रतीत होती है। इसमे अहिल्या के चरित्र के कई मनोरहस्यों का उद्घाटन कर दाम्पत्य प्रेम की महानता और नारी जीवन की सार्थकता को चित्रित किया है। विश्व प्रेम की बलि वेदी पर मे ईसा की विचारधारा को नवीन संगठित रूप प्रदान किया गया है। विश्व भ्रातृत्व और पारस्परिक स्नेह भावना को सुदृढ़ता प्रदान कर लेखक ने विश्व में शान्ति स्थापित कर प्रत्येक मानव का दूसरे मानव के प्रति प्रेम भावना रखना अनिवार्य माना है। यह हिन्दी का एक श्रेष्ठ एकाकी है।

श्री गोपाल शर्मा काव्य रूपकों के क्षेत्र मे विशेष सफल हुए हैं। काव्य रूपको के रचयिता को एक उत्कृष्ट कवि होना आवश्यक है। शर्मा जी के काव्य रूपको मे प्रसाद जैसी भावो की सुघड़ता, पंत का सा शब्द सौंदर्य, निराला की सी विचारधारा और महादेवी जैसी रसार्द्रता विद्यमान है। स्नेहालोक, वसन्त, वर्षामंगल, मीरा, जय स्वतंत्रते, और विद्रोही कृष्ण उनके उल्लेखनीय काव्यरूपक हैं। ये भिन्न भिन्न रेडियो केन्द्रो से प्रसारित हुए हैं। "स्नेहालोक" भाव पक्ष तथा कलापक्ष दोनो ही दृष्टियों से उत्कृष्टतम कृति है। इन सभी मे भावो की सुकुमारता, विचारो की गहनता और भाषा की मृदुलता है।

निष्कर्ष यह कि श्री गोपाल शर्मा ने अपने एकांकी साहित्य में जहां चरित्र की दृढ़ता, उत्कर्ष और महानता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, वहां उन्होंने व्यंग्यात्मक दृष्टि से मानव समाज के विभिन्न वर्गों तथा चरित्रों की न्यूनताओं पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया है। समाज मे फैली हुई नाना समस्याओं पर विचार

करते समय कही तो उनका दृष्टिकोण व्यग्यात्मक रहा है और कही भावुकता पूर्ण। उच्चवर्गीय सामाजिक स्तभो की अनुभवहीनता और शोपरण प्रवृत्ति, पूजीवाद समाज की विलासिता तथा एकागिता, हिन्दू मुसलिम एकता का लाभ, दीन श्रमिक और कृषको का शोषरण, मध्यम वर्गीय रोमास भावना, कवियो की कल्पना की सारहीनता आदि विविध मनोभावो का चित्ररण उनके एकाकियो मे कुशलता से हुआ है तथा मध्यवर्गीय समाज की कटु आलोचना कर उन्होने समन्वयवादी विचारधारा को प्रश्रय दिया है। उनके एकाकियों मे सेठ गोविन्ददास की सी उपदेशात्मकता या विष्णु प्रभाकर जैसी गहन मनोवैज्ञानिकता नही है, अपितु सहज स्वाभाविकता और यथार्थवाद है।

रेवतीसरन शर्मा शर्मा जी ने लगभग ४० रेडियो एकाकी लिखे हैं, जिनमे कुछ बडे एकाकी भी हैं। प्रारम्भिक नाटको मे प्राय कोई विशेष भावना प्रधान हैं। जैसे "आसू, नगमे की मौत, सो जाने दो, एक लमहा पहले, क्रिसमस की एक शाम" आदि एकाकी भावनाप्रधान ट्रेजिडिया हैं। इनमे मानव हृदय की टीस और वेदना को व्यक्त किया गया है। इसलिए इनमे भावनाओ को ही विकसित करने की अधिक चेष्टा है।। "सो जाने दो" एकाकी मे वर्ग भेद से उत्पन्न होने वाले झूठे, अह और कटुता का अध्ययन है। "क्रिसमस की एक शाम", मे आर्थिक कठिनाइयो के कारण एक ईसाई युवती के प्रेम की आहुति का चित्ररण है।

सन् १९४७ के बाद के एकाकियो मे एक बौद्धिक उद्देश्य आना प्रारम्भ हो जाता है। इनमे नाना सामाजिक एव राजनीतिक समस्याओं का चित्ररण है। अपहृत नारियो की समस्या पर "अभागिन" लिखा गया है। कई नाटक भारत पाकिस्तान मैत्री पर लिखे हैं। "मुझे जीने दो" तथा "फूल और चिनगारी" एकाकियो मे नारी के गिर्द समाज के घडे हुए रस मिथ्या विचार को तोडा है कि नारी के जीने का अधिकार उसके पति की मृत्यु पर या उसके प्रेमी के धोखा दे जाने पर समाप्त हो जाता है। इसी विचार को शर्मा जी ने अपने नए और सफल नाटक' 'दुश्मन" मे बहुत गहराई से उपस्थित किया है। इसी प्रकार "अघेरा उजेला, उतार चढाव, पत्थर और आसू, तथा बादल छट गए" मे उन्होंने जीवन को बहुत समीप से देखने और दिखाने का प्रयत्न किया है। यथार्थ समस्याओ, जो मुख्यत मानव मानव के सम्बन्धो और दर्जों की पुनर्व्यवस्था की समस्याए हैं, को आपने प्रगतिशील दृष्टिकोण से हल करने का प्रयत्न किया है। "अमावस का अधकार" में "नगमे की मौत" की भाति प्रेम की ट्रेजिडी का चित्ररण होने के काररण विशेष महत्व है।

"अमावस का अधकार" का कथानक बडी कुशलता से निर्मित है। करुरणा और रज्जो ग्राम युवतिया जमीदार के पुत्र राकेश को प्रेम करती हैं। बचपन से इनके साथ रहने के काररण राकेश इन्हें बहिनो की तरह मानता है। करुरणा गुप्त रूप से राकेश से प्रेम और विवाह करना चाहती है। उधर राकेश स्वय अपना विवाह स्टेशन मास्टर की पुत्री किररण से कर लेता है और करुरणा का विवाह अपने मित्र सुरेश से कराना चाहता

है पर अन्तत करुणा आत्महत्या द्वारा जीवन का अन्त करती है। प्रेम सम्बन्धी गलतफहमियों का अच्छा उदाहरण है।

"उतार चढ़ाव" मे एक युवती प्रेम के आवेश मे आकर एक चित्रकार से प्यार कर विवाह कर लेती है। धीरे धीरे पारस्परिक सम्बन्धो मे कड़ुवाहट आती है। एक दूसरे दम्पत्ति श्याम और कुसुम चित्रकार शैलेन्द्र के मत को मानने के कारण पारस्परिक कटुता से भर जाते हैं और कुसुम आत्महत्या कर लेती है। यह दुष्परिणाम देखकर शैलेन्द्र को सुमति आती है और वह भविष्य मे उमा के प्रति अधिक वफादार रहने का निश्चय करता है। इसका निष्कर्ष इन पक्तियो द्वारा व्यक्त हुआ है :

"स्त्री को देवी या आसमानी चीज़ न समझो। वह भी इन्सान है। खुदगर्ज भी है, लेकिन जिस हद तक जानदार होती है, मुहब्बत भी चाहती है। वह ऊंची उठ सकती है।"

"अधेरा उजेला" पुनर्विवाह से होने वाली कड़ुवाहट और सौतेले बच्चो पर होने वाले अत्याचारों से सम्बन्धित है। इसमे मा के हृदय का सूक्ष्म विश्लेषण है। "पत्थर और आसू" मे अन्तर्जातीय विवाह का चित्रण है। इसमे बिरादरी, जाति पाति आदि की सकुचितता पर प्रहार किया गया है। 'बादल छट गए" एकाकी नारी स्वातन्त्र्य आन्दोलन से सम्बन्धित है। नारी अब जाग्रत हो गई है और उसका स्वतत्र व्यक्तित्व बन रहा है।

"कल" नामक एकाकी मे एटम बम द्वारा होने वाले भयकर उत्पात चित्रित किए गए है। इनसे क्या क्या शारीरिक, सामाजिक और राजनीतिक दुष्परिणाम हो रहे है, इसकी झाकी यहा दी गई है। रेडियो-एक्टिव डस्ट से न केवल जीवित प्रत्युत अन्य जानवर और नया जन्म लेने वाले मनुष्य कैसे बेडौल और बदसूरत बन जायेंगे आदि चित्रित किया गया है। इसमे मानव की भलाई के लिए एटम को बन्द करने की अपील है।

निष्कर्ष यह कि शर्मा जी के विचार तथा समस्याएं नई हैं। विचार के स्तर पर ये सदा सतर्क रहते हैं और संस्कारो के उन बन्धनो को तोड़ने की कोशिश करते हैं जो मानव के हृदय और मस्तिष्क की स्वाभाविक क्रिया और व्यवहार को सीमित करते हैं। परिस्थितियो की अपेक्षा मानव का स्वभाव तथा उसका समस्त सामाजिक मूल्याकन (सिस्टम आफ वेल्यू) अत्यन्त धीमी गति से परिवर्तित होता है। वह नए सामाजिक मापदण्डो तथा सम्बन्धो के नए रूप को शीघ्र आत्मसात नहीं कर पाता। इसलिए माता पुत्र, पिता पुत्र और पति पत्नी के जीवन में वैषम्य और कड़ुवाहट आते रहते हैं। बहुधा नए आदर्शो के इस रूप को समय और स्थिति के परिवर्तन का परिणाम न समझकर गुस्ताखी, बेहयाई, बगावत और हठधर्मी समझा जाता है। शर्मा जी मानव स्वभाव के इसी परिवर्तन और नए मापदण्डो का चित्रण अपने एकाकियो मे प्रस्तुत कर रहे हैं। इनके नाटकों मे वातावरण का निर्माण सिर्फ

सफलता से हुआ है। सवाद को अधिक से अधिक स्वाभाविक, मार्मिक और भावना मे रसा बसा रखते हैं। सवाद की भाषा के बल पर वे नाटक लिखने बैठते हैं और काफी सफल रहे हैं।

श्री रामचन्द्र तिवारी आपकी विशेषताए प्रतीकात्मक शैली तथा सवेतात्मक साहित्य की रचना है, मनोरजकता से गम्भीरता की ओर गए हैं। इनके एकाकियों मे प्रत्येक रुचि के पाठक, दर्शक या श्रोता को विचारपूर्ण सामग्री प्राप्त हो सकती है। आपका दृष्टिकोण निर्मम वैज्ञानिक है, वह प्रमाण के अभाव मे कोई तथ्य स्वीकार करना नही चाहता। वह जानता है कि शब्द और अनुमान ही नही, प्रत्यक्ष प्रमाण भी सब दिशाओ मे पूर्णतया निर्भरणीय नही हैं। साहित्य का और विशेषत. रूपक साहित्य का आधार व्यक्ति है। समाज उसमे भाग नही ले सकता। कथा साहित्य की इस सीमा के कारण, सामाजिक समस्याओ की विवेचना करने के लिए तिवारी जी ने प्रतीको का उपयोग किया है। प्रतीक रूपको मे आपने ऐसे गूढ तत्वो की ओर सकेत किया है जो साधारण रूप मे इतने मर्मस्पर्शी सभव न थे। आपने जीवन के प्राय सभी पहलुओ पर विचार किया है। कुछ जासूसी, वैज्ञानिक और अद्भुत कहानियो से लेकर अनेक सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक कथाए लिखी हैं। सभी मे उनकी मौलिक वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, व्यक्ति मे उनकी आस्था और हास्य व्यग्यात्मक शैली स्पष्ट है। आपके एकाकी गभीर समस्याओ के सहारे खडे किये गये हैं। आप योरोपीय विशेषत अग्रेजी एकाकीकार शा से प्रभावित कहे जा सकते हैं।

रामचन्द्र तिवारी मुख्यत सामाजिक एकाकीकार हैं। समाज की नाना समस्याओ जैसे प्रेम, तलाक, सामाजिक भ्रष्टाचार, असगतियो की ऐतिहासिक राष्ट्रीय जडता एव दुर्बलताओ को लेकर आपने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अनेक प्रकार के चरित्रो का अध्ययन किया है। महानतम उद्देश्यो से परिचालित समाज सुधार और जन सेवा के कार्य भी राष्ट्रीय चरित्र की मलिनता के कारण किस प्रकार धूर्त और नर पिशाचो के हाथ मे पडकर अपना गौरव नष्ट कर रहे हैं, इसकी ओर आपने सकेत किया है। स्वतन्त्रता के लिए भी आवश्यक तत्वो की ओर आपने सकेत किया है। अपने रेडियो एकाकियो मे रचनात्मक दृष्टि से तिवारी जी ने "नवभारत" शीर्षक के रेडियो रूपको के अन्तर्गत अनेक सामयिक समस्याओ पर विचार किया है। जैसे, हमारे गाव, घरेलू उद्योग, जन स्वास्थ्य, जल ऊषा, भारतीय यवन, अन्नोत्पादन और राष्ट्रीय निर्माण तथा उनकी सम्पत्ति आदि। प्रतीक रूपको मे आपकी सबसे महत्वपूर्ण रचना "वन्दिनी" है।

आपके निम्न एकाकी प्रसारित हो चुके हैं

(१) समस्या प्रधान जैसे १ अन्नदान २ मदिर की पुकार ३ हवा की जलन ४ खून के प्यासे ५ भूखा कोई न रहे ६ रक्षा बधन ७ स्मित कुहार ८.

जागरण ९ संग्राम १० शिष्टाचार ११ भूल १२ पड़ोसी १३ लक्ष्मी का प्रवेश।

(२) सामयिक समस्याओं पर जैसे : १ अन्नोत्पादन २ वन महोत्सव ३. गंगावतरण ४. कर्म भक्ति के प्रतीक तुलसी ५ राष्ट्र निर्माण और उसकी सम्पत्ति ६ जन स्वास्थ्य ७. जन ऊषा ८ दूध की बात ९ नया जीवन आदि।

(३) रूपात्मक तथा फैंटेसी . १. भारत और महिमा २ स्वाधीनता ३ दरिद्रता।

(४) व्यंग्यात्मक प्रहसन . १ श्री श्री नारी उद्धारक लिमिटेड २ पंचरत्नी सम्मेलन ३ भतीजे का जन्म ४ चुंगी का चुनाव।

(५) बच्चों के एकांकी : १. टुन्नू मुन्नू २ नया नागरिक ३ बच्चों की हड़ताल ४ प्रह्लाद आदि।

नाट्यकार के अनुसार काव्य का श्रव्य और दृश्य काव्य में वर्गीकरण अब पर्याप्त नहीं रहा है। रेडियो प्रसार ने श्रव्य काव्य को पुनर्परिभाषित किया है और सिनेमा ने दृश्य काव्य को नया विकास प्रदान किया है। आपके एकांकी टैकनीक में दृश्य की अपेक्षा श्रव्य काव्य अधिक हैं। वे अधिकांश ध्वनि नाटक हैं। उनके एकांकियों में पुरुष पात्रों का बाहुल्य है। ये उत्तम तथा अधम सभी प्रकार के व्यक्तियों के चरित्रों के अध्ययन हैं पर आपने अपनी भक्ति किसी को प्रदान नहीं की है। आपके अनुसार स्वार्थ संयम संस्कृति का आरम्भ है।

प्रो० विश्वम्भर "मानव" मानव उन आलोचक एकांकीकारों में से हैं जो भारतीय परिवार में मनुष्य के मन में मानव समाज के भीतर [illegible] विकृतियां उभार रहे हैं। यथार्थ का चित्र देना उनका अभिप्राय नहीं है। वे मनुष्य तथा समाज की आलोचना कर रहे हैं। जो गन्दगी समाज के [illegible] में छिपी सड़ांध उत्पन्न कर रही है, उसे उघेड़-उघेड़ कर [illegible] रहे हैं। वे पलायनवाद के विरोधी हैं, तो जनता के घातक शत्रु। उनके एकांकियों में [illegible] भौतिकवाद तथा मार्क्स के समाजवाद का प्रभाव दृष्टिगत होता है। [illegible] शिक्षा और बुद्धि के [illegible] ने जो प्रकाश [illegible] पुरानी [illegible] परम्पराएं टूट रही हैं और उनके स्थान पर नयी [illegible] [illegible] उसी ओर मानव ने अपने एकांकियों में [illegible] किया है। [illegible] दृष्टिकोण से भारतीय जीवन और समाज की [illegible] समस्याओं की [illegible] प्रयत्न किया है।

[illegible] मानव जी की [illegible] है। [illegible] समाज की [illegible] एवं [illegible] प्रवृत्तियों की [illegible] है। [illegible] आलोचना की [illegible] में समाज की [illegible] सामाजिक समस्याओं [illegible], [illegible] गरीबी, [illegible], [illegible] [illegible] दी है। [illegible] व्यक्तिगत [illegible] जो [illegible], समानता, समर्पणशील जीवन के प्रति प्रेम प्रतिष्ठित [illegible] है। [illegible]

व्यवहारिक पक्ष को ग्रहण किया है। कर्म मार्ग तथा नारी स्वातन्त्र्य पर जोर दिया है। "दो फूल" एकाकी कर्म मार्ग का एक उदाहरण है।

अपने उद्देश्य मे ये आदर्श नैतिक हैं तथा समाज मे मानव का महत्व प्रतिष्ठित करते हैं। जीवन के स्थूल सत्यो को छूते हैं। जीवन के सघर्ष को मान देकर परिस्थितियो से निरन्तर युद्ध कर उन पर विजय प्राप्त करने वाले निष्ठावान मानव की विशेषता प्रतिष्ठित करते हैं। मानव जीवन से सघर्ष एव कठिनाई का अस्तित्व तो मानते हैं, किन्तु यह प्रतिष्ठित करते हैं कि परिस्थिति पर विजय प्राप्त करने की क्षमता मनुष्य मे है। पूजीवाद सामन्तशाही सामाजिक विधान पर कटु व्यग्य है। रुपये से मनुष्य का मूल्य कही ऊचा है। मानव पुराने जीर्ण-शीर्ण सामाजिक शिकजे को तोड फोडकर नये समाज की सृष्टि करने वाला है। आपके तीन एकाकी "सकीर्ण, दो फूल, तथा जीवन साथी" समाज की असत्य, दिखावटी, खोखली परम्परा के विरुद्ध विद्रोह से भरे हैं। नाट्यकार के प्रतिनिधि विचार सकीर्ण एकाकी की प्रधान पात्री शारदा के शब्दो मे इस प्रकार व्यक्त हुए हैं

"एक मनुष्य तथा दूसरे मनुष्य में कोई अन्तर नही। यह छोटे वडे धनी निर्धन का अन्तर स्वय मनुष्य का उत्पन्न किया हुआ है। मनुष्य पर सबसे अधिक अत्याचार यदि आज तक किसी ने किया है तो स्वय मनुष्य ने ही।"

सैक्स समस्या पर मानव जी ने अपने "सन्देह का अन्त" एकाकी मे प्रकाश डाला है। इसमे यह दिखाया गया है कि हिन्दू समाज मे विवाह सस्था आवश्यकता से अधिक रूढिवादी और सकीर्ण हो गई है। आपके नारी पात्र जीर्ण समाज के बन्धनो से निरन्तर युद्ध करते हुए मिलते हैं। उनमे, शिक्षा जागृति और कर्मण्यता है, उनमे कठोर परिस्थितियो से युद्ध करता हुआ एक सघर्षशील आदर्शवाद है।

सविधान की दृष्टि से इनके एकाकी रेडियो से प्रभावित हैं। कही-कही कथानक मे एक से अधिक छोटी कहानिया जोड दी गई हैं। पर इनमे समस्या अन्त मे प्रकट की जाती है और अन्त तक जिज्ञासा का खिचाव रहता है।

श्री सुमित्रानन्दन पत कवि पन्त के निम्न एकाकी प्रकाशित हुए हैं १ युग पुरुष २ छाया (१९४३) ३ ज्योत्सना ४ मानसी ५ फूलो का देश ६ विद्युत वसना ७ शुभ्र पुरुष ८ परणीता ९ चौराहा १० ध्वसावशेष ११ साधना १२ रजत शिखर १३ अप्सरि (१९३९) १४ उत्तरशती।

पत के एकाकियो की दो विशेषताए हमे अनायास ही आकर्षित करती हैं। उनका नैतिक आदर्शवाद जो उनकी सामाजिक सुधारवादी वृत्ति का परिणाम है तथा प्रतीकात्मक सकेतो से युक्त शैली का प्रयोग। आपका आधार सामाजिक समस्याए हैं, किन्तु गौण रूप से आपने राष्ट्रीय एव सास्कृतिक क्षेत्रो मे भी छीटाकशी की है। अपने सामाजिक नाटको जैसे छाया, युग, पुरुष, मानसी, परणीता, ध्वसावशेष, साधना आदि मे अनेक छोटी वडी समस्याओ को उठाया है तथा सकेतात्मक रूप से उनका

हल भी प्रस्तुत किया है। सामाजिक धर्मान्धता, अन्ध विश्वास, जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों से उद्भूत आधुनिक संसार की समस्याओं को समझाने के लिये उन्होंने कुछ मौलिक सिद्धान्तों की सृष्टि की है। इसके फलस्वरूप ज्योत्स्ना रूपक की सृष्टि हुई है। 'युग पुरुष" में धर्म और सम्प्रदाय के झगड़ों से ऊपर राजनीतिक, आर्थिक कोलाहल से परे पुराने अन्ध विश्वासों और मान्यताओं को लांघकर जो एक नया इन्सान आज भारत में जन्म ले रहा है, उसकी झांकी प्रस्तुत की गई है। "छाया" एकांकी भारतीय विवाह पद्धति पर एक व्यंग्य है। "मानसी" में आधुनिका के आन्तरिक जीवन के विकास की कमी दिखाई गई है। हमारे जीवन में सन्तुलन नहीं है। अतः हमें वस्तुवाद तथा आध्यात्म के मध्य की चीज अपनाना चाहिए। "फूलों के देश" में आदर्शवाद तथा यथार्थवाद का अध्ययन है। "विद्युत वसना" स्वतन्त्रता की आत्मा का चित्रण है। "उत्तरशती" भावी जीवन, समाज तथा संस्कृति का सिंहावलोकन प्रस्तुत करता है। "शुभ्र पुरुष" महात्मा गांधी जी के जन्म दिवस पर लिखित है। 'परागोला" मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवाह समस्या का अध्ययन है। "चौराहा" संकेतात्मक पद्धति पर लिखी फासिज्म तथा जनतन्त्र का तुलनात्मक अध्ययन है। इसमें पुनर्निर्माण एक प्रतीक के रूप में रखा गया है। "ध्वंसावशेष" आने वाली एटम शक्ति के बल पर लड़े जाने वाले तृतीय महायुद्ध की एक काल्पनिक झांकी है। इसमें उस संस्कृति की आवश्यकता बताई गई है जो मानववाद पर टिकी है। "साधना" आधुनिक युवती के पतन के मार्गों का चित्रण है। "रजत शिखर" आत्मिक पवित्रता का विवेचन करता है। "स्पारि" आत्मिक सौन्दर्य का चित्र है। जिसमें विरागमय आसक्ति में ही सच्चे सुख की प्राप्ति दिखाई गई है।

पन्त ने भद्र जीवन के असन्तोष, प्रेम, ईर्ष्या, सन्देह तथा पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर उनके स्थान पर एक नैतिक आदर्शवाद की स्थापना पर जोर दिया है। उनके एकांकियों में हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क के तर्क का सम्बन्ध है, सन्तानों की [illegible] बुद्धि का प्रकाश है। भावी जीवन दर्शन से प्रभावित सांस्कृतिक नाटकों में नये मानव की उसके धर्म, दर्शन, भावना और महानता की झांकी दी गई है। पन्त एक मानववादी विचारक हैं। मानव के साथ जगत का कल्याण है। यदि मानव की आत्मा का विकास हो तो मानवता शाश्वत सुख प्राप्त कर सकती है। "उन्मनी" में आगे भावी जीवन की एक झांकी प्रस्तुत की है।

पन्त ने अपने नाटकों में गद्य पद्य में संकेतात्मक और प्रतीकात्मक प्रणालियों का सफलता से प्रयोग किया है। छाया, विद्युत वसना, चौराहा, रजत शिखर, स्पारि आदि सम्पूर्ण प्रतीकात्मक एकांकी हैं। छाया में एक नव [illegible] है, जो मूकाभिनय के संकेतात्मक चित्रण के रूप में रखा जाता है। इन दृश्यों पर सम्पूर्ण प्रतीकों का विधान रखा जाता है। पर दूसरे प्रकार का प्रयोग 'युग पुरुष' में है, जिसमें अभिनय के साथ एक ध्वनि स्टेज के एक कोने पर मूक अभिनय भी करता

चलता है। इन एकाकियो मे बाह्य घटनाओ की अपेक्षा अन्तर्द्वन्द्व का आधिक्य है। "मानसी" एक प्रकार का नृत्य नाटक है, जो सर्वथा अभूतपूर्व है। इन सब मे पत की सूक्ष्म भावुक और चित्रमयी व्यजना ने अभिव्यक्ति पायी है।

श्री चिरजीत चिरजीत के नाटको में रूमान (रोमास) का सौंदर्य भी है, तथा यथार्थता भी। चिरजीत को रगमच पर अभिनय का व्यवहारिक ज्ञान होने के कारण इनके एकाकियो मे अभिनय तत्व की प्रचुरता है। नाटक लिखने की प्रेरणा आपको रेडियो से प्राप्त हुई है। आपने रेडियो एकाकी शैली के सम्बन्ध में विदेशी साहित्य का अध्ययन किया है तथा छोटे बडे सौ सवा सौ एकाकी तथा रेडियो रूपक लिखे हैं। इनकी विशेषता सगीत रूपक है। स्वभावत सगीत प्रेमी और कवि होने के कारण चिरजीत को सगीत रूपक मे अच्छी सफलता मिली है। भारतीय सगीत तथा पाश्चात्य टैकनीक के सम्मिश्रण से लिखे गये आपके ओपेरा विशेष कलात्मक हैं। इनमें तीन गीति नाट्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं १ "मधुर मिलन" जिसमे प्राचीन मान्यताओ की एक नर्तकी और चित्रकार की प्रेम कथा है, २ "प्रथम दर्शन" जिसमे दुष्यन्त तथा शकुन्तला की प्रथम भेंट का सगीतमय वर्णन है। ३ "जीवन साथी" एक ग्रामीण रूपसि के आत्म-बलिदान की कथा है। सभी मे आपने पश्चिमी ओपेरा की मर्यादाओ, अभिप्रायो तथा शैलियो का पालन किया है। सगीत रूपको मे १ मेघदूत २ हिमानी ३ छवि बन्धन ४ देव दानव सफलता से प्रसारित हुए हैं। आपके फीचरो मे लाल बुझक्कड उत्तम है। रेशमी साडी दाम्पत्य जीवन का अच्छा अध्ययन है।

चिरजीत के एकाकी चार श्रेणियो में विभक्त किये जा सकते हैं। १ सामाजिक २ रूमानी ३ रहस्य रोमाच ४ प्रहसन। सामाजिक नाटको मे पीछे चिरजीत का यथार्थन्वेषी आलोचनात्मक व व्यग्यात्मक दृष्टिकोण रहता है। नवीन परिवर्तित परिस्थितियो का पति पत्नी, स्त्री पुरुष, व्यक्ति और समाज के सम्बन्धो पर क्या प्रभाव पडा है, यही स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। "दादी मा जागी" मे आपने एक ऐसी वृद्धा का चित्रण किया है जो किसी विशेष रोग से ग्रसित होकर २० वर्ष तक अचेत रहती है। जब होश मे आती है तो समाज की स्थिति बिल्कुल परिवर्तित पाती हैं। वह देखती है कि स्त्री प्राचीन बन्धन तोड चुकी है, आर्थिक दृष्टिकोण से स्वाधीन होने मे प्रयत्नशील है।

रेडियो नाटको मे चिरंजीत व्यग्य को मीठे हास्य का रूप देकर अपना कार्य निकालते हैं। उनके पात्र अधिकतर मध्यवर्ग के होते हैं। उन्होने अपने रूमानी एकाकियो मे स्त्री पुरुष के प्रेम सम्बन्धो को सामाजिक मूल्यो पर परखने का प्रयत्न किया है। चिरजीत मानते हैं कि आज की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था मे प्रेम का उदात्तीकरण सभव नही है। छायावादी एव रहस्यवादी ढग का प्रेम आपको कपोल कल्पना सा प्रतीत होता है। वास्तविकता से दूर। आपके "नाटक का अन्त" एकाकी मे बलवीर अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए अपनी प्रथम पत्नी की हत्या

करता है, किन्तु वह प्रेमिका सामाजिक नियमो के बन्धनो मे किसी दूसरे से विवाह कर लेती है। इस पर बलवीर, जो अपने प्रेम का उदात्तीकरण कला मे ढूंढ रहा है, प्रतिहिंसा की ज्वाला मे दग्ध होकर पशु बन जाता है और अपनी प्रेमिका की हत्या करने पर उतारू हो जाता है। "गूजती याद" मे आपका उद्देश्य प्रेम की आध्यात्मिकता पर वास्तविकता और पार्थिवता की विजय चित्रित करना है।

रहस्य रोमाच सम्बन्धी एकाकियो मे १. साथ वाला मकान २ महाश्वेता बहुत सफल रहे है। "साथ वाला मकान" प्रेम कथा की पृष्ठभूमि पर एक प्रहसन है, जिसे प्रेतात्मा समझा जाता है, वह जीती जागती लडकी है। "महाश्वेता" मे एक ऐसे पुरातत्ववेत्ता की हत्या चित्रित है, जो एक सगमरमर की मूर्ति को महाश्वेता समझ बैठा है। मूर्ति जहर से पुती होने के कारण उसकी हत्या का कारण बनती है।

श्री चिरजीत का प्रथम प्रहसन सभवत "दफतर जाते समय" था। आपके अन्य लोकप्रिय प्रहसन इस प्रकार हैं १ टेलीफोन २. शक्की बीवी ३ नाटक का निर्माण ४ चतुर्भुज महाशय ५ अपहरण ६ दादी मा जागी ७ खजाने का साप ८ साथ वाला मकान ९ अखबारी विज्ञापन १० सावन की एक साझ ११ होली के दिन १२ विवाह की धूम १३ मेहमान आदि। "नया नगर" के रूप मे चिरजीत ने एक नया तथा साहसपूर्ण प्रयोग किया है। यह आकाशवाणी के इतिहास मे प्रथम अवसर था, जबकि कोई धारावाहिक प्रहसन किस्तो के रूप मे दस मास तक सफलतापूर्वक प्रसारित हुआ हो। इसमे एक नौकरी पेशा मध्यवर्गीय परिवार, जिसे वे मजाक मे भिशकू की सज्ञा देते हैं, की रोजमर्रा की घटनाओ का व्यग्यपूर्ण चित्रण है। रेडियो हास्य व्यग्य विनोद की पाक्षिक पत्रिका "तरग" का प्रसारण सन १९५४ मे प्रारम्भ हुआ था। सम्पादक बने श्री चिरजीत। "तरग" कार्यक्रम के अन्तर्गत एक [illegible] मास्टर तिलविल, जिनका असली नाम श्री [illegible] है, से [illegible] सुनने को मिले। जनता मे असाधारण रूप से लोकप्रिय मास्टर [illegible] महोदय हैं साधारण प्रतिभा से युक्त एक सामान्य अध्यापक है, [illegible] के मन मे सदैव मध्यवर्ग की [illegible] से उभर कर [illegible] मे पहुच जाने की महत्वा-काक्षा बनी रहती है पर जो हर बार किसी न किसी कारण गिर पडते है। "[illegible]" के सदन मे श्री चिरजीत को एक नया प्रयोग करने का अवसर उपलब्ध हुआ। [illegible] [illegible] की रचना। यह हिन्दी रेडियो जगत मे [illegible] का प्रथम अवसर था जबकि हास्यरस मे ऐसे [illegible] बाधो पर सफलतापूर्वक बाधे जा सके। [illegible] होता कि श्रोता [illegible] बिना नही रह सकता।

निष्कर्ष यह कि चिरजीत के एकाकियो मे [illegible] होते है। प्रहसनो मे सस्ते हास्य, [illegible] का [illegible] बौद्धिक और मानसिक [illegible] का [illegible] चित्रण है। [illegible] की [illegible],

चलता है। इन एकाकियो मे बाह्य घटनाओ की अपेक्षा अन्तर्द्वन्द्व का आधिक्य है। "मानसी" एक प्रकार का नृत्य नाटक है, जो सर्वथा अभूतपूर्व है। इन सब मे पत की सूक्ष्म भावुक और चित्रमयी व्यजना ने अभिव्यक्ति पायी है।

श्री चिरंजीत चिरजीत के नाटको में रूमान (रोमास) का सौंदर्य भी है, तथा यथार्थता भी। चिरजीत को रगमच पर अभिनय का व्यवहारिक ज्ञान होने के कारण इनके एकाकियो मे अभिनय तत्व की प्रचुरता है। नाटक लिखने की प्रेरणा आपको रेडियो से प्राप्त हुई है। आपने रेडियो एकाकी शैली के सम्बन्ध में विदेशी साहित्य का अध्ययन किया है तथा छोटे बडे सौ सवा सौ एकाकी तथा रेडियो रूपक लिखे हैं। इनकी विशेषता सगीत रूपक है। स्वभावत सगीत प्रेमी और कवि होने के कारण चिरजीत को सगीत रूपक में अच्छी सफलता मिली है। भारतीय सगीत तथा पाश्चात्य टैकनीक के सम्मिश्रण से लिखे गये आपके ओपेरा विशेष कलात्मक हैं। इनमें तीन गीति नाट्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं १ "मधुर मिलन" जिसमे प्राचीन मान्यताओ की एक नर्तकी और चित्रकार की प्रेम कथा है, २ "प्रथम दर्शन" जिसमे दुष्यन्त तथा शकुन्तला की प्रथम भेंट का सगीतमय वर्णन है। ३ "जीवन साथी" एक ग्रामीण रूपसि के आत्म-बलिदान की कथा है। सभी मे आपने पश्चिमी ओपेरा की मर्यादाओ, अभिप्रायो तथा शैलियो का पालन किया है। सगीत रूपको में १ मेघदूत २ हिमानी ३ छवि बन्धन ४ देव दानव सफलता से प्रसारित हुए हैं। आपके फीचरो मे लाल बुझक्कड उत्तम हैं। रेशमी साडी दाम्पत्य जीवन का अच्छा अध्ययन है।

चिरजीत के एकाकी चार श्रेणियो मे विभक्त किये जा सकते हैं। १ सामाजिक २ रूमानी ३ रहस्य रोमाच ४ प्रहसन। सामाजिक नाटको मे पीछे चिरजीत का यथार्थन्वेषी आलोचनात्मक व व्यग्यात्मक दृष्टिकोण रहता है। नवीन परिवर्तित परिस्थितियो का पति पत्नी, स्त्री पुरुष, व्यक्ति और समाज के सम्बन्धो पर क्या प्रभाव पडा है, यही स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। "दादी मा जागी" मे आपने एक ऐसी वृद्धा का चित्रण किया है जो किसी विशेष रोग से ग्रसित होकर २० वर्ष तक अचेत रहती है। जब होश मे आती है तो समाज की स्थिति बिल्कुल परिवर्तित पाती है। वह देखती है कि स्त्री प्राचीन बन्धन तोड चुकी है, आर्थिक दृष्टिकोण से स्वाधीन होने मे प्रयत्नशील है।

रेडियो नाटको मे चिरंजीत व्यग्य को मीठे हास्य का रूप देकर अपना कार्य निकालते हैं। उनके पात्र अधिकतर मध्यवर्ग के होते हैं। उन्होंने अपने रूमानी एकाकियो मे स्त्री पुरुष के प्रेम सम्बन्धो को सामाजिक मूल्यो पर परखने का प्रयत्न किया है। चिरजीत मानते है कि आज की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था मे प्रेम का उदात्तीकरण सभव नहीं है। छायावादी एव रहस्यवादी ढग का प्रेम आपको कपोल कल्पना सा प्रतीत होता है। वास्तविकता से दूर। आपके "नाटक का अन्त" एकाकी मे बलबीर अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए अपनी प्रथम पत्नी की हत्या

करता है, किन्तु वह प्रेमिका सामाजिक नियमों के बन्धनों में किसी दूसरे से विवाह कर लेती है। इस पर बलवीर, जो अपने प्रेम का उदात्तीकरण कला में ढूंढ रहा है, प्रतिहिंसा की ज्वाला में दग्ध होकर पशु बन जाता है और अपनी प्रेमिका की हत्या करने पर उतारू हो जाता है। "गुजरती याद" में आपका उद्देश्य प्रेम की आध्यात्मिकता पर वास्तविकता और पार्थिवता की विजय चित्रित करना है।

रहस्य रोमांच सम्बन्धी एकांकियों में १ साथ वाला मकान २ महाश्वेता बहुत सफल रहे हैं। "साथ वाला मकान" प्रेम कथा की पृष्ठभूमि पर एक प्रहसन है, जिसे प्रेतात्मा समझा जाता है, वह जीती जागती लड़की है। "महाश्वेता" में एक ऐसे पुरातत्ववेत्ता की हत्या चित्रित है, जो एक संगमरमर की मूर्ति को महाश्वेता समझ बैठा है। मूर्ति जहर से पुती होने के कारण उसकी हत्या का कारण बनती है।

श्री चिरंजीत का प्रथम प्रहसन संभवत "दफ्तर जाते समय" था। आपके अन्य लोकप्रिय प्रहसन इस प्रकार है - १ टेलीफोन २ शक्की बीवी ३ नाटक का निर्माण ४. चतुर्भुज महाशय ५ अपहरण ६ दादी मां जागी ७ खजाने का साथ ८ साथ वाला मकान ९ अखबारी विज्ञापन १०. सावन की एक सांझ ११ होली के दिन १२ विवाह की धूम १३ मेहमान आदि। "नया नगर" के रूप में चिरंजीत ने एक नया तथा साहसपूर्ण प्रयोग किया है। यह आकाशवाणी के इतिहास में प्रथम अवसर था, जबकि कोई धारावाहिक प्रहसन किश्तों के रूप में दस मास तक सफलतापूर्वक प्रसारित हुआ हो। इसमें एक नौकरी पेशा मध्यवर्गीय परिवार, जिसे वे मजाक में त्रिशंकु की संज्ञा देते हैं, की रोजमर्रा की घटनाओं का व्यंग्यपूर्ण चित्रण है। रेडियो हास्य व्यंग्य विनोद की पाक्षिक पत्रिका "तरंग" का प्रसारण सन् १९५४ में प्रारम्भ हुआ था। सम्पादक बने श्री चिरंजीत। "तरंग" कार्यक्रम के [illegible] एक [illegible] मास्टर झिलमिल, जिनका [illegible] नाम श्री [illegible] हैं, के [illegible] [illegible] को मिले। जनता में [illegible] [illegible] लोकप्रिय मास्टर झिलमिल [illegible] साधारण प्रतिभा से युक्त एक साधारण अध्यापक हैं, सदा पत्नी से [illegible] [illegible] के मन में सर्दैव [illegible] की [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] की [illegible] बनी रहती है पर जो हर बार किसी न किसी [illegible] [illegible] है। "[illegible]" के माध्यम से श्री चिरंजीत ने एक नया प्रयोग करने का [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] हास्य रस के गीतों की रचना। यह हिन्दी रेडियो [illegible] में [illegible] प्रथम अवसर था जबकि [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वालों पर [illegible] गाये जा सके। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] होता है कि श्रोता उनको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

निष्कर्ष यह कि चिरंजीत के एकांकियों में [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] होते हैं। प्रहसनों में [illegible] [illegible], सामाजिक [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बौद्धिक और मानसिक [illegible] का [illegible] [illegible]। [illegible] जीवन की [illegible],

दिखावा या अस्वाभाविकता ही उनके हास्य का आधार रही है। रेडियो टैकनीक पर असाधारण अधिकार है।

राजाराम शास्त्री शास्त्री जी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी एकाकीकार है। आपके नाट्य साहित्य मे मध्यवर्ग के सामाजिक जीवन की विद्रूपताए, ग्रामीण जीवन की छोटी बडी असगतिया और एक व्यवहारिक आदर्शवाद उपलब्ध है। आल इण्डिया रेडियो दिल्ली के ग्राम्य विभाग से सबद्ध होने के कारण आपका अधिकाश नाटक साहित्य ग्राम्य जीवन मे नित्य प्रति घटने वाली, किन्तु भयकर दुष्परिणाम उत्पन्न करने वाली कुरीतियो के प्रदर्शन से सम्बन्धित है। इसमे उन दैनिक जीवन की समस्याओ को उभारा गया है, जिन्हें ग्राम्य जनता नगण्य समझकर टाल देती है, किंतु जो इतनी महत्वपूर्ण हैं कि जीवन को बदल देने की पर्याप्त शक्ति है और जिनके दूर न करने से मानव जीवन कलकित होता है। मनोरजन के साथ दैनिक जीवन की भूलो को पकडने की शास्त्री जी मे अद्भुत क्षमता है। इतना ही नही अपितु इसके साथ-साथ हमे कुछ रचनात्मक विचार भी प्राप्त होते हैं। जीवन की अनेक छोटी-बडी भूले हमारी पकड मे आ जाती हैं। और यह सब होता है हास्य के माध्यम से। यही है इनके साहित्य की मार्मिकता।

आपका नाटक साहित्य विषय की दृष्टि से इन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है (१) सामाजिक सुधारवादी एकाकी जैसे १ सतलडी का हार २ अदला-बदली ३ बडबेरी ४ जीजी ५ महारानी ३ बीस मिनट लेट ७ पत्थर की आख ८ शिकार ९ खाओ चिडियो भर पेट १० आखिरी घूट ११ बादल बोला १२ फुलबूट १३ हमारे शत्रु १४ खाओ मन भर १५ गाव का दलिद्दर १६ चौधरानी का श्रृगार १७ अपराधी कौन १८ नई डगर १९ जमुना किनारे २० सास बहू २१ शिवालय २२ स्त्री शिक्षा २३ खाल की खुदाई (पाच भाग) २४ दीपावली २५ एक रुपये मे छ मानस आदि।

(२) दूसरे वर्ग मे आपके पौराणिक एकाकी आते हैं जैसे १ देवहूति २ सकन्या आदि। तीसरे वर्ग मे हास्य व्यग्यमय झाकिया रखी जा सकती हैं, जैसे १ अठन्नी २ गूगा ३ अदला बदली ४ पत्थर की आख ५ बडबेरी आदि।

"सतलडी का हार" सग्रह मे नाटककार की दृष्टि निम्न मध्यवर्ग के सामाजिक जीवन पर गई है और उसने अनेक ज्वलन्त समस्याओ की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। जैसे पर्दा, अफवाह, दहेज, अशिक्षा, मूढता, आभूषणो से प्रेम, स्त्रियो की चचलता, पुरुष का दभ आदि। "शिकार" सग्रह का केन्द्र बिन्दु ग्राम्य जीवन की नाना विद्रूपताए, रूढिया अशिक्षा और मूर्खताए हैं, जैसे पचायत मे शिथिलता, गन्दगी, मादक द्रव्यो के सेवन के दुष्परिणाम, चूहो से हानि, गहनो के प्रेम से हानिया, पर्दा और दहेज प्रथाए आदि। ये इस सग्रह के चित्र सरल, प्रचलित और चुभती हुई भाषा मे खीचे गये है। व्यग्य, मुहाविरे, लोकोक्तिया एव लोकगीतो की छटा मर्मस्पर्शी है।

कथानकों के निर्माण की ओर भी विशेष ध्यान है। "मतलबी का हार" में गाड़ी के डिब्बों में पर्दे के कारण बदल जाने वाली वधुओं से उत्पन्न एक कौतूहलप्रद हंगामे का चित्रण है, पर्दे की कुप्रथा पर व्यंग्य भी है। "पत्थर की आंख" अफवाह पर विश्वास करने और नारी हृदय की अस्थिरता, थोथापन और मूढ़ता को अभिव्यक्त करती है। "खाओ भर-भर" में जूठन छोड़ने की कुप्रथा पर आक्षेप है। "जीजी" एकांकी में नारी मन की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। "अदला बदली" में 'जिसका काम उसी को साजै' उक्ति को चरितार्थ कर दिखाया है। आज के युग में लगी स्त्री पुरुष की कार्यक्षेत्र में समता की होड़ पर हास्य चित्र द्वारा व्यंग्य किया गया है। "एक रुपये में छः मानस" विवाह में एक रुपया दान देकर समस्त परिवार का भोजन करने पहुंच जाने की कुप्रथा पर चोट है। "शिवालय" में मन्दिर का वास्तविक शिव स्वरूप प्रदर्शन और आज के युग में उसकी उपयोगिता, "पशु-चराई" में पशुओं से खेतों को हानि और बचने के उपाय, "गांव की खुदाई" में गांवों पानी पर होने वाली लड़ाई तथा "वचेड़" में काम जानने का ढोंग करने के दुष्परिणाम दिखाये गये हैं। "महाराणा प्रताप" और "वीर दुर्गादास" दो सफल फीचर हैं। "शिकार" एकांकी सहित ग्राम्य जीवन की अनेक समस्याओं से सम्बन्धित हैं। ग्रामीण जनता के लिए तो वास्तव में ये एकांकी बड़े उपयोगी और मनोरंजक हैं। प्रचार साहित्य को सजीव और हास्य व्यंग्यपूर्ण बना आकर्षक रूप में प्रस्तुत करना शास्त्री जी की एकांकी कला की विशेषता है अन्यथा ये विषय तो सर्वथा शुष्क से हैं। इनमें शास्त्री जी की नाटकीय प्रतिभा की विलक्षणता प्रकट होती है।

"फुलझूट" और "दबबेरी" भाग रूपकों में एक पात्र स्वयं ही वातावरण निर्माण और घटनाक्रम आगे बढ़ाता है। "फुलझूट" में सर्कस का रिंग मास्टर जो शेरों-चीतों, हाथियों एवं अजगरों से लोहा लेता है, रात्रि के अन्धकार में फुलझूट को [illegible] समझ कर उनसे उलझ जाता है। भय, विस्मय, हार और [illegible] में प्राणों को बचाने की लगन में वह जूझता है। [illegible] मन का अच्छा चित्रण है। [illegible] भाग 'दबबेरी" में सूबेदार मेजर युद्ध में टैंक, बम और मशीनगनों की [illegible] पर [illegible] घेरे में अपने [illegible] से लड़े बबेरी के तने को अपना [illegible] फिर [illegible] समझ कर पिस्तौल से उनसे लड़ता है और [illegible] सब द्वारा उसे दूर भगाया जाता है। बेजान चीजें हमारे जीवन के [illegible] क्षणों में आकर क्या कुछ [illegible], इस तथ्य का रहस्योद्घाटन इन नाटकों में होता है।

हास्य रस के छोटे-छोटे व्यंग्यात्मक एकांकी लिखने में शास्त्री जी को अच्छी सफलता मिली है। "जंगली मुर्गा", "अदला बदली", [illegible] आदि एकांकी समाज और जीवन की छोटी मोटी भूलों पर मधुर व्यंग्य करते हैं। [illegible] जाता है [illegible] शास्त्री जी के [illegible] एकांकी [illegible] उत्पन्न करते हैं। शास्त्री जी हास्य में लिखते हैं। [illegible]

भावना का चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं।

सास्कृतिक और पौराणिक क्षेत्रो मे १ "देवहूति" और २ "सुकन्या" एकाकी उल्लेखनीय हैं। देवहूति मे ऋषि के मत का अन्तर्द्वन्द्व सफलता से चित्रित किया गया है। चित्रण एव स्थिति के अनुसार भाषा भी बदलती गई है। उद्देश्यपूर्ति के साथ स्वाभाविकता भी नष्ट नही हुई है। घटनाचक्र का प्रवाह ऐसे क्रम से रखा गया है जिससे उद्देश्य की पूर्ति स्वय सिद्ध प्रतीत होती है। "सुकन्या" एकाकी मे महर्षि च्यवन वृद्धावस्था मे अपनी पत्नी के प्रति किए गए अपने अत्याचार पर विक्षोभ प्रकट करते हैं। अश्विनीकुमार जब इन्हें यौवनप्रदान करते हैं, तो वह उनसे किए गए अपने प्रण को पूर्ण किए बिना सुकन्या के प्रति अपनी विलास भावना को पनपने नही देते। यह चरित्र की महानता शास्त्रीजी ने चित्रित कर इस नाटक को एक ऊचे आदर्शवाद से पूर्ण कर दिया है। मूल पौराणिक कथानको मे यत्र तत्र किए ऊहापोह शास्त्रीजी की सूक्ष्म कल्पना शक्ति और सूझ-बूझ के परिचायक हैं। उन्हें रेडियो टैकनीक का क्रियात्मक अनुभव है। प्रहसन की शैली तथा भाषा पर पूर्ण अधिकार और नाटकीय क्षण को पकडने की अद्भुत क्षमता है। इनके नाटको का एक सौंदर्य इनका विस्मयात्मक अन्त है। ये नाटक लोक रुचि के तो परिचायक हैं ही, रचनात्मक दृष्टि से भी इनका स्थान महत्वपूर्ण है।

अनिलकुमार इनके रेडियो नाटको मे समाज और इतिहास दोनो का यथार्थवादी विवेचन है। उनके सामाजिक एकाकियो मे यदि रूढियो और जीर्ण परम्पराओ का विध्वसात्मक और नकारात्मक तत्वो का विवेचन है, तो नवनिर्माण के लिए अतीत कालीन भारतीय इतिहास के रजत पहलुओ को उभारा गया है। सामाजिक एकाकियो मे किसान जमींदार, फिल्म निर्देशक तथा लेखक, नाटक कम्पनी वाले तथा वैतनिक नाटककार तथा सभ्य समाज मे व्याप्त अनेक विद्रूपताओ पर व्यग्य किया है। कुछ नाटको जैसे "भूत" आदि मे आप चरित्रो की मनोवैज्ञानिक व्याख्या मे गहरे उतरे हैं।

सामाजिक क्षेत्र मे आपके १ फागुन के दिन २ निर्देशक ३ प्रजापति की निर्माणशाला ४ ग्रहो का निर्णय ५ मैं ६ अपनेपन का निर्णय ७ भूत आदि मे समाज की यथार्थवादी अलोचना है। "प्रजापति की निर्माणशाला" मे विज्ञान का दुरुपयोग चित्रित है। एटम के विस्फोट ने सभ्य ससार को आतकित कर दिया है, वातावरण विषैला हो गया है, आधुनिक मनुष्यो के हृदय में एक ओर कुठा है तो दूसरी ओर दभ का शख बज रहा है। इन तथ्यो के अतिरिक्त इसमे भविष्य के लिए यह भी सकेत है कि आगे चल कर मानव अपने सात्विक गुणो की अभिवृद्धि करेगा और मानवता का स्तर ऊचा उठेगा। "भूत" एकाकी मे यह चित्रित किया गया है कि नारी मे ईर्ष्या, प्रतिहिंसा एवं वैर भाव कितना अधिक होता है तथा झूठे वहम से वह पागलपन की सीमा तक पहुच सकती है। इसमे नारी के अन्तर्द्वन्द्वो का अच्छा विश्लेषण है। "ग्रहो का निर्णय" मे कलाकारो की स्वतन्त्रता आर्थिक लाचारी के

कारण उनकी स्वतन्त्रता और आदर्शों का हनन चित्रित है। इस प्रकार "निर्देशक" में भी फिल्म लेखक की पराधीनता का कारुणिक चित्रण है। निर्देशक के सामने बेचारा लेखक असमर्थ होकर उसके संकेत पर नाचता है। "अपनेपन का निर्णय" में फ्लैश बैक पद्धति के प्रयोग से यह चित्रित किया गया है कि सांसारिक प्रशंसाओं का आधार कितना थोथा होता है।

ऐतिहासिक नाटकों में १. महामाया २. मजबूर ३. पराजय ४. घूंघट आदि उल्लेखनीय हैं।

मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से "महामाया" एकांकी में जोधपुर के राणा जसवन्तसिंह की पत्नी की वीरता, राजपूती आन, स्वाभिमान और गौरव को स्पष्ट किया गया है। पराजय में पानीपत के तृतीय युद्ध की एक झांकी दी गई है। यह डाक्यूमेंट्री फीचर की शैली में लिखा गया है। "मजबूर" सबसे सफल एकांकी है जिसका कथानक महमूद गजनवी के कन्नौज आक्रमण की एक प्रेम कहानी पर आधारित है। इसमें नाटककार ने प्रेम संबंधी कोमल भावनाओं की मार्मिक अभिव्यंजना की है। उर्दू भाषा का सुन्दर प्रयोग है। रोहणी और कामिनी के प्रेम सम्बन्धी वार्तालाप में कविता की मिठास है, तो कल्पना का सहज स्पर्श भी है। "घूंघट" में [illegible] एक गायिका के पृथ्वीराज चौहान से गुप्त प्रेम की कथा है। इतिहास में मधुर शृंगार का सम्मिश्रण कर दिया गया है। इनके ऐतिहासिक एकांकियों में नए भाव नए विचार और समस्याओं के प्रदर्शन की नवीनता है। जहां इनके सामाजिक एकांकी हमारी आत्मा को कुरेदते हैं, वहां ऐतिहासिक एकांकी मधुर गुदगुदी से भर देते हैं।

श्री अनिलकुमार के रेडियो रूपान्तर "प्रसाद" जी की रचनाओं से [illegible] गए हैं। कहानियों में "देवरथ" और "दासी" के रूपान्तर विशेष [illegible] हैं। "दासी" की अपेक्षा "देवरथ" अधिक सफल है। उपन्यासों में [illegible] "मृगजल" "निशागीत" और 'प्रसाद' की "इरावती" का रूपान्तर किया है। उपन्यास के विस्तृत कथानक को ध्वनि रूपक में [illegible] अनिवार्य पात्रों और घटनाओं के सहारे [illegible] किया है। "मृगजल' जैसे दीर्घकाय उपन्यास को २५ से ३० पृष्ठों की [illegible] शिलालिपि में सजाया गया है। 'इरावती" में घटनाओं को [illegible] में संजोया है। "इरावती और महामाया" का निर्माण यद्यपि रेडियो के माध्यम से हुआ है परन्तु इन दोनों रचनाओं पर मंच शैली का प्रभाव स्पष्ट है। "[illegible]" के प्रथम दो और अन्तिम दृश्यों तथा सम्पूर्ण 'महामाया' एकांकी में मंच [illegible] दर्शन होते हैं। दृश्यों की गति द्वारा [illegible] में [illegible], [illegible] शैली [illegible] फिल्मों में देखा जाता है। फिल्म की यह शैली '[illegible]' के दो दृश्यों में [illegible] प्रयुक्त हुई है।

गीति नाटकों में [illegible] से १. मदन दहन २. [illegible] और ३. [illegible] आदि उल्लेखनीय हैं। 'मदन दहन' प्रतीक गीतिनाट्य है। शृंगार और [illegible]

विश्व की प्रधान शक्तिया हैं, शृगार निर्माण की ओर और सहार पुनर्निर्माण की ओर सकेत करता है। मदन के रूप मे विश्व की विलासिता विरक्त पौरुष के टकराने के लिए उद्धत होती है। परिणामत मदन पौरुष अर्थात् शिव की अग्नि मे जलकर क्षार हो जाता है। "फाग" सगीत रूपक मे स्त्री पुरुषो के सम्मिलित स्वरो मे होली का आगमन, प्रकृति का चारु चित्रण और स्त्री पुरुषो का आह्लाद चित्रित है। "जय भारत जननी" मे कवि अनिल की राष्ट्रीय भावना मुखरित हुई है। सक्षेप मे अनिल के नाटक साहित्य मे विचारो की नवीनता भावो की गहराई और अभिव्यक्ति की सुघराई तीनो की प्रचुरता है। गीति नाट्यों मे भाव पक्ष प्रबल है और प्रकृति का अच्छा वातावरण मिलता है।

प्रो० कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति अतीत भारत की सास्कृतिक तथा ऐतिहासिक परम्परा का पुनरुत्थान और हिन्दू सभ्यता, उच्चादर्श, राष्ट्रीयता एव वीरता के गौरव का स्पष्टीकरण करते हुए प्रो० वृहस्पति एकाकी साहित्य मे रेडियो रूपककार, गीतकार एव व्यग्य नाट्यकार के रूप मे हमारे सामने आते हैं। आपने प्राचीन सस्कृत साहित्य के कथानक एव विश्रुत पात्र लेकर अपने पौराणिक ऐतिहासिक रूपको की रचना की है। कही कही मूल कथावस्तु को थोडा सा परिवर्तित कर तर्क और बुद्धिवादी कसौटी पर सत्यता लाने का प्रयत्न किया है।

आपका रचना काल १९४४ है। प्रारम्भिक श्रव्य रूपको मे आपके "सागर मन्थन" (१९४४) विश्वामित्र (१९४५) महा डित (१९४१) आदि उल्लेखनीय हैं। ये भारतीय सास्कृतिक गौरव के कलापूर्ण चित्र तो है ही, इनमे हमे नाट्यकार के अन्तस्थल और विकसित व्यक्तित्व की निकटतम झाकी भी मिलती है। इनके अनन्तर आपके क्रमश ये एकाकी प्रकाशित हुए हैं —

"कलक" (१९४७) सामाजिक एकाकी में एक कलाकार पर मिथ्या कलक लगाना, बाद मे निरपराध सिद्ध होना चिन्रित है। "वर्तमान" (१९४७) मे आज के समाज मे अध्यापको की हीनावस्था, आर्थिक दयनीयता, विद्यार्थियो की अनुशासनहीनता का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया गया है। "अतीत" (१९४७) मे कुमारिल भट्ट के समय के गुरुकुल आदर्श, अनुशासन शिष्टाचार गुरु के मत की मान्यता चित्रित की गई है। "सास बहू" (१९४३) एक सामाजिक व्यग्य है, जिसमे यह चित्रित किया गया है कि सास द्वारा सताई हुई बहू जब स्वय सास बनती है तो अपनी बहू पर वही अत्याचार करती है, जो स्वय उस पर किए गए थे। "स्वर्ग मे क्राति" प्रहसन मे निर्वाचन के सक्रामक रोग पर व्यग्य किया गया है। कुछ कम्युनिस्ट स्वर्ग मे पहुच जते हैं और चुनाव के लिए क्रान्ति करते हैं। "दड" (१९४८) सामाजिक विधवा का प्रेम तथा उसके लिए समाज द्वारा उस पर दी गई सजा का चित्रण है। "जम के दूत दलाल" (१९४९) मे शेयर मार्केट का प्रभाव स्वर्ग तक पहुचता हुआ दिखाया गया है। "नई धुन" प्रहसन (१९४८) मे रेडियो गीतो के सस्तेपन पर व्यग्य है। "दीपो का

त्योहार" (१९४६) मे विभिन्न युगो जैसे वैदिक युग, विक्रम युग तथा आधुनिक युगों मे दीपावली मनाने के विभिन्न रूपो पर विचार किया गया है। "कविता का सौदा" (१९४९) एकाकी आधुनिक कवियो की आर्थिक विपन्नता पर प्रकाश डालता है। इन सामाजिक एकाकियो मे प्रो० बृहस्पति ने आधुनिक जीवन का उत्पीड़न, असंगतियो तथा विद्रूपताओ को निर्द्वन्द्व होकर देखा है। इनमे नाट्यकार का वह व्यक्तित्व प्रकट हुआ है जिसने समाज की नवीन उलझनो, पूजीवादी शोषण से उत्पन्न नई सामाजिक समस्याओ को देखा है, जो प्राप्त के लिए तपा और जागा है तथा जिसकी अनुभूतियो ने सागर की गहराइयो और शिखरो की ऊचाई नापी है।

ऐतिहासिक रूपको मे आपके १ चाणक्य (१९४६) २ मेघ का पति (१९४६) ३ कला भारती (१९५०) ४ सन्त कबीर (१९५०) आदि प्रमुख है। इन सभी मे कथानक एव दृष्टिकोण की नवीनता एव विचार प्रतिपादन की मौलिकता है। "चाणक्य" मे तक्षशिला विश्वविद्यालय के कुलपति महात्मा चाणक्य का पवित्र हिन्दू साम्राज्य की स्थापना का लक्ष्य प्रकट किया गया है। "मेघ का पति" मे महाकवि कालीदास के कवि जीवन के अतिरिक्त विवादो का आधार लेकर उनके महाकाव्यो की संक्षिप्त समालोचना एव क्रमश कवि का पूर्णत्व की ओर विकास दिग्दर्शित हुआ है। "कला भारती" मे आचार्य श्री हर्ष के जीवन का राजनीतिक पक्ष प्रकट हुआ है। इस रूपक मे आधुनिक समस्याओ का भी यत्र तत्र समावेश हुआ है। "महाकवि" मे धारा-नरेश महाराज भोज के काल मे महाकवि माघ का चरित्र गौरव प्रकट किया गया है। भारत के अतीतकालीन जीवन, उच्चादर्श और संस्कृति का सुन्दर समावेश है। इस प्रकार से ये भारतीय संस्कृति का इतिहास उपस्थित कर देते हैं।

पौराणिक रूपको में निम्न कृतियां उल्लेखनीय हैं। "[illegible]", इनमे महाभारत का वह दृश्य है जब दुर्योधन को गधर्व पकड़ ले गया था, तब पाण्डवों ने उसे मुक्त कराने का प्रयत्न किया था। "अत्याचार का अन्त" (१९४८) मे चित्रित किया गया है कि रावण कैसे बढ़ा, क्यो नष्ट हुआ और अन्त मे उसकी पराजय के क्या कारण थे। "मिलन और वियोग" (१९५०) रेडियो फीचर मे सूर की कविताओ पर आधारित कृष्ण का चरित्र चित्रित किया गया है। इसमे संयोग और वियोग दोनो अवस्थाओ का चित्रण है। "सागर मन्थन" (१९४८) मे शुक्राचार्य से कच द्वारा संजीवनी प्राप्त किए जाने का कारण कल्पित है। विश्वामित्र मे विश्वामित्र का तप द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त करने का प्रयत्न उनका क्रोध, द्वेष और अन्त मे आत्मग्लानि चित्रित की गई है। इनमें सांस्कृतिक चेतना, नैतिक आदर्शवाद और वर्तमान के प्रति असंतोष मिलता है।

प्रो० बृहस्पति उन नाटककारो मे से है जो वर्तमान से असन्तुष्ट है। उनकी दो प्रकार की विचारधाराएं हैं। १. वर्तमान की विषमताओं को नष्ट भ्रष्ट कर नवीन के निर्माण में प्रयत्न, जो उनके सामाजिक एकांकियों का विषय है। २. अतीत संस्कृति

की नैतिक चेतना जिसके, अनुसार वे नवनिर्माण चाहते हैं। यह उनके पौराणिक सास्कृतिक नाटको का विषय है।

आपकी प्रेरणा प्राचीन सस्कृत साहित्य से है। सस्कृत के अनेक नाटको का भाव सौन्दर्य आपने हिन्दी रेडियो रूपान्तरो मे अभिव्यक्त किया है । रेडियो रूपान्तरो मे आपके किरातार्जुनीय (१९५२) प्रतिभा (१९४१) विक्रमोवर्शीय (१९५१), वेणी सहार (१९५१) और शकुन्तला (१९५१) आदि प्रमुख हैं। मूल नाट्यकारो के भाव कौशल, अनुभूति और अन्तर की आकुलता अपनी सम्पूर्ण आभा से इन रूपान्तरो मे उडेल दी गई हैं। पक्ति २ से नाट्यकार की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और गभीर अध्ययन का परिचय मिल जाता।

व्यग्यकार के रूप में वृहस्पति जी की प्रतिभा असदिग्ध है। चलती भाषा मे उच्चकोटि के व्यग्यात्मक प्रहसनो की आप सृष्टि कर सके हैं। बडे भाई (१९४८) क्रम के आठ हास्य रूपको मे आपने शिष्ट व्यग्यात्मक प्रहसनो की सृष्टि की है। इसमे हसी के वातावरण की प्रधानता है।

सक्षेप मे आपने अधिकतर सास्कृतिक पुनरुत्थान की दृष्टि से पौराणिक ऐतिसिक रूपको की सृष्टि की है। तथा प्राचीन नाट्यकारो द्वारा चित्रित मानव जीवन की चिरन्तन विषमताए तथा उनका समाधान खोजना ही अपना ध्येय रखा है। भारतीय सस्कृति को स्वस्थ वुद्धिवादी दृष्टिकोण से समझने के लिए ये रूपक उपयोगी हैं। ध्वनि रूपको मे वातावरण निर्माण के लिए अधिकाधिक ध्वनियो का प्रयोग हुआ है। इनका एक विशेषता सकेतात्मक शैली है। आकस्मिकता का ध्यान सर्वत्र रखते हैं। कथोपकथन प्राय लम्बे हैं। कही-कही स्वगत का प्रयोग किया गया है जो खटकता है। दृश्यो की अधिकता है, जिससे कथानक के विभिन्न सूत्रो का निबन्धन शिथिल हो जाता है। कवि और सगीत विशेषज्ञ होने के कारण आपने गीतो का कलात्मक प्रयोग भी किया है।

श्री रामसरन शर्मा - आपकी विशेषता हास्य व्यग्यमय एकाकी हैं, जिनमें रेडियो फीचर मुख्यत सम्मिलित है। आपकी शैली मे कटाक्ष है, कथोपकथन मे वाक् वैदग्व्यता है और रचनाओ में है, हमारे सभ्य समाज की मूर्खताओ, रूढ़ियो तथा सभ्यता की दुर्बलताओ पर व्यग्यमय प्रहार। आपकी पैनी दृष्टि शिक्षित समाज, सभ्यता की छाया में पनपने वाले शोषण की जडो तक पहुचती है, बाहर से सभ्यता का रग चढाने वाले अपने अन्तराल मे असख्य विद्रूपताओं को समेटे शिक्षित व्यक्तियो, सस्थाओ तथा दृष्टिकोणो की यथार्थता आपने चित्रित की है। आप वास्तविकता खोल देते हैं और सभ्यता की विद्रूपताओ पर दूर तक प्रहार करते हैं।

आपके १ बीमार बीवी २ भूतो की दुनिया ३ बेचारी चुडैल ४ पत्रकारिता ५ वकालत आदि हास्य व्यग्यमय प्रहसन प्रकाशित हुए हैं। शर्मा जी का हास्य शिष्ट है। आपने अधिकतर सफल व्यग्यपूर्ण चित्र (caricature) प्रस्तुत किए

हैं। आपका हास्य विशेष परिस्थितियो से उत्पन्न होता है, जिसमे पात्रो को इस प्रकार सजाया जाता है कि वे अनफिट से प्रतीत होते है। शिष्ट हास्य तरग आदि से अन्त तक प्रवाहित होती रहती है। आपकी सबसे बडी विशेषता परिस्थिति सृजन सामर्थ्य है। "बेचारी चुडैल" मे चुडैल को तथा "वकालत" मे वकील बुद्धिसहाय को ऐसी विपरीत तथा विषम परिस्थितियो मे फसा दिया गया है कि हास्य की उत्पत्ति होती है। रेडियो टैकनीक की दृष्टि से ये सफल हैं।

अन्य रेडियो एकांकीकार

अपने रेडियो एकाकियो मे श्री हरिश्चन्द्र खन्ना, अग्रेजी के नाट्य सिद्धान्तो का अक्षरश पालन कर रहे है। आपके नाटक मुख्यत रेडियो के लिए लिखे गये हैं। इनमे दो विशेषताए विशेष रूप से आकृष्ट करती हैं। १. वस्तु और वातावरण की एकता का पूर्ण निर्वाह, २ प्रकृति का प्रतीकवाद जो कि ग्रीक कला के प्रभाव के फलस्वरूप आपकी कृतियो में परिलक्षित है। आप वातावरण का प्रभाव अपने पात्रो पर दिखाते हैं तथा मार्क्सवाद मे विश्वास करते हैं। आपके नारी पात्र मनोवैज्ञानिक गहराइयो से चित्रित हुए हैं। प्रकृति मानव की वृत्तिया, आन्तरिक मनोभाव, तथा गुप्त इच्छाओ की प्रतिच्छाया प्रस्तुत करती दिखाई गई है। नाटको की पृष्ठभूमि सुविस्तृत रहती है। प्रकृति के नाना प्रतीक रूपो का अच्छा निर्वाह इनमें हुआ है। आपके निम्न एकाकी विशेष प्रसिद्ध हैं: १ स्वयवर २ अपमान ३. मुक्ति के पथ पर ४ अचैतन्य। इनमे सभ्यता की कमजोरियो पर अच्छा व्यग्य मिलता है। "अचैतन्य" मे सभ्य संसार की अनेक विद्रूपताओ को उभारा गया है। खिडकी और चिमनी प्रतीक के रूप मे चित्रित हैं। आपका दृष्टिकोण विश्लेषणात्मक है। आपकी आपकी सबसे बडी विशेषता यह है कि आपने विदेशी नई पुरानी कलाकृतियो को भारतीय जामा पहिनाकर बडी सफलता से अपने एकाकियो मे उतारा है। यह विदेशीपन उनका गुण भी है दोष भी। उनकी कमजोरी सवादो मे लक्षित होती है, जिनमें क्लिष्ट और सरल भाषा का भेद नही मालूम होता है, अनुवाद जैसा आभास रहता है।

श्री भारतभूषण अग्रवाल: आपकी सबसे प्रसिद्ध रचना 'पलायन" (१६४७) प्रतीक मे प्रकाशित हुई थी। १. तत्पश्चात् २ अभिमान ३. भाग्यतारा ४. बेटी की विदा ५ युग युग या पांच मिनट ६ लज्जा ७ बीमार ८. जीवन की ओर ६ रत्नावली १०. महाभारत की सांझ ११. परछाईं (१९५५) आदि प्रकाशित हुए हैं। आप रेडियो एकांकी भी बडी सफलता से लिखते हैं। आपके रेडियो एकांकियों मे १ भादों की रात २ गगा की माता ३ उन दिनों ४. प्रश्नों की गूंज आदि लोकप्रिय हैं। आपके विचार गहन, प्रतिपादन शक्तिशाली, हास्य सौष्ठव से परिपूर्ण तथा परिस्थिति सृजन सामर्थ्य उत्तम है।

पटना रेडियो से श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा मुक्त ने अनेक सफल सामाजिक एकांकी प्रसारित किए हैं। मुक्त जी के नाटकों मे हास्यों की सरिता और व्यग्यात्मक

की जटिलता तथा लम्बाई है। उन्होने अपने रेडियाई एकाकियो मे चित्रित किया है कि आज की आर्थिक विषमता ने हमे देहधर्मी बना दिया है, यद्यपि सस्कारत हम मनोधर्मी या आत्मधर्मी रहे हैं। उनके कई एकाकियो जैसे "चूडिया, पुकार, घटाए प्रतिशोध", आदि मे दिखाया गया है कि सभ्यता के विकास ने मनुष्य के जीवन को कृत्रिम बना दिया है तथा मनुष्य मनुष्य के मध्य अलघ्य दीवारे खडी कर दी हैं। वे यह मानते हैं कि प्राचीन को नष्ट करके नवीन की प्रतिष्ठा से मनुष्यता का यथार्थ कल्याण नही हो सकता, प्रत्युत इसके लिए प्राचीन के साथ नवीन का सामजस्य अपेक्षित है। अपने एकाकियो मे मुक्त जी ने इन्हीं सामाजिक और सास्कृतिक समस्याओ की अवतारणा की है। वे मानव को पशु नही मानते। उसमे देवत्व का आरोप भी नही चहाते, क्योकि वे मनुष्यता को ही सबसे बडी चीज मानते हैं। इसी से उन्हें इष्ट है कि मनुष्य दैहिकता के धरातल से ऊपर उठ कर सच्चे अर्थों मे मनुष्य बन सके और भेद भाव और ऊच-नीच की विषमता से ऊपर उठ सके आप हास्य में सफल नही हो सके। दो एक जो प्रयत्न हास्यात्मक एकाकी लिखने मे किए उनमें वे गम्भीर हो गए। इसी से आपने प्रहसन बिल्कुल नही लिखे हैं। एकाकी और रूपक दो सौ से अधिक लिखे हैं, जिनमे कुछ तो सामाजिक हैं और अधिकाश मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा कुछ विशेषत देहात वालो के लिए अथवा स्त्रियो, बच्चो के लिए लिखे गये हैं। टैकनीक सबधी कोई भी विशेषता अभी स्पष्ट नही होती, भिन्न भिन्न प्रयोग मात्र किए हैं और यह प्रयोगो का क्रम अभी चल रहा है। कथानक निर्माण की ओर आप विशेष प्रयत्नशील हैं। मूलत मुक्त जी कवि हैं। इसलिए उनके एकाकियो मे रोमानी सौंदर्य की द्युति रहती है।

स्व० गणेशप्रसाद द्विवेदीजी ने महत्वपूर्ण सामाजिक रेडियो एकाकियो का निर्माण किया था। "सोहाग बिन्दी" के एकाकियो के पश्चात् हमे उनके "कामरेड (१९३९) दगा, परीक्षा, रपट, टैगोर दिवस, रिहर्सल, धरती माता (१९४३)" इत्यादि एकाकी मिलते हैं। आपके दो रेडियो एकाकी प्रसिद्ध हैं। १ हीरे की लौंग और २ पिता पुत्र। इनके अतिरिक्त आपके स्त्री (१९४२), परीक्षा (१९४३), रिहर्सल (१९४३), कामरेड आदि रेडियो एकाकी लखनऊ रेडियो केन्द्र से प्रसारित किए गए हैं।

श्री अमृतलाल नागर रस का पोषण करते हुए जीवन के सुविकास करने को आधार मानकर अपने रेडियाई एकाकी लिखते रहे हैं। यही उनका आदर्श है। आपके नाटको मे विभिन्न समस्याए हैं जैसे साहित्यिक, सास्कृतिक, सामाजिक, दार्शनिक एव मनोवैज्ञानिक।

"उजाले से पहले" मोहनजोदारो की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि विनिर्मित सुन्दर कृति है। इसमे इतिहास स्वय एक पात्र बनकर धन और ज्ञान के मद का सघर्ष दिखाता है। "भारतेन्दु कला" में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की विभिन्न साहित्यिक

कृतियों के द्वारा उनके व्यक्तित्व का निरूपण किया गया है। "गूंगी" एकांकी समाज की उन लाखों देवियों का प्रतीक है जो बिना जबान खोले समाज के अत्याचारों को सहन करती हैं। टैकनीक की दृष्टि से भी इन एकांकी में एक नई परम्परा स्थापित की गई है। रेडियो में जहां स्वर से ही चित्र बनते हैं, नाटक की प्रमुख नायिका गूंगी है।

मनोवैज्ञानिक एकांकियों में "उतार चढाव", "चक्करदार सीढ़ियां" और "अंधेरा" प्रमुख हैं। "उतार चढाव" में यह चित्रित किया गया है कि परिस्थितियां और इन्सान दोनों ही एक दूसरे को परिवर्तित करने में सामर्थ्य रखते हैं। उनका संघर्ष ही जीवन का उतार चढाव है। "चक्करदार सीढ़ियां" और "अंधेरा" में बड़े नाटकीय रूप में पागलों के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया गया है। "दीपदान" "महानिशा", और "रचना के प्रभु" दार्शनिक रूपक हैं। इनके अतिरिक्त "प्रवीर गुन्दान" में [illegible] और कर्म-संघर्ष की समस्या चित्रित की गई है। "सीता," आदर्श और वास्तविकता के दो रूप उपस्थित करता है। सीता का अभिनय करने वाली एक अभिनेत्री का इसमें मानसिक संघर्ष चित्रित किया गया है। "पर्दे के पीछे" कला और संस्कृति का नाश करता हुआ मानव संस्कृति को पतन के मार्ग पर ले जाने वाले भारतीय फिल्म जगत की एक झांकी प्रस्तुत करता है। "चन्दनवन" एकांकी कालीदास और शेक्सपियर की पुस्तकें तथा बुद्ध, ईसा और गांधी की मूर्तियों को [illegible] द्वारा रूम की सजावट का सामान मान कर सभ्यता और संस्कृति की डींग हांकने वाले समाज का [illegible] है।

इनके अतिरिक्त आपके कुछ हास्य रसात्मक एकांकी भी [illegible] हैं। ऋग्वेद तथा महाभारत काल के सामाजिक जीवन में नारी का स्थान निरूपण करते हुए दो संक्षिप्त एकांकी लिखे हैं। अमृतलाल नागर की प्रतिभा बहुमुखी है।

रेडियो एकांकियों के भेद तथा उपलब्ध साहित्य

शिल्प की दृष्टि से रेडियो एकांकियों के १. [illegible] २. [illegible] ३. [illegible] ४ फैंटेसी ५. मोनोलोग ६. [illegible] और ७ [illegible] आदि भेद [illegible] हैं। संगीत रूपक अथवा गीति नाट्य के अतिरिक्त [illegible] कुछ एकांकियों में गीतों और पद्य का भी उपयोग किया गया है। हिन्दी ध्वनि नाटककारों ने इनमें से प्रायः सभी प्रकारों को [illegible] लिखा।

रेडियो एकांकी इन वर्षों में छोटे बड़े सभी प्रकार की [illegible] गई हैं और सर्वांगीण कार्य हुआ है। [illegible] समाज में [illegible] तथा समस्याओं पर विचार हुआ है। [illegible] पौराणिक परिस्थिति [illegible] वर्तमान जीवन [illegible] का निर्माण हुआ है। [illegible] वैज्ञानिक [illegible] दुर्नीतियां, राजनैतिक स्थिति, [illegible] रेडियो एकांकियों की विषय वस्तु बनी है। [illegible]

जिनमे किसी मत, धर्म, सप्रदाय या दल का विरोध होता हो। अश्लील एव भारतीय सस्कृति की विरोधी विषय वस्तु को यहा आश्रय नही दिया जाता।[1] कल्पित नामो का सहारा लिया जाता है जिससे किसी की व्यक्तिगत मानहानि न हो। सशक्त कथानक, गत्यात्मकता, नाटकीय एकता, ध्वनि, प्रभाव, सरल विकासक्रम, कुशल चरित्र अकन आदि तत्वो पर विशेष ध्यान रखा जाता है।

इस क्षेत्र मे सर्वश्री डा० रामकुमार वर्मा, उदयशकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मी नारायण मिश्र, विष्णु प्रभाकर, प्रभाकर माचवे, भृ ग तुपकरी, रामपूजन मलिक, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, गोपाल शर्मा, रेवतीशरन शर्मा, रामचन्द तिवारी, विशम्भर मानव, चिरजीत, राजाराम शास्त्री, अमृतलाल नागर और प्रफुल्लचन्द्र ओझा मुक्त द्वारा विशेष उल्लेखनीय कार्य हुआ है। प्रत्येक एकाकीकार के रेडियो एकाकियो का विस्तृत विवेचन यथास्थान किया जा चुका है।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य रेडियो एकाकीकार ऐसे भी जिनकी फुटकर रचनाए प्रसारित होती रही हैं। जैसे श्री विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त के सात रेडियो एकाकी प्रसारित हुए हैं। शकुन्तला, सम्राट अशोक, हारजीत, भाई बहन, मर कर भी अमर, सिराजुद्दौला और कुवरसिह आदि। ये एकाकी अधिकाश पटना रेडियो से प्रसारित हुए हैं। इनमे नाटकीयता तथा साहित्यिकता साधारण स्तर की है, दृश्यो की अधिकता और कथानक मे अनुचित विस्तार है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के "ताजमहल के आंसू" सग्रह के ऐतिहासिक एकाकियो के अधिकाश एकाकी इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली, पटना स्टेशनो से प्रसारित और सर्वत्र प्रशसित हो चुके हैं।[2] आपका पौराणिक एकाकी "शरणागत" रेडियो नाटक प्रतियोगिता में पुरस्कृत हो चुका है।

श्री जयनाथ नलिन के १ फिलोस्फर २ मेहमान ३ कन्वेंसिग ४ सागर तट पर ५ फिल्मी कहानी ६ डिमोक्रेसी ७ चित भी मेरी पट्ट भी मेरी ८ महालक्ष्मी ९ चोली १० बाबू उधारचन्द ११ लाटरी १२ वर निर्वाचन १३ नेता (१९५३) आदि रेडियो एकाकी उल्लेखनीय हैं। इनमे एक व्यग्य है पर इस व्यग्य के अन्तर में अपेक्षापूर्ण तटस्थ ग्रह नही, एक रागात्मक सवेदना की शीतल धारा बहती है।

लखनऊ रेडियो से प्रो० बृहस्पति रूपककार, गीतकार एव व्यग्य लेखक के रूप मे सबधित रहे हैं। कुछ समय तक आप सस्कृत नाटको के कुछ चुने हुए अकों का निर्देशन एव प्रस्तावना भी करते रहे हैं और सस्कृत के नाटको के लिए उपयुक्त नेताओ का अभिनय भी। वस्तुत रेडियो टैकनीक पर आपका पूर्ण अधिकार है। आपके सागर मथन (१९४५), विश्वामित्र (१९४६), दक्ष (१९४६), कलक (१९४७),

---

१ देखिए सिद्धनाथ कुमार कृत "रेडियो नाट्य शिल्प" पृ० ६३।

२ देखिए डा० लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'ताजमहल के आंसू', भूमिका।

अतीत (१९४७), वर्तमान (१९४७), सात वह (१९४७), महापंडित (१९४६), अत्याचार का अन्त (१९५०), मिलन और वियोग (१९५०), सागरा (१९४६), मेघ का कवि (१९४६), कला भारतीय (१९५०), सत कबीर (१९५०) आदि एकांकी सफलतापूर्वक प्रसारित हो चुके हैं। इनमे भारतीय संस्कृति का गौरव, उच्च आदर्श तथा कलात्मक अभिरुचि के चित्र खींचे गए हैं।

रेडियो रूपक : रेडियो रूपक वह रचना है, जिनमे एक प्रवक्ता या सूत्रधार एकांकी के कथानक एवं वातावरण का परिचय देता चलता है। मध्य मे आने वाले प्रसंगो को नाटकीय अभिनय के द्वारा व्यक्त किया जाता है। मध्य के कथासूत्र को सम्बद्ध करने के लिए सूत्रधार द्वारा वर्णन से काम निकाला जाता है, जिसमे सम्पूर्ण कथानक एक सूत्र मे आबद्ध हो जाता है। रेडियो रूपक का प्रयोग प्रायः उपन्यास, महाकाव्य, बडे नाटको, पाश्चात्य एवं भारतीय लम्बी कहानियो के रेडियो रूपान्तर करने मे किया जाता है। इनके अतिरिक्त उनके माध्यम से हम किसी महापुरुष का जीवन चरित्र उपस्थित कर सकते हैं, प्रदेश अथवा देश विदेश के लोगो की सभ्यता, संस्कृति, एवं लोक जीवन का परिचय दे सकते हैं। ऐतिहासिक महत्व के स्थानो का इतिहास बतला सकते हैं। आविष्कार विशेष का इतिहास कह सकते हैं, संस्था विशेष का परिचय दे सकते हैं, तात्पर्य यह कि सब विषयो पर रूपक लिखे जा सकते हैं।

रूपको मे दिखाया कम जाता है, निर्देश अपेक्षाकृत अधिक रहता है और वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि श्रोता मूल कथानक को परस्पर जोड़ कर उसकी रचनाओ का आनन्द ले सकें। इनमे सूत्रधार का कार्य प्रमुख होता है और रंगमंच निर्देश कम होते हैं। यदि रूपको को रंगमंच पर अभिनय करना हो तो उनमें आवश्यक परिवर्तन कर सूत्रधार का भाग भी अन्य पात्रों के कथनों में समाविष्ट करना होगा। ध्वनि रूपक मे नाटकगत काल, स्थान और कार्य संकलनो का निर्वाह सूत्रधार की नियोजना से कर लिया जाता है। बहुकाल तथा बहुस्थान सम्बन्धी वस्तु भी अल्प समय मे सूत्रधार द्वारा स्वल्प सीमा में वर्णित होती है। रंगमंच पर जो प्रभाव सीन सीनरी का पडता है, वही प्रभाव सूत्रधार की भूमिका या [illegible] द्वारा होता है। यह शैली विशेष लोकप्रिय हुई है और आकाशवाणी ने विभिन्न केन्द्रों से सामयिक विषयों पर [illegible] रूपक प्रसारित हुए हैं।

आल इंडिया रेडियो के अनेक सुन्दर और उपयोगी रूपक '[illegible]' कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रसारित हुए हैं, जिनके द्वारा राजनीतिक [illegible] तथा [illegible], सांस्कृतिक, आर्थिक पुनर्निर्माण के उद्योग किए गए हैं। [illegible] के साहित्यिक रूपक विशेष उल्लेखनीय हैं। "[illegible]" '[illegible]' और "[illegible] मोर्चो" 'कुरुक्षेत्र' "[illegible]" इनकी [illegible] की [illegible] है। [illegible] ध्वनि रूपों की सभी टेक्नीकों का उपयोग करने की चेष्टा की है। [illegible], निजी शैली और [illegible] के साथ [illegible] [illegible] के [illegible]।

रचना के आस्वाद के साथ प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। "मेघदूत" और "विक्रमोर्वशी" रूपक हिन्दी काव्य मे सफल रेडियो रूपान्तर है। श्री उदयशकर भट्ट, श्री विष्णु प्रभाकर, श्री रामचन्द्र तिवारी, श्री प्रभाकर माचवे, श्री विशम्भर मानव, अमृतलाल नागर आदि ने इस शैली मे अनेक सफल रचनाए लिखी हैं। इनकी शैली डाक्यूमेंट्री फिल्मो मे मिलती है। इनका उद्देश्य मूलत प्रचारात्मक और परिचयात्मक हैं।

श्री उदयशकर भट्ट ने राष्ट्रीय नव निर्माण तथा सामयिक समस्याओ को दृष्टि मे रख कर देश मे जागृति करने के लिए विशेष रूप से अनेक ज्वलत समस्याओ को अपने रूपको मे उभारा है। गाधीवादी विचारधारा को आपने विशेष रूप से अपने रेडियो रूपको का विषय बनाया है। सास्कृतिक पुनर्निर्माण सम्बन्धी आपके रूपको मे १ गाधी जी का राम राज्य २ धर्म परम्परा ३ एकला चलो रे ४ अमर अर्चना ५ वन महोत्सव ६ हिमालय के शिखर आदि रूपक विशेष साहित्यिक सौष्ठव से युक्त हुए हैं।

श्री विष्णु प्रभाकर के रूपको की सख्या काफी है। इस क्षेत्र में आपका सबसे प्रसिद्ध रूपक "हमारा स्वाधीनता सग्राम" (१९५०) है, जिसके छ रूपको के अन्तर्गत भारतीय आजादी का क्रमिक इतिहास दिया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न सामयिक समस्याओ पर श्री विष्णु के अनेक रूपक प्रसारित हुए हैं, जैसे १ यू० एन ओ० और युनेस्को २ सयम ३ स्वतत्रता का अर्थ ४ मजदूर और राष्ट्र चरित्र ५ काम ६ सर्वोदय ७ राष्ट्र चरित्र ८ सहिष्णुता ९ शिक्षा १० नारी ११ अनुशासन १२ नया समाज १३ काग्रेस और सास्कृतिक उन्नति १४ पडोसी १५ समाज सेवा १६ राजस्थान १७ मध्यभारत १८ विन्व्य प्रदेश १९ बच्चे और उनके माता पिता २० नया काश्मीर २१ जमीदारी उन्मूलन २२ पचायत आदि। इन रूपको मे श्री विष्णु के समाज सुधार, देश का पुनर्निर्माण और आदर्शवाद की प्रवृत्तिया मुख्य रूप से मुखरित हुई हैं। ये केवल शुष्क प्रचार की चीजें नही हैं, प्रत्युत इनमें हृदय को स्पर्श करने के गुण तथा लक्ष्य के प्रति तन्मयता है। विष्णु जी देश की सामयिक समस्याओ तथा लोक जीवन मे जहा गहरे पैठते हैं, वहा समस्याओ का हल और विस्तार भी खोजते दिखाई देते हैं। वे विचारक के रूप मे समाज के नवनिर्माण की ओर प्रगतिशील हैं और सामाजिक यथार्थ उनकी पृष्ठभूमि है। यथार्थ की अपेक्षा आदर्श की ओर उनका झुकाव विशेष रूप से दिखाई पडता है।

श्री प्रभाकर माचवे ने अनेक सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक विषयो पर आधुनिक सभ्यता, सस्कृति, शिक्षा, सामाजिक, प्रदर्शन, रोमास, गुप्त मनोवाञ्छनाओ, दलित अनुभूतियो का विवेचन करते हुए अनेक मनोवैज्ञानिक रूपक लिखे हैं। श्री माचवे का क्षेत्र मनोविज्ञान है। आपने मानव की अन्तश्चेतना तथा उसके गुप्त मन व्यापारो, मनोभावो, अतृप्त इच्छाओ एव मानसिक घात-प्रतिघातो का गतिमय तथा द्वन्द्वात्मक

चित्रण किया है। उनकी कृति अन्तर्मुखी है, जो मानसिक जटिलताओं, मनोराग, आन्तरिक भेद भाव, असंतोष, असफल अभिलाषाओं, हाहाकार, पीड़ा, प्रमाद, अद-विश्वास, अतृप्त यौवन, सन्देह, घातक तृष्णा, निराश आकांक्षाओं, सन्निपात का विश्लेषण करती हैं। उन्होंने विकारग्रस्त आधुनिक मानव के अन्तर को उधेड़ कर दुखती नसों पर ऊंगली रख दी है। आज के मनुष्य का मनोजगत उन्होंने अपने रूपकों में चित्रित कर दिया है। "गली के मोड़ पर" के तीन रूपकों में श्री माचवे ने समाज तथा मानव की अन्तर्प्रवृत्तियों की मनोवैज्ञानिक आलोचना की है। इन तीनों के रूपकों में स्थूल कथानक या घटनावलि नहीं है। प्रत्युत श्री माचवे ने ऐसे मनोवैज्ञानिक के रूप में सामाजिक जीवन का विश्लेषण किया है, जो तटस्थ होकर हमारी दुनिया को देखता है। "यदि हम वे होते" क्रम के रूपकों में नाट्यकार ने आधुनिक रोमांटिक युवक-युवतियों के दिमाग की मनोवृत्तियों को व्यंग्यात्मक रूप में साकार कर दिया है।

डा० रामकुमार वर्मा के तीन रूपक विशेष उल्लेखनीय हैं। १ प्रसाद की कला २. ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ३ स्वागत है ऋतुराज। प्रथम रूपक में वर्मा जी ने प्रसाद के समस्त नाटकों की झांकियां अभिनय के रूप में प्रस्तुत की हैं। प्रतिन्यास के रूप में प्रसाद के नाटकों पर समीक्षात्मक दृष्टि से प्रकाश भी डाला है। दूसरे रूपक में अमर सन्तकवि कबीरदास का जीवन परिचय प्रदान किया गया है। तीसरे रूपक में वसन्त ऋतु के आविर्भाव और उन्मद प्रकृति के मनोरम रूप को अभिव्यक्त करती हुई विभिन्न हिन्दी कवियों के मार्मिक उद्धरणों द्वारा झांकियां प्रस्तुत की गई है। ये रूपक काव्य के उच्चतम गुणों से परिपूर्ण हैं।

संगीत रूपक : रेडियो रूपक में जब प्रवक्ता अथवा पात्र या दोनों ही पद्य या प्रगति में घटनाओं का वर्णन तथा संगीत का बाहुल्य होता है, मनोभावों को व्यक्त करने वाले गीतों या पृष्ठभूमि में मूल भावना को उत्तेजित करने वाला वाद्य संगीत होता है, तो संगीत रूपक का आविर्भाव होता है। संगीत रूपक में उच्च काव्य के गुण, भावनाओं का बाहुल्य, गीति तत्व की प्रधानता, उत्कंठित मादकता, कल्पना की गहनता और अनुभूति की सरलता रहती है। इसमें यत्र-तत्र जड़े हुए मर्मस्पर्शी गीतों का विशेष महत्व है जो प्रवक्ता के कथन द्वारा परस्पर जुड़े रहते हैं और रूपक की पृष्ठ-भूमि में निरन्तर झिलमिल होती हुई मूल भावना को उद्दीप्त करते हैं। संगीत रूपकों में वास्तविकता रहती है, पर यह वास्तविकता तथ्यों की नहीं भावनाओं और अनुभूतियों की वास्तविकता होती है।

संगीत रूपकों की रचना रेडियो के प्रतिनिधि माध्यम रूप में भी की जाती है। संगीत रूपकों में गीति नाट्य या पद्य नाट्य और ऐसे ही अन्य भी सम्मिलित रहते हैं, किन्तु पद्य रूपक संगीत रूपक से पृथक् चीज है। पद्य रूपक में कविता के माध्यम से काव्यात्मक सम्पूर्ण कथानक प्रस्तुत करता है और संगीत को कोई विशेष स्थान प्राप्त नहीं रहता। वर्णन, वातावरण निर्माण, कथानक की एकसूत्रता का निर्वाह और

कथोपकथन सब पद्य में होता है। कल्पना एव भावना का वह आवेग इसमे नही होता, जो सगीत रूपक का प्राण है। सगीत रूपक रेडियो रूपक की एक नई शैली है और इसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

सामान्य रूपक तथा सगीत रूपक के मध्य मे पद्य रूपक या गीति नाट्य या भाव नाट्य की एक शैली अपना पृथक् स्थान रखती है। प० उदयशकर भट्ट के भाव नाट्य, श्री भगवतीचरण वर्मा के कुछ सफल रूपक, श्री आरसीप्रसादसिंह, श्री सिद्धनाथ कुमार, केदारनाथ मिश्र प्रभात आदि के गीति नाट्य इस श्रेणी मे आते हैं। श्री चिरजीत का "देव और मानव" इस शैली मे लिखा गया है।

सगीत रूपकों के क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय दो नाट्यकार हैं, जिन्होंने इसी शैली को अपनी भावनाए मुखरित करने का साधन बनाया है। प० सुमित्रानन्दन पत तथा चिरजीत। प० सुमित्रानन्दन पत ने अनेक मर्मस्पर्शी सगीत रूपको का सृजन किया है, जैसे "फूलो का देश, मानसी, विद्युत वसना, रजत शिखर, शरद यामिनी" इत्यादि। इनमे उच्च काव्य तथा सगीत के सभी गुण मौजूद हैं। प्राय सभी साकेतिक पद्धति पर लिखे गये हैं और इनमें नवयुग का सन्देश भरा हुआ है। "शरद यामिनी" नामक सगीत रूपक मे आपने प्राकृतिक सौंदर्य का बडा ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। ग्रीष्म, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त आदि ऋतुए इसके प्रमुख पात्र हैं। रूपक का उद्देश्य इन मौसम' मे होने वाले वातावरण का सगीतमय चित्रण करना है। वर्णन मे चित्रोपमता के गुण विद्यमान हैं।

श्री चिरजीत के सगीत रूपको की माग दिल्ली रेडियो पर अधिक रही है। स्वभावत कवि और सगीत प्रेमी होने के कारण आपकी प्रतिभा का प्रकर्ष सगीत रूपकों मे हुआ है। भारतीय सगीत का आपने गहन अध्ययन किया है। दिल्ली रेडियो से सनातन सगीत नाम से जो आठ नौ भागो मे सगीत कार्यक्रम प्रसारित हुआ था तथा जिसमे भारतीय सगीत के आरम्भ व विकास की खोज की गई थी, वह आपके कवि हृदय का प्रस्फुटन था। जहा तक काव्य साधना का सम्बन्ध है श्री चिरजीत की गणना नई पीढी के प्रमुख उदीयमान कवियो मे है। "चिलमन" आपका काव्य सग्रह सर्वत्र प्रशसित हुआ है। रेडियो के लिए सगीत रूपक सृजन की यह पृष्ठभूमि है।

श्री चिरजीत के पश्चिमी शैली के ओपेरा के ढग के कुछ सगीत रूपक काफी सफल रहे हैं। तीन सगीत रूपक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १ "मधु मिलन" जिसमे प्राचीन गणराज्यो के वातावरण मे एक नर्तकी और चित्रकार की प्रेम गाथा है, २ "प्रथम दर्शन" जिसमे दुष्यन्त एव शकुतला की प्रथम भेंट का सगीतमय वर्णन है, ३ "जीवन साथी" जिसमे एक ग्रामीण रूपसी के आत्म बलिदान की कथा है। पश्चिमी ओपेरा के ढग का एक लम्बा रूपक "शहनाई के आसू" बडी सफलता से प्रसारित हो चुका है। भारत के प्रसिद्ध सगीतकार श्री रविशकर ने उसका सगीत निर्देशन किया है। आपके सगीत रूपको की विशेपता यह है कि उन्होंने पश्चिमी ओपेरा

की मर्यादाओ, अभिप्रायो तथा शैलियों का सफलतापूर्वक पालन किया है। आपके सगीत रूपको मे "मेघदूत" (१६४६) उल्लेखनीय है। कालीदास की रचना को सगीत रूपक के रूप में प्रस्तुत करने का यह प्रथम सफल प्रयास था। बाद के मेघदूत रचयिताओ को इससे प्रेरणा प्राप्त हुई है। सगीत रूपको मे आपने कई मौलिक कथाओं की भी सृष्टि की है तथा उनमे उल्लेखनीय हैं, हिमानी, छवि बन्धन, झंकार, पत्र और पत्थर आदि।

श्री गिरिजाकुमार माथुर ने भी कई सगीत रूपक लिखे हैं जो लखनऊ रेडियो से सफलतापूर्वक प्रसारित हुए हैं। "मेघ की छाया, ऋतु सहार, इन्दुमती, रक्ति-मुक्त, धरा मुक्त, मदनोत्सव, बकुल मुकुल" आपके संगीत रूपक विशेष सफल रहे हैं। श्री माथुर सफल कवि हैं, अतएव उनके सगीत रूपको मे विचार प्रौढ़ता, प्रतीकात्मकता और गभीर चिन्तन के साथ मीठे सगीत का प्राधान्य है। मेघ की छाया और ऋतु सहार कालीदास विरचित नाटको के आधार पर रचे गए हैं, किन्तु इनमे संगीत की स्वर लहरी से मधुर दृश्यो का चित्रण किया गया है। "मदनोत्सव" वसन्त का प्राचीन नवीन ऋतु चित्र है। इसी प्रकार "बकुल मुकुल" वर्षा के मनोरम लीलोत्सव पर आधारित प्राकृतिक सुषमा से प्रेरित सगीत रूपक है।

रेड़ियो प्रहसन और झलकियां रेडियो पर छोटी छोटी पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक घटनाओ को व्यंग्य विनोद हास्य या परिहास द्वारा प्रस्तुत किया जाता रहा है। झलकियो के अन्तर्गत पाच-पांच छः-छः मिनिट की छोटी-छोटी नाटिकाएं रहती हैं जिन्हें मध्य में प्रवक्ता से नैरेशन द्वारा परस्पर सबद्ध कर दिया जाता है। ये लघु नाटिकाएं प्रायः हास्य व्यग्य से पूर्ण होती हैं। प्रहसन अपेक्षाकृत इनसे अधिक लम्बे होते हैं। इन प्रहसनो का अभिप्राय समाज में प्रचलित विचारों तथा रूढिगत विद्रूपताओ को उभारकर उपहास का विषय बनाना है, जिससे समाज उनका खोखलापन, व्यर्थता और त्रुटियां अनुभव कर सके तथा उनका परित्याग कर दे। कुछ प्रहसनो मे जीवन के हल्के-हल्के पक्षो का ग्रहण होता है जिनसे मनो-रजन होता है। प्रहसन रेडियो पर विशेष लोकप्रिय होता जा रहा है। इस क्षेत्र में सर्वश्री उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, जगन्नाथ नलिन, निरञ्जन, प्रकाश [illegible] रामचन्द्र तिवारी, रामसरन शर्मा, कल्याण प्रसाद त्रिपाठी, एम. [illegible] शर्मा आदि का कार्य विशेष उल्लेखनीय है।

पुराने नाट्यकारों में श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने रेडियो [illegible] को [illegible] से सवारा है। "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ [illegible], नाटिका [illegible] मानिक, तौलिए, पन्ने के [illegible] समय का [illegible], [illegible]" आदि उनके प्रहसन बड़े सफल रहे हैं। [illegible] और [illegible] अभिव्यजना नाटकीय [illegible]। [illegible] एक [illegible] [illegible]

भूली याद। नाटकीय सभावनाओ से सम्पन्न परिस्थितिया उनसे अपने आप टकरा जाती हैं। इनके प्रहसनो मे परिस्थितियो का अनूठा चुनाव है। "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ, सयाना मालिक, तौलिए, मस्केबाजो का स्वर्ग" आदि मे ऐसी परिस्थितिया चित्रित की गई हैं कि सभ्य ससार की अस्वाभाविकता, विचित्रता और विद्रूपता का अनायास प्रदर्शन हो जाता है। कुछ प्रहसन चरित्रो की विचित्रताओ, त्रुटियो, अधूरापन, विशेष प्रकार की आदतो, मनोवेगो की विद्रपताओ को लेकर लिखे गए हैं, जैसे बतसिया, कइसा साब कइसा आया, कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन आदि। इनमे प्रत्येक प्रहसन के हास्य का आधार चरित्रो की त्रुटियो का अध्ययन है। इनमें अतिरजना न होकर, यथार्थ जीवन की कमजोरियो को उपहास पर बना दिया गया है। उनकी पैनी दृष्टि दैनिक जीवन मे ही अट्टहास की सामग्री खोज निकालती है और उनकी लेखनी उन झाकियो को एक ऐसे पट पर हूबहू उतार देती है, जिस पर मुस्कान की महीन सिलवटें खेलती रहती हैं मानो शरद्पूनो का हसता चाद ललित और नन्ही लहरियो के पर्दे पर प्रतिबिम्बित होता हो। अश्क की विनोद भावना वार्तालाप के विद्रूप या पात्रो के भोंडे व्यवहार के रूप मे प्रकट नही होती, बल्कि चरित्र और कार्य सम्पादन की पृष्ठभूमि के रूप मे व्यग्य की प्रतीति एक महीन वातावरण के रूप में होती है, जिसके साधन हैं हल्की सी फब्तिया, साकेतिक कार्य और सम्पादन और पात्रो की अनजान कमजोरियो का थोडा बहुत उभार। अनेक प्रकार के पात्र जिनमे कुछ सनकी हैं, कुछ नासमझ बेवकूफ जिद्दी, कुछ भावुक और विचित्र। उनकी कमजोरी इन प्रहसनो मे मूर्तिमान हो उठी है। इनमे अनुभूति की सचाई, नाटकीय परिस्थिति को पकडने मे सजगता और चरित्र अध्ययन की बारीकी है।

प्रो० बृहस्पति सफल रेडियो प्रहसनकार हैं। पुराने पौराणिक वातावरण मे नए युग की सामाजिक राजनीतिक समस्याए फिट कर आपने शिष्ट साहित्यिक प्रहसनो की सृष्टि की है। इनमे १ स्वर्ग में क्रान्ति २ जम के दूत दलाल ३ नई धुन ४ बडे भाई प्रमुख हैं।

श्री रत्नाकर प्रसाद त्रिपाठी का "बीच बचाव" (१९५२) तथा एम० बी० वर्मा का "मुझे शर्म आती है" (१९५२) उच्चकोटि के रेडियो प्रहसन है। श्री विष्णु प्रभाकर का "सरकारी नौकरी" (१९५०) भी सफल रेडियो प्रहसन है।

श्री अमृतलाल नागर प्रहसन लिखने मे सिद्धहस्त हैं। रेडियो पर प्रसारित हुए आपके प्रहसनो मे दो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "बाकेमल" तथा "बाकेमल फिर आ गए।" इनका हास्य चरित्रगत असगतियो तथा विद्रूपताओ का हास्य है। नागर जी प्रौढ यथार्थवादी नाट्यकार हैं। उन्होंने पात्रो के व्यक्तित्वो का चुटीला अध्ययन किया है। आपनेश्री अन्नपूर्णानन्द के हास्य रस के उपन्यास "मगनरहु चेला" का रेडियो रूपान्तर भी प्रस्तुत किया है।

श्री प्रभाकर माचवे ने पाश्चात्य प्रभाव इस मौलिकता से ग्रहण किया है कि उनका हास्य व्यंग्य स्वाभाविकता का अतिक्रमण नहीं करता। गूढ मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण उन्हें अतिरंजना का आश्रय नहीं लेना पडता। उन्होंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव चरित्र, समाज के फैशन, सनक, अति आधुनिकता और रूढ़िया सब का पर्दाफाश किया है। सभ्य तथा सुसंस्कृत कहलाने वाले मानव के अन्तर्मन मे जो सनक, गुप्त इच्छाए, भ्रम, वासनाए दुबकी पडी है, उन्हें [illegible] की तरह हमारे समक्ष मूर्तिमान कर दिया है। आपके पास व्यंग्य का तीखा हथियार है, जिसके द्वारा आपने सामाजिक तथा वैयक्तिक विद्रूपताओं को उभार दिया है। श्री प्रभाकर माचवे मूलत. आलोचक हैं। उनकी पैनी दृष्टि समाज तथा व्यक्ति की कमजोरियों की तह मे पैठी है। अत उन्हे व्यंग्य प्रधान प्रहसनो मे ही सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है।

श्री रामसरन शर्मा ने वाक्-वैदग्ध्य से युक्त व्यंग्यमय प्रहसन रेडियो के लिए विशेष रूप से लिखे हैं। जिनमे आजकल के प्रेम और सामाजिक जीवन पर सुन्दर रोशनी पडती है उन्होंने परिस्थिति जन्य एव अतिरंजना प्रधान हास्य के निर्माण मे विशेष सफलता प्राप्त की है। बीमार बीवी, भूतों की दुनिया, बेचारी कुर्सी, पत्रकारिता, बीमार, वकालत आदि मे हास्य इन से ओतप्रोत परिस्थितियों की भरमार है। "पत्रकारिता, "बीमार" और "वकालत" मे इन पेशों मे घुसने वाले तथा सफलता के मधुर स्वप्न देखने वाले व्यक्तियों पर व्यंग्य है। वकीलों के गुणों तथा पत्रकारों पर कुछ अच्छी फब्तियां होने पर भी वे अधिक सफल नहीं हुए हैं। हास्य उत्पन्न करने के लिए वकील तथा सम्पादक को उपहासमय स्थिति मे रख दिया है। वकील तथा सम्पादक के भोंडे, बेढंगे तथा विचित्र व्यवहारों द्वारा अतिरंजित परिस्थितियां उत्पन्न की गई हैं। तीनों के मुख्य पात्र का नाम बुद्धिस्वरूप होने पर कुछ [illegible] होता है। मिल की सीटी, मजदूर जीवन पर एक गंभीर एकांकी है। एकांकियों की भाषा मुहावरेदार है और कहीं कहीं बातों मे बडी मौलिकता और मार्मिकता है।

श्री चिरंजीत के प्रहसन रेडियो पर विशेष लोकप्रिय रहे हैं। इनमें से कुछ उत्सवों तथा त्योहारों के सम्बन्ध मे हैं। कुछ [illegible] जैसे प्रहसन हैं। कुछ दैनिक जीवन से सबंधित शब्दचित्र प्रधान और कुछ दाम्पत्य जीवन सबंधी प्रहसन हैं। आपके प्रहसनों मे "[illegible], मानो न मानो, शादी [illegible], घर का मालिक, दफ्तर जाते समय, टेलीफोन पर" प्रथम श्रेणी के रेडियो प्रहसन हैं।

श्री राजाराम शास्त्री के प्रहसन दिल्ली रेडियो से प्रसारित हुए हैं। दो संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। [illegible], गूंगा, [illegible], [illegible], [illegible] सितारे, और [illegible] आदि प्रहसनों में जीवन की छोटी मोटी भूलों पर मधुर व्यंग्य है। 'गूंगा" प्रहसन मे परिश्रमी पर गूंगे व्यक्ति के सम्बन्ध मे [illegible] पर मौज उड़ाने वाले व्यक्तियों पर व्यंग्य किया गया है। '[illegible]' मे [illegible]

वाली उक्ति को चरितार्थ किया गया है। गाव का सेठ शहर से दो हजार का सामान खरीद कर मुनीम के हाथ गाव भेज देता है। स्वय दूसरी गाडी से सवार होने के लिए स्टेशन आता है। टिकट खरीदने के पश्चात एक अठन्नी बचती है, जिसे वह कोट के अन्दर की जेब मे सम्हाल कर रख लेता है। प्लेटफार्म पर पूरी वाले से एक पाव पूरी लेकर खाता है। किन्तु जब पैसे देने लगता है तो अठन्नी गायब। पूरीवाला उसे गुण्डा समझकर हगामा खडा कर देता है। "नीम हकीम खतराए जान" की उक्ति केवल हकीमो पर ही क्यो हर पेशे के लोगो पर चरितार्थ हो सकती है। "खचेडू" में झूठ मूठ कारीगर बनने वाले खचेडू का व्यग्यपूर्ण खाका खीचा गया है। शास्त्री जी ने अपने प्रहसनो मे पात्रो को ऐसी विषम परिस्थितियो मे लाकर खडा किया है कि हसी आये बिना नही रहती। उनके प्रहसनो में मनोरजन ही नहीं, रचनात्मक सकेत भी रहते हैं और जीवन की छोटी मोटी भूलें भी पकड मे आ जाती हैं। यही है प्रहसन साहित्य की उपयोगिता। इनके व्यग्य चित्रो से इनकी सूक्ष्म "अन्तर्दृष्टि और अभिव्यजना शक्ति का पता चलता है। इनके प्रहसनो में भारतीय समाज की कुरीति, मूढता, अशिक्षा और दुर्बलताओ पर मर्मस्पर्शी चोटें की गई हैं।

प्रो० जयनाथ नलिन के कुछ प्रहसन बडे व्यग्यपूर्ण हैं, जैसे "लस्सी का गिलास, बडे आदमी, सवेदना सदन, शान्ति सम्मेलन आदि। "मार मार कर हकीम" नामक मौलियर की एक प्रसिद्ध रचना का रेडियो रूपान्तर भी आप बडी सफलता से प्रस्तुत कर सके हैं। इनके प्रहसनो मे व्यक्ति, समाज, वर्तमान सभ्यता और बनावटी जीवन पर व्यग्य है।

श्री भृ ग तुपकरी के सात प्रहसन नागपुर से प्रसारित हुए हैं। १ मुरव्वत २ मुशी जी लेखक बने ३ शनि का कोप ४ बिजनेस बकवास ५ मैंने कहा जी ६ मुशी जी घर मे ७ मुशी जी उलझन मे आदि। इनमें हास्य व्यग्य के साथ पर्याप्त सरसता है।

इनके अतिरिक्त अन्त नाट्यकारो के प्रहसन प्रसारित होते रहते हैं। इन प्रहसन लेखको ने हमारे लोकजीवन को सामयिक, पारिवारिक और अनेक सामाजिक कमजोरियो रूढियो या बनावटीपन पर व्यग्य किया है। अनेक नाटककार हास्य या तो इतना पडितापूर्ण लिखते हैं कि वह स्वाभाविकता से दूर जा गिरता है, या परिहास फूहड हो जाता है। आशा है यह दोष शीघ्र ही दूर हो जायगा।

मोनोलोग या स्वगत नाट्य

स्वगत नाट्य मे केवल एक पात्र का अन्तर्द्वन्द्व अकित होता है। कुशल अभिनेता वाणी द्वारा अपेक्षित द्वन्द्व उत्पन्न कर देता है। इसका विषय स्वय पात्र के मन मे रहने वाली भावनाओ की उलझनपूर्ण मार्मिक कथा है। इस क्षेत्र मे अभी बहुत कम कार्य हुआ है। फिर भी कुछ कृतिया विशेष उल्लेखनीय हैं, जैसे श्री विष्णु

प्रभाकर का "सडक" एक विवाहित युवती का प्रेम सम्बन्धी द्वन्द्व चित्रित करता है। जिसे वह अपना बनाना चाहती थी, वह अपना नही बन सका, उसके पति का मित्र बन जाता है।[1] श्री भृंग तुपकरी का "घेरा" एक मनोवैज्ञानिक मोनोलाग है। इसमे अन्त मे जो पत्र है, वह अभिनय को जितना स्थिर करता है क्लाईमैक्स को उतना ही ऊचा उठाता है। यह तुपकरी के श्रेष्ठ नाटको मे गिना जा सकता है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का "सीता की मा" पाच दृश्यो मे सीता की मा द्वारा सीता जी के जन्म से लेकर बचपन, विवाह, वन-गमन, नाना कठिनाइयो और अन्तत पाताल प्रवेश की कथा प्रस्तुत करता है। बेनीपुरी ने नई कल्पना और अपनी कुशल लेखनी द्वारा सीता के जन्म तथा जीवन को बुद्धिवादी नेत्रो से सत्यता का आवरण पहनाया है। श्री राजाराम शास्त्री के 'बडबेरी' और 'फुलबूट' हास्य व्यग्यपूर्ण स्वगत नाटको के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त श्री करतारसिह दुग्गल का "अमानत" (१९५४) एक बीमार युवती की मृत्यु से पूर्व अन्तिम घडियो का मार्मिक चित्रण है।[2] श्री परदेशी का "भगवान् बुद्ध की आत्म कथा" मे राजकुमार सिद्धार्थ को वृद्ध देख कर जीवन परिवर्तन चित्रित है।[3] सिद्धार्थ सध्या समय सैर के लिए सारथि छन्दक के रथ मे निकलते हैं। मार्ग मे अपाहिज भूखा वृद्ध मिलता है। उसे देखकर सिद्धार्थ के मन मे वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। वे महल मे लौट आते और यशोधरा से मिलते हैं। ये सम्पूर्ण घटनाए और आन्तरिक स्थिति स्वय सिद्धार्थ अपने मुह से सुनाते हैं।

निष्कर्ष यह कि रेडियो एकाकी के क्षेत्र मे निरन्तर कार्य हो रहा है। डा० रामकुमार वर्मा ने सत्य ही लिखा है कि आजकल समय का अभाव होता जा रहा है। अत अपेक्षाकृत छोटे नाटक या एकाकी नाटको की ही अधिक से अधिक सृष्टि होना चाहिए अभी हमे रेडियो एकाकी की कला को निखारना है। इस क्षेत्र मे मात्र इन्डिया रेडियो से जो सहायता मिल रही है, उसका पूरा पूरा उपयोग हिन्दी नाटककारों को करना है।

---

१ देखिए प्रो० सिद्धनाथ कुमार कृत "रेडियो नाट्य शिल्प" पृ० १३१।
२. देखिए "अवन्तिका" वर्ष ३, अंक ६, पृ० ५८ पर प्रकाशित।
३. देखिए "अवन्तिका" वर्ष २, अंक ३, पृ० ७७।

: ७ :

हिन्दी रंगमंचीय एकांकी

नाटको का रगमच से घनिष्ट सम्बन्ध है। एकाकी का जन्म ही रगमच की आवश्यकताओ को देखकर हुआ था तथा उसी के साथ उसकी उपयोगिता है। अभिनय एकाकी का प्राण है। स्कूल, कालिजो तथा क्लबो के विशेष उत्सवो पर मनोरजन के लिए अभिनय की व्यवस्था की जाती है। इन अवसरो के अनुकूल एकाकी लिखे तथा अभिनीत हुए हैं। एकाकी वास्तव मे कार्य व्यापार द्वारा रगमच पर अभिनीत मानव जीवन के किसी विशेष पहलू का उद्दीप्त चित्र है। रगमच की उपेक्षा कर प्रभावशाली एकाकी लिखना असम्भव है। अभिनय तथा दर्शको पर उसके प्रभाव द्वारा ही किसी एकाकी की सफलता अथवा असफलता का निर्णय हो सकता है। जो एकाकी रगमच की उपेक्षा कर लिखे गये हैं उनमे अभिनयशीलता, स्वाभाविकता और सकलन त्रय की रक्षा नही हो पाती। जो एकाकी केवल पढा जा सकता है, वह अच्छा होने पर भी प्रचार की दृष्टि से सीमित रहता है। एकाकी की आत्मा अभिनय तत्व है, तथा रगमच के बिना उसकी कला फीकी है। एकाकीकार का यह कर्त्तव्य है कि वह काल की परिमिति, रगमच की आवश्यकताओ, दृश्यो का पट परिवर्तन, दृश्य सविधान, कठिन दृश्य निर्माण के आधुनिक साधनो का उपयोग, पात्रो की वेशभूषा, प्रवेश प्रस्थान अथवा क्रम व्यवस्था आदि का पूर्ण ध्यान रखे। अभिनयशील नाटको की रचना करना, पात्रों तथा चरित्रो की मनोवैज्ञानिक सहजता को अभिनय द्वारा रगमच पर उतारना एक ललित कला है। अभिनय कला तथा रग-मच पर अपने नाटको को सफल बनाना कम स्तुत्य नही है। यद्यपि सिनेमा जगत ने रगमच के विकास मे व्यवधान उपस्थित किया है, फिर भी हमारे नाटककार अभि-नय योग्य नाटको की रचना करते रहे हैं, जिससे अभिनय कला का विकास हुआ है।

रगमचीय एकाकी के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहे जा सकते हैं। कारण आपके छोटे-छोटे कुछ नाटको जैसे "अन्धेर नगरी, वैदिकी हिंसा, नीलदेवी, भारत जननी, माधुरी" आदि अभिनय की दृष्टि से रगमच के लिए लिखे गए थे। भारतेन्दु नाटक मडली ने उनके नाटको का अभिनय भी किया था,[1] भारतेन्दु की स्वय अभिनय मे रुचि थी। भारतेन्दु जी, प्रतापनारायण मिश्र और बदरीनारायण चौधरी उद्योग करके अभिनय का प्रबन्ध किया करते थे और कभी कभी स्वय अभिनय भी किया करते थे।

---

१ देखिए डा० सत्येन्द्र 'भारतेन्दु युगीन रगमच' साहित्य सन्देश भा० १३, अ० ७, पृ० २६६।

भारतेन्दु युग का रंगमंच देहात और नगरों में एक खेलवाड़ ही था। इसी [illegible] स्टेज पर इन्दर सभा, गुलबकावली आदि नकली नाटक खेले जाते थे। कलकत्ता में बंगाली भाषा का स्टेज अपेक्षाकृत अधिक उन्नत था। गिरीशचन्द्र घोष, [illegible], विद्या विनोद और अमृतलाल आदि नाटककारों में प्रधान थे। बम्बई में पारसी नाटक मंडलियाँ "इन्द्र सभा, चों चों का मुरब्बा, कमरुलजमा' आदि नाटक खेलती थीं। गुजराती लड़के प्रायः अभिनय करते थे। विक्टोरिया नाटक मंडली, पारसी [illegible], अल्फ्रेड नाटक मंडली, श्री सूर विजय नाटक मंडली, मेरठ की व्याकुल भारत नाटक मंडली, गुजरात की नाटक मंडली प्रमुख नाटक मंडलियाँ थीं। पटना, बनारस, आगरा में स्टेज या पर्दों का उतना ठाठ नहीं था। मथुरा का रंगमंच [illegible] उन्नति कर रहा था।[1] इन प्रारम्भिक हिन्दी रंगमंच पर अंग्रेजी, बंगाली तथा पारसी तीनों रंगमंचों का प्रभाव था। भारतेन्दु की अभिनय कुशलता, संगीत प्रेम, नाट्य कला के विकास तथा उत्साह ने हिन्दी रंगमंचीय नाटक को नव जीवन प्रदान किया।

द्विवेदी युग के एकांकियों पर पारसी कम्पनियों का प्रभाव अधिक है। इन एकांकियों में शैली अभिनयात्मक रही है यद्यपि इनमें साहित्यिकता नहीं रही है। पारसी रंगमंचों पर राधेश्याम कथावाचक के अतिरिक्त आगाहश्र काश्मीरी तथा नारायण प्रसाद बेताब विशेष लोकप्रिय नाटककार रहे हैं। इनके बड़े नाटकों के साथ एक छोटा स्वतन्त्र नाटक जिसे हम एकांकी का एक रूप कह सकते हैं, प्रायः रहता और उसका अभिनय होता था। यह प्रायः कौतुक अथवा प्रहसन होता था और जितनी देर तक मंच पर प्रहसन का अभिनय होता था, उतनी देर पर्दे के पीछे दूसरे दृश्य का निर्माण होता रहता था। कथावाचक जी के प्रहसन इसी प्रकार बड़े नाटकों के साथ के हैं। इसी प्रकार पारसी रंगमंच से प्रभावित श्री जी० पी० श्रीवास्तव की 'दुमदार आदमी, भूलचूक, जैसी करनी वैसी भरनी, चोर के घर छिछोर, उलट फेर, नाक [illegible], साहित्य का सपूत [illegible]," आदि रचनाएँ रंगमंच की दृष्टि से लिखी गईं और उनका सफलता से अभिनय भी हुआ है। इसी प्रकार पं० बदरीनाथ भट्ट की "लबड़ धों धों" और "चुंगी की उम्मेदवारी" तथा श्री सुदर्शन का "आनरेरी मजिस्ट्रेट" आदि रंगमंचीय प्रहसन हैं। प्रसाद युग के एकांकीकारों ने रंगमंच की उपेक्षा कर केवल पठन पाठन के लिए एकांकियों की रचना की है। इनमें साहित्यिकता भले ही हो, रंगमंच पर उनका स्थान नहीं है। इस प्रकार साहित्यिक एकांकी रंगमंच से दूर होते गये।

प्रसादोत्तर काल में जिन एकांकीकारों ने रंगमंचीय एकांकी का सूत्रपात किया, उनमें डा० रामकुमार वर्मा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्मा जी ने [illegible]

---

१. [illegible] १२, ५.८. ७, पृ० २२६।

और हिन्दी जनता का ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है :

"मैं नाटको का महत्व उपन्यास की भाति पढ लेने तक ही नही मानता, वरन् सार्वजनिक रूप से उसके अभिनय में मानता हू। अभिनय के लिए रगमच तो नितान्त आवश्यक है। रगमच का अर्थ केवल स्टेज या अभिनय स्थान ही नही है। रगमच एक राजनीतिक या सामाजिक कलात्मक सस्था है, जो नाटक और अभिनय के प्रत्येक क्षेत्र मे सम्पूर्ण ज्ञान वितरित कर सके। राज्य की ओर से या समाज के द्वारा प्रचुर दान से वह पूर्ण सम्पन्न हो और विश्वविद्यालय की भाति वह विद्यार्थियो को रगमच के ज्ञान मे पूर्णरूप से दीक्षित कर सके · रगमच राष्ट्र के नाट्य साहित्य का पूर्ण उत्तरदायित्व ले सके। रगमच के ज्ञान से रहित हमारे यहा जो नाटककार नाटक रचना करते हैं, उन्हें तो उपन्यास ही लिखना चाहिए, नाटक नही।"[1]

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने विचारो को अपने एकाकियो में मूर्त्तरूप प्रदान किया और रगमच के लिए ऐसे नाटक तैयार किये जो आडम्बरविहीन साधारण से मच पर खेले जा सकें। आपके एकाकी विशेष रूप से प्रयाग विश्वविद्यालय के होस्टलों मे नाना अवसरों पर अभिनय के लिए लिखे और सफलता से अभिनय किए गए हैं।[2] रगमच की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति इन नाटको द्वारा सभवत इसलिए पूर्ण हुई है कि वर्मा जी स्वय अभिनेता हैं और रगमच की कठिनाइयो से भलीभाति परिचित हैं। उन्होने समस्त रगमचीय विधानो का अध्ययन कर अपने नाटको में प्राण प्रतिष्ठा की है।

आपके "पृथ्वीराज की आखें" और "रेशमी टाई" उन नाटकों के सकलन हैं, जो विश्वविद्यालय के रगमचो पर खेले जा चुके हैं और आज भी खेले जाते हैं। "सप्तकिरण" सग्रह के नाटक अभिनय की कसौटी पर और भी सफल रहे हैं। अपने पिछले एकाकियों की अपेक्षा "सप्तकिरण" के नाटको मे वर्मा जी ने रगमच की सुविधाओ का अधिक ध्यान रखा है। सवादो की रूपरेखा एकमात्र मनोविज्ञान द्वारा खीची गई हैं। एक ही दृश्य मे घटनाओ का उत्थान और पतन, कौतूहलजनक आवेगों का चरम सीमा मे विस्फोट, पात्रो के मनोविकारो का क्रमिक परिवर्तन और उसकी नियताप्ति, "बादल की मृत्यु" रूपक को छोडकर डा० वर्मा के सभी नाटको में मिलते हैं।[3] अभिनयात्मक दृष्टिकोण होने के ही कारण उन्होंने अपने पात्रो के मुख मे अत्यन्त स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया है। जिस वातावरण मे पात्र सास ले रहे हैं, उसी वातावरण के अनुरूप भाषा मे परिवर्तन हाते गए हैं।[4] जो एकाकी

---

१ डा० रामकुमार वर्मा - वर्तमान नाट्य साहित्य की आवश्यकताए "हि० ना० के सिद्धान्त और नाटक" पृ० १३६।

२ इनका निर्देश "रेशमी टाई" के नाटकों के आरम्भ में है।

३ श्री नर्मदाप्रसाद खरे "चार ऐतिहासिक एकाकी" भू० पृ० ८६।

४. देखिए "रेशमी टाई" भूमिका पृष्ठ २०।

प्राचीन कथानकों पर आधारित हैं, जैसे "श्री विक्रमादित्य" या "समुद्रगुप्त पराक्रमांक" आदि की भाषा विशुद्ध हिन्दी है। मुगलकालीन एकांकियों जैसे "औरंगजेब की आखिरी रात" में उर्दू मिश्रित हिन्दी है और रेशमी टाई संग्रह के आधुनिक जीवन और समस्याओं से संबंधित एकांकियों में दैनिक व्यवहार की चलती हिन्दी का प्रयोग किया गया है। नाटकीय सिद्धांतों के अनुसार पात्रों की सहज स्वाभाविक भाषा का उन्होंने सदैव ध्यान रखा है। निर्देशकों की सहायता के लिए कुछ नाटकों के प्रारम्भ में रंगमंच की व्यवस्था के मानचित्र भी दे दिये हैं। डा० वर्मा के नवीन नाटक जैसे "रजत रश्मि" तथा "ऋतुराज" में संकलित एकांकी इस ढंग से लिखे गये हैं कि रंगमंच और रेडियो दोनों के द्वारा सफलतापूर्वक अभिनीत हो सकें। कुछ एकांकी जैसे [illegible], दुर्गावती, प्रतिशोध, स्वर्णश्री आदि रेडियो के लिए लिखे गये हैं, पर ऐसे एकांकी रंगमंच पर भी खेले जा सकते हैं। केवल संयोजक को एकांकी के वातावरण तथा [illegible] की परिस्थिति के अनुसार रंगमंच की उचित व्यवस्था स्वयं करनी होगी। नाटक लिखते समय वर्मा जी को अभिनेताओं और दर्शकों का ध्यान रहता है। "[illegible]" एकांकी संग्रह उन अभिनेताओं को भेंट किया गया है जो उन नाटकों का अभिनय करेंगे। इसी प्रकार रजत रश्मि संग्रह में प्रार्थना की गई है —

"इन एकांकी नाटकों के अभिनय में किन दर्शकों का कुतूहल [illegible] की भाषा बने, यह नहीं कहा जा सकता, इसलिए प्रत्येक दर्शक से प्रार्थना है कि पर्दा उठने से पूर्व अपने स्थान पर शान्तिपूर्वक आसीन रहें।"

निष्कर्ष यह कि डा० वर्मा ने सदा अपने नाटकों में अभिनय का ध्यान रखा है। इस संबंध में वे लिखते हैं, 'मंच पर जीवन को क्रियाशील बनाने की सबसे अधिक शक्ति एकांकी में है, जो युगों की [illegible] में और युगों का [illegible] में प्रकट कर आपके सामने जीवन का [illegible] प्रदर्शनी की भांति सुसज्जित कर देता है।'[1] डा० वर्मा ने रंगमंचीय एकांकियों की जो परम्परा [illegible] वह उत्तरोत्तर उन्नति करती गई तथा अनेक नाट्यकारों ने अभिनय के योग्य एकांकियों की रचना की है।

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क के "जय पराजय" के बाद के नाटक और एकांकी अभिनय की दृष्टि से रंगमंच के सर्वथा अनुकूल हैं। अश्क जी प्रारम्भ से ही रंगमंच के पुनरुद्धार के लिए प्रयत्न करते रहे हैं। सन् १९३८ में 'जय पराजय' की भूमिका में अश्क ने लिखा था, 'मेरा अपना विचार तथा अनुभव है कि रंगमंच को स्फूर्ति प्रदान करने का सबसे [illegible] यह है कि ऐसे नाटक लिखे [illegible] जो रंगमंच पर सुगमता से खेले जा [illegible] [illegible] नाटक लिखे जायें तो [illegible] रंगमंच भी अवश्य बन [illegible]

---

१. देखिए डा० रामकुमार वर्मा, [illegible] "ऋतुराज" पृ० [illegible]।

अश्क ने अपने पूर्ववर्त्ती नाटको मे मच की दृष्टि से जो त्रुटिया देखी उन्हें अपने नाटकों में दूर करते हुए साहित्यिक उत्कृष्टता के साथ अभिनेयता का कलात्मक समन्वय किया हैं।[1] इनके एकाकियो मे दृश्य विधान, स्टेज इफैक्ट तथा पात्रो की वेशभूषा, रूपवय, स्वभाव, कार्य व्यापार आदि के पूरे पूरे विवरण दिए गए हैं। रगसूचनाए विस्तृत एव व्यापक हैं, जिनसे निर्देशक को सुविधाए प्राप्त हो जाती हैं। सवादो, कार्य व्यापार और वस्तुओ को नाटक मे गति देने के लिए प्रतीकात्मक या सकेतात्मक ढग से प्रयोग किया गया है जिनसे नाटककार के इच्छानुसार नाटकीय प्रभाव पडता है। रगमचीय सफलता के कारण ही गत तीन वर्षों मे अश्क ने राजस्थान, मध्यभारत, मध्यप्रदेश, मद्रास, बिहार और पजाब के विभिन्न नगरो मे अपने एकाकियो का अकेले दम प्रदर्शन करके न केवल सहस्रो का मनोरजन किया, बल्कि अमेचर रगमच को बडा बना दिया। नाटक लिखने के साथ साथ स्वय रगमच मे भी क्रियात्मक दिलचस्पी लेने का यह फल है कि आज अश्क के एकाकी उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक में खेले जा रहे हैं।[2] निर्देशक, अभिनेताओ और लेखक के सहयोग मे अश्क को पूरा विश्वास है।

सेठ गोविन्ददास के एकाकियो का सविधान रगमचीय है। अपने नाटको की टैकनीक के विषय मे उन्होंने स्वीकार किया है कि इस दिशा मे वे इब्सन की पद्धति के अनुयायी हैं।[3] वे लिखते हैं, "जो नाटक पढने योग्य होते हुए भी रगमच पर खेले जा सकें और साथ ही साहित्यिक दृष्टि से भी उच्चकोटि के हो, वे अच्छे हैं। नाटककार को लिखने की विधि के साथ ही रगमच सम्बन्धी विधि की ओर भी लक्ष्य रखना आवश्यक है। रगमच सम्बन्धी बातो में नाटककार को दृश्यो की व्यवस्था, पात्रो की वेश भूषा तथा पात्रो के प्रवेश प्रस्थान आदि बातो पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।[4] अपने एकाकियो मे सेठ जी ने इन्ही आदर्शों का पालन किया है। अभिनय को वे नाटक का एक आवश्यक अग मानते हैं तथा उसके सम्बन्ध मे उचित सकेत भी कर देते हैं।[5] उनके मोनो ड्रामो मे मूक अभिनय की भी व्यवस्था है। उन्होंने अपने कुछ नाटको में एक ही दृश्य रखा है, तथापि एक अक मे एक ही दृश्य रखने की प्रथा उन्हें मान्य नही है क्योंकि इससे दृश्य परिवर्तन का आकर्षण नही रह जाता, एक दृश्य मे कई बार ऐसे पात्रो का प्रवेश, प्रस्थान और सम्भाषण होता है जो नही होना चाहिए। तीसरे एक ही दृश्य रखने के समय के एकीकरण का बडी भारी कठिनाई से सामना करना पडता है। उनके विचार से एक दृश्य मे एक ही समय की घटना का प्रदर्शन हो सकता है, पर दृश्य परिवर्तन होने से यह कठिनाई नही रह जाती और नाटक की गति मे शीघ्रता

---

१ देखिए "नाटककार अश्क" में गोपालकृष्ण कौल का लेख 'रगमच और अश्क' पृ० ४८।
२ वही, पृ० ५३।
३ सेठ गोविन्ददास "नाट्यकला मीमांसा" पृ० १४।
४. वही, पृ० ३१।
५ नाट्यकला मीमांसा, पृष्ठ ३७।

आ जाती है।[1] वे स्थल संकलन की अपेक्षा एकांकी में काल संकलन को अत्यधिक आवश्यक समझते हैं। इनकी दृष्टि में यदि किसी एकांकी में काल संकलन से अवरोध हो सकता है तो फिर इसके लिए उन्होंने उपक्रम और उपसंहार की व्यवस्था की है। रंगमंच में अभिनय के समय उन्होंने सुझाव दिया है कि

"जो एकांकी रंगमंच पर खेले जावें उनमें दर्शकों को उपक्रम और उपसंहार की जानकारी हो जाय। इसलिए यवनिका उठते ही एक दूसरे पर्दे पर 'उपक्रम' या 'उपसंहार' लिख देना आवश्यक है और यवनिका के उठाने के बाद यह पर्दा भी उठा दिया जाय।"

वे नाटक का अभिनय होते समय आवश्यकतानुसार कभी कभी कुछ दृश्य सिनेमा की फिल्मों द्वारा दिखाया जाना आवश्यक समझते हैं। उनकी राय में नाटक और सिनेमा का कहीं कहीं सुन्दर मिश्रण भी हो सकता है। जैसे युद्ध, चुनाव, मेले इत्यादि के दृश्य यदि नाटकों में भी सिनेमा के द्वारा दिखाये जावें तो कहीं अधिक स्वाभाविक दीख पड़ेंगे और उनके मन पर प्रभाव भी अधिक पड़ेगा। नाटक के साथ ही सिनेमा मशीन की योजना एवं ऐसे अवसरों पर नाटक के बीच बीच में पर्दे के स्थान पर श्वेत चादर गिरा दस-दस बीस-बीस मिनटों तक ये दृश्य फिल्मों द्वारा दिखाने का प्रबन्ध अवश्य सफल हो सकता है।[2] संक्षेप में सेठ जी के एकांकियों का संविधान रंगमंचीय है। सफल अभिनय के लिए इनमें सतत गतिमान कथानक और जीवित कथोपकथन हैं। उनकी नाट्य कृतियों में कलापक्ष का अनवरत विकास भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। नये नाटकीय प्रयोग करने में सेठ जी कुशल हैं।[3]

पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखे गये हैं। इन पर पाश्चात्य रंगमंच का प्रभाव है। न तो अनेक पात्रों की योजना है, न कविता पाठ, अनावश्यक पट परिवर्तन, गजल-शेर वाली पद्धति, संगीत या झूठी भावुकता का अनुचित सम्मिश्रण ही है। उनके नाटकों में यह विस्तार भी इतना नहीं है कि विभिन्न देशकाल, अवस्था अथवा घटनाओं की विलष्टता हो। इब्सन की भांति मिश्र जी ने हिन्दी रंगमंच को सरल और आडम्बरहीन बनाया है तथा जीवन के अधिक समीप ले आये हैं। आपके एकांकी जैसे "नारी का रंग, एक दिन, अशोक वन, तथा प्रलय के पंख पर" एकांकी संग्रहों के नाटक रंगमंच के लिए लिखे गये हैं। इनका सरलता से अभिनय किया जा सकता है। "सिंदूर की होली" में उन्होंने अभिनय की सुगमता की ओर पहले की अपेक्षा और अधिक ध्यान दिया है। उनकी विशेषता यह है कि एक ही लम्बे दृश्य में एकांकी पूरा फैल कर संकलन त्रय की रक्षा करता हुआ एक अंतिम प्रभाव डालता हुआ समाप्त होता है।

१. देखिए "नाट्यकला मीमांसा" रंगमंच, पृष्ठ ३२।
२. देखिए नाट्यकला मीमांसा - नाटक और सिनेमा, पृ० ३८।
३. श्री दुर्गाशंकर मिश्र 'सेठ गोविन्ददास की नाट्यकला'', राष्ट्रभारती, दि० १९५४, पृ० ७६०।

अश्क ने अपने पूर्ववर्त्ती नाटको मे मच की दृष्टि से जो त्रुटिया देखी उन्हें अपने नाटकों मे दूर करते हुए साहित्यिक उत्कृष्टता के साथ अभिनेयता का कलात्मक समन्वय किया हैं।[1] इनके एकाकियो मे दृश्य विधान, स्टेज इफैक्ट तथा पात्रो की वेशभूषा, रूपवय, स्वभाव, कार्य व्यापार आदि के पूरे पूरे विवरण दिए गए हैं। रगसूचनाए विस्तृत एव व्यापक हैं, जिनसे निर्देशक को सुविधाए प्राप्त हो जाती हैं। सवादो, कार्य व्यापार और वस्तुओ को नाटक मे गति देने के लिए प्रतीकात्मक या सकेतात्मक ढग से प्रयोग किया गया है जिनसे नाटककार के इच्छानुसार नाटकीय प्रभाव पडता है। रगमचीय सफलता के कारण ही गत तीन वर्षों मे अश्क ने राजस्थान, मध्यभारत, मध्यप्रदेश, मद्रास, बिहार और पजाब के विभिन्न नगरो मे अपने एकाकियो का अकेले दम प्रदर्शन करके न केवल सहस्रो का मनोरजन किया, बल्कि अमेचर रगमच को बडा बना दिया। नाटक लिखने के साथ साथ स्वय रगमच मे भी क्रियात्मक दिलचस्पी लेने का यह फल है कि आज अश्क के एकाकी उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक मे खेले जा रहे हैं।[2] निर्देशक, अभिनेताओ और लेखक के सहयोग मे अश्क को पूरा विश्वास है।

सेठ गोविन्ददास के एकाकियो का सविधान रगमचीय है। अपने नाटको की टैकनीक के विषय मे उन्होंने स्वीकार किया है कि इस दिशा मे वे इब्सन की पद्धति के अनुयायी हैं।[3] वे लिखते हैं, "जो नाटक पढने योग्य होते हुए भी रगमच पर खेले जा सकें और साथ ही साहित्यिक दृष्टि से भी उच्चकोटि के हो, वे अच्छे हैं। नाटककार को लिखने की विधि के साथ ही रगमच सम्बन्धी विधि की ओर भी लक्ष्य रखना आवश्यक है। रगमच सम्बन्धी बातो मे नाटककार को दृश्यो की व्यवस्था, पात्रो की वेश भूषा तथा पात्रो के प्रवेश प्रस्थान आदि बातो पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।[4] अपने एकाकियो मे सेठ जी ने इन्ही आदर्शों का पालन किया है। अभिनय को वे नाटक का एक आवश्यक अग मानते हैं तथा उसके सम्बन्ध मे उचित सकेत भी कर देते हैं।[5] उनके मोनो ड्रामो मे मूक अभिनय की भी व्यवस्था है। उन्होंने अपने कुछ नाटको में एक ही दृश्य रखा है, तथापि एक अक मे एक ही दृश्य रखने की प्रथा उन्हें मान्य नही है क्योंकि इससे दृश्य परिवर्तन का आकर्षण नही रह जाता, एक दृश्य मे कई बार ऐसे पात्रो का प्रवेश, प्रस्थान और सम्भाषण होता है जो नही होना चाहिए। तीसरे एक ही दृश्य रखने के समय के एकीकरण का बडी भारी कठिनाई से सामना करना पडता है। उनके विचार से एक दृश्य मे एक ही समय की घटना का प्रदर्शन हो सकता है, पर दृश्य परिवर्तन होने से यह कठिनाई नही रह जाती और नाटक की गति मे शीघ्रता

१ देखिए "नाटककार अश्क" में गोपालकृष्ण कौल का लेख 'रगमच और अश्क' पृ० ४८।
२ वही, पृ० ५३।
३ सेठ गोविन्ददास "नाट्यकला मीमासा" पृ० १४।
४. वही, पृ० ३१।
५

आ जाती है।[1] वे स्थल सकलन की अपेक्षा एकाकी मे काल सकलन को अत्यधिक आवश्यक समझते हैं। इनकी दृष्टि मे यदि किसी एकाकी मे काल सकलन से अवरोध हो सकता है तो फिर इसके लिए उन्होंने उपक्रम और उपसहार की व्यवस्था की है। रगमच मे अभिनय के समय उन्होने सुझाव दिया है कि :

"जो एकाकी रगमच पर खेले जावें उनमे दर्शको को उपक्रम और उपसंहार की जानकारी हो जाय। इसलिए यवनिका उठते ही एक दूसरे पर्दे पर 'उपक्रम' या 'उपसहार' लिख देना आवश्यक है और यवनिका के उठाने के बाद यह पर्दा भी उठा दिया जाय।"

वे नाटक का अभिनय होते समय आवश्यकतानुसार कभी कभी कुछ दृश्य सिनेमा की फिल्मो द्वारा दिखाया जाना आवश्यक समझते हैं। उनकी राय मे नाटक और सिनेमा का कही कही सुन्दर मिश्रण भी हो सकता है। जैसे युद्ध, चुनाव, मेले इत्यादि के दृश्य यदि नाटको मे भी सिनेमा के द्वारा दिखाये जावे तो कही अधिक स्वाभाविक दीख पडेंगे और उनके मन पर प्रभाव भी अधिक पडेगा। नाटक के साथ ही सिनेमा मशीन की योजना एव ऐसे अवसरों पर नाटक के बीच बीच मे पर्दे के स्थान पर श्वेत चादर गिरा दस-दस बीस-बीस मिनटो तक ये दृश्य फिलमो द्वारा दिखाने का प्रवन्ध अवश्य सफल हो सकता है।[2] सक्षेप मे सेठ जी के एकाकियो का सविधान रगमचीय है। सफल अभिनय के लिए इनमे सतत गतिमान कथानक और जीवित कथोपकथन हैं। उनकी नाट्य कृतियों मे कलापक्ष का अनवरत विकास भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। नये नाटकीय प्रयोग करने मे सेठ जी कुशल हैं।[3]

प० लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक रंगमच को दृष्टि मे रखकर लिखे गये हैं। इन पर पाश्चात्य रगमच का प्रभाव है। न तो अनेक पात्रों की योजना है, न कविता पाठ, अनावश्यक पट परिवर्तन, गजल-शेर वाली पद्धति, सगीत या झूठी भावुकता का अनुचित सम्मिश्रण ही है। उनके नाटको मे यह विस्तार भी इतना नही है कि विभिन्न देशकाल, व्यवस्था अथवा घटनाओ की क्लिष्टता हो। इब्सन की भाति मिश्र जी ने हिन्दी रगमच को सरल और आडम्बरहीन बनाया है तथा जीवन के अधिक समीप ले आये हैं। आपके एकाकी जैसे "नारी का रंग, एक दिन, अशोक वन, तथा प्रलय के पख पर" एकाकी सग्रहो के नाटक रगमच के लिए लिखे गये हैं। इनका सरलता से अभिनय किया जा सकता है। "सिंदूर की होली" में उन्होंने अभिनय की सुगमता की ओर पहले की अपेक्षा और अधिक ध्यान दिया है। उनकी विशेषता यह है कि एक ही लम्बे दृश्य मे एकाकी पूरा फैल कर सकलन त्रय की रक्षा करता हुआ एक अतिम प्रभाव डालता हुआ समाप्त होता है।

---

१. देखिए "नाट्यकला मीमांसा" रंगमच, पृष्ठ ३२।

२. देखिए नाट्यकला मीमांसा - नाटक और सिनेमा, पृ० ३८।

३ श्री दुर्गाशकर मिश्र 'सेठ गोविन्ददास की नाट्यकला", राष्ट्र भारती, दि० १९५८, पृ० ७६०।

प० उदयशकर भट्ट के प्रारम्भिक नाटक जैसे "स्त्री का हृदय" तथा "अभिनव एकाकी" मे सकलित रचनाए रगमच पर खेली गई हैं। वे मानते हैं कि अभिनेयता एकाकी का एक आवश्यक गुण है। खेले जाने पर नाटक पढ अपढ सभी पर अपना प्रभाव डालता है। रगमच की सफलता उसका सार्वजनिक होना है। उनका विश्वास है कि रूस की तरह हमारे देश मे भी समाज से रूढियो, दुराग्रहो, मूढताओ को दूर करने का एकमात्र साधन रगमच ही होगा।[१] उनके एकाकियो मे दृश्य परिवर्तन बार बार नही होता, कम से कम दृश्यो का समावेश है, कम से कम पर्दे उठाये या गिराये जाते हैं। "पर्दे के पीछे" के आठ एकाकियो मे भट्ट जी सर्वाधिक सफल हुए हैं। ये सब एक लम्बे दृश्य मे ही इस युग की समस्याओं के मर्म तक पहुचकर व्यग्य के द्वारा उनके समाधान की ओर सकेत करते हैं। स्थान, काल और कार्य की सकलनत्रयी का भी निर्वाह ऐसी अकृत्रिम अक्षुण्णता से हुआ है कि इनमे से किसी एकाकी के सफल अभिनय मे विशेष कठिनाई नही हो सकती।[२]

आधुनिक नाटककारो मे रगमचीय नाटको के निर्माण मे श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने सर्वाधिक दिलचस्पी दिखाई है। भावी राष्ट्रीय रगमच निर्माण के लिए उन्होंने जो त्रिमुखी योजना उपस्थित की है, वही दिन प्रतिदिन स्पष्ट होती हुई सास्कृतिक प्रवृत्तियो का चरमोत्कर्ष हो सकती है।[३] रगमच तथा नाट्यकला के विषय मे उन्होंने विस्तार से अपने विचार प्रकट किये हैं।[४] स्वय अभिनेता होने के कारण उनके नाटक और एकाकी रगमच पर अभिनय के लिए ही लिखे और सफलता से अभिनय किए गए हैं। प्रत्येक एकांकी कैसे खेला जाय, वेशभूषा, रगमच व्यवस्था, अभिनय आदि के निर्देशक और अभिनेताओ के लिए उपयोगी सकेत उन्होने अपने सग्रहो मे दिये हैं। जिनसे प्रकट है कि नाटककार एक निश्चित और सुकल्पित रूप मे अपने एकाकियो को प्रस्तुत करना चाहता है। सेठ गोविन्ददास की तरह वे उपक्रम और उपसहार के प्रयोग मे विश्वास रखते हैं। इनमे सस्कृत नाटको की प्रस्तावना और पाश्चात्य नाटको के प्रोलोग और एपिलोग की झलक मिलती है। इनके द्वारा दर्शको की सवेदनशीलता को क्रमश आरोह अवरोह का अवसर देना उनका लक्ष्य है।[५] नैपथ्य मे वाद्य सगीत और माइक्रोफोन का व्यवहार तथा मद और तेज रोशनी कर नाटक के

---

१. श्री उदयशकर भट्ट "समस्या का अन्त" भूमिका, पृ० २।

२ श्री शिवदानसिंह चौहान।

३ "मेरे विचार से १ यथार्थवादी अमेचर रगमच २ प्राचीन नाट्य परम्परा से प्रेरित किन्तु आधुनिक व्यवसायिक साधनों से सम्पन्न नागरिक रगमच और ३ परिमार्जित और सशोधित रूप से देहाती रगमच, इन्हीं तीन शैलियों में भावी हिन्दी रगमच की रूप रेखा सन्निहित है।" जगदीशचन्द्र माथुर "कोणार्क", पृ० ६३।

४ देखिए "कोणार्क" और ओ मेरे सपने" आदि के परिशिष्ट।

५ देखिए "कोणार्क" परिशिष्ट, पृ० ७६।

योग्य वातावरण निर्माण मे भी विश्वास करते हैं। प्राय नाटको मे रगमच की जैसी कल्पना की है, उसका रेखाचित्र दे दिया है। जिन स्थानो पर एक्शन की कमी है, वहा की एकरसता दूर करने और अभिनय की सुविधा के लिए स्थान परिवर्तन के भी आदेश हैं। स्वर मे विविधता की ओर उनका ध्यान रहा है। उनके सवाद भावावेश और नाटकीय गति के वाहन हैं। एक स्थान पर माथुर साहब लिखते हैं

"निर्देशक और सयोजक यह समझ लें कि नाटक की सफलता सैटिंग और तड़क भड़क पर इतनी निर्भर नही करती, जितनी अभिनय की उत्कृष्टता पर। हम लोगो की नाटक मडलियो मे काम करने वालो की सख्या कम होती है और समझदारो की और भी कम। ये इने गिने लोग भी यदि अपनी सारी शक्ति भारी पर्दों और चमत्कारपूर्ण इफैक्ट तैयार करने मे लगा दे तो नाटक सिनेमा की भद्दी नकल बन कर रह जायेगा'' यहा तो सवाद और अभिनय की चमत्कार से अधिक महत्ता है और इसलिए उन्ही पर विशेष जोर डालना चाहिए।"

श्री माथुर उन नाटककारो मे हैं, जिनका प्रत्येक नाटक खेले जाने के लिए लिखा गया-है। "मेरी बासुरी" १९३६ मे म्योर होस्टल मे अभिनय के लिए लिखा गया था।१९३७ मे "भोर का तारा" लिखा गया और रगमच पर खूब जमा। स्वय लेखक ने इन दोनो मे अभिनय किया। १९३८ मे एक गर्ल्स कालेज मे अभिनय के लिए "कलिंग विजय" लिखा गया। उनके नवीनतम नाटको के अभिनय भी यत्र तत्र होते रहते हैं।[1]

श्री हरिकृष्ण प्रेमी के एकाकी दृश्यो मे विभाजित हैं। प्रेमी जी की मान्यता है कि जैसे शैक्सपियर, जयशकर प्रसाद और डी० एल० राय के पूर्ण नाटको मे एक अक अनेक दृश्यो मे विभाजित है, उसी प्रकार एकाकी भी हो सकते हैं। बर्नार्ड शा, इब्सन और लक्ष्मीनारायण मिश्र के पूर्ण नाटक जिनके अक दृश्यो मे विभाजित नही हैं, केवल वे ही नाटक कहे जा सकते हैं, ऐसी मान्यता अभी साहित्य महारथियो ने अभी नही स्थापित की है। तब एकाकी के क्षेत्र मे अक का दृश्यो मे विभाजन क्यो वर्जित होना चाहिए।[2] देशकाल के कारण भी टैकनीक में फेर बदल होती है। विज्ञान की उन्नति रगमच को भी पहले की अपेक्षा अधिक सुविधा प्रदान कर रही है। इसलिए आज केवल पर्दों एव थोडी दृश्य रचना की सहायता से नाटको का अभिनय करने का बधन नही है। इसी विचारधारा के अनुसार प्रेमी जी के एकाकियो मे प्राय तीन दृश्य होते है, सुरीले गीतो की व्यवस्था है और एकाकियो मे बड़े नाटको की तरह कथानक का विकास है। कही कही नेपथ्य मे सकेतात्मक गानो की व्यवस्था है। रगसकेत न केवल पाठको की कल्पना को सजग करते हैं, वरन् निर्देशक की भी प्रचुर सहायता करते

१. "ओ मेरे सपने" पृ० १७४, १७६ आदि।
२ श्री हरिकृष्ण प्रेमी "बादलों के पार", पृ० ५-६।

हैं। स्थान और काल की इकाई का पालन नही किया गया है। निष्कर्ष यह है कि ये एकाकी एक प्रकार से नाटक का सक्षिप्त रूप हैं और पूरे नाटको की शैली पर लिखे गए हैं, फिर भी ये साधनहीन रगमचो पर सफलता से अभिनय किये गये हैं और आज भी भारतवर्ष के अनेक स्थानो पर खेले जाते हैं। अपने लघु नाटकों मे प्रेमी जी ने तरुण हृदयो के सम्मुख राजनीति, समाज नीति और मानवता से सम्बन्ध रखने वाले कुछ सघर्षों के चित्र रखे हैं।

श्री भगवतीचरण वर्मा का "सबसे बडा आदमी" अनेक स्कूल कालेजो मैं सफलता से रगमच पर उतारा गया है। नाटकीय स्थल की पकड मे यह नाटक बडा अच्छा रहा है। इसमे पर्याप्त क्रियाशीलता है और अभिनेता को अपनी कला के प्रदर्शन का अवसर रहता है। वर्माजी के एकाकी, जैसे "बुझता दीपक, चौपाल मे, और दो कलाकार" आदि अभिनय के लिए रचे गए हैं।[1] कुछ सभा सोसाइटियो मे इनका सफलतापूर्वक अभिनय भी हुआ है।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने नाटको मे पाठको और रगमच दोनो का ध्यान रखा है। जहा पढ़ने मे आनन्द आता है, वहा रगमच पर भी ये नाटक सफल उतरे हैं। भारतीय नाट्य परम्परा के अनुसार रगमच पर क्या दिखाया जाय, क्या न दिखाया जाय, इसका उन्होने सतर्कता से ध्यान रखा है।[2] पात्रो को निज मनोवेदना अभिव्यक्त करने के लिए आपने एक नई पद्धति से काम लिया है। "नेत्रदान" एकाकी मे तिष्यरक्षिता दर्पण मे अपनी छाया को देखते हुए मनोवेदना का चित्रण करती है। इससे लम्बी स्वोक्ति सम्बन्धी ऊब भी नही आती और अभिनय के लिए पूरा अवसर भी मिल जाता है। अपने "सघमित्रा, सिंहल विजय, नया समाज और नेत्रदान" आदि एकाकियो मे समय के अनुसार रगमच मे और अभिनय कला मे जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनका उपयोग किया है। उनके कथोपकथन जानदार और जोरदार हैं। शैली मे बांकापन है। खुरदरे वाक्य, बोझिल शैली और लम्बे लम्बे सलाप कथोपकथन की हत्या कर डालते हैं। बेनीपुरी जी ने सदा ही इन दुर्गुणो से बचने की कोशिश की है। कही-कही कथोपकथन मे आगत घटना की ओर भी सकेत होने से इनके नाटक सजीव हो उठे है। अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे अनेक सूक्तिया कथोपकथन मे रख दी हैं, जो अभिनय की शोभा मे वृद्धि करती हैं।

आधुनिक एकाकीकारो मे रगमच तथा अभिनय की आवश्यकताओं को ध्यान

---

१ "अचानक दिमाग ने जोर मारा एक ड्रामा कम्पनी क्यों न खोल दी जाय। फिल्म लाइन में काम करने के बाद अभिनय कला का ज्ञान हो गया था। लेकिन ड्रामा कम्पनी खोली भी जाय तो नाटक कहां ? हिन्दी में एक भी ऐसा नाटक नजर नहीं आया, जिसे मैं वर्तमान कला की परिभाषा के अनुसार पसन्द कर सकता। इस प्रकार "बुझता दीपक" की रचना हुई।" भगवतीचरण वर्मा "बुझता दीपक", भू० पृ० ३।

२ श्री रामवृक्ष बेनीपुरी "नेत्रदान", भूमिका पृ० ६।

मे रख कर एकाकी लिखने वालो मे सर्वश्री सत्येन्द्र शरत्, चन्द्रकिशोर जैन, डा० सुधीन्द्र, देवीलाल सामर, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, गोविन्द शर्मा तथा वीरेन्द्र नारायण आदि प्रमुख हैं।

श्री सत्येन्द्र शरत् ने स्टेज इफैक्ट का विशेष ध्यान रखा है और कथोपकथन मे एक शब्द भी व्यर्थ नही कहा है। मनोवैज्ञानिक सत्यता के साथ सकेतात्मकता और सघर्षमय स्थिति का चित्रण करने की अपूर्व क्षमता है। इनके एकाकियो मे "तार के खभे, एस्फोडल, शोहदा, गुडबाई अनिता, प्रतिशोध" आदि का सविधान रगमचीय है। यह नाटक अपने आप मे पूर्ण होते हुए भी, समाप्त होने पर पाठक या दर्शक के मन मे नाटकीय पात्रो की आगामी परिस्थितियो के प्रति उत्सुकता पैदा हो जाती है। ये नाटक विकास सघर्ष को पार कर चरमोत्कर्ष तक बढते हैं और वहा सदैव के लिए समाप्त न होकर, एकदम रुक जाते है। इन नाटको का अन्त, नाटकीय अन्त के जैसा कोई गौरव ग्रहण नहीं करता। समाप्त होने पर भी कुछ शेष सा रह जाता है। उन्ही कथानकों को आगे बढा कर दूसरे एकाकी तैयार किये जा सकते हैं या फिर इन्हें ही डेवलप कर एक बडा नाटक बनाया जा सकता है।[1] सत्येन्द्र शरत् ने अपने रगमच निर्देशो मे रगमच व्यवस्था, पात्रो की रूप कल्पना और अभिनय के अतिरिक्त प्रभाव व्यजना के लिए तथा कुछ काव्यात्मक सकेत रगमचीय परिस्थिति की कल्पना को सजीव बनाने के लिए लिखे हैं। नाटको की ने भाषा, सरल मर्मस्पर्शी और गतिशील रखी है जिससे बनावटी तथा अस्वाभाविक प्रतीत न हो। स्वगत कथन का प्रयोग भी बिल्कुल नही किया गया है। सविधान रगमचीय होने के कारण सत्येन्द्र शरत् के एकाकी बिना किसी असाधारण परिवर्तन के आसानी से खेले जा सकते हैं। इसी कारण इनके आरम्भ मे पूर्व कथा नही दी गई है, क्योकि नाटक देखने वाले उनसे कोई लाभ नही उठा सकते। ज्यो-ज्यो नाटक आगे बढता जाता है, विगत घटनाओ के सम्बन्ध मे त्यो-त्यो पाठको या दर्शको को, पात्रो के सम्भाषणो द्वारा, सब कुछ मालूम होता जाता है। हिन्दी के अधिकाश एकाकियो मे पात्रो का परिचय एकाकीकार द्वारा ही दिया गया है, किन्तु सत्येन्द्र शरत् की एक विशेषता यह भी है कि इनके नाटको मे पात्रो का परिचय वे स्वय अपनी बातचीत मे एक दूसरे के द्वारा दर्शको को देते हैं। हमारे देश मे अभिनय कला के पिछड़ जाने से स्त्री-पुरुष साथ-साथ रगमच पर अभिनय नही कर पाते। रूढिग्रस्त समाज मे स्त्रियो का अभिनय करने के लिए भी लड़को को तैयार करना पड़ता है। अभिनय की इस कठिनाई के कारण सत्येन्द्र शरत् ने कुछ एकाकी जैसे "शोहदा" और "तार के खंभे" पुरुष पात्र प्रधान रखे हैं।[2] निष्कर्ष यह कि इनके नाटक रगमच की कठिनाइयो और आवश्य-

---

१. देखिए श्री सत्येन्द्र शरत कृत "तार के खभे" पृष्ठ १३६।

२. "तार के खभे" परिशिष्ट पृष्ठ १४०-१४२।

कताओं को कुछ हद तक हल करते हैं।

राजस्थान के कलाकार और नर्तक श्री देवीलाल सामर एम० ए० ने अपनी मडली तथा विद्याभवन उदयपुर द्वारा अभिनय के लिए अनेक एकाकियो की रचना की है। इनके नाटको के अभिनय स्कूल कालेजो मे होते रहे हैं। इन नाटको मे दृश्यो और पात्रो की सरलता है और अभिनय की कठिनाइयो को ध्यान में रख कर लिखे गए हैं। इनकी रचना के पीछे अभिनयप्रेमी छात्रो का आग्रह सर्वोपरि है और इन्हें रगमच पर सफल बनाने का श्रेय भी उन्ही को प्राप्त है।[1] इन नाटको मे बालको की रुचि और उनके मानसिक और भावात्मक विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। अनेक एकाकी, जैसे "आत्मा की खोज, बापू, परित्यक्ता, बलिदान, समस्या, बालक" आदि एक विशेष प्रयोग के रूप मे प्रस्तुत किए गए हैं और उनमे पाठको एव दर्शको की उत्कठा को उत्तरोत्तर बढाकर उन्हे चरम सीमा तक पहुचाने का पूरा यत्न है। सामर जी शैली, नाट्य-तन्त्र और विषय की दृष्टि से उत्तरोत्तर नवीन प्रयोग करते रहे हैं। सभी नाटक विद्याभवन उदयपुर के कलामण्डल के रगमच पर सफलतापूर्वक खेले जा चुके हैं।[2] "मृत्यु के उपरान्त" सग्रह के सभी एकाकी एक नई छटा और नया रग लेकर रगमच पर आये हैं। ये नाटक आधुनिक रगमच के अनुकूल हैं और नाट्यतन्त्र की दृष्टि से सामर जी इनमे पूर्ण सफल हुए हैं।

टैकनीक की दृष्टि से डा० सुधीन्द्र के एकाकी "खून की होली, राखी, नया वर्ष, सगम, रेखा का राजमुकट, राम रहमान, ज्वाला और ज्योति आदि पाश्चात्य टैकनीक तथा वनस्थली विद्यापीठ मे अभिनय के लिए लिखे गए थे। इनकी एक विशेषता प्रतीकात्मकता है। नाटकीय प्रभाव देने के लिए सुमधुर गानो का भी समावेश है। इनमे स्त्री पात्रो की बहुलता है। सुधीन्द्र का विश्वास अपने एकाकियों को अनेक छोटे-छोटे दृश्यो मे विभाजित करने मे हैं। वे अपने नाटको की चरम सीमा लाने के लिए एक अक के भीतर कई छोटे-छोटे दृश्यो मे कथावस्तु को विकसित करते हैं। समाप्ति होने पर सवेदना की पूर्ण प्रतिष्ठा होती है। जटिल दृश्यो को सजाने की व्यवस्था की कठिनाइया सोच कर नाटको का दृश्य सविधान किया गया है।

प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप फ्रायड की मनोवैज्ञानिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते है। उनकी चरित्र सृष्टि का आधार पूर्णत मनोवैज्ञानिक होता है। उनके एकाकियो की विशेषता उनकी कवित्वमय नाटकीयता है अर्थात् उनके नाटक कवित्व की नाटकीयता के प्रतीक हैं। समय समय पर उनके नाटक रगमच पर उतरते रहे हैं। उनके अभिनय की सफलता का एक कारण यह है कि काश्यप जी स्वय अभिनेता और

---

[1] श्री देवीलाल सामर, "आत्मा की खोज" एकाकी सग्रह, भू० पृ० १।
[2] देखिए देवीलाल सामर "मृत्यु के उपरान्त" भू० पृ० १।

निर्देशक रहे हैं। स्वय कई नाटको के अभिनय को निर्देशित किया है।[1] उनके अधिकाश एकाकी समस्या नाटक है। रंगमच पर नाना समस्याओ को दिखाना उनकी कला का ध्येय है। काश्यप के नाटको मे जिस तरह की भाषा का व्यवहार किया गया है, वह हिन्दी गद्य की भाषा का आधुनिकतम रूप है। इनके वाक्य प्राय छोटे-छोटे चलते हुए होते हैं, मानो वे फूल बिखेरते हुए चलते हैं। उनकी भाषा मे नाटकोचित स्वाभाविकता, सरसता और बोधगम्यता है।[2]

प्रो० गोविन्द शर्मा का नाटक के क्षेत्र मे प्रवेश उनके "लक्ष्मण परित्याग" एकाकी से होता है जिसका अभिनय १९४७ मे मथुरा के किशोरीरमण कालेज के रगमंच पर वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था। यह नाटकीय तत्वो से पूर्णत विभूषित है। कथावस्तु पौराणिक होते हुए भी उसमे कल्पना के मिश्रण से नाटकीयता आ गई है। अन्य एकाकी अभिनय के लिए लिखे गए है और उनका अभिनय हुआ है। शर्मा जी स्वय एक अभिनेता और निर्देशक हैं। व्रजनाट्य परिषद एवं व्रजकला परिषद के सक्रिय सदस्य हैं। आपके "टीपू का अन्त" और "उत्तरदायी कौन" एकाकी व्रजा कला परिषद् वृन्दावन में अभिनय किए गए हैं। "सूर का अवसान" अप्रैल १९५२ को सूर जयन्ती पर अभिनय किया गया है। "जय गिरिराज" और "नारी का दान" चम्पा अगवाल कालेज के वार्षिकोत्सव पर खेले गए है। पाश्चात्य नाटककारो की तरह शर्मा जी रगमचीय सकेतो का विशेष ध्यान रखते है। अधिकाशत दृश्य एक ही पर्दे पर खेले जा सकते हैं। पात्रो के कथोपकथनों की भाषा सजीव एव पात्रोपयोगी "टीपू का अन्त', मे उर्दू मिश्रित भाषा है, जैसे "मेरी फतह के लिए सिजदा करो।" दूसरी ओर नाना फड़नवीस की भाषा शुद्ध हिन्दी है, "उत्तरदायी कौन', मे अंग्रेजी वातावरण से प्रभावित होने से अग्रेजी के शब्दो का भी प्रयोग है। "सूर का अवसान" मे सस्कृतनिष्ठ भाषा है। शर्मा जी के सभी एकाकियो में कुछ न कुछ सदेश निहित है। समस्यामूलक अभिनेय एकाकी लिखना उनकी भावी योजनाओ का प्रधान अग है। पाश्चात्य नाटककारो मे गाल्सवर्दी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

लश्कर ग्वालियर के श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल एम० ए० के प्रारम्भिक नाटक स्कूल एव कालेजो के रंगमचो पर खेले गये हैं। अध्ययन की अपेक्षा वे मच की वस्तु हैं। अभिनय के लिए कोई उपयुक्त नाटक न मिलने पर उन्होंने स्वय ही "काश्मीर की घाटियो मे" सग्रह के नाटक लिखे। गत ५ वर्षो मे मध्यभारत मे अनेक स्थानो पर इनका अभिनय हुआ है। कुछ समय तक बम्बई मे रह कर आपने फिल्म टैकनीक भी सीखा है। आपकी रुचि सभी प्रकार के नाट्य रूपको की ओर है। आपका "नया रास्ता" सुन्दर अभिनयशील ग्रामोपयोगी नाटक है।

---

१ देखिए प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप कृत "नया युग" दो शब्द, पृ० १।

२. प्रो० वासुदेव नन्दन प्रसाद "नया युग" भू० पृ० १२।

श्री विनोद रस्तोगी के अनेक नाटक, जैसे "आजादी के वाद, पुरुप का पाप" आदि कई स्थानो पर सफलतापूर्वक रगमच पर खेले जा चुके हैं। इनके एकाकियो में छोटे छोटे गानो की भी व्यवस्था है। श्री अरुण के रोचक अभिनय योग्य एकाकियों का सग्रह "रेल का डिब्वा" नाम से प्रकाशित हुआ है। श्री रामनरेश त्रिपाठी के "पोखन" में वच्चो के अभिनय योग्य एकाकी हैं। "वापू और वा" के एकाकियो मे भी अभिनय का विशेप घ्यान रखा गया है। श्री चन्द्रकिशोर जैन के एकाकी भी खेले जाते रहे हैं। श्री विष्णु प्रभाकर के कुछ एकाकी जैसे "मा वाप, चोरहाट, पुस्तक कीट, चन्द्रकिरण, इन्सान" आदि अमेचर रगमचो पर खेले गये हैं। हिन्दी के कुछ एकाकी-कारो जिनमे श्री वीरेन्द्रनारायण प्रमुख हैं, खुले रगमच को दृष्टि मे रखकर अभिनय एकाकी लिख रहे हैं। आपका "जिन्दगी" (१९५१) नामक एकाकी एक नया प्रयोग है। "जिन्दगी" मे खुले रगमच के साधनों का उत्तम प्रयोग किया गया है। इसमें वातावरण निर्माण महत्वपूर्ण है। एकाकी के प्रारम्भ मे एक वाद्य पर कोई एक गभीर प्रकृति का राग, जैसे मालकोस प्रारम्भ हो जाता है। नए पात्रो के प्रवेश के समय नए वाद्य पर उसी राग को वजाया जाता है। जहा कथोपकथन चलता है, वहा धीमे सगीत की व्यवस्था है। जव मच पर पात्रो द्वारा कोई कार्य होता है, तो सगीत उसके अनुरूप धीमा या तेज हो जाता है। चरम स्थल पर सगीत तीव्र हो जाता है। निष्कर्ष यह है कि हिन्दी मे रगमचीय एकाकी निरन्तर नए प्रयोगो द्वारा विकसित हो रहा है, पर जितना चाहिए अभी उतना विकास नही हो सका है। इसका मुख्य कारण रगमच का अभाव है जिसकी अभिनय योग्य नाट्य-साहित्य के निर्माण के लिए आवश्यकता है।

: ८ :

काव्य-एकांकी नाटक का विकास

यथार्थवादी नाटककारो ने जहा साहित्यिक एकाकियो मे गद्य के माध्यम तथा सामाजिक समस्याश्रो का चित्रण प्रारम्भ कर दिया था, वही छायावाद काल मे नाटक साहित्य की एक नई शाखा प्रस्फुटित हो रही थी, जिसे काव्य-एकाकी का नाम दिया जा सकता है। इनमे नाटकीयता श्रौर काव्य का सम्मिश्रण है तथा वे अतीतकालीन घटनाए उठाई गई हैं, जो अपनी मार्मिकता के कारण जन मन मे बसी हुई है। काव्य एकाकियो को तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है : १ भाव नाट्य २ गीति नाट्य तथा ३ अतुकान्त पद्य मे विरचित पद्य एकाकी।

भाव नाट्य के अन्तर्गत वे रचनाए रखी जा सकती हैं जिनमे कार्य की अपेक्षा भावमयता, अनुभूति की तरलता और पात्रो का आन्तरिक सघर्ष विशेष रूप से वर्तमान है। इनमे मन की एक भावना का दूसरी भावना के विरुद्ध सघर्ष मिलता है। बाह्य परिस्थितियो का सघर्ष यदि होगा भी तो उसका प्रयोग आन्तरिक सघर्ष को तीव्रतर बनाने के लिए ही होगा।[1] भाव नाट्य वे एकाकी है जो पात्रों के आन्तरिक सघर्षो से अनुप्राणित होकर बाह्य जगत मे अपना मानस रूप स्थापित करते हैं।

गीति नाट्य का प्राण काव्य सौष्ठव, नाटकीयता तथा गेय तत्व है। इनमे घटनाए प्राय अतीत से उठाई जाती हैं। ये घटनाए ऐसी हैं जो अपनी मार्मिकता के कारण जनता की स्मृति मे घर किए हुए है।[2] यह मत आशिक रूप मे सत्य कहा जा सकता है, क्योकि कुछ गीति नाट्यकारो जैसे सिद्धनाथकुमार, चिरजीत, उदयशकर भट्ट इत्यादि ने आधुनिक जीवन और समस्याओ को लेकर गीति नाट्यो की रचना की है। गीति नाट्यो मे किसी ने करुणा का प्रसार, किसी ने भारतीय सस्कृति की झलक दिखाने, किसी ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर और किसी ने नैतिकता के स्वीकृत सिद्धान्तो पर आघात करने के लिए अपने कथानको का निर्माण किया है।[3] गीतिनाट्य पात्रो के मन के उद्वेगो और उच्छ्वसो की कवित्व-पूर्ण नाटकीय अभिव्यक्ति है, जिसमे गेय तत्व, अनुभूति और सगीत की प्रधानता रहती है। इसमे सगीत रहता है, पर गीतिनाट्य केवल सगीत भर नही है। गीति-

---

१. डा० नगेन्द्र "आधुनिक हिन्दी नाटक" पृ० ६५।

२. प्रो० विशम्भर मानव कृत "गीति नाट्य और काव्य रूपक" सा० स० ५४, पृ० १६।

३. वही।

नाट्य मे जहा ताल स्वर पर सगीत थिरकता है, वहा अभिनय कला और नाटकीयता स्वर मे स्वर मिला कर नृत्य करती है। कविता, सगीत एव अभिनय के अतिरिक्त उनमे एक अप्रतिहत कथावस्तु का भी तारतम्य होता है और सबके अन्त मे किसी विशेष भाव या समस्या का भी बोध होता है। केवल बोधमात्र ही नही, उसमे मानव जीवन के किसी ऐसे बहुमूल्य क्षण का प्रदर्शन होता है, जो हम पर अपना स्थायी प्रभाव छोड जाता है। काव्य, सगीत, अभिनय, कथा और भाव, यह सब तत्व मिश्रित होकर गीति नाट्य को कुछ ऐसा नाट्य साहित्य बना देते हैं, जो विशुद्ध काव्य एव कला के समान पढा भी जा सकता है तथा एकाकी के समान रगमच पर भी अभिनय किया जा सकता है। जो नाटकार स्वभावत कथाकार होगा, उसके गीतिनाट्य मे कथानक प्रधान हो जायेगा तथा छ शेष सभी तत्वो या उनमे से कुछ को दबा लेगा। इसके विपरीत, जो नाट्ककार काव्ययुग मे विशेष कुशल होगा, सभव है कि उसकी कथा ही शिथिल हो जाए। गीति नाट्य के लेखक को विशेष भावुक, अभिनय कला का पारखी और सगीत का मर्मज्ञ होना चाहिए। चित्रकला की दृष्टि से उसमे कम से कम इतना तो ज्ञान होना चाहिए कि वह अपनी वर्ण्य वस्तु का सजीव चित्र उपस्थित कर सके। निष्कर्ष यह है कि गीति नाट्य मे कला अपने किसी विशेष अश मे ही नही, वरन् एक सम्पूर्ण अविभाज्य रूप मे प्रकट होती है। साहित्य, सगीत एव चित्रकला की एक अपूर्व त्रिवेणी जहा अजस्त्र वेग से कलकल करती है, वहा और केवल वहा पर हम गीति नाट्य के वास्तविक सौन्दर्य, उद्भव तथा विकास के दर्शन करते हैं।

पद्य एकाकियो मे केवल माध्यम का अन्तर है। जो कथोपकथन गद्य मे रहते हैं, उनके स्थान पर पद्य एकाकीकार कवितामय कथोपकथनो का प्रयोग करता है। प्राय अतुकान्त छन्द (ब्लैंक वर्स) का उपयोग किया जाता है। यथा-सभव कथोपकथन मे रग सूचनाए, पात्रो का वर्णन, कार्यकलाप इत्यादि भी दिया जाता है। इनमे वर्णन की प्रधानता होती है। भाव नाट्य और गीति नाट्य की अपेक्षा पद्य एकाकी स्वाभाविक और जीवन के अधिक समीप होते हैं। इनमे सगीत या काव्य के उच्च गुणो की ओर अधिक ध्यान नही दिया जाता। एकाकीकार कथावस्तु, कथोपकथन और स्वाभाविकता की ओर अधिक ध्यान देता है।

भाव-नाट्य की प्रगति

भाव-नाट्यो के प्रयोग करने का श्रेय प० उदयशकर भट्ट को है। भाव नाट्य और गीति नाट्य का भेद भी भट्टजी के एकाकियो द्वारा प्रकट हुआ है। कुछ महानुभाव दोनो प्रकारो को एक ही मानते हैं, किन्तु भाव-नाट्य गीतिनाट्य से भिन्न है, क्योंकि गीतिनाट्य मे स्वर और गेय तत्वो का प्राधान्य होने के कारण मानसिक अन्तर्द्वन्द्व उतने सुचारु रूप से अभिव्यक्त नहीं हो पाता, जितना कि भाव-नाट्य मे।

भाव-नाट्य मे सदैव मनोवेग एक तरग की भाति वाणी से अभिव्यक्त होते है, और आगिक विकार तदनुरूप अभिनय करते चलते हैं। इसलिए भावनाट्यो मे प्रतीको का होना आवश्यक है। जितनी प्रतीको द्वारा तीव्र अभिव्यक्ति होगी, उतना ही वह भाव-नाट्य अधिक सफल होगा, प्रतीक को जीवन दर्शन के रूप मे हार्दिक उद्गारो का साधन माना जाता है।

उदाहरण के लिए भट्ट जी के भाव-नाट्य की मत्स्यगधा, एक स्त्री ही नही है प्रत्युत वह स्त्री मे व्याप्त यौवन की तरगो की प्रतीक है, जिससे वह सघर्ष करती है। अनग उसका एक दूसरा प्रतीक है, जो विश्व का सौन्दर्य बनकर युग युग से प्राणी मात्र को अनुप्राणित करता आ रहा है। उसकी विफलता वेदना एक दूसरा प्रतीक बनकर मत्स्यगधा मे अभिव्यक्त हुई है। अनग और वेदना इन दोनो का सामन्वित रूप हमे मत्स्यगधा में मिलता है। इसी प्रकार भट्ट जी के दूसरे भाव-नाट्य की राधा एक मात्र पुरुष के प्रति आसक्त प्रेम का प्रतीक है। जैसे प्रेम कई धाराओ मे कई स्रोतो से उठकर अपनी अभिव्यक्ति देता है और मानसिक उथल पुथल को आन्दोलित करता है। भट्टजी ने उसी का अभिव्यक्तिकरण राधा को प्रतीक मानकर इस नाटक में चित्रित किया है।

मत्स्यगधा यौवन की उद्दाम वासना का अध्ययन है। काम यहा मूर्तिमान हो उठता है। नाव मे बैठे हुए ऋषि पराशर का मन रतिभाव से परिपूर्ण हो उठता है और वे केलि प्रस्ताव करते हैं। मत्स्यगधा द्वारा प्रस्तुत की गई समाज और नीत की अनेक बाधाओ की अवहेलना करते हुए उनका कामार्त मन मत्स्यगधा की दलित आकाक्षा, यौवन लालसा, तथा वासना के तूफान को उद्वेलित करता है। सम्पूर्ण भाव-नाटय मत्स्यगधा तथा पराशर के हृदय की दुर्दाम लालमा, सैक्स का विश्लेपण, प्रकृति की पुकार, समाज का बन्धन, यौवन का सघर्ष तथा अत मे उसकी पराजय चित्रित करता है। इसमे मनोवेगो का बडा मार्मिक चित्रण है।

भट्ट जी का "विश्वामित्र" एक प्रतीकात्मक भाव-नाट्य है, जिसमे पुरुष और नारी का सघर्ष चित्रित किया गया है। एक ओर अहकार, बल, शक्ति अभिमान चित्रित है, दूसरी ओर नारी का प्रेम, कोमलता, विनम्रता और भावुकता है। इसे हम विश्वामित्र, मेनका और उर्वशी का नर नारी के परस्पर सम्बन्ध पर एक सवाद कह सकते हैं। राधा भाव-नाट्य मे भट्ट जी ने नारी के मनोभावो का विश्लेपण किया है। राधा का कृष्ण के प्रति सहज आकर्षण विकास, समर्पण और तादात्म्य इनका प्रधान विपय है। पौराणिक होते हुए भी इन भाव-नाट्यो मे आधुनिक बुद्धिवादी और मनोवैज्ञानिक ढग से जीवन की समस्याओ का समाधान प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त विक्रम की द्विसहस्राब्दी से प्रेरित होकर भट्ट जी ने तीन और भाव-नाट्य लिखे हैं : १. कालीदास २. मेघदूत तथा ३. विक्रमोर्वशी। कालीदास मे कवि की रचनाओ द्वारा उसके मानस के प्रत्यक्षीकरण की चेष्टा है। मेघदूत मे कालीदास के

महाकाव्य का रूपान्तर है। पर नवीन नाटकीय घटनाओं और मौलिक सवेदनाओ से पूर्ण है। विक्रमोर्वशी कालीदास के इसी नाम के नाटक पर आधारित है। इनमे पात्रों के अन्तर्मन की झाकी हृदय का प्रेमोद्दीपन, कम्पन, रोमाच, आत्म भर्त्सना, ग्लानि, अनुताप, विरह आदि भाव सजीव हो गये हैं। भट्ट जी के "गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण" (१९५५) मे द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व का जो पहलू चित्रित किया गया है वह वरवस शेक्सपियर के अपने आप से लडने वाले अनेको चरित्रो की याद दिला देता है। भट्ट जी गाधी जी के व्यक्तित्व से भी प्रभावित हैं। हास्य का पुट भी पाया जाता है। कला की दृष्टि से पद्य के साथ गद्य का समावेश इनके काव्य नाटको मे हुआ है। भाषा मे सस्कृत शैली का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। प्रकृति के रम्य वर्णनो तथा मान-उथल-पुथल अकन वडी कुशलता से हुआ है।[1] भाव, भाषा और काव्य की दृष्टियों से ये भाव-नाट्य सफल हैं।

गीति एकाकियों की प्रगति

गीति एकाकियो की दशा मे प्रथम प्रयत्न जयशकर प्रसाद ने अपने "करुणालय" मे किया है। प्रारम्भिक प्रयोग युग की रचना होने के कारण इसमे काव्य और नाटकत्व का सम्मिश्रण तो है, किन्तु यह एक अपरिपक्व रचना है। इसमे मानसिक सघर्ष का प्रयोग दुर्वल है। यह मात्रिक छन्द मे लिखा गया है। अभिनयात्मक शैली मे होने के कारण इसमे एक प्रकार की गति, रोचकता और सजीवता आ गई है।

दूसरा गीति नाट्य श्री मैथिलीशरण गुप्त का "अनघ" है। यह एक सैद्धान्तिक नाटक है, जिसमें युगधर्म के प्रतीक का सृजन ही मुख्य है। इसमे हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के सामाजिक पक्ष की झलक दिखाई गई है। मघ निश्चित ही गाधी नीति का प्रतीक है। आलोचक मानव जी का यह मत ठीक है कि यद्यपि मघ को गुप्त जी ने गौतमवुद्ध का एक साधनावतार वतलाया है पर महात्मा गाधी के व्यक्तित्व, सिद्धान्त और कार्यो से प्रभावित होकर उन्होने इस चरित्र का निर्माण किया है। इसमे सत और असत का सघर्ष चित्रित किया गया है। मघ मानवता का प्रेमी, प्रेरक और पोषक है। वस्तु की एकता "अनघ" मे मोटे रूप मे पाई जाती है। घटनाए यत्र प्रेरित सी अन्त मे मुख्य कार्य मे पर्यवसित हो जाती हैं। यह एकाकी चरित्र प्रधान है। इनका उद्देश्य मघ के चरित्र को स्पष्ट करना रहा है। इसकी क्रियाशीलता की प्रमुखता रही है, जिससे गीति तत्व मे व्यवधान उपस्थित होता है।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी रचित "स्वर्ण विहान" दस दृश्यो में राष्ट्रीय भावनाओ को मुखरित करने वाली प्रवुद्ध भारतीय चेतना की अभिव्यक्ति है। इसमें अप्रत्यक्ष रूप से भारत की राष्ट्रीय जागृति उपस्थित की गई है। किस प्रकार भारत की प्रसुप्त स्वातन्त्र्य भावना गाधी जी की प्रेरणा से जागृत हुई, जनता ने कैसे धीरे-धीरे अपने

१ देखिए मानव जी कृत "गीत नाट्य और काव्य रूपक" सा० स० ५४।

अतीत गौरव, देश प्रेम, उत्तरदायित्व को सम्हाला, और क्रान्ति की ये सब तत्व इस गीति नाटक मे उभारे गये हैं। मूल भावना राष्ट्रवाद है। नाटक का कथानक शिथिल है। जन क्रान्ति के मध्य लालसा का प्रेम प्रसग मूल भाव को निर्बल कर देता है। प्रबुद्ध भारतीय चेतना की अभिव्यक्ति मोहन के चरित्र मे मूर्तिमान हो उठी है। लालसा के चरित्र मे प्रेम साकार हो उठा है। "स्वर्ण विहान" में नाट्य तत्व की शक्ति क्षीण है।

कविवर निराला कृत 'पचवटी प्रसग" पचवटी मे राम, लक्ष्मण, सीता के जीवन का चित्रण करता है। पात्रो के हृदय का प्रकृति प्रेम, सौन्दर्य, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य का अच्छा चित्रण हुआ है। कवि कही कही कुछ अधिक चिन्तन प्रधान हो गया है। व्यष्टि और समष्टि, माया और ज्ञान, सृष्टि स्थिति, प्रलय आदि का विवेचन नाटकीयता को आघात पहुचाता है।

श्री भगवतीचरण वर्मा का "तारा" वासना तथा धर्म-भावना का अन्त सघर्ष प्रस्तुत करता है। तारा उद्दाम यौवन से परिपूर्ण युवती है। वह अपनी यौवन सुलभ वासनाओ को नियंत्रित नही कर पाती, दूसरी ओर कर्त्तव्य उसे पतन के मार्ग से रोकता है। वासना और बुद्धि का सघर्ष सुन्दरता से चित्रित किया गया है। इसमें अन्तर्सघर्ष होने के कारण नाटकत्व की प्रतिष्ठा हो गई है। तारा एक सफल गीति नाट्य है यद्यपि उसमे रग सकेतो की कमी है परन्तु मन का सघर्ष बड़ा सबल और मनोवैज्ञानिक है। भावना मे नाटकोपयुक्त उत्थान पतन है, वस्तु के विधान में एकता है, गठन है वासना की रगीनी और शक्ति दोनो के सुन्दर चित्र हैं। पहले प्रेम और भक्ति फिर आकर्षण और नैतिकता अन्त मे वासना और कर्त्तव्य के अन्तर्द्वन्द्व ने इस कृति मे चमक लादी है। वर्मा जी के दो नवीनतम गीति नाट्य "महाकाल" (१९५३) और "द्रौपदी" (१९४५) हैं। महाकाल मे पाच दृश्यो मे काल की स्थिरता का मार्मिक चित्रण है। इसका अन्त बड़ा गभीर हो उठा है। "द्रौपदी" दस दृश्यो मे महाभारत की सम्पूर्ण कथा चित्रित करता है। इसमे द्रौपदी के चरित्र को विशेष रूप से उभारा गया है। भयकर नरसहार देखकर द्रौपदी को आत्मग्लानि होती है। अपने दर्द पर उसे तरस आता है कि क्यो वह महाभारत जैसे बडे युद्ध का कारण बनी। युधिष्ठिर उसे समझाते हैं, "कर्त्ता तो और देवि, मानव केवल निमित्त।" इसके नवम दृश्य के गान मे आज के युग का ही जैसे चित्रण हो गया है।

कविवर आरसीप्रसाद सिंह के दो गीति नाट्य प्रकाशित हो चुके हैं, मदनिका[1] तथा धूप छाह।[2] मदनिका हमारे जीवन मे आनन्द का एक मधुर क्षण बन कर आती है, वह क्षण जब मनुष्य सुख के असीम पारावार मे निमग्न सा हो जाता है, दुख का

---

१. वीणा, मार्च १९४१।

२. धूप छाह, नई धारा, अगस्त १९५० में प्रकाशित।

कही कोई चिन्ह तक नही रहता। चारो ओर हर्ष की कोमलकान्त किरणें फूटी फूटी सी पडती हैं। मन की तितली डाली डाली पर नृत्य सी करने लगती है और अग-प्रत्यग एक अनिर्वचनीय सुषमा की तरग माला मे खिलखिला से उठते हैं।

जीवन में यौवन की वसन्त रागिनी अगडाई लेकर जागती है और उसके साथ ही जाग उठता है सारा मधुवन। आशा के नव नव कुसुम खिल उठते हैं, इच्छाओ के नव नव कोकिल पचम स्वर में कूकने लगते हैं, अपरिमित रस के पुज भ्रमर गुजन करने लगते हैं औ सौंदर्य की सुकुमार तितलिया सतरगी चुनरी पहिनकर नृत्य करने लगती हैं। सम्पूर्ण वातावरण एक अपूर्व सगीत, आनन्द सौंदर्य रस एव लीला की अबाध धारा में ओत-प्रोत सा है। सर्वत्र एक मन्द मन्द मधुर लय की झकार और मान्द्र मन्द्र ताल की धीर गति गोचर होती है। "मदनिका" आधुनिक हिन्दी साहित्य के गीति नाट्यों मे प्रथम बार एक सुनिश्चित दिशा एव अभिनव दृष्टिकोण लेकर उपस्थित हुई है। मदनिका मे हम एक ही स्थान मे काव्य और चित्र, सगीत और अभिनय, रूप और अरूप तथा स्थूल और सूक्ष्म के दर्शन करते हैं।

"धूप छाह" मानव जीवन का एक सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित करता है, जिसमे यदि हास है तो उसके अन्तराल मे छिपा हुआ एक करुण क्रन्दन भी है। कही उच्छल आनन्द है, तो उसकी पृष्ठभूमि मे अश्रु के दो मोती ढुलकाता हुआ दुख भी है। कही एक दूसरे को कोमल बाहुपाश मे बाधता हुआ उन्मत्त प्रेम विलास है, तो कही ससार से वितृष्ण अपरिमित निराश एव उदासीन सन्यास भावना भी है।

"धूप छाह" के पद पद मे हमे यह सकेत मिलता है कि जीवन वास्तव मे धूप छाह ही है। ससार एक चल-चित्र है, जहा कुछ भी स्थिर नही, अमर नही, चिरन्तन नही। परिवर्तन ही सृष्टि का शाश्वत नियम है। वियोग ही सयोग का एक मात्र परिणाम है। जो व्यक्ति इस ससार मे आते हैं, सभी मानो किसी अध नियति के वशीभूत होकर अपना खेल खेल जाते हैं। यह ससार एक विशाल रगमच है, जिसमे राजा और रक, कृषक और कलाकार, साधु और दुरात्मा, दार्शनिक और सैनिक, सभी अपना अपना अभिनय करते हैं और फिर अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। जब तक यह ससार है, तब तक यह द्वन्द्व है। सुख और दुख, धूप और छाया, पाप और पुण्य तथा हास और रुदन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इस अनादि अनन्त जगत मे यह द्वन्द्व भी उतना ही अनादि अनन्त है। यही प्रकृति है। यही प्रकृति कही किसी विजेता के उद्दीप्त अभियान मे सिंह गर्जन कर रही है और कही किसी दुर्बल के कण्ठ मे करुण हाहाकार।

इसलिए "धूप छाह" नाटक मानव जीवन का एक वास्तविक चित्रण है। किसी शून्यवादी दार्शनिक अथवा निराशावादी कलाकार का अनर्गल प्रलाप नही, क्योकि हम जानते हैं कि सुख क्षणिक है, नश्वर है। अत हम इस बात की चिन्ता नही करते कि दुख क्यो आता है। यदि पुष्प खिलना शाश्वत है तो उसका मुरझाना भी शाश्वत

है। जीवन जमुद्र की ये लहरें है जो एक के पश्चात एक निरन्तर उठती रहती हैं। "धूप छाह" का यह सन्देश है कि एक अभिनेता की हमे अपना अभिनय कुशलतापूर्वक निभा लेना चाहिए। हमे जो जीवन मिला है, वह ससाररूपी रगमच पर केवल अभिनय कला प्रदर्शन के लिए ही है। निर्देशक कोई अन्य है, जिसके लिए और जिसके सकेत पर ही यह सारा अभिनय कार्य सपादित हो रहा है। हमे अपनी सम्पूर्ण योग्यता एव कला से ससार रूपी रगमच पर अपने जीवन नाटक का अभिनय करना चाहिए।

कविवर दिनकर की "मगध महिमा" (१९५१) उच्च काव्य गुणो से ओतप्रोत गीति नाट्य है। इसमें सगीत का आधिक्य है। कुछ दृश्यो के कथोपकथनो को छोडकर, जिनसे कथासूत्र बनता है, सम्पूर्ण नाटक संगीत से परिपूर्ण है। इसमें गौतम बुद्ध के निर्वाण प्राप्त करने से लेकर मगध के चन्द्रगुप्त के समृद्धकाल और अशोक के लिए विजयोपरान्त वैराग्य तक का चित्रण है। प्रथम दृश्य में नालन्दा के एक खडहर में गैरिक वस्त्र पहिने हुए कल्पना खडहरो के भग्न प्राचीरो की ओर जिज्ञासा से देखती हुई गाती है, नैपथ्य से इतिहास उत्तर देता है। धीरे धीरे मगध के इतिहास के स्वर्ण युग के एक एक दृश्य खिचते हैं। सुजाता और गौतम चन्द्रगुप्त के दरबार में सेल्यूकस का पराजय स्वीकार, भारत से मित्रता और अपनी पुत्री को अर्पित करना, तथा अशोक का कलिंग विजय द्वारा उत्पन्न परिताप, ये तीनो दृश्य उपस्थित किए जाते हैं। यह मगध का गौरवमय इतिहास प्रस्तुत करने का एक सफल प्रयत्न है। इतिहास और कल्पना पात्रो के रूप में आकर मगध का महिमामय इतिहास विभिन्न दृश्यो के रूप में प्रस्तुत करते हैं। कवि की वाणी में पौरुषपूर्ण हुकार तथा हृदय में देश के अतीत गौरव के प्रति गहरा प्रेम है। देश की क्रांति के छद्मावेश के प्रति सहज स्नेह है। आधुनिक समाज की विषमता, अध पतन, बुभुक्षित अवस्था देखकर उन्हें अनायास ही भारत का अतीत स्मरण हो आता है। इतिहास प्रतीक बनकर उपस्थित होता है। इतिहास के ऐसे ओजपूर्ण स्थलो और प्रसिद्ध व्यक्तियो को चुनना जिनसे हमारे हृदय में अपनी अतीत सस्कृति के अभिमान के अकुर उत्पन्न हो, दिनकर जी की विशेषता वर्तमान की विभीषिका से मुक्ति प्राप्त करने के लिए दिनकर इतिहास से बल प्राप्त करते हैं। भारतीयता के प्रति स्वाभाविक ममता पाठको के हृदय में उत्पन्न करते हैं।

सेठ गोविन्ददास का "स्नेह या स्वर्ग" गीतिनाट्य तथा भाव-नाट्य के मध्य की वस्तु है, जिसमें लयमय सवाद तथा स्वरो के अवरोहो के साथ ही परिस्थिति से उत्पन्न मानस द्वन्द्व की झलक उपलब्ध है। इसमें मानव जीवन के उस शाश्वत् प्रेम तत्व का विवेचन है, जो एक ही क्षण स्वर्ग या नर्क बना सकता है। इस नाटक में मानव हृदय का द्वन्द्व नाटकीय संघर्ष उत्पन्न करता है, बाह्य परिस्थितिया असमर्थ निश्चेष्ट सी रहती हैं। मुख्य पात्री स्नेहलता की भावनाओ का आन्तरिक विश्लेषण जितना सतर्क और सच्चा है उतना बाह्य निरीक्षण नहीं। सेठ जी मे मन के स्तर खोलने की क्षमता है।

स्नेहलता के आन्तरिक सघर्ष का चित्रण मनोवैज्ञानिक है।

नाट्यकार ने इस गीति नाट्य के कथानक को होमर के इलियड में वर्णित एक कथा पर आश्रित किया है। माइकेल मधुसूदन दत्त के मेघनाथ वध में प्रयुक्त अभिन्नाक्षर छन्द में इसकी रचना की है। भाषा में गति तथा सवादो में यत्र तत्र सूक्तियो का अच्छा समावेश है। पद्माकर की अनुप्रास प्रियता का भी प्रभाव दीखता है। नाटकीय प्रभाव का विशेष ध्यान रखा गया है। गीति नाट्य के क्षेत्र में सेठ जी का प्रथम प्रयत्न होते हुए भी नाटक यथेष्ठ सफल रहा है।[1]

श्री रामसिहासन राण उन्मुक्त का "मास का विद्रोह" (१९४९) छ दृश्यो में एक प्रतीकात्मक गीति नाट्य है। मास और आत्मा का सघर्ष चिरन्तन है। प्रत्येक युग में आत्मा ने मास की पाशविक वृतियो को शान्त करने की अखड साधना की कोशिश की है, किन्तु इसके विपरीत प्रत्येक बार मास ने आत्मा के प्रति विद्रोह किया है। बापू की समुन्नत आत्मा ने मास के असुरो को देवता बनाना चाहा, किन्तु वहा भी मास ने अपना भयकर रूप प्रदर्शित किया। महात्मा गाधी गोलियो के शिकार हुए। उनके सत्य और अहिसा के सन्देश को सुरक्षित रखने के लिए उनका आध्यात्म और जीवन विश्लेषण समस्त राष्ट्र में व्याप्त हो गया। प्रस्तुत गीति नाट्य में महात्मा जी के इस सन्देश को स्पष्ट किया गया है। इसमें पुरुष द्वारा सत्य की हत्या हुई है। सत्य गाधी जी का प्रतीक है। वह इस गीति नाट्य के वस्तु विषय में गाभीर्य के साथ नवीनता और बाकापन लाता है, सत्य की वाणी में महात्मा गाधी जी के ५० सघर्षमय वर्षों का जीवन मूर्तिमान हो उठता है। इसमें मानवता का सुदृढ़ स्वर सर्वोपरि है। उन्मुक्त जी की भाषा में प्रवाह और सजीवता, भाव मेंगहराई, वर्णन में स्वाभाविकता, यथार्थता चित्रमयता और चेतना में नवजागरण है।

श्री केदारनाथ मिश्र प्रभात के कई गीतिनाट्य प्रकाशित हुए हैं। जैसे "काल दहन, सवर्त्त तथा स्वर्णोदय"। "काल दहन" एक प्रतीकात्मक गीतिनाट्य है, जिसमें अतीत, चेतना, विश्वास, आशा, पौरुष, चिनगारिया आदि प्रमुख पात्र हैं। मानव क्षेत्र में मिलने वाले विविध मानसिक तथा प्राकृतिक गुणो को नाटकीय पात्रो का रूप दे दिया गया है। इन सबके द्वारा एक छोटी सी कहानी को चित्रित किया गया है। अतीत अपने यज्ञकुण्ड को प्रज्वलित करना चाहता है, चेतना प्रोत्साहित करती है, पर पुरुषार्थ भाग्यवादी बन एक वृक्ष से बंधा हुआ है। पौरुष अपनी शृखलाए तोडकर मुक्त हो जाता है और दिग्विजय करता है। अतीत का यज्ञकुण्ड प्रज्वलित हो उठता है। इस रूपक को गीति नाट्य की ओजमयी शैली में प्रस्तुत कर प्रभात जी ने पौरुष का जो कर्मठ सन्देश दिया है, वह प्रेरक है। "काल दहन" में वेदान्त के आधार पर मायावाद की पुष्टि की गई है। हिन्दी में सर्वप्रथम इसी गीति नाट्य में भारतीय पौरुष

१ प्रो॰ विनयमोहन शर्मा।

संवन मुक्त हुआ है।

"सवर्त्त" भी प्रतीकात्मक गीतिनाट्य है, जो युद्धकालीन नाटक होने के कारण तत्सम्बन्धी समस्याओ से परिपूर्ण है। सवर्त्त में प्रभात जी का कवि भविष्यवक्ता 'प्रोफेट' और आत्मवादी 'सीयर' के रूप में आया है। बापू की हत्या के विषय में प्रभात जी ने जो कुछ सवर्त्त की कविताओ में कहा था, वह कई वर्षो बाद ठीक उतरा।

"स्वर्णोदय" में तीन एकाकी गीतिनाट्य संग्रहीत हैं, दो प्रतीकात्मक है तथा एक का आधार है युद्धकालीन एक घटना। प्रभात जी की विशेषता प्रतीकात्मक गीति नाट्यो की रचना है, जिसमें आपको सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है। ये पूर्ण रूप से भारतीय हैं। उनमें भारत की आत्मा बोलती है। वाद के विवाद से पृथक रह कर भूत, वर्तमान और भविष्य को छन्दो में बाधकर प्रभात जी अपनी आत्मा को भारत की आत्मा के निकट ले जाना चाहते हैं।

प्रो० गौरीशकर मिश्र एम० ए० के "राजा परीक्षित" गीति नाट्य (१९५१) में पुराणो के कथानको को मिलाकर कवि ने राजा परीक्षित की मृत्यु को सत्य, शिव, सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। यद्यपि यह गीति नाट्य भावपूर्ण है, किन्तु ऐसी रचनाओ में जिस कलात्मकता और अनुभूति की आवश्यकता होती है, वह उतनी उसमें नही है।[1]

श्रीमती उषा देवी मिश्रा की "प्रथम छाया" भाव नाटिका सुन्दर बन पडी है। इसमें जगल के राजा, प्रकृति, उसकी सखिया विभिन्न ऋतुए हैं और सृष्टि निर्माण का वर्णन व रूप रेखा है।

श्री हसकुमार तिवारी का "मिलन यामिनी" गीति रूपक है जो रूप और कला की रानी वासवदत्ता तथा भिक्षु उपगुप्त की प्रेम कहानी पर आधारित है। जब वासवदत्ता के अंग अग सडने लगे, तो लोगो ने उसे नगर से बाहर फेंक दिया। अपने अन्तिम क्षणो में उपगुप्त आये। उन्होने अपना वचन पूरा किया। वासवदत्ता निहाल हो गई। यही कथानक लेकर इस गीति नाट्य का निर्माण हुआ है। वासवदत्ता की उपगुप्त पर आस्था अनुराग, उनकी अनुपस्थिति में विकलता तथा अंततः परिशान्ति, तथा उपगुप्त के चरित्र का त्याग, तपस्या और विराग उभारा गया है। नाटक में ७, ८ विभिन्न प्रकार के गीत है, जो वासवदत्ता के जीवन के दुख, दैन्य तथा विकलता को स्पष्ट करते हैं। तिवारी जी के "मेघदूत, कच देवयानी तथा पुजारिनी" आदि गीति नाट्यो में गीति तत्व विशेषत. सगीत पर्याप्त मात्रा में है। गीतो में प्रवाह और वेदना है।

प० सुमित्रानन्दन पत के 'रजत शिखर' और 'शिल्पी' काव्य नाटक सग्रह प्रकाशित हुए है। यद्यपि इनमें नाटकीयता एव अभिनय तत्व की मात्रा कम है, ये गभीर

---

१. डा० सत्येन्द्र : सा० सन्देश भा० १२, अं० ८, पृ० ३३५।

विचार तथा उत्कृष्ट काव्य के गुणो से विभूपित हैं। इनमें प्रकृति की पृष्ठभूमि का कलात्मक प्रयोग किया गया है। पत की प्रतिभा प्रकृति के रम्य प्रागण में अठखेलिया करती हुई दृश्य जगत के नाना रूपो और अगोचर व्यापारो को उद्घाटित करती है। कवि ने प्रकृति के सूक्ष्म स्पन्दनो की धडकन सुनी है, किन्तु वह योरोप के कलावाद से अछूते नही रह सके है।[1] "रजतशिखर" में आधुनिक समस्याए भी विवेचना का विषय बनी है, जैसे शरणार्थियो की समस्या।

"फूलो का देश" अरविन्द से प्रभावित आध्यत्मिकता और भौतिकवाद का समन्वय प्रस्तुत करता है। इसमें पत जी वैज्ञानिक आध्यात्मिक चेतना के प्रति आत्म-समर्पण करते हुए दिखाई देते हैं। राजनीतिक विद्रोही जनो को भी सत्य और अहिंसा के आधार पर पारस्परिक एकता की स्थापना का महत्त्व स्वीकृत कराया है। "उत्तरशती" रूपक मे सन् ५१ के पश्चात् बीसवी सदी के ५० वर्षों में नए अध्यात्म चेतना सम्पन्न विश्व के निर्माण की आशा का चित्रण है। साथ ही प्रारम्भ के ५० वर्षों के दो महायुद्धो तथा सघर्षों का चित्र है। "शुभ्र पुरुष" में गाधी जी के प्रति श्रद्धाजली है। "विद्युत वसना" में स्वाधीनता की चेतना का स्वरूप निर्धारण है और "शरद" में शरद ऋतु का महत्व तथा अन्य ऋतुओ से उसकी श्रेष्ठता का वर्णन है। यह शुद्ध प्रकृति का रूपक है, जिसमें सभी ऋतुओ के सुन्दर दृश्य हैं। शरद को रहस्यमी अप्सरा के रूप में देखा गया है। डा० कमलेश ने सत्य ही लिखा है, अन्तिम रूपक को छोडकर शेष में भारतीय दर्शन और अध्यात्म गरिमा का उद्घोष है। ओज गुण का समावेश इनकी विशेषता है। प्रकृति प्रेम तो कवि के प्राणो का अग है। अत उसका तो जहा अवसर मिलता अवश्य चित्रण हो ही जाता है। राजनीति और विज्ञान की विभीपिका के ऊपर अध्यात्म की प्रतिष्ठा का कवि का प्रयत्न सराहनीय है।[2]

विचार प्रधान होते हुए भी पत जीके काव्य रूपक आन्तरिक भावनाओ के चित्रण में विशेप सफल हैं और आधुनिक युग को पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित करते हैं। आदर्श और यथार्थ, अध्यात्मवाद भौतिकवाद, वस्तु और भावपक्षो, सृजन और विनाश, बाहर और भीतर के सतुलन से सवधित है। एक आलोचक ने सत्य ही लिखा है कि जिन जीवन मूल्यों की स्थापना पत जी ने अपनी कृतियो में की है, वे बडे व्यापक, उदार और सर्वमान्य हैं। "रजत शिखर" और "शिल्पी" दोनो गीति नाट्यो में सुन्दर भविष्य की कल्पना की गई है। अभिनय की अपेक्षा ये अध्ययन की वस्तु हैं।[3]

---

१ श्री प्रभाकर माचवे।

२ डा० कमलेश सा० सन्देश भा० १३, अ० १२ पृ०, ५३१।

३ देखिये प्रो० विश्वम्भर मानव का लेख गीतिनाट्य और काव्य रूपक सा० स०, जु० ५४, पृ० १८।

क्रमशः

इन काव्य एकाकियो में भिन्न भिन्न प्रकार के संगीत का कलात्मक प्रयोग हुआ है। पृष्ठभूमि के वाद्य सगीत की सृष्टि राग-रागनियो के आधार पर हुई है। काव्य सगीत एवं नाटकीयता के सम्मिश्रण और प्रतीको के प्रयोग से ये एकाकी अपने ढग के अभूतपूर्व है।

श्री गिरिजाकुमार माथुर के गीति नाट्य "इन्दुमती" में वैभव और सौंदर्य के वर्णन प्रभावशाली हैं, रंगभूमि के वातावरण का चित्रण सजीव है और विभिन्न देशो के वर्णन में प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर वर्णन है। आलोचक 'मानव' जी के शब्दो में इस गीति नाट्य में सामान्य पात्रो के सामान्य उल्लेख से भी कथा का सहज विकास होता है और छन्दो के परिवर्तन से घटनाओ की आवश्यक मोड और विराम मिलता है। उसके छन्द सगीत प्रधान, कल्पनाए साकेतिक और भाषा मसृण हैं।[1] माथुर साहब के अन्य उल्लेखनीय गीति नाट्य इस प्रकार हैं। १ मेघ की छाया २. ऋतु सहार ३ राम की अग्नि परीक्षा ४ धरा दीप ५. शान्ति विश्वदेवा ६. खून की रेखाए ७ व्यक्तिमुक्त ८ अमर है आलोक आदि कवि माथुर के इन गीति नाट्यो मे विविध उद्वेगो और भावनाओ का अच्छा रग उभरा है। ये अनेक मौलिक उद-भावनाओ से पूर्ण है। भाषा और छन्दो में पर्याप्त प्रवाह है।

श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा मुक्त का "वृन्दावन" (१९५५) श्रीकृष्णजन्म तथा कार्यो से सम्बन्धित काव्य रूपक है। पीडित मानवता के उद्धारक के रूप मे कृष्ण का चित्रण हुआ है। एक प्रकार की गौरवमय पावनता के दर्शन होते हैं।

रेडियो के विकास ने लेखको को काव्य नाटक लिखने की नई प्रेरणा दी है। फलत. अनेक कुशल कलाकार इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं। सर्वश्री सुमित्रा-नन्दन पत, भगवतीचरण वर्मा, उदयशकर भट्ट, केदारनाथ मिश्र, प्रभात, हसकुमार तिवारी, गिरिजाकुमार माथुर, प्रेमनारायण टडन, चिरजीत आदि ने अनेक सुन्दर काव्य नाटक लिखे है। पर जहां उनके काव्य नाटको की अपनी विशेषताए हैं, वही उनकी कुछ दुर्बलताए भी है। सामूहिक रूप से उनके नाटको के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उनमें काव्यत्व ही अधिक है, नाटकत्व कम, उनमे अत-र्जीवन का चित्रण भले ही कुशलता से हुआ है, युग जीवन की झलक कम ही मिलती है। कुछ नाटको में युग जीवन का प्रतिबिंब मिलता भी है, तो बहुत ही सूक्ष्म

"पत जी कविता में विचार करने बैठे हैं। इन विचारों के चारों ओर कल्पना का एक जाल फैला और उनके अन्तर में कविता राशि बिखरी पड़ी है। पत जी ठोस वस्तुओं, घटनाओं और भावनाओं को भी कुछ इस प्रकार की कोमलता और सूक्ष्मता से मंडित करने के अभ्यासी हैं कि जीवन की वांछित मासलता और उष्णता उनसे व्यक्त नहीं हो पाती"—मानव।

१. मानव कृत "गीति नाट्य और काव्य रूपक" साहित्य सन्देश, जु० १९५४, पृ० १९।

और प्रतीकात्मक रूप में। साथ ही उनकी कलात्मकता एव साहित्यिकता का धरातल इतना ऊचा है कि सर्वसाधारण उन्हें समझकर आनद नही ले सकता। कुछ कवियों जैसे पत, माथुर, भट्ट आदि की भाषा सस्कृतनिष्ठ है और सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य नही है। इनके कथोपकथन भी बडे लबे-लबे और मन को उबाने वाले होते हैं। श्री सिद्धनाथ कुमार ने अपने रेडियो काव्य नाटको को इन दुर्बलताओ से मुक्त रख कर हिन्दी काव्य नाटको को एक नई दिशा प्रदान की है।

श्री सिद्धनाथ कुमार के काव्य नाटको में जहाँ काव्यत्व एव नाटकत्व का मणिकाचन संयोग है, वहा उनमें कलात्मकता एव शिल्प सौष्ठव भी प्रचुरता से है। सशक्त शैली में इनमें मनुष्य के सघर्ष चित्रित किए गए हैं। इनकी उठान बहुत ऊची है, किन्तु इस क्षेत्र में हम उनकी सबसे बडी विशेषता यह मानते है कि उन्होने अपने काव्य नाटको में अपने युग को वाणी दी है। उनके नाटको से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे अपने युग के जागरूक कलाकार हैं। वे अन्यान्य काव्य नाटककारो की तरह अपने कथानको तर्क के लिए, न इतिहास पुराण के पन्ने उलटते हैं, न कल्पना के स्वप्निल लोक में विचरण ही करते हैं, वल्कि वे जिस युग और समाज में हैं, उसी की समस्याओ एव उसी के चित्रों को अपने काव्य नाटको में उपस्थित करते हैं। अपने प्रथम प्रकाशित काव्य नाटक "कवि" में उन्होने कवि के उत्तरदायित्व का यही प्रश्न उठाया है। स्वय उनके शब्दो में कवि की यह समस्या कि वह जनजीवन से निरपेक्ष स्वप्निल नील गगन में ही आनन्द से विचरण करे, अथवा युग की अस्त व्यस्त परिस्थितियो के प्रति जागरूक होकर उनके पुनर्निर्माण का प्रयत्न करे, बहुत महत्वपूर्ण है। लेखक ने इस महत्वपूर्ण समस्या का समाधान कवि के जागरूक व्यक्तित्व में ही ढूढा है। इस प्रकार कवि में काल्पनिकता पर वास्तविकता की विजय प्रदर्शित की गई है।

"सृष्टि की साझ और अन्य काव्य नाटक" में सगृहीत पाँचो काव्य नाटको में कवि ने अपने युग की समस्याओ को ही चित्रित किया है। "सृष्टि की साझ" में उसने युद्ध समस्या को अपना विषय बनाया है। हम शाति का नाम लेकर युद्ध में प्रवृत्त होते हैं, लेकिन हाथ लगती है सदा अशाति ही। नाटककार ने चित्रित किया है कि नेताओ की अनुदार नीति एव अहम् भावना के कारण युद्ध होते हे। युद्ध समस्या के सम्बन्ध में लेखक का निष्कर्ष है कि जब तक मानव के अतर में रहने वाला दानवत्व नहीं मरता, जब तक एकाधिकार एव स्वार्थ भावना का नाश नही होता, तब तक ससार युद्धमुक्त नही हो सकता, क्योकि

"मानवता की आशा है केवल सत्य, प्रेम,
मानवता के सबल है केवल न्याय, क्षमा।"

"लोहदेवता" में यत्र की समस्या है। मनुष्यो ने सुख सुविधाओ की आशा में इस यत्र युग को जन्म दिया था, किन्तु आज चारो ओर भूख, प्यास, बेकारी,

महामारी आदि के दृश्य देखने को मिलते है। इस नाटक मे यत्र युग के विकास का चित्र उपस्थित करते हुए कवि ने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि समाज के दु खो का उत्तरदायित्व यत्रो पर नही, स्वय मानव समाज पर है।

"सघर्ष" एक वहुत ही प्रभावशाली नाटक है। यह आज के एक कलाकार के अतर्सघर्ष पर आधारित है। कलाकार के मन मे एक द्वन्द्व है। वह अपने पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए धनोपार्जन की चिंता करे या उससे विरक्त होकर अपनी कला साधना में लगा रहे। इस काव्य नाटक मे कलाकार पकज का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बडा सुन्दर बन पडा है। "विकलागो का देश" में हमारे समाज की कटु आलोचना है। नाटककार का कहना है कि हमारा समाज अधो, लगडो, बौनो आदि का ही देश है जिसमें मनुष्य को अपनी शक्तियो को पूर्ण रूपेण विकसित करने का अवसर नही मिल पाता। "बादलो का शाप" एक प्रतीकात्मक नाटक है, जिसमे यह पूछा गया है कि आज जनसमुदाय के कष्टो का कारण क्या है। भाग्य का लेख या प्रकृति का शाप, या व्यक्ति या वर्ग विशेष के कर्मो का फल। अत में उत्तर दिया गया है कि वास्तविक कारण मानव निर्मित वैषम्य ही है।

तात्पर्य यह कि सिद्धनाथ कुमार के काव्य नाटको में हमारे युग एव समाज की अनेक समस्याओं का विवेचन है। इन्हें देखकर यह नि सकोच कहा जा सकता है कि सामाजिकता इतने प्रखर रूप में पहली बार इन्ही के काव्य नाटको में उभरकर आई है। इन नाटको में अनेक समस्याए आई है और यह प्रश्न उठ सकता है कि काव्य नाटक के माध्यम से उनका अकन कहा तक सफल ढग से हो सका है। ध्यान से देखने पर सिद्धनाथ कुमार के काव्य नाटको की यह विशेषता ही कही जायेगी कि उनमें अकित समस्याए काव्य नाटक के स्वरूप विधान पर ऊपर से आरोपित नहीं मालूम पडती। लेखक जानता है कि जीवन के किन प्रसगो को गद्य में व्यक्त करना चाहिए इसीलिए "सघर्ष" के कुछ प्रसगो को उसने गद्य में ही लिखा है।

काव्य नाटको में यदि समस्याओ का केवल बौद्धिक विवेचन ही रहे, तो वे पूर्णत. असफल कहे जायेंगे। काव्य नाटको में रागात्मकता और मनुष्य के अन्तर्जीवन का विशेष स्थान होना चाहिए। सिद्धनाथ कुमार ने अपने काव्य नाटको में मानव हृदय के राग-विरागो, आशा-आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति भी बडी मार्मिकता के साथ की है। उदाहरण के लिए युद्ध विषयक समस्यामूलक नाटक "सृष्टि की साझ" में भी अजय, महामात्य, सेनानायक, और रेखा की आतरिक हलचल देखी जा सकती है; उनकी बुद्धि की ही नही, हृदय की भी वाणी सुनी जा सकती। इनके काव्य नाटक जीवन के समीप है, जीवन के निकट, यानी बुद्धि और हृदय दोनो के समीप। जहा एक ओर ये हमें अपने युग की ज्वलन्त समस्याओ पर सोचने को बाध्य करते है, वहीं दूसरी ओर हृदय को स्पर्श करने की पर्याप्त शक्ति भी इनमें है। हा, यह विशेषता सभी नाटको में समान रूप से है, ऐसा नही कहा जा सकता।

सिद्धनाथ कुमार के काव्य नाटको में प्रभावोत्पादकता भी पर्याप्त मात्रा में है। इसका कारण यह है कि इनके कथानक प्रधान नाटको जैसे 'सृष्टि की साझ" या, "संघर्ष" के कथानक बडे ही सुसगठित और सुसबद्ध हैं। हिन्दी के अन्यान्य काव्य नाटककारो की रचनाओ में यह विशेषता कम ही मिलती हैं। सिद्धनाथ जी के कुछ नाटक, जैसे "लोह देवता, विकलागो का देश" विचार प्रधान कहे जाएगे पर इनकी भी विशेषता इस बात में है कि इनमें विचारो की सुसबद्धता है, एक निश्चित बिन्दु से इनका प्रारम्भ होता है, एक निश्चित विन्दु पर इनका अत इसीलिए पाठको पर एक निश्चित प्रभाव छोडने की इनमें अद्भुत क्षमता है। कुछ नाटको में नए प्रयोग है जैसे कुछ नाटको में व्यक्तियो को पात्र बनाकर जन समुदाय सा ही पात्र रूप में उपस्थित किया है। पात्रो के अतर्द्वन्द्वो का सफल चित्रण है। "सृष्टि की साझ" में स्वप्न दृश्य भी एक सुन्दर प्रयोग है। कथोपकथन सशक्त एव भावानुरूप हैं। उनमें गति है, प्रवाह है जिससे कही भी एक-रसता नही आने पाती। उनकी सहज बोधगम्यता और सामान्य भाषा का प्रयोग भी विशेषताए है। इनकी प्रसादगुण सम्पन्न भाषा में लय और प्रवाह है। भावाभि-व्यजना की शक्ति है और सामाजिक कटुताओ पर व्यग्य करने की क्षमता है। रेडियो द्वारा प्राप्य सुविधाओ के प्रयोग के कारण इन रेडियो नाटको की टेकनीक सशक्त है।

पद्य एकाकी इस वर्ग में वे एकाकी आते है जिनमें साधारणत गद्य के स्थान पर पद्य का प्रयोग किया गया है और सगीत अभिनय इत्यादि को कोई विशेष महत्व प्रदान नही किया गया है। इस वर्ग का सर्व प्रथम एकाकी बाबू सियारामशरण गुप्त का "कृष्णा" (१९२३) पद्य एकाकी है, जिसमें कृष्णा के आत्म बलिदान का कथानक कथोपकथन में चित्रित किया गया है। कई दृश्यो में होते हुए भी नाटक सफल है। अतुकान्त पद्यो में लिखा गया है। इसकी निर्बलता यह है कि इसमें बहुत से पात्रो को स्थान दे दिया गया है, जिससे चरित्र ठीक प्रकार से नही सध सका है।

श्री आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव के चार पद्य एकाकी प्रकाशित हुए हैं। १ पार्वती और सीता २ शिवाजी और भारत लक्ष्मी ३ नूरजहा ४ चाणक्य और चन्द्रगुप्त। इनके कथानक पौराणिक और ऐतिहासिक है। अतुकान्त छन्द के कथोपकथनो मे "पार्वती और सीता" में पार्वती जी प्रकट होकर सीता जी को उनके भावी जीवन की एक झाकी प्रस्तुत करती हैं। इस पद्य एकाकी में सीता के चरित्र गौरव, पति प्रेम और कष्ट सहिष्णुता को उभारा गया है। "शिवाजी और भारत लक्ष्मी" में भारतलक्ष्मी शिवाजी को आधुनिक भारत की दुरावस्था का परिचय देती है। शिवाजी काल की समस्त राजनीतिक, धार्मिक स्थिति चित्रित की गई है। इसका मूल स्वर स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता है। "नूरजहा" में नूरजहा तथा उसकी पुत्री लैला का वार्तालाप है। नूरजहा अपने समग्र जीवन की सफलता का चित्र अपनी पुत्री के समक्ष खीचती है। "चाणक्य और चन्द्रगुप्त" में चाणक्य द्वारा राजत्व के उत्तरदायित्व और कर्त्तव्यो पर प्रकाश डाला गया है। ये पद्य नाटक गभीर शैली में लिखे गये हैं और आदर्शवाद से

प्रभावित है। आदर्श सीता, शिवाजी, नूरजहा और चन्द्रगुप्त के चरित्रो में उभारा गया है।

कविवर महेन्द्र भटनागर के "खेतीहर, खेतो में और अभियान" में जनता के दुखदर्द, उनके सघर्ष और विजय के चित्र खीचे गये हैं। समाज की पीड़ा जीवित होकर बोल उठी है। इनका आकार छोटा है।

श्री प्रेमनारायण टडन एम० ए० का "कर्मपथ" आचार्य वृहस्पति के पुत्र कच के चरित्र गौरव को स्पष्ट करता है जो स्वदेश गौरव की रक्षा में मर मिटने में परम सौभाग्य समझता है। कच के चरित्र में राष्ट्रीयता की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई है जैसे

कच · "मार दूंगा लात समस्त ससार के सभी प्रलोभनो पर, जननी स्वर्णभूमि के लिए अर्पण कर दूगा प्राण भी सहर्ष ही।"

श्री जमुना प्रसाद गौड का "स्पृहा की दीवार" एक प्रतीकात्मक पद्य एकाकी है जिसमें स्वदेश, भारती, रागिनी इत्यादि पात्र उठकर भारत के अतीत गौरव तथा आधुनिक दुरावस्था का इतिहास प्रस्तुत करते हैं। नाटक गभीर है।

श्री उग्र का एकाकी गीति प्रहसन "हवाई हैदराबाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन" में १९४० के लगभग साहित्यिक जगत का एक व्यंग्यात्मक हास्यमिश्रित चित्र उपस्थित किया गया है। इसमें प० रामनरेश त्रिपाठी, प० बनारसीदास चतुर्वेदी, बाबू दुलारेलाल, प० श्रीराम शर्मा, श्री जैनेन्द्रकुमार, ठा० श्रीनाथसिंह और बच्चन इत्यादि साहित्यकारो पर व्यक्तिगत तथा उनके साहित्य पर हास्य व्यंग्य है।

निष्कर्ष यह कि हिन्दी में काव्य-एकाकी और रेडियो काव्य-रूपक प्रगति के पथ पर आरूढ हैं। अनेक प्रतिभाशाली हिन्दी कवि इस धारा को पुष्ट बना रहे हैं। परन्तु अभी सफल काव्य रूपको की सख्या बहुत कम है। कुछ काव्य रूपको में लम्बे कथोपकथन, अव्यवस्थित कथावस्तु, विशृखल केन्द्रीय भावना आदि निर्बलताए हैं।

: ६ :

नवीन हिन्दी एकांकी का अन्तरंग दर्शन

नवीन हिन्दी-एकाकी केवल मनोरजन की वस्तु ही नहीं है, प्रत्युत गभीर सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओ के सुलझाव तथा नवीनतम दृष्टिकोण प्रस्तुत करने, समाज सुधार, जीवन और समाज के मूल्यो की आलोचना करने, प्राचीन गौरव प्रदर्शित करने तथा राष्ट्री नव निर्माण में प्रचारात्मक साहित्य निर्माण में प्रचुर सहयोग प्रदान कर रहा है। हिन्दी एकाकीकारो ने अनेक अछूते विषय, नई समस्याओ तथा नवीन दृष्टिकोणो को अभिव्यजन का विषय बनाया है। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार हिन्दी एकाकियो में हमारे जीवन की अभिव्यक्ति तीन प्रकार से ही रही है। १ हमारी संस्कृति की व्याख्या २ इतिहास और राष्ट्रीयता के प्रति आस्था और ३ दैनिक सामाजिक समस्याओ का हल। वर्मा जी का यह वर्गीकरण उचित है, क्योकि आधुनिक हिन्दी एकाकी इन तीन बडी धाराओ में ही प्रवाहित हो रहा है।[1] सभी समस्याए तीन वर्गों के अन्तर्गत आ जाती हैं।

१. सांस्कृतिक नैतिक धारा : हमारी सस्कृति की व्याख्या के अन्तर्गत पुराण, धर्म, नीति तथा प्राचीन महाकवियो के काव्य और नाटक तथा उनसे सम्बन्धित प्रसग नए विचारो, तर्क और नवीन ढग से लिखे जा रहे है। श्री उदयशकर भट्ट ने अपने कालीदास, विक्रमोर्वशी, मेघदूत, राधा, मत्स्यगधा, विश्वामित्र आदि गीति नाट्यो में, श्री शभूदयाल सक्सेना के नन्दरानी, चद्रग्रहण, पचवटी, गगाजली, वल्कल आदि में, श्रीसद्गुरूशरण अवस्थी ने अपने कैकयी, शम्बूक, विभीषण, तुलसीदास, ध्रुव, प्रह्लाद आदि में, श्री चतुरसेन शास्त्री ने सीताराम, राधाकृष्ण, हरिश्चन्द्र शैब्या, श्री भरत आदि में, डा० रामकुमार वर्मा ने "राजरानी सीता" में, श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के "अशोक वन" और 'विदिशा' में, प्रो० वृहस्पति के सागर मन्थन, महापडित, शकुन्तला, स्वर्ग में क्रान्ति में, डा० कृष्णदत्त भारद्वाज के प्रह्लाद, सोने की वर्षा, वृन्दा, मिथिला, आदि में अतीत भारतीय सस्कृति की व्याख्या की गई है। इनमें एक नैतिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा है। इस क्षेत्र में अन्य नवीनतम उल्लेखनीय कृतिया इस प्रकार है

श्री रामचन्द्र तिवारी के "गगावतरण, पसीने की पुत्री, और कृष्णार्जुन युद्ध" आदि एकाकियो में पुराने पौराणिक पात्रो को नये तरीके से प्रस्तुत किया है। आपके अनुसार स्वार्थ सयम सस्कृति का आरम्भ है और किसी भी समाज की सास्कृतिक उच्चता उस समाज के व्यक्तियों तथा वर्गों के स्वार्थ सयम के परिमाण से नापी जा

---

१ देखिए डा० रामकुमार वर्मा कृत "ऋतुराज", भू० १२।

सकती है। "पसीने की पुत्री" में विष्णु तथा लक्ष्मी के सम्बन्ध को तथा "कृष्णार्जुन युद्ध" में गालव के व्यवहार को नई शब्दावली और नए मतव्यो के प्रकाश में चित्रित किया गया है, यद्यपि घटनाए पुरानी ही है।

प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा कृत पारिजात "मजरी कादम्बरी" के उस स्थल पर आश्रित है, जहा पुंडरीक महाश्वेता के आकर्षण में अपने शरीर को विनष्ट कर देता है। इस एकाकी के वातावरण में एक करुण व्यथा व्याप्त है।

श्री प्रभाकर माचवे ने पुराने पौराणिक पात्रो में आधुनिक समस्याए तथा विभिन्न नई विचारधाराएं प्रस्तुत कर सर्वथा नए प्रकार के एकाकियो को जन्म दिया है। आपने "पच कन्या" क्रम के पाच एकाकी अहिल्या, द्रौपदी, मन्दोदरि, तारा, सीता आदि एकाकियो के कथानको को आधुनिक समस्याओ से परिवेष्टित कर दिया है। उनमें मानवोपरि अद्भुत न मानी जाने वाली बातें थी। उन्हे निकालकर संभव और बुद्धि-संगत बनाने के लिए कल्पना का आश्रय ग्रहण किया है। इन पौराणिक एकाकियो में आपने आधुनिक समस्याओ, तलाक, अपहृता, नारियो की समस्या, आधुनिक सस्कृति, प्रेम संबधी पाश्चात्य मनोविज्ञान आदि को भी मिश्रित कर दिया है। इनके अतिरिक्त प्रभाकर माचवे के उत्तर रामचरित, अमृत पत्रिका, कूर्माचल आदि भी नवीन दृष्टिकोण से ओतप्रोत है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल का "उर्वशी" भावात्मक शैली में 'कला कला के लिए' का आदर्श चित्रित करता है। इसमें प्रेम की उपेक्षा, नारी की कसक वेदना और पुरुष का हृदय विजय करने के लिए नारी के विविध घात प्रतिघात चित्रित किए गए हैं। "उर्वशी" में चरित्र तो महाभारत काल के है, पर उनकी गठन बहुत अंशो में आधुनिक हो गई है। उर्वशी अपना प्रणय निवेदन अर्जुन से जिन शब्दो में जितना खुलकर और जितने भावावेश में करती है वह थोडा चिन्त्य हो उठा है। इसमें भावावेश अधिक है। "शरणागत" मे कथानक राजा परीक्षित के काल का है। इसमें चित्रित किया गया है कि मृत्यु ही जीवन का परम विधान है।

श्री विष्णु प्रभाकर के कई सफल पौराणिक नाटक प्रकाशित हुए है, जैसे "नहुष का पतन"। नहुष की प्रसिद्ध कथा के आधार पर "श्रद्धा और विवेक", राम हनुमान यद्ध की कथा "शिवरात्रि" व्याघ्र और हिरनी की कथा तथा भगवान के दस अवतारो का वैज्ञानिक विवेचन विशेष उल्लेखनीय है।

श्री गणेशदत्त गौड ने अपने पौराणिक कथानको को उभारा है तथा "मीठा जहर, लीला चमत्कार, भक्तराज नन्द, जित देखो तित वही वही है, जय बोलती हड्डी, देवलोक में दीपोत्सव" आदि धार्मिक नाटको की रचना की है। नाटको की घटनाए साधारण है, आन्तरिक भावो तथा नैतिकता के स्पष्टीकरण का प्रयास किया गया है। इनके सवादो में गद्य पद्य का प्रयोग है। जीवन की अनुभूतियो को भावपूर्ण कथोपकथनो में व्यक्त किया गया है।

श्रीराम शर्मा का "जलदान" (१९४९) दानवीर कर्ण तथा उसकी माता कुन्ती की भेंट पर आधारित है। इसमें मा की ममता तथा पुत्र के उपालम्भ का सजीव हृदय स्पर्शीचित्रण किया है। कर्ण का वध हो जाता है।

श्री प्रशान्त के "सती सुभद्रा" और "खोये हुए भगवान" धार्मिक एकाकी है। "खोये हुए भगवान" उस समय से सबधित है, जब भगवान राम और जानकी स्नान करके चित्रकूट में वापिस आ रहे हैं। इस एकाकी में नवीनता तो है ही, मृदु हास्य भी है। पौराणिक जीवन के विनोद की एक झाकी मिलती है।

सती सुभद्रा (१९३६) चित्रसेन, गालव, अर्जुन, नारद इत्यादि पात्रो के बल पर खडा होता है। इसमें गालव ऋषि का चित्रण कुशल करो से हुआ है। सुभद्रा के उज्ज्वल चरित्र की स्मृति रेखा मन खिंच जाती है। "गुरू दक्षिणा" (१९४४) का कथानक पौराणिक है, किन्तु इसमें वृद्ध विवाह की समस्या का चित्रण है। आधुनिक शिक्षित समाज मे ऊची आयु में विवाह करने की दुष्प्रवृत्ति को आलोचना का शिकार बनाया गया है।

श्री भारतभूषण अग्रवाल के 'महाभारत की साझ" में महाभारत काल का सुन्दर वातावरण उपस्थित किया गया है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का "सीता की मा" (१९५०) स्वोक्तिरूपक कल्पना के आनन्द, भाषा के सौन्दर्य और नाटकीयता की दृष्टियो से सर्वथा नवीन प्रयोग है।

डा० सरनाम सिंह शर्मा अरुण के अनेक पौराणिक धार्मिक एकाकी प्रकाशित हुए हैं, जैसे नन्दीग्राम का तपस्वी, स्वर्ण मृग, साधना, परित्याग इत्यादि। इनकी विशेषता मनोविज्ञान का आधार है। नाट्यकार की दृष्टि अन्तर्जगत के भावो को समझने तथा उनकी अभिव्यजना में विशेष रूप से रही है। रस और वातावरण की दृष्टियो से ये पूर्ण हैं। आपका "जयमाला" नल दयमन्ती के स्वयवर को लेकर विरचित उसी शैली का एकाकी नाटक है। प्रसाद के अनुकरण पर इसमें हास्य विनोद लाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें दृश्यो की अधिकता है। "साधना" उद्धव तथा गोपियो का कृष्ण के सम्बन्ध में सुन्दर पौराणिक एकाकी है, जिनमें ज्ञान तथा भक्ति मार्गो का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। आपके पौराणिक एकाकियो में सर्वोत्कृष्ट नन्दीग्राम का तपस्वी है, जिसमें भरत का चरित्र गौरव प्रदर्शित किया गया है।

अध्यात्म से सम्बन्धित कुछ गम्भीर एकाकी भी प्रकाशित हुए है जिनमें गूढ तात्विक विवेचन के साथ गम्भीर विचारधारा का प्रतिपादन है जो अन्तर्जगत के भावो और चिन्तन की उद्भावना करती है। इस वर्ग में प्रो० सद्गुरुशरणअवस्थी का "पादरी" (१९४६) "ईश्वर" (१९४७) प्रो० पुरुषोत्तम डबराल शास्त्री एम० ए० का "ज्ञान की तलवार" (१९४४) अज्ञात का "कुन्ती और युधिष्ठर" (१९४९) श्री कृष्णचन्द्र मुद्गल का "अन्त" (१९५१), श्री प्रेम का "तमसो मा ज्योतिर्गम्य"

(१९५१) आदि आते हैं। श्री देवीलाल सामर के "ईश्वर की खोज" तथा "आत्मा की खोज" (१९५०) दार्शनिक विवेचना प्रस्तुत करते हैं। बुद्धितत्व की प्रधानता होने के कारण एकांकियों में जनरुचि रंजन तत्व कम है। सरदार मोहनसिंह का "नई गीता" (१९२४) उपास्य तथा उपासक की अभिन्नता, प्रेम और ज्ञान की एकता का प्रतिपादन करता है। मध्य में वर्तमान परिस्थितियों पर भी मार्मिक टिप्पणियां हैं। "खुदा और शैतान" (१९२४) में पाप और धर्म, सत्य और असत्य, खुदा और शैतान का दार्शनिक निरूपण है। स्वामी सत्यभक्त का "ईश्वर की उत्पत्ति" (१९३३) श्री सरनामसिंह शर्मा अरुण का "क्रोध विजय" उत्कृष्ट कोटि के आध्यात्मिक एकांकी हैं।

डा० रामकुमार वर्मा के "अंधकार" और "उत्सर्ग" आध्यात्मिक एकांकी हैं। "अंधकार" में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेम आवश्यक है, वह बिना वासना के नहीं हो सकता, उसे अनुशासित करने का परिणाम कभी शुभ नहीं, यह अंधकार रहेगा ही। इससे यह भी स्पष्ट है कि धर्म जीवन के लिए विष है, धर्म से मनुष्य का जीवन अंधकार से भर उठता है, धर्म और प्रेम में विरोध है। "उत्सर्ग" में बुद्धिवादी और बुद्धिजीवी के ऊपर हृदय की विजय की कल्पना है। नवीनतम पौराणिक एकांकी "भारत का भाग्य" (१९५२) में भरत के चरित्र की निस्पृहता, वैराग्य, मातृस्नेह, श्रद्धा पर प्रकाश डालता है।

प्रो० इन्दुशेखर के नाट्य रूपक "जीवन" में आनन्द व विश्वास का वास्तविक सम्बन्ध क्या है? आनन्द के विश्वास की विशेष आवश्यकता है या नहीं, कला, आशा, संतोष के सम्बन्ध क्या हैं। ऐसे अनेक दार्शनिक प्रश्नों की मीमांसा की गई है।

निष्कर्ष यह कि हमारी संस्कृति की व्याख्या की ओर हिन्दी एकांकीकारों की दृष्टि गई है और सुन्दर एकांकियों की रचना हो रही है।

२. **ऐतिहासिक राजनीतिक चेतना** : इस युग में राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्रता से चलता रहा और हम निराशा, संघर्ष तथा पराधीनता के कुहासे के मध्य नवयुग का ज्योतिर्मय रूप देखने लगे। सन् १९३७ में प्रजातन्त्रात्मक सरकारों की स्थापना हो चुकी थी। हम बाधाओं से संघर्ष करते हुए सन् १९४२ के क्रांति संघर्ष में राष्ट्रीयता की मशाल जलाए हुए थे। हिन्दी एकांकी में राजनीतिक धाराएं परम वेग और उत्साह से बहती रहीं। इनमें सम्पूर्ण भारतीय राजनीतिक संघर्ष किसी न किसी रूप में मुखरित हुआ है। हिन्दी एकांकीकारों ने जनता की क्रांति और राष्ट्रीय भावनाओं को स्पष्ट किया है।

ऐतिहासिक एकांकियों की मूल प्रवृत्ति अतीत गौरव और आदर्शवाद की ओर थी। वे किसी धर्म, वर्ग अथवा सम्प्रदाय प्रतिपालन नहीं करना चाहते थे, मजहबी कट्टरता के संकीर्ण सत्तावाद का वाहक हिन्दी एकांकी नहीं था। हिन्दी एकांकीकार जीवन के मूल्यों को नैतिक बुनियाद के सुवर्णमय पायों पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। उनके सामने अतीत भारत में जो सांस्कृतिक, धार्मिक और नैतिक उत्थान का सर्वांगीण

अभ्युदय रहा था, उसको पुनरुत्थान करने का प्रयत्न था। भारत के ऐतिहासिक वीरो के चरित्रो के विविध गौरवशाली तत्वो को प्रकाशित कर विश्व प्रेम, भ्रातृत्व, नैतिकता और चरित्र गौरव को प्रतिष्ठित करना उनका उद्देश्य था।

इनमें दो तत्व विशेष महत्व के हैं। १ भारतीय वीरो के उज्ज्वल चरित्रो का प्रचार और २ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सास्कृतिक गौरव के प्रति सचाई। कुछ एकाकीकारो, जैसे सेठ गोविन्ददास ने इतिहास के क्षेत्र में आधुनिक राजनीति का भी प्रवेश करा दिया है तथा आधुनिक राजनीतिक विषमताओ तथा भ्रष्टाचार पर व्यग्य किए हैं। राष्ट्रीय पुन निर्माण में जो विरोधी तत्व कार्य कर रहे हैं, उनका उन्मूलन भी इनका विषय बना है। राजनीतिक कथानको में चुनाव लोकप्रिय मन्त्रियो की अन्तर्स्थिति, काग्रेस मन्त्रिमडल के कार्य, मन्त्रिमडल त्यागने के बाद के चित्र, सत्याग्रहियो का मिथ्याचार, खोखलापन, मजदूर और पूजीपतियो के सघर्ष तथा शासन की आन्तरिक दुर्बलताओ को लेकर एकाकियो का निर्माण हुआ।

नवयुग का सदेश देने वाले युगान्तरकारी ऐतिहासिक एकाकीकारो में डा० रामकुमार वर्मा का कार्य सबसे ऊचा है। सास्कृतिक निर्माण तथा ऐतिहासिक आदर्शवाद के क्षेत्र में उन्हें सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है। उनमें जिस आदर्शवाद के दर्शन होते हैं, वह व्यवहारिक है। इन एकाकियो में आपने मध्ययुगीन भारतीय इतिहास और सस्कृति को पृष्ठभूमि के रूप में लिया है। कुछ में मुगल काल का चित्रण किया है। इनके पीछे इतिहास का गहन अध्ययन और अनुसधान है। प्राचीन ऐतिहासिक चरित्रो को लेकर आपने ऐतिहासिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि का निर्माण सचाई से किया है।

डा० वर्मा के "शिवाजी" एकाकी में छत्रपति शिवाजी की नैतिक दृढ़ता, शौर्य, चरित्र की निर्मलता, भारतीय सस्कृति का गौरव, शिवाजी की मातृभक्ति, स्वदेशानुराग, शत्रु पक्ष की स्त्रियो की मान प्रतिष्ठा की रक्षा आदि विचार चित्रित किए हैं।

डा० वर्मा के "समुद्रगुप्त पराक्रमाक" में ४२० विक्रम सवत् की भारतीय इतिहास की सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर महाराज समुद्रगुप्त की न्यायप्रियता, सूक्ष्म प्रतिभा एव बुद्धि की कुशाग्रता की झाकी प्रस्तुत करता है। इसमें समुद्रगुप्त की तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि एव सगीत कुशलता पर विशेष जोर डाला गया है।

"विक्रमादित्य" सन् ५७ ई० पूर्व की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिपर विरचित एकाकी है, जिसमें सम्राट के न्याय, तर्क, बुद्धि, अन्तर्दृष्टि, मनोविज्ञान, आर्यधर्म के प्रति श्रद्धा, गो ब्राह्मण की रक्षा वृत्ति, चरित्र बल स्पष्ट किया गया है। इसमें कथावस्तु की सजीवता के साथ साथ पात्रो की सजीवता भी है। तत्कालीन जीवन को नवीन दृष्टिकोण से देखने का एक प्रयास है। एकाकीकार आधुनिक अनैतिकता के विरुद्ध विद्रोह करना चाहता है तथा वर्तमान दोषयुक्त नैतिक व्यवस्था के स्थान पर विक्रमादित्य काल की उच्चतर भारतीय नैतिक व्यवस्था को प्रतिष्ठित करना चाहता है। इतिहास के ज्वलन्त उदाहरणो पर आधारित विक्रमादित्य के सास्कृतिक ऐश्वर्य पर यह एक

सक्षिप्त समीक्षा है।

"चारुमित्रा" में अशोक कालीन भारत का चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह चारु-मित्रा की स्वामिभक्ति और वलिदान चित्रित करने के साथ, सम्राट् अशोक का अन्तर्द्वन्द्व, परिणति तथा शौर्य इत्यादि मनोवैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत करता है। इतिहास का उतना ही अंश इसमें चित्रित किया गया है जितना अशोक के व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक है। अशोक के मानसिक परिवर्तन की काफी वडी भूमिका है। इस परि-वर्तन का मनोविज्ञान धीरे धीरे निम्न घटनाओ के रूप में विकसित हुआ है . १. निरीह शिशु की हत्या २ तिष्यरक्षिता का शान्ति के लिए वार वार आग्रह ३. शिशु की माता की मृत्यु ४ चारुमित्रा की देशभक्ति और स्वामीभक्ति। तीन प्रहारो से ठोकी गई कील अन्तिम जवरदस्त प्रहार से अपने स्थान पर ठीक वैठ जाती है।

"कौमुदी महोत्सव" की रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के व्यक्तित्व का न्यायपूर्ण प्रदर्शन करने के लिए हुई है। सस्कृत के विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस, वंगला के द्विजेन्द्रलाल राय कृत चन्द्रगुप्त और हिन्दी में प्रसाद के चन्द्रगुप्त इत्यादि उपलब्ध साहित्य में नाट्यकारो ने चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के साथ-साथ अन्याय किया है। उसे मुरा शुद्रा से उत्पन्न पुत्र कहा है तथा चाणक्य के हाथ की कठपुतली वना दिया गया है। चन्द्रगुप्त मौर्य के नीचकुलोत्पन्न प्रसिद्ध करने में विशाखदत्त का वहुत भाग है। डा० रामकुमार वर्मा ने यह चित्रित किया है कि चन्द्रगुप्त चतुर, पराक्रमशील तथा वीर क्षत्रिय सम्राट् था। उसने ग्रीक सैन्य सचालन तथा सगठन की ऐसी अपूर्व शिक्षा प्राप्त की थी कि वह अपने युग का सवसे तेजस्वी, वीर, रणकुशल नेता वन गया था। जहा वर्मा जी ने चन्द्रगुप्त की उन्नति के मूल में चाणक्य की कूटनीति और अन्तर्दृष्टि मानी है, वहा वह स्वतंत्र व्यक्तित्व भी रखता है। चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य दोनो ही का स्वतत्र व्यक्तित्व है और दोनों ही विकृत होने से वच गये हैं। भारतीय इतिहास में सम्राट् चन्द्रगुप्त का जो व्यक्तित्व उपलब्ध है, उसे आधुनिक मनोविज्ञान से इस प्रकार सुसज्जित किया गया है कि चन्द्रगुप्त द्वारा प्रयुक्त समस्त उपमाए भी वीर-रस पूर्ण हो गई हैं।

"पृथ्वीराज की आखें" प्रारम्भिक कृति है, किन्तु इससे भी हमें वर्मा जी के मनोवैज्ञानिक संघर्षो का सूक्ष्म चित्रण निर्माण में स्वाभाविक सौंदर्य, कलात्मक आकर्षण और सास्कृतिक पृष्ठभूमि मिल जाती है। पृथ्वीराज चौहान का सुदृढ़ चरित्र सौंदर्य विशेष दर्शनीय है।

"औरगजेव की आखरी रात" में मृत्यु शय्या पर पडे हुए आलमगीर औरग-जेव की पश्चाताप एव आत्मग्लानि का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया गया है। सवादो की रूप रेखा एक मात्र मनोविज्ञान द्वारा खींची गई है। औरगजेव के इतिहास पर अभी तक जितनी ऐतिहासिक खोज हुई है, उसका पूर्ण उपयोग इस एकाकी में किया गया है। फलत. यह एकाकी इतिहास मे जितना पूर्ण है, उतना ही

मनोविज्ञान मे सूक्ष्म और सफल।

ध्रुवतारिका में मारवाड के उत्तराधिकारी राजकुमार अजीतसिंह की शाहजादा अकबर की पुत्री सफीयत उन्नूनिसा से प्रेम कहानी है। राठौर दुर्गादास की युक्ति से दोनों का प्रेम दाम्पत्य रूप में प्रवाहित न होकर भाई बहिन के रूप में प्रवाहित होने लगता हैं। इसमें नाट्यकार का मूल ध्येय सफीयत का चरित्रगत सौन्दर्य प्रकट करना है।

"तैमूर की हार" में तैमूर जैसे विजेता की एक भारतीय बालक, बलकरण द्वारा हार दिखलाई गई है। इस हार की आधारशिला भावना है। भारत के प्राचीन सस्कारो में सत्य रक्षा के लिए निर्भीक बनना प्रत्येक बालक का आदर्श था। यह निर्भीकता उसके चरित्र की कसौटी पर कचन की रेखा जैसी स्पष्ट होती थी। यह प्रकृति का सबसे बडा बल है, बल का सबसे बडा कल्याण है। इस एकाकी के पात्र बलकरण और कल्याणी इसी मनोविज्ञान के प्रतीक है। इतिहासकार कहते है कि तैमूर बडा निर्दयी था, किन्तु वर्मा जी ने दिखाया है कि जो शक्तिशाली होता है, उसमें शक्ति परखने की क्षमता भी होती है। तैमूर के चित्रण में वीरता का मनोविज्ञान है। "हार" शब्द वही भावात्मक महत्व रखता है जो पुत्र के प्रति पिता की उदारता में होता है। तैमूर के चरित्र में वीरता को सराहने की क्षमता दिखा कर वर्मा जी ने उसके ऐतिहासिक व्यक्तित्व को निखार दिया है।

"दुर्गावती" में शक्ति और सौंदर्य को साकार कर दिया गया है। दुर्गावती के ये वचन, "जिस राज्य में घटनाए रहस्य का अवगुठन अपने मुख पर डाल लेती है, उस राज्य की दृष्टि अपने पैरो तक सीमित रहती है, अपने अग भी नही देख सकती। मेरी राजनीति में रहस्य के लिए स्थान नहीं है। रहस्य कला के लिए वरदान हो सकता है, किन्तु राजनीति के लिए अभिशाप है। "दुर्गावती के इस मनोविज्ञान में भारतीय नारी ने अपनी तेजस्विता ससार के समक्ष उपस्थित की है।

"कलक रेखा" में कृष्णकुमारी का अपूर्व बलिदान, साहस और दृढता दिखाई गई है। कुमारी कृष्णा का जोहर विष की ज्वाला में हुआ। राजस्थान कायर की भांति देखता रहा। विद्युत् की चमकती हुई वह उज्ज्वल रेखा सारे राजस्थान के लिए कलक रेखा बन गई।

"स्वर्णश्री" में वातावरण की कुशलता अपनी उच्चतम सीमा पर है। इसमें १८५ ई० पूर्व पाटलीपुत्र के अतिम मौर्य सम्राट् वृहद्रथ तथा उसके सेनापति पुष्यमित्र के चरित्रो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। शासक जब प्रजा को दिए गए आश्वासनो को स्वप्न की भाति भूलने लगता है, तो मृत्यु की निद्रा ही उसका स्वागत करती है। नारी के जीवन का सतोष ही स्वर्णश्री का प्रतीक है। "कादम्ब या विष" एकाकी में ४५५ ई० में मगध के सम्राट् कुमारगुप्त के चरित्र तथा तत्कालीन सास्कृतिक वातावरण को उभारा गया है। गुप्त साम्राज्य की कला

और वैभव संपन्नता में अनन्तदेवी की हिंसा स्कन्दगुप्त के विरुद्ध षडयन्त्र सर्पिणी के दर्शन के समान है। स्कन्द गुप्त का निर्वासन और पुरगुप्त का युवराज पद एक ही अभिसंधि की दो शाखाए हैं।

वर्मा जी के ऐतिहासिक एकाकियो में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा है जो राष्ट्रीय नवनिर्माण में नैतिक महत्व रखता है । अशोक, शिवाजी, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, कृष्णकुमारी आदि भारतीय इतिहास के चरित्रो का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढग से हुआ है। उनमें ऐतिहासिक सत्यता का विशेष ध्यान रखा गया है । पात्रो को जिस ऐतिहासिक काल में से प्रस्तुत किया गया है, उसकी सास्कृतिक पृष्ठभूमि के निर्माण में भी वर्मा जी सफल हुए हैं। पात्रो में जीवन का स्पन्दन, स्वाभाविकता, प्राण प्रतिष्ठा नैसर्गिक रूप में की गई है। ऐतिहासिक तथ्यो के साथ जीवन की स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण होने से इनके एकांकी अभिनय की दृष्टि मे पूर्ण सफलता प्राप्त कर चुके हैं। भारतीय इतिहास जिन पात्रो के विषय में मौन रहा है, या अपनी अभिव्यक्ति में स्पष्ट नही है, उन पात्रो के स्पष्टीकरण में वर्मा जी ने अभूतपूर्व कार्य किया है। भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि पर चरित्रो के मनोविज्ञान को सवारने तथा कवित्व पूर्ण सवादो तथा कौतूहल की सृष्टि में वर्मा जी सिद्धहस्त हैं।

सेठ गोविन्ददास भी प्राचीन भारतीय गौरव, आदर्शवाद, आचार विचार, सांस्कृतिक मान्यताओ से प्रभावित हैं । प्राचीन भारतीय सस्कृति की पृष्ठभूमि पर राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिए आपने अनेक ऐतिहासिक एकाकियो की सृष्टि की है, जिनमें मुख्य इस प्रकार हैं १ जालीक और भिखारिणी २ चन्द्रापीड और चर्मकार ३. शिवाजी का सच्चा स्वरूप ४. निर्दोष की रक्षा ५ कृष्णाकुमारी ६ सहित या रहित ७ सच्चा धर्म ८. सच्ची पूजा ९ बाजीराव की तस्वीर १० प्रायश्चित ११ भय का भूत १२ अजीबो गरीब मुलाकात १३ अट्ठानवे किस्से ?

राजनीतिक एकाकी इस प्रकार है। १ सुदामा के तन्दुल २. आई सी. ३. यू० नो० ४ भूख हडताल ५. सेवा पथ ६. कृषियज्ञ।

सेठ जी के ऐतिहासिक एकाकियो में व्यवहारिक आदर्शवाद के दर्शन होते हैं। यदि हम राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करना चाहते हैं, तो उनके अनेक आदर्श हमें भारतीय इतिहास में उपलब्ध हो सकते हैं। आपके ऐतिहासिक एकांकियो में कथानक ऐतिहासिक ग्रन्थो तथा किंवदन्तियो से लिए गए हैं। जैसे "जालीक और भिखारिणी" तथा "चन्द्रापीड का चर्मकार" की कथावस्तु सस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ "राजतरगिणी" से, "शिवाजी का सच्चा स्वरूप," सर यदुनाथ सरकार के प्रसिद्ध अंग्रेजी ग्रन्थ "शिवाजी एन्ड हिज टाइम्स," निर्दोष की रक्षा, अरविन के "लेटर मुगल्स" से, "कृष्णाकुमारी" कर्नल टाड तथा डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा के "राजपूताने के इतिहास" से ले ली गई है। ऐतिहासिक सत्यता का आपने विशेष

ध्यान रखा है।

"जालोक और भिखारिणी" काश्मीर के राजा जालोक की अहिंसा, धर्म-पालन, प्रजा वत्सलता का चित्र है। "चन्द्रापीड और चर्मकार" काश्मीर के राजा चन्द्रापीड और चमार रैदास की कहानी है। इसमें सवर्ण तथा अछूतो की समस्या का अच्छा विवेचन है।

"शिवाजी का सच्चा स्वरूप" में हिन्दू धर्म की उच्चता, चरित्र निष्ठा, पवित्र मातृदृष्टि, चरित्र गौरव, सच्चा राज्य शासन, इन्द्रिय निग्रहता तथा विवेक का चित्र अकित किया गया है। "निर्दोष की रक्षा" में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर हिन्दू मुसलिम एकता का एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया गया है। "कृष्णाकुमारी" में राजपूत रमणी का अद्वितीय बलिदान चित्रित किया गया है, साथ ही यह हिन्दू विवाह पद्धति, राजपूतो के पतन, तथा बिरादरी सकीर्णता पर व्यग्य करता है। "सहित या रहित" में काश्मीर के राजा यशस्कर के न्याय तथा बुद्धि कौशल को चित्रित किया गया है। राजा बुद्धि की प्रखरता से यह मालूम कर लेता है कि "रहित" के स्थान पर "सहित" कर दिया गया है। दोषी को सजा दे दी जाती है।

"अट्ठानवे किस्से" में राजा यशस्कर के न्याय की अद्भुत क्षमता की ओर सकेत है। "सच्चा धर्म" में एक महाराष्ट्र ब्राह्मण का शिवाजी के पुत्र समाजी को औरगजेब से बचाने के लिए निज कुल, वर्ण धर्म इत्यादि के बलिदान पूर्ण कथानक पर आधारित है। "बाजीराव की तस्वीर" में बाजीराव की समदर्शिता स्पष्ट की गई है। "सच्ची पूजा" में रामशास्त्री के पुरुषार्थ, न्याय तथा आदर्श की एक झलक है। "प्रायश्चित" वे रघुनाथ राव पेशवा के अपनी स्त्री के षड्यन्त्र से अपने भतीजे को मरवाने से सम्बधित है।

"भय का भूत" एक ऐतिहासिक किवदन्ती पर आधारित एक मनोरजक कथानक पर लिखा गया है। "अजीबोगरीब मुलाकात" में अवध की नवाबी की पृष्ठभूमि पर एक अग्रेजो कमान्डर तथा उसकी पत्नी की भारतीय नवाब से मुलाकात का नाटकीय रूप है। अग्रेजी भाषा के शब्दो का गलत मतलब समझने के कारण बडी मनोरजक स्थिति उत्पन्न की गई है।

सेठ जी ने कुछ राजनीतिक एकाकियो की भी सृष्टि है, जिनमें यथार्थवाद और व्यग्य को तेजी है। चूकि ये जेल में लिखे गये हैं इनमें सच्ची अनुभूतियो का उपयोग हुआ है। कुछ एकाकी काग्रेम की आतरिक दुर्बलता पर उगली रख देते हैं। जैसे "सुदामा के तन्दुल" में उन मिनिस्टरो पर छीटाकशी की गई है, जो चुनाव के समय वोट लेने से लिए जनता के बडे-बडे वायदे करते हैं, किन्तु मिनिस्टर बनने के पश्चात् उनके दुख दद की परवाह नहीं करते। इसमें काग्रेस में प्रविष्ट गैर-जिम्मेवार पत्थर दिल, स्वार्थी नेताओ पर व्यग्य है। "आई० सी०" उस काल का चित्र है, जब काग्रेसी मन्त्रिमडल पद त्याग चुका था। इसमें मन्त्रियो की साहबियत, बाह्याडम्बर तथा

आन्तरिक संकीर्णता पर प्रहार किया गया है। "यू० नो०" एक अभिमान से भरे हुए तेज-मिजाज लोकप्रिय मत्री का अतिरजित चित्र है। "भूख हडताल" में एक ऐसे सत्याग्रही का व्यग्यात्मक चित्र है, जो प्रतिष्ठा और यश का भूखा है। "सेवा पथ" में वर्तमान युग के राजनीतिक वादो का सघर्ष विशेषकर समाजवाद का उभयपक्षीय चित्रग किया गया है। इन एकाकियो में राजनीतिक जीवन की व्यग्यात्मक आलोचना मिलती है।

डा० सत्येन्द्र का "कुणाल" अहिंसा, पितृ आज्ञा का गौरव, प्राचीन सस्कृति का ऊचा आदर्श, तथा राजाओ के अन्त पुर में होने वाले ईर्ष्या द्वेष षड्यत्रो को स्पष्ट करता है। मानसिक अन्तर्द्वन्दो का मनोवैज्ञानिक चित्रण इसमें हुआ है। "विक्रम का आत्म मेघ" नाटकीयता की दृष्टि से विक्रय सम्बन्धी अन्य एकाकियो से उत्कृष्ट है। इसमें नाट्यकार बहिर्द्वन्द्व का सकेत तथा अन्तर्द्वन्द्व का जीवित चित्रण करने में सफल हुआ है। सभी चरित्रो में भाव दृढता है। धीरोदात्त नायक की कल्पना में यह विपरीत पड सकता है, किन्तु विक्रम का चरित्रोन्मेष भावावेश की अवस्था में ही होता है। "आत्ममेघ" भारतीय राजनीति में आत्म बलिदान के भाव का नवीन प्रयोग दिग्दर्शित करता है।

विक्रम के चरित्र पर और भी एकाकीकारो ने उल्लेखनीय रचनाए की हैं। जैसे प्रो० रामचन्द्र श्रीवास्तव चन्द्र का "मेघजन्म" लेकिन इसमें श्री विक्रमादित्य का विश्रुत चरित्र कुछ मलिन सा पड़ गया है। गिरिजाकुमार माथुर का "सवत्सर" महत्वपूर्ण रचना है। सवत्सर तथा वर्तमान युग के मानवीकरण के प्रयास में यह एकाकी अर्द्धविकसित रूपक का हो गया है। हरिकृष्ण प्रेमी का "मालव प्रेम" में देशप्रेम की भावना को अनुप्राणित किया गया है। रामकुमार वर्मा के "विक्रमार्चन" एकाकी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, नारी आदर्श और शासकीय मर्यादा विशेष उल्लेखनीय है। इसमें नाट्यकार रसबोध की अपेक्षा शील-निदर्शन में अधिक सफल हुआ है। भानुप्रताप सिंह का "शिकारी विक्रमादित्य" प्रसाद जी की "ध्रुव स्वामिनी" का अनुकरण सा प्रतीत होता है। इसमें न तो कथावस्तु की नूतनता है न नाटकीय तत्वो का विकास ही।

डा० हरदेव बाहरी का "देशभक्त सम्राट पुरु" चरित्र प्रधान रचना है, जिसमें नाट्यकार ने पुरु की सज्जनता, चरित्र की उच्चता, विशेषतः पौरुष, उदारता, राजनीतिज्ञता और वीरता प्रदर्शित की है। दृष्टिकोण राष्ट्रवादी है। वैकुण्ठनाथ दुग्गल के "आन" मे रानी सरधा के उस चरित्र का कथानक बनाया गया है, जिसमें उन्होंने अपने राज्य धन, सासारिक सुख, अपने पति और अपने प्राण तक की परवाह न की थी। 'पुनर्संगठन" उस मराठा काल का चित्र है, जब शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त मराठा साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा था। बालाजी विश्वनाथ को भय था कि यदि कान्होजी आग्र मराठो की आधीनता स्वीकार कर लें तो राष्ट्र की यह संगठित

शक्ति किसी शत्रु का मुकाबला कर सकती है। यह पुनर्संगठन ही इसका मूल केन्द्र है।

दुग्गल का "राष्ट्र धर्म" उस अतीत स्वर्णयुग की झाकी है, जब भारतीय सस्कृति मौर्य तथा गुप्त काल के पश्चात् एक बार फिर विश्व को प्रकाशित करने आई थी। हर्ष के ज्येष्ठ भ्राता युद्ध की अपेक्षा शान्ति को अधिक महत्व देते थे, जबकि हर्ष के लिए प्रतिहिंसा और प्रतिशोध प्रेरक शक्तिया थी। नाट्यकार ने यह चित्रित किया है कि राजा का अपना कोई व्यक्तिगत धर्म नही होता है। प्रजा का धर्म ही उसका धर्म है। नाटकीय दृष्टिकोण से दुग्गल का "अजेय भारत" उत्कृष्ट रचना है। इसका कथानक सक्षिप्त है, पात्र कम हैं, शैली भी उत्तम है। इसमें नाट्यकार ने बौद्ध और हिन्दू धर्मों का सघर्ष चित्रित किया है। भारतीयता और उसकी सभ्यता का उज्ज्वल सदेश पुण्यामित्र के शब्दो में प्रकट किया है।

श्री नारायण चक्रवर्ती का जोहर चित्तौड की रानी पद्मनी तथा अलाउद्दीन के ऐतिहासिक वृत्त से सम्बन्धित है।

जगदीशचन्द्र माथुर ने कई कलापूर्ण ऐतिहासिक एकाकी लिखे हैं। मौर्यकालीन "कलिंग विजय" २६१ ई० पूर्व कलिंग विजय के दूसरे दिन सन्ध्या समय अशोक की प्रेम लीला और क्रमश वैराग्य भावना की उत्पत्ति का चित्र प्रस्तुत करता है।

"भोर का तारा" गुप्त साम्राज्य में सम्राट् स्कन्ध गुप्त विक्रमादित्य के काल का चित्र है, जिसमें हूणो के सरदार तोरमाण के भारत पर आक्रमण की सूचना दी जाती है। इसका नायक कवि शेखर अपनी ओजमयी कविता द्वारा हजारो देशवासियो को स्वदेश रक्षा के लिए तैयार करता है और व्यक्तिगत सुख, दाम्पत्य तथा महाकाव्य का बलिदान कर देता है। नवीन एकाकी "शारदीया" में १७६५ के कुर्दला युद्ध की अमर घटना चित्रित है। इसमें नरसिंह को आदर्श प्रेमी के रूप में दिखलाया गया है जो स्वार्थवश राष्ट्रद्रोही घोषित करवाकर पकड लिया गया था। बायनाबाई के रूप में हम नारी की परवशता का अच्छा परिचय पाते है।

हरिकृष्ण प्रेमी का "मान मन्दिर" चित्तौड के महाराणा लाखा की बूदी विजय की विवेकहीन प्रतिज्ञा और हाडा वशीय सैनिको का कल्पित दुर्ग की रक्षा का कथानक लेकर खडा किया गया है। इसमें जन्मभूमि के प्रति प्रेम, राष्ट्रीयता, राजपूतो का स्वातंत्र्य प्रेम, अभिनव वीरत्व, मान रक्षा, तथा बलिदान की पवित्र भावनाए व्यक्त की गई हैं। "न्याय मन्दिर" में भील कुमारी श्यामा और मेवाड के युवराज अजयसिंह का प्रेम सम्बन्ध, महाराणा का क्रुद्ध होना, दोनो का विवाह सम्बन्ध तथा अन्त में देश विद्रोह का आरोप लगाकर प्राण दड देने का कथानक है। कर्त्तव्य और प्रेम का आन्तरिक सघर्ष यहा बडे सुन्दर रूप से व्यक्त किया गया है।

भुवनेश्वर की "सिकन्दर, अकबर तथा, चंगेज खा" तत्कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखी गई सजीव तथा परिष्कृत रचनाए है। आपका 'इतिहास की केंचुल" नामक लम्बा एकाकी भी अनेक ऐतिहासिक तथ्यो को प्रकट करता है।

कुछ एकाकियो में वुद्ध के जीवन तथा सिद्धान्तो का विवेचन है जैसे प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी का "महाभिनिष्क्रमण" दार्शनिकता से बोझिल रचना है। यह बौद्ध धर्म के आधारभूत सिद्धात और गंभीर चिन्तन से परिपूर्ण है। भारतभूषण अग्रवाल कृत "पलायन" वुद्ध के उस मानसिक सघर्ष को चित्रित करता है जब उन्होंने घर पर पत्नी तथा सोते हुए शिशु को त्याग कर वैराग्य का मार्ग ग्रहण किया था। आरसी प्रसाद सिंह का "पुर्नमिलन" सरस और सस्कृति प्रधान भावनाओ से पूर्ण है। चन्द्रकिशोर जैन का "भगवान बुद्ध की चरणधूलि", श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत "सुदिन्य", श्री रावी कृत "वुद्ध की घाटी" (१९४९) और मातादीन भागेरिया का "कनिष्क की बौद्ध दीक्षा" (१९५१) बौद्ध धर्म के सिद्धातो से सबधित गभीर एकाकी हैं।

सिकन्दर महान् के सम्वन्ध में प्रथम उल्लेखनीय रचना प्रेमनारायण टडन की "गाधार पतन" है। इसमें स्वदेश प्रेम, भारतीय गौरव और स्वाधीनता विषयक भावनाए व्यक्त की गई हैं। भुवनेश्वर का "सिकन्दर" (१९५०) यूनानियो के ऊपर भारतीय सस्कृति, सभ्यता एव पाडित्य की श्रेष्ठता चित्रित करता है। श्यामलाल कृत "सिकन्दर और पुरु" (१९३३) तथा छोटेलाल भारद्वाज कृत "वीरता की कब्र" (१९४५) भारतीय वीरो की स्वातन्त्र्य भावना प्रस्तुत करने वाले उल्लेखनीय एकाकी हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य के व्यक्तित्व को लेकर निम्न एकाकियो की रचना हुई है। प्रो० वृहस्पति का "चाणक्य", श्यामलाल कृत "चाणक्यानन्द" (१९३३) और "नन्द की मृत्यु" (१९३३) 'चन्द्रगुप्त और सैल्यूकस (१९३४), डा० रामकुमार वर्मा कृत "कौमुदी महोत्सव" (१९४९), श्री रामगोपाल शर्मा दिनेश कृत "वह प्रभात" आदि।

सम्राट अशोक का चरित्र हिन्दी एकाकीकारो का प्रिय विषय रहा है। अशोक के अनेक पक्षो पर एकाकियो की रचना हो चुकी है जैसे श्री विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त कृत "सम्राट् अशोक", विष्णुप्रभाकर का "अशोक" (१९४९), मानव और मानवता (१९५२), डा० रामकुमार कृत "चारुमित्रा", श्री प्रभाकर माचवे कृत "पियस्मिन" (१९४१), मदन मोहन राकेश कृत "कलिंग विजय" (१९४७), सरस्वती देवी कृत "कलिंग विजय" (११३२) आदि। श्री रामवृक्ष वेनीपुरी ने अशोक की तीनो सन्तानो पर एकाकी लिखे हैं १. सघ मित्रा २ सिंह विजय ३ नेत्रदान। ये क्रमश: सघमित्रा, महेन्द्र और कुणाल के चरित्र गौरव को प्रकट करते हैं। गणेशदत्त गौड़ इन्द्र का "कुणाल" भी उल्लेखनीय रचना है।

सम्राट् कनिष्क के चरित्र से सबधित कुछ एकाकी इस प्रकार हैं

श्री मातादीन भागेरिया कृत १ कनिष्क की बौद्ध दीक्षा (१९५१) और २ पुरुषपुर का अनुशासन (१९५०), श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत "कौशाम्बी, विदिशा, भविष्य का गर्भ (१९५०) और दशाश्वमेध" (१९५०), सम्राट् पुष्यमित्र के संबध में डा०

रामकुमार वर्मा के "स्वर्णश्री" में पाटलिपुत्र के अन्तिम मौर्य सम्राट् बृहद्रथ के राज्य की एक झाकी दी गई है। इसी कथानक को लेकर श्री कृष्णकान्त शुक्ल के "सम्राट् पुष्यमित्र" (१९५०) में बृहद्रथ की मृत्यु और पुष्यमित्र का सम्राट् होना चित्रित है। श्री लक्ष्मीनारायण लाल का "महाकाल का मदिर" (१९५०) पुष्यमित्र के शासन काल में धर्म, पाखडियो, मठ मदिरो की विलासिता के रहस्य खोलता है। बैकुठनाथ दुग्गल कृत "अजेय भारत" पुष्यमित्र के काल में बौद्ध और सनातन धर्मों के सघर्षो को चित्रित करता है। डा० रामकुमार वर्मा कृत "कादम्ब या विष" (१९५४) चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् मगध की गद्दी पर बैठने वाले सम्राट् कुमारगुप्त के काल का चित्र प्रस्तुत करता है। इसमें गुप्त साम्राज्य का पतन, हूणो के आक्रमण, मगध पर आपत्तिया, कुमारगुप्त की विलासप्रियता, किन्तु स्कन्धगुप्त के साहस और पराक्रम में विश्वास व्यक्त किया गया है। प्रो० दुर्गादत्त ने हिन्दू युग के अन्तर्गत भारतीय इतिहास के उन स्थलो को सही रूप में चित्रित किया है जिनको विदेशी इतिहासकारो ने विकृत रूप में दर्शाया है। आपके "सम्राट् अनन्तदेव" (१९५०), मिलिन्द, मिनाडर (१९५०) तथा "पीली आधी" (१९५०) सफल ऐतिहासिक एकाकी है। हर्ष के सबध में प्रकाशित होने वाले एकाकियो में बैकुठनाथ दुग्गल कृत "राष्ट्रधर्म" और प्रो० बृहस्पति कृत "कला भारती" महत्वपूर्ण है।

मुसलमान शासको से सबधित एकाकी यथेष्ट सख्या में लिखे लिखे गए है; जैसे, श्री प्रशान्त कृत "जय सोमनाथ" (१९४७), श्यामलाल कृत "महमूद गजनवी" तथा "पुजारी"(१९३३), डा० रामकुमार वर्मा का 'पृथ्वीराज की आखें"(१९२५), लीलावती का "अतीत की झाकी", श्यामलाल का "पृथ्वीराज और चन्द" (१९३३) नारायण चक्रवर्ती कृत "जौहर" (१९५१), चतुरसेन शास्त्री कृत "भस्म राशि", डा० सरनामसिंह कृत "वीर सुन्दरी" (१९५०), प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा का "बाबर की ममता" (१९४९), राजकुमार झा दीन कृत "रक्षाबन्धन" (१९३८), विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त कृत "हार जीत" (१९५०), विष्णुप्रभाकर कृत "परिवेदन" (१९४२), हरिकृष्ण प्रेमी कृत "रूपशिखा" श्यामलाल कृत "अकबर बीरबल" (१९३३), "अकबर और पादरी" (१९३२) और "अकबर पृथ्वीराज" उल्लेखनीय कृतिया हैं।

महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में निम्न एकाकी प्रकाशित हुए है श्री देवीलाल सामर कृत "ओ नीला घोडा का सवार" (१९४८), श्यामलाल कृत "प्रताप भामाशाह" (१९३३), विष्णु प्रभाकर कृत "रक्षाबन्धन", भगवती प्रसाद पाथारी कृत "चित्तोड ध्वन" (१९३६) प्रभुनारायण शर्मा सहृदय कृत "मूक प्रेम", श्री गणेशदत्त गौड इन्द्र कृत "स्वाधीनता की देवी", महेश्वर प्रसाद कृत "धैर्य भग" (१९४९), श्री मृदुकृष्ण का "अनारकली" (१९३६), जहागीर और मेहरुन्निसा की प्रेम कथा को लेकर डा० लक्ष्मीनारायण लाल का "नूरजहा की एक रात", (१९५०) और डा० धर्मवीर भारती कृत 'संगमरमर पर एक रात" (१९५१), श्री श्यामलाल कृत 'जहागीर और गुरु

अर्जुन" (१९३३), प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा कृत "अनुताप", प० हरिनारायण मैणवाल कृत "खुसरू की आखें", उल्लेखनीय हैं। सम्राट् शाहजहा के जीवन के दुःख दर्द को व्यक्त करने वाले कई एकाकी प्रसूत हो चुके हैं। जैसे श्री धन्वन्तरिशरण कृत "जिन्दगी का राज" (१९५१), डा० लक्ष्मीनारायण लाल कृत "जहाआरा का स्वप्न" और "ताजमहल के आसू" (१९५०), हरिकृष्णप्रेमी कृत "हुस्न की जजीरें" (१९४३) आदि।

औरगजेब के जीवन, चरित्र एव काल से संबधित एकाकियों मे श्री कश्मीरी लाल का "लाला रुख" डा० रामकुमार वर्मा कृत "औरगजेब की आखरी रात", विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त कृत "मर कर भी अमर" (१९५०), श्री भिक्खु कृत "अन्तिम दृश्य" श्री भगवत स्वरूप जैन कृत "राजपूत" आदि उल्लेखनीय है। शिवाजी के व्यक्तित्व पर भी यथेष्ट प्रकाश पडा है। डा० रामकुमार वर्मा कृत "शिवाजी" और सेठ गोविन्ददास कृत "शिवाजी का सच्चा स्वरूप" का उल्लेख हो चुका है। इसी परम्परा में गणेशदत्त गौड इन्द्र कृत "कोंडाण विजय" और दमयन्ती बाई दीवन कृत "कल्याण विजय" आदि में शिवाजी के चरित्र की दृढता, निर्मलता और न्याय भावना का चित्रण है। श्री रामचरण महेन्द्र कृत "अजेय हिन्दू संस्कृति" (१९५१) में वन्दा वैरागी की अध्यक्षता में सिक्खो के उत्थान को चित्रित किया गया है। वृन्दावन लाल वर्मा कृत "जहादारशाह" सन् १७१२ से १७१३ तक का युग चित्रित करता है। श्री विन्ध्याचलप्रसाद गुप्त का "सिराजुद्दौला" अलीवर्दी खा की मृत्यु के पश्चात् सन् १७५६ में सिराजुद्दौला का नवाब बनना क्लाइव का आक्रमण, मीर जाफर का षड्यन्त्र आदि प्रकट करता है। श्री विश्वनाथ वैशम्पायन के "मुगल जमाने का रेडियो स्टेशन" (१९४६) में उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी पर व्यग्य है।

श्री देवराज दिनेश कृत "अमर विरागना" (१९५२) और विमला रैना कृत "अनन्त" (१९५१) महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता से सम्बन्धित है। डा० रामकुमार वर्मा के "दुर्गावती" (१९५४) में भारतीय नारी की तेजस्विता, अपरिमित शक्ति और कर्त्तव्य भावना प्रकट हुई है। सर्वदानन्द वर्मा के "नाना फडनवीस" एकाकी में फडनवीस के चरित्र की दूरदर्शिता, सूक्ष्मता और कूटनीतिज्ञता प्रकट की गई है। श्री जयन्तीप्रसाद जैन कृत "जम्बू कुमार, अंचल, मुक्तियज्ञ और सम्राट खारवेल" आदि एकाकी जैन इतिहास से सबंधित है। सक्षेप में इन ऐतिहासिक एकाकियों में भारत के इतिहास की प्रमुख घटनाओ, प्रमुख चरित्रो तथा अतीत गौरव की अच्छी झाकी मिलती है।

राजनीतिक चेतना · हिन्दी एकाकी में राजनीतिक जीवन, स्वाधीनता संघर्ष, बगाल का अकाल, भूख और दूषित शासन, फासिस्टवाद का विरोध, जागीरदारी और देशी नरेशो का जीवनयापन और अनेक अन्तर्राष्ट्रीय समस्याए भी प्रकट हुई हैं। युद्ध से पूर्व भारत की राजनीति के क्षेत्र में स्वतत्रता का आन्दोलन चल

रहा था। युद्ध काल में हिन्दी एकाकीकार के सामने नई-नई परिस्थितियां आई। दैन्य, अभाव, वेकारी की चोट से जर्जर जीवन, बगाल का अकाल और ६५ लाख मौतें, सन् १९४२ का जन आन्दोलन, दमन, अत्याचार, नर राक्षसो की लूट और जनता की असमर्थता सब एकाकी साहित्य में साकेतिक रूप में व्यक्त हुआ है।

बगाल का अकाल और दूषित शासन इस वर्ग का प्रथम एकाकी श्री शिवदान सिंह चौहान का "मरने दो" (१९४४) है, जिसमें प्रगतिशील दृष्टिकोण से जापानी फासिज्म, दुर्भिक्ष, महामारी, गुलामी, अनाज चोरो और मुनाफाखोरो के विरुद्ध जनता को सगठित करने का स्वर है। इसमें विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के प्रोपेगेन्डा, तथा ब्रिटिश सरकार का कठपुतली बनी वजारत, पाकिस्तान निर्माण की कुत्सित चेष्टा, जनता के विरुद्ध किये जाने वाले षड्यन्त्रो का भी चित्रण है।

बगाल का अकाल विषयक एकाकियो में तीन रचनाए विशेष रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। प्रथम विजन भट्टाचार्य की "अतिम अभिलाषा" (१९४४) जिसमें भूख और दुर्भिक्ष से पीडित एक ग्रामीण का हृदय विदारक चित्र खीचा गया है। सभ्य कहलाने तथा दान देने वालो की वासनालोलुपता का भी इसमें दिग्दर्शन कराया गया है। अभाव और दैन्यता से क्लान्त आश्रयविहीन असहायावस्था के अधकार में फिरते हुए बगालियो का चित्रण श्री शभूनाथ सिंह ने अपने "मृत्यु की छाया" (१९४६) में किया है, जिसमें कलकत्ते की एक कोठी में रहने वाले पूजीपति, उसके व्यापार तथा अमानवीय भावनाओ का चित्रण है। वह अकाल से अमीर बनना चाहता है, उसका पुत्र विद्रोह करता है। अत में पिता के ज्ञान के नेत्र खुलते है। तीसरा नाटक विष्णु प्रभाकर का "देश की धरोहर" (१९५०) है, जिसमें अकाल का ताडव अपनी पूरी भीषणता में चित्रित किया गया है। इसका अतिम स्वर आशावाद के प्रकाश में दैदीप्यमान है।

श्री राधाकृष्ण प्रसाद का "प्रेत की वाणी" (१९४९) अकालग्रस्त एक ऐसी सुन्दर नारी की व्ययापूर्ण कहानी है जो भूख और पेट की समस्या को सुलझाने के लिए वेदना से जर्जर हो बरबस वेश्याओ के मुहल्ले में डाल दी जाती है। सैंकडो सभ्रान्त लडकियां इस गदे पेशे को अपनाती और अन्त में पेट के लिए बलात्कार का शिकार बनती हैं। इन नाटको में अकाल पीडितो के कुछ मार्मिक चित्र सामने आते हैं।

बग अकाल, भूख, महामारी और दूषित शासन आदि पर जो एकाकी लिखे गये थे, उनमें केवल करुण दशा ही व्यजित नही की गई थी, वरन् विपत्ति के कारण और निराकरण का भी निर्देश हुआ था। भूखी जनता को विद्रोह के लिए भी ललकारा गया था। श्रीचन्द्र अग्निहोत्री के "दो घटे" (१९४४) में सरकार की आलोचना भी है। इस एकाकी का रहमान मजदूरो की कठिनाइया निर्देश करते हुए कहता है। "हाँ कामरेड आओ, देखो शैतानियत का खेल। इसे ही साले हरामजादे सुराज कहते है।" श्री प्रभाकर माचवे का "बुभुक्षित किं न करोतिपाप" में युद्धकाल की

राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का सच्चा चित्रण है।

कुछ फासिस्ट विरोधी एकाकी साहित्य भी प्रकाशित हुआ है, जिसमे जापान तथा जर्मनी के विरोध में नाना पक्षो पर विचार किया गया है। इनमें चित्रित किया गया है कि हिटलरी और जापानी फौजें विजित देशो के साथ कैसा दुर्व्यवहार करती हैं। कुछ अनूदित सोवियत एकाकी भी निकले हैं, जिनका मूलाधार फासिज्म वि ोधी है।

श्रीयुत पहाडी के दो सुन्दर रेडियाई एकाकी प्रकाशित हुए हैं। १ सोवियत जर्मन संधि का अन्त २ युग युग द्वारा शक्ति पूजा। हिन्दी नाट्य साहित्य में रेडियो द्वारा उत्पन्न किया हुआ एक नवीन साहित्यिक रूप इनमें प्रकट हुआ। सोवियत जर्मन सन्धि का अन्त २३ अगस्त १९३९ के एक दिवस का दृश्य उपस्थित करता है। यूक्रेन के एक परिवार में हिटलर के विचारो का आतंक, रेडियो द्वारा बर्लिन के समाचार का प्रसारण, जर्मनी का पोलैण्ड पर अधिकार जमा लेना, १७ सितम्बर को रूसी फौजी दस्ता पोलिश यूक्रेन और व्हाइट रूस का आधा हिस्सा ले लेता है। अन्त में सोवियत सरकार को बिना घोषणा किये, हिटलर रूस पर आक्रमण कर देता है। रूस डट कर शत्रु का मुकाबला करने की धारणा करता है। इस एकाकी की दो पात्रिया देश और राष्ट्र की सेवा के लिए प्रस्थान करती हैं, "युग युग द्वारा शक्ति पूजा" की सक्षिप्त झाकिया देकर लेखक ने पूजीवादी राष्ट्रो की बाढ, फासिस्टवाद का जन्म और साम्यवाद के विकास का कथानक प्रस्तुत किया है। इनमें प्रथम एकाकी उच्चकोटि का है।

जापानी आक्रमण से सम्बन्धित चार एकांकी विशेष प्रभावशाली हैं। १. श्री विष्णु प्रभाकर का "अशोक" (१९४३) २ प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त का "विजय किस की" ३. श्री अविनाशचन्द्र का "मुसीबत में" ४. श्री अमृतराय का "राह चलते" और "मुनाफाखोरी बन्द करो"। प्रो० प्रकाश चन्द्र गुप्त के "विजय किसकी" में एक जापानी आक्रमण उनके अमानुषिक अत्याचार और दुर्व्यवहार का चित्रण है। गाव उजड़ जाता है और बच्चे और स्त्रियों के साथ गन्दा व्यवहार होता है। इसमें आशावादिता का आलोक भी है। ठुकने पिटने के बावजूद भी देश को बचाने और बलिदान की भावना है। श्रीकृष्णचन्द्र ने "पराजय के बाद" (१९४४) में महायुद्ध की मूल समस्याओं को उठाया है तथा मानवीय भावनाओ की उन तहो तक पहुच जाना चाहा है जो हमें केवल उपचेतन स्तरो में उभरती नजर आती हैं।

कुछ एकाकियो में शोषक वर्ग तथा विदेशी सरकार के विरुद्ध जनवादी सन्देश हैं; जैसे श्री कृष्णचन्द्र का "हमारा मदरसा" (१९४६), श्री अविनाशचन्द्र का "मुसीबत में" (१९४४), श्री शम्भूनाथसिंह का "बलिदान" (१९४५), श्री विष्णु का "निदान" (१९४३)।

श्री राहुल साकृत्यायन ने भोजपुरी में कई सुन्दर फासिस्ट विरोधी एकाकी लिखे हैं, जैसे "जपनिया राछच्छ, देश रच्छक, नई की दुनिया, ई हमार लड़ाई, जरमनवा के हार निहचय"। यह नितान्त नई शैली के एकाकी हैं। पिछडी जातियों को उन्नत

कर उनमें देशप्रेम, बलिदान, राष्ट्रीतता की भावनाओ को भरने की दृष्टि से यह अद्वितीय है। इनमें जापान विरोधी दाव पेंच वतलाये गये हैं। भारत ने चीन का पक्ष लिया और शोषित होने के कारण उनका पक्ष उन्हें न्यायपूर्ण तर्क सगत और देश प्रेम से मुक्त प्रतीत हुआ। अत कुछ ऐसे भी एकाकी लिखे गये जिनमें चीनी जनता की स्वदेश भक्ति, आदर्श बलिदान तर्क पूर्ण युद्ध का समर्थन है। सेठ गोविन्ददास का "सिंगपाई लान" (१९४५) एक आदर्श चीनी युवती का चित्र है तथा पारिवारिक आनन्द को उपस्थित करता है। श्री अमृतराय ने २, ३ अच्छे चीनी एकाकियो के अनुवाद किये हैं। उनके "बहादुर लडका" और "हथियार" उत्तम रचनाए हैं। इन्हें पढकर जापानी फासिज्म के प्रति देशवासियो का रुख स्पष्ट हो जाता है। यही भावना श्री गणेशदत्त गौड इन्द्र के "राष्ट्र ध्वज गरिमा" की है जिसकी अतिम पक्ति है, "क्रान्तिकारी कोरिया की जय, जापानी सत्ता का क्षय"। प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त के होटल और आसाम का एक चित्र तत्कालीन भावनाओ का चित्रण करते है। "होटल" (१९४१) में रानीखेत के एक साधारण गरीब होटल का जीवन चित्रित किया गया है। दूसरा एकाकी आसाम का एक काल्पनिक चित्र है, जब जापानी वहा बम गिरा रहे थे।

अनूदित फासिस्ट विरोधी नाट्य साहित्य भी यथेष्ट सख्या में प्रकाशित हुआ है। श्री अमृतराय ने "रूसी लोग" (१९४३) तथा "चार चित्र" (१९४४) प्रकाशित किये। "चार चित्र" के अन्तर्गत चार एकाकी नाटक हैं, जो प्रसिद्ध फासिस्ट विरोधी जर्मन लेखक बर्ट ब्रेख की पुस्तक "फोयर एण्ड मिजरी इन दी थर्ड राइख" से लिए गये हैं। इनमें नाट्यकार ने असाधारण कला के साथ हिटलरी जर्मनी के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं जो हिटलर ससार को विजय करने वाला था, वह स्वय जर्मनी को अपनी क्रूरता से किस प्रकार दीन, निरुपाय भयभीत और सत्रस्त रखता है, इसका परिचय इन एकाकियो से प्रकट होता है। इनमें यह भी स्पष्ट होता है कि सोवियत के नेतृत्व में हिटलर के विरुद्ध उस युद्ध का उद्देश्य पद-दलित योरोपीय देशो की ही तरह स्वय जर्मनी को मुक्त करना भी था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व क्रान्ति

कुछ एकाकियो में भारतवासियो का स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए आकुलता, विद्रोह और सक्रिय राष्ट्रीय भावनाओ को उद्बुद्ध करने का प्रयास है। जैसे त्रिलोचन का 'भूखे भेडिये" (१९४०), श्री केदारनाथ मिश्र प्रभात का "काल दहन" क्रान्ति और ज्वाला का शखनाद करता है। प्रभात जी ने विप्लव का पथ प्रशस्त किया है, जो हमारी नसो में स्फूर्ति और नव चेतना का सचार करता है। डा० सत्येन्द्र का "स्वतन्त्रता का अर्थ" स्वतत्रता के पूर्व भारतीयो की स्वातन्त्र्य भावना को मुखरित करता है। सेठ गोविन्ददास का "अर्द्धजाग्रत" १९३८-४२ तक की जाग्रति को स्पष्ट करता है। श्री हरिकृष्ण प्रेमी का 'स्वर्ण विहान" दुखी भारत की एक पुकार है।

श्री विष्णु प्रभाकर का "बीमार" १९४२ की क्रान्ति का मार्मिक चित्र है। इस नाटक में विष्णु जी ने सन् १९४२ के एक थानेदार का जनता के प्रति किए गए अत्याचारो का चित्रण किया है। यह एक मनोवैज्ञानिक कृति है जो आत्मग्लानि और पश्चाताप का चित्रण करती है।

श्री जयनाथ नलिन के "विद्रोही की गिरफतारी, देश की मिट्टी, लाल दिन, युद्ध के बाद", आदि नाटक राष्ट्रीय भावनाओ से ओत प्रोत हैं। श्री रामचन्द्र तिवारी के "वन्दिनी, भारत और महिमा, स्वधीनता" तत्कालीन राष्ट्रीय जागृति को चित्रित करते हैं। श्री प्रेमनारायण टडन एम० ए० का "कर्मपथ" पौराणिक होते हुए भी राष्ट्रीय भावनाओ से भीगा है।

सन् १९४२ का जन विद्रोह और आजाद हिन्द फौज के विषय में भी कुछ एकाकी प्रकाशित हुए हैं। ये दोनो घटनाए भारतीयो के हृदय मे करुण वेदना और उत्साह के भाव उत्पन्न कर देती है। प्रथम श्रेणी मे श्री रामचरण महेन्द्र का "बन्दा बैरागी" तथा द्वितीय में श्री शिवकुमार ओझा सुकुमार के तीन एकाकी १ रक्तदान २ सोहाग रात तथा ३ सर्वस्व दान आते हैं। ये तीनो नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के शौर्य तथा आजाद हिन्द फौज के वीरतापूर्ण कार्य से सम्बन्वित है। नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के उत्साह, राष्ट्रीय भावना और स्वातन्त्र्य भावनाए इनमे मुखरित हुई है। डा० सुधीन्द्र का "राम रहमान" आजाद हिन्द फौज में प्रचलित भारतीयता तथा हिन्दू मुसलिम एक्य की भावना से सबधित है। श्री गणेशदत्त गौड़ का "जय हिन्द" बर्मा फ्रन्ट से लौटते हुए एक स्वतन्त्रता प्रेमी युवक के बलिदान को चित्रित करता है। ठाकुर शंकरसिंह का "राष्ट्र प्रतीक" (१९४६) सन् ४२ में जिला मजिस्ट्रेट की पुत्री कान्ता द्वारा गोलीकाट के विरोध तथा जनता के पक्ष का समर्थन मे सबधित है।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी के "राष्ट्र मदिर" में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हिन्दू मुसलिम अगेज तीनो जातियो के प्रतिनिधियो द्वारा आयोजित ब्रिटिश सरकार के विरोध में मोर्चा दिखाया गया है। इसमें सरकार की थोडी सी प्रतिष्ठा पाने वाले राय साहब, खान साहब, देश के बागी, ब्रिटिश सरकार के भक्तो की अच्छी छीछालेदर की गई है। डा० सुधीन्द्र के "खून की होली" (१९४६) मे भारत की स्वाधीनता के पूर्व स्वय हमारे ही स्वार्थी, सकीर्ण विचार, लोभी पुलिस वालो द्वारा राष्ट्रीय सेवको पर किए गए अत्याचारो का चित्रण है। 'राखी" (१९४१) में प्रतीकात्मक शैली में परतन्त्रता के बन्धन को तोड देने का सकेत है।

प० उदयशकर भट्ट का "क्रान्तिकारी" (१९५५) सन् ४२ के जन-विद्रोह से सम्बन्धित है। इसके प्रमुख पात्र दिवाकर की तपस्या, दृढता, तथा देश प्रेम सराह-नीय हैं।

जागीरदार और देशी नरेश: जागीरदारी प्रथा के विरोध में श्री देवीचरण का "जागीरदार कुवारसिंह" (१९५०) सुन्दर व्यग्यात्मक एकाकी है। इसमे प्रगतिशील

तथा पुरानी जीर्ण-शीर्ण पूजीवादी परम्परा की प्रतीक जागीरदारी प्रथा का तुलनात्मक अध्ययन है। जहा जागीरदार कुधारसिंह अपनी प्रतिगामी प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व करता है, वहा सुधारसिंह निज प्रगतिशील प्रवृत्तियो द्वारा उसको सुधारना चाहता है। कुधारसिंह का छल छद्म, भ्रष्टाचार इत्यादि सुधारसिंह की सेवावृत्ति, प्रेम समता के सिद्धान्तो द्वारा पराजित होती है। इस नाटक में विजय नैतिक शक्तियों की दिखाई गई है।

स्वतत्र भारत में राजाओ की महत्ता कम हो गई है। अब वे प्रजा के सेवक के रूप में ही स्वीकार किए जा सकते हैं। इस परिवर्तित स्थिति का चित्रण उदयशकर भट्ट ने "अघटित" में नये युग में राजाओ की मनोवृत्ति का अकन करते हुए किया है। डा० सुधीन्द्र ने राजाओं के सम्बन्ध में "रेवा का राजमुकुट" एकाकी लिखा है। सन पैतालीस में विदेशी भारत सरकार ने रीवा नरेश को पदच्युत किया था और तत्कालीन राजनीतिक जगत् मे इससे एक हलचल हुई थी। नाट्यकार ने उक्त घटना को लक्ष्य कर प्रतीक एकाकी "रेवा का राजमुकुट" द्वारा युग के रूप को प्रतिष्ठित किया है। सेठगोविन्ददास ने "हार्स पावर" (१९४५) में आधुनिक युग के देशी नरेशो की कम सूझबूझ और मूर्खता का जीता जागता और सुन्दर चित्रण किया है। सक्षेप मे आधुनिक हिन्दी एकाकी में देशी नरेशो के अत्याचार, विवेकशून्यता, अशिक्षा, मूर्खताए निरकुशता के अतिरिक्त भावी भारत में जनता की सेवा द्वारा ही जीवित रहने का प्रतिपादन किया गया है।

इनके अतिरिक्त अन्य राजनीतिक पहलुओ पर भी एकाकी लिखे गए हैं, जैसे प्रो० बोरगावकर का "रुद्र की बलि"। यह उस समय लिखा गया था जबकि काश्मीर समस्या के सम्बन्ध में दोनों साथी देश में अनधिकृत युद्ध हो रहा था, बहुमत के लिए शान्ति और निष्पक्षता से सोचना असम्भव था। नाट्यकार ने यह कल्पना की है कि यदि सयोगवश एटम बम हमारे हाथ में आ जाता है, तो हमारे देश में दो विचार प्रणालियो का सघर्ष अनिवार्य हो जायेगा। नाट्यकार ने दिखाया है कि यदि मनुष्य तथा राष्ट्र की पाशविक प्रवृत्तियो पर नैतिक नियत्रण न हो तो वे प्रवृत्तिया अनर्थ का मूल होती हैं। "रुद्र की बलि" के अन्त में आर्य आदर्शवाद के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गई है।

प्रो० बोरगावकर का "हिटलर की मृत्यु" में २० वी शताब्दी के स्वार्थी सकुचित नीति से भ्रष्ट राजनीतिक एव सामाजिक जीवन का एक चित्र है। इसमें नीत्से के अतिमानववाद की छाप पडी है। "डिक्टेटर" के मनोविज्ञान का भी सुन्दर चित्रण है।

रावी के "रेस्तोरा" (१९४४) में महायुद्ध में हिटलर तथा अन्य मित्रराष्ट्रो के दृष्टिकोण को प्रकट किया गया है। चर्चिल, ट्रूमैन, हिटलर, सुभाषचन्द्र बोस इत्यादि द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर विचार विनिमय किया गया है। प्रतिशोध तथा दड की भावनाओ के अनुसार जो कार्य किए जाते हैं, वे विश्व शाति के लिए त्याज्य हैं। इसी प्रेरणा को लेकर इस एकाकी में १९४४ की राजनीतिक स्थिति को प्रकट किया गया है।

सी० ई० एम० जोड का "वोल्शेविक पुतले से बातचीत" युद्ध के पश्चात् फैली हुई सैनिक बेकारी का चित्र उपस्थित करता है। श्री राजेन्द्र सिंह गौड का 'रोग यात्रा रहस्य" (१९३९) में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो का चित्र है। मुसोलिनी, चैम्बर-लेन, लार्ड हैलीफेक्स और काउन्ट वियानो अन्त में मुसोलिनी और काउन्ट वियानो को एक एक उपनिवेश देने का निर्णय करते है।

श्री कृष्णचन्द्र विद्यालकार का "विश्व युद्ध का विजेता" में सर्वश्री स्टालिन, ट्रूमैन, एटली, चर्चिल, क्रिप्स, चागकाई शेक, सुभाष आदि को पात्रो के रूप में रखकर महायुद्ध के सब मार्मिक स्थलो, युद्ध की आन्तरिक स्थिति, हिटलर की हार के कारण, मुसोलिनी की भूलें, जनरल तोजो द्वारा भारत पर आक्रमण न करने की भूल आदि पर प्रकाश डालकर यह निर्णय किया है कि वैज्ञानिक मजदूर और किसानो ही के कारण युद्ध में सफलता प्राप्त हो सकी है। प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप का "परमाणु बम" (१९४६) साम्राज्यवाद तथा आर्थिक विषमता पर प्रकाश डालता है। विराज के "सीमान्त का सन्तरी; तिरगा झडा" आदि भारतीय सेना के सैनिको के कर्तव्य, प्रेम और साहस के चित्र प्रस्तुत करते हैं।

श्री विकल का "खुदाई खिदमतगार" (१९४०) सीमान्त के गाधी अब्दुल गफ्फारखा के जीवन का एक मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित करता है। "प्रश्नवाचक चिह्न" (१९४७) में श्री कल्पनाकुमार ने एटली का भारत को आजाद कर देने का साहस व्यक्त किया है। श्री भरतकुमार चतुर्वेदी का "यमलोक में क्राति" (१९४५) यमलोक में रूजवेल्ट, लेनिन, ट्राटस्की, गोबेल्स इत्यादि का काल्पनिक चित्र उपस्थित करता है तथा समाज-वाद के मूल सिद्धांतो पर प्रकाश डालता है। श्री गिरवरलाल विद्यार्थी का "डबल रोटी संकट" राजनीतिक प्रहसन (१९३८) है जिसमें इगलैंड की उस स्थिति का चित्रण है जब वह इस बात से भयभीत था कि विजय किसकी होगी। लडता है, तो डबल रोटी पर सकट पडता है, न लडने पर यह डर लगता था और जर्मनी, इटली, जापान का गुट उनके खिलाफ पड़ता है। "सपने की मुलाकात" (१९३८) में हिटलर और मुसोलिनी का तर्कपूर्ण कथोपकथन है। "युद्ध पुराण" (१९३८) में युद्ध के विभिन्न केन्द्रो पर होने वाली क्रिया का विवेचन है, जिसमें भारत और चीन पर लगे हुए दात की ओर संकेत है।

पं० गौरीशकर मिश्र ने भारत तथा पाकिस्तान के पारस्परिक सम्बन्धो को अपने एकाकियो की समस्या बनाया है। अपने "हिन्दूराज, पाकिस्तानी स्वप्न कब तक" नामक एकाकियो में मिश्र जी ने हिन्दूराज और पाकिस्तानी सल्तनत से जो अनुविधाए हो सकती हैं, उनका सजीव चित्र दिखाकर असाम्प्रदायिक गणतन्त्र की विशेषताए दर्शायी हैं। "हिन्दुस्तान पाकिस्तान साथ रहेंगे" नामक सामयिक एकाकी में स्वर्गीय नेताओ के सवादो द्वारा काग्रेस राज्य की त्रुटियाओ पर प्रकाश डाला है।

संक्षेप में राजनीतिक चेतना के अन्तर्गत इन एकांकियो में गत वर्षों की राज-

नीतिक गतिविधि और उथल पुथल, देश का भय, बुभुक्षा, मानसिक पीडा, कठिनाइयाँ और प्रतिकूल परिस्थितिया आदि अभिव्यक्त हुई हैं ।

३. सामाजिक समस्या एकांकी

प्रयोगकालीन युग में सामाजिक विषयो का प्रतिपादन करने वाले समस्या एकाकी वृहत् सख्या में लिखे गये थे। भारत के सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन में पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए थे। हमारे एकाकीकारो ने अपने सामाजिक एकाकियो मे अन्तर्जातीय एव अन्तर्प्रान्तीय दृष्टिकोण, मतभेदो और जर्जरित रूढियो को दूर कर हमारा ध्यान अनेक उपेक्षित सामाजिक विषयो की ओर आकृष्ट किया तथा अनेक पुरानी समस्याओ पर उदार दृष्टिकोण से विचार किया। हिन्दी एकाकी समाज के प्रति तीव्रता से सजग हुआ।

सामाजिक समस्या-एकाकियो में अनेक प्रवृत्तिया नये रूप में हमारे समक्ष आई है। हिन्दी एकाकी क्रमश रोमास और भावुकता से मुक्त होने लगा। उसमें तर्क तथा बौद्धिकता का समावेश हुआ। प्राचीन युग के एकाकीकारो ने जिन सामाजिक समस्याओ को केवल मनोरजन या समाज सुधार मात्र के लिए चित्रित किया था, उनमें भावुकता का प्रधान योग था, किन्तु इस युग के चित्रण में बुद्धि तथा तर्क ने वह स्थान ग्रहण किया। हमारे एकाकीकार पुरानी समस्याओ को गहराई से देखने लगे तथा प्रत्येक तत्व पर बौद्धिक प्रकाश डालने लगे । ये एकाकी ऊपरी सतह पर ही अवलम्बित नही रहते, प्रत्युत समाज और व्यक्ति के आन्तरिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। इनका सृजन भावुक दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। इस युग की बौद्धिकता उस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण हुई, जो वैज्ञानिक आविष्कारों तथा महायुद्ध के दबाव के कारण अभिवृद्धि पर था। यह बुद्धिवाद लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या एकाकियो में प्रकट हुआ है ।

मिश्रजी की एक महत्वपूर्ण विशेषता मनोवैज्ञानिक व्याख्या थी। अब तक हिन्दी एकाकियो में सघर्ष केवल बाह्य था। एकाकीकार सामाजिक रूढ़ियो के उन्मूलन में ही सलग्न रहे थे। समाज का व्यवहारिक पक्ष उनकी व्याख्या और व्यग्य का मूल विषय रहा था, किन्तु अब उनके विरुद्ध एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। समाज का बाह्य-पक्ष फाडकर वे व्यक्ति के अन्तराल में प्रविष्ट हुए। ये एकाकी प्रधानत व्यक्तिवादी हैं। व्यक्ति की नाना समस्याओ के विश्लेषण से सबधित हैं। व्यक्ति के गुप्त मन में सचित सस्कार, गुप्त मनोभाव, दलित अनुभूतियो, आन्तरिक पर्तें खोलकर मानव के अभ्यन्तर प्रदेश में चलने वाले सघर्ष का उद्घाटन करना इनका प्रिय विषय रहा। व्यक्ति के सुख दुख, राग विराग, अह घृणा, द्वेष, ईर्ष्या की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की गई। रामकुमार वर्मा, अश्क, गणेशप्रसाद द्विवेदी, विष्णु प्रभाकर, प्रभाकर माचवे आदि के एकाकी मनोविज्ञान की चिरन्तन जटिलता से सबधित है।

सामाजिक एकाकियो का क्षेत्र विस्तृत न होकर कुछ विषयो पर आकर सीमित हो गया । समाज की अनेक कुरीतियो का चित्रण तथा उन पर पर्याप्त व्यंग्य द्विवेदी युग में हो चुका था । वेकारी, किसान मजदूर समस्या, सामाजिक संस्थाओ की आलोचना, गरीवी अमीरी का सघर्ष, वाल विवाह, वृद्ध विवाह, भ्रष्टाचार, वेश्यागमन, नौकर और मालिक समस्याए आदि अनेक सामाजिक समस्याओ पर वहुत से एकांकी लिखे जा चुके थे। उनके चित्रण में व्यग्य और कड़ुवाहट थी। समाज सुधार की वृत्ति स्पष्ट प्रकट होती थी ।

इस काल के एकाकियो में विषय विस्तार का अभाव हुआ। अन्य गौण विषयो को छोडकर हिन्दी एकांकीकारो का एक प्रतिपाद्य विषय सैक्स हो गया। पुरानी रूढिया छोड दी गई, सैक्स की विषमताओ की छानवीन प्रारम्भ हुई। योरोप में फ्रायड ने स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्वन्धो के विषय मे आश्चर्यजनक मान्यताए स्थिर की थी, जो हिन्दी एकांकी साहित्य के लिए नई थी। स्त्री पु प के द्वन्द्वात्मक आकर्षण विषयक अनेक एकाकी इस काल में लिखे गये। ये फ्रायड की विचारधारा से प्रभावित थे। इनका उद्देश्य स्त्री पुरुष के स्वभाव की मूल प्रवृत्तियो, अन्तर्द्वन्द्वो, अज्ञात अस्पष्ट, तथा परोक्ष रूपो, प्रेम सवधी दलित अनुभूतियो तथा उनकी प्रतिक्रियाओ की व्याख्या करना था। सैक्स का मानव जीवन पर कितना जवरदस्त प्रभाव पडता है, जीवन की नाना क्रियाए विना जाने हुए कैसे प्रभावित रहती है, हमारी कृत्रिम सभ्यता के वन्धन तथा समाज के अनुशासन की निरंकुशता से सैक्स जैसी सहज प्रवृत्ति दव कर कैसे अनजाने ही छटपटाती रहती है, इसकी महत्ता को समझा गया और किसी न किसी रूप में सैक्स को आधार वनाकर अनेक सामाजिक एकाकी लिखे गये। भुवनेश्वर प्रो० अर्जुन चौवे काश्यप, अश्क, गणेशप्रसाद द्विवेदी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृथ्वीनाथ शर्मा आदि एकांकीकार व्यक्ति की सैक्समूलक समस्याओ का विवेचन करते रहे।

मूलत समाज सुधारवादी होने के कारण द्विवेदी युग आदर्शवादी रहा था। सामाजिक कुरीतियो के उन्मूलन में सर्वत्र हिन्दी एकाकीकारो की वृत्ति एक आदर्श की ओर रही। इस युग में आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई, भावुकता का आदर्शीकरण दूर करने लगा और नैतिक स्वर टूट गया। हिन्दी एकाकीकार यथार्थ के चित्रण की ओर उन्मुख हुए। इस धारा को वर्नार्ड शा से प्रभावित माना जा सकता है। कुछ हिन्दी एकाकीकारो ने सीधे पाश्चात्य नाट्यकारो से प्रेरणा ली है। भुवनेश्वर एव अश्क के एकाकियो में जो घरेलू यथार्थवाद है, यह पाश्चात्य नाट्यकारो से प्रभावित है।

इस युग के यथार्थवाद में साधारणत अवसाद भरा है। हमारे कुछ एकाकीकारो ने समाज में जिन रूढियो के ध्वसावशेष देखे, उनका भीषण नर-सहारक रूप उन्होने चित्रित कर दिया है। समाज के शिकजे में फसा हुआ पुरुष अथवा नारी स्वय अपनी दुर्वलताओ से युद्ध करते हुए चित्रित किया गया है। व्यक्ति समाज से

युद्ध करता है, किन्तु युद्ध में उसे सफलता नहीं मिल पाती, निराशा ही मिलती है। यह अवसादपूर्ण नैराश्य हमें गणेशप्रसाद द्विवेदी के एकाकियों में मिला।

यथार्थ के अन्य भी कई रूप देखने में आये। अश्क ने अवसादपूर्ण चित्र तो प्रस्तुत किए हैं, किन्तु उनमें आशा की एक छिपी हुई ज्योति भी प्रकट होती है। उनके एकाकी "कैद" में जो नारी निष्क्रिय, असमर्थ और कारावद्ध है, वह उनके दूसरे नाटक "उडान" में सक्रिय विद्रोहिणी और अपनेपन की खोज में विकल है। यथार्थ का तृतीय स्वरूप डा० रामकुमार वर्मा, उदयशकर भट्ट तथा भगवतीचरण वर्मा, सेठ गोविन्ददास में प्रकट होता है। इस वर्ग के एकाकीकार किसी भी समस्या के प्रति पूर्ण तटस्थ होकर निरपेक्षभाव से देखते हैं। जैसे देखते हैं, वैसे ही उसे प्रस्तुत कर देते हैं। इस वर्ग का क्षेत्र विस्तृत है। निरपेक्ष दृष्टिकोण होने के कारण उसमें सुखान्त तथा दुखान्त दोनो ही प्रकार के एकाकी संभव हैं, निरपेक्ष हास्य का प्रादुर्भाव भी हो सकता है, जैसे अश्क की "जोंक", डा० वर्मा की "छीक, या भगवतीचरण वर्मा के "दो कलाकार", "सबसे बडा आदमी" आदि प्रहसन।

यह निरपेक्ष दृष्टिकोण अधिक गहराई में जाकर मनोविश्लेषणात्मक आधार पर मानव मन के निगूढ़तम तथ्यों का उद्घाटन कर सकता है। इस वर्ग के एकाकीकार अपने चित्रण में वैज्ञानिक कठोरता का पालन करते हैं। यथार्थ के चतुर्थ वर्ग को हम अति यथार्थवाद कह सकते हैं। यथार्थवाद के क्षेत्र में जब एकाकीकार अति गहन तथा सूक्ष्म होकर अन्तर्मन के आवरणो को नग्नतापूर्वक उधेडने लगता है और सब गुप्त रहस्यों को खोल कर जनता के समक्ष प्रस्तुत कर देता है तो इस वर्ग का एकाकीकार कहा जा सकता है। यह नग्नता, वस्तु वि य या भाव की हो सकती है। भुवनेश्वर में ये तीनो अवस्थाए नग्नता से चित्रित की गई हैं। आपके "श्यामा", "एक साम्यहीन साम्यवादी", "पतित", "प्रतिमा का विवाह", रोमाच, रोमाच, आदि एकाकियो में समाज का नगापन उधेडकर रख दिया गया है। इनमें किसी प्रकार की झिझक नही है, पाप पुण्य, उचित अनुचित का विवेक नही है। इनकी निरपेक्षता में भी एक व्यग्य है। पाचवा वर्ग उन यथार्थवादियों का है, जो प्रगतिवाद के अन्तर्गत आ सकते हैं। ये न केवल समाज का नगापन चित्रित करते हैं, प्रत्युत उनके मौलिक कारणो की भी व्याख्या या सकेत करते हैं। इन कारणो का विश्लेषण देकर ये अपने उद्देश्य लक्ष्य के प्रति विशेष उन्मुख दीखते हैं। अविनाशचन्द्र के "राह के काटे, विडम्बना" तथा प्रो० आनद लिखित "प्यास" आदि एकाकी इस प्रकार के उदाहरण हैं।

श्री विष्णु प्रभाकर ने सामाजिक समस्या-नाटको के क्षेत्र में विशेष रूप से कार्य किया है। आपने समाज की गतिविधि, छोटे वडे शोषण, प्रतिद्वन्द्वी, आदर्श आधुनिक परिस्थिति एव वातावरण की नई समस्याओ को उभारा है। आपके कुछ एकाकी सामाजिक पुन निर्माण की भावना के अतिरिक्त पारिवारिक जीवन का भी विश्लेषण करते हैं।

विष्णु ने आधुनिक युवक-युवतियो, फैशन परस्ती, रोमास, त्रुटिपूर्ण शिक्षा पद्धति पर यत्र तत्र छीटे कसे है। जैसे, "गीत के बोल" मे स्त्री स्वातत्र्य तथा अनिर्धारित लक्ष्य प्राप्ति में बिना सोचे समझे बहने वाली एक कालेज कन्या की पथ-भ्रष्टता पर व्यग्य है। माता पिता स्वय गन्दे अश्लील फिल्म युवतियो को दिखाते है और पतन में सहयोग देते है। "सस्कार और भावना" में अन्तर्जातीय विवाह और सस्कारों की दास एक माता का अन्तर्सघर्ष दिखाया गया है। "व्यग्य" में अवकाश प्राप्त वृद्ध के मन के शक शुबे का अध्ययन है।

श्री विष्णु के चरित्र प्रधान एकाकी मनोवैज्ञानिक भित्ति पर खडे किये गये है; जैसे, "मुरब्बी" एक दूकानदार का चित्र है, जो स्वार्थी होते हुए भी सहानुभूति और सहयोग से पूर्ण है, "सरकारी नौकरी" हास्यरूपक में बड़े बाबू हैड क्लर्क की अहभावना का अध्ययन है। "उपचेतना के छल" में तारा के मन की रहस्यमय बातें प्रकट की गई है। "बुआ" और "सडक" नारी मन के विविध अध्ययन है। इनकी अभिव्यजना का आधार मनोविश्लेषण शास्त्र का उपचेतन का सिद्धान्त है। इन सामाजिक एकाकियो का सहज मानव गुण, मानवता का सहज सौन्दर्य, हृदय का योग, नवनिर्माण के लिए आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति उल्लेखनीय है।

श्री चन्द्रकिशोर जैन के एकाकियो जैसे इसाफ, पहली भेंट, कानून, भूत की सगाई, अस्पताल का कमरा, रानी, बसेरा, विद्रोही आदि में सामाजिक नव-निर्माण का विशेष ध्यान रखा गया है। प्रतिहिंसा की भावना से भरी हुई स्त्रिया पुरुषो की प्रतिद्वन्द्विता मे आगे बढने के लिए शासन व्यवस्था में भी समानाधिकार नही, पूर्णाधिकार प्राप्त करने मे जिस दिन सफल हो जायेंगी उस दिन भी पुरुष पुरुष रहेगा और स्त्री स्त्री रहेगी, यह चित्रित करने का उद्योग परिहास पूर्ण ढग से "इसाफ" में किया गया है। "कानून" मे यह चित्रित किया गया है कि अपराधो के लिए असमर्थ परिस्थितिया ही प्रधान कारण है। कानून अपराधी को सजा देता है, जेल भिजवाता है, किन्तु उसके जीवन तथा समाज मे कोई सुधार नही करता। अपराधी जेल में जाकर पतन की ओर उन्मुख हो जाता है। 'भूत की सगाई" में विवाह समस्या को लिया गया है। श्री जैन ने अपने नाटको में मनोविज्ञान का सतुलन रखने का प्रयत्न किया है।

श्री प्रेमनारायण टडन का 'कन्वेसिंग" सार्वजनिक नेताओ के अनुभवहीन व्याख्यानो, मिथ्या दभ, तथा जनता को गुमराह करने की दुष्प्रवृत्ति पर व्यंग्य करता है। "प्रेरणा" में ऐश्वर्य की लालसा", "प्रेमी" मे रोमास की निराशा, "बचपन के साथी" में धोखेबाज नेताओ के गुप्त रहस्य खोले गये है। आपने अपने सामाजिक जीवन में सार्वजनिक कार्यकर्ताओ, म्यूनिस्पैल्टी के प्रबन्धको, चुनाव, इत्यादि को व्यग्य का शिकार बनाया है। "नकल" में विद्यार्थी जगत की उच्छृखलता, शृगारप्रियता, फैशन, रोमाटिक प्रवृत्तिया और सिनेमा के प्रेम को आलोचना का विषय बनाया है।

श्री प्रभाकर माचवे ने समाज के यथार्थवादी रूप का यथातथ्य चित्रण अपने एकाकियो में प्रस्तुत किया है। "गली के मोड पर, ललित कला क्लब, यदि हम वे होते, गुडबाई मि० शर्मा, पागलखाने में, पचकन्या" आदि एकाकियों में श्री माचवे ने आधुनिक समाज की कालिमा-कलुष, चटकीला भडकीलापन, हर्ष विषाद, सत्ता के लिए आपाधापी, सभ्यता का दभ भरने वाले आज के मनुष्य के कार्य व्यापार, मानसिक प्रवृत्तिया, विकृत अतृप्त भोगशील स्वार्थ, रोमास हलचल, युग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितिया, दलित कुठित कल्पनाए मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर चित्रित की हैं। इनमें जीवन के सामाजिक सघर्षों और मनुष्य के नाना रूपो की कशमकश है। इनकी विशेषता यह है कि ये सामाजिक विद्रूपताओ को केवल बौद्धिक रूप में ही नही छूते हैं, प्रत्युत मीठे व्यग्य का सम्मिश्रण कर देते हैं। समाज की अतल गहराई मे बैठ कर जीवन की व्यंग्यमिश्रित वास्तविकता प्रतिफलित करते हैं। मानव की मनोदिशा का यहा अच्छा चित्रण है।

"दीवार" रूपक मनुष्य की विज्ञापन प्रियता पर व्यग्य करता है। "लैटर बक्स" में सब प्रकार के पत्र लेखको और उनकी वृत्तियो का रहस्य खोल दिया गया है। "ललित कला क्लब" में क्लब के माध्यम से अपने मन की कुठा का परितोष देने वाले उन कला प्रेमियो का सजीव चित्र खीचा है, जो काव्य कला से कोसो दूर कला के नाम पर दिल्लगी करने और थोथी बातचीत में ही कला साधना मानते है। 'गुडबाई मि० शर्मा' फिलम जगत् की आलोचना प्रस्तुत करता है। भारत में ऐसे फिल्मो का निर्माण अधिक हो रहा है, जिनमें सस्ते मनोरजन और आदर्शहीन प्रेम कहानियो को ही नाच और गाने के साथ उपस्थित किया जाता है। इस में फिल्म-जगत के इस अधेरे पक्ष पर ही हास्यपूर्ण व्यग्य किया गया है।

'पच कन्या" क्रम के पाच एकाकियो में विभिन्न सामाजिक समस्याए उठाई गई है। भारतीय नारी का आधुनिक प्रतिबिम्ब यहा हमें मिल जाता है। "पागलखाने में" क्रम के एकाकियो में आधुनिक मनुष्य के मस्तिष्क की व्यग्यात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गई है। शक्ति, धन, इत्यादि का अतिरेक मनुष्य को कहा का कहा ले जाता है, इसका दिग्दर्शन कराते हुए माचवे जी ने सौंदर्यवादियो और पूजीपतियो के व्यग्य चित्र प्रस्तुत किए हैं। "धनवान बनो" में धन कमाने के आधुनिक तरीकों पर व्यग्य है। "श्रम पूजा" में साहित्यिक जी के मन में क्या क्या विचार उठ रहे है देखिये .

"मानव मानव को रौंद रहा है। मानव पशु बन गया है। नर मास भक्षक है, और ऊपर साहित्य और प्रेम धर्म की, महन्त मन और आदर्शवाद की चिकनी चुपडी चहकी बातें भी करता है।"

श्री प्रभाकर माचवे के एकाकी विचारधारा एव समाज की बुद्धिवादी तर्कपूर्ण आलोचना की दृष्टि से अभूतपूर्व है। इनमें आपका आलोचक रूप प्रकट हुआ है,

जो समाज के अन्तर में छिपी विद्रूपता को देखकर उस पर व्यग्य कर देता है।

श्री गणेशदत्त गौड़ इन्द्र ने अपने सामाजिक नाटकों में छुआछूत, निम्न वर्गों के प्रति सवर्णों के अत्याचार, हिन्दुओं की धार्मिक और नैतिक संकुचितता आदि पर व्यग्य किए हैं। "वलिदान" (१९२७) में हिन्दू धर्म की रक्षा तथा समाज सुधार की वलिवेदी पर प्राणोत्सर्ग करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द के चरित्र गौरव के साथ पारस्परिक सद्भाव, मेल उदारता का पथ प्रशस्त किया गया है। उद्धार के लिए शुद्धि आन्दोलन तथा साम्प्रदायिकता को रोकने का आग्रह किया है।

श्री रामचन्द्र तिवारी के "भगी का चुनाव" (१९२८) मैम्बरों की मूर्खताएं चित्रित करता है। "श्री श्री नारी उद्धारक लिमिटेड" (१९३१) विधवा आश्रमों का दुरुपयोग, भ्रष्टाचार और व्यापारिक दृष्टिकोण पर व्यग्य करता है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल का "पर्वत के पीछे" भावना और यथार्थ का अध्ययन है। "मडवे का भोर" निम्न मध्यम वर्ग के परिवार का वह कड़ुवा भोर है जबकि घर की लडकी दूसरे के घर विदा हो जाती है। "फूल और कांटे" मे वस्तुवादिता एवं मानववादी का सघर्ष चित्रित किया गया है। 'सुवह होगी" तीखा आशावादी नाटक है "दो तस्वीरें" जोडिया उत्पन्न होने वाली दो वहिनो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। "नयी इमारत" आधुनिक वुद्धिजीवी युवती की मनोवैज्ञानिक ट्रेजिडी है, जो समाज की शृंखलाओ में आवद्ध है। आपके सामाजिक नाटक युग की रूढ़ियो पर निर्मम प्रहार करते हैं।

श्री जयनाथ नालिन के "फिलास्फर, मेहमान, कन्वेंसिंग, सागर तट पर, फिल्मी कहानी, डिमोक्रेसी, चित्त भी मेरी पट्ट भी मेरी, महालक्ष्मी, चोली" आदि व्यग्यमूलक सामाजिक एकाकी हैं। आपके 'शान्ति सम्मेलन' तथा 'सवेदना सदन' में आधुनिक सभ्यता, समाज तथा मनुष्य की पूंजीवादी मनोवृत्ति पर व्यंग्य है। नलिन की व्यापक दृष्टि व्यक्ति, समाज, सभ्यता, कला, संस्कृति में पाई जाने वाली कमजोरियो की तह में जाकर उन्हें उजागर कर देती है।

श्री विश्वम्भर मानव का दृष्टिकोण मानववाद का प्रचार करना है। आपके "सदेह का अन्त" मे एक साध्वी नारी के प्रति उस सदेह का चित्रण है जो बाद मे मिथ्या निकलता है। इनमे सामाजिक व्यवहार एव शिष्टाचार पर एक व्यग्य है। "जीवन साथी" नाट्यकार का सघर्षमय जीवन के प्रति प्रेम तथा कल्पना मे विहार करने वाले जीवन से विरक्ति प्रकट करता है। "संकीर्ण" मे आपने समाज की आर्थिक इकाइयो पर आधारित विवाह पद्धतिया गुण को न देखकर धनी वर प्राप्त करने की इच्छा, समाज के कृत्रिम मापदण्डो तथा पुरानी जीर्ण-शीर्ण सामाजिक कसौटियों पर व्यंग्य किया है। "दो फूल" सामाजिक ऊच-नीच को उभारता है। इन नाटकों का दृष्टिकोण यथार्थवाद है, किन्तु इनमे एक वर्गहीन समाज की ओर इगित किया गया है।

सत्येन्द्र शरत् के सामाजिक एकाकियो मे "शाहजादा" एक ऐसे चरित्र का अध्ययन है जिसे समाज आवारा कहता है, किन्तु वह बडे बलिदान को करने मे पीछे नही रहता। इसमे एक जुआरियो के अड्डे का यथार्थवादी चित्र खीचा है जो पुलिस की आखों के नीचे जुआ खेलते, शराब पीते, खून करते हैं। पुलिस उनसे मिली रहती है, करती कुछ नही। "गुडबाई अनिता" मे समाज में फैलने वाले नए रोग प्रेम-विवाह का विवेचन है। आधुनिक समाज के बनावटी शिष्टाचार का यह एक सजीव चित्र है।

कुछ नाट्यकारो ने सामाजिक रूढियो के प्रति विद्रोह का स्वर ऊचा किया है। इनमे जीर्ण-शीर्ण परम्पराओ पर आघात कर उनकी निर्बलता, पुरानपन्थी, अविवेक और निस्सारता चित्रित की गई है। प० उदयशकर भट्ट का "क्रातिकारी विश्वमित्र" (१९५२) वैदिक युग का चित्र होते हुए भी आधुनिक समाज की वर्ण व्यवस्था, जाति-पाति की सकुचितता, समाज की अनार्य रूढियो के प्रति विद्रोह कर आर्य अनार्यों को मिलकर रहने तथा दूसरे का स्नेह भाजन बनाने का एक प्रयत्न है।

श्री गिरीशचन्द्र चौधरी का "सत्य की ओर" (१९४८) अछूत समस्या की निस्सारता चित्रित करता है। श्री धर्मवीर भारती का "सृष्टि का आखरी आदमी" (१९५०) अपने वातावरण मे ऐन्द्रजालिक होते हुए भी मानवीय सस्कृति की प्रगति से सबधित है। हमारे सामाजिक जीवन की, समाज व्यवस्थाओ की सार्थकता इसी मे है कि मानवीय प्रगति अक्षुण्ण रहे, बुद्धि और भावना, विज्ञान और कला, शिवम् और सुन्दरम् की दिशा में आगे बढ सके, उसकी गति अवरुद्ध न हो। श्री फकीरचन्द्र माथुर के "पहाड के देवता" (१९४६) मे समाज मे अब भी प्रचलित कन्या-विक्रय के रोग की ओर सकेत किया है। कृष्णकान्त त्रिपाठी ने आधुनिक युग में व्याप्त बेकारी, गरीबी और भुखमरी का भीषण चित्र "अभिशाप" (१९५१) मे प्रस्तुत किया है।

प० हरिनारायण मेणवाल के "गृहस्थी", "आधुनिक सहशिक्षा", "कौंसिलर" आदि युगव्यापी अर्थ सकट, मध्य वर्ग की परेशानिया और महगाई के करुण चित्र उपस्थित करते हैं। "गृहस्थी" का नायक राम भरोसे १५० रु० का क्लर्क है जिसके ऊपर कार्य की अधिकता, घर के झझट और सरकारी नौकरी का उत्तरदायित्व है। गरीबी और अत्याचार से पिसकर वह विद्रोही बन गया है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते" का सिद्धान्त मानने वाले हिन्दू समाज में आज किस प्रकार कन्या होने के ही कारण अपने आत्माभिमान को कुचलकर दु सह असम्मान से दग्ध माता पिता के लिए भार बन कर जीवित रहती है, और किस प्रकार स्वय को बडा शिक्षित और सुसस्कृत कहलाने वाले पुरुषो की कुत्सित लिप्सा की पूर्ति का साधन बनने को बाध्य होती है, इसका सजीव हृदयस्पर्शी चित्र सुश्री शकुन्तला मिश्र ने "मकडी का जाला" मे खीचा है। ऊपर से कुछ न मागने वाले प्रोफेसर भी विवाह के निमन्त्रण छपवाकर कन्या पक्ष से पाच हजार दहेज मागते हैं।

रिश्वत और घूसखोरी आज के समाज को खा रही है। श्री विश्वनाथ धवन के "घूस" एकाकी मे घूसखोरी के कलक को उभारा गया है।

श्री मोहनसिंह सेगर का "भूतपूर्व मिनिस्टर" (१९५२) सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के जीवन की समस्याए उभारता है। भूतपूर्व मिनिस्टर माननीय मि० वर्मा की चुनाव मे पराजय होती है, मिनिस्ट्री जाती रहती है, अनियमितता के कारण छ वर्षो के लिए मतदान के अधिकार से वचित होना पडता है। न वगला रहता है, न मोटर। रहा सहा टेलीफोन था वह भी कट जाता है। मिनिस्टरो के जीवन, कृत्रिमता, थोथी शान पर व्यग्य किया गया है। इसी प्रकार दूसरे नाटक "मिस्टर ४२०" मे आपने ऐसे सभ्य व्यक्तियो का खाका खीचा है जो सफेद लिबास मे रह कर जनता को उल्लू बनाते हैं।

प्रो० वृहस्पति के "कलक" (१९४७) मे एक ऐसे कलाकार का चित्र है, जिस पर समाज झूठमूठ कलक लगाता है, किन्तु बाद मे वह निरपराध सिद्ध होता है। "अतीत और वर्तमान" (१९४७ मे नई पुरानी सामाजिक व्यवस्थाओ) का तुलनात्मक अध्ययन है। "सास बहू"(१९४७) एक सामाजिक व्यग्य है, जिसमे सास का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। "दण्ड" (१९४८) मे समाज मे विधवाओ को उभारकर यह चित्रित किया गया है कि आज के समुन्नत युग मे भी विधवाओ की पुरानी जैसी दयनीय स्थिति बनी हुई है। विधवा प्रेम करती है, तो समाज आज भी उसे दण्ड देना चाहता है।

प्रो० रामदीन पाडेय के "घर मे भी आटा गीला, बलिदान, परख, जीवन का एक पृष्ठ, प्रेम का पागलपन, टाइफायड" इत्यादि सामाजिक एकाकियो मे अनेक समस्याओं को उठाया गया है।"आटा गीला" मे यह दिखाया गया है कि किस प्रकार दुर्बल को सबल, पीडित को पीड़क और शोषित को शोषक सफलतापूर्वक सताते हैं। "बलिदान" मे आततायियो के हाथो से अपने दुर्बल बन्धुओ की रक्षा करना, कलुषित संस्था मे देश की आजादी के लिए अपने भाइयो को अलग रहने की प्रेरणा देने, जुर्म मे प्राणदड की भी परवाह न करना, यही समस्या है। "परख" एकाकी मे भारतीय 'ओफिशियल' जीवन की व्यग्यात्मक झाकी उपस्थित की गई है। शिक्षा विभाग जैसे पवित्र कार्यालय मे भी चादी अपना महत्व रखती है और कैसे जीवन को विकृत कर देती है, यह चित्रित किया गया है। "जीवन का एक पृष्ठ" नाटक मे जवानी एक नशा है, इस समस्या को उभारा गया है। "प्रेम का पागलपन" मे चरित्र बल पर ही व्यष्टि या समष्टि का उत्थान-पतन निर्भर है, का विश्लेषण किया गया है। "टायफायड" एकाकी मे एक कली के खिलने से पूर्व उसे स्नेह-सूत्र मे बाध देते हैं और दूसरे उस कली के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण का भी सृजन नही करते, उसी समस्या को उठाया गया है। "सद्व्यवहार" मे प्रेम के व्यवहार की महत्ता चित्रित की गई है।

सामाजिक कुरीतियां . इस युग मे भी सामाजिक कुप्रथाओं पर टीका टिप्पणी

होती रही है। इस क्षेत्र मे डा० सत्येन्द्र का "बलिदान" दहेज की हत्यारी कुप्रथा का भडाफोड करता है। हरिकृष्ण प्रेमी का "सेवा मन्दिर" विधवा विवाह समस्या पर प्रकाश डालता है। "महाराज" और "पाश्चात्य" मे अछूतोद्धार का विवेचन है। श्रीशभूदयाल सक्सेना का "सगाई" लडकियो के विवाह सम्बन्धी अनेक कुरीतियो पर व्यग्य करता है। "पीले हाथ" मे वृन्दावनलाल वर्मा ने सामाजिक तथा व्यक्तिगत स्वार्थों पर कुठाराघात किया है।

भगवतीचरण वर्मा का "चौपाल मे" हरिजनों की समस्या पर विचार कर उनके द्वारा विशेषत हरिजन स्त्रियो की प्रगति पर प्रकाश डाला गया है। इसमें छुआछूत, जाति सकीर्णता, तथा नारी स्वातत्र्य पर भी विचार किया गया है। सद्गुरुशरण अवस्थी के "वे दोनो" मे एक स्त्री के कुवारेपन मे उत्पन्न हुए एक ही शक्लसूरत के दो भाइयो की कहानी है। इसमें समाज की वैवाहिक प्रथा पर तो व्यग्य है ही, हिन्दू मुसलिम समस्या पर भी सकेत है। धार्मिक सकुचितता को लक्ष्यकर उदयशकर भट्ट ने "मन्दिर के द्वार पर" लिखा है, जिसमें आर्य समाज के उपदेशकों के कृत्रिम जीवन का ओर उनकी दृष्टि पहुची है। भोली भाली जनता को वे कैसे लूटते हैं, खूब माल खाते और 'ओइम्-ओइम्' कर जनता को धोखे मे डालते हैं, यह "दो अतिथि" नामक व्यग्यात्मक नाटक मे चित्रित किया गया है। आजकल की मेहमान बाजी कितनी कठिन है, इसका चित्रण भट्टजी ने "नए मेहमान" मे किया है। अश्क के "जोक" (प्रहसन) मे भी मेहमानो पर व्यग्य है।

समाज मे नेतागिरी एक पेशा बन गया है। लोग इससे नाजायज लाभ उठाना और जनता को ठगना चाहते हैं। नेताओ का वास्तविक स्वरूप प्रगट करने के लिए कई एकाकीकारो ने व्यग्य किए हैं। उदयशकर भट्ट का "नेता" "घर में कुछ, बाहर कुछ और", जैसी दुमुही नीति पर एक व्यग्य है। अश्क का "अधिकार का रक्षक" हरिजनो के पक्ष मे जोरदार भाषण देता है, गरीबो, मजदूरो, श्रमिको की असेम्बली में माग का समर्थन करने का दम भरता है, जबकि वह स्वय घर पर भारी अत्याचार करता है। "सुदामा के तन्दुल" मे सेठ गोविन्ददास ने एक ऐसे नेता का चित्र खीचा है, जो चुनाव के समय तो दरिद्र व्यक्तियों से बडी विनम्रता से मिलता है, किन्तु मिनिस्टर हो जाने पर वह किसी से नही मिलना पसन्द करता। राजनीतिक तथा सामाजिक सस्थाओ के कार्यकर्ताओ की आन्तरिक दुर्बलता का पर्दा फाश कर दिया है। अधिकार छिन जाने से जमींदार की कैसी मन स्थिति हो जाती है, तथा वह अत तक हाथ मे अधिकार नही खोने देना चाहता, इसका चित्रण उन्होंने "अधिकार लिप्सा" मे किया है। इसी प्रकार नेतागिरी मे चयरमैनी के लिए कैसे दो मित्रो मे मालिन्य हो जाता है, उसका चित्रण "मैत्री" एकाकी मे खीचा।

गरीबो, अमीरी और व्यापार जगत् इस क्षेत्र मे दो प्रकार के एकाकी मिलते हैं। प्रथम तो वे जिनमें निर्धनता, गरीबी देश की बेकारी, और भूख का नग्न चित्रण है।

इनका दृष्टिकोण प्रगतिवादी है। अविनाश चन्द्र, धर्म प्रकाश आनन्द तथा उदयशकर भट्ट के कुछ प्रगतिवादी एकाकी मार्मिक हैं। भट्टजी ने "उन्नीस सौ पैंतीस" में वेकारी में होने वाली मस्तिष्क की विक्षिप्तावस्था का यथार्थवादी चित्र खीचकर काल्पनिक लोक की निस्सारता दिखाई है। "सेठ लाभचन्द" कजूस सूदखोर सेठ की दुर्दशा का चित्र है। "नकली और असली" में धनाभाव के कारण तडफते हुऐ साहित्यिक के जीवन की झाकी दिखाई है। "दस हजार" मे सीमाप्रान्त के एक लोभी सेठ का चित्राकन है जिसे अपने लडके को छुडाने के लिए सीमाप्रान्त के कवाइलियो को दस हजार रुपये देने पडते हैं। "आपस का समझौता" प्रहसन मे अश्क ने दो वेकार डाक्टरो की धोखा देने की युक्ति को हास्य व्यग्यमय शैली मे चित्रित किया है।

डा० रामकुमार वर्मा के "रेशमी टाई" एक साम्यवादी विचारो के धूर्त इन्श्यो-रेन्स कम्पनी के एजेन्ट का चित्र है। "व्यवहार" मे सेठ गोविन्ददास ने किसान और जमीदार की समस्या का उद्घाटन किया है। धर्मप्रकाश आनन्द के "दीनू" मे वर्तमान सामाजिक शासन और आर्थिक विधान पर जिसके कारण समाज की जर्जरता चरम सीमा पर पहुँच गई हैं, सीधा व्यग्य किया गया है। डा० वर्मा ने "चम्पक" मे गरीवो की सेवा का चित्र खीचा है। "फासी" मे सेठजी ने एक कवि, एक पूजीपति तथा एक मजदूर के मनोभावो का चित्रण किया है। सद्गुरुशरण अवस्थी "मुलिया" तथा "होस्टल की चारपाई" मे और डाक्टर सत्येन्द्र ने "वसत स्वागत" तथा "मानव उद्धार" मे गरीवी, भूख और क्रान्ति के चित्र खीचे हैं।

व्यापार जगत् की भ्रष्टता की ओर भी हमारे एकांकीकारो की दृष्टि गई है। सेठजी का "धोखेवाज" व्यवसायी जगत् के नैतिक पतन का चित्र उपस्थित करता है। "आपस का समझौता" मे अश्क ने दो ऐसे डाक्टरो का भण्डाफोड़ किया है जो मरीजो को फसाने के लिए घृणित षड्यंत्र करते हैं। "चमत्कार" मे जनता के मनोविज्ञान तथा कुशल व्यापारियो का उन्हें मूर्ख वनाने का चित्रण है। "पहेली" मे आधुनिक शिक्षित युवको की काम से वचने और विना श्रम किए रुपया कमाने की वृत्ति का एक झांकी है। उदयशकर भट्ट के "मनुष्य के प्रकार" मे मकान मालिको की किरायेदारो से अधिक रुपया लूटने का चित्रण है। भगवतीचरण वर्मा के "सवसे वडा आदमी" मे होटल मे होने वाली गठकटी की एक झाकी है। भट्ट जी ने "मुन्शी अनोखेलाल" वेकार वकीलो पर प्रहसन लिखा है।

साम्प्रदायिक समस्या : इस समस्या का विश्लेषण करते हुए निम्न एकाकी प्रकाशित हुए हैं : सेठ गोविन्ददास कृत "ईद और होली", प० उदयशकर भट्ट का "एक ही कब्र में", और "पिशाचों का नाच", उपेन्द्रनाथ अश्क का "तूफान के पहले", हरिकृष्ण प्रेमी का "मातृ मन्दिर", श्री गणेशदत्त गौड इन्द्र कृत "वलिदान" (१६२७), प्रो० वोरगावकर कृत "शुद्धि", "अन्धा" और "मन्दिर प्रवेश", श्री उपाध्याय वन्धु कृत "पतित पावन", श्री हरद्वारीलाल का "जुल्म की दुनिया" (१६३०), डा० सुधीन्द्र

होती रही है। इस क्षेत्र मे डा० सत्येन्द्र का "बलिदान" दहेज की हत्यारी कुप्रथा का भडाफोड करता है। हरिकृष्ण प्रेमी का "सेवा मन्दिर" विधवा विवाह समस्या पर प्रकाश डालता है। "महाराज" और "पाश्चात्य" मे अछूतोद्धार का विवेचन है। श्रीशभूदयाल सक्सेना का "सगाई" लडकियो के विवाह सम्बन्धी अनेक कुरीतियो पर व्यग्य करता है। "पीले हाथ" मे वृन्दावनलाल वर्मा ने सामाजिक तथा व्यक्तिगत स्वार्थों पर कुठाराघात किया है।

भगवतीचरण वर्मा का "चौपाल में" हरिजनों की समस्या पर विचार कर उनके द्वारा विशेषत हरिजन स्त्रियो की प्रगति पर प्रकाश डाला गया है। इसमें छुआछूत, जाति सकीर्णता, तथा नारी स्वातत्र्य पर भी विचार किया गया है। सद्गुरुशरण अवस्थी के "वे दोनो"मे एक स्त्री के कुवारेपन में उत्पन्न हुए एक ही शक्लसूरत के दो भाइयो की कहानी है। इसमें समाज की वैवाहिक प्रथा पर तो व्यग्य है ही, हिन्दू मुसलिम समस्या पर भी सकेत है। धार्मिक सकुचितता को लक्ष्यकर उदयशकर भट्ट ने "मन्दिर के द्वार पर" लिखा है, जिसमें आर्य समाज के उपदेशकों के कृत्रिम जीवन का ओर उनकी दृष्टि पहुची है। भोली भाली जनता को वे कैसे लूटते हैं, खूब माल खाते और 'ओइम्-ओइम्' कर जनता को धोखे मे डालते हैं, यह "दो अतिथि" नामक व्यग्यात्मक नाटक मे चित्रित किया गया है। आजकल की मेहमान बाजी कितनी कठिन है, इसका चित्रण भट्टजी ने "नए मेहमान" मे किया है। अश्क के "जोक" (प्रहसन) मे भी मेहमानो पर व्यग्य है।

समाज मे नेतागिरी एक पेशा बन गया है। लोग इससे नाजायज लाभ उठाना और जनता को ठगना चाहते हैं। नेताओ का वास्तविक स्वरूप प्रगट करने के लिए कई एकाकीकारो ने व्यग्य किए हैं। उदयशकर भट्ट का "नेता" "घर में कुछ, बाहर कुछ और", जैसी दुमुही नीति पर एक व्यग्य है। अश्क का "अधिकार का रक्षक" हरिजनो के पक्ष मे जोरदार भाषण देता है, गरीबो, मजदूरो, श्रमिको की असेम्बली मे माग का समर्थन करने का दम भरता है, जबकि वह स्वय घर पर भारी अत्याचार करता है। "सुदामा के तन्दुल" मे सेठ गोविन्ददास ने एक ऐसे नेता का चित्र खीचा है, जो चुनाव के समय तो दरिद्र व्यक्तियो से बडी विनम्रता से मिलता है, किन्तु मिनिस्टर हो जाने पर वह किसी से नही मिलना पसन्द करता। राजनीतिक तथा सामाजिक सस्थाओ के कार्यकर्ताओ की आन्तरिक दुर्बलता का पर्दा फाश कर दिया है। अधिकार छिन जाने से जमीदार की कैसी मन स्थिति हो जाती है, तथा वह अत तक हाथ से अधिकार नही खोने देना चाहता, इसका चित्रण उन्होंने "अधिकार लिप्सा" मे किया है। इसी प्रकार नेतागिरी मे चयरमैनी के लिए कैसे दो मित्रो मे मालिन्य हो जाता है, उसका चित्रण "मैत्री" एकाकी मे खीचा।

गरीबी, अमीरी और व्यापार जगत् इस क्षेत्र मे दो प्रकार के एकाकी मिलते हैं। प्रथम तो वे जिनमे निर्धनता, गरीबी देश की बेकारी, और भूख का नग्न चित्रण है।

का चित्र खीचा गया है जो पाश्चात्य सभ्यता के कारण अपना जीवन नर्क तुल्य बना लेता है। मोहनसिंह सेंगर के "सम्पादक जी" "और "भूतपूर्व मिनिस्टर" (१९५२) देश के कार्यकर्ताओ के आन्तरिक जीवन को हमारे समक्ष लाते हैं।

प्रभा पारीक कृत "दो पहलू" (१९४६) पारिवारिक और स्वच्छन्द जीवन का तुलनात्मक अध्ययन है। विमला रैना कृत "न्याय" (१९५१) और "समस्या" (१९५२) परित्यावताओं को लेकर चलते हैं। प्रो० वृहस्पति कृति "सास बहू" (१९४७) मे दिखाया गया है कि विवाहित जीवन मे सताई गई बहू सास बनने पर वे ही अत्याचार करती है जो स्वय उसकी सास ने उस पर किए थे। "दउ" एकाकी मे विधवाओ की समस्या को उभारा गया है। अश्क लिखित "सूखी डाल" सयुक्त परिवार मे नई पत्नी की समस्या पर प्रकाश डालता है। डा० रामकुमार वर्मा ने अपने एकाकी 'छोटी सी बात" और "प्रेम की आखें" मे मध्यवर्ग के विवाहित जीवनो की झाकिया उपस्थित की हैं। इनके अतिरिक्त अश्क के "भवर" और "आदि मार्ग" हरिकृष्ण प्रेमी का "गृह मदिर," गोविन्दवल्लभ पत का "१०४ डिग्री" और "परदा तोड़क क्लब," उदयशकर भट्ट कृत "धूमशिखा, आत्मदान, मायोपिया, वार्गेन, यह स्वतन्त्रता का युग, पर्दे के पीछे और बाबू जी" सामाजिक व्यंग्य हैं और नवयुवक और नवयुवतियो के पारस्परिक सम्बन्धो की नाना समस्याओ से सबधित है। सेठ गोविन्ददास कृत "शाप और वर" मे उच्च पूंजीपतियो के प्रेमविहीन शुष्क परिवारो की हाहाकारमयी झाकी दी गई है। निष्कर्ष यह कि हिन्दी एकाकियो मे भारतीय परिवारो के सच्चे चित्र मिलते हैं।

सामाजिक संस्थाएं

समाज की सार्वजनिक सस्थाओ के खोखलेपन, मिथ्याचार, कमजोरियो, इत्यादि पर बडी तीखी व्यग्यात्मक आलोचना इस काल के एकाकियो मे उपलब्ध है। श्री रामचन्द्र तिवारी का "चुगी का चुनाव" (१९२८) मेम्बरो की मूर्खताए, जनता को धोखे मे डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर व्यग्य करता है। श्री प्रेमनारायण टडन के "कन्वेंसिंग" एकाकी मे इलेक्शन जीतने के आधुनिक दाव पेंच स्वार्थसिद्धि, धोखा, वाटरो की लीपा पोती, और मिथ्या प्रचार पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। श्री रघुवर दत्त का "मुफ्त मे यश" (१९३९) सिफारशी व्यक्तियो पर एक व्यग्य है। आज सार्वजनिक स्कूल तथा अन्य सस्थाओ मे सिफारिश और पक्षपात कैसा अधेर ढा रहे हैं, इसका अच्छा खाका खीचा गया है।

श्री विष्णु का "ब्रह्म लोक" सार्वजनिक जच्चा बच्चा अस्पतालो मे होने वाले नियत्रण का व्यग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार आपने 'सिर और शैतान" एकाकी मे अपहृत नारियों का उद्धार करने वाले दुष्ट, ढोंगी समाज सुधा-

कृत "राम रहमान" (१९४६), रमेश सिनहा कृत "रक्तदान", श्री हरिबल्लभ कृत "प्रतिशोध", श्री विष्णु प्रभाकर कृत "मा बाप" और "प्रतिशोध" और श्री मातादीन भागेरिया कृत "करुण वरुणालय" (१९४९) इन एकाकियो मे धर्म के नाम पर या सकुचित मनोवृत्ति के परिणामस्वरूप होने वाले अत्याचारो, हिन्दू-मुस्लिम झगडो, सघर्ष और मारकाट पर प्रकाश डालकर उनकी सकुचितता का उपहास किया है। इनका मूल स्वर यह है कि जब तक हम इस सकुचित वृत्ति से मुक्त नही होते तब तक हमारा देश और सामाजिक जीवन निरापद नही हो सकते ।

पारिवारिक जीवन की समस्याएं इन एकाकियो मे हिन्दू परिवारों की अनेक समस्याओ पर प्रकाश पडता है । जैसे भाइयो के बटवारे, सौतेली माताओं की समस्या, अन्तर्जातीय विवाह, सास बहू के कलह, अनमेल या विभिन्न सामाजिक स्थितियो या विचारो के पति पत्नियो के विवाह, गरीबी और लाचारी, हिन्दू परिवारो मे स्त्रियो की दर्दनाक स्थिति, अनबन, महगाई, मकान समस्या, पुरानी रूढिया, मालिक नौकरो के झगडे इत्यादि । श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने भारत की गृहस्थी के अनेक चित्र दिखाए हैं । "अधी गली" क्रम के एकाकियो मे घरेलू झगडो, पारस्परिक वैमनस्य, गरीबी और महगाई, कलह, शरणार्थी समस्या, मध्यवर्ग की आर्थिक तगी को उजागर कर दिया है। "अधी गली" उसी की एक प्रतीक है । यह एक ऐसी गली है जिसका व्यक्तित्व हमारे पुराने समाज ही की भाति गतिशील, समय के सम्पर्क और आघात से बदलने को विवश है । इस गली का भी एक व्यक्तित्व है, तग, सकीर्ण, अधी बरबस अपने जर्जर व्यक्तित्व से चिमटे ऐसे ऊट की भाति है जिसके बलबलाने की परवाह न कर लादने वाले सामान लादे जा रहे हैं ।

श्री विष्णु प्रभाकर का "भाई" सौतेली मा का चित्र है । "बटवारा" दो भाइयो की समस्या से सम्बधित है । "सस्कार और भावना", अन्तर्जातीय विवाह को लेकर मा बेटे के मन मुटाव से सम्बन्धित है । "और वह जा न सकी" कलाकार पति और अपढ पत्नी की गृहस्थी का चित्र है । श्री गिरिजाकुमार माथुर का "जन्म कैद" विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर सद्य विवाहिता विधवाओ की समस्या पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डालता है । श्री कालीचरण चटर्जी कृत "खेदरु की गृहस्थी" (१९४५) मे कर्कशा और पत्नी, उसके बनावटी बकवास, झगडा, दर्प, ईर्ष्या, दिखावा, त्रिया चरित्र दिखाया गया है। श्री नीरव का स्त्री का चित्र चिरजीत कृत "रेशमी साडी" डा० रामकुमार वर्मा का "रजनी की रात", श्रीमती रत्नकुमारी के "चाची", "मर्यादा का मूल्य, "रक्त का अर्घ्य" आदि, विमला लूथरा कृत "गृहलक्ष्मी, मुन्ने का नामकरण, मगाई का प्रबध, प्रीति भोज", श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी कृत "रगासियार, भूल भुलैया, मु ह दिखाई, अदृश्य दीवार, रगीन पर्दा" भारतीय पारिवारिक जीवन और समाज की अनेक जीर्ण शीर्ण रुढियां और विद्रूपताए हमारे सन्मुख लाते हैं । श्री हरिश्चन्द्र के "प्रतिशोध" (१९५१) मे पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित एक ऐसे युवक

का चित्र खीचा गया है जो पाश्चात्य सभ्यता के कारण अपना जीवन नर्क तुल्य बना लेता है। मोहनसिंह सेंगर के "सम्पादक जी" "और "भूतपूर्व मिनिस्टर" (१९५२) देश के कार्यकर्ताओ के आन्तरिक जीवन को हमारे समक्ष लाते हैं।

प्रभा पारीक कृत "दो पहलू" (१९४६) पारिवारिक और स्वच्छन्द जीवन का तुलनात्मक अध्ययन है। विमला रैना कृत "न्याय" (१९५१) और "समस्या" (१९५२) परित्यक्ताओं को लेकर चलते हैं। प्रो० वृहस्पति कृति "सास बहू" (१९४७) मे दिखाया गया है कि विवाहित जीवन मे सताई गई बहू सास बनने पर वे ही अत्याचार करती है जो स्वय उसकी सास ने उस पर किए थे। "दड" एकाकी मे विधवाओ की समस्या को उभारा गया है । अश्क लिखित "सूखी डाल" सयुक्त परिवार मे नई पत्नी की समस्या पर प्रकाश डालता है। डा० रामकुमार वर्मा ने अपने एकाकी 'छोटी सी बात" और "प्रेम की आंखें" मे मध्यवर्ग के विवाहित जीवनो की झाकिया उपस्थित की हैं। इनके अतिरिक्त अश्क के "भवर" और "आदि मार्ग" हरिकृष्ण प्रेमी का "गृह मदिर," गोविन्दवल्लभ पत का "१०४ डिग्री" और "परदा तोडक क्लब," उदयशकर भट्ट कृत "धूमशिखा, आत्मदान, मायोपिया, बार्गेन, यह स्वतत्रता का युग, पर्दे के पीछे और बाबू जी" सामाजिक व्यग्य हैं और नव-युवक और नवयुवतियो के पारस्परिक सम्बन्धो की नाना समस्याओ से सबधित हैं। सेठ गोविन्ददास कृत "शाप और वर" मे उच्च पूंजीपतियो के प्रेमविहीन शुष्क परिवारो की हाहाकारमयी झाकी दी गई है । निष्कर्ष यह कि हिन्दी एकाकियो मे भारतीय परिवारो के सच्चे चित्र मिलते हैं।

सामाजिक संस्थाएं

समाज की सार्वजनिक सस्थाओ के खोखलेपन, मिथ्याचार, कमजोरियो, इत्यादि पर बडी तीखी व्यग्यात्मक आलोचना इस काल के एकाकियो मे उपलब्ध है। श्री रामचन्द्र तिवारी का "चुगी का चुनाव" (१९२८) मैम्बरो की मूर्खताए, जनता को धोखे मे डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर व्यग्य करता है। श्री प्रेमनारायण टडन के "कन्वेसिंग" एकाकी मे इलेक्शन जीतने के आधुनिक दाव पेंच स्वार्थसिद्धि, धोखा, वाटरो की लीपा पोती, और मिथ्या प्रचार पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। श्री रघुवर दत्त का "मुफ्त मे यश" (१९३९) सिफारशी व्यक्तियो पर एक व्यग्य है। आज सार्वजनिक स्कूल तथा अन्य सस्थाओ मे सिफारिश और पक्षपात कैसा अधेर ढा रहे हैं, इसका अच्छा खाका खीचा गया है।

श्री विष्णु का "ब्रह्म लोक" सार्वजनिक जच्चा बच्चा अस्पतालो मे होने वाले नियंत्रण का व्यग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार आपने "शिव और शैतान" एकाकी मे अपहृत नारियो का उद्धार करने वाले दुष्ट, ढोंगी समाज सुधा-

रको का सजीव चित्र खीचा है। श्री भगडदत्त का "शिव जी की गिरफ्तारी" एकाकी प्राहिबिशन एक्ट के विरुद्ध पार्टी रैयूग्लेशन के सम्बन्ध में सामग्री देता है। शैलेन्द्र चतुर्वेदी का "मरण भोज की वेदी पर" (१९४२), राजस्थान में प्रचलित सामाजिक रूढि नुक्ते के दुष्परिणाम तथा कुरीति पर एक व्यग्य है। श्री व्यथित हृदय के "रायसाहब दीपक चन्द" एकाकी" में अग्रेजो के एक स्वार्थी पदलोलुप राय साहब का व्यग्य चित्र प्रस्तुत किया गया है। श्री हरिन्द्र नाथ के "सन्तरी की लालटैन" मे कवि, मजदूर, सौदागर के गुप्त मनोविज्ञान पर प्रगतिशील दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। डाक्टर और वैद्यो के स्वार्थ, अनुभवहीनता, शोषण, जनता को लूटने की दुष्प्रवृति, भ्रष्टाचार और धोखेबाज़ी को लेकर कुछ बडे सफल एकाकी रचे गये हैं। जैसे श्री रामगोपाल शर्मा दिनेश का "पत्थर तोड भस्म" (१९४८), श्री नन्दकिशोर आर्य का "प० खिलाडी राम वैद्य शास्त्री", श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का "आपस का समझौता" (१९४८)। इन नाटको मे डाक्टर और वैद्यो के पेशे तथा गुटबन्धन, धोखे बाजी और अनुभवहीनता का व्यग्यात्मक चित्रण है। श्री चन्द्रकिशोर जैन का "अस्पताल का कमरा" (१९४७), श्री लक्ष्मीनारायण टडन प्रेमी का "रोगी का स्वर्ग" (१९४८), तथा श्री रामचरण महेन्द्र का "रोगी तर गया" (१९४९) आजकल के सरकारी अस्पतालों मे होने वाली क्रूरता, असुविधा, पक्षपात, रिश्वतखोरी, अपूर्ण और असहानुभूतिपूर्ण चिकित्सा और घोखेबाजी इत्यादि त्रुटियों का चित्रण करते हैं। समाज में वकीलो द्वारा भी यथेष्ट हानि हुई है। शान्ति के स्थान पर पारस्परिक कटुता, मुकद्दमेबाजी, द्वेष, इत्यादि फैले हैं। वकीलो की मनमानी बात को बढाने की बुरी प्रवृत्ति तथा रुपया लूटने की आदत पर व्यग्य करते हुए कुछ बडे सफल एकाकी प्रकाशित हुए हैं। जैसे श्री रजनी कान्त एम० ए० का "पाच सौ पाच" (१९३९), गणेशप्रसाद द्विवेदी का "नया वकील," तथा "वकालत का कचूमर" (१९३९), श्री रामसरन शर्मा का "वकालत।" इनमे दिखाया गया है कि आज के समाज को वकीलो द्वारा कितनी हानिया हो रही हैं।

श्रीमती रत्नकुमारी एम० ए० का "नारी रक्षा समिति", नारियो की जाग्रति और एक सामाजिक सस्था की कल्पना पर लिखा गया है। विमला लूथरा का "सास सम्मेलन" पारिवारिक जीवन मे सासुओ की कठिनाइयो की विवेचना पर व्यग्यात्मक एकाकी है।

श्री मधुकर खेर का "कलियुगी अवतार" (१९४२), ढोगी साधुओं का भडाफोड करता है जो वैद्य, ज्योतिषी, साहित्यिक सभी कुछ होने का स्वाग रचते है और समाज को धोखा देते हैं। इसी प्रकार "फिल्मी कहानी" मे ऐसे सिने निर्देशको का चित्रण है, जो हिन्दी लेखको की रचनाओ को अपने ही नाम से फिल्म बनवाकर उनका शोषण करते हैं।

"कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन" नाटक मे अश्क ने कस्बे की एक सार्व-

जनिक सस्था क्रिकेट क्लब के उद्घाटन का हास्यपूर्ण दृश्य प्रस्तुत किया है। इसमे अश्क ने सार्वजनिक सस्थाओ पर पूजीपतियो के आतंक, उनकी अशिष्टता, बेढंगापन, ज्ञान शून्यता, अयोग्यता पर व्यग्य किया है। अपने प्रहसन "पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ" मे आपने अमेचर रगशालाओ की कठिनाइयो और अव्यवस्था को चित्रित किया है।

श्री सत्येन्द्र शरत का "तार के खम्भे" (१६४५) मे समाज सेवक समिति नामक सार्वजनिक सस्था का व्यग्य चित्र है। इसके कार्यकर्त्ता अपनी सार्वजनिक सेवाओं की डीग मारते हैं जबकि वास्तविकता दूसरी ही है।

सक्षेप मे अनेक सामाजिक सस्थाए, उनकी शिथिलता, भ्रष्टाचार, छिपी हुई कमजोरियो एकाकियो मे अभिव्यक्त की गई हैं। इनका उद्देश्य सार्वजनिक संस्थाओ मे फैले हुए दुराचारो का पर्दाफाश करना है।

आधुनिक सम्यता : अग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य सम्यता की छाया मे पनपती हुई आधुनिक सम्यता, शिक्षित वर्ग के शिष्टाचार, अग्रेजो का अन्धानुकरण, रीति-रिवाज, रहन-सहन, पाश्चात्य सामाजिक आदर्शों पर हिन्दी एकाकीकारो ने यथेष्ट प्रकाश डाला है। डा० धर्मवीर भारती का "सृष्टि का आखरी आदमी" मे आधुनिक सम्यता एव ध्वसोन्मुख सस्कृति के नाश की कल्पना की गई है। भौतिक एवं वैज्ञानिक उत्थान के कारण मानव की बढती हुई स्वार्थ बुद्धि और धनलिप्सा ने उसकी आत्मा का नाश कर दिया है। इसमे चित्रित किया गया है कि आज की स्वार्थपरता ने नैतिक मूल्यो को समाप्त कर दिया है। प० रामनरेश त्रिपाठी का "राजा" वर्तमान सम्यता एव व्यवस्था पर सबसे कटु व्यग्य है। अखीर का "नयी सम्यता" पाश्चात्य सम्यता का अन्धानुकरण करने वाले पति का व्यग्य चित्र है। श्री भाई जी का "फैशन वाली" फैशन तथा शृगार प्रवृत्ति का चित्रण है। श्री विराज का "वसूली" (१६४६), उदय-शकर भट्ट का "नये मेहमान", प्रभाकर माचवे का "मकान मेहमान" (१६५०) रामसरन शर्मा का "वेचारी चुड़ैल" मकानो की विषम समस्या तथा आजकल मेहमान नवाजी के व्यग्य चित्र उपस्थित करते हैं। श्री वि० द० घोटणे का "मगल हो तुम्हारा" (१६४६) आधुनिक सम्य रमणी का खोखलापन चित्रित करता है। इस एकाकी मे मद्यपान, स्वच्छन्द प्रेम, स्त्रियो के समानाधिकार, तथा आजकल के विवाह बन्धन पर व्यग्य है, जीवन की आलोचना भी है।

डा० सत्यनामसिह अरुण ने अपने "आशीर्वाद" तथा "गुरु पाप" मे स्कूलो का खाका खीचा है। इनमे अध्यापको के जीवन, वर्तमान शिक्षण पद्धति, शरारती लडको की मनोवृत्तिया तथा इसपैक्टरों की कम नजर पर व्यग्य है। "खाट का दुल्हा" मे वैवाहिक धोखेबाजियो का चित्रण। "तपस्विनी" मे दहेज तथा बहुपत्नित्व का विवेचन है।

सेठ गोविन्ददास का "चौबीस घटे" (१६४५) आज के युग मे रेडियो के व्यसन को उभारता है। आधुनिक व्यक्ति रेडियो का ऐसा शौकीन हो गया है कि

दिन रात चौबीसों घटे रेडियो ब्राडकास्ट चाहता है। इसका नायक वृद्ध रेडियो से परेशान होकर घर से निकल भागना चाहता है।

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क के दो नाटक "अजो दीदी" तथा "आया" आधुनिक सभ्यता का विवेचन व्यग्यात्मक शैली मे प्रस्तुत करते है। "अजो दीदी" मे नाट्यकार ने आधुनिक शिष्टाचार, नियमितता, सभ्यता के बधन, आचार व्यवहार पर व्यग्य किया है। "आया" (१९४८) मे बडे शहरो मे धनी व्यक्तियो के यहा काम करने वाले नौकर-नौकरानियो के आधुनिक ढग से रहने और मालिको के उन पर वासना लोलुप नेत्रो से देखने पर व्यग्य है। श्री दौलतसिंह का "सट्टे के खिलाडी" आज के जीवन मे बिना श्रम किए अमीर बनने की वृत्ति पर व्यग्य करता है। सट्टे के खिलाडी देश के कलक हैं। राष्ट्र के लिए कुठार हैं। अत इसे छोडने के लिए नाटक मे प्रेरणा दी गई है। श्री सुशीलकुमार चौबे रसिक के आधुनिक सभ्यता के पुजारियो पर व्यग्य करते हुए पाच सरस और शिष्ट एकाकियो का निर्माण किया है। जैसे, "फैशन का खब्त" मे पाश्चात्य रहन सहन का अन्धानुकरण करने वाले अधकचरे अग्रेजी दा व्यक्तियो का परिहास किया हैं।

ललित सहगल के "वाद्य सभा" मे आधुनिक सभ्यता मे सगीत का महत्व दर्शाते हुए भारतीय तथा कुछ पाश्चात्य वाद्य यत्रो का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। सितार, तबला इसराज, सरोद, हारमोनियम, जलतरग, क्लारीनेट, वीणा, वायलिन, बासुरी, सारगी इत्यादि वाद्य यन्त्र मूर्त्त स्वरूप मे आकर अपना अपना परि-देते हैं। वाद्य यन्त्रो के गुण-अवगुणो पर तुलनात्मक दृष्टि से भी प्रकाश डाला गया है। हम सब भारतीय शास्त्रीय सगीत की एक माता के पुष्प हैं, हम मे एकता है विशृखलता नही। भारतीय तथा विदेशी दोनो प्रकार के वाद्यो के सतुलित प्रयोग मे ही कल्याण है, यही इस नाटक का मूल स्वर है।

श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा मुक्त का "घटाए" आधुनिक सभ्यता मे पली युवती के अपूर्व आत्म बलिदान से सम्बन्धित हैं। शिक्षा प्राप्त कर हमारी युवतियो मे भी साम्यवादी विचारधारा आ रही है। मजदूरो के हित के लिए उसका आत्म बलिदान अमर गाथा कहता है। इसी प्रकार "पुकार" मे आपने शिक्षित युवक विजय का अपनी सम्पदा का परित्याग और देश हित के लिए साधारण नागरिक जैसा सचाई का जीवन व्यतीत करने का आदर्श प्रस्तुत किया है।

एकाकीकार अविनाशचन्द्र का सम्पूर्ण एकाकी साहित्य पाश्चात्य आदर्शो का अधानुकरण करने वाली नई रोशनी पर व्यग्य है। आपका क्षेत्र उच्च मध्य वर्ग है। जिसकी स्वच्छदता, विलासप्रियता, रोमास, तालीम, रेडियो प्रसारण, दिमागी ऐयाशी, कुरुचिपूर्ण उत्तेजक कला से प्रेम शृगार, अर्द्धनग्न रहने का फैशन इत्यादि पर व्यग्य किया हैं। इस साहित्य को आधुनिक विकृत सभ्यता का सजीव चित्र कह सकते हैं।

रेडियो आजकल मध्यवर्ग के जीवन मे इतना घुस आया है कि युवक-युवतियो को उसके बिना चैन नही। उसमे जो अश्लील, कुरुचिपूर्ण, बाजारु सगीत आता है उसकी ओर खिचाव होता जा रहा है। "आखिर दोष किसका" मे लाला जी अपनी आधुनिक सभ्यता मे पली पुत्री से दुखी हैं, जिसे उन्होने उच्च शिक्षा दिलाई और जो रेडियो की इतनी भक्त है कि है वही जाना चाहती है।

"घर और बाहर" (१९४३) मे श्री अविनाशचन्द्र ने कालेज जीवन का एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। कालेज मे युवक-युवतिया झूठे आदर्शों के ढोल पीटते है। मच से भाति-भाति के शोर मचाते हैं, जबकि घरेलू जीवन मे वे वास्तविक आदर्श से मीलो दूर होते हैं। गाधीवादी विचारधारा के ऊपर जोर शोर से भाषण देने वाली फैशनेबुल युवती घर पर सिल्क पहनती है, स्वच्छन्द विलासिता का जीवन व्यतीत करती है। उसके चारो ओर प्रेमियो की भीड़ भाड़ है। "मेड इन इगलैंड" (१९४३) मे भारतीयो की उस वृत्ति पर व्यग्य है, जिसके अनुसार हर एक चीज जिस पर मेड इन इगलैंड लिखा है, सबसे बढिया मानी जाने लगी है। कैसे दुख का विषय है कि उच्च स्तर की भारतीय कला का तिरस्कार कर हम निम्नकोटि की पाश्चात्य वस्तुओ, रहन सहन के ढग, वस्त्र पहिनना, आचार व्यवहार, नृत्य, सभ्यता इत्यादि को अच्छा समझने लगे हैं। स्वच्छन्द प्रेम पर भी व्यग्य है। जो शिक्षित नवयुवतिया पाश्चात्य सभ्यता का आख मूदकर अनुकरण कर रही हैं उनके पतन का अन्त नही, यह नाटक का मूल आशय है।

प० हरिनारायण मेणवाल का "आधुनिक सहशिक्षा" (१९४९) भारत मे लड़कियो की लड़को के साथ स्कूल कालिजो मे सहशिक्षा के प्रश्न को उभारता है। सहशिक्षा भारत मे सफल नही हो पाई, क्योकि इसके लिए माता-पिता और स्वय लड़कियो की चारित्रिक दृढता की आवश्यकता है।

आधुनिक समाज उन्नत होते हुए भी रूढिवादिता और संकीर्णता में फसा है। आधुनिक सभ्यता के गुण, स्वस्थ मान्यताए, और उदार मनोवृत्ति को ग्रहण करना चाहिए। पुरानी जीर्ण-शीर्ण परम्पराओ पर ही दृढता से चिपके रहने पर श्री विश्म्भर मानव ने अपने "सकीर्ण", "दो फूल", "चट्टाने" आदि मे व्यग्य किया है। अश्क जी ने "स्वर्ग की झलक" मे सामाजिक और पारिवारिक समस्याओ पर पाश्चात्य सभ्यता का बुरा प्रभाव दिखाया है। रघु के सामने सबसे बडी यह समस्या है कि वह किस लडकी से विवाह करे। पति को देवता माननेवाली सामान्य पढी लिखी मध्यवर्गीय लडकी से विवाह करे या अग्रेजी पढी लिखी अपटूडेट फैशनेबुल आधुनिका से जो स्वर्ग के सपने देखती है। अन्त मे रघु आधुनिक सभ्यता से घृणा करने लगता है। "अजो दीदी" मे अति सस्कृत, सभ्य और घर को टिपटाप रखने वाली एक आधुनिक युवती का व्यग्य चित्रण है। "अधी गली" एकाकी के माध्यम से आधुनिक सभ्य दुनिया का खाका देती है। यह एक ऐसे समाज का प्रतीक है, जिसका मार्ग

रूढियो, सकीर्णताओ और वर्जनाओ से अवरुद्ध है।

सक्षेप मे हिन्दी एकाकी मे आधुनिक सभ्यता की तीखी आलोचना मिलती है।

नागरिक स्वास्थ्य स्वास्थ्य को लेकर मादक द्रव्यो का निषेध करते हुए कुछ एकाकी प्रकाश मे आये हैं। जैसे श्री महेन्द्र भटनागर का "चाय" (१६४५) चाय की हानियो को चित्रित करता है। पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण की प्रवृत्ति में आकर हम भारतवासियो ने चाय का प्रयोग प्रारम्भ किया और उसके आदी बन गये हैं।

चाय मानवता का ह्रास कर रही है, इस विचार का विवेचन बडी सुन्दर रीति से इस एकाकी में किया गया है। इसी विषय पर श्री यादवेन्द्रनाथ शर्मा चन्द्र का प्रहसन "चायवादी" उल्लेखनीय है। इसमें उस वर्ग का चित्रण है जो आर्थिक दृष्टि से सर्वथा परास्त है और जिन्हें दस कप चाय पीनी ही चाहिए, बिना चाय जिनका मानसिक सतुलन ठीक नही रहता। उसके पात्र सगठन और सत्याग्रह की चर्चा करते हैं और यह निर्णय करते हैं कि हमे सरकार की ओर से एक कप चाय फ्री मिलनी चाहिए। जब योजना सफल हो जाती है तो मुफ्त का कप मित्रो को पिलाते हैं। इस एकाकी में उन सगठनकर्त्ताओ के प्रति तीव्र व्यग्य है जो दूसरो को नचाकर स्वय वाह वाह लेते हैं।

सेठ गोविन्ददास का "विटामिन" (१६४६) भोजन सम्बन्धी विटेमिन थ्योरी कर विवेचन करता है। यदि हम समझ बुझकर उसका उपयोग करें, तो यह लाभ-दायक है, किन्तु अन्धानुकरण से कोई लाभ नही है। इस नाटक की नायिका कपिला स्वास्थ्य और विटामिन सम्बन्धी नियमो के पालन मे अति कर बैठती है और हास्या-स्पद बनती है।

श्री रामचरण महेन्द्र का "कुदरत की अदालत" (१६५०) स्वाभाविक रहन-सहन, भोजन, आचार-व्यवहार पर जोर डालता और आधुनिक सभ्यता द्वारा प्रति-पादित अनेक अकृत्रिमताओं पर व्यग्य करता है। मोटे पेट वाले सेठ, पाश्चात्य सभ्यता मे रगी हुई बीमार नवयुवतिया, सिनेमा देखकर आख फोडने और गुप्त रोगो के शिकार आधुनिक विद्यार्थी, व्यभिचार जनित घृणित रोगो के शिकार नवयुवक, शराब, चाय, गाजा, तम्बाकू, भाग इत्यादि का प्रयोग करने वाले प्रौढ सभी प्रकार के पात्रो द्वारा प्राकृतिक तथा सात्विक जीवन के महत्व का प्रतिपादन किया गया है।

रोग की उत्पत्ति, विकास, अस्पतालो मे होने वाली अधूरी चिकित्सा तथा दुर्व्यवहार को लेकर कुछ एकाकी प्रकाश मे आये हैं। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का "रोगी का बन्धु" (१६३५) श्री लक्ष्मीनारायण टडन का "रोगी का स्वर्ग" (१६४६) तथा "रोगी का मित्र" (१६५०) आदि एकाकी रोग तथा स्वास्थ्य सबधी हमारी मनोवृत्तिया स्पष्ट करते हैं।

प० गौरीशकर मिश्र का एकाकी "आजाद हिन्दुस्तान से नशा ले चले" में

जितने भी नशे भारत में हैं उनके प्रतिनिधियो को मनोरंजक ढंग पर यह समझाया गया है कि आजाद भारत मे नशो को स्थान नही है। अत यहा से चले जाओ, श्री चन्द्र भाल ओझा का "टमाटर" (१९४४) "सोयाबीन" (१९४४) इन दोनो की उपयोगिता पर प्रकाश डालता है। श्री मनोरजन भट्टाचार्य का "होमियोपैथी" (१९४३) होमियोपैथी चिकित्सा पद्धति की विशेषताएं प्रकट करता है। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दी एकाकी मे जनता के स्वास्थ्य, प्राकृतिक चिकित्सा और स्वस्थ जीवन की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है।

मजदूर किसान और पूंजीपति संघर्ष

श्री धर्म प्रकाश आनन्द का "दीनू" मजदूरो की गिरी हुई आर्थिक स्थिति, दयनीय अवस्था, पूंजी के असमान वितरण पर एक व्यग्य है। श्री भुवनेश्वर का "एक साम्यहीन साम्यवादी" पूजीपतियो की नैतिक गिरावट और मजदूरो की अस्मत पर हाथ साफ करने की तुच्छ वासना लोलुपता पर एक आदर्शवादी एकाकी है। श्री रामचन्द्र तिवारी का "वन्दिनी" गरीबी की भयकरता व नग्नता का एक चित्र उपस्थित करता है। इसमे आधुनिक औद्योगिक युग की असमान अर्थ वितरण समस्या तथा उससे उत्पन्न होने वाली विभीषिकाओ पर प्रकाश डाला गया है।

श्री रामशर्मा राम का सम्पूर्ण नाट्य साहित्य पूंजीवाद के विरोध मे लिखा गया है। आपके "मसले हुएआसू, टुकडे, धर्म अधर्म, नाते रिश्ते", भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से पूंजीवाद के विरोध मे जनमत और साम्यवाद के आदर्श उपस्थित करते हैं। श्री हरिश्चन्द्र चटोपाध्याय का "सतरी की लालटेन" (१९३८) एक मजदूर, कवि तथा सौदागर की मृत्यु से पूर्व भावनाएं उपस्थित करता है। श्री राजेन्द्र सक्सेना का "दिमाग की गर्मी" ठेकेदारो तथा पुलिस का गठबन्धन तथा मजदूरो की नैतिकता पर आक्रमण का एक प्रभावशाली चित्र है। श्रीमती शचीरानी गुर्टू का "हरिया" होटलो मे बालक नौकरो पर मैनेजरो द्वारा होने वाले अत्याचारो का एक यथार्थवादी चित्र है। श्री शर्मा का "इन्कलाब जिन्दाबाद" (१९३९) मजदूरो मे जागृति, वेतन वृद्धि के लिए पुकार, महगाई तथा हड़तालो का चित्र है। इसके अनुसार आज का मजदूर अपने अधिकारो के लिए मर मिटने पर तुला हुआ है। वह राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रो मे अपने अधिकार चाहता है। श्री रामचरण महेन्द्र का "कलम का मजदूर" बैंको के मैनेजरो द्वारा मातहत क्लर्कों पर किए गए अत्याचारो की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।

उर्दू से अनुवादित श्री आबिद गुलरेज का "डाक्टर": (१९३८) एक ऐसे डाक्टर का चित्र उपस्थित करता है जो ग्राम सेवा की आशा से एक गाव मे जाता है, किन्तु किसान उसे यथेष्ट मजदूरी नही देते। वह निराश होकर फिर अमीरो की चिकित्सा के लिए चला आता है। इसमे किसानो की अशिक्षा, नासमझी और स्वार्थ

का खाका खीचा गया है।

श्री रतनलाल द्विवेदी का 'दस वर्ष बाद" (१९४८) सन् १९५७ की वस्तु-स्थिति का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत करने वाला आदर्शवादी एकाकी है। यदि गाधी योजना के अन्तर्गत हम द्रुतगति से उन्नति करते चलें, तो अगले दस साल मे दरिद्रता भारत से निकल जाएगी। किसानो का सुधार होगा, स्वास्थ्य, लोक रुचि का परिष्कार, समृद्धि, कृषि मे इतनी उन्नति हो जाएगी कि ग्रामो मे सुख समृद्धि का राज्य होगा, यही इसमे दिखाया गया है। मजदूर खुशहाल होगे, सहकारी समितियो द्वारा काम चलाया जाएगा, रेडियो का पर्याप्त प्रचार होगा।

"पेट की पुकार" (१९४३) मे कृषको की गरीबी का एक चित्र है। बघेल लिखित "दान" और "स्वर्ग लोक" (१९४३) भारत मे अकाल का एक चित्र प्रस्तुत करते हैं, जिनमें अनावृष्टि तथा सरकार द्वारा शोषित कृषको, उनके दूध के बिना मरने वाले बालको के चित्र है। " हम क्या करें" (१९४९) मे किसान जमीदार समस्या का एक हल प्रस्तुत किया है।

श्री ना० सी० फडके का "चिनगारी" (१९३८) एक हडताल मे फूट पडने का दृश्य उपस्थित करता है। इसका मूल विचार है स्त्रियो के ऊपर मर्दों की ताना-शाही समाप्त करना। श्री वीरेन्द्रनारायण का "जिन्दगी" (१९५१) मे ग्रामो से मेहनत करने आने वाले मजदूरो का शहरी लोगो द्वारा शोषण और रुपये के बल पर मजदूरो की स्त्रियों के सतीत्व के अपहरण का चित्रण है। इसमे पुलिस के दुर्व्यवहार पर भी व्यग्य किया गया है।

श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' के कई नाटक पूजीपति और मजदूरो के सघर्ष से सबधित है वे यह मानते हैं कि आज की आर्थिक विषमता ने हमे देहधर्मी बना दिया हैं। यद्यपि सस्कारत हम मनोधर्मी रहे हैं। सभ्यता के विकास ने मनुष्य के जीवन को कृत्रिम बना दिया है तथा मनुष्य मनुष्य के मध्य अलघ्य दीवारें खडी कर दी है। प्राचीन तथा नवीन का सहज सामजस्य अपेक्षित है। आपके नाटको मे इन्हीं समस्याओ की अवतारणा की गई है। "पुकार", मे स्वय पू जीपति आत्माराम का पुत्र विजय उनसे सघर्ष करता है और असत्य, बेईमानी, मिथ्याचार के बल पर एकत्रित पू जी को लात मार कर गरीब का सच्चा जीवन व्यतीत करता है।

मुक्त जी के दूसरे नाटक "घटनाए" मे मजदूरो के विद्रोह की प्रतिनिधि दामिनी है जो साम्यवादिनी है। उसका मित्र सतोष कम्यूनिस्ट है। ये दोनो मिलकर पू जीपति विनोद बाबू से सघर्ष करते हैं। दामिनी का बलिदान होता है और तब विनोद को पूंजीवादी व्यवस्था के घातक प्रभाव का ज्ञान होता है।

श्री विष्णु का "मजदूर" रेडियो रूपक मालिक तथा मजदूर के सम्बन्धो की सर्वांगपूर्ण समस्याओ को स्पर्श करता है। इसमे मालिक मजदूर दोनो की समन्वया-त्मक भावना को उभारा गया है। " रहमान का बेटा" मे निम्न वर्ग का उच्चवर्ग के

प्रति विद्रोह चित्रित किया गया है। "श्वेत अन्धकार" मे रिश्वत लेने वाले अफसरों का भडा फोड किया गया है।

श्री धर्मवीर भारती का 'आवाज का नीलाम" पत्रकार जगत् मे फैली हुई पूजीवादी राजनीति से सम्बन्धित है। इसमें एक श्रमजीवी सम्पादक का वैयक्तिक कठिनाइयो, गरीवी, पत्नी की बीमारी से तग आकर अपना पत्र "आवाज्" एक सेठ को वेचने का चित्र है। रुपये के वल पर पूजीपति जनता को गुमराह करने के लिए अखवार खरीदते हैं, आकर्षक चीजे छाप कर वास्तविकता से दूर रखते हैं, और जनता का स्वर ऊचा नही उठने देते। यही चित्रित किया गया है।

ग्राम सुधार गाधीवाद से प्रभावित होकर एकाकियो में ग्राम सुधार की ओर नाट्यकारो का ध्यान आकृष्ट हुआ है। ग्राम सुधार की बहुमुखी धाराओ मे पचायत, सहकारिता आन्दोलन, सफाई, गाम सगठन मद्य निषेध, मेल जोल, पशु सुधार, ग्रामोद्योग, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक सभी प्रकार की समस्याओ पर नाटक लिखे गये हैं।

श्री कृष्णचन्द्र मुदगल का "दारुबन्दी" (१९३९) शराव की हानिया तथा रोकने के उपाय पर प्रकाश डालता है। श्री वासुदेव शर्मा का "आवपाशी पिशाचिनी (१९३९) मालगुजारी की छूट से सम्बन्धित है। श्री अयोध्याप्रसाद झा का 'लगान वन्दी" मालगुजारी सम्वन्धी सुधारो की विवेचना करता है। शिक्षा समस्या को लेकर कुछ एकाकियो का निर्माण हुआ है। जैसे, ठाकुर रामसिंह का 'शिक्षा अशिक्षा" प्रहसन तथा श्री बद्रीनारायण शर्मा का "प्रौढ शिक्षा" १९४८ न्याय तथा पचायतो के सम्बन्ध मे भी कुछ रचनाए प्रकाशित हुई हैं। जैसे श्री विजयकुमार मुन्शी का "गाव का स्वर्ग" (१९४८) "मुखिया न्याय"(१९४८), श्री विष्णु का "पचायत राज," श्री राजेन्द्र शर्मा के सात एकाकी "ग्राम पचायत," श्री देवीचरण का "पचायती न्याय" जागीरदार सुधार सिंह, पचायतो मे सहयोग आदि।

गाव से आलस्य, अशिक्षा, मूर्खता तथा पुरानी लकीर का फकीर बने रहने के विरोध मे कई महत्वपूर्ण एकाकी प्रकाशित हुए हैं। जैसे श्री विजयकुमार मुंशी का "गाव का स्वर्ग" (१९४८) कुंवर नरेन्द्र सिंह तोमर का "गाव की वात" (१९५०) द्वारिका दास टावरी को "खादी का कमीज" (१९४९) श्री रघुवीर सिंह रम्य का "मेरा गाव" (१९३९) एक चित्र नाट्य, श्री बद्रीनारायण शर्मा का "एक मुह दो हाथ" (१९४८) तथा "दशहरा" (१९४८) एक किसान का हम व्य करें (१९५०) एवं कृष्ण अली का, "दो विहारी दृश्य" वावा बालटीदास का मन्दिर महात्म्य सनत्कुमार पापरण का "नारायणी" श्री देवीदयाल चतुर्वेदी मस्त के सुन्दर गाव, शराब का नक्कर आदि इन नाटको का मूल स्वर आदर्शवादी ढग पर ग्राम सुधार है।

अन्न की कमी से उपस्थित जटिलताओ, अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के स्वर को ऊचा करने वाले एकाकी भी निकले हैं जैसे श्री रामचन्द्र तिवारी के अन्नदान (१९५०) अन्नोत्पादन (१९५०) भूखा कोई न रहे (१९५०) वन महोत्सव (१९५०)

श्री मधुकर खेर के नव निर्माण (१९४९) तथा अन्य देवता (१९५०) आदि इनमे जनता का ध्यान अधिक अन्न उपजाओ तथा कृषि की ओर आकृष्ट किया गया है।

जमीदारी उन्मूलन को लेकर श्री विष्णुप्रभाकर ने 'जमीदारी उन्मूलन' रेडियो नाटक और 'पचायत राज' लिखे हैं। डा सुधीन्द्र का ज्वाला और ज्योति सामन्तवाद तथा जागीरदारी के विरुद्ध स्वर ऊचा करता है। श्री अम्बिका प्रसाद वर्मा दिव्य का "चमत्कार" (१९४२) जागीरदारो की चरित्रहीनता, वासना, लोलुपता तथा सकीर्ण हृदयता का खाका पेश करता है।

श्री राजेन्द्र सक्सेना का 'भविष्य के गर्भ से' (१९५०), पाच वर्ष आगे के सर्वांगीण रूप से विकसित ग्राम का आदर्श रूप उपस्थित करता है। डा० सरनाम सिह शर्मा अरुण का 'आदर्श पचायत' न्यायालय का एक आदर्श हमारे सामने रखता है।

श्री देवीदयाल चतुर्वेदी मस्त ने ग्राम समस्याओ पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। भारतीय ग्राम समाज पर जो असामाजिक जोंके लगी हैं और निरन्तर ग्रामीणो का रक्त शोषण कर रही हैं, उन्हें व्यग्य का शिकार बनाया गया है। जब तक हम हिन्दू मुसलिम विद्वेष, छुआछूत, व्यसन, अस्वच्छता और पारस्परिक फूट से मुक्ति प्राप्त नही करते, तब तक सच्चे अर्थो मे ग्राम स्वराज्य स्थापित नही हो सकेगा 'मेल जोल' (१९४६) मे मस्त जी ने यह चित्रित किया है कि हिन्दुस्तान पाकिस्तान अलग हो चुकने पर भी हमे मिल जुल कर रहना चाहिए पाकिस्तान मे हिन्दू और हिन्दुस्तान मे मुसलमान मिल कर न रहेंगे तो हमारे बीच मे विद्वेष की खाडी चौडी होती जायेगी। हरिजन उद्धार "मद्य निषेध, गाव की सफाई, ग्राम सगठन इत्यादि एकाकियो मे मस्त जी ने ग्रामो की समस्त समस्याओं का सविस्तार विवेचन किया है।

इस प्रकार इन नाटको मे ग्रामसुधार की आवश्यकता ग्राम्य जीवन की त्रुटिया, शोषण इत्यादि स्पष्ट कर दिया गया है।

साहित्यिक समस्याए इस वर्ग मे हिन्दी साहित्य तथा साहित्यकारो की नाना समस्याए चित्रित की गई हैं। डा० रामकुमार वर्मा के दो एकाकी "कलाकार का सत्य" तथा "प्रसाद की कला" में साहित्य के दो पक्षो पर प्रकाश डाला है। "कलाकार का सत्य" एक महाकवि से सम्बन्धित है, जिसकी साहित्य साधना का समाज ने कोई मूल्याकन नहीं किया है किन्तु जिसे तुलसी की निस्पृह साधना से सान्त्वना प्राप्त होती है। "प्रसाद की कला" मे प्रसाद के काव्य गौरव का प्रतिपादन है। अश्क का "पक्का गाना" एक साहित्यिक वैराइटी है, जिसमे फिल्म जगत्, भारतीय थियेटर तथा रेडियो की व्यग्यात्मक आलोचना प्रस्तुत की गई है, जिनमे पक्के गाने की तरह ऊची कला के लिए कोई स्थान नही रह गया है। गणेशप्रसाद द्विवेदी के "गोष्ठी" मे आधुनिक तरुण हिन्दी लेखको मुख्यत कवि तथा कहानीकारो, कालेज के नवयुवक लेखको, छात्र छात्राओ, वैदेशिक शिक्षा पद्धति, विदेशी भाषा तथा साहित्य

की गुलामी पर तीखा व्यग्य किया गया है। यह एक साहित्यिक गोष्ठी का अतिरजित और हास्यास्पद चित्र है जिसमे अन्य कमजोरियो के साथ नाट्यकार ने हिन्दी गोष्ठियो मे सभापतियो का विलम्ब से आना, छात्र छात्राओ का उतावलापन, कृत्रिम शृगार, साहित्यिक होने का झूठा दावा, कवियो का छन्द भाषा, पिंगल तथा विचार प्रतिपादन मे पूर्ण स्वतत्रता, अग्रेजी की गुलामी, हमारी जातीय हीनता, लेखको की अभ्यास न्यूनता, कालेज नवयुवको की विशृंखलता, वासना लोलुपता, नैतिक हीनता लक्ष भ्रष्टता, गोष्ठियो मे होने वाले नाज नखरे, हिन्दी उर्दू हिन्दुस्तानी का वाद विवाद आदि अनेक कमजोरियो की ओर सकेत किया है। आज के हिन्दी साहित्य का यह सजीव चित्र है।

प० उदयशकर भट्ट का "नया नाटक" एक नाट्यकार के दैनिक जीवन की उथल पुथल गरीबी, आर्थिक कष्ट, पत्र सम्पादको के तकाजे, पीडा का मुखरित करता है। पूजीवाद के शिकजे मे फस कर साहित्यिको का शोषण हो रहा है, यही चित्रित किया गया है। "विस्फोट" मे भट्ट जी ने छायावादी कवि, आलोचक, गाधीवाद तथा प्रगतिवाद आलोचको की छीना झपटी का चित्र खीचा है। उन लेखको पर व्यग्य है जो शब्दो को तोड मरोड कर निरर्थक कविताए रचते हैं, और भाव या प्रेरणा न होने पर भी शब्दो से खिलवाड करके पाठक आलोचक और सम्पादक को चकमा देते हैं।

कविता और छन्द इस श्रेणी के अन्तर्गत साहित्य के विभिन्न विषयो पर एकाकी लिखे गये हैं। जैसे, कवियो तथा कवि जीवन का चित्रण करते हुए श्री रघुवरदत्त वेतुका ने दो नाटक लिखे "कवि नम्बर एक" तथा "कवि" नम्बर दो" (१९३८)। प्रथम नाटक मे एक कवि के कविता रूपी पागलपन पर व्यग्य है। कवि जी कविता मे ही बोलते हैं, जबकि वह कविता सारहीन होती है। "कवि नम्बर दो" मे कवियो के खड छन्द पर व्यग्य है। डा० श्याम सुन्दरलाल दीक्षित कविरत्न का "कवि" (१९३८) में एक आदर्श कवि का पुलिस द्वारा लाठी चार्ज मे मृत्यु प्राप्त करने का चित्र है। इसमे कवि की अर्थी के साथ चलते हुए जलूस का गान मार्मिक है।

कविवर श्री हरि का "तीन दृश्य" हास्यरस प्रधान है, जिसमे कवियो के पारिवारिक जीवन को स्पष्ट किया गया है। श्री उग्र कृत "हवाई हैदराबाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन" (१९४१) एकाकी गीति प्रहसन हिन्दी के अनेक कर्णधारो की नग्नता को चित्रित करता है। काका कालेलकर के नेतृत्व मे रामनरेश त्रिपाठी, प० बनारसीदास चतुर्वेदी, दुलारेलाल भार्गव, श्री राम शर्मा, जैनेन्द्र कुमार, ठाकुर श्रीनाथसिंह, बच्चन इत्यादि पात्रो को प्रस्तुत कर तत्कालीन हिन्दी जगत् की अनेक शंकाओ तथा विचारधाराओ को स्पष्ट किया गया है। श्री रामकुमार वर्मा के "घर और बाहर" (१९५१) मे श्री पतगजी नामक एक कवि का व्यग्य चित्र प्रस्तुत किया है, जिन्हें कविता करना आता नही, थोडा सा गा बजा कर रुपया और वाह वाह लूटना ही उनका उद्देश्य

रहता है। आज के कवियो मे अर्थ लालसा, सस्ती प्रसिद्धि, प्रशसा तथा कविता के नाम पर शून्य होना, इत्यादि बातो पर व्यग्य है।

भाषा सम्बन्धी एकांकी भाषा सम्बन्धी मतों को लेकर दो सुन्दर एकाकी प्रकाशित हुए हैं। प्रथम नाटक कविरत्न मदन असनसोली का "खिचडी भाषा" अर्थात् "हिन्दी बनाम उर्दू" उर्फ हिन्दुस्तानी है। इसमे हिन्दी उर्दू तथा हिन्दुस्तानी तीन पात्र हैं। हिन्दी और उर्दू दोनो अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा मे हैं और यह समझ गये कि हिन्दुस्तानी ही शेष रहेगी। दोनो कहते हैं

"न हम रहेंगे, न तुम रहोगे, रहेगी हिन्दुस्तानी।"

श्री उमाशकरसिंह भवरा का "हिन्दी प्रेमी" (१६४६) हिन्दी को सस्कृत गर्भित बनाने के विरोध मे एक प्रहसन है। जो व्यक्ति हिन्दी को सस्कृत के क्लिष्ट प्रयोगो से भर रहे हैं वे हिन्दी का हित नही, हानि कर रहे हैं, यह भाव प्रकट किया गया है।

श्री विश्वनाथ वैशम्पायन के "मुगल जमाने का रेडियो स्टेशन" (१६४६) में कथावस्तु पुरानी होते हुए भी आधुनिक रेडियो जगत् की उर्दू-फारसी मिश्रित भाषा को व्यग्य का शिकार बनाया गया है।

जीवन, कला और सगीत

प्रो० इन्द्रशेखर का "जीवन" कला, सगीत जीवन इत्यादि का सबध चित्रित करता है। जीवन नामक एक भिखारी जो वास्तव मे कला का ही भूखा है जिसका मधुर गान सुनकर आनन्द मे चेतन प्रस्फुटित होती है और वह जीवन व कला का उचित मेल कराने की अभिलाषा रखते हुए अन्त मे कला के एक गति श्रवण जनित आनन्द मे ही सदा के लिए विलीन हो जाते हैं। जीवन व कला पारस्परिक आश्रय के लिए उत्कठित हो उठते हैं। इन भावनाओ को मूर्तिमान करने वाले प्रो० आनन्द द्वारा उच्चरित नाट्यकार के कुछ कथन देखिए:

सगीत की चिता जलाकर विद्या और कला नही मिलाये जा सकते। तो क्या ·· कला अकेली ही रह जायगी विद्या से उसका मेल नही, घन उसे भाता नही · जाओ, जीवन कला के साथ जाओ, और सुनो कला, जीवन का सत्कार करो, दुनिया से ऊब कर जीवन यहा आया है कला के पास। जीवन और कला, कला और जीवन कितना सुन्दर है यह मेल ···

कला की सहायता से जीवन कितना चमक जाता है। नाट्यकार का चरम उद्देश्य केवल यही चित्रित करता है कि कला आनन्द के लिए नही, कला कला के लिए नही, प्रत्युत कला जीवन के लिए है। कला और जीवन अन्योन्याश्रित ही है।

इस एकाकी मे कला, सगीत, कविता, जीवन आदि का पारस्परिक सम्बन्ध चित्रित किया गया है। नृत्य, गीत व अभिनय का सगम है।

साहित्य सम्मेलन गोष्ठियां

कवि सम्मेलनो तथा गोष्ठियो मे होने वाले मिथ्या दिखावे, नजाकत, सुकुमारता और अस्त-व्यस्तता पर कई सुन्दर एकाकी प्रकाशित हुए। इनमे श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी का "गोष्ठी" (१६४५) वा० राजेश्वर नाथ का "कवि सम्मेलन" (१६४७) तथा श्री उदयशकर भट्ट का "विस्फोट" (१६४६) आदि सर्वश्रेष्ठ रचनाए हैं। 'विस्फोट' मे ऐसी कविताओ का मजाक उडाया गया है, जिन्हें समझना कोई नही, प्रशसा सभी करते हैं। कवि सम्मेलन मे कवियो की मनोवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। कवियो का ध्यान इस बात पर कभी नही जाता है कि इनकी स्त्रिया कैसी भाग्यहीन होती हैं, उन्हे तो कविता के लिए नित नई नई बातें चाहिए। उनके दिल मे प्रेम की सामग्री इतनी अधिक होती है कि बेचारी स्त्रिया उनके सामने ठहर ही नही सकती। उनकी दृष्टि इतनी तेज होती है कि जो दोष सर्व साधारण को नही देख पडते वे भी उनकी दृष्टि मे पड जाते हैं और स्त्रिया दोषों से भरी दीखती हैं, हृदय उनका इतना कोमल होता है कि जरा जरा सी बातें बडा प्रभाव उत्पन्न कर देती हैं।

श्री भग्नदूत का "साहित्यिक गुण्डम" (१६३६) साहित्यको मे दलबन्दी और पारस्परिक मतभेदों को स्पष्ट करता है। सम्मानित लेखक भी एक दूसरे की निन्दा या मिथ्या प्रशसा मे रत रहते हैं, एक विचारधारा तथा सम सिद्धान्तो के लेखको मे भी मतवैषम्य उठ खड़ा हुआ है, यह मनोवृत्ति खतरनाक है। यही इसका मूल तात्पर्य है। टि लि ल ल ल (१६३६), मे पत्रो की तू तू मैं मैं तथा छिद्रान्वेषण की सकीर्ण प्रवृत्ति पर व्यग्य किया है। व्यक्तिगत आक्षेप तथा छिद्रनी मनोवृत्ति और हीन स्वार्थों पर भी प्रहार किया गया है। श्री रामकृष्ण शर्मा के "पेन की मेहरबानी" और "एडीटर की इज्जत" (१६३६) मे सम्पादको द्वारा पारिश्रमिक न देने और गुप्त नामो से लेखको की रचनाओ का प्रयोग करने पर व्यग्य है।

श्री विद्युतराय वी० देसाई का "महाकाल की कला" (१६२५) काल और कला का द्वन्द उपस्थित करता है। जिस प्रकार सत्यवान की परिणीता सावित्री ने सत्यवान को सजीवन प्राप्त कराया था, उसी प्रकार कलाकार ने अपनी परिणीता कला द्वारा अमरत्व पाने का महाव्रत लिया है। इस एकाकी मे मौत और कला के इस द्वन्द्व को प्रत्यक्ष किया गया है। डा० प्रेम नारायण टडन के "अधूरा नेता" मे आदर्श और यथार्थ का चित्रण है। नेतागण जिस प्रकार बाहर जनता के सामने आदर्शवादी बने फिरते हैं, किन्तु उनका व्यक्तिगत जीवन कैसा नृशस और असामाजिक होता है, इस पर व्यग्य किया गया है। श्री चन्द्रकिशोर जैन का "भूत की सगाई" (१६४६) मे एक ऐसे व्यक्ति का चित्र है जो भूत बनकर दूसरों का नहीं प्रेम और व्याकरण की अशुद्धिया इत्यादि दूर करता है।

कवियों की जीवनी

कुछ कवियो के जीवन चरित्र पर भी एकाकी नाटको की रचना हुई है जैसे प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी का "तुलसीदास" श्री रामचन्द्र तिवारी का "कर्म और भक्ति का प्रतीक तुलसी", (१९५०) श्री नारायण चक्रवर्ती के "सूरदास, तुलसीदास" प्रो० चन्द्रप्रकाश के १ "तुलसीदास २ महाकवि चन्द्र ३ कविवर भूषण ४ भारतेन्दु शताब्दी" इत्यादि इनमे सास्कृतिक वातावरण कुशलता से चित्रित किया गया है। देवेन्द्रनाथ शर्मा कृत "ज्ञानोदय" का सम्बन्ध रत्नावली के उपालम्भ के कारण तुलसी के ज्ञानोदय से है। शर्मा जी नारी हृदय की व्यथा व्यक्त करने मे सफल हुए हैं। श्री वीरेन्द्रनारायण के "श्री शरतचन्द्र" मे बगला के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री शरतचन्द्र चटोपाध्याय की जीवनी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। बगला से प्राप्त सामग्रियो का ही इसमे उपभोग किया गया है।

सम्पादको के जीवन से सबधित दो एकाकी उल्लेखनीय हैं। १ मोहनसिंह सेंगर कृत "सम्पादक जी" तथा सियारामशरण प्रसाद कृत "आदर्श पत्र का सम्पादक" (१९५६) मे सम्पादको के मन मे नामी लेखको के प्रति होने वाला पक्षपात तथा नए प्रतिभाशाली लेखको की अवहेलना चित्रित की गई है। प्रमिला वर्मा कृत "नारी की अदालत मे" उपन्यासकार (१९५५) एक समीक्षात्मक एकाकी है। इसमे जज, वकील आदि नारी को बनाया गया है और हर उपन्यास मे जहा जहा पर नारी के विरुद्ध लिखा गया है या उसका अपमान किया गया है, उन स्थलो को दिखाया गया है। डा० धर्मवीर भारती कृत "आवाज का नीलाम" में एक सम्पादक अर्थ सकट और पत्नी की लम्बी बीमारी से तग आकर अपने जनवादी क्रान्तिकारी पत्र "आवाज" को सेठ बजोरिया के हाथ बेच देता है। इसमे पत्रकारो की गरीबी, जनता की स्वस्थ साहित्य के प्रति उदासीनता और अन्य कठिनाइया व्यक्त की गई हैं। फिल्म जगत मे जाने वाले साहित्यिको की दुर्दशा का चित्र श्री प्रभाकर माचवे ने अपने "गुडबाई मिस्टर शर्मा" मे खीचा है। साहित्यिक एकाकियो मे अमृत लाल नागर कृत "भारतेन्दु की कला" और डा० रामकुमार वर्मा कृत "स्वागत है ऋतुराज" उल्लेखनीय हैं। निष्कर्ष यह है कि हिन्दी मे साहित्यिक समस्याओ पर पर्याप्त सख्या मे एकाकी लिखे जा रहे हैं।

हास्य व्यग्य प्रहसन का विकास तीव्र गति से हुआ है। अंग्रेजी नाट्य साहित्य के प्रभाव के कारण लोभ, गर्व, प्रतिहिंसा, असगति, अनौचित्य, अनैतिकता, प्रपचपूर्ण कार्य, पाखड, अस्वाभाविक आदर्शों को लेकर व्यग्यात्मक प्रहसनो की रचना हुई है। पिछले युग पर यदि फ्रासीसी नाट्यकारो का प्रभाव कहा जाय, तो इस युग मे अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव मानना होगा।

डा० रामकुमार वर्मा ने भारतीय तथा पाश्चात्य हास्य-सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए अपने प्रहसनो मे समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। हास्य के

विभिन्न मनोभावों से प्रेरित होकर लिखे गए वर्मा जी के प्रहसनों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :

१ विनोद (wit) जैसे "पृथ्वी का स्वर्ग" और "रंगीन स्वप्न" एकांकियों में मिलता है। २ अट्टहास जैसे 'फैल्ट हैट', "रूप की बीमारी" आदि में ३. मनोरंजना जैसे "कवि पतंग" में ४. विद्रूप (Contrast) जैसे "नमस्कार की बात", "एक तोला अफीम की कीमत' आदि में, ५ परिहास (Parody) जैसे "आंखों का आकाश" एकांकी में, ६ उपहास (Comic) जसे "फीमेल पार्ट में", ७ व्याजोक्ति जैसे "झोंक" एकांकी में, ८ वक्रोक्ति जैसे "एक अंक की बात" और "छोटी सी बात" में, ९ व्यंग्य "कहां से कहां" और "आशीर्वाद" तथा विकृति (Satire) जैसे "इलैक्शन" और "सही रास्ता'"। इन सभी प्रकारों में शिष्ट और सोद्देश्य हास्य है।[1] प्रत्येक प्रहसन में सुधार की प्रवृत्ति छिपी हुई है। शोषक वर्ग के प्रति घृणा और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति है। उन्होंने व्यापकता से हिन्दू समाज को देखा और अन्धविश्वासों और रूढ़ियों पर कुठाराघात किया है। उदाहरण के लिए 'झोंक" व्याजोक्ति अंध विश्वासों का ही व्यंग्यात्मक चित्र है। "सही रास्ता" में समाज के अनेक वर्गों जैसे वकील, प्रोफेसर, कवि, और सेठ आदि पर प्रहार हैं। "रंगीन स्वप्न" एकांकी में युवक वर्ग के ऊपर व्यंग्य है जो एकांकी प्रेम को लेकर वास्तविकता की अवहेलना कर कल्पना के मोहक मादक संसार में उड़ते रहते हैं। "कवि पतंग" में कवि वर्ग पर व्यंग्य है जो कविता के नवीन प्रयोग और गले के उतार-चढ़ाव में कविता की आत्मा का गला घोट देते हैं। "फीमेल पार्ट" प्रहसन में आधुनिक नारियों के प्रति व्यंग्य है जो सभी क्षेत्रों में अधिकारों की मांग करती हैं। 'इलैक्शन" में निर्वाचन-पद्धति को व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। "रूप की बीमारी" में युवक वर्ग के इस ढोंग का प्रदर्शन है, जो बीमारी का बहाना करके पिता से अपनी किसी भी इच्छा की पूर्ति करा लेते हैं।

सेठ गोविन्ददास ने जहां गम्भीर एकांकियों का निर्माण किया है, वहां प्रहसनों का भी निर्माण किया है। १ उनके जाति उत्थान २ विटेमिन ३ वह मरा क्यों? ४ हार्सपावर ५ अर्द्धजाग्रत ६ चौबीस घण्टे ७ आधुनिक यात्रा ८ अधिकार लिप्सा आदि प्रहसन विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें लेखक ने शिष्ट समाज की विद्रूपताओं, दुरभिसंधि, मिथ्याप्रदर्शन, पार्टीबन्दी, आजकल की शिष्टता, थोथी विचारधारा और इनके नेतृत्व पर व्यंग्य किया है।

---

१ डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित के ये शब्द सत्य ही हैं, "वर्मा जी के एकांकियों का हास्य केवल हास्य के लिए नहीं है, वरन् अपनी सुधारात्मक प्रकृति को छिपाये जनता के हृदय और मन का परिष्कार भी करना चाहते हैं। समाज में चलती हुई अन्ध परम्पराओं एवं अन्धविश्वास की रूढ़ियों को हास्य के माध्यम से उखाड़ना चाहते हैं।

—"नया पथ" नाटक विशेषांक पृ० ४६६।

"वह मरा क्यो ?" प्रहसन मे कन्टूनमेन्ट के एक अफसर की अनुभवहीनता का हास्यमय चित्रण है। यह बीसवी सदी मे "अन्धेर नगरी चौपट राजा" जैसा प्रतीत होता है और आधुनिक चिकित्सा विज्ञानवेत्ताओ का खोखलापन व्यक्त करता है। "विटेमिन" प्रहसन मे हास्य-व्यग्यमय शैली मे विटेमिन वाले सिद्धान्त का उपहास किया गया है। जीवन में नियम से बध कर नही चला जा सकता। मुख्य पात्र बच्छराज विटेमिन सिद्धान्त के मामले में अति कर डालता है—"अति सर्वत्र वर्जयेत" साइटफिक फूड से निर्बल होता जाता है। इस प्रहसन का मूल सन्देश हैं "फेडिस्ट न होइये" विज्ञान का फैड छोडने की इसमे अपील है।

"उठाओ खाओ खाना" में सेठ जी ने आधुनिक युग की दावतो (बुफे डिनर) पर व्यग्य किया है। दावत मे बैठे बैठे स्वामी विशुद्धानन्द मतभेद के कारण कुछ भी नही खाते। वे भारतीय सस्कृति के पुजारी हैं। पवित्र प्रणाली से बना हुआ पवित्र भोजन, पवित्रता से परोसा हुआ और पवित्र ढग से खाया हुआ भोजन ही उनका आदर्श है। इसी अति पवित्रता पर लेखक ने व्यग्य किया है।

"आधुनिक यात्रा" मे सेठजी ने भारतीय रेल यात्रा पद्धति पर व्यग्य किया है। किसान सफर के लिए कितनी जल्दी स्टेशन पर आते हैं, स्टेशन पर आकर उन्हें कितनी देर रेलगाडी की प्रतीक्षा करनी पडती है, फिर किस कठिनाई से वे दूसरे यात्रियो को ठेल-ठालकर डब्बे मे प्रविष्ट हो पाते हैं और प्रविष्ट होने के उपरान्त फिर किस प्रकार अन्य मुसाफिरो को नही घुसने देते, इसका हास्य व्यग्यमय दिग्दर्शन कराया गया है। इन चारो घटनाओं के सुन्दर शीर्षक दिये गए हैं। ये हैं बेकरारी, इन्तजारी, फौजदारी, और जमीदारी।

"चौबीस घण्टे" मे रेडियो के शौक और आधुनिक जीवन पर उसके एकाधिकार पर व्यग्य है। आकाशवाणी ने तब यह निर्णय किया कि अब आकाशवाणी द्वारा चौबीस घण्टे ब्राडकास्ट होगा, तब एक घर के वृद्ध ने अपनी सन्तति के विरुद्ध रेडियो से तग आकर रेडियो उठा कर फेक दिया। इसमे रेडियो के नशे पर व्यग्य है और शिष्ट हास्य की दृष्टि से लेखक विशेष सफल रहा है। आज के शिष्ट जीवन पर लेखक ने प्रहार किया है और यह सकेत दिया है कि हम अति न करें।

"हार्स पावर" मे एक बडी मनोरजक कथा को प्रहसन का आधार बनाया गया है। एक राजा साहब का कुछ हिस्सा चौपट हो गया है। वे अपने कारिन्दे को हुक्म देते हैं कि जिस जानवर ने इस खेत को उजाडा है, उसे काजी हाउस मे ले जाओ। खेत उजाडा है एक मोटर लारी ने। मोटर लारी को काजी हाउस के हाते मे रख जब कारिन्दा राजा साहब से पूछता है कि लारी वाला मुआवजा चुका कर मोटर लारी वापस ले जाना चाहता है, अत मुआवजा किस निर्ख से लिया जाय, तब दीवान साहब बुलाये जाते हैं और तुरन्त व्यवस्था कर लेते हैं कि जितने हार्सपावर की लारी हो, लारी के रूप मे उतने ही घोडे मान लिए जाय और घोडो के निर्ख पर मुआवजा ले

कर लारी छोड दी जाय। यह निर्मल हास्य का उदाहरण है।

अर्द्ध जागृत" प्रहसन मे एक ऐसे हरिजन देहाती का चरित्र चित्रण किया है जो धीरे धीरे सभ्य हो रहा है। उसकी असभ्यतापूर्ण कृतियो पर अनेक सवर्ण हिन्दुओ के नाको दम हो जाता है। अन्त मे सवर्ण हिन्दू कहता है

"इसके लिए तो यथार्थ मे हम सवर्ण हिन्दू दोषी हैं। हमने सहस्रो वर्षो से हरिजनो पर ऐसे अत्याचार किए हैं और आज भी कर रहे हैं कि हमे उनका प्रायश्चित करना ही होगा। हमने उन्हें ऐसा दबाया-सुलाया कि अब उठाने और जगाने के वक्त यदि वे हाथ पैर पछाड़ कर उठें और उस क्रिया मे यदि हमे चोट पहुचे, तो हमें बर्दाश्त ही करना चाहिए।"

यह प्रहसन भी शिष्ट हास्य का अच्छा उदाहरण है। "भूख हडताल", 'यू० नो०" और "आई० सी०" आदि राजनीतिक, समाजिक एकाकी हैं। जिनमे सेठ गोविन्ददास ने शिष्ट समाज की विद्रूपताओ, मिथ्या प्रदर्शन, पार्टी बन्दी और इनके नेतृत्व पर व्यग्य किया है।

श्री उदयशकर भट्ट के १ दस हजार २ नेता ३ उन्नीस सौ पैंतीस, वर निर्वाचन ५ दो अतिथि ६ नये मेहमान आदि मे परिस्थितिजन्य हास्य की उत्पत्ति की गई है। "उन्नीस सौ पैंतीस" मे व्यग्यात्मक रूप में दुर्बल मस्तिष्क और शेखचिल्ली जैसी कल्पनाओ को हास्य का विषय बनाया गया है। "विस्फोट" मे साहित्यिक जगत का उपहास है तो "नया नाटक" मे किराये की समस्या पर व्यग्य है। सभ्य जीवन के विकृत अगो पर इनमे घृणास्पद प्रहार हैं।

श्री उपेन्द्रनाथ है अश्क के १. तौलिए २. पक्का गाना ३ जोंक ४ पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ। ५ अजो दीदी ६ आपस का समझौता ७ हजूर मेरा नाम क्रेट्रिम है आदि उच्च कोटि के व्यग्यात्मक प्रहसन हैं। पक्का गाना" रेडियो पर प्रयोग मे आने वाले पक्के गानो पर व्यंग्यात्मक एकाकी है। "अजोदीदी" मे एक मनोवैज्ञानिक समस्या का चित्रण है। आदमी जो स्वय नहीं कर पाता उसे अपनी सन्तान द्वारा पूर्ण कराना चाहता है। शिष्टता का अतिक्रमण कैसा उपहासनय हो जाता है, "अजो दीदी" इसका एक सुन्दर उदाहरण है। अश्क मे हास्य व्यग्यमय परिस्थिति तथा चरित्र सृजन की अपूर्व क्षमता है। मानसिक असंगति, अनौचित्य, सनक, किसी कार्य को करने मे अति, सभ्यता की छाया मे पनपने वाले अस्वाभाविक जीवन, प्रपचपूर्ण कार्य अस्वाभाविक आदर्श, पाखड, वितन्डावाद आदि विषय मनोवैज्ञानिक गहनता से अपने प्रहसनो के विषय बने हैं। अश्क के हास्य की तीन कोटिया हैं। प्रथम वर्ग मे हम उनके वे एकाकी रख सकते हैं जो हमारे मुख पर एक हलकी मुसकान या एक धीमा सा हास्य छोड जाते हैं, जिससे हम मन ही मन हँसते हैं इनमे "कइसा साब कइसी आया", क्रिकेट क्लब का उद्घाटन, तौलिए, पक्का गाना, छठा, बेटा, इत्यादि आते हैं। दूसरा वर्ग व्यग्य मिश्रित साधारण हसी का है जिसमे होठो मे हसी रहती है, जैसे अजोदीदी,

अधिकार का रक्षक, स्वर्ग की झलक या मस्केबाजो का स्वर्ग इत्यादि। तीसरा वर्ग ठहाका मारने वाली हँसी का है जो, छठा बेटा के कुछ हिस्सो में, पर्दा उठाओ, चमत्कार तथा वैंद्रिस आदि मे मिलती है। अश्क का नया प्रहसन "पैंतरे" फिल्मी जीवन की नाना समस्याओं को हास्य व्यग्य रूप मे प्रस्तुत करता है। यह बम्बई के फिल्मी जीवन की यथार्थता पाठको के सामने लाकर उन्हें खूब हसाता है। इनमे अभिव्यक्ति का खरापन है।

श्री विष्णु प्रभाकर के अनेक सफल प्रहसन प्रकाश मे आये हैं। जैसे "प्रो० लाल" मे शीशे और मशीन के सहारे भाषण देना सीखने वालो पर व्यग्य है। "गीत के बोल" मे आधुनिक फैशनेबुल जीवन मे सिनेमा के कुत्सित प्रभाव पर व्यग्य है। "मूर्ख" मे एक पत्नी के होते हुए दूसरे विवाह के इच्छुक व्यक्ति का मजाक है। "सरकारी नौकरी" क्लर्क जीवन की हास्य व्यग्यात्मक झाकी है। "पुस्तक कीट" रट्टू विद्यार्थियो का मजाक है। "कार्यक्रम" जनतत्र के मन्त्रियो पर आक्षेप एव व्यग्य है। "काग्रेसमैन बनो" अवसरवादी काग्रेसमैनो पर व्यग्य है। "व्यग्य" मे यह चित्रित किया गया है कि जो बात हम दैनिक जीवन मे नही सह सकते, उसे कहानी में स्वीकार कर लेते हैं। "कला का मूल्य" सम्पादको की मिथ्या प्रशसा व निर्धन लेखको के शोषण पर व्यग्य है। विष्णु का दृष्टिकोण मानववादी है तथा उनके प्रहसनो मे आदर्श एव यथार्थ का समन्वय है।

श्री प्रभाकर माचवे के प्रहसन एक बौद्धिक विचारक के चिन्तन के परिणाम हैं। अदालत के पास होटल, गली के मोड पर, लैटरबक्स, दीवार, लालटेन, यदि हम वे होते, वधू चाहिए, नाटक का नाटक, पागल खाने में आदि प्रहसन हिन्दी नाट्य साहित्य मे सर्वथा मौलिक, नवीन शैली और गम्भीर हास्य के उदाहरण हैं। आपने आधुनिक छल, कपट, सभ्यता के ढोग, युवको की रोमाटिक प्रवृत्तिया, निरर्थक रीति रिवाज, पाखड, शिष्ट समाज की मानसिक कुरूपता, असगति, अनौचित्य, अनैतिकता, भ्रममूलक आशाए एव विचार, प्रेम, लोभ, प्रतिहिंसा, अहभाव आदि मानवीय भावो को लेकर प्रहसनो की रचना की है। इन्हें पढकर आधुनिक सभ्यताके प्रति हास्यपूर्ण घृणा उत्पन्न हो जाती है। इन पर रेडियो टैकनीक तथा अग्रेजी के प्रहसनो का प्रभाव है। चरित्र, घटना तथा नवीन परिस्थितियो का निर्माण मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से हुआ है।

श्री मधुकर खेर के प्रहसनो, "नारी की पसन्द, यह पाकिस्तान है, कलियुगी अवतार, देश भक्ति" मे परिष्कृत श्रेणी का हास्य निहित है। इनमे समाज सुधार की अपेक्षा व्यग्य की मात्रा अधिक है। "यह पाकिस्तान है", प्रहसन मे पाकिस्तान मे व्याप्त धर्मान्धता, अधविश्वास, ढोग, और रूढियो का व्यग्यात्मक शैली मे पर्दाफाश किया गया है। नाट्यकार ने यह चित्रित किया है कि पाकिस्तानी मुल्लाओ ने वहा के सामान्य नागरिको का जीवन दूभर कर दिया है। "नारी का पसन्द" मे

नई रोशनी में पले नवयुवकों को व्यग्य-बाण का लक्ष्य बनाया है। नई रोशनी मे पलने पर भी आई. एस. युवक निज विवाह के निमित्त दहेज चाहता है तथा तीन लडकियो मे कुछ न कुछ दोष निकाल वह उससे विवाह करने मे आनाकानी कर देता है। चौथी लडकी इस युवक मे वही त्रुटिया निकालती है जो उसने अन्य लडकियो मे निकाली थी। विवाह मे पुरुष की ही नही, नारी की पसन्द को भी स्थान मिलना चाहिए, यही इस प्रहसन का लक्ष्य है। "कलियुगी अवतार" (१९५१) मे ढोंगी साधुओ का भडाफोड किया गया है जो वैद्य, ज्योतिषी, साहित्यिक सभी होने का ढोग करते हैं। "फिल्मी कहानी" (१९५१) प्रहसन मे ऐसे सिने निर्देशको का चित्रण है, जो हिन्दी लेखको की रचनाओ को अपने ही नाम से फिल्मे बनवा लेते हैं तथा लेखको को धोखा देते हैं। "अखिल भारतीय फासिस्टवाद विरोधी सम्मेलन" (१९५१) एक व्यग्यात्मक प्रहसन है, जिसमे सभी राजनीतिक दलो कांग्रेस कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट, मुसलिम लीग, हिन्दू महासभा आदि के प्रतिनिधि हैं जो आज की राजनीतिक समस्याओ पर अपने विचार प्रकट करते हैं। प्रत्येक पात्र का विभिन्नता से व्यग्यात्मक शैली मे चित्रण किया गया है।

श्री जयनाथ नलिन हास्य के क्षेत्र मे पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके है। आपके १ लोमडियो का शिकार २ लखनवी बहादुर ३ नवाब साहब का इन्साफ ४ शतरंज के खिलाडी ५ बटेरो के शौकीन, अवध के नवाबी जीवन से सम्बन्धित हास्यपूर्ण प्रहसन हैं जिनमे वातावरण का सौंदर्य है। आधुनिक सभ्यता तथा अस्वाभाविक जीवन तथा आदर्शों पर हास्य व्यग्य करने वाले प्रहसनो मे "लस्सी का गिलास" (१९५०), सवेदना सदन (१९५१), शाति सम्मेलन (१९५१) मार मार कर हकीम, फिलोस्फर (१९५१), मेहमान, बनवेगिंग (१९५१) चित भी मेरी, पट्ट भी मेरी (१९५१) डेमोक्रेसी (१९५१) उल्लेखनीय प्रहसन हैं। व्यक्ति, समाज, सभ्यता, कला, संस्कृति तथा प्रहसन के पात्रो पर भी इनमे मीठा व्यग्य है।

श्रीमती विमला लूथरा के कुछ प्रहसन बडे तीखे रहे हैं। जैसे "प्रीति भोज" (१९४८), २ टाट और सुतली (१९४९) ३ मुन्ने का नामकरण (१९४८) धोबी का आगमन (१९४९) सगाई का प्रबन्ध (१९४९) ६ आज छडिया रेडियो पर तानसेन (१९४९) ७ टिकट चेकर (१९४९) ८ आठवा आश्चर्य (१९५०) पेडो की छाया मे (१९५०), आदि प्रहसनो मे लेखिका ने चरित्र और परिस्थिति को बडे हास्य और व्यग्य रूप से प्रस्तुत किया है। हमारी सभ्यता की अनेक दिखावटी बातें सार्वजनिक तथा राजनीतिक जीवन के मिथ्या प्रपचपूर्ण कार्यों, हडतालो के दुरुपयोग, स्वेच्छाचारिता, कूटनीति, मध्यवर्गीय जीवन की नाना उलझी समस्याओ को पाश्चात्य ढग से प्रस्तुत किया है। परिस्थिति के नग्न चित्र इन प्रहसनो मे सुरक्षित हैं। नाटकीय क्षण की पकड की विलक्षण प्रतिभा इनमे प्रकट हुई है। इनमे व्यग्य, कटाक्ष और वाग्वैदग्ध्यता का कलात्मक प्रयोग है।

श्री रामसरन शर्मा ने रेडियो पद्धति पर सफल प्रहसनो की रचना की हैं जिनमें व्यग्य यथेष्ट मात्रा मे मौजूद है। आपके १ बीमार की बीबी (१९४९) २ भूतो की दुनिया (१९५०) ३ बेचारी चुडैल (१९५०) ४ पत्रकारिता (१९५०) ५. वकालत (१९५०) ६ सफर की साथिन आदि प्रहसन प्रसारित हो चुके हैं। वर्ग, पाखड, अहकार तथा मिथ्या प्रदर्शन को आधार मानकर इन व्यग्यात्मक एकाकियों की रचना हुई है। सभी हास्य, विनोद से परिपूर्ण हैं। यह विनोद सर्वथा शिष्टता की परिधि मे है। सुरुचिपूर्ण वातावरण इनकी विशेषता है।

श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल के आठ प्रहसन "हजामत" सग्रह में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त आपके "घर और बाहर (१९३९) वर यात्रा (१९३९) सुहागरात (१९३९) राबर्ट नैथनियल ओझा (१९३७) इत्यादि प्रहसनो मे समाज का दिखावा, झूठी नेतागिरी, आर्य समाज के उपदेशको की छीछालेदार विद्यार्थी समाज मे फैली हुई अनैतिकता, अनुशासनहीनता, सामाजिक पाखडता, शिष्ट समाज का कपट पूर्ण व्यवहार पर व्यग्य किया गयाहै। इनमे मौलिक सूझ, परिस्थिति का हास्य, तथा चरित्रो का पाखड, गर्व स्वार्थो को आधारभूत मानकर हास्य उत्पन्न किया गया है। विशेष प्रकार के व्यक्तियो का मर्यादा से बढकर हास्यास्पद बन जाना व्यग्य का मूल केन्द्र बन गया है।

श्री यादवेन्द्र नाथ शर्मा' "चन्द्र" के छ प्रहसन प्रकाशित हुए हैं। १ बुड्ढा घोडा लाल लगाम २ चलचित्र के जीवजन्तु ३ एक दिन की बात ४ नायिका निर्वाचन ५ चायवाद ६ सफेद भेडें। बुड्ढे घोडे मे एक साठ वर्षीय वृद्ध चाचा परशुराम नामक रईस का व्यग्य चित्र उपस्थित किया गया है, जो वृद्धावस्था के आ जाने पर भी इन्द्रिय लोलुपता, विवाह तथा वासनाजन्य सुख का लोभी बना हुआ है तथा रुपए के बल पर एक कुवारी कन्या का जीवन नष्ट करना चाहता है। इसमे उन मनुष्यो का सही चित्रण किया गया जिनका पेशा ऐसे बुड्ढो से पूजी हडपना है। "चलचित्र के जीव जन्तु" सिनेमा जगत का पर्दाफाश करता है। इस प्रहसन मे सिनेमा जगत में होने वाली बनावटी बातचीत, निर्देशक, कहानी लेखक, सवाद लेखक, गीत लेखक तथा हीरोइन इत्यादि की खीच तान, अभिनय, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार तथा साहित्य हीनता का सजीव चित्र उपस्थित किया गया है। लेखको की कृतियो की कैसी हत्या की जाती है, निर्देशक अभिनेत्रियो के नाज नखरो पर कैसे नाचते हैं, यह हास्य विनोद के रूप मे चित्रित है।

"एक दिन की बात" मे चन्द्र जी ने सिनेमा प्रोड्यूसरो तथा अभिनेता बनने के इच्छुक युवक युवतियो की इच्छाओ को चित्रित किया गया है। सिनेमा जगत के गिनौने वातावरण को भलीभाति स्पष्ट कर दिया है। "नायिका निर्वाचन" प्रहसन मे उन भोली युवतियो का करुण चित्र है, जो फिल्म मे अभिनय करने के लिए आती हैं, जिनकी समस्त आशाए निर्देशको और निर्माताओ के कुचक्र मे पिस कर उन्हें वेश्या

बना देती हैं। शरीफ कहलाने वाले कला प्रेमियो का नग्न रूप इसमे प्रस्तुत किया गया है। "सफेद भेड़ें" प्रहसन मे उन नेताओ के प्रति तीव्र व्यग्य है जो केवल विदेशों एव अपने से चतुर व्यक्तियो का अनुकरण करते रहते हैं। वे पचवर्षीय योजना बनाते हैं तो ये भी वैसी ही योजनाएं तैयार करते हैं। वे उद्घाटन करेंगे, तो यह भी। अयोग्य नेता किस प्रकार देश मे संकट उपस्थित कर देते हैं, यही इस प्रहसन में चित्रित किया गया है।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव के नए प्रहसनो का सग्रह "बौछार" (१९५३) मे प्रकाशित हुआ है जिसमें १ बौछार, हाकिम या पैदायशी मजिस्ट्रेट ३. हजामत ४ भूल चूक ५ चोर के घर छिछोर आदि प्रहसन हैं। इनमें "बौछार" मे घूसखोरो की पूरी लीला और चोर बाजार की भी झलक दिखाई गई है। "हाकिम" मे अधिकार मे चूर अफसरो का नशा उतारा गया है। "हजामत" मे तीसमारखा जैसे दारोगा का हास्यजनक तमाशा देखने को मिलता है। "भूलचूक" विधवा विवाह के पक्ष मे सामाजिक प्रहसन है। 'चोर के घर छिछोर' मे बेईमानो की बेईमानी की अच्छी खबर ली गई है। इसमे हास्य और व्यग्य का पर्याप्त प्रयोग है।

प्रो० राजेन्द्रलाल मेढ के १ पुरोहित जी (१९४७) २ डिप्टी साहब (१९४८) ३. प्रायश्चित (१९४८) ४ उलटी गगा (१९४८) आदि प्रहसनो मे नवीन और प्राचीन दोनो की मृदु आलोचना है। प्राकृत रूप का आभास देने के लिए साधारण पात्रो की भाषा बोलचाल की ही रखी गई है। नाटकों मे चित्रित घटनाचक्र काल क्रम से अब कुछ पुराना पड गया है पर उसमे इतनी सजीवता है कि अब भी हमारे लिए आकर्षण बना है।

श्री सुबोधमिश्र सुरेश ने समाज के व्यक्तियो तथा उनकी प्रवृत्तियो पर व्यंग्यात्मक प्रकाश डाला है। १. खाव खानसामा २. साहित्यिक सनक ३ घनचक्कर (१९३९) ४ प्रेमी की पूजा (१९४०) आदि मे सभ्यता पर व्यंग्य है। "खाव खानसामा" देशी होकर विलायती भोजन करने वालो पर व्यग्य है। "साहित्यिक सनक" मे उन सम्पादको का अतिरजित चित्र है, जो एडीटरी से लेकर कम्पोजीटरी तक का कार्य स्वय ही करते हैं, पर मिथ्या प्रदर्शन से बाज नही आते हैं। "घनचक्कर" मे कर्जदारों के ऋण लेने की मनोवृत्तियों का हास्यापद चित्रण है। "प्रेमी की पूजा" मे आधुनिक रोमाटिक प्रवृत्ति को साधारण एव असामान्य परिस्थितियो में प्रस्तुत किया गया है। जिन भावनाओ का इसमे चित्रण है उन्हें देख कर हसी आती है। मिश्र जी के प्रहसनो मे गम्भीरता अपेक्षाकृत कम है।

श्री गिरधरलाल ने राजनीतिक प्रहसन लिखे हैं, जो "डबल रोटी पर नकद" (१९३८) युद्ध पुराण (१९३८) सपने की मुलाकात (१९३८) अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं। श्री वामनमल्हार जोशी का "स्वराज्य साधना" देश के गणमान्य नेताओ का केवल गाल बजाना और निश्चेष्ट रहने पर प्रहसन है। इसमें कलेवर

समाजवाद, सनातन हिन्दू धर्म आदि के विभिन्न दृष्टिकोणो को स्पष्ट करते हुए यह चित्रित किया गया है कि पारस्परिक मनोमालिन्य से देश की कितनी हानि हो चुकी है। श्री सुशीलकुमार चौबे के पाच प्रहसन उपलब्ध हैं। १ फैशन का खब्त (१९४२) २ यह रेडियो स्टेशन है (१९४२) ३ लाला के घर मे भूत (१९४३) ४ पहली अप्रैल (१९४१), ५ मेहमान (१९४२) इनकी विशेषता शिष्ट हास्य है। इनमे आधुनिक पाश्चात्य जीवन के अधानुकरण से उत्पन्न असगत कार्यों, असाधारण एव असामान्य परिस्थितियो, वितडावाद, रूढिवाद, प्रेम प्रसग, रेडियो जगत की भाषा तथा आधुनिक फैशन युक्त जीवन को व्यग्य का निशाना बनाया गया है।

कुछ प्रहसन लेखको की एक एक रचना उपलब्ध है, किन्तु उसी मे उसकी हास्य व्यग्य की प्रतिभा प्रस्फुटित हो उठी है जैसे श्री तस्करानन्द भावापहरी का "धर्मराज का दरबार" (१९४०) श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द का ब्याह (१९३९) धर्मदेव चक्रवर्ती का "मूछ का बाल" (१९५५) श्री भाई जी का "फैशनवाली" (१९३९), श्री सुरेश का "अपनी अपनी डपली" (१९३८) श्री कुभकरण का "आज की दुनिया मे" (१९५०) श्री रघुवरदत्त का "मुफ्त मे यश" (१९३९) आदि समाज के विभिन्न पक्षो पर व्यग्य करते हैं।

श्री जनार्दन मुक्तिदूत के "नीहारिका" (१९५१), कोयल (१९५१), इत्यादि प्रहसन सुन्दर बन पडे हैं। इनके हास्य का कुछ मूल तात्पर्य होता है, और प्राय वह पाडित्यपूर्ण बन जाता है। कुछ प्रहसन पुराने अन्धविश्वासो का समूल नाश करने के हेतु या किसी विशेष मत को लेकर लिखे गये है, जैसे 'कोयल' मे हिन्दी राष्ट्र भाषा हो सकती है चित्रित किया गया है। कभी कभी इनका हास्य इतना पाडित्यपूर्ण हो उठता है कि विनोद की मात्रा कम हो जाती है।

डा० सरनामसिह शर्मा के "घोडे वाले, आशीर्वाद (१९५०), गूढ न्याय (१९५०), आदि प्रहसनो मे हास्य की मात्रा कम है। डा० अरुण भी इतना पाडित्य-पूर्ण या शास्त्रीय लिखते हैं कि वह स्वाभाविकता से दूर जा गिरता है।

श्री बेढब बनारसी का "अनसुनी" (१९५०) दो बहरे प्रोफेसरो का चित्र प्रस्तुत करता है, जो बातचीत करते जाते हैं, किन्तु परस्पर एक दूसरे की बात नही समझते अपनी मनगढन्त ही हाकते हैं। अन्त मे लड बैठते हैं। व्यग्य, श्लेष एवं शब्दो के कलात्मक प्रयोग द्वारा शिष्ट हास्य की उत्पत्ति की गई है।

श्री श्रीश्रकृष्ण के "साहित्योद्धारक सघ" (१९५३) मे लेखको पर व्यग्य किया गया है। "सम्पादक की कुर्सी (१९५३)" मे सम्पादको के पक्षपात असफल और बेकार नारी लेखिकाओ को वासना तृप्ति के कारण लिफ्ट देने की वृत्ति, लेखिकाओ के चित्र पत्रो मे छापकर अखबारो को आकर्षक बनाने की प्रवृत्ति, और बिना पढे ही रचनाओ का मूल्याकन या केवल लेखक का नाम देखकर रचना की अस्वीकृति करने पर छीटाकशी की है। "शिशु सम्मेलन" (१९५५) मे आजकल शिशुओ द्वारा अपने अभि

कारो के लिए अनुचित माग पर व्यंग्य है। अविकार के लिए माग, हडताल आदि का दुरुपयोग जितना विद्यार्थी कर रहे है, दूसरा नही। इस प्रहसन मे बच्चो के मन मे पनपने वाले इस सार्वजनिक रोग को हास्य-विनोदमय रूप मे प्रस्तुत किया गया है। 'माजी' मे उस सास का चित्रण है, जिसकी खीज और झुझलाहट ही एक मात्र सम्पत्ति है। वह कभी बहू पर, कभी बच्चो पर, कभी नौकर पर और कभी धोबी और मेहतरानी पर गरज यह कि जो भी सामने आ जाये उसी पर बरसती रहती है। अक्सर घरो मे सास की यह मूर्ति देखने को मिल सकती है। 'भगियो की हडताल' मे आज के दिखावटी नेता का चित्रण है। 'पाच फीट की शीशी' पति-पत्नी की कलह पर अच्छा व्यग्य है। कुछ एकाकी सिनेमा-जगत की सैर कराते है तो कुछ साहित्यिक सस्थाओ की।

श्री भुवन मोहन कृत 'इक्कीस सप्ताह" (१९५५) मे सरकार के चलाये हुए नाना आन्दोलनो तथा उनकी निरन्तर बढती हुई सख्या पर व्यग्य है। प्रत्येक सरकारी विभाग एक बडी सख्या मे सप्ताह मनाने का प्रस्ताव रखता है। सप्ताह तो मनाये जाते है पर ठोस क्रियात्मक कार्य नही होता। भिन्न भिन्न विभाग कुल १०७ सप्ताहो की माग करते हैं। हास्य व्यग्यमय शैली मे ऐसे व्यर्थ के दिखावटी सरकारी कार्यों की निस्सारता प्रकट की गई है।

सुश्री कमलापाल सतोपपाल कृत "अगर ऐसा होता" (१९५३), प्रहसन एक सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करता है, जिसमे नारी और पुरुष के कार्य और अधिकार स्थिति प्रतिकूल हैं। आज हमारे समाज मे जैसी दुरावस्था नारी की है, वैसी ही दशा यदि पुरुष की हो तो कैसा अनर्थ हो जाये, यही विनोद पूर्ण झाकी इस प्रहसन मे है।

श्री चन्द्रकान्त के प्रायः सभी प्रहसनो का मूल पात्रो के कथोपकथन में निहित है। आपके खानदानी नौकर (१९५०), पागल खाना (१९५०), बात की बात (१९५०), कलाकार (१९५०), कारोबार (१९५०), फौलादी प्रेम (१९५०), इन्टरव्यू (१९५०) कथोपकथनप्रधान हास्य से युक्त है। इनमे सभ्य समाज के रोमान, प्रेम व्याधि, पागलो के अध्ययन, मकान समस्या, कवि सम्मेलन, बीमा व्यवसाय आदि का विश्लेषण हैं। "फौलादी प्रेम' मे प्रेमियो का व्यग्यात्मक चित्रण है। "इन्टरव्यु" मे विवाह से पूर्व एक नवयुवक की एम० ए० पास युवती से मुलाकात की हास्यमय भेंट का चित्रण है, 'कारोवार' दो ऐसे बीमा एजेन्टो से सम्बन्धित है, जो चुपचाप एक दूसरे से व्यापार करना चाहते हैं 'खानदानी नौकर' मे एक नौकर की बेवकूफियो का हास्य चित्रण है। 'पागल खाना' मनोवैज्ञानिक रचना है। इन प्रहसनो मे विभिन्न परिस्थितियो के अनुसार हास्य विनोद, परिहास या व्यग्य का प्रयोग किया गया है। श्री केशव चन्द्र वर्मा का "ये मुए अखबार वाले" (१९५०) अखबार बेचने वाले लडको से परेशान होने वाले व्यक्ति का एक हास्यव्यग्य चित्र है। श्री अमृतलाल नागर के दो प्रहसन बडे सफल हैं। १ कानिन्न, २ कानिन्न फिर आ

गए। ये दोनो प्रहसन आपके हास्यरस के उपन्यास सेठ बाकेमल के अश हैं।

श्री चिरजीत के प्रहसनों "दादी मा जागी, मानो न मानो, दफ्तर जाते समय, साथ वाला मकान, टेलीफोन पर, घर का मालिक, रेशमी साडी" मे सामाजिक व्यग्य को आधार माना गया है और सामाजिक विद्रूपताओ को उभारा गया है। प्रो० वृहस्पति के प्रहसनो में राजनीति और समाज को व्यग्य का शिकार बनाया गया है। आपने समाज की विद्रूपताओं को उभारा है, पुराने पौराणिक कथानक लेकर उनमे नवीन सामाजिक राजनैनिक समस्याए फिट कर दी हैं। जैसे "स्वर्ग मे क्रान्ति" (१९४६) मे राजनैतिक क्षेत्र मे व्याप्त निर्वाचन के सक्रामक रोग पर व्यग्य है। कुछ कम्युनिस्ट स्वर्ग मे पहुचकर ब्रह्मा के पद के लिए चुनाव कराना चाहते हैं। अप्सराए विवाह की इच्छुक हैं। "जम के दूत दलाल" (१९४९) प्रहसन मे शेयर मार्केट का स्वर्ग तक प्रभाव पहुँचता है। नई धुन (१९४९) में रेडियो के सस्ते रोमास पूर्ण गीतो पर व्यग्य है। बडे भाई (१९४९) क्रम के प्रहसनो में एक ही पात्र के चरित्र के विभिन्न पक्षो का हास्य व्यग्यमय विश्लेषण है। इसकी विशेषता हास्य का साहित्यिक वातावरण है। वृहस्पति जी को अतिरजना का आश्रय लेने की आवश्यकता नही पडती। उनकी पैनी दृष्टि सामाजिक और राजनीतिक जीवन मे ही अट्टहास की सामग्री खोज निकलती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्यिक प्रहसनों के निर्माण का कार्य द्रुतगति से चल रहा है। अशिष्टता, स्थूल मजाक कार्टून पात्र, भोंडे व्यवहार दूर होकर उच्चकोटि के शिष्ट साहित्यिक हास्य की सृष्टि हो रही है।

बाल एकाकी बालको के पढ़ने और अभिनय करने की दृष्टि से अनेक नाट्यकारो ने बाल एकाकी लिखे हैं। प० रामनरेश त्रिपाठी का "पेखन" १० एकाकी, श्री व्यथित हृदय कृत "प्राणदान" १४ एकाकी, श्री रामचन्द्रगौड कृत "नाट्य किरण" श्री गणेशदत्तगौड इन्द्र कृत "बाल एकाकी नाटक" दो भाग ५० नाटक, श्री दशरथ ओझाकृत "बाल नाटक माला "(चार भाग), श्री रघुवीरशरण मिश्र "परीक्षा," प्रभाकर माचवे के "बाल नाटक" श्री श्यामलाल कृत "ऐतिहासिक दृश्य," श्री विष्णुप्रभाकर कृत "मा का बेटा," आदि बाल एकाकी सग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं ये सामाजिक ऐतिहासिक पौराणिक आदि सभी प्रकार के कथानको पर अधिकतर भारत की गौरवपूर्ण सस्कृति एव इतिहास या नैतिक सुधारवादी दृष्टि से लिखे गए हैं। भाषा सरल एव शैली सुबोध है, कुवर आदेश वर्मा का "दृश्य मन्दिर" एकाकी सग्रह भी उल्लेखनीय है श्री शभुदयाल सक्सेना के "कृष्ण सुदामा, आधा राजा, मुकुट, विजय" आदि नैतिक दृष्टिकोण से लिखे गए एकाकी है। श्री ठाकुरप्रसादसिंह कृत "कठपुतली" एकाकी सग्रह ज्ञानवर्द्धक एव मनोरजकता से परिपूर्ण है श्री मदन गोपालसिंह कृत "रगमच" सग्रह के १२ एकाकी विचारो मे स्फूर्ति, उत्तेजना और दृढता के भाव भरने मे सर्वथा समर्थ है।

: १० :

हिंदी एकांकी का भविष्य

हिन्दी एकाकी का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। साहित्य के माध्यम के रूप मे एकाकी की शक्ति पूर्ण प्रतिष्ठित हो चुकी है। साहित्य के अन्य माध्यमो, कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, समालोचना, जीवनी, संस्मरण, यात्रा विवरणो आदि मे एकाकी भी एक शक्तिशाली माध्यम बनता जा रहा है। यद्यपि अभी हिन्दी रगमच का निर्माण नही हो सका है, तथापि एकाकी मे साधारण रगमच या खुले रगमच द्वारा ही जन जीवन की नाना गुत्थियो को सुलझाने का प्रयत्न किया है। कम समय में अधिक से अधिक मनोरजन, घटना और पात्रो की हृदय स्पर्शिनी क्रिया और प्रतिक्रिया तथा पात्रो का आन्तरिक सघर्ष प्रस्तुत करने की विशेषता एकाकी मे ही है।

घटनाओ तथा समस्याओ के पारस्परिक अन्तर्व्यापी नैकट्य को दूर कर जीवन की पृष्ठभूमि पर प्रत्येक घटना और समस्या का स्वाभाविक उभार प्रस्तुत करना एकाकी का ही कौशल है। यह मच पर सजीव जीवन प्रस्तुत कर अल्प काल मे समस्या के प्रति हमे आकृष्ट कर देता है। युगो की टीस दो आसुओ मे और युगो का विनोद एक मुसकान मे प्रकट कर जीवन का रहस्य प्रदर्शिनी की भाति सुनज्जित कर देता है।

स्कूल तथा कालेजो के मनोरजन या वार्षिक पारितोषिक वितरणोत्सवो पर एकाकी एक आवश्यक आकर्षण बन गया है। बिना एकाकी के अभिनय के यह उत्सव फीके और अपूर्ण समझे जाते है। अमेचर क्लबों, विद्यार्थी वर्गों तथा उत्साही नवयुवको, बालचरो द्वारा विशेष अवसरो पर एकाकियो का अभिनय किया जाता है। रेडियो ने एकाकी के विकास मे प्रचुर सहयोग प्रदान किया है। जनता की ओर से निरन्तर रेडियो एकाकियो की माग की जा रही है। रेडियो प्रोग्रामो मे एकाकी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। देश के सर्वोत्कृष्ट नाट्यकार रेडियो एकाकी लिखने मे निरत हैं।

एकाकी का महत्व एव प्रगति इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि इसमे लम्बे नाटको को एक ओर ठेल दिया है तथा एकाकी लिखने एव अभिनय करने की एक प्रथा सी चल गई है। अनेक गम्भीर विवेचना-प्रधान एकाकी लिखे जा रहे है। अन्य काल में मनोरजन की आवश्यकता जितनी हमे आज है, उतनी पहले कभी न थी। एकाकी ही यह मनोरजन प्रदान कर सकता है। पत्र पत्रिकाओ मे पाठको के लिए तथा रेडियो, एमेचर क्लबों को अभिनय के योग्य एकाकियो की अतीव आवश्यकता है। आधुनिक युग मे अन्य भी कुछ ऐसी विशेषताए हैं, जिनके कारण एकाकी लोकप्रिय

गए । ये दोनो प्रहसन आपके हास्यरस के उपन्यास सेठ बाकेमल के अश हैं ।

श्री चिरजीत के प्रहसनो "दादी मा जागी, मानो न मानो, दफ्तर जाते समय, साथ वाला मकान, टेलीफोन पर, घर का मालिक, रेशमी साडी" मे सामाजिक व्यग्य को आधार माना गया है और सामाजिक विद्रूपताओ को उभारा गया है । प्रो० वृहस्पति के प्रहसनो मे राजनीति और समाज को व्यग्य का शिकार बनाया गया है । आपने समाज की विद्रूपताओ को उभारा है, पुराने पौराणिक कथानक लेकर उनमे नवीन सामाजिक राजनैतिक समस्याए फिट कर दी हैं । जैसे "स्वर्ग मे क्रान्ति" (१९४६) मे राजनैतिक क्षेत्र मे व्याप्त निर्वाचन के सक्रामक रोग पर व्यग्य है । कुछ कम्युनिस्ट स्वर्ग में पहुचकर ब्रह्मा के पद के लिए चुनाव कराना चाहते हैं । अप्सराए विवाह की इच्छुक हैं । "जम के दूत दलाल" (१९४९) प्रहसन में शेयर मार्केट का स्वर्ग तक प्रभाव पहुँचता है । नई धुन (१९४९) मे रेडियो के सस्ते रोमास पूर्ण गीतो पर व्यग्य है । बडे भाई (१९४९) क्रम के प्रहसनो में एक ही पात्र के चरित्र के विभिन्न पक्षो का हास्य व्यग्यमय विश्लेषण है । इसकी विशेषता हास्य का साहित्यिक वातावरण है । वृहस्पति जी को अतिरजना का आश्रय लेने की आवश्यकता नही पडती । उनकी पैनी दृष्टि सामाजिक और राजनीतिक जीवन मे ही अट्टहास की सामग्री खोज निकलती है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्यिक प्रहसनों के निर्माण का कार्य द्रुतगति से चल रहा है । अशिष्टता, स्थूल मजाक कार्टून पात्र, भोडे व्यवहार दूर होकर उच्चकोटि के शिष्ट साहित्यिक हास्य की सृष्टि हो रही है ।

बाल एकांकी बालको के पढ़ने और अभिनय करने की दृष्टि से अनेक नाट्य-कारो ने वाक एकाकी लिखे हैं । प० रामनरेश त्रिपाठी का "पेखन" १० एकाकी, श्री व्यथित हृदय कृत "प्राणदान" १४ एकाकी, श्री रामचन्द्रगौड कृत "नाटय किरण" श्री गणेशदत्तगौड इन्द्र कृत "वाल एकाकी नाटक" दो भाग ५० नाटक, श्री दशरय ओझाकृत "वाल नाटक माला "(चार भाग), श्री रघुवीरशरण मिश्र "परीक्षा," प्रभाकर माचवे के "वाल नाटक" श्री श्यामलाल कृत "ऐतिहासिक दृश्य," श्री विष्णुप्रभाकर कृत "मा का बेटा," आदि बाल एकाकी सग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं ये सामाजिक ऐतिहासिक पौराणिक आदि सभी प्रकार के कथानको पर अधिकतर भारत की गौरवपूर्ण सस्कृति एव इतिहास या नैतिक सुधारवादी दृष्टि से लिखे गए है । भाषा सरल एव शैली सुबोध है, कुवर आदेश वर्मा का "दृश्य मन्दिर" एकाकी सग्रह भी उल्लेखनीय है श्री शभुदयाल सक्सेना के "कृष्ण सुदामा, आधा राजा, मुकुट, विजय" आदि नैतिक दृष्टिकोण से लिखे गए एकाकी है । श्री ठाकुरप्रसादसिंह कृत "कठपुतली" एकाकी सग्रह ज्ञानवर्द्धक एव मनोरजकता से परिपूर्ण है श्री मदन गोपालसिंह कृत "रगमच" सग्रह के १२ एकाकी विचारो मे स्फूर्ति, उत्तेजना और दृढता के भाव भरने मे सर्वथा समर्थ है ।

: १० :

हिंदी एकांकी का भविष्य

हिन्दी एकाकी का भविष्य अत्यन्त उज्जवल है। साहित्य के माध्यम के रूप मे एकाकी की शक्ति पूर्ण प्रतिष्ठित हो चुकी है। साहित्य के अन्य माध्यमो, कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, समालोचना, जीवनी, सस्मरण, यात्रा विवरणो आदि मे एकाकी भी एक शक्तिशाली माध्यम बनता जा रहा है। यद्यपि अभी हिन्दी रगमच का निर्माण नही हो सका है, तथापि एकाकी मे साधारण रगमच या खुले रगमच द्वारा ही जन जीवन की नाना गुत्थियो को सुलझाने का प्रयत्न किया है। कम समय में अधिक से अधिक मनोरजन, घटना और पात्रो की हृदय स्पर्शिनी क्रिया और प्रतिक्रिया तथा पात्रो का आन्तरिक सघर्ष प्रस्तुत करने की विशेषता एकाकी मे ही है।

घटनाओ तथा समस्याओ के पारस्परिक अन्तर्व्यापी नैक्ट्य को दूर कर जीवन की पृष्ठभूमि पर प्रत्येक घटना और समस्या का स्वभाविक उभार प्रस्तुत करना एकाकी का ही कौशल है। यह मच पर सजीव जीवन प्रस्तुत कर अल्प काल मे समस्या के प्रति हमे आकृष्ट कर देता है। युगो की टीस दो आसुओ मे और युगो का विनोद एक मुसकान मे प्रकट कर जीवन का रहस्य प्रदर्शिनी की भाति मुमज्जित कर देना है।

स्कूल तथा कालेजो के मनोरजन या वार्षिक पारितोषिक वितरणोत्सवो पर एकाकी एक आवश्यक आकर्षण बन गया है। बिना एकाकी के अभिनय के यह उत्सव फीके और अपूर्ण समझे जाते हैं। अमेचर क्लबो, विद्यार्थी वर्गो तथा उत्साही नवयुवको, बालचरो द्वारा विशेष अवसरो पर एकाकियो का अभिनय किया जाता है। रेडियो ने एकाकी के विकास मे प्रचुर सहयोग प्रदान किया है। जनता की ओर से निरन्तर रेडियो एकाकियो की माग की जा रही है। रेडियो प्रोग्रामो में एकाकी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। देश के सर्वोत्कृष्ट नाट्यकार रेडियो एकाकी लिखने मे निरत हैं।

एकाकी का महत्व एवं प्रगति इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि इसने लम्बे नाटको को एक ओर ठेल दिया है तथा एकाकी लिखने एव अभिनय करने की एक प्रथा भी चल गई है। अनेक गम्भीर विवेचना-प्रधान एकाकी लिखे जा रहे हैं। अल्प काल मे मनोरजन की आवश्यकता जितनी हमे आज है, उतनी पहले कभी न थी। एकाकी ही यह मनोरंजन प्रदान कर सकता है। पत्र पत्रिकाओ मे पाठको के लिए तथा रेडियो, एमेचर क्लबों को अभिनय के योग्य एकाकियो की अतीव आवश्यकता है। आधुनिक युग मे अन्य भी कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जिनके कारण एकाकी नोत्तरोत्तर

गए। ये दोनो प्रहसन आपके हास्यरस के उपन्यास सेठ बाकेमल के अश हैं।

श्री चिरजीत के प्रहसनो "दादी मा जागी, मानो न मानो, दफ्तर जाते समय, साथ वाला मकान, टेलीफोन पर, घर का मालिक, रेशमी साडी" मे सामाजिक व्यग्य को आधार माना गया है और सामाजिक विद्रूपताओं को उभारा गया है। प्रो० वृहस्पति के प्रहसनों में राजनीति और समाज को व्यग्य का शिकार बनाया गया है। आपने समाज की विद्रूपताओ को उभारा है, पुराने पौराणिक कथानक लेकर उनमे नवीन सामाजिक राजनैनिक समस्याए फिट कर दी हैं। जैसे "स्वर्ग मे क्रान्ति" (१६४६) मे राजनैतिक क्षेत्र मे व्याप्त निर्वाचन के सक्रामक रोग पर व्यग्य है। कुछ कम्युनिस्ट स्वर्ग में पहुचकर ब्रह्मा के पद के लिए चुनाव कराना चाहते हैं। अप्सराए विवाह की इच्छुक हैं। "जम के दूत दलाल" (१६४६) प्रहसन मे शेयर मार्केट का स्वर्ग तक प्रभाव पहुँचता है। नई धुन (१६४६) मे रेडियो के सस्ते रोमास पूर्ण गीतो पर व्यग्य है। बडे भाई (१६४६) क्रम के प्रहसनो में एक ही पात्र के चरित्र के विभिन्न पक्षो का हास्य व्यग्यमय विश्लेषण है। इसकी विशेषता हास्य का साहित्यिक वातावरण है। वृहस्पति जी को अतिरजना का आश्रय लेने की आवश्यकता नही पडती। उनकी पैनी दृष्टि सामाजिक और राजनीतिक जीवन मे ही अट्टहास की सामग्री खोज निकलती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्यिक प्रहसनो के निर्माण का कार्य द्रुतगति से चल रहा है। अशिष्टता, स्थूल मजाक कार्टून पात्र, भोडे व्यवहार दूर होकर उच्चकोटि के शिष्ट साहित्यिक हास्य की सृष्टि हो रही है।

बाल एकाकी बालको के पढ़ने और अभिनय करने की दृष्टि से अनेक नाट्य-कारो ने बाक एकाकी लिखे हैं। प० रामनरेश त्रिपाठी का "पेखन" १० एकाकी, श्री व्यथित हृदय कृत "प्राणदान" १४ एकाकी, श्री रामचन्द्रगौड कृत "नाटय किरण" श्री गणेशदत्तगौड इन्द्र कृत "बाल एकाकी नाटक" दो भाग ५० नाटक, श्री दशरथ ओझाकृत "बाल नाटक माला "(चार भाग), श्री रघुवीरशरण मिश्र "परीक्षा," प्रभाकर माचवे के "बाल नाटक" श्री श्यामलाल कृत "ऐतिहासिक दृश्य," श्री विष्णुप्रभाकर कृत "मा का बेटा," आदि बाल एकाकी सग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं ये सामाजिक ऐतिहासिक पौराणिक आदि सभी प्रकार के कथानको पर अधिकतर भारत की गौरवपूर्ण सस्कृति एव इतिहास या नैतिक सुधारवादी दृष्टि से लिखे गए हैं। भाषा सरल एव शैली सुबोध है, कुवर आदेश वर्मा का "दृश्य मन्दिर" एकाकी सग्रह भी उल्लेखनीय है श्री शभुदयाल सक्सेना के "कृष्ण सुदामा, आधा राजा, मुकुट, विजय" आदि नैतिक दृष्टिकोण से लिखे गए एकाकी है। श्री ठाकुरप्रसादसिंह कृत "कठपुतली" एकाकी सग्रह ज्ञानवर्द्धक एव मनोरजकता से परिपूर्ण है श्री मदन गोपालसिंह कृत "रगमच" सग्रह के १२ एकाकी विचारों मे स्फूर्ति, उत्तेजना और दृढ़ता के भाव भरने मे सर्वथा समर्थ है।

सम्भावना है ।

अमेचर अभिनेता, उत्साही नवयुवक समाज तथा अनेक शिक्षा सम्बन्धी सस्थाएं एकाकी के प्रति अपनी दिलचस्पी दिखा रही हैं । पुरानी परिपाटी के थियेटरो से इनका सघर्ष और प्रतियोगिता हो चुकी है । कान्फ्रेंस आफ दी ड्रामा इन अमेरिकन यूनिवर्सिटीज एन्ड लिटिल थियेटर्स के अधिवेशन मे सभापति के रूप मे भाषण देते हुए श्री हैराल्ड ब्रिगहाउस ने कहा था "छोटे छोटे थियेटरो मे एकाकी नाटक को पर्याप्त ध्यान और प्रोत्साहन मिला है । लिटिल थियेटर्स तथा एकाकी के बल पर ही ओ नील और स्यूसान गोसफल ने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है ।" अमेचर अभिनेताओ तथा उत्साही युवको का एकाकी के प्रति ममत्व तथा उत्साह इस बात से स्पष्ट है कि सन् १९३१ मे लिटिल थियेटर प्रतियोगिता मे ४६० एकाकीकारो ने भाग लिया था । तब से अब तक यह सस्था निरन्तर उन्नति कर रही है ।

एकाकी तथा फिल्म . एकाकी की तरह के छोटे छोटे डोक्यूमेन्ट्री फिल्म जो आध घन्टे से लेकर एक घन्टे तक की समस्त कार्य व्यापार सीमित रखे, विश्व की सभ्य सरकारो की एक माग है । डोक्यूमेंट्री फिल्मो द्वारा भविष्य मे एकाकी का अधिक व्यापक प्रचार और विकास होगा एकाकी सब साहित्यिक माध्यमो मे लोकप्रिय तथा अग्रगणी माध्यम बन जाएगा । डोक्यूमैंट्री फिल्मो की पाडुलिपि बिल्कुल एक प्रकार का एकाकी ही है । यह रेडियो एकाकी की कोटि मे ही रखा जा सकता है । इन छोटे फिल्मो के भाग के साथ एकाकी का व्यापक प्रचार होगा ।[1]

एकाकी और टेलीविजन : टेलीविजन के प्रादुर्भाव से एकाकी का भविष्य और भी उज्जवल होगया है । बडे नाटको के अभिनय मे जो अधिक व्यय होता है, अनेक प्रकार की वस्तुओ, रंगमच की नाना आवश्यकताओ मे निर्माता भयभीत होते हैं, वह टेलीविज़न से बहुत अशो मे दूर हो जाएगी । टेलीविजन के लिए एक छोटे से रगमच पर एकाकी अभिनय होकर विस्तृत और व्यापक प्रचार पा सकेंगे । ११ नवम्बर १९३७ को बी० बी० सी० इंगलैंड ने प्रथम नाटक "दी जर्नीज़ एन्ड" टेलीविज़न द्वारा प्रस्तुत किया था, जनता ने इसे बहुत पसन्द किया था, किन्तु इसके अभिनय मे अधिक समय व्यय हुआ एकाकी जो कम समय लेता है, टेलीविजन के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ है । टेलीविजन को दृष्टि मे रख कर लिखे जाने वाले

1. "The short film supplies a need in the movie programmes, that is quite similar to the need for short stories in the magazines and the newspapers, to the need for short plays in the amateur and the commercial theatre, to the need for short plays that has that has has begun to be felt by the radio Isaac Goldberg "Films" Page, 20.

होते जा रहे हैं। पाश्चात्य एकाकियो के पठन पाठन, अध्ययन तथा अभिनय से हमारा समाज निरन्तर प्रभावित हो रहा है। हिन्दी एकाकीकार अग्रेजी तथा अमेरिकन एकाकियो के अनुवाद तथा उन्ही के अनुकरण पर एकाकी नाटक लिख रहे हैं।

आज के वस्तुवादी जगत् मे जब आध्यात्मिक मान्यताए उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती हैं, मनुष्य आधुनिक रगमचीय मनोरजन के साधनो को त्याग नही सकता। वस्तुत रिपर्टरी आन्दोलन या नाट्य सघ जैसे रगमच प्रधान आन्दोलन जल्दी ही विलुप्त नही हो सकेंगे। जनता को उनमे गहरी रुचि तथा दिलचस्पी है। अत एकाकी का भविष्य उज्ज्वल है। रेडियो एकाकी की उन्नति की महान सम्भावनाए हैं।

यह सभव है कि विश्व की सभ्य सरकारें छोटे छोटे ऐसे एकाकियो का निर्माण करायें, जिनके द्वारा स्कूलों की कक्षा जैसी शिक्षा सम्भव हो सके। "दी सेन्चुरियन विलेट" मे लैटिन लेंग्वेज की भाति यदि लैटिन भाषा पढाई जा सकती है, तो हमारे यहा सस्कृत इत्यादि क्लिष्ट भाषाए भी एकाकी नाटको के माध्यम से सिखाई जा सकेंगी। भाषा की भाति अनेक अन्य विषय भी मनोरजक बनकर एकाकी के माध्यम द्वारा पढाये जा सकेंगे। इतिहास के क्षेत्र में एकाकियो द्वारा महत्वपूर्ण शिक्षण पद्धति विकसित हो सकती है। भारतीय इतिहास के जो स्थल अधकार में हैं, या जिन पर नवीन राष्ट्रीय दृष्टि से पुन विचार करने की आवश्यकता है, उनके विषय मे नये एकाकियो का निर्माण कराया जा सकता है।

भिन्न भिन्न राजनीतिक दलो, सरकारी या गैर-सरकारी सस्थाओ द्वारा प्रचार के लिए एकाकी के माध्यम का उपयोग किया जा सकता है। दल के मूल तत्व, विचार तथा दृष्टिकोणो को समक्ष रखकर अनेक सफल प्रचारात्मक एकाकियो का निर्माण हो सकता है। प्रचार कार्य तथा जन मत को किसी विशिष्ट ओर झुकाने का शक्तिशाली माध्यम बन सकता हैं। रगमच पर इसका अस्तित्व होने के कारण जन साधारण मे इसका व्यापक प्रचार हो सकता है। आज के प्रचार युग मे जनता की रुचि को परिष्कृत करने तथा भारतीय सस्कृति का शुद्ध रूप उनके सामने रखने के लिए एकाकियों का उपयोग किया जा सकता है।

देश के राष्ट्रीय नवनिर्माण प्रगति एवं समाज सुधार के नवीन आदर्शों को एकाकियो के बाने मे शक्तिशाली रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। सामाजिक, राजनीतिक और सार्वजनिक कुरीतियो के विभिन्न पहलू उभारे जा सकते हैं और लोक शिक्षण की अनेक योजनाए कार्यान्वित की जा सकती हैं। एकाकी की समाज सुधार की शक्ति महान है। हमारे देश मे नाट्य कला बडी लोकप्रिय रही है। इसे मनोविनोद का साधन ही नही, प्रत्युत परम मागल्यजनक माना गया है। विधिपूर्वक इसकी आराधना करने से विघ्न दूर होते हैं। और पुण्य भी प्राप्त होने की भावना है। अत धार्मिक अवसरो पर पौराणिक एकाकियो के अधिकाधिक प्रचार होने की

सम्भावना है।

अमेचर अभिनेता, उत्साही नवयुवक समाज तथा अनेक शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएं एकाकी के प्रति अपनी दिलचस्पी दिखा रही हैं। पुरानी परिपाटी के थियेटरो से इनका संघर्ष और प्रतियोगिता हो चुकी है। कान्फ्रेंस आफ दी ड्रामा इन अमेरिकन यूनिवर्सिटीज एन्ड लिटिल थियेटर्स के अधिवेशन मे सभापति के रूप मे भाषण देते हुए श्री हैराल्ड ब्रिगहाउस ने कहा था "छोटे छोटे थियेटरो मे एकाकी नाटक को पर्याप्त ध्यान और प्रोत्साहन मिला है। लिटिल थियेटर्स तथा एकाकी के बल पर ही ओ नील और स्यूसान गोसफल ने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है।" अमेचर अभिनेताओ तथा उत्साही युवको का एकाकी के प्रति ममत्व तथा उत्साह इस बात से स्पष्ट है कि सन् १९३१ मे लिटिल थियेटर प्रतियोगिता मे ४६० एकाकीकारो ने भाग लिया था। तब से अब तक यह सस्था निरन्तर उन्नति कर रही है।

एकाकी तथा फिल्म · एकाकी की तरह के छोटे छोटे डोक्यूमेन्ट्री फिल्म जो आध घन्टे से लेकर एक घन्टे तक की समस्त कार्य व्यापार सीमित रखें, विश्व की सभ्य सरकारो की एक माग है। डोक्यूमेंट्री फिल्मो द्वारा भविष्य मे एकाकी का अधिक व्यापक प्रचार और विकास होगा एकाकी सब साहित्यिक माध्यमो मे लोकप्रिय तथा अग्रगणी माध्यम बन जाएगा। डोक्यूमैंट्री फिल्मो की पाडुलिपि बिल्कुल एक प्रकार का एकाकी ही है। यह रेडियो एकाकी की कोटि मे ही रखा जा सकता है। इन छोटे फिल्मो के भाग के साथ एकाकी का व्यापक प्रचार होगा।[1]

एकाकी और टेलीविजन . टेलीविजन के प्रादुर्भाव से एकाकी का भविष्य और भी उज्जवल होगया है। बडे नाटको के अभिनय मे जो अधिक व्यय होता है, अनेक प्रकार की वस्तुओ, रंगमच की नाना आवश्यकताओ से निर्माता भयभीत होते हैं, वह टेलीविजन से बहुत अशो मे दूर हो जाएगी। टेलीविजन के लिए एक छोटे से रगमच पर एकाकी अभिनय होकर विस्तृत और व्यापक प्रचार पा सकेंगे। ११ नवम्बर १९३७ को बी० बी० सी० इंगलैंड ने प्रथम नाटक "दी जरनीज़ एन्ड" टेलीविजन द्वारा प्रस्तुत किया था, जनता ने इसे बहुत पसन्द किया था, किन्तु इसके अभिनय मे अधिक समय व्यय हुआ एकाकी जो कम समय लेता है, टेलीविजन के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ है। टेलीविजन को दृष्टि मे रख कर लिखे जाने वाले

1. "The short film supplies a need, in the movie programmes, that is quite similar to the need for short stories in the magazines and the newspapers, to the need for short plays in the amateur and the commercial theatre, to the need for short plays that has that has has begun to be felt by the radio. Isaac Goldberg "Films". Page, 20.

एकाकी पर्याप्त प्रसिद्धि पा रहे हैं। नाट्यकारो को इनसे आय भी अच्छी होती है। अत इनका प्रचार तीव्र गति से चल रहा है। टेलीविजन के लिए लिखे जाने वाले एकाकियो के लिए कम सैटिंग, वस्त्र, सजावट इत्यादि तथा अभिनेताओ के लिए कम पार्ट याद करने की आवश्यकता पडती है। अत ये सरलता से अभिनीत हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक तथा मैलोड्रैमैटिक एकाकी इनमे विशेष लोकप्रिय हो रहे हैं।

एकाकी तथा कालेज थियेटर

कालेज तथा विश्वविद्यालयो के विद्यार्थियो ने जिस रगमच को जन्म दिया है उसमे महान सम्भावनाए भरी हैं। युवको मे नाटकीय मनोरजनो के लिए विशेष चाव और उत्साह है। यह रगमच भावी रगमच के रूप मे विकसित हो सकता है। नये नये विचारो, समस्याओ तथा गुत्थियो को लेकर कालेजो मे अभिनय लोकप्रिय होते जा रहे हैं। पाठ्यक्रमो मे एकाकियो का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। अमेरिका मे नवयुवको ने इस रगमचीय आन्दोलन मे वडा महत्वपूर्ण कार्य किया है। वेरेट क्लार्क अमेरिका के अमेचर रगमच की प्रगति के सम्बन्ध मे लिखते हैं

"इस समय अमेरिका मे सात सौ कालेज और विश्वविद्यालय हैं, जो नियमित रूप से एकाकियो के अभिनय कर रहे हैं। प्रतिवर्ष अक्टूबर से मई तक सम्पूर्ण देश मे हर प्रकार के एकाकियो का अभिनय देखने की प्रथा-सी चल गई है। इब्सन, चैखोव, मौलियर, शा, ओ नील होवर्ड, कैली, वैरी एन्डरसन, सिंज, ओ कैसे इत्यादि नाट्यकारो के एकाकी प्रतिवर्ष विश्वविद्यालयो के रगमचो पर अभिनीत होते हैं। विश्वविद्यालयो के विभिन्न नाटकीय एसोसिएशनो मे ३५००० से चालीस हजार तक विद्यार्थी अभिनय मे भाग लेते हैं।

विश्वविद्यालयो मे जो माध्यम सबसे सरल, सहज, आडम्बरविहीन है, वह एकाकी ही है। इससे ड्रामेटिक क्लब के सदस्यो मे नव स्फूर्ति एव जागृति रहती है। जो विद्यार्थी स्वय अभिनेता बनना चाहते हैं, अथवा सार्वजनिक जीवन में व्याख्यान देना सीखना चाहते हैं, उनके लिए एकाकी का रगमच अच्छी ट्रेनिंग प्रदान करता है। इससे सगठन की प्रवृत्ति आती है तथा उच्च कोटि की नैतिकता की रक्षा होती है।

इगलैंड मे एकांकी की प्रगति

एकाकी के विकास तथा व्यापक प्रचार करने तथा एकाकी को लोकप्रिय बनाने मे अग्रेज नाट्यकारो का प्रमुख हाथ है। इगलैंड मे आज भी एकाकी का सर्वाधिक प्रचार है। उच्चकोटि के नाट्यकार इस क्षेत्र मे कार्य कर रहे हैं। आजकल अमेचर क्लबो में १०,००,००० अभिनेता कार्य कर रहे हैं। २५, ३० प्रथम श्रेणी की अमेचर नाटक समितिया निरन्तर रगमचीय आन्दोलन को आगे वढाने मे प्रयत्नशील हैं। एकाकियो के पाठको की सख्या भी निरन्तर अभिवृद्धि पर है। पत्र-पत्रिकाओ में एकाकियो

की सख्या बढती जा रही है। सन १९३७, १९३८ मे ही तीन सौ से अधिक एकांकी प्रकाशित हुए थे, उसी गति से आगे का कार्य भी होता जा रहा है। ब्रिटिश ड्रामा लीग इगलैंड मे राष्ट्रीय वार्षिक मेले के अवसर पर जो एकांकियो के अभिनय करती है, उनमे प्रतियोगिता के लिए आने वाले एकांकियो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि हुई है। स्काटलैंड मे स्काटिश कम्युनिटी ड्रामा एसोसिएशन मे इससे भी अधिक सख्या मे एकाकी प्रतिवर्ष आते हैं। अमेचर आन्दोलनो द्वारा निरन्तर समुन्नत होता जा रहा है, यद्यपि पेशेवर थियेटर का अधिक ध्यान इस ओर नही है।

१९३८ इंगलैंड मे "दी लेफ्ट बुक क्लब थियेटर गिल्ड" का जन्म हुआ है। यह लन्दन के युनिटी थियेटर के कुछ श्रमजीवी कार्यकर्त्ताओ से प्रारम्भ हुआ है। इसका प्रथम उल्लेखनीय नाटक ओडट्स का "वेटिंग फार लैफ्टी" था। एक ही वर्ष मे इसने तीन सौ से अधिक छोटे छोटे रंगमंचीय क्लबो को जन्म दिया है। इनके साथ मे एकाकी के प्रसार, उन्नति तथा लोकप्रियता निश्चय है। यदि ये एकाकी को आगे न बढा सके और यदि सरकार द्वारा राष्ट्रीय उत्सवो पर उन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन तथा सहायता न दी गई तो एकाकी के प्रचार मे बाधा आ सकती है।

वर्तमान हिन्दी एकांकी की आवश्यकताएं

इसमें सन्देह नहीं कि गत २५ वर्षों मे हिन्दी एकाकी का द्रुतगति से विकास हुआ है और निरन्तर प्रगति हो रही है, किन्तु उनमे पाई जाने वाली त्रुटियो और एकांकियो की शैली के विषय मे फैले हुए भ्रमो को दूर करने की आवश्यकता है। आज के अधिकाश नाट्यकारो के सम्मुख कोई विशेष टैकनीक नही हैं। जो जैसे चाहता है, वैसे ही एकाकी लिख डालता है। प्रकाशन और मुद्रण सुविधा के कारण उनकी सख्या बेनाप तोल है। पत्र पत्रिकाए भिन्न भिन्न विषयक एकांकियो से भरी रहती है। परन्तु नाट्यकला के मूल तत्वो की कसौटी पर इस सामग्री की परख करने पर उनमे बहुत कम सही अर्थों मे सफल एकाकी की कोटि की ठहरती हैं।

रंगमच पर अभिनय तत्व से हीन, रस सार से शुष्क और कथोपकथन के व्यवहारिक तत्व से रहित आज हिन्दी एकाकी केवल लघु कथाए मात्र हैं। प्रायः लेखक गण स्थान, समय तथा दृश्य इत्यादि तो लिख देते हैं, किन्तु रगमच पर उसे किस प्रकार निर्मित किया जायेगा यह नही सोचते। प्राय देखा जाता है कि एकाकीकार बिना एकाकी टैकनीक के अध्ययन और अभ्यास के ही एकाकी की रचना मे प्रवृत्त हो जाते हैं।[1] कुछ

---

1 Their chief fault is insignificance, the number of significant One Act Plays is lamentably small. The reason in part may be found in the technique of the medium. Walter Prichard Eaton "Chief Fault" page 35.

एकाकियो मे सम्वाद भर होता है, तो कार्य की गति क्षीण होती है, इसके विपरीत कुछ मे केवल गति ही गति है। उन्हें पढने से ऐसा प्रतीत होता है मानो नाटककार उपन्यास या कहानिया लिख रहा है। आजकल के अनेक एकाकी सवाद प्रधान कहानी ही होते हैं[1]। वास्तव में एकाकी मे सवाद और गति का उचित समन्वय होना चाहिए। यह जो हिन्दी ससार मे भ्रम फैल गया है कि कथोपकथन रूप मे जो कुछ भी लिखा जाय वही एकाकी बन जाता है दूर होना चाहिए, हमे एकाकी एव सवादमात्र अथवा सवाद प्रधान कहानी मे अन्तर समझकर एकाकियो पर विचार करना चाहिए।[2]

यो तो कहने के लिए सभी एकाकियों में वार्तालाप अथवा कथोपकथन का प्रयोग पाया जाता है, पर उनमे न तो नाटकोचित सजीवता होती है और न भाव या भावनाजन्य क्रियात्मकता की प्रेरणा। वे तो बुद्धि से उपजे हुए विचार होते हैं, जिसे बीच ही मे जिह्वा झटककर फेंक देती है। हृदय तक वे पहुँचने ही नही पाते जिससे किसी भी प्रधान अथवा गौण रस से अनुरजित होकर, मानव जीवन व्यापार की किसी चेतना को दर्शको मे भी उत्पन्न कर सकें। दृश्य काव्य की सबसे अच्छी कसौटी है उसकी अभिनयशीलता और रगमचीय योग्यता। रस कसौटी पर तो आज के ये एकाकी किसी भी अश मे नही कसे जा सकते।[3]

अनेक एकाकियो मे एकाकी के तत्वो का सतुलित विकास और प्रभाव साम्य की ओर कोई ध्यान नही दिया जा रहा है। सकलन त्रय का बडा महत्व है। इसी के पालन से एकाकी मानव व जीवन तथा समाज का जीता जागता टुकडा बनता है। कुछ नाटककार ऐसे एकाकी लिख रहे हैं जिनमें सकलन त्रय की अवहेलना की गई है। फलत वे जीवन से बहुत दूर जा पडे हैं। एकाकी तो जीते जागते मानव जीवन के एक उद्दीप्त क्षण का चित्र है, किसी विशेष परिस्थिति अथवा समस्या का यथार्थवादी दृष्टिकोण से अध्ययन है। कुछ एकाकीकार प्राय ऐसे क्षण को चुन लेते हैं जिनमे प्राण नही होता। अनेक एकाकियो में सजीवता तथा स्वाभाविकता की रक्षा नही की जा रही है। इन विधाओ की तुलना में जब हम डा० रामकुमार वर्मा, उदयशकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क या जगदीशचन्द्र माथुर के एकाकी रखते हैं तो सफल-असफल एकाकियो का भेद स्पष्ट हो जाता है।

मनोरजन की दृष्टि से कुछ एकाकी अच्छे रहे हैं, किन्तु उनमे जीवन का गूढ़

---

१. जैसे रामचन्द्र प्रेम कृत "छुट्टी का दिन" साप्ताहिक आज २० मार्च १९५५ में प्रकाशित अथवा श्री रामप्रसाद सिंह आनन्द का "प्रतीक्षा", सग्रह में प्रकाशित 'प्रतीक्षा' एकांकी।

२ देखिए प्रो० गोपीनाथ तिवारी कृत लेख "एकांकी नाटकों के विषय में भ्रम" सा० स० मा० १६, अक ११।

३ प्रो० ललितप्रसाद सुकुल

अध्ययन या पथ निर्देश नहीं मिलता। जीवन के अध्ययन तथा उसके चित्रण मे अभी पर्याप्त परिपक्वता नही आ पाई है। इस परिपक्वता के अभाव मे वे नगण्य ही कहे जायेंगे। सफल एकाकी मे हम बडे नाटक या कहानी की भाति नाटकीय पृष्ठभूमि की गहराई, पूर्व परिस्थिति का निर्देशन, अन्तिम निष्कर्ष और जीवन के विश्लेषण के प्रति सजग रहते हैं। अधिकाश एकाकी केवल अल्प-कालीन मनोरजन भर देकर समाप्त हो जाते हैं। इनमे जीवन से उद्वेलित पृष्ठभूमि की गहराई नही है। ये अमरबेल की भाँति रिक्ता (वेक्यूम) मे जीवन की सास लेते है।

हमारे रंगमंच के पिछडे जाने से अभिनेय एकाकियो की संख्या भी न्यून है। वे पठन-पाठन की दृष्टि से लिखे जा रहे हैं। स्कूल कालेजो के रगमंचो पर कुछ जागृति अवश्य दृष्टिगोचर होती है, किन्तु सामाजिक रूढियो के कारण स्त्री पुरुष साथ-साथ अभिनय नही कर पाते। सामाजिक जागृति, अभिनय के शिष्ट सुरुचिपूर्ण, मनोरजन की आवश्यकता तथा शिक्षा के व्यापक प्रसार से एकाकी के अधिकाधिक लोकप्रिय होने की आशा है।

एकाकियो के कुछ प्रकार ऐसे हैं, जिनका अभी पर्याप्त विकास नहीं हुआ है। मोनोड्रामा, ओपेरा, रहस्य रोमाच, जासूसी एकाकी, फैंटेसी, झाकी, सम्भाषण इत्यादि की ओर अभी कम ध्यान दिया गया है, किन्तु अब तक की प्रगति देखकर यह आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य मे इन शैलियो का भी विकास होगा। रेडियो एकाकी भी परिष्कार की अपेक्षा रखता है।

हमारे एकाकी साहित्य के सतोषजनक विकास और परिष्कार के लिए सर्वप्रथम उपयुक्त रगमंच की आवश्यकता है। हमे शीघ्रातिशीघ्र राष्ट्रीय रगमच का निर्माण करना चाहिए। एकाकीकार हमारे सास्कृतिक जीवन को सचाई के साथ व्यक्त करते चलें। पश्चिम का बुद्धिवाद हम भारतीय परिस्थितियो और सस्कारो के अनुसार ग्रहण करे। सगीत की अवहेलना यथेष्ट हुई है। अब हमे इन उपेक्षित अंग को साथ लेकर चलना है और सुरुचि की रक्षा करते हुए जीवन की स्वाभाविक गति को यथार्थवादी ढग से चित्रित करना है। अपने हास्य को स्वाभाविकता से प्रयोग कर व्यंग्य, विनोद और परिहास की शक्तियो को समझकर एकाकियो मे इनका प्रयोग करना चाहिए। हमे ऐसे एकाकीकारो की आवश्यकता है जो समाज के सूक्ष्म निरीक्षक हो, जो मनोविज्ञान के पडित हो, जो स्वयं अभिनय कुशल हो और रगमंच की आवश्यकताओ से परिचित हो। हमारे एकाकियो की भाषा स्वाभाविक, सरल और पात्रो के अनुकूल होनी चाहिए। समय का अभाव होने से सहज बोधगम्य एकाकियो की माग निरन्तर अभिवृद्धि पर है। टैकनीक की ओर विशेष दृष्टि रख कर, रगमंच की आवश्यकतानुसार एकाकियो का निर्माण होना चाहिए।

सक्षेप मे रंगमंच, राष्ट्रीय सास्कृतिक चेतना, संगीत, जीवन से तथ्य समर्थन, हास्य विनोद परिहास और व्यंग्य तथा भाषा की सरलता, विविधता और प्रभावो-

एकाकियो मे सम्वाद भर होता है, तो कार्य की गति क्षीण होती है, इसके विपरीत कुछ मे केवल गति ही गति है। उन्हें पढने से ऐसा प्रतीत होता है मानों नाटककार उपन्यास या कहानिया लिख रहा है। आजकल के अनेक एकाकी सवाद प्रधान कहानी ही होते हैं[1]। वास्तव में एकाकी मे सवाद और गति का उचित समन्वय होना चाहिए। यह जो हिन्दी ससार में भ्रम फैल गया है कि कथोपकथन रूप मे जो कुछ भी लिखा जाय वही एकाकी बन जाता है दूर होना चाहिए, हमे एकाकी एव सवादमात्र अथवा सवाद प्रधान कहानी मे अन्तर समझकर एकाकियो पर विचार करना चाहिए।[2]

यो तो कहने के लिए सभी एकाकियों में वार्त्तालाप अथवा कथोपकथन का प्रयोग पाया जाता है, पर उनमें न तो नाटकोचित सजीवता होती है और न भाव या भावनाजन्य क्रियात्मकता की प्रेरणा। वे तो बुद्धि से उपजे हुए विचार होते हैं, जिसे बीच ही मे जिह्वा झटककर फेंक देती है। हृदय तक वे पहुँचने ही नही पाते जिससे किसी भी प्रधान अथवा गौण रस से अनुरजित होकर, मानव जीवन व्यापार की किसी चेतना को दर्शको मे भी उत्पन्न कर सकें। दृश्य काव्य की सबसे अच्छी कसौटी है उसकी अभिनयशीलता और रगमचीय योग्यता। रस कसौटी पर तो आज के ये एकाकी किसी भी अश मे नही कसे जा सकते।[3]

अनेक एकाकियो मे एकाकी के तत्वो का सतुलित विकास और प्रभाव साम्य की ओर कोई ध्यान नही दिया जा रहा है। सकलन त्रय का बडा महत्व है। इसी के पालन से एकाकी मानव व जीवन तथा समाज का जीता जागता टुकडा बनता है। कुछ नाटककार ऐसे एकाकी लिख रहे हैं जिनमे सकलन त्रय की अवहेलना की गई है। फलत वे जीवन से बहुत दूर जा पडे हैं। एकाकी तो जीते जागते मानव जीवन के एक उद्दीप्त क्षण का चित्र है, किसी विशेष परिस्थिति अथवा समस्या का यथार्थवादी दृष्टिकोण से अध्ययन है। कुछ एकाकीकार प्राय ऐसे क्षण को चुन लेते हैं जिनमें प्राण नही होता। अनेक एकाकियो में सजीवता तथा स्वाभाविकता की रक्षा नही की जा रही है। इन विधाओ की तुलना मे जब हम डा० रामकुमार वर्मा, उदयशकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क या जगदीशचन्द्र माथुर के एकाकी रखते हैं तो सफल-असफल एकाकियो का भेद स्पष्ट हो जाता है।

मनोरंजन की दृष्टि से कुछ एकाकी अच्छे रहे हैं, किन्तु उनमे जीवन का गूढ

---

१. जैसे रामचन्द्र प्रेम कृत "छुट्टी का दिन" साप्ताहिक आज २० मार्च १६५५ में प्रकाशित अथवा श्री रामप्रसाद सिंह आनन्द का "प्रतीक्षा", सग्रह में प्रकाशित 'प्रतीक्षा' एकांकी।

२ देखिए प्रो० गोपीनाथ तिवारी कृत लेख "एकांकी नाटकों के विषय में भ्रम" सा० स० मा० १६, अक ११।

३ प्रो० ललितप्रसाद सुकुल

अध्ययन या पथ निर्देश नही मिलता। जीवन के अध्ययन तथा उसके चित्रण मे अभी पर्याप्त परिपक्वता नही आ पाई है। इस परिपक्वता के अभाव मे वे नगण्य ही रह जायेंगे। सफल एकाकी मे हम बड़े नाटक या कहानी की भांति नाटकीय पृष्ठभूमि की गहराई, पूर्व परिस्थिति का निर्देशन, अन्तिम निष्कर्ष और जीवन के विश्लेषण के प्रति सजग रहते हैं। अधिकाश एकाकी केवल अल्प-कालीन मनोरजन भर देकर समाप्त हो जाते हैं। इनमे जीवन से उद्वेलित पृष्ठभूमि की गहराई नही है। वे अमरबेल की भांति रिक्ता (वेक्यूम) मे जीवन की सास लेते हैं।

हमारे रंगमंच के पिछड़े जाने से अभिनेय एकाकियो की सख्या भी न्यून है। वे पठन-पाठन की दृष्टि से लिखे जा रहे हैं। स्कूल कालेजो के रंगमंचो पर कुछ जागृति अवश्य दृष्टिगोचर होती है, किन्तु सामाजिक रूढियो के कारण स्त्री पुरुष साथ-साथ अभिनय नही कर पाते। सामाजिक जागृति, अभिनय के शिष्ट सुरुचिपूर्ण, मनोरजन की आवश्यकता तथा शिक्षा के व्यापक प्रसार से एकाकी के अधिकाधिक लोकप्रिय होने की आशा है।

एकाकियो के कुछ प्रकार ऐसे हैं, जिनका अभी पर्याप्त विकास नहीं हुआ है। मोनोड्रामा, ओपेरा, रहस्य रोमांच, जासूसी एकाकी, फैंटेसी, झाकी, सम्भाषण इत्यादि की ओर अभी कम ध्यान दिया गया है, किन्तु अब तक की प्रगति देखकर यह आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य मे इन शैलियो का भी विकास होगा। रेडियो एकाकी भी परिष्कार की अपेक्षा रखता है।

हमारे एकाकी साहित्य के सतोषजनक विकास और परिष्कार के लिए सर्वप्रथम उपयुक्त रगमंच की आवश्यकता है। हमे शीघ्रातिशीघ्र राष्ट्रीय रगमंच का निर्माण करना चाहिए। एकाकीकार हमारे सास्कृतिक जीवन को सचाई के साथ व्यक्त करते चलें। पश्चिम का बुद्धिवाद हम भारतीय परिस्थितियो और सस्कारो के अनुसार ग्रहण करें। सगीत की अवहेलना यथेष्ट हुई है। अब हमे इस उपेक्षित अग को साथ लेकर चलना है और सुरुचि की रक्षा करते हुए जीवन की स्वाभाविक गति को यथार्थवादी ढग से चित्रित करना है। अपने हास्य को स्वाभाविकता से प्रयोग कर व्यंग्य, विनोद और परिहास की शक्तियों को समझकर एकाकियो मे इनका प्रयोग करना चाहिए। हमे ऐसे एकाकीकारो की आवश्यकता है जो समाज के सूक्ष्म निरीक्षक हो, जो मनोविज्ञान के पडित हो, जो स्वय अभिनय कुशल हो और रगमच की आवश्यकताओ से परिचित हो। हमारे एकाकियो की भाषा स्वाभाविक, सरल और पात्रों के अनुकूल होनी चाहिए। समय का अभाव होने से सहज बोधगम्य एकाकियों की माग निरन्तर अभिवृद्धि पर है। टैकनीक की ओर विशेष दृष्टि रख कर, रंगमंच की आवश्यकतानुसार एकाकियो का निर्माण होना चाहिए।

सक्षेप मे रगमच, राष्ट्रीय व्यक्तित्व चेतना, संगीत, जीवन में तथ्य समर्थन, हास्य विनोद परिहास और व्यग्य तथा भाषा की सरलता, विविधता और प्रभावो-

त्पादकता नाट्य साहित्य की तरह, हमारे एकाकी साहित्य की मुख्य आवश्यकताए हैं। जननाट्य सघ ने हिन्दी रगमच पर रोचक और प्रगतिशील-दृष्टि-सम्पन्न नाटक खेलने का कई वर्ष पर्यन्त प्रयास किया था। बहुधा हिन्दी मे ऐसे नाटको का अभाव पा कर उस सस्था के सदस्यो ने बगला से अनुवाद करके हिन्दी रगमच पर एकाकी प्रस्तुत किया। ऐसे नाटको मे विजन भट्टाचार्य का "अन्तिम अभिलाषा" विशेष मार्मिक था। "बनफूल" के एकाकी भी बगला से हिन्दी में अनुवाद करके रगमच पर प्रस्तुत किए हैं। इन अनुवादो से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी एकाकी और नाट्य-साहित्य को अभी प्रगति की अनेक मजिलें पार करनी हैं। इस प्रकार का असतोष हिन्दी-एकाकी के भविष्य के लिए शुभ होगा।[1]

---

१ देखिए प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त का लेख "हिन्दी एकांकी और एकांकीकार" भारती १९५७